तफ़हीमुल-क़ुरआन

हिस्सा-1

(अल-फ़ातिहा – अल-अनआम)

मौलाना सैयद-अबुल-आला मौदूदी (रह०)

हिन्दी तर्जमा
मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

MARKAZI MAKTABA ISLAMI PUBLISHERS
NEW DELHI
مرکزی مکتبہ اسلامی پبلشرز

तफ़हीमुल-क़ुरआन

हिस्सा-1

(अल-फ़ातिहा – अल-अनआम)

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

हिन्दी तर्जमा

मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स

नई दिल्ली-110025

TAFHEEMUL QUR'AN, Part-I (Hindi)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट प्रकाशन न० -313
©सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

नाम मूल किताब (उर्दू) : तफ़हीमुल-कुरआन हिस्सा-I
हिन्दी तर्जमा : मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

प्रकाशकः **मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स**

D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
दूरभाष : 26981652, 26984347
Mobile: 7290092401 WhatsApp: 7290092403
E-mail: mmipublishers@gmail.com
E-mail: info@mmipublishers.net
Website: www.mmipublishers.net

सफ़हात	:	744
चौथा संस्करण	:	सितम्बर 2021 ई०
तादाद	:	1100
हदिया	:	₹450.00

ISBN 978-81-8088-804-5

मुद्रक : H. S. Printers, Tronica City, UP

सूरतों की फ़ेहरिस्त

- दो लफ़्ज़ 4
- दीबाचा 5
- मुक़द्दिमा 13

1. अल-फ़ातिहा 43
2. अल-बक़रा 49
3. आले-इमरान 251
4. अन-निसा 347
5. अल-माइदा 479
6. अल-अनआम 575

- इण्डेक्स 673
- क़ुरआन से मुताल्लिक़ इस्तिलाही अलफ़ाज़ 729

तफ़हीमुल-क़ुरआन, हिस्सा-1

उर्दू तर्जमा और तफ़सीर

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह.)

हिन्दी तर्जमा

मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही

नज़रसानी और तसहीह वग़ैरा

मुहम्मद शुऐब

मुहम्मद इलियास हुसैन

मुहम्मद आबिद हामिदी

कौसर लईक़

एस. ख़ालिद निज़ामी

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रहम करनेवाला है।'

दो लफ़्ज़

क़ुरआन मजीद अल्लाह की तरफ़ से सारे इनसानों की हिदायत और रहनुमाई के लिए भेजी हुई किताब है। यह किताब असल में अरबी ज़बान में है। इसमें कुल 114 सूरतें (अध्याय) हैं। मुख़्तलिफ़ उलमा ने अलग-अलग ज़बानों में इसके तर्जमे किए और इसकी तफ़सीरें लिखीं ताकि ख़ुदा का यह पैग़ाम दुनिया के सभी लोगों तक उनकी ज़बान में पहुँच सके।

क़ुरआन मजीद का उर्दू ज़बान में भी बहुत-से आलिमों ने अपने-अपने अन्दाज़ में तर्जमा किया और तफ़सीरें लिखीं। उन्हीं तर्जमों और तफ़सीरों में एक तफ़सीर तफ़हीमुल-क़ुरआन है जिसको मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी रह. (1903-1979) ने उर्दू ज़बान में तैयार किया। यह तफ़सीर छः हिस्सों में शाए (प्रकाशित) हुई है। तफ़हीमुल-क़ुरआन की ख़ूबी यह है कि यह तफ़सीर आज के साइंटिफ़िक ज़ेहन को सामने रखकर लिखी गई है। इसकी ज़बान और अन्दाज़े-बयान बहुत ही ख़ूबसूरत और दिल में उतरनेवाला है। इस तफ़सीर को अल्लाह की मेहरबानी से बड़ी मक़बूलियत हासिल हुई और इसके ज़रीए से क़ुरआन को समझने में बड़ी मदद मिली। इसके तर्जमे दूसरी बहुत-सी ज़बानों में किए गए, और तर्जमे का यह काम आज भी जारी है।

तफ़हीमुल-क़ुरआन की हिन्दी ज़बान में तलख़ीस (संक्षिप्त रूप) पहले ही दो हिस्सों में छप चुकी है।

ज़रूरत महसूस की गई कि तफ़हीमुल-क़ुरआन को भी हिन्दी में शाए किया जाए ताकि हिन्दी जाननेवाले लोगों तक क़ुरआन का पैग़ाम पहुँचाने में आसानी हो। अल्लाह का शुक्र है कि तफ़हीमुल-क़ुरआन के पहले हिस्से का तर्जमा मुकम्मल हो चुका है जो आपके हाथों में है। हमारी कोशिश रही है कि इसकी ज़बान बहुत ही आसान हो जो आम लोगों की समझ में आ सके। हम अपने इस मक़सद में कहाँ तक कामयाब हो सके हैं इसका फ़ैसला तो इसको पढ़नेवाले ही करेंगे। हमें आपके तास्सुरात और मशविरों का इन्तिज़ार रहेगा।

इस किताब में कुछ हाशिए ऐसे दिए गए हैं जो तफ़हीमुल-क़ुरआन (उर्दू) में नहीं हैं। ये हाशिए तर्जमा क़ुरआन मजीद मय मुख़्तसर हवाशी के हैं। उनकी अहमियतों को देखते हुए यहाँ बढ़ा दिए गए हैं।

इस तर्जमे को मुफ़ीद और बेहतर बनाने में हमें जनाब मुहम्मद इलियास हुसैन, कौसर लईक़, मुहम्मद शुऐब, ख़ालिद निज़ामी, मुहम्मद आबिद हामिदी और मुहम्मद जावेद की और इसकी सेटिंग वग़ैरा में एस. अरशद जमाल साहब की बड़ी मदद मिली। जनाब हाफ़िज़ मुहीयुद्दीन ख़ान साहब ने अरबी मतन पढ़ा है। हम इन सबके बेहद शुक्रगुज़ार हैं और अल्लाह से इनके लिए दुनिया व आख़िरत में भलाई की दुआ करते हैं।

इस्लामी साहित्य-ट्रस्ट (रजि.) इस्लामी तालीमात (शिक्षाओं) को हिन्दी ज़बान में शाए करने के काम में लगा हुआ है। यह मुबारक काम भी इस ट्रस्ट के ज़रीए पूरा हुआ; इसपर हम अपने परवरदिगार का शुक्र अदा करते हैं और उससे दुआ करते हैं कि इस नेक काम से ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को फ़ायदा पहुँचे और यह अपने रब के पैग़ाम को समझने में मददगार साबित हो।

हमारी कोशिश रही है कि इस किताब में प्रूफ़ वग़ैरा की कोई ग़लती न रहे; फिर भी अगर कोई ग़लती नज़र आए तो हमें ज़रूर बताएँ, हम आपके शुक्रगुज़ार होंगे।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही (सेक्रेट्री)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि.) दिल्ली

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

दीबाचा

क़ुरआन मजीद के तर्जमे और तफ़सीर पर हमारी ज़बान में अब तक इतना काम हो चुका है कि अब किसी शख़्स का सिर्फ़ बरकत और सआदत के लिए एक नया तर्जमा या एक नई तफ़सीर लिख देना वक़्त और मेहनत का कोई सही इस्तेमाल नहीं है। इस राह में कोई कोशिश अगर मुनासिब हो सकती है तो सिर्फ़ इस सूरत में जबकि आदमी किसी ऐसी कमी को पूरा कर रहा हो, जो पिछले तर्जमा करनेवालों और तफ़सीर लिखनेवालों के काम में रह गई हो या क़ुरआन के सीखने और समझने-वालों की किसी ऐसी ज़रूरत को पूरा करे जो पिछले तर्जमों और तफ़सीरों से पूरी न होती हो।

इन पन्नों में क़ुरआन की तर्जमानी और तफ़सीर की जो कोशिश की गई है वह असल में इसी बुनियाद पर है। मैं एक मुद्दत से महसूस कर रहा था कि हमारे आम तालीमयाफ़्ता लोगों में क़ुरआन की रूह तक पहुँचने और इस पाक किताब के हक़ीक़ी मक़सद से वाक़िफ़ होने की जो तलब और प्यास पैदा हो गई है और रोज़-ब-रोज़ बढ़ रही है वह तर्जमा और तफ़सीर करनेवालों की निहायत क़ीमती कोशिशों के बावजूद अभी भी बाक़ी है। इसके साथ मैं यह एहसास भी अपने अन्दर पा रहा था कि इस तलब और प्यास को बुझाने के लिए कुछ न कुछ ख़िदमत मैं भी कर सकता हूँ। इन्हीं दोनों बातों ने, जिन्हें मैं महसूस कर रहा था, मुझे इस कोशिश पर मजबूर किया जिसके फल और नतीजे पढ़नेवालों की ख़िदमत में पेश किए जा रहे हैं। अगर हक़ीक़त में मेरी यह मामूली पेशकश लोगों के लिए क़ुरआन को समझने में कुछ भी मददगार साबित हुई तो यह मेरी बहुत बड़ी ख़ुशक़िस्मती होगी।

इस काम में मेरे सामने उलमा और तहक़ीक़ी काम करनेवालों की ज़रूरतें नहीं हैं, और न उन लोगों की ज़रूरतें हैं, जो अरबी ज़बान और दीन का इल्म हासिल करने के बाद क़ुरआन मजीद का गहरा तहक़ीक़ी मुताला (अध्ययन) करना चाहते हैं। ऐसे लोगों की प्यास बुझाने के लिए बहुत कुछ सामान पहले से मौजूद है। मैं जिन लोगों की ख़िदमत करना चाहता हूँ वे दरम्यानी दरजे के तालीमयाफ़्ता लोग हैं, जो अरबी से अच्छी तरह

वाक़िफ़ नहीं हैं और क़ुरआन के उलूम के बड़े ज़ख़ीरे (भंडार) से फ़ायदा उठाना जिनके लिए मुमकिन नहीं है। उन्हीं की ज़रूरतों को मैंने सामने रखा है। इस वजह से क़ुरआन की तफ़सीर के सिलसिले की बहुत-सी बहसों और बातों को मैंने सिरे से हाथ ही नहीं लगाया, जो तफ़सीर के इल्म में बड़ी अहमियत रखती हैं, मगर इस तबक़े के लिए ग़ैर-ज़रूरी हैं। फिर जो मक़सद मैंने इस काम में अपने सामने रखा है वह यह है कि एक आम आदमी इस किताब को पढ़ते हुए क़ुरआन का मतलब और मक़सद बिलकुल साफ़-साफ़ समझता चला जाए और इससे वही असर क़बूल करे, जो क़ुरआन उस पर डालना चाहता है और मुताले के दौरान में जहाँ-जहाँ उसे उलझनें पेश आ सकती हों, वे साफ़ कर दी जाएँ और जहाँ कुछ सवाल उसके ज़ेहन में पैदा हों, उनका जवाब उसे फ़ौरन मिल जाए; यह मेरी कोशिश है। अब इस बात का फ़ैसला पढ़नेवाले लोग ही कर सकते हैं कि मैं इसमें कहाँ तक कामयाब हुआ हूँ। बहरहाल, यह आख़िरी बात नहीं है। हर पढ़नेवाले से मेरी दरख़ास्त है कि जहाँ कोई कमी महसूस हो या किसी सवाल का जवाब न मिले या मक़सद अच्छी तरह वाज़ेह न हो रहा हो, उससे मुझे बाख़बर किया जाए; ताकि मैं इस ख़िदमत को ज़्यादा से ज़्यादा मुफ़ीद बना सकूँ। उलमा-ए-किराम से भी मैं गुज़ारिश करता हूँ कि मुझे मेरी ग़लतियों से आगाह फ़रमाएँ।

कुछ बातें तर्जमानी और तफ़हीम के बारे में भी

मैंने इस किताब में तर्जमे का तरीक़ा छोड़कर आज़ाद तर्जमानी का तरीक़ा अपनाया है। इसकी वजह यह नहीं है कि मैं लफ़्ज़ की पाबन्दी के साथ क़ुरआन मजीद का तर्जमा करने को ग़लत समझता हूँ, बल्कि इसकी असल वजह यह है कि जहाँ तक क़ुरआन के तर्जमे का ताल्लुक़ है यह ख़िदमत इससे पहले कई बुज़ुर्ग बेहतरीन तरीक़े पर अंजाम दे चुके हैं और इस राह में अब किसी और कोशिश की ज़रूरत बाक़ी नहीं रही है। फ़ारसी में हज़रत शाह वलीउल्लाह साहब का तर्जमा और उर्दू में शाह अब्दुल-क़ादिर साहब, शाह रफ़ीउद्दीन साहब, मौलाना महमूदुल-हसन साहब, मौलाना अशरफ़ अली साहब और हाफ़िज़ फ़तूह मुहम्मद साहब 'जालन्धरी' के तर्जमे उन मक़सदों को बख़ूबी पूरा कर देते हैं, जिनके लिए एक लफ़्ज़ी तर्जमा दरकार होता है; लेकिन कुछ ज़रूरतें ऐसी हैं जो लफ़्ज़ी तर्जमे से पूरी नहीं होतीं और न ही हो सकतीं। उन्हीं को मैंने तर्जमानी के ज़रीए से पूरी करने की कोशिश की है।

लफ़्ज़ी तर्जमे का असल फ़ायदा यह है कि आदमी को क़ुरआन के हर-हर लफ़्ज़ का

मतलब मालूम हो जाता है और वह हर आयत के नीचे उसका तर्जमा पढ़कर जान लेता है कि इस आयत में यह कुछ कहा गया है; लेकिन इस फ़ायदे के साथ इस तरीक़े में कई पहलू कमी के भी हैं, जिनकी वजह से अरबी न जाननेवाला एक शख़्स क़ुरआन मजीद से अच्छी तरह फ़ायदा नहीं उठा सकता।

पहली चीज़ जो एक लफ़्ज़ी तर्जमे को पढ़ते वक़्त महसूस होती है वह इबारत की रवानी, बयान का ज़ोर, ज़बान की उम्दगी और कलाम के असर का न होना है। क़ुरआन की लाइनों के नीचे आदमी को एक ऐसी बेजान इबारत मिलती है जिसे पढ़कर न उसकी रूह मौज में आती है, न उसके रोंगटे खड़े होते हैं, न उसकी आँखों से आँसू जारी होते हैं, न उसके जज़्बात में तूफ़ान आता है, न उसे यह महसूस होता है कि कोई चीज़ अक़्ल और फ़िक्र को अपने क़ाबू में करती हुई दिल और जिगर तक उतरती चली जा रही है। इस तरह का कोई असर पैदा होना तो दूर, तर्जमे को पढ़ते वक़्त तो कभी-कभी आदमी यह सोचता रह जाता है कि क्या वाक़ई यही वह किताब है जिसकी मिसाल लाने के लिए दुनिया भर को चैलेंज दिया गया था? इसकी वजह यह है कि लफ़्ज़ी तर्जमे की छलनी सिर्फ़ दवा के सूखे हिस्से ही को अपने अन्दर से गुज़रने देती है। रही अदब (साहित्य) की वह तेज़ और तुन्द स्प्रिट जो क़ुरआन की असल इबारत में भरी हुई है, उसका कोई हिस्सा तर्जमे में शामिल नहीं होने पाता। वह इस छलनी के ऊपर ही से उड़ जाती है। हालाँकि क़ुरआन के असरदार होने में उसकी पाकीज़ा तालीम और उसके बुलन्द और क़ीमती मज़मूनों का जितना हिस्सा है, उसके अदब का हिस्सा भी उससे कुछ कम नहीं है। यही तो वह चीज़ है, जो सख़्त से सख़्त दिल आदमी का दिल भी पिघला देती थी; जिसने बिजली के कड़के की तरह अरब की सारी ज़मीन हिला दी थी; जिसके असर की ताक़त का लोहा उसके सख़्त से सख़्त मुख़ालिफ़ तक मानते थे और डरते थे कि जादू असर कलाम जो सुनेगा, वह आख़िरकार अपना दिल हार बैठेगा। यह चीज़ अगर क़ुरआन में न होती और वह उसी तरह की ज़बान में नाज़िल हुआ होता, जैसी उसके तर्जमों में हमको मिलती है तो अरब के लोगों के दिलों को गरमाने और नरमाने में उसे हरगिज़ वह कामयाबी न हासिल हो सकती थी, जो हक़ीक़त में उसे हासिल हुई।

लफ़्ज़ी तर्जमों से तबीअतों के पूरी तरह मुतास्सिर न हो सकने की एक वजह यह भी है कि तर्जमे आम तौर पर लाइनों के नीचे दिए जाते हैं या नए अन्दाज़ के मुताबिक़ पन्ने को दो हिस्सों में बाँटकर एक तरफ़ अल्लाह का कलाम और दूसरी तरफ़ तर्जमा लिखा जाता है। यह तरीक़ा उस मक़सद के लिए बिलकुल मुनासिब है, जिसके लिए

आदमी लफ़्ज़ी तर्जमा पढ़ता है; क्योंकि इस तरह हर लफ़्ज़ और हर आयत के मुक़ाबले में उसका तर्जमा मिलता जाता है। लेकिन इसका नुक़सान यह है कि एक आदमी जिस तरह दूसरी किताबों को पढ़ता और उनसे असर क़बूल करता है, उस तरह वह क़ुरआन के तर्जमे को न तो लगातार पढ़ सकता है और न उससे असर क़बूल कर सकता है; क्योंकि बार-बार एक अजनबी ज़बान की इबारत उसके मुताले की राह में हायल होती रहती है। अंग्रेज़ी तर्जमों में इससे भी ज़्यादा बेअसरी पैदा करने का एक सबब यह है कि बाइबल के तर्जमे की पैरवी में क़ुरआन की हर आयत का तर्जमा अलग-अलग नम्बरवार दर्ज किया जाता है। आप किसी बेहतर से बेहतर मज़मून को लेकर ज़रा उसके जुमले-जुमले को अलग कर दीजिए और ऊपर-नीचे नम्बरवार लिखकर उसे पढ़िए, आपको ख़ुद महसूस हो जाएगा कि आपस में मिली हुई और मुसलसल इबारत से जो असर आपके ज़ेहन पर पड़ता था, उससे आधा असर भी इन जुदा-जुदा जुमलों के पढ़ने से नहीं पड़ता।

एक और वजह और बड़ी अहम वजह लफ़्ज़ी तर्जमे के असरदार न होने की यह है कि क़ुरआन के बयान का अन्दाज़ तहरीरी नहीं, बल्कि तक़रीरी है। अगर उसको तर्जमा करते वक़्त तक़रीर की ज़बान को तहरीर की ज़बान में तब्दील न किया जाए और ज्यों का त्यों उसका तर्जमा कर डाला जाए तो सारी इबारत बेरब्त और बेताल्लुक़ होकर रह जाती है। यह तो सबको मालूम है कि क़ुरआन मजीद शुरू में लिखे हुए किताबचे की शक्ल में शाया नहीं किया गया था, बल्कि इस्लामी दावत के सिलसिले में मौक़ा और ज़रूरत के लिहाज़ से एक तक़रीर नबी (सल्ल॰) पर उतारी जाती थी और आप उसे एक ख़ुतबे की शक्ल में लोगों को सुनाते थे।तक़रीर की ज़बान और तहरीर की ज़बान में फ़ितरी तौर पर बहुत बड़ा फ़र्क़ होता है। मिसाल के तौर पर तहरीर में एक शुब्हे को बयान करके उसे दूर किया जाता है। मगर तक़रीर में शुब्हा करनेवाले ख़ुद सामने मौजूद होते हैं, इसलिए कभी यह कहने की ज़रूरत ही पेश नहीं आती कि 'लोग ऐसा कहते हैं', बल्कि तक़रीर करनेवाला अपनी तक़रीर ही में एक जुमला ऐसा कह जाता है, जो उनके शुब्हे का जवाब होता है। तहरीर में ऊपर से चली आ रही बात के सिलसिले से अलग, मगर उससे क़रीबी ताल्लुक़ रखनेवाली कोई बात कहनी हो तो उसको जुमला-ए-मोतरज़ा (यानी मौक़े और संदर्भ से हटकर कही गई बात) के तौर पर किसी न किसी तरह इबारत से जुदा करके लिखा जाता है, ताकि कलाम का रब्त टूटने न पाए। लेकिन तक़रीर में सिर्फ़ लहजा और तक़रीर का अन्दाज़ बदलकर तक़रीर करनेवाला एक शख़्स बड़े-बड़े और कई-कई जुमला-ए-मोतरज़ा बोलता चला जाता है और कोई बेरब्ती महसूस

नहीं होती। तहरीर में बयान का ताल्लुक़ माहौल से जोड़ने के लिए अलफ़ाज़ से काम लेना पड़ता है, लेकिन तक़रीर में माहौल ख़ुद ही बयान से अपना ताल्लुक़ जोड़ लेता है और माहौल की तरफ़ इशारा किए बग़ैर जो बातें कही जाती हैं, उनके बीच कोई ख़ला महसूस नहीं होता। तक़रीर में बात कहनेवाला और वह लफ़्ज़ जिससे बात कही जा रही है बार-बार बदलते हैं। तक़रीर करनेवाला अपनी तक़रीर के जोश और रवानी में मौक़े के लिहाज़ से कभी एक ही गरोह का ज़िक्र इस तरह करता है, जैसे वह गरोह सामने मौजूद न होकर कहीं और है और कभी उसे अपने सामने समझकर सीधे तौर पर उससे बात करता है; कभी वाहिद का सेग़ा (एकवचन), कभी जमा के सेग़े (बहुवचन) इस्तेमाल करने लगता है; कभी बात कहनेवाला वह ख़ुद होता है, कभी किसी गरोह की तरफ़ से बोलता है; कभी किसी ऊपरी ताक़त की नुमाइन्दगी करने लगता है और कभी वह ऊपरी ताक़त ख़ुद उसकी ज़बान से बोलने लगती है। तक़रीर में यह चीज़ एक हुस्न पैदा करती है, मगर तहरीर में आकर यही चीज़ बेजोड़ हो जाती है। यही वजहें हैं कि जब किसी तक़रीर को तहरीर की शक्ल में लाया जाता है, तो उसको पढ़ते वक़्त आदमी लाज़िमी तौर पर एक तरह की बेरब्ती महसूस करता है। यह एहसास उतना ही बढ़ता जाता है जितना असल तक़रीर के हालात और माहौल से आदमी दूर होता जाता है। ख़ुद अरबी क़ुरआन में भी नावाक़िफ़ लोग जिस बेरब्ती की शिकायत करते हैं उसकी असलियत यही है। वहाँ तो उसको दूर करने के लिए इसके सिवा चारा नहीं है कि तफ़सीरी हाशियों के ज़रीए से कलाम के रब्त को वाज़ेह किया जाए; क्योंकि क़ुरआन की असल इबारत में कोई कमी-बेशी करना हराम है। लेकिन किसी दूसरी ज़बान में क़ुरआन की तर्जमानी करते हुए अगर तक़रीर की ज़बान को एहतियात के साथ तहरीर की ज़बान में तब्दील कर लिया जाए तो बड़ी आसानी के साथ यह बेरब्ती दूर हो सकती है।

इसके अलावा, जैसा कि मैं इशारे के तौर पर कह चुका हूँ, क़ुरआन मजीद की हर सूरत असल में एक तक़रीर थी, जो इस्लामी दावत के किसी मरहले में एक ख़ास मौक़े पर उतरी थी। उसका एक ख़ास पसमंज़र और मौक़ा होता था। कुछ ख़ास हालात उसका तक़ाज़ा करते थे और कुछ ज़रूरतें होती थीं, जिन्हें पूरा करने के लिए वह उतरती थी। अपने उस पसमंज़र और उतरने की अपनी वजह के साथ क़ुरआन की इन सूरतों का ताल्लुक़ इतना गहरा है कि अगर इससे अलग करके सिर्फ़ अलफ़ाज़ का तर्जमा आदमी के सामने रख दिया जाए, तो बहुत-सी बातों को वह बिलकुल नहीं समझेगा और कुछ बातों को उल्टा समझ जाएगा और क़ुरआन का पूरा मक़सद तो शायद कहीं उसकी पकड़

में आएगा ही नहीं। अरबी क़ुरआन के मामले में इस मुश्किल को दूर करने के लिए तफ़सीर से मदद लेनी पड़ती है; क्योंकि असूल क़ुरआन में किसी चीज़ का इज़ाफ़ा नहीं किया जा सकता। लेकिन दूसरी ज़बान में हम इतनी आज़ादी बरत सकते हैं कि क़ुरआन की तर्जमानी करते वक़्त कलाम को किसी न किसी हद तक उसके पसमंज़र और उसके उतरने के हालात के साथ जोड़ते चले जाएँ, ताकि पढ़नेवालों के लिए वह पूरी तरह बामानी हो सके।

फिर एक बात यह भी है कि क़ुरआन हालाँकि वाज़ेह अरबी में उतरा है, लेकिन इसके साथ वह अपनी एक ख़ास इस्तिलाही (पारिभाषिक) ज़बान भी रखता है। उसने बहुत-से अलफ़ाज़ को उनके असूल लुग़वी (शाब्दिक) मानी से हटाकर एक ख़ास मानी में इस्तेमाल किया है और बहुत-से अलफ़ाज़ ऐसे हैं जिनको वह मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर मुख़्तलिफ़ मानी में इस्तेमाल करता है। लफ़्ज़ की पाबन्दी के साथ जो तर्जमे किए जाते हैं उनमें इस इस्तिलाही ज़बान का लिहाज़ रखना बहुत मुश्किल है और इसका लिहाज़ न रखने से कभी-कभी लोग तरह-तरह की उलझनों और ग़लतफ़हमियों में पड़ जाते हैं। मिसाल के तौर पर एक लफ़्ज़ कुफ़्र को लीजिए, जो क़ुरआन की इस्तिलाह में असूल अरबी लुग़त (शब्दकोश) और हमारे फ़ुक़हा और मुतकल्लिमीन (मज़हबी बातें अक़्ली दलीलों से साबित करनेवाले) की इस्तलाह दोनों से मुख़्तलिफ़ मानी रखता है और फिर ख़ुद क़ुरआन में भी हर जगह एक ही मानी में इस्तेमाल नहीं हुआ है। कहीं इससे मुराद मुकम्मल ग़ैर-ईमानी हालत है; कहीं यह सिर्फ़ इनकार के मानी में आया है। कहीं इससे सिर्फ़ नाशुक्री और एहसान फ़रामोशी मुराद ली गई है; कहीं ईमान के तक़ाज़ों में से किसी को पूरा न करने को कुफ़्र कहा गया है; कहीं अक़ीदे के इक़रार मगर मामूली इनकार या नाफ़रमानी के लिए यह लफ़्ज़ बोला गया है; कहीं ज़ाहिरी इताअत मगर बातिनी तौर पर अक़ीदा न रखने को कुफ़्र कहा गया है। इन अलग-अलग मौक़ों पर अगर हम हर ज़गह कुफ़्र का तर्जमा कुफ़्र ही करते चले जाएँ या और किसी लफ़्ज़ के इस्तेमाल की पाबन्दी कर लें, तो बिला शुब्हा तर्जमा अपनी जगह सही होगा, लेकिन पढ़नेवाले लोग कहीं मतलब से महरूम रह जाएँगे, कहीं किसी ग़लतफ़हमी के शिकार होंगे और कहीं उलझन और बेचैनी में पड़ जाएँगे।

लफ़्ज़ी तर्जमे के तरीक़े में कमी और ख़ामी के यही वे पहलू हैं जिनको दूर करने के लिए मैंने 'तर्जमानी' का ढंग इख़्तियार किया है। मैंने इसमें क़ुरआन के अलफ़ाज़ को उर्दू का जामा पहनाने के बजाय यह कोशिश की है कि क़ुरआन की एक इबारत को पढ़कर

जो मतलब मेरी समझ में आता है और जो असर मेरे दिल पर पड़ता है उसे मुमकिन हद तक ठीक-ठीक अपनी ज़बान में पेश कर दूँ। बयान के अन्दाज़ में तर्जमापन न हो, वाज़ेह अरबी की तर्जमानी वाज़ेह उर्दू में हो, तक़रीर का रब्त फ़ितरी तरीक़े से तहरीर की ज़बान में ज़ाहिर हो और अल्लाह के कलाम का मतलब और मक़सद साफ़-साफ़ वाज़ेह होने के साथ उसका शाहाना वक़ार और ज़ोरे-बयान भी, जहाँ तक बस चले, उसकी झलक तर्जमानी में दिखाई दे। इस तरह के आज़ाद तर्जमे के लिए यह तो बहरहाल ज़रूरी था कि लफ़्ज़ी पाबन्दियों से निकलकर मतलब और मानी को अदा करने की जुर्रत की जाए; लेकिन मामला अल्लाह के कलाम का था, इसलिए मैंने बहुत डरते-डरते ही यह आज़ादी बरती है। जिस हद तक एहतियात मेरे बस में थी, उसका लिहाज़ रखते हुए मैंने इस बात की पूरी पाबन्दी की है और पूरा लिहाज़ रखा है कि क़ुरआन की अपनी इबारत बयान की जितनी आज़ादी की गुंजाइश देती है, उससे आगे न बढ़ा जाए।

फिर चूँकि क़ुरआन को पूरी तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि उसके इरशादों का पसमंज़र भी आदमी के सामने हो, और यह चीज़ तर्जमानी में पूरी तरह नुमायाँ नहीं की जा सकती थी, इसलिए मैंने हर सूरा के आग़ाज़ में एक दीबाचा (परिचय) लिख दिया है, जिसमें अपनी हद तक पूरी तहक़ीक़ करके यह दिखाने की कोशिश की है कि वह सूरा किस ज़माने में उतरी; उस वक़्त क्या हालात थे; इस्लाम की तहरीक किस मरहले में थी; क्या उसकी ज़रूरतें थीं और क्या मसाइल उस वक़्त सामने थे। साथ ही, जहाँ कहीं किसी ख़ास आयत या आयतों के मजमूए के उतरने की कोई अलग वजह है, वहाँ मैंने उसे हाशिए में बयान कर दिया है।

हाशियों में मेरी बड़ी कोशिश यह रही है कि कोई ऐसी बहस न छेड़ी जाए जो आदमी की तवज्जोह और ध्यान क़ुरआन से हटाकर किसी दूसरी चीज़ की तरफ़ फेर दे। जितने हाशिए भी मैंने लिखे हैं, दो ही तरह की जगहों पर लिखे हैं। एक वह जहाँ मुझे महसूस हुआ कि एक आम आदमी इस जगह इसका मतलब जानना चाहेगा या उसके ज़ेहन में कोई सवाल पैदा होगा या वह किसी शुब्हे में पड़ जाएगा। दूसरे वह जहाँ मुझे अन्देशा हुआ कि पढ़नेवाला इस जगह से सरसरी तौर पर गुज़र जाएगा और क़ुरआन के इरशाद की असूल रूह उसपर वाज़ेह न होगी।

जो लोग इस किताब से पूरा फ़ायदा उठाना चाहें उनको मैं मशवरा दूँगा कि पहले हर सूरा के दीबाचे (परिचय) को ग़ौर से पढ़ लिया करें और जब तक वह सूरा उनके मुताले में रहे वक़्त-वक़्त पर उसके दीबाचे पर नज़र डालते रहें। फिर रोज़ाना क़ुरआन

मजीद का जितना हिस्सा वे आम तौर पर पढ़ते हों, उसकी एक-एक आयत का लफ़्ज़ी तर्जमा पहले पढ़ लें। इस मक़सद के लिए फ़ारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी तर्जमों में से जिसको वे चाहें पढ़ सकते हैं। इसके बाद *तफ़हीमुल-क़ुरआन* की तर्जमानी को हाशियों की तरफ़ ध्यान दिए बग़ैर लगातार एक इबारत के तौर पर पढ़ें, ताकि क़ुरआन के इस हिस्से का पूरा मज़मून एक साथ उनके सामने आ जाए। फिर एक-एक आयत को तफ़सील के साथ समझने के लिए हाशियों को पढ़ें। इस तरह पढ़ने से मुझे उम्मीद है, एक आम पढ़नेवाले को क़ुरआन मजीद की आलिमों की-सी जानकारी न सही, आम लोगों की-सी जानकारी, अगर अल्लाह ने चाहा, तो बख़ूबी हासिल हो जाएगी।

☆☆☆

इस किताब को मैंने मुहर्रम सन् 1361 हिजरी (फ़रवरी 1942 ई॰) में शुरू किया था। पाँच साल से ज़्यादा मुद्दत तक इसका सिलसिला जारी रहा, यहाँ तक कि सूरा-12 यूसुफ़ के आख़िर तक तर्जमानी और तफ़हीम तैयार हो गई। इसके बाद लगातार ऐसी वजहें सामने आती चली गईं कि मुझे न तो आगे कुछ लिखने का मौक़ा मिल सका और न इतनी फ़ुरसत ही मिल सकी कि जितना काम हो चुका था, उसी को नज़रसानी करके इस क़ाबिल बना सकता कि किताबी शक्ल में शाया हो सके। अब इसे अच्छा इत्तिफ़ाक़ कहिए या बुरा इत्तिफ़ाक़ कि अक्तूबर 1948 ई॰ में अचानक मुझे पब्लिक सेफ़्टी एक्ट के तहत गिरफ़्तार करके जेल भेज दिया गया और यहाँ मुझको वह फ़ुरसत हासिल हो गई, जो इस किताब को प्रेस में जाने के क़ाबिल बनाने के लिए चाहिए थी। मैं ख़ुदा से दुआ करता हूँ कि जिस मक़सद के लिए मैंने यह मेहनत की है वह पूरा हो और यह किताब क़ुरआन मजीद के समझने में ख़ुदा के बन्दों के लिए वाक़ई कुछ मददगार साबित हो सके। वमा तौफ़ीक़ी इल्ला बिल्ला हिल अलीइल अज़ीम। (बुलन्द और बरतर अल्लाह की तौफ़ीक़ ही से यह काम हो सका।)

— अबुल आला

न्यू सेंट्रल जेल, मुलतान
17 ज़ीक़ादा, सन् 1368 हिजरी
(11 सितम्बर, 1949 ई॰)

मुक़द्दिमा

इन गुज़ारिशों के उनवान में लफ़्ज़ मुक़द्दिमा (भूमिका) देखकर किसी को यह ग़लतफ़हमी न हो कि मैं क़ुरआन की भूमिका लिख रहा हूँ। यह क़ुरआन की नहीं *तफ़हीमुल-क़ुरआन* की भूमिका है और मेरे सामने इसको लिखने के दो मक़सद हैं–

एक यह कि क़ुरआन को पढ़ने से पहले पढ़नेवाला एक आम आदमी उन बातों से अच्छी तरह वाक़िफ़ हो जाए, जिनको शुरू ही में समझ लेने से क़ुरआन को समझने का रास्ता आसान हो जाता है; वरना ये बातें पढ़ने के दौरान में बार-बार खटकती हैं और कई बार सिर्फ़ इनको न समझने की वजह से आदमी सालों तक क़ुरआन की मानी की सतह ही पर घूमता रहता है, गहराई में उतरने का उसे रास्ता नहीं मिलता।

दूसरा यह कि उन सवालों का जवाब पहले ही दे दिया जाए, जो क़ुरआन को समझने की कोशिश करते वक़्त आम तौर से लोगों के ज़ेहन में पैदा हुआ करते हैं। मैं इस भूमिका में सिर्फ़ उन सवालों का जवाब दूँगा, जो ख़ुद मेरे ज़ेहन में शुरू-शुरू में पैदा हुए थे या जिनसे बाद में मेरा वास्ता पड़ा। इनके अलावा अगर कुछ और सवाल भी जवाब देने के लिए बाक़ी रह गए हों, तो उनसे मुझे बाख़बर किया जाए; उनका जवाब अगर अल्लाह ने चाहा तो अगले एडिशन में इस भूमिका में शामिल कर दिया जाएगा।

क़ुरआन का अन्दाज़े-बयान और बात करने का तरीक़ा

आम तौर पर हम जिन किताबों के पढ़ने के आदी हैं, उनमें एक तयशुदा मौज़ूअ (विषय) पर मालूमात, ख़यालात और दलीलों को लिखने की एक ख़ास तरतीब के साथ लगातार बयान किया जाता है। इसी वजह से जब एक ऐसा आदमी जो क़ुरआन से अभी तक अजनबी रहा है पहली बार इस किताब को पढ़ने का इरादा करता है, तो वह यह उम्मीद लिए हुए आगे बढ़ता है कि 'किताब' होने की हैसियत से इसमें भी आम किताबों की तरह पहले मौज़ूअ (विषय) तय होगा, फिर असूल मज़मून को अबवाब (अध्यायों) और फ़सलों (खण्डों) में बाँटकर एक तरतीब के साथ एक-एक पहलू पर बात की जाएगी, और इसी तरह ज़िन्दगी के एक-एक पहलू को भी अलग-अलग लेकर उसके बारे में अहकाम और हिदायतें सिलसिले के साथ लिखी होंगी; लेकिन जब वह किताब

खोलकर पढ़ना शुरू करता है, तो यहाँ उसे अपनी उम्मीद के बिलकुल ख़िलाफ़ एक दूसरे ही अन्दाज़े-बयान से वास्ता पड़ता है, जिससे वह अब तक बिलकुल नावाक़िफ़ था। यहाँ वह देखता है कि अक़ीदे के बारे में बातें, अख़लाक़ी हिदायतें, शरई हुक्म (धर्म-विधान सम्बन्धी आदेश), पैग़ाम और नसीहत, इबरत (शिक्षा-सामग्री), तनक़ीद (आलोचना), मलामत, डरावा, ख़ुशख़बरी, तसल्ली, दलीलें, गवाहियाँ, तारीख़ी क़िस्से, कायनात में फैली निशानियों की तरफ़ इशारे बार-बार एक दूसरे के बाद आ रहे हैं। एक ही मज़मून और बात मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से मुख़्तलिफ़ अलफ़ाज़ में दोहराई जा रही है। एक मज़मून के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा अचानक शुरू हो जाता है, बल्कि एक मज़मून के बीच में दूसरा मज़मून एकाएक आ जाता है; जिससे बात कही जा रही है वह और बात कहनेवाला बार-बार बदलते हैं और बात का रुख़ रह-रहकर मुख़्तलिफ़ सिम्तों में फिरता है; बाबों और फ़सलों की तक़सीम का कहीं निशान नहीं; तारीख़ (इतिहास) है तो तारीख़ लिखने के अन्दाज़ में नहीं; फ़लसफ़ा (दर्शन) और फ़ितरत से परे की बातें हैं, तो मंतिक़ (तर्क) और फ़लसफ़े की ज़बान में नहीं; इनसान और मादूदी चीज़ों का बयान है, तो भौतिक विज्ञान के तरीक़े पर नहीं; तमद्दुन (सभ्यता) व सियासत और मईशत (अर्थ) व सामाजिकता की बातें हैं, तो सामाजिक विज्ञान के तरीक़े पर नहीं; क़ानून और उसके हुक्मों का बयान है, तो क़ानूनदानों के ढंग से बिलकुल अलग; अख़लाक़ की तालीम है, तो अख़लाक़ के फ़लसफ़े के पूरे लिट्रेचर से उसका अन्दाज़ जुदा—यह सब कुछ 'किताब' के बारे में अपने पिछले तसव्वुर के ख़िलाफ़ पाकर आदमी परेशान हो जाता है। उसे ऐसा महसूस होने लगता है कि यह एक बिखरा हुआ कलाम है जिसमें न कोई तरतीब है और न कोई आपसी रब्त, जो शुरू से लेकर आख़िर तक बेशुमार छोटे-बड़े मुख़्तलिफ़ बोलों पर सम्मिलित है, मगर जिसे मुसलसल इबारत की शक्ल में लिख दिया गया है। मुख़ालिफ़ाना नज़रिए से देखनेवाला इसी पर तरह-तरह के एतिराज़ और शक व शुब्हों की बुनियाद रख देता है और हिमायती नज़रिया रखनेवाला कभी मानी की तरफ़ से आँखें बन्द करके शक और शुब्हों से बचने की कोशिश करता है। कभी इस ज़ाहिरी बेतरतीबी की कुछ वजहें बताकर अपने दिल को समझा लेता है, कभी बनावटी तरीक़े से रब्त और ताल्लुक़ तलाश करके अजीब-अजीब नतीजे निकालता है और कभी इस उसूल को क़बूल कर लेता है कि क़ुरआन में छोटे-छोटे टुकड़ों में आज़ादाना तौर पर बात कही गई है, जिसकी वजह से हर आयत अपने मौक़े (सन्दर्भ) से अलग होकर ऐसे मानी का मजमूआ बन जाती है, जो कहनेवाले के मक़सद के ख़िलाफ़ होती है। फिर एक किताब को अच्छी

तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि पढ़नेवाले को उसका मौज़ूअ (विषय) मालूम हो। उसके मक़सद और मंशा और उसके मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) का इल्म हो; उसके अन्दाज़े-बयान की जानकारी हो; उसकी इस्तिलाही ज़बान और उसके ख़यालात बयान करने के ख़ास तरीक़े से वाक़फ़ियत हो और उसके बयान अपनी ज़ाहिरी इबारत के पीछे जिन हालात और मामलों से ताल्लुक़ रखते हों, वे भी नज़रों के सामने रहें। आम तौर पर जो किताबें हम पढ़ते हैं, उनमें ये चीज़ें आसानी से मिल जाती हैं। इसलिए उनके मज़मूनों की तह तक पहुँचने में हमें कोई बड़ी परेशानी नहीं होती। मगर क़ुरआन में यह उस तरह नहीं मिलती जिस तरह हम दूसरी किताबों में उन्हें पाने के आदी रहे हैं। इसलिए किताब पढ़नेवाले एक आम आदमी की-सी ज़ेहनियत लेकर जब हममें का कोई आदमी क़ुरआन का मुताला शुरू करता है, तो उसे किताब के मौज़ूअ, मक़सद और मर्कज़ी मज़मून का पता नहीं मिलता, उसका अन्दाज़े-बयान और उसके ख़यालात, बयान करने का तरीक़ा उसे कुछ अजनबी-सा जान पड़ता है और बहुत-सी जगहों पर उसकी इबारतों और जुमलों का मौक़ा व महल भी उसकी निगाहों से ओझल रहता है। नतीजा यह होता है कि अलग-अलग आयतों में हिकमत के जो मोती बिखरे हुए हैं, उनसे कम या ज़्यादा फ़ायदा उठाने के बावजूद एक आदमी अल्लाह के कलाम की असली रूह तक पहुँचने से महरूम रह जाता है और किताब का इल्म हासिल करने के बजाय उसको किताब की सिर्फ़ कुछ बिखरी बातों और फ़ायदों पर ही बस कर लेना पड़ता है; बल्कि ज़्यादातर लोग जो क़ुरआन का मुताला करके शक और शुब्हों के शिकार हो जाते हैं, उनके भटकने की एक वजह यह भी है कि किताब को समझने की इन ज़रूरी शुरुआती बातों से नावाक़िफ़ रहते हुए जब वे क़ुरआन को पढ़ते हैं तो उसके पन्नों पर मुख़्तलिफ़ मज़मून उन्हें बिखरे हुए नज़र आते हैं; बहुत-सी आयतों का मतलब उनपर नहीं खुलता; बहुत-सी आयतों को देखते हैं कि अपने आपमें हिकमत के नूर से जगमगा रही हैं, मगर इबारत के मौक़ा और महल में बिलकुल बेजोड़ महसूस होती हैं। बहुत-सी जगहों पर मतलब समझने और बयान के तरीक़े से नावाक़िफ़ होना उन्हें असली मतलब से हटाकर किसी और ही तरफ़ ले जाता है। और अकसर मौक़ों पर पसमंज़र (पृष्ठभूमि) का सही इल्म न होने से भारी ग़लतफ़हमियाँ पैदा हो जाती हैं।

क़ुरआन किस तरह की किताब है? इसके उतरने की कैफ़ियत और इसकी तरतीब की शक्ल क्या है? इसकी बात और मौज़ूअ क्या है? इसकी सारी बहस किस मक़सद के लिए है? किस मर्कज़ी मज़मून के साथ इसके ये बेशुमार और अलग-अलग तरह के

मज़मून ताल्लुक़ रखते हैं? दलील का ढंग और बयान का क्या तरीक़ा इसने अपने मक़सद के लिए इख़्तियार किया है, ये और ऐसे ही कुछ दूसरे ज़रूरी सवाल हैं जिनका जवाब साफ़ और सीधे तरीक़े से अगर आदमी को शुरू में ही मिल जाए तो वह बहुत-से ख़तरों से बच सकता है और उसके लिए सोचने-समझने और ग़ौर करने की राहें खुल सकती हैं। जो आदमी क़ुरआन में किताबी तरतीब तलाश करता है, वहाँ उसे न पाकर किताब के पन्नों में भटकने लगता है। उसकी परेशानी की असल वजह यही है कि वह क़ुरआन के मुताले की इन शुरुआती बातों से नावाक़िफ़ होता है। वह इस गुमान के साथ मुताला शुरू करता है कि वह मज़हब के मौज़ूअ पर एक 'किताब' पढ़ने चला है। 'मज़हब का मौज़ूअ' और 'किताब', इन दोनों का तसव्वुर उसके ज़ेहन में वही होता है, जो आम तौर से 'मज़हब' और 'किताब' के बारे में ज़ेहनों में पाया जाता है। मगर जब वहाँ उसे अपनी ज़ेहनी तसव्वुर से बिलकुल ही अलग एक चीज़ मिलती है, तो वह अपने अन्दर उसके लिए दिलचस्पी पैदा नहीं कर पाता और मज़मून का सिरा हाथ न आने की वजह से लाइनों में इस तरह भटकना शुरू कर देता है जैसे वह एक अजनबी मुसाफ़िर है, जो किसी नए शहर की गलियों में खो गया है। उसे इस तरह के भटकाव और गुम होने से बचाया जा सकता है, अगर उसे पहले ही यह बता दिया जाए कि जिस किताब को पढ़ने जा रहा है, वह पूरी दुनिया के लिट्रेचर में अपनी तरह की एक ही किताब है। यह किताब दुनिया की सारी किताबों से बिलकुल अलग तरीक़े पर तैयार हुई है, अपने मौज़ूअ, मज़मून और तरतीब के लिहाज़ से भी यह एक निराली चीज़ है, इसलिए तुम्हारे ज़ेहन का वह 'किताबी' साँचा जो अब तक के किताबें पढ़ने से बना है, इस किताब के समझने में तुम्हारी मदद न करेगा, बल्कि उल्टा रुकावट डालेगा। इसे समझना चाहते हो तो अपने पहले से बने हुए गुमानों और अटकलों को दिमाग़ से निकालकर इसकी अनोखी ख़ुसूसियतों से वाक़फ़ियत हासिल करो।

इस सिलसिले में सबसे पहले आदमी को क़ुरआन की हक़ीक़त से वाक़िफ़ हो जाना चाहिए। वह चाहे उसपर ईमान लाए या न लाए, मगर इस किताब को समझने के लिए उसे शुरुआती नुक्ते के तौर पर इसकी वही हक़ीक़त माननी होगी, जो ख़ुद इसने और इसके पेश करनेवाले (मुहम्मद सल्ल॰) ने बताई है और वह यह है —

1. सारे जहान के ख़ुदा ने जो सारी कायनात का पैदा करनेवाला, मालिक और हाकिम है, अपनी निहायत फैली हुई सल्तनत के इस हिस्से में जिसे ज़मीन कहते हैं, इनसान को पैदा किया; उसे जानने और सोचने-समझने की क़ुव्वतें दीं। भले और बुरे में फ़र्क़

करने की सलाहियत दी। चुनाव और इरादे की आज़ादी दी। चीज़ों के इस्तेमाल के इख़्तियार दिए और बड़ी हद तक एक तरह की .ख़ुद इख़्तियारी (स्वाधिकार, Autonomy) देकर उसे ज़मीन में अपना .ख़लीफ़ा (नायब, प्रतिनिधि) बनाया।

2. इस मनसब और ज़िम्मेदारी पर इनसान को मुक़र्रर करते वक़्त सारे जहान के .ख़ुदा ने अच्छी तरह उसके कान खोलकर यह बात उसके दिमाग़ में डाल थी कि तुम्हारा और तमाम जहान का मालिक, इबादत के लायक़ और हाकिम मैं हूँ। मेरी इस सल्तनत में न तुम .ख़ुदमुख़्तार हो, न किसी दूसरे के बन्दे हो और न मेरे सिवा कोई तुम्हारी इताअत व बन्दगी और इबादत का हक़दार है। दुनिया की यह ज़िन्दगी, जिसमें तुम्हें इख़्तियार देकर भेजा जा रहा है, असल में तुम्हारे लिए एक इम्तिहान की मुद्दत है, जिसके बाद तुम्हें मेरे पास वापस आना होगा और मैं तुम्हारे काम की जाँच करके फ़ैसला करूँगा कि तुममें से कौन इम्तिहान में कामयाब रहा है और कौन नाकाम। तुम्हारे लिए सही रवैया यह है कि मुझे अपना एक अकेला माबूद और हाकिम तसलीम करो। जो हिदायत मैं भेजूँ, उसके मुताबिक़ दुनिया में काम करो और दुनिया को इम्तिहानगाह समझते हुए इस एहसास के साथ ज़िन्दगी बसर करो कि तुम्हारा असल मक़सद मेरे आख़िरी फ़ैसले में कामयाब होना है। इसके बरख़िलाफ़ तुम्हारे लिए हर वह रवैया ग़लत है, जो इससे अलग हो। अगर पहला रवैया इख़्तियार करोगे (जिसे इख़्तियार करने के लिए तुम आज़ाद हो) तो तुम्हें दुनिया में अम्न और इत्मीनान हासिल होगा और जब मेरे पास पलटकर आओगे, तो मैं तुम्हें हमेशा रहनेवाली राहत और ख़ुशी का वह घर दूँगा जिसका नाम जन्नत है। और अगर दूसरे किसी रवैये पर चलोगे (जिसपर चलने के लिए भी तुमको आज़ादी है) तो दुनिया में तुमको फ़साद और बेचैनी का मज़ा चखना होगा और दुनिया से गुज़रकर आख़िरत की दुनिया में जब आओगे, तो हमेशा रहनेवाले दुख और मुसीबत के उस गढ़े में फेंक दिए जाओगे जिसका नाम दोज़ख़ है।

3. यह समझाने के बाद कायनात के मालिक ने इनसानों को ज़मीन में जगह दी और इस जाति के सबसे पहले लोगों (आदम और हव्वा) को वह हिदायत भी दे दी, जिसके मुताबिक़ उन्हें और उनकी औलाद को ज़मीन में काम करना था। ये सबसे पहले इनसान जिहालत और अंधेरे की हालत में पैदा नहीं हुए थे, बल्कि .ख़ुदा ने ज़मीन पर उनकी ज़िन्दगी की शुरुआत पूरी रौशनी में की थी। वे हक़ीक़त से वाक़िफ़ थे। उन्हें उनकी ज़िन्दगी का क़ानून बता दिया गया था। उनकी ज़िन्दगी

गुज़ारने का तरीक़ा .खुदा की इताअत और फ़रमाँबरदारी (इस्लाम) था। वे अपनी औलाद को यही बात सिखाकर गए कि वे .खुदा की फ़रमाँबरदार (मुसलिम) बनकर रहें।। लेकिन बाद की सदियों में धीरे-धीरे इनसान ज़िन्दगी के इस सही तरीक़े (दीन और धर्म) से हटकर मुख़्तलिफ़ क़िस्म के ग़लत रवैयों की तरफ़ चल पड़े। उन्होंने ग़फ़लत और लापरवाही से उसको गुम भी किया और शरारत से उसकी शक्ल भी बिगाड़ डाली। उन्होंने .खुदा के साथ ज़मीन और आसमान की मुख़्तलिफ़ इनसानी और ग़ैर-इनसानी, .खयाली और माद्‌दी चीज़ों को .खुदा का शरीक ठहरा लिया। उन्होंने .खुदा के दिए हुए हक़ीक़त के इल्म में तरह-तरह के अंधविश्वासों और नज़रियों और फ़लसफ़ों की मिलावट करके बेशुमार मज़हब (पंथ) पैदा कर लिए। उन्होंने .खुदा के मुक़र्रर किए हुए तमद्‌दुन और अख़लाक़ के हक़ और इनसाफ़ पर बने हुए उसूलों (शरीअत) को छोड़कर या बिगाड़कर अपने मन की .ख़ाहिशों और अपने तास्सुबात (अनुचित पक्षपातों) के मुताबिक़ ज़िन्दगी के ऐसे क़ानून गढ़ लिए, जिनसे .खुदा की ज़मीन ज़ुल्म से भर गई।

4. .खुदा ने जो महदूद .खुदइख़्तियारी इनसान को दी थी उसके साथ यह बात मेल नहीं खाती थी कि वह .ख़ालिक़ होने के इख़्तियार का इस्तेमाल करके इन बिगड़े हुए इनसानों को ज़बरदस्ती सही रवैये की तरफ़ मोड़ देता और उसने दुनिया में काम करने के लिए जो मुहलत इनके लिए और इनकी मुख़्तलिफ़ क़ौमों के लिए तय की थी, उसके साथ यह बात भी मेल नहीं खाती थी कि इस बग़ावत के पैदा होते ही वह इनसानों को हलाक कर देता। फिर जो काम दुनिया और इनसानों की पैदाइश के दिन से उसने अपने ज़िम्मे लिया था, वह यह था कि इनसान की .खुदइख़्तियारी को बाक़ी रखते हुए उसके अमल की मुहलत के दौरान में उसकी रहनुमाई का इन्तिज़ाम वह करता रहेगा। इसी लिए अपनी इस .खुद डाली हुई ज़िम्मेदारी को अदा करने के लिए उसने इनसानों ही में से ऐसे आदमियों को इस्तेमाल करना शुरू किया जो उसपर रखनेवाले और उसकी मर्ज़ी की पैरवी करनेवाले थे। उसने उनको अपना नुमाइन्दा बनाया; अपने पैग़ाम उनके पास भेजे; उनको हक़ीक़त का इल्म दिया; उन्हें ज़िन्दगी का सही क़ानून दिया और उन्हें इस काम पर लगाया कि इनसानों को उसी सीधे रास्ते की तरफ़ पलटने की दावत दें, जिससे वे हट गए थे।

5. ये पैग़म्बर मुख़्तलिफ़ क़ौमों और मुल्कों में उठते रहे। हज़ारों साल तक उनके आने का सिलसिला चलता रहा। हज़ारों की तादाद में वे भेजे गए। उन सभी का एक ही

दीन था यानी वह सही रवैया जो पहले दिन ही इनसान को बता दिया गया था। वे सब एक ही हिदायत की पैरवी करनेवाले थे यानी अख़लाक़ और तमद्दुन के वे उसूल जो दुनिया की पैदाइश से लेकर हमेशा-हमेशा के उसूल हैं। ये उसूल शुरू ही में इनसान के लिए तय कर दिए गए थे और उन सब का एक ही मिशन था यानी यह कि इस दीन और इस हिदायत की तरफ़ इनसानों को बुलाएँ, फिर जो लोग इस पैग़ाम को क़बूल कर लें, उनको जोड़कर एक ऐसा गरोह बनाएँ जो .खुद अल्लाह के क़ानून का पाबन्द हो और दुनिया में अल्लाह के क़ानून की इताअत क़ायम करने और इस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी रोकने के लिए जिद्दोजुहद करें। इन पैग़म्बरों ने अपने-अपने दौर में अपने इस मिशन को पूरी .खूबी के साथ अदा किया, मगर हमेशा यही होता रहा कि इनसानों की एक बड़ी तादाद तो उनके पैग़ाम को क़बूल करने पर आमादा ही नहीं हुई और जिन्होंने उसे क़बूल करके फ़रमाँबरदार गरोह (मुसलिम उम्मत) की हैसियत इख़्तियार की, वे धीरे-धीरे .खुद बिगड़ते चले गए; यहाँ तक कि उनमें से कुछ गरोह .खुदा की हिदायत को बिलकुल ही गुम कर बैठे और कुछ ने .खुदा की हिदायतों को अपनी तब्दीलियों और मिलावटों से बिगाड़कर रख दिया।

6. आख़िर में सारे जहान के .खुदा ने अरब की ज़मीन पर मुहम्मद (सल्ल॰) को उसी काम के लिए भेजा, जिसके लिए पिछले नबी आते रहे थे। उन्होंने आम इनसानों के सामने भी अपना पैग़ाम पेश किया और पिछले नबियों के बिगड़े हुए पैरूओं के सामने भी। सब को सही रवैये की तरफ़ बुलाना, सबको फिर से .खुदा की हिदायत पहुँचा देना और जो इस पैग़ाम और हिदायत को क़बूल करें, उन्हें एक ऐसी उम्मत और गरोह बना देना उनका काम था जो एक तरफ़ .खुद अपनी ज़िन्दगी का निज़ाम .खुदा की हिदायत पर क़ायम करे और दूसरी तरफ़ दुनिया की इस्लाह के लिए जिद्दोजुहद करे—इसी दावत और हिदायत की किताब यह क़ुरआन है जो अल्लाह ने मुहम्मद (सल्ल॰) पर उतारी।

क़ुरआन में क्या है?

क़ुरआन की इस हक़ीक़त को जान लेने के बाद पढ़नेवालों के लिए यह समझना आसान हो जाता है कि इस किताब का मौज़ूअ क्या है, इसका मर्कज़ी मज़मून क्या है, और इसका मक़सद क्या है।

क़ुरआन इनसान के बारे में बात करता है; इस पहलू से कि हक़ीक़त में इनसान का

भला और उसका बुरा किस चीज़ में है।

इसका मर्कज़ी मज़मून यह है कि ज़ाहिरी शक्ल को देखकर या गुमान और अटकल की बुनियाद पर जो राय बना ली या ख़ाहिश की ग़ुलामी के सबब से इनसान ने ख़ुदा और कायनात के निज़ाम, अपनी हस्ती और अपनी दुनियवी ज़िन्दगी के बारे में जो नज़रिए क़ायम किए हैं और उन नज़रियों की बुनियाद पर जो रवैये इख़्तियार कर लिए हैं, वे सब हक़ीक़त की नज़र से ग़लत और नतीजे के लिहाज़ से ख़ुद इनसान ही के लिए तबाहकुन हैं। हक़ीक़त वह है जो इनसान को ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बनाते वक़्त ख़ुदा ने ख़ुद बता दी थी और इस हक़ीक़त के मुताबिक़ इनसान के लिए वही रवैया सही और कामयाब है, जिसे पिछले पन्नों में हम 'सही रवैये' के नाम से बयान कर चुके हैं।

उसका मक़सद इनसान को उस सही रवैये की तरफ़ बुलाना और अल्लाह की इस हिदायत को वाज़ेह तौर पर पेश करना है, जिसे इनसान अपनी ग़फ़लत से गुम करता और अपनी शरारत से उसकी शक्ल बिगाड़ता रहा है।

इन तीन बुनियादी बातों को दिमाग़ में रखकर कोई आदमी क़ुरआन को देखे तो उसे साफ़ नज़र आएगा कि यह किताब कहीं भी अपने मौज़ूअ (विषय), अपने मक़सद और मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) से बाल बराबर भी नहीं हटी है। शुरू से लेकर आख़िर तक उसके अलग-अलग और तरह-तरह के मज़मून उसके मर्कज़ी मज़मून के साथ इस तरह जुड़े हुए हैं जैसे छोटे-बड़े, रंग-बिरंग के हीरे-मोती हार की लड़ी में पिरोए हुए होते हैं। वह ज़मीन व आसमान की बनावट पर, इनसान की पैदाइश पर, कायनात की निशानियों के देखने पर और पिछली क़ौमों के वाक़िओं पर बात करता है; मुख़्तलिफ़ क़ौमों के अक़ीदों, अख़लाक़ और कामों पर तनक़ीद (टिप्पणी) करता है; वे बातें और मामले जो फ़ितरत से परे हैं और इनसानों की पकड़ से बाहर हैं, उनके बारे में हक़ीक़त से बाख़बर करता है और बहुत-सी दूसरी चीज़ों का ज़िक्र भी करता है; मगर इसलिए नहीं कि उसे माद्दी दुनिया, या इतिहास या फ़लसफ़े या किसी दूसरे फ़न (कला) की तालीम देनी है, बल्कि इसलिए कि उसे हक़ीक़त के बारे में इनसान की ग़लतफ़हमियाँ दूर करनी हैं; असल हक़ीक़त लोगों के दिल और दिमाग़ में बिठानी है। हक़ीक़त के ख़िलाफ़ रवैये की ग़लती और उसके बुरे अंजाम को वाज़ेह करना है और उस रवैये की तरफ़ बुलाना है, जो हक़ीक़त के मुताबिक़ और अच्छे नतीजेवाला है। यही वजह है कि वह हर चीज़ का ज़िक्र सिर्फ़ उस हद तक और उस अन्दाज़ में करता है, जो उसके मक़सद के लिए ज़रूरी है। हमेशा इन चीज़ों का ज़िक्र ज़रूरत भर करने के बाद ग़ैर-ज़रूरी तफ़सीलों

को छोड़कर अपने मक़सद और मर्कज़ी मज़मून की तरफ़ पलट आता है और उसका पूरा बयान बड़ी ही यकसानी के साथ 'पैग़ाम' की धुरी पर घूमता रहता है।

पसमंज़र (पृष्ठभूमि)

क़ुरआन के अन्दाज़े-बयान, उसकी तरतीब और उसके बहुत-से मज़मूनों को आदमी उस वक़्त तक आदमी अच्छी तरह नहीं समझ सकता जब तक कि वह नाज़िल होने की कैफ़ियत को भी अच्छी तरह न समझ ले।

यह क़ुरआन इस तरह की किताब नहीं है कि अल्लाह ने एक ही वक़्त में इसे लिखकर मुहम्मद (सल्ल॰) को दे दिया हो और कह दिया हो कि इसे शाया करके लोगों को ज़िन्दगी के एक ख़ास तरीक़े की तरफ़ बुलाएँ। यह इस तरह की किताब भी नहीं है कि इसमें लिखने के अन्दाज़ पर किताब के मौज़ूअ और मर्कज़ी मज़मून के बारे में बात की गई हो। यही वजह है कि इसमें न वह तरतीब पाई जाती है, जो लिखी हुई किताब में होती है और न इसमें किताबों जैसा तरीक़ा और ढंग पाया जाता है। अस्ल में यह ऐसी किताब है कि अल्लाह ने अरब के शहर मक्का में अपने एक बन्दे को पैग़म्बरी की ख़िदमत के लिए चुना और उसे हुक्म दिया कि अपने शहर और अपने क़बीले (क़ुरैश) से पैग़ाम पहुँचाने की शुरुआत करे। यह काम शुरू करने के लिए आग़ाज़ में जिन हिदायतों की ज़रूरत थी, सिर्फ़ वही दी गईं और उनमें ज़्यादातर तीन मज़मून थे –

1. पैग़म्बर को इस बात की तालीम कि वह ख़ुद अपने आपको इस बड़े काम के लिए किस तरह तैयार करे और किस ढंग से काम करे।
2. हक़ीक़त के बारे में इब्तिदाई मालूमात और हक़ीक़त के बारे में उन ग़लतफ़हमियों का मोटे तौर पर रद्द जो आसपास के लोगों में पाई जाती थीं, जिनकी वजह से उनका रवैया ग़लत हो रहा था।
3. सही रवैये की तरफ़ बुलाना और ख़ुदा की हिदायत के उन अख़लाक़ के बुनियादी उसूलों का बयान, जिनकी पैरवी में इनसान के लिए कामयाबी और ख़ुशनसीबी है।

शुरुआती हालत में क़ुरआन

शुरू-शुरू के ये पैग़ाम दावत की शुरुआत को सामने रखते हुए कुछ छोटे-छोटे मुख़्तसर बोलों पर सम्मिलित होते थे, जिनकी ज़बान निहायत साफ़-सुथरी, निहायत मीठी, निहायत असरदार और मुख़ातब क़ौम के ज़ौक़ के मुताबिक़ बेहतरीन अदबी रंग लिए

होती थी; ताकि दिलों में ये बोल तीर की तरह उतर जाएँ, कान .ख़ुद-ब-.ख़ुद उनके तरन्नुम की वजह से उनकी तरफ़ मुतवज्जेह हों और उनके निहायत मुनासिब और दुरुस्त होने की वजह से ज़बानें बेइख़्तियार होकर उन्हें दोहराने लगें। फिर उन बोलों में मक़ामी रंग बहुत .ज़्यादा था। हालाँकि बयान तो की जा रही थीं आलमगीर सच्चाइयाँ, मगर उनके लिए दलीलें, गवाहियाँ और मिसालें उस सबसे क़रीबी माहौल से ली गई थीं, जिससे मुख़ातब लोग अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। उन्हीं का इतिहास, उन्हीं की रिवायतें, उन्हीं की रोज़मर्रा देखने और तजुर्बे में आनेवाली निशानियाँ और उन्हीं के अक़ीदे, अख़लाक़ और समाज से ताल्लुक़ रखनेवाली .ख़राबियों पर सारी गुफ़्तगू थी; ताकि वे उससे असर ले सकें।

दावत का यह शुरुआती मरहला तक़रीबन चार-पाँच साल तक जारी रहा और इस मरहले में नबी (सल्ल.) की तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) का असर तीन सूरतों में ज़ाहिर हुआ—

1. कुछ भले आदमी इस पैग़ाम को क़बूल करके मुसलिम (फ़रमाँबरदार) गरोह बनने के लिए तैयार हो गए।
2. एक बड़ी तादाद जिहालत या .ख़ुदग़र्ज़ी या बाप-दादा के तरीक़े की वजह से मुख़ालफ़त पर आमादा हो गई।
3. मक्के और क़ुरैश की हदों से निकलकर इस नए पैग़ाम की आवाज़ उनके मुक़ाबले में कुछ .ज़्यादा बड़े इलाक़े में पहुँचने लगी।

मक्का में उतरनेवाली सूरतों का पसमंज़र

यहाँ से उस पैग़ाम का दूसरा मरहला शुरू होता है। इस मरहले में इस्लाम की इस तहरीक (आन्दोलन) और पुरानी जिहालत के बीच एक सख़्त जानलेवा कश-म-कश शुरू हुई, जिसका सिलसिला आठ-नौ साल तक चलता रहा; न सिर्फ़ मक्का में, न सिर्फ़ क़ुरैश के क़बीले में, बल्कि अरब के .ज़्यादातर हिस्सों में भी जो लोग पुरानी जाहिलियत को बाक़ी रखना चाहते थे, वे इस तहरीक को ताक़त के ज़ोर पर मिटा देने पर तुल गए। उन्होंने इसे दबाने के लिए सारी चालें चल डालीं; झूठा प्रोपगंडा किया; इल्ज़ामों, शक और शुब्हों और एतिराज़ों की बौछार की; आम लोगों के दिलों में तरह-तरह की ग़लतफ़हमियाँ पैदा कीं; अनजान लोगों को नबी (सल्ल.) की बात सुनने से रोकने की कोशिशें कीं; इस्लाम क़बूल करनेवालों पर निहायत वहशियाना ज़ुल्मो-सितम ढाए; उनका

मुआशी और समाजी बॉयकाट किया और उन्हें इतना सताया कि उनमें से बहुत-से लोग दो बार अपने घर छोड़कर हब्शा (इथोपिया) की तरफ़ हिजरत कर जाने पर मजबूर हुए और आख़िरकार तीसरी बार उन सबको मदीना की तरफ़ हिजरत करनी पड़ी। लेकिन इस सख़्त और रोज़ बढ़ती मुख़ालफ़त के बावजूद भी यह तहरीक फैलती चली गई। मक्का में कोई ख़ानदान और कोई घर ऐसा न रहा जिसके किसी न किसी आदमी ने इस्लाम क़बूल न कर लिया हो। इस्लाम के ज़्यादातर दुश्मनों की दुश्मनी में तेज़ी और कड़ुवाहट की वजह यही थी कि उनके अपने भाई, भतीजे, बेटे, बेटियाँ, बहनें और बहनोई इस्लाम के पैग़ाम के न सिर्फ़ पैरवी करनेवाले, बल्कि जान क़ुरबान करनेवाले हामी और मददगार हो गए थे। और उनके अपने दिल और जिगर के टुकड़े ही उनसे कश-म-कश करने को तैयार थे। फिर मज़े की बात यह है कि जो लोग पुरानी जाहिलियत से टूट-टूटकर इस नई तहरीक की तरफ़ आ रहे थे, वे पहले भी अपनी सोसाइटी के बेहतरीन लोग समझे जाते थे और इस तहरीक में शामिल होने के बाद वे इतने नेक, इतने सच्चे और अख़लाक़ के इतने पाकीज़ा इनसान बन जाते थे कि दुनिया उस पैग़ाम की बरतरी महसूस किए बग़ैर रह नहीं सकती थी, जो ऐसे लोगों को अपनी तरफ़ खींच रही थी और उन्हें यह कुछ बना रही थी।

इस लम्बी और सख़्त कश-म-कश के दौरान में अल्लाह मौक़े और ज़रूरत के लिहाज़ से अपने नबी पर ऐसी जोशीली तक़रीरें उतारता रहा, जिनमें नदी जैसा बहाव, सैलाब की-सी ताक़त और तेज़ और धधकती आग जैसा असर था। उन तक़रीरों में एक तरफ़ ईमानवालों को उनकी इब्तिदाई ज़िम्मेदारियाँ बताई गईं; उनके अन्दर इज्तिमाई और जमाअती शऊर पैदा किया गया; उन्हें तक़वा (परहेज़गारी) और अख़लाक़ की अहमियत और बड़ाई और सीरत की पाकीज़गी की तालीम दी गई; उन्हें सच्चे दीन की तबलीग़ के तरीक़े बताए गए; कामयाबी के वादों और जन्नत की ख़ुशख़बरियों से उनकी हिम्मत बँधाई गई; उन्हें सब्र, जमाव व ठहराव और बुलन्द हौसले के साथ अल्लाह की राह में जिद्दोजुहद करने पर उभारा गया और जान पर खेल जाने का ऐसा ज़बरदस्त जोश और हौसला उनमें पैदा किया गया कि वे हर मुसीबत झेल जाने और मुख़ालफ़त के बड़े से बड़े तूफ़ानों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो गए। दूसरी तरफ़ मुख़ालिफ़ों और सच्चे रास्ते से मुँह मोड़नेवालों और ग़फ़लत की नींद सोनेवालों को उन क़ौमों के अंजाम से डराया गया, जिनका इतिहास वे ख़ुद जानते थे; उन्हें तबाह की गई बस्तियों की निशानियों से इबरत दिलाई गई, जिनके खंडहरों पर से रात-दिन अपने-अपने सफ़रों में

उनका गुज़र होता था; तौहीद (एकेश्वरवाद) और आख़िरत (परलोक) की दलीलें उन खुली-खुली निशानियों से दी गई जो रात-दिन ज़मीन और आसमान में उनकी आँखों के सामने मौजूद थीं और जिनको वे ख़ुद अपनी ज़िन्दगी में भी हर वक़्त देखते और महसूस करते थे। शिर्क (बहुदेववाद), ख़ुदमुख़्तारी के दावे, आख़िरत के इनकार और बाप-दादा की अंधी पैरवी की ग़लतियाँ ऐसी खुली दलीलों से वाज़ेह की गईं, जो दिल में बैठ जाने और दिमाग़ में उतर जानेवाली थीं। फिर उनके एक-एक शक और शुब्हे को दूर किया गया; एक-एक एतिराज़ का मुनासिब जवाब दिया गया; एक-एक उलझन जिसमें वे ख़ुद पड़े हुए थे या दूसरों को उलझाने की कोशिश करते थे, साफ़ की गई और हर तरफ़ से घेरकर जाहिलियत को इतनी सख़्ती से पकड़ा गया कि अक़्ल और समझ की दुनिया में उसके लिए ठहरने की कोई जगह बाक़ी न रही। इसके साथ फिर उनको ख़ुदा के ग़ज़ब और क़ियामत की हौलनाकियों और जहन्नम के अज़ाब से डराया गया। उनके बुरे अख़लाक़ और ज़िन्दगी के ग़लत तरीक़े और जाहिलाना रस्मों और हक़ से दुश्मनी और ईमानवालों को तकलीफ़ पहुँचाने पर उन्हें मलामत की गई और अख़लाक़ और तमद्दुन के बड़े-बड़े उसूल उनके सामने पेश किए गए जिनपर हमेशा से ख़ुदा की पसन्दीदा, साफ़-सुथरी और भली तहज़ीबों की तामीर होती चली आ रही है।

यह मरहला अपने आपमें मुख़्तलिफ़ मंज़िलों पर सम्मिलित था, जिनमें से हर मंज़िल में इस्लाम का पैग़ाम और ज़्यादा फैलता गया, जिद्दोजुहद के साथ-साथ मुख़ालफ़त में भी तेज़ी आ गई, मुख़्तलिफ़ अक़ीदों और तरह-तरह के रवैये अपनानेवाले गरोहों से वास्ता पड़ता गया और उसी के मुताबिक़ अल्लाह की तरफ़ से आनेवाले पैग़ामों में मज़मूनों की क़िस्में बढ़ती गईं—यह है क़ुरआन मजीद की मक्की सूरतों का पसमंज़र।

मदीना में उतरनेवाली सूरतों का पसमंज़र

मक्का में इस तहरीक (आन्दोलन) को अपना काम करते हुए 13 साल गुज़र चुके कि एकायक मदीना में उसको एक ऐसा मर्कज़ मिल गया, जहाँ उसके लिए यह मुमकिन हो गया कि अरब के तमाम हिस्सों से अपने माननेवालों को समेटकर एक जगह अपनी ताक़त जुटा ले। चुनाँचे नबी (सल्ल०) और इस्लाम के ज़्यादातर माननेवाले हिजरत करके मदीना पहुँच गए। इस तरह यह पैग़ाम तीसरे मरहले में दाख़िल हो गया।

इस मरहले में हालात का नक़्शा बिलकुल बदल गया। मुस्लिम उम्मत एक बाक़ायदा हुकूमत की बुनियाद डालने में कामयाब हो गई। पुरानी जाहिलियत के अलमबरदारों से

हथियारबन्द मुक़ाबला शुरू हुआ। पिछले नबियों की उम्मतों (यहूदियों और ईसाइयों) से भी वास्ता पेश आया। ख़ुद मुस्लिम उम्मत के अन्दरूनी निज़ाम में तरह-तरह के मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) घुस आए और उनसे भी निबटना पड़ा। और दस साल की सख़्त कश-म-कश से गुज़रकर आख़िरकार यह तहरीक कामयाबी के इस मंज़िल पर पहुँची कि पूरा अरब इसके तहत हो गया और आलमगीर पैग़ाम और सुधार के दरवाज़े इसके सामने खुल गए। इस मरहले की भी मुख़्तलिफ़ मंज़िलें थीं और हर मंज़िल में इस तहरीक की ख़ास क़िस्म की ज़रूरतें थीं। इन ज़रूरतों के मुताबिक़ अल्लाह की तरफ़ से ऐसी तक़रीरें नबी (सल्ल०) पर उतरती रहीं, जिनका अन्दाज़ कभी जोशीली तक़रीरों का, कभी शाहाना फ़रमानों और हुक्मों का, कभी तालीम देनेवालों की तरह दर्स और तालीम का और कभी सुधार करनेवालों की तरह समझाने-बुझाने का होता था। उनमें बताया गया कि जमाअत और हुकूमत और अच्छे समाज की तामीर किस तरह की जाए, ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ शोबों को किन उसूलों और ज़ाब्तों पर क़ायम किया जाए, मुनाफ़िक़ों से क्या सुलूक हो, मुल्क के ग़ैर-मुस्लिमों से क्या बरताव हो, किताबवालों से ताल्लुक़ात की क्या शक्ल हो, लड़ रहे दुश्मनों और समझौता करनेवाली क़ौमों के साथ क्या रवैया इख़्तियार किया जाए और ईमानवालों का यह मुनज़्ज़म (सुसंगठित) गरोह दुनिया में ख़ुदा की नुमाइन्दगी की ज़िम्मेदारियाँ पूरी करने के लिए अपने आपको किस तरह तैयार करे। इन तक़रीरों में एक तरफ़ मुसलमानों की तालीम और तरबियत की जाती थी, उनकी कमज़ोरियों पर उन्हें ख़बरदार किया जाता था, उनको ख़ुदा की राह में जान और माल से जिहाद करने पर उभारा जाता था, उनको हार और जीत, मुसीबत और आराम, बदहाली और ख़ुशहाली, अम्न और डर, मतलब यह कि हर हाल में उसके मुताबिक़ अख़लाक़ी बातों का दर्स दिया जाता था और उन्हें इस तरह तैयार किया जाता था कि वे नबी (सल्ल०) के साथ आप (सल्ल०) के जाँनशीन बनकर दीन के इस पैग़ाम और सुधार के काम को अंजाम दे सकें। दूसरी तरफ़ उन लोगों को जो ईमानवाले नहीं थे, किताबवाले, मुनाफ़िक़, कुफ़्र और शिर्क करनेवाले सबको उनकी अलग-अलग हालतों के लिहाज़ से समझाने, नरमी से इस्लाम की ओर बुलाने, सख़्ती से मलामत और नसीहत करने, ख़ुदा के अज़ाब से डराने और सबक़ आमोज़ वाक़िओं और हालात से सबक़ दिलाने की कोशिश की जाती थी, ताकि हर पहलू से वाज़ेह होकर बात उनके सामने आ जाए।

यह है क़ुरआन मजीद की उन सूरतों का पसमंज़र, जो मदीना में उतरीं।

क़ुरआन का अपना .ख़ास अन्दाज़ और उसकी ज़रूरत

ऊपर के बयान से यह बात वाज़ेह हो जाती है कि क़ुरआन मजीद एक पैग़ाम के साथ उतरना शुरू हुआ और वह पैग़ाम अपने आग़ाज़ से लेकिर अपने मुकम्मल होने तक 23 साल की मुद्दत में जिन-जिन मरहलों और जिन-जिन मंज़िलों से गुज़रता रहा, उनकी मुख़्तलिफ़ ज़रूरतों के मुताबिक़ क़ुरआन के मुख़्तलिफ़ हिस्से नाज़िल होते रहे। ज़ाहिर है कि ऐसी किताब में किताब की वह तरतीब नहीं हो सकती, जो डॉक्ट्रेट की डिग्री लेने के लिए किसी मक़ाले (शोधपत्र) में अपनाई जाती है। फिर इस पैग़ाम के फैलने के साथ-साथ क़ुरआन के जो छोटे और बड़े हिस्से उतरे, वे भी किताबचों की शक्ल में शाया नहीं किए जाते थे; बल्कि तक़रीरों की शक्ल में बयान किए जाते और उसी शक्ल में फैलाए जाते थे, इसलिए उनका अन्दाज़ भी तहरीरी न था, बल्कि तक़रीर का अन्दाज़ था। फिर यह तक़रीर भी एक प्रोफ़ेसर के लेक्चरों की-सी नहीं, बल्कि एक पैग़ाम देनेवाले और उस पैग़ाम की तरफ़ बुलानेवाले की तक़रीरों की-सी थी जिसे दिल और दिमाग़, अक़्ल और जज़्बात हरेक से अपील करना होता है, जिसको हर तरह की ज़ेहनियतों से वास्ता पेश आता है, जिसे अपने पैग़ाम और तबलीग़ और अमली तहरीक के सिलसिले में बेशुमार तरह-तरह की हालतों में काम करना पड़ता है, हर मुमकिन पहलू से अपनी बात दिलों में बिठाना, .ख़यालों की दुनिया बदलना, जज़्बात का सैलाब उठाना, मुख़ालिफ़ों का ज़ोर तोड़ना, साथियों का सुधार और तरबियत करना और उनमें जोश और हौसला उभारना, दुश्मनों को दोस्त और इनकारियों को इक़रारी बनाना, मुख़ालिफ़ों की दलीलों को काटना, उनकी अख़लाक़ी ताक़त का .ख़ात्मा करना, ग़रज़ उसे वह सब कुछ करना होता है जो एक पैग़ाम के अलमबरदार और एक तहरीक के रहनुमा के लिए ज़रूरी है। इसलिए अल्लाह ने इस काम के सिलसिले में अपने पैग़म्बर पर जो तक़रीरें उतारीं, उनका तक़रीर का ढंग वही था जो एक पैग़ाम और दावत के लिए मुनासिब होता है। उनमें कॉलेज के लेक्चरों का-सा अन्दाज़ तलाश करना सही नहीं है।

मज़मूनों को बार-बार बयान करने की ज़रूरत

यहीं से यह बात भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है कि क़ुरआन में मज़मूनों को इतना .ज़्यादा बार-बार बयान क्यों किया गया है। एक पैग़ाम और अमली तहरीक का फ़ितरी तक़ाज़ा यह है कि वह जिस वक़्त जिस मरहले में हो, उसमें वही बातें कही जाएँ

जो उस मरहले से मेल खाती हों और जब तक पैग़ाम और तहरीक एक मरहले में रहे, बाद के मरहलों की बात न छेड़ी जाए, बल्कि उसी मरहले की बातों को दोहराया जाता रहे, चाहे इसमें कुछ महीने लगें या कई साल लग जाएँ। फिर अगर एक ही क़िस्म की बातों का दोहराना एक ही जुम्ले और एक ही ढंग पर किया जाता रहे, तो कान उन्हें सुनते-सुनते थक जाते हैं और जी ऊबने लगते हैं। इसलिए यह भी ज़रूरी है कि हर मरहले में जो बातें बार-बार कहनी हों उन्हें हर बार नए लफ़्ज़ों, नए अन्दाज़ और नए ढंग से कहा जाए, ताकि निहायत अच्छे तरीक़े से वे दिलों में बैठ जाएँ और पैग़ाम और तहरीक की एक-एक मंज़िल अच्छी तरह पक्की और मज़बूत होती चली जाए। इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि पैग़ाम और तहरीक की बुनियाद जिन अक़ीदों और उसूलों पर हो, उन्हें पहले क़दम से आख़िरी मंज़िल तक किसी वक़्त और किसी हाल में नज़रों से ओझल न होने दिया जाए, बल्कि उनका दोहराना हर हाल में पैग़ाम के हर मरहले में होता रहे। यही वजह है कि इस्लामी पैग़ाम के एक मरहले में क़ुरआन की जितनी सूरतें उतरी हैं उन सब में आम तौर पर एक ही तरह के मज़मून, लफ़्ज़ और बयान के अन्दाज़ बदल-बदलकर आए हैं, मगर तौहीद, ख़ुदा की सिफ़ात, आख़िरत और उसकी पूछगछ और इनाम और सज़ा, रिसालत, किताब पर ईमान, तक़वा और सब्र, अल्लाह पर भरोसा और इसी तरह के दूसरे बुनियादी मज़मून का दोहराया जाना पूरे क़ुरआन में नज़र आता है; क्योंकि इस तहरीक के किसी मरहले में भी उनसे ग़फ़लत और लापरवाही सहन नहीं की जा सकती थी। ये बुनियादी तसव्वुर अगर ज़रा भी कमज़ोर हो जाते, तो इस्लाम की यह तहरीक अपनी सही रूह के साथ न चल सकती थी।

क़ुरआन की तरतीब उतरने की तरतीब के मुताबिक़ न होने का सबब

अगर ग़ौर किया जाए तो इसी बात से यह सवाल भी हल हो जाता है कि नबी (सल्ल॰) ने क़ुरआन को उसी तरतीब के साथ क्यों न मुरत्तब कर दिया, जिसके साथ वह उतरा था।

ऊपर आपको मालूम हो चुका है कि 23 साल तक क़ुरआन उस तरतीब से उतरता रहा, जिस तरतीब से पैग़ाम और तहरीक का आग़ाज़ और उसका फैलाव हुआ। अब यह ज़ाहिर है कि पैग़ाम पूरा हो जाने के बाद उन उतरे हुए हिस्सों के लिए वह तरतीब किसी तरह भी सही नहीं हो सकती थी, जो सिर्फ़ पैग़ाम को फैलाने ही के साथ मेल खाती थी।

अब तो उनके लिए एक दूसरी ही तरतीब चाहिए थी, जो पैग़ाम के पूरा हो जाने के बाद इस सूरते-हाल के लिए ज़्यादा मुनासिब हो; क्योंकि शुरू में उन लोगों से बात की गई थी जो इस्लाम से बिलकुल ही नावाक़िफ़ थे। इसलिए उस वक़्त बिलकुल आग़ाज़ से तालीम और नसीहत शुरू की गई। मगर पैग़ाम और तहरीक के पूरा हो जाने के बाद उसके सबसे पहले मुख़ातब वे लोग हो गए जो उसपर ईमान लाकर एक उम्मत बन चुके थे और उस काम को जारी रखने के ज़िम्मेदार समझे गए थे, जिसे पैग़म्बर ने नज़रिए और अमल दोनों हैसियतों से मुकम्मल करके उनके हवाले किया था। अब लाज़िमी तौर पर पहली चीज़ यह हो गई कि पहले ये लोग ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारियों से, ज़िन्दगी के अपने क़ानूनों से और उन बिगाड़ों से जो पिछले पैग़म्बरों के माननेवालों में पैदा होते रहे हैं, अच्छी तरह वाक़िफ़ हो लें। फिर इस्लाम से नावाक़िफ़ दुनिया के सामने ख़ुदा की हिदायत पेश करने के लिए आगे बढ़ें।

इसके अलावा क़ुरआन मजीद जिस तरह की किताब है उसे अगर आदमी अच्छी तरह समझ ले, तो उसपर ख़ुद ही यह हक़ीक़त खुल जाएगी कि एक-एक तरह के मज़मूनों को एक-एक जगह जमा करना इस किताब के मिज़ाज ही से मेल नहीं खाता। इसके मिज़ाज का तो तक़ाज़ा यही है कि उसके पढ़नेवाले के सामने पैग़ाम और तहरीक के मदीनावाले मरहले की बातें मक्कावाले मरहले की तालीम के बीच और मक्कावाले मरहले की बातें मदीना दौरवाली तक़रीरों के बीच और शुरुआती बातें आख़िर की नसीहतों के बीच में और आख़िरी दौर की हिदायतें शुरुआती दौर की तालीम के पहलू में बार-बार आती चली जाएँ, ताकि इस्लाम की पूरी शक्ल और उसका जामेअ (व्यापक) नक़्शा उसकी निगाह में रहे। और किसी वक़्त भी वह एकरुख़ा न होने पाए।

फिर अगर क़ुरआन को उसके उतरने की तरतीब पर मुरत्तब किया भी जाता, तो वह तरतीब बाद के लोगों के लिए सिर्फ़ उसी सूरत में बामानी हो सकती थी, जबकि क़ुरआन के साथ उसके उतरने का पूरा इतिहास और उसके एक-एक हिस्से के साथ उसके उतरने की कैफ़ियत और वजह लिखकर लगा दी जाती और वह लाज़िमी तौर पर क़ुरआन के साथ उसका एक हिस्सा बनकर रहती। यह बात उस मक़सद के ख़िलाफ़ थी, जिसके लिए अल्लाह ने अपने कलाम का यह मजमूआ मुरत्तब और महफ़ूज़ कराया था। वहाँ तो यही चीज़ सामने थी कि अल्लाह का ख़ालिस कलाम किसी दूसरे कलाम की मिलावट या उसको शामिल किए बिना अपनी मुख़्तसर सूरत में मुरत्तब हो जिसे बच्चे, जवान, बूढ़े, औरत, मर्द, शहरी, देहाती, आम लोग, आलिम सभी पढ़ें। हर ज़माने में और

हर जगह, हर हालत में पढ़ें और हर अक़्ल और सूझ-बूझ के दरजे का इनसान कम से कम यह बात ज़रूर जान ले कि उसका मालिक उससे क्या चाहता है और क्या नहीं चाहता। ज़ाहिर है कि यह मक़सद .ख़त्म हो जाता, अगर .ख़ुदा के कलाम के इस मजमूए के साथ एक लम्बा-चौड़ा इतिहास भी लगा हुआ होता और उसका पढ़ना भी ज़रूरी कर दिया जाता।

हक़ीक़त यह है कि क़ुरआन की मौजूदा तरतीब पर जो लोग एतिराज़ करते हैं, वे लोग इस किताब के मक़सद और मंशा से न सिर्फ़ नावाक़िफ़ हैं, बल्कि कुछ इस .ग़लतफ़हमी में भी पड़े हुए मालूम होते हैं कि यह किताब सिर्फ़ इतिहास, फ़लसफ़े और सामाजिक विज्ञान को जाननेवालों के लिए ही उतरी है।

☆☆☆

क़ुरआन की तरतीब के सिलसिले में यह बात भी पढ़नेवालों को मालूम हो जानी चाहिए कि यह तरतीब बाद के लोगों की बनाई हुई नहीं है, बल्कि .ख़ुद अल्लाह की हिदायत के तहत नबी (सल्ल॰) ही ने क़ुरआन को इस तरह मुरत्तब किया था। क़ायदा यह था कि जब कोई सूरा उतरती तो नबी (सल्ल॰) उसी वक़्त अपने कातिबों (लिखनेवालों) में से किसी को बुलाकर और उसको ठीक-ठीक लिखवा देने के बाद हिदायत कर देते कि यह सूरा फ़ुलाँ सूरा के बाद और फ़ुलाँ सूरा के पहले रखी जाए। इसी तरह अगर क़ुरआन का कोई ऐसा हिस्सा उतरता जिसे मुस्तक़िल सूरा बनाना सामने न होता, तो नबी (सल्ल॰) हिदायत कर देते थे कि उसे फ़ुलाँ सूरा में फ़ुलाँ जगह पर लिख दिया जाए। फिर उसी तरतीब से नबी (सल्ल॰) .ख़ुद भी नमाज़ में और दूसरे मौक़ों पर क़ुरआन मजीद की तिलावत करते थे और उसी तरतीब के मुताबिक़ नबी (सल्ल॰) के साथी भी उसको याद करते थे। इसलिए यह एक साबितशुदा तारीख़ी हक़ीक़त है कि क़ुरआन मजीद का उतरना जिस दिन मुकम्मल हुआ, उसी दिन उसकी तरतीब भी मुकम्मल हो गई। जो इसे उतार रहा था, हक़ीक़त में वही इसे मुरत्तब भी कर रहा था। जिसपर वह उतारा गया, उसी के हाथों उसे मुरत्तब भी करा दिया गया। किसी दूसरे की मजाल न थी कि इसमें दख़लअन्दाज़ी करता।

क़ुरआन की हिफ़ाज़त

चूँकि नमाज़ शुरू ही से मुसलमानों पर फ़र्ज़ थी।[1] और क़ुरआन के पढ़ने को नमाज़ का एक ज़रूरी हिस्सा क़रार दिया गया था। इसलिए क़ुरआन के उतरने के साथ ही मुसलमानों में क़ुरआन हिफ़्ज़ (कंठस्थ) करने का सिलसिला चल पड़ा और जैसे-जैसे क़ुरआन उतरता गया, मुसलमान उसको याद भी करते चले गए। इसी तरह क़ुरआन की हिफ़ाज़त का दारोमदार सिर्फ़ खजूर के उन पत्तों और हड्डी और झिल्ली के उन टुकड़ों पर ही न था, जिनपर नबी (सल्ल॰) अपने कातिबों से उसे लिखवाया करते थे; बल्कि वह उतरते ही बीसियों, फिर सैकड़ों, फिर हज़ारों, फिर लाखों दिलों पर नक़्श (अंकित) हो जाता था और किसी शैतान के लिए इसका इमकान ही न था कि उसमें एक लफ़्ज़ का भी हेर-फेर कर सके।

नबी (सल्ल॰) के इन्तिक़ाल के बाद जब अरब में इस्लाम से फिरने का तूफ़ान उठा और उसका मुक़ाबला करने के लिए सहाबियों (नबी के साथियों) को बड़ी घमासान की लड़ाई लड़नी पड़ी। ख़ुद इन लड़ाइयों में ऐसे सहाबियों की एक बड़ी तादाद शहीद हो गई, जिन्हें पूरा क़ुरआन हिफ़्ज़ था। इससे नबी (सल्ल॰) के साथी हज़रत उमर (रज़ि॰) के मन में ख़याल आया कि क़ुरआन की हिफ़ाज़त के मामले में सिर्फ़ एक ही ज़रीए पर भरोसा कर लेना मुनासिब नहीं है, बल्कि दिल में महफ़ूज़ होने के साथ-साथ काग़ज़ के पन्नों पर भी उसे महफ़ूज़ कर लेने का इन्तिज़ाम कर लेना चाहिए। चुनाँचे इस काम की ज़रूरत उन्होंने नबी (सल्ल॰) के एक दूसरे साथी हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) से बयान की और उन्होंने सोच-विचार के बाद हज़रत ज़ैद-बिन-साबित अनसारी (रज़ि॰) को, जो नबी (सल्ल॰) के कातिब रह चुके थे, इस ख़िदमत पर लगाया। क़ायदा यह बनाया गया कि एक तरफ़ तो लिखे हुए वे तमाम हिस्से जुटाए जाएँ जो नबी (सल्ल॰) ने छोड़े हैं, दूसरी तरफ़ सहाबियों में से भी जिस-जिस के पास क़ुरआन या उसका कोई हिस्सा लिखा हुआ मिले, वह उनसे ले लिया जाए[2] और फिर क़ुरआन के हाफ़िज़ों से भी मदद ली जाए और इन तीनों ज़रीओं की मुत्तफ़क़ा (सर्वसम्मत) गवाही पर, बिलकुल सही होने का इत्मीनान

---

1. वाज़ेह रहे कि पाँच वक़्त की नमाज़ तो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के नबी होने के साल बाद फ़र्ज़ हुई थी, लेकिन नमाज़ अपने आप में पहले दिन से फ़र्ज़ थी। इस्लाम की कोई ऐसी घड़ी कभी नहीं गुज़री है जिसमे नमाज़ फ़र्ज़ न रही हो
2. भरोसेमन्द रिवायतों से मालूम होता है कि नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी में बहुत-से सहाबा ने क़ुरआन को या उसके मुख़्तलिफ़ हिस्सों को अपने पास लिख छोड़ा था। चुनाँचे इस सिलसिले में हज़रत उस्मान, अली, अब्दुल्लाह-बिन- मसऊद, अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस, सालिम मौला हुज़ैफ़ा, ज़ैद-बिन-साबित, मुआज़-बिन-जबल, उबई-बिन-कअब और अबू-ज़ैद-तैस-बिन-नुस्सुकन (रज़ि०) के नाम मिलते हैं।

करने के बाद क़ुरआन का एक-एक लफ़्ज़ किताब में दर्ज कर दिया जाए। इस क़ायदे के मुताबिक़ क़ुरआन मजीद का एक मुस्तनद नुस्ख़ा तैयार करके उम्मुल-मोमिनीन हज़रत हफ़सा (रज़ि॰), नबी (सल्ल॰) की बीवी, के यहाँ रखवा दिया गया और लोगों को आम इजाज़त दे दी गई कि जो चाहे उसकी नक़ल करे और जो चाहे इससे मिलाकर अपने नुस्ख़े को ठीक कर ले।

क़ुरआन पढ़ने में यकसानियत

अरब में मुख़्तलिफ़ इलाक़ों और क़बीलों की बोलियों में वैसे ही फ़र्क़ पाए जाते थे, जैसे हमारे देश में शहर-शहर की बोली और ज़िले-ज़िले की बोली में फ़र्क़ है। हालाँकि ज़बान सबकी वही एक हिन्दी या उर्दू या पंजाबी या बंगाली वग़ैरह है। क़ुरआन मजीद हालाँकि उतरा उस ज़बान में था जो मक्का में क़ुरैश के लोग बोलते थे, लेकिन शुरू में इस बात की इजाज़त दे दी गई थी कि दूसरे इलाक़ों और क़बीलों के लोग अपने-अपने लहजे, अन्दाज़ और मुहावरे के मुताबिक़ इसे पढ़ लिया करें; क्योंकि इस तरह मानी में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था, सिर्फ़ इबारत उनके लिए नर्म हो जाती थी, लेकिन धीरे-धीरे जब इस्लाम फैला और अरब के लोगों ने दुनिया के एक बड़े हिस्से को फ़तह कर लिया और दूसरी क़ौमों के लोग भी इस्लाम में दाख़िल होने लगे और बड़े पैमाने पर अरब और ग़ैर-अरब के मेल-जोल से अरबी ज़बान पर भी असर पड़ने लगा, तो यह अन्देशा पैदा हुआ कि अगर अब भी दूसरे लहजों, अन्दाज़ों और मुहावरों के मुताबिक़ क़ुरआन पढ़ने की इजाज़त बाक़ी रही तो इससे तरह-तरह के फ़ितने खड़े हो जाएँगे। मिसाल के तौर पर यह कि एक आदमी किसी दूसरे आदमी को ग़ैर वाक़िफ़ तरीक़े पर अल्लाह के कलाम को पढ़ते हुए सुनेगा और यह समझकर उससे लड़ पड़ेगा कि वह जान-बूझकर अल्लाह के कलाम में रद्दो-बदल कर रहा है या यह कि अलफ़ाज़ के ये इख़्तिलाफ़ धीरे-धीरे हक़ीक़त में क़ुरआन में रद्दो-बदल का रास्ता खोल देंगे या यह कि अरब और ग़ैर-अरब के मेल-जोल से जिन लोगों की ज़बान बिगड़ेगी, वे अपनी बिगड़ी हुई ज़बान के मुताबिक़ क़ुरआन में हेर-फेर करके उसके कलाम के हुस्न और ख़ूबसूरती को बिगाड़ देंगे। इन वजहों से हज़रत उस्मान (रज़ि॰) ने सहाबा के मशवरे से यह तय किया कि तमाम इस्लामी मुल्कों में सिर्फ़ क़ुरआन के उस मेयारी और भरोसेमन्द नुस्ख़े को छापा जाए, जो हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के हुक्म से लिखा गया था और बाक़ी तमाम दूसरे लहजों, अन्दाज़ों और मुहावरों पर लिखे हुए नुस्ख़ों या हिस्सों को फैलाने पर पाबन्दी लगा दी

जाए।

आज जो क़ुरआन हमारे हाथों में है, यह ठीक-ठीक उसी नुस्ख़े के मुताबिक़ है जो हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि.) ने तैयार करवाया और जिसकी नक़लें हज़रत उस्मान (रज़ि.) ने सरकारी इन्तिज़ाम में तमाम इलाक़ों में भिजवाई थीं। इस वक़्त भी दुनिया में बहुत-सी जगहों पर क़ुरआन के वे मुस्तनद नुस्ख़े मौजूद हैं। किसी को अगर क़ुरआन के महफ़ूज़ होने में ज़र्रा बराबर भी शक हो तो वह अपना इत्मीनान इस तरह कर सकता है कि पश्चिमी अफ़्रीक़ा में किसी किताब की दुकान से क़ुरआन का एक नुस्ख़ा ख़रीदे और जावा में किसी हाफ़िज़ से ज़बानी क़ुरआन सुनकर उसको मिलाए और फिर दुनिया की बड़ी-बड़ी लाइब्रेरियों में हज़रत उस्मान (रज़ि.) के वक़्त से लेकर आज तक मुख़्तलिफ़ सदियों के लिखे हुए जो नुस्ख़े रखे हुए हैं उनसे इसको मिलाकर देख लें। अगर किसी हर्फ़ या किसी शोशे का फ़र्क़ वह पाए तो उसकी ज़िम्मेदारी है कि दुनिया को इस सबसे बड़ी तारीख़ी खोज से ज़रूर बाख़बर करे। कोई शक और शुब्हे की आदत रखनेवाला इनसान क़ुरआन को अल्लाह की तरफ़ से आई हुई किताब होने पर शक करना चाहे, तो कर सकता है; लेकिन यह बात कि जो क़ुरआन हमारे हाथ में है वह बिना किसी कमी-बेशी के ठीक वही क़ुरआन है, जो अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल.) ने दुनिया के सामने पेश किया था; यह तो ऐसी तारीख़ी हक़ीक़त है जिसमें किसी शक और शुब्हे की गुंजाइश ही नहीं है। इनसानी तारीख़ में कोई दूसरी किताब ऐसी नहीं पाई जाती जो इतनी मुस्तनद (प्रामाणिक) हो। अगर कोई आदमी इसके सही होने में शक करता है, तो वह फिर इसमें भी शक कर सकता है कि रोमन अम्पायर नाम की कोई सल्तनत दुनिया में रह चुकी है, और कभी मुगल भी हिन्दुस्तान पर हुकूमत कर चुके हैं और नेपोलियन नाम का कोई आदमी भी दुनिया में पाया गया है। ऐसी-ऐसी तारीख़ी हक़ीक़तों पर शक ज़ाहिर करना इल्म का नहीं, जिहालत का सुबूत है।

क़ुरआन से फ़ायदा उठाने के लिए कुछ ज़रूरी सुझाव

क़ुरआन एक ऐसी किताब है जिसकी तरफ़ दुनिया में बेशुमार इनसान बेशुमार मक़सद लेकर रुजूअ करते हैं। इन सबकी ज़रूरतों और मक़सदों को सामने रखकर कोई मशवरा देना इनसान के लिए मुमकिन नहीं है। ऐसे लोगों की भीड़ में मुझे सिर्फ़ उन लोगों से दिलचस्पी है, जो इसको समझना चाहते हैं और यह मालूम करना चाहते हैं कि यह किताब इनसान की ज़िन्दगी के मामलों में उसकी क्या रहनुमाई करती है। ऐसे लोगों

को मैं यहाँ क़ुरआन पढ़ने के तरीक़े के बारे में कुछ मशवरे दूँगा और कुछ उन मुश्किलों को दूर करने की कोशिश करूँगा, जो आम तौर से इनसान के सामने इस मामले में पेश आती हैं–

तास्सुब से पाक होकर क़ुरआन को पढ़ें

कोई आदमी चाहे क़ुरआन पर ईमान रखता हो या न रखता हो, बहरहाल अगर वह इस किताब को हक़ीक़त में समझना चाहता है तो सबसे पहला काम उसे यह करना चाहिए कि अपने दिलो-दिमाग़ को पहले से क़ायम किए हुए तसव्वुर और नज़रियों से और इसके हक़ में या इसके .ख़िलाफ़ मक़सदों से जिस हद तक मुमकिन हो .ख़ाली कर ले और समझने का .ख़ालिस मक़सद लेकर खुले दिल से इसको पढ़ना शुरू करे। जो लोग कुछ .ख़ास क़िस्म के .ख़याल दिमाग़ में लेकर इस किताब को पढ़ते हैं, वे इसकी लाइनों में अपने ही .ख़यालों को पढ़ते चले जाते हैं, क़ुरआन की उनको हवा भी नहीं लगने पाती। पढ़ने और मुताला करने का यह तरीक़ा किसी भी किताब के पढ़ने के लिए सही नहीं है। मगर .ख़ुसूसियत के साथ क़ुरआन तो इस तरीक़े से पढ़नेवालों के लिए अपनी मानी के दरवाज़े खोलता ही नहीं।

क़ुरआन को बार-बार पढ़ें

फिर जो आदमी सिर्फ़ थोड़ी-सी सुध-बुध हासिल करना चाहता हो उसके लिए तो शायद एक बार का पढ़ लेना काफ़ी हो जाए, मगर जो उसकी गहराइयों में उतरना चाहे उसके लिए दो-चार बार का पढ़ना भी काफ़ी नहीं हो सकता। उसको बार-बार पढ़ना चाहिए, हर बार एक .ख़ास ढंग से पढ़ना चाहिए और एक तालिबे-इल्म (विद्यार्थी) की तरह पेन और कॉपी साथ लेकर बैठना चाहिए, ताकि ज़रूरी बातें नोट करता जाए। इस तरह जो लोग पढ़ने को तैयार हों, उनको कम से कम दो बार पूरे क़ुरआन को सिर्फ़ इस मक़सद से पढ़ना चाहिए कि उनके सामने कुल मिलाकर काम और सोच का वह पूरा निज़ाम आ जाए, जिसे यह किताब सामने लाना चाहती है। इस शुरुआती मुताले के दौरान में वे क़ुरआन के पूरे मंज़र पर एक जामेअ (व्यापक) नज़र डालने की कोशिश करें और यह देखते जाएँ कि यह किताब कौन-से बुनियादी तसव्वुर पेश करती है। और फिर इन तसव्वुरों पर ज़िन्दगी का किस तरह का निज़ाम तामीर करती है। इस बीच अगर किसी जगह पर कोई सवाल मन में खटके तो उसपर वहीं उसी वक़्त कोई फ़ैसला न कर

बैठें, बल्कि उसे नोट कर लें और सब्र के साथ आगे मुताला जारी रखें। .ज्यादा उम्मीद इसी की है कि आगे कहीं न कहीं उन्हें इसका जवाब मिल जाएगा। अगर जवाब मिल जाए तो अपने सवाल के साथ उसे नोट कर लें, लेकिन अगर पहले मुताले के दौरान में उन्हें अपने किसी सवाल का जवाब न मिले, तो सब्र के साथ वे दूसरी बार पढ़ें। मैं अपने तजुर्बे की बुनियाद पर यह कहता हूँ कि दूसरी बार के गहरे मुताले में एक-आध ही सवाल ऐसे रहते हैं, जिनका जवाब मिलना बाक़ी रह जाता हो।

क़ुरआन से मुकम्मल हिदायत के लिए ऐसा भी करें

इस तरह क़ुरआन पर एक जामेआ (व्यापक) नज़र डाल लेने के बाद तफ़सील से पढ़ना शुरू करना चाहिए। इस सिलसिले में पढ़नेवाले को चाहिए कि वह क़ुरआन की तालीम का एक-एक पहलू मन में बिठाकर नोट करता जाए। मिसाल के तौर पर वह इस बात को समझने की कोशिश करे कि इनसानियत का कौन-सा नमूना है, जिसे क़ुरआन पसन्दीदा ठहराता है और किस नमूने के इनसान उसके नज़दीक नापसन्दीदा और धुत्कारे हुए हैं। इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए आदमी को चाहिए कि अपनी कॉपी पर एक तरफ़ 'पसन्दीदा इनसान' और दूसरी तरफ़ 'नापसन्दीदा इनसान' की .ख़ुसूसियतें आमने-सामने नोट करता चला जाए या मिसाल के तौर पर वह यह मालूम करने की कोशिश करे कि क़ुरआन के नज़दीक इनसान की कामयाबी और नजात का दारोमदार किन बातों पर है और क्या चीज़ें हैं, जिनको वह इनसान के लिए नुक़सान और हलाकत और बरबादी का सबब समझता है। इस बात को भी अच्छी तरह और तफ़सील से जानने का सही तरीक़ा यह है कि आदमी अपनी कॉपी पर 'फ़ायदे और कामयाबी के सबब' और 'घाटे के सबब' जैसे दो उनवान एक-दूसरे के मुक़ाबले में लिख ले और क़ुरआन पढ़ने के वक़्त हर दिन दोनों क़िस्म की चीज़ों को नोट करता चला जाए। इसी तरह अक़ीदे, अख़लाक़, हक़ और अधिकार, ज़िम्मेदारियाँ, सामाजिकता, तमद्दुन (संस्कृति), मईशत (अर्थ), सियासत, क़ानून, डिसिप्लीन (अनुशासन) सुलह, जंग और ज़िन्दगी के दूसरे मामलों में से एक-एक के बारे में क़ुरआन की हिदायतों को आदमी नोट करता चला जाए और यह समझने की कोशिश करे कि उनमें से हर-हर शोबे (विभाग) की मजमूई शक्ल क्या बनती है और फिर इन सबको मिलाकर जोड़ देने से ज़िन्दगी का पूरा नक़्शा किस तरह का बनता है।

फिर जब आदमी ज़िन्दगी के किसी .ख़ास मामले के बारे में तहक़ीक़ करना चाहे कि

क़ुरआन इसके बारे में क्या कहता है, तो इसके लिए सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि पहले वह इस मामले के बारे में पुराने और नए लिट्रेचर को अच्छी तरह पढ़कर वाज़ेह तौर पर यह मालूम कर ले कि इस मामले की बुनियादी बातें क्या हैं। इनसान ने अब तक इस पर क्या सोचा और समझा है। क्या मामले इसमें हल करने के हैं और कहाँ जाकर इनसानी सोच और फ़िक्र की गाड़ी अटक जाती है। इसके बाद इन्हीं हल करने लायक़ बातों को निगाह में रखकर आदमी को क़ुरआन का मुताला करना चाहिए। मेरा तजुर्बा है कि इस तरह जब आदमी किसी मामले की छान-बीन के लिए क़ुरआन पढ़ने बैठता है, तो उसे ऐसी-ऐसी आयतों में अपने सवालों का जवाब मिलता है जिन्हें वह इससे पहले बीसियों बार पढ़ चुका होता है और कभी उसके मन में भी यह बात नहीं आती कि यहाँ यह मज़मून भी छिपा हुआ है।

क़ुरआन की रूह से वाक़िफ़ होने का तरीक़ा

लेकिन क़ुरआन समझने की इन सारी तदबीरों के बावजूद आदमी क़ुरआन की रूह से पूरी तरह वाक़िफ़ नहीं होने पाता, जब तक कि अमली तौर पर वह काम न करे, जिसके लिए क़ुरआन आया है। यह सिर्फ़ नज़रियों और .ख़यालों की किताब नहीं है कि आप आराम कुर्सी पर बैठकर इसे पढ़ें और इसकी सारी बातें समझ जाएँ। यह दुनिया के आम मज़हबी तसव्वुर के मुताबिक़ एक निरी मज़हबी किताब भी नहीं है कि मदरसे और .ख़ानक़ाह में सारे राज़ (रहस्य) जान लिए जाएँ। जैसा कि शुरू में बताया जा चुका है कि यह एक पैग़ाम और तहरीक (आन्दोलन) की किताब है। इसने आते ही एक .ख़ामोश तबीअत के निहायत नेक इनसान को तनहाई से निकालकर .ख़ुदा से फिरी हुई दुनिया के मुक़ाबले में ला खड़ा किया। बातिल (असत्य) के ख़िलाफ़ उससे आवाज़ उठवाई और वक़्त के नाफ़रमानों, गुमराहों और बेदीनों से उसे लड़ा दिया। घर-घर से एक-एक पाक रूह और पाकीज़ा नफ़्स को खींच-खींचकर लाई और हक़ की तरफ़ बुलानेवाले के झण्डे तले उन सबको इकट्ठा किया। कोने-कोने से एक-एक फ़ितना पैदा करनेवाले और फ़साद फैलानेवाले को चेलैंज देकर उठाया और हक़ के माननेवालों से उनकी जंग कराई। एक अकेले आदमी की पुकार से अपना काम शुरू करके अल्लाह की हुकूमत क़ायम करने तक पूरे 23 साल यही किताब उस अज़ीमुश्शान तहरीक की रहनुमाई करती रही और हक़ व नाहक़ की इस लम्बी और जानलेवा कश-म-कश के दौरान में एक-एक मंज़िल और एक-एक मरहले पर इसी ने .ख़राबी की वजहें और तामीर के तरीक़े बताए।

अब भला यह कैसे मुमकिन है कि आप सिरे से कुफ़्र और दीन के झगड़े और इस्लाम और जाहिलियत की कश-म-कश के मैदान में क़दम ही न रखें। और इस कश-म-कश की किसी मंज़िल से गुज़रने का आपको मौक़ा ही न मिला हो और फिर सिर्फ़ क़ुरआन के लफ़्ज़ पढ़-पढ़कर उसकी सारी हक़ीक़तें सामने आ जाएँ। इसे तो पूरी तरह आप उसी वक़्त समझ सकते हैं, जब आप इसे लेकर उठें और लोगों को अल्लाह की तरफ़ बुलाने का काम शुरू करें। और जिस-जिस तरह यह किताब रहनुमाई करती जाए, उस -उस तरह क़दम उठाते चले जाएँ; तब वे सारे तजुर्बे आपको पेश आएँगे जो क़ुरआन उतरने के वक़्त पेश आए थे। मक्का, हब्श और ताइफ़ की मंज़िलें भी आप देखेंगे और बद्र और उहुद से लेकर हुनैन और तबूक तक के मरहले भी आपके सामने आएँगे। अबू-जहल और अबू-लहब जैसे इस्लाम-दुश्मनों से भी आपको वास्ता पड़ेगा। मुनाफ़िक़ और यहूदी भी आपको मिलेंगे। और सबसे पहले ईमान लानेवालों से लेकर ऐसे लोग जो अभी इस्लाम में नहीं आए हैं, सभी तरह के इनसानी नमूने आप देख भी लेंगे और बरत भी लेंगे। यह एक और ही तरह का 'सुलूक' है, जिसे मैं 'सुलूके-क़ुरआनी' कहता हूँ। इस सुलूक की शान यह है कि इसकी जिस- जिस मंज़िल से आप गुज़रते जाएँगे क़ुरआन की कुछ सूरतें और आयतें .ख़ुद सामने आकर आपको बताती चली जाएँगी कि वे इसी मंज़िल पर उतरी थीं और यह हिदायत लेकर आई थीं। उस वक़्त यह तो मुमकिन है कि लफ़्ज़, नह्व (व्याकरण) और मानी और बयान की कुछ बारीकियाँ सालिक की निगाह से छिपी रह जाएँ, लेकिन यह मुमकिन नहीं है कि क़ुरआन अपनी रूह को उसके सामने खोलकर लाने में कंजूसी कर जाए।

फिर इसी बुनियादी उसूल के मुताबिक़ क़ुरआन के अहकाम, इसकी अख़्लाक़ी तालीम, इसकी मआशी और तमद्दुनी हिदायतें और ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ पहलुओं के बारे में इसके बताए हुए उसूल और क़ानून आदमी की समझ में उस वक़्त तक आ ही नहीं सकते, जब तक कि वह अमली तौर पर इसको बरत कर न देखे। न वह आदमी इस किताब को समझ सकता है, जिसने अपनी इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) ज़िन्दगी को इसकी पैरवी से आज़ाद कर रखा हो और न वह क़ौम इससे पूरे तौर पर वाक़िफ़ हो सकती है जिसके सारे ही इज्तिमाई और समाजी इदारे इसके बताए हुए रवैये के ख़िलाफ़ चल रहे हों।

क़ुरआन की तालीम हमेशा के लिए है

क़ुरआन के इस दावे को हर आदमी जानता है कि वह सारे ही इनसानों की रहनुमाई के लिए आया है, मगर जब कोई आदमी उसको पढ़ने बैठता है तो देखता है कि उसकी बात का रुख़ .ज़्यादातर अपने उतरने के वक़्त के अरबवालों की तरफ़ है। हालाँकि कभी-कभी वह सारे इनसानों और आम लोगों को भी पुकारता है, लेकिन .ज़्यादातर बातें वह ऐसी कहता है जो अरब के लोगों के मिज़ाज, अरब ही के माहौल, अरब ही के इतिहास और अरब ही के रस्म-रिवाज से ताल्लुक़ रखती हैं। इन चीज़ों को देखकर आदमी सोचने लगता है कि जो चीज़ आम इनसानों की रहनुमाई के लिए उतारी गई थी उसमें वक़्ती, मक़ामी और क़ौमी असर इतना .ज़्यादा क्यों है। इस मामले की हक़ीक़त को न सझने की वजह से कुछ लोग इस शक में पड़ जाते हैं कि शायद यह चीज़ असल में तो अपने उतरने के वक़्त के अरबों ही के सुधार के लिए थीं, लेकिन बाद में ज़बरदस्ती खींच-तानकर उसे तमाम इनसानों के लिए और हमेशा के लिए रहनुमाई की किताब क़रार दे दिया गया।

जो आदमी यह सवाल सिर्फ़ सवाल के लिए नहीं करता, बल्कि हक़ीक़त में उसे समझना चाहता है उसे मैं मशवरा दूँगा कि वह पहले .ख़ुद क़ुरआन की तालीम को, जो हमेशा के लिए है, पढ़कर ज़रा उन जगहों पर निशान लगाए जहाँ उसने कोई ऐसा अक़ीदा, या .ख़याल या तसव्वुर पेश किया हो या कोई ऐसा अख़लाक़ी उसूल या अमली क़ायदा और ज़ाब्ता बयान किया हो जो सिर्फ़ अरब ही के लिए .ख़ास हो और जिसको वक़्त, ज़माने और मक़ाम ने हक़ीक़त में महदूद कर रखा हो। सिर्फ़ यह बात कि वह एक .ख़ास जगह या ज़माने के लोगों को ख़िताब करके उनके मुशरिकाना अक़ीदों और रस्म-रिवाजों का रद्द करता है। उन्हीं के आसपास की चीज़ों को दलील के तौर पर लेकर तौहीद (एकेश्वरवाद) की दलीलें ले आता है, यह फ़ैसला कर देने के लिए काफ़ी नहीं है कि उसकी दावत और उसकी अपील भी वक़्ती और मक़ामी है। देखना यह चाहिए कि शिर्क के रद्द में जो कुछ वह कहता है, क्या वह दुनिया के हर शिर्क पर उसी तरह सही नहीं उतरता जिस तरह अरब के मुशरिकों के शिर्क पर सही उतरता है? क्या इन्हीं दलीलों को हम हर ज़माने और हर मुल्क के मुशरिकों के .ख़याल की इस्लाह के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकते? और क्या तौहीद साबित करने के लिए क़ुरआन के दलील देने के तरीक़े को थोड़े-से रद्दो-बदल के साथ हर वक़्त, हर जगह काम में लाया

नहीं जा सकता? अगर जवाब हाँ में है, तो फिर कोई वजह नहीं कि एक आलमगीर तालीम को सिर्फ़ इस वजह से वक़्ती और मक़ामी समझ लिया जाए कि एक ख़ास वक़्त में एक ख़ास क़ौम को ख़िताब करके वह पेश की गई थी। दुनिया का कोई फ़लसफ़ा और ज़िन्दगी का कोई निज़ाम और कोई मज़हबे-फ़िक्र (विचारधारा) ऐसा नहीं है जिसकी सारी बातें शुरू से आख़िर तक तजरीदी (Abstract) अन्दाज़ में पेश की गई हों और किसी तयशुदा हालत या सूरत पर उसको फिट करके उनको वाज़ेह न किया गया हो। ऐसा मुकम्मल अन्दाज़ एक तो मुमकिन नहीं है और मुमकिन हो भी तो जो चीज़ इस तरीक़े पर पेश की जाएगी वह सिर्फ़ काग़ज़ के पन्नों ही पर रह जाएगी, इनसानों की ज़िन्दगी में उसका दाख़िल होकर एक अमली निज़ाम में तबदील होना मुश्किल है।

फिर किसी फ़िक्री, अख़लाक़ी और तमद्दुनी तहरीक को अगर आलमी पैमाने पर फैलाना मक़सद हो तो इसके लिए भी यह हरगिज़ ज़रूरी नहीं है, बल्कि सच यह है कि मुफ़ीद भी नहीं है कि शुरू से उसको बिलकुल ही आलमी बनाने की कोशिश की जाए। हक़ीक़त में इसका सही अमली तरीक़ा सिर्फ़ एक ही है और वह यह है कि जिन विचारों, उसूलों और नज़रियों पर वह तहरीक इनसानी ज़िन्दगी के निज़ाम को क़ायम करना चाहती है, उन्हें पूरी क़ुव्वत के साथ ख़ुद उस मुल्क में पेश किया जाए जहाँ से उसकी दावत उठी हो; उन लोगों के दिल व दिमाग़ में बिठाया जाए जिनकी ज़बान, मिज़ाज, आदत और रुझानों से उस तहरीक के चलानेवाले अच्छी तरह वाक़िफ़ हों और फिर अपने ही मुल्क में उन उसूलों को अमली तौर पर बरत कर और उनपर ज़िन्दगी का एक कामयाब निज़ाम चलाकर दुनिया के सामने नमूना पेश किया जाए। तभी दूसरी क़ौमें उसकी तरफ़ ध्यान देंगी और उनके समझदार लोग ख़ुद आगे बढ़कर उसे समझने और अपने मुल्क में रिवाज देने की कोशिश करेंगे। इसलिए सिर्फ़ यह बात कि किसी फ़िक्र और अमल के निज़ाम को शुरू में एक ही क़ौम के सामने पेश किया गया था और दलीलों का सारा ज़ोर उसी को समझाने और इत्मीनान दिलाने पर लगा दिया गया था, इस बात की दलील नहीं है कि वह फ़िक्र और अमल का निज़ाम सिर्फ़ क़ौमी (राष्ट्रीय) है। हक़ीक़त में जो ख़ुसूसियतें एक क़ौमी निज़ाम को एक आलमी निज़ाम से और एक वक़्ती निज़ाम को एक अबदी निज़ाम से अलग करती हैं वे ये हैं कि क़ौमी निज़ाम या तो एक क़ौम की बरतरी और उसके ख़ास हक़ और अधिकारों का दावेदार होता है या अपने अन्दर कुछ ऐसे उसूल और नज़रिए रखता हो, जो दूसरी क़ौमों में नहीं चल सकते। इसके बरख़िलाफ़ जो निज़ाम आलमी होता है वह तमाम इनसानों को बराबर का

दरजा और बराबर के हक़ देने के लिए तैयार होता है और उसके उसूलों में भी आलमगीरियत पाई जाती है। इसी तरह एक वक़्ती निज़ाम लाज़िमी तौर पर अपनी बुनियाद कुछ ऐसे उसूलों पर रखता है, जो ज़माने की कुछ पलटियों के बाद वाज़ेह तौर पर अमल के लायक़ नहीं रह जाते। इसके बरख़िलाफ़ एक अबदी (हमेशा रहनेवाला) निज़ाम के उसूल तमाम बदलते हुए हालात पर फिट होते चले जाते हैं। इन ख़ुसूसियतों को निगाह में रखकर कोई आदमी ख़ुद क़ुरआन को पढ़े और उन चीज़ों को ज़रा तय करने की कोशिश करे, जिनकी बुनियाद पर वाक़ई यह गुमान किया जा सकता हो कि क़ुरआन का पेश किया हुआ निज़ाम वक़्ती और क़ौमी है।

एक उलझन और उसका हल

क़ुरआन के बारे में यह बात भी एक आम पढ़नेवाले के कान में पड़ी हुई होती है कि यह एक तफ़सीली हिदायतनामा और क़ानून की किताब है। मगर जब वह इसे पढ़ता है तो इसमें समाज, तमद्दुन, सियासत और मईशत (अर्थ) वग़ैरह के तफ़सीली अहकाम और ज़ाब्ते उसे नहीं मिलते, बल्कि वह देखता है कि नमाज़ और ज़कात जैसे फ़र्ज़ और ज़रूरी कामों के बारे में भी जिनपर क़ुरआन बार-बार इतना ज़ोर देता है, इसने कोई ऐसा ज़ाब्ता नहीं बनाया है जिसमें तमाम ज़रूरी अहकाम की तफ़सील मौजूद हो। यह चीज़ भी आदमी के मन में उलझन पैदा करती है कि आख़िर यह किस माने में हिदायतनामा है।

इस मामले में सारी उलझन सिर्फ़ इसलिए पैदा होती है कि आदमी की निगाह से हक़ीक़त का एक पहलू बिलकुल ओझल रह जाता है, यानी यह कि ख़ुदा ने सिर्फ़ किताब ही नहीं उतारी थी, बल्कि पैग़म्बर भी भेजा था। अगर असल स्कीम यह हो कि बस तामीर का एक नक़्शा लोगों को दे दिया जाए और लोग उसके मुताबिक़ ख़ुद इमारत बना लें, तो इस सूरत में बेशक तामीर के एक-एक काम की तफ़सील हमको मिलनी चाहिए। लेकिन जब तामीरी हिदायतों के साथ एक इंजीनियर भी सरकारी तौर पर मुक़र्रर कर दिया जाए और वह उन हिदायतों के मुताबिक़ एक इमारत बनाकर खड़ी कर दे, तो फिर इंजीनियर और उसकी बनाई हुई इमारत को छोड़कर सिर्फ़ नक़्शे ही में तमाम छोटी-बड़ी चीज़ों को तलाश करना और फिर उसे न पाकर नक़्शे के नामुकम्मल होने का शिकवा करना ग़लत है। क़ुरआन उसूल और बुनियादी क़ायदों और ज़ाब्तों की किताब है। इसमें ग़ैर-बुनियादी और छोटी-छोटी (आंशिक) बातें बयान नहीं की गई हैं। क़ुरआन का असल काम यह है कि इस्लामी निज़ाम की फ़िक्री (वैचारिक) और अख़लाक़ी

बुनियादों को अच्छी तरह वाज़ेह करके न सिर्फ़ पेश करे, बल्कि अक़्ली दलीलों और जज़्बाती अपील दोनों तरीक़ों से ख़ूब मज़बूत भी कर दे। अब रही इस्लामी ज़िन्दगी की अमली सूरत, तो इस मामले में वह इनसान की रहनुमाई इस तरीक़े से नहीं करता कि ज़िन्दगी के एक-एक पहलू के बारे में तफ़सीली ज़ाब्ते और क़ानून बनाए, बल्कि वह ज़िन्दगी के हर पहलू की ज़रूरी और ख़ास हदें बता देता है और नुमायाँ तौर पर कुछ जगहों पर निशानी के पत्थर खड़े कर देता है, जो इस बात को तय कर देते हैं कि अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ इन शोबों (विभागों) का क़ियाम और तामीर किन लाइनों पर होनी चाहिए। इन हिदायतों के मुताबिक़ अमली तौर पर इस्लामी ज़िन्दगी का नक़्शा बनाना नबी (सल्ल॰) का काम था। उन्हें मुक़र्रर ही इसलिए किया गया था कि दुनिया को उस इनफ़िरादी सीरत और किरदार और उस समाज और हुकूमत का नमूना दिखा दे, जो क़ुरआन के दिए हुए उसूलों की अमली शक्ल हो।

क़ुरआनी हुक्मों के अलग-अलग मतलब

एक और सवाल जो आम तौर से लोगों के मन में खटकता है वह यह है कि एक तरह तो क़ुरआन उन लोगों को बहुत मलामत करता है जो अल्लाह की किताब के आ जाने के बाद फ़िरक़ेबन्दी और इख़्तिलाफ़ में पड़ जाते हैं और अपने दीन के टुकड़े कर डालते हैं और दूसरी तरफ़ क़ुरआन के अहकाम को वाज़ेह करने और उनका मतलब समझने में सिर्फ़ बाद के लोगों में ही नहीं, इमामों, ताबईन (सहाबा के बाद के लोगों) और ख़ुद सहाबा तक के दरम्यान इतने इख़्तिलाफ़ पाए जाते हैं कि शायद कोई एक भी अहकामी (आदेश-सम्बन्धी) आयत ऐसी न मिलेगी, जिसके किसी एक मतलब या मानी पर सब एक राय हों। क्या ये सब लोग उस मलामत के हक़दार हैं, जो क़ुरआन में की गई है? अगर नहीं तो फिर वह कौन-सी फ़िरक़ाबन्दी और इख़्तिलाफ़ है, जिससे क़ुरआन रोकता है?

यह एक मसला है जिसके बहुत-से पहलू हैं, जिसपर तफ़सील से बात करने का यह मौक़ा नहीं है। यहाँ क़ुरआन के एक आम तालिबे-इल्म की उलझन दूर करने के लिए सिर्फ़ इतना इशारा काफ़ी है कि क़ुरआन उस सेहतबख़्श राय के इख़्तिलाफ़ का मुख़ालिफ़ नहीं है, जो दीन में एक राय और इस्लामी उम्मत में एक रहते हुए सिर्फ़ अहकाम और क़ानूनों की तफ़सीली शक्ल समझने के मक़सद से मुख़लिसाना तहक़ीक़ की बुनियाद पर की जाए, बल्कि वह मलामत उस इख़्तिलाफ़ की करता है जो नफ़सानियत और निगाह

के टेढ़पन से शुरू हो और फ़िरक़ाबन्दी और आपसी झगड़ों तक नौबत पहुँचा दे। ये दोनों तरह के इख़्तिलाफ़ न अपनी हक़ीक़त में बराबर हैं और न अपने नतीजों में एक-दूसरे से किसी तरह मिलते हैं कि दोनों को एक ही लकड़ी से हाँक दिया जाए। पहली तरह का इख़्तिलाफ़ तो तरक्क़ी की जान और ज़िन्दगी की रूह है। वह हर उस समाज में पाया जाएगा, जो अक्ल व फ़िक्र रखनेवाले लोगों पर सम्मिलित है। उसका पाया जाना ज़िन्दगी की निशानी है और उससे .ख़ाली सिर्फ़ वही समाज हो सकता है जो दिल और दिमाग़ रखनेवाले समझदार इनसानों से नहीं, बल्कि लकड़ी के कुन्दों से बना हो। रहा दूसरी तरह का इख़्तिलाफ़ तो एक दुनिया जानती है कि उसने जिस गरोह में भी सर उठाया उसे टुकड़े-टुकड़े करके छोड़ा। उसका ज़ाहिर होना सेहत की नहीं, बल्कि बीमारी की निशानी है और उसके नतीजे कभी किसी उम्मत के हक़ में भी फ़ायदेमन्द नहीं हो सकते। इन दोनों क़िस्म के इख़्तिलाफ़ का फ़र्क़ वाज़ेह तौर पर यूँ समझिए कि–

एक सूरत तो वह है जिसमें .ख़ुदा और रसूल की इताअत पर जमाअत के सब लोग एक राय हों, इस बात पर भी सब लोग एक राय हों कि अहकाम और हिदायतों का असूल माख़ज़ (स्रोत) क़ुरआन और सुन्नत है और फिर दो आलिम किसी ग़ैर-बुनियादी और छोटे मसले की तहक़ीक़ में या दो क़ाज़ी (जज) किसी मुक़द्दमे के फ़ैसले में एक-दूसरे से इख़्तिलाफ़ करें, मगर उनमें से कोई भी न तो इस मसले को और इसमें अपनी राय को दीन का दारोमदार बनाए और न इससे इख़्तिलाफ़ करनेवाले को दीन से बाहर ठहराए, बल्कि दोनों अपनी-अपनी दलीलें देकर अपनी हद तक तहक़ीक़ का हक़ अदा करें। और यह बात आम लोगों पर या अगर अदालती मसला हो तो मुल्क की आख़िरी अदालत पर या अगर इज्तिमाई मामला हो तो जमाअत के निज़ाम पर छोड़ दें कि वे दोनों रायों में से जिसको चाहें क़बूल करें या दोनों को जाइज़ रखें।

दूसरी सूरत यह है कि इख़्तिलाफ़ सिरे से दीन की बुनियादों ही में कर डाला जाए या यह कि कोई आलिम या कोई सूफ़ी या मुफ़्ती या तर्जमान या लीडर किसी ऐसे मामले में जिसको .ख़ुदा और रसूल ने दीन का बुनियादी मसला नहीं बताया था, एक राय अपनाए और ख़ामख़ाह खींच-तानकर उसे दीन का बुनियादी मसला बना डाले। और फिर जो उससे इख़्तिलाफ़ करे उसको दीन और मिल्लत से निकल जानेवाला कह डाले और अपने हामियों का एक जत्था बनाकर कहे कि इस्लाम के माननेवाले असल में ये हैं, बाक़ी सब (बेदीन और) जहन्नमी हैं और हाँक-पुकारकर कहे कि मुस्लिम है तो बस इस जत्थे में आ जा, वरना तू मुस्लिम ही नहीं है।

क़ुरआन ने जहाँ कहीं भी इख़्तिलाफ़ और फ़िरक़ाबन्दी की मुख़ालफ़त की है, उससे उसकी मुराद यह दूसरी तरह का इख़्तिलाफ़ ही है। रहा पहली तरह का इख़्तिलाफ़ तो इसकी बहुत-सी मिसालें ख़ुद नबी (सल्ल०) के सामने पेश आ चुकी थीं। और नबी (सल्ल०) ने सिर्फ़ यही नहीं कि उसको जाइज़ रखा, बल्कि उसकी तारीफ़ भी की; इसलिए कि वह इख़्तिलाफ़ तो इस बात का पता देता है कि समाज में ग़ौर व फ़िक्र और खोज व छान-बीन और सूझ-बूझ की सलाहियतें मौजूद हैं और समाज के समझदार लोगों को अपने दीन से और उसके अहकाम से दिलचस्पी है। और उनके दिमाग़ अपनी ज़िन्दगी के मामलों का हल दीन बाहर नहीं, बल्कि उसके अन्दर ही तलाश करते हैं। समाज कुल मिलाकर इस सुनहरे क़ायदे पर अमल कर रहा है कि उसूल में एक राय रहकर अपनी एकता भी बाक़ी रखे और फिर अपने आलिमों और ग़ौर-फ़िक्र करनेवालों को सही हदों के अन्दर तहक़ीक़ और इजतिहाद (यानी इस्लामी तालीम की रौशनी में हल निकालने) की आज़ादी देकर तरक़्क़ी के मौक़े भी बाक़ी रखे।

'यह मेरी राय है, जाननेवाला तो अल्लाह ही है। उसी पर मेरा भरोसा है और उसकी तरफ़ मैं रुजूअ होता हूँ।'

इस दीबाचे में उन तमाम मामलों को समेटना मेरा मक़सद नहीं है, जो क़ुरआन पढ़ते वक़्त एक पढ़नेवाले के दिमाग़ में पैदा होते हैं; इसलिए कि इन सवालों का ज़्यादातर हिस्सा ऐसा है जो किसी न किसी आयत या सूरा के सामने आने पर मन को खटकता है और उसका जवाब *'तफ़हीमुल-क़ुरआन'* में मौक़े-मौक़े पर दे दिया गया है। इसलिए ऐसे सवालों को छोड़कर मैंने यहाँ सिर्फ़ उन जामेअ (व्यापक) मसलों पर बात की है, जो कुल मिलाकर पूरे क़ुरआन से ताल्लुक़ रखते हैं। पढ़नेवालों से मेरी गुज़ारिश है कि सिर्फ़ इस दीबाचे को देखकर ही इसके अधूरे होने का फ़ैसला न कर दें, बल्कि पूरी किताब *(तफ़हीमुल-क़ुरआन)* देखने के बाद अगर उनके मन में कुछ सवाल के जवाब देने लायक़ बाक़ी रह जाएँ या किसी सवाल के जवाब को वे नाकाफ़ी पाएँ, तो मुझे उससे बाख़बर करें।

☆☆☆

1. अल-फ़ातिहा

परिचय

नाम

इसका नाम 'अल-फ़ातिहा' इसके मज़मून (विषय) की मुनासिबत से है। 'फ़ातिहा' उस चीज़ को कहते हैं जिससे किसी मज़मून या किताब या किसी चीज़ की शुरुआत हो। दूसरे लफ़्ज़ों में यूँ समझिए कि यह नाम दीबाचा (भूमिका) और आग़ाज़े-कलाम (प्राक्कथन) का हममानी है।

उतरने का ज़माना

यह हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की नुबूवत के बिलकुल शुरुआती ज़माने की सूरा है, बल्कि भरोसेमन्द रिवायतों से मालूम होता है कि सबसे पहली मुकम्मल सूरा जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर उतरी, वह यही है। इससे पहले सिर्फ़ अलग-अलग आयतें उतरी थीं जो सूरा-96 अलक़, सूरा-73 मुज़्ज़म्मिल और सूरा-74 मुद्दस्सिर वग़ैरा में शामिल हैं।

मज़मून (विषय-वस्तु)

असल में यह सूरा एक दुआ है जो ख़ुदा ने हर उस इनसान को सिखाई है जो उसकी किताब को पढ़ना शुरू कर रहा हो। किताब के शुरू में इसको रखने का मतलब यह है कि अगर तुम हक़ीक़त में इस किताब से फ़ायदा उठाना चाहते हो तो पहले ख़ुदावन्दे-आलम (जगत्-स्वामी) से यह दुआ करो।

इनसान फ़ितरी तौर पर दुआ उसी चीज़ की किया करता है जिसकी तलब और ख़ाहिश उसके दिल में होती है, और उसी सूरत में करता है, जबकि उसे यह एहसास हो कि उसकी वह चीज़ जिसकी वह चाहत रखता है उस हस्ती के इख़्तियार में है जिससे वह दुआ कर रहा है। इसलिए क़ुरआन के शुरू में इस दुआ को सिखाकर मानो इनसान को यह नसीहत की गई है कि वह इस किताब को सीधे रास्ते की तलाश के लिए पढ़े, हक़ को हासिल करनेवाले की सी ज़ेहनियत लेकर पढ़े और यह जान ले कि इल्म (ज्ञान) का सरचश्मा ख़ुदावन्दे-आलम है, इसलिए उसी से रहनुमाई की दरख़ास्त करके पढ़ना शुरू करे।

इस मज़मून (विषय) को समझ लेने के बाद यह बात ख़ुद वाज़ेह हो जाती है कि क़ुरआन और सूरा फ़ातिहा के बीच हक़ीक़ी ताल्लुक़ किताब और उसके दीबाचा का-सा नहीं, बल्कि दुआ और दुआ के जवाब का-सा है। सूरा फ़ातिहा एक दुआ है बन्दे की तरफ़ से और क़ुरआन उसका जवाब है ख़ुदा की तरफ़ से। बन्दा दुआ करता है कि "ऐ रब! मेरी रहनुमाई कर।" जवाब में रब पूरा क़ुरआन उसके सामने रख देता है कि यह है वह हिदायत और रहनुमाई जिसकी दरख़ास्त तूने मुझसे की है।

☆☆☆

(١) سُوْرَةُ الْفَاتِحَةِ مَكِّيَّةٌ (٥) آيَاتُهَا ٧ رُكُوْعُهَا ١

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝١ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۝٢ مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ۝٣

1. अल-फ़ातिहा

(मक्का में उतरी, आयतें 7)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।[1]

(1) तारीफ़ अल्लाह ही के लिए है[2] जो सारे जहान का रब (पालनहार)[3] है, (2) रहमान और रहीम है[4], (3) बदला दिए जाने के दिन का मालिक है।[5]

1. इस्लाम जो अदब और तहज़ीब इनसान को सिखाता है उसके क़ायदों में से एक क़ायदा यह भी है कि वह अपने हर काम की शुरुआत ख़ुदा के नाम से करे। इस क़ायदे की पाबन्दी अगर सोच-समझकर और सच्चे दिल से की जाए तो इससे लाज़मी तौर पर तीन फ़ायदे हासिल होंगे—एक यह कि आदमी बहुत-से बुरे कामों से बच जाएगा, क्योंकि ख़ुदा का नाम लेने की आदत उसे हर काम शुरू करते वक़्त यह सोचने पर मजबूर कर देगी कि क्या हक़ीक़त में मैं इस काम पर ख़ुदा का नाम लेने का हक़ रखता हूँ?
दूसरा यह कि जाइज़ और सही और नेक कामों की शुरुआत करते हुए ख़ुदा का नाम लेने से आदमी की ज़ेहनियत (बुद्धि) बिलकुल ठीक रुख़ अपना लेगी और वह हमेशा सबसे सही नुक्ते से अपने काम की शुरुआत करेगा।
तीसरा और सबसे बड़ा फ़ायदा यह है कि जब वह ख़ुदा के नाम से अपना काम शुरू करेगा तो उस काम में ख़ुदा उसकी मदद करेगा और उस काम के करने की उसे ताक़त देगा, उसकी कोशिश में बरकत डाली जाएगी और शैतान की रुकावटों और बिगाड़ों से उसे बचाया जाएगा। ख़ुदा का तरीक़ा यह है कि जब बन्दा उसकी तरफ़ तवज्जोह करता है तो वह भी बन्दे की तरफ़ तवज्जोह करता है।
2. जैसा कि हम इस सूरा के तआरुफ़ (परिचय) में बयान कर चुके हैं कि सूरा फ़ातिहा असल में तो एक दुआ है, लेकिन दुआ की शुरुआत उस हस्ती की तारीफ़ से की जा रही है जिससे हम दुआ माँगना चाहते हैं। इसमें मानो यह बात सिखाई जा रही है कि दुआ जब माँगो तो अदब और मुहज़्ज़ब तरीक़े से माँगो। यह कोई तहज़ीब नहीं है कि मुँह खोलते ही झट अपना मतलब

पेश कर दिया। अदब और तहज़ीब का तक़ाज़ा यह है कि जिससे दुआ कर रहे हो, पहले उसकी ख़ूबी को, उसके एहसानों को और उसके मर्तबे को तस्लीम करो।

तारीफ़ हम जिसकी भी करते हैं, दो वजहों से किया करते हैं। एक यह कि वह ख़ुद में हुस्नो-ख़ूबी और कमाल रखता हो। यह देखे बिना कि हमपर उसकी इन मेहरबानियों का क्या असर है। दूसरा यह कि वह हमारा मुहसिन (उपकारक) हो और हम नेमत को तस्लीम करने के जज़बे से लबरेज़ होकर उसकी ख़ूबियाँ बयान करें। अल्लाह की तारीफ़ इन दोनों हैसियतों से है। यह हमारी क़द्रशनाशी का तक़ाज़ा भी है और एहसानशनासी (एहसानों को तस्लीम करने) का भी कि हमारी ज़बान हर वक़्त उसकी तारीफ़ बयान करने में लगी रहे।

और बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि तारीफ़ अल्लाह के लिए है बल्कि सही यह है कि तारीफ़ 'अल्लाह ही के लिए' है। यह बात कहकर एक बड़ी हक़ीक़त पर से परदा उठाया गया है और वह हक़ीक़त ऐसी है जिसकी पहली ही चोट से मख़लूक़-परस्ती (सृष्टि-पूजा) की जड़ कट जाती है। दुनिया में जहाँ, जिस चीज़ और जिस शक्ल में भी कोई हुस्न (सौन्दर्य), कोई ख़ूबी, कोई कमाल (पूर्णता) है, उसका सरचश्मा (स्त्रोत) अल्लाह ही की ज़ात है, किसी इनसान, किसी फ़रिश्ते, किसी देवता, किसी सितारे ग़रज़ किसी मख़लूक़ का कमाल भी उसका अपना नहीं है, बल्कि अल्लाह का दिया हुआ है। इसलिए अगर कोई इसका हक़दार है कि हम उसके गिर्वीदा (दीवाना) और परस्तार, एहसानमन्द और शुक्रगुज़ार, नियाज़मन्द और ख़ादिम बनें तो वह ख़ालिक़े-कमाल (कमाल का पैदा करनेवाला) है, न कि कमालवाला।

3. 'रब्ब' (रब) का लफ़्ज़ अरबी ज़बान में तीन मानी में बोला जाता है – (1) मालिक और आक़ा, (2) तर्बियत करनेवाला, पालने-पोसनेवाला, ख़बरगीरी और देखभाल करनेवाला, और (3) शासक, हाकिम, मुदब्बिर (नियंता) और इंतिज़ाम करनेवाला। अल्लाह इन सभी मानी में कायनात का रब है।

4. इनसान की ख़ुसूसियत है कि जब कोई चीज़ उसकी निगाह में बहुत ज़्यादा होती है, तो वह मुबालग़ा (अतिशयोक्ति) के सेग़ों में उसको बयान करता है। अगर एक मुबालग़ा (अतिशयोक्ति) का लफ़्ज़ बोलकर वह महसूस करता है कि उस चीज़ की फ़रावानी का हक़ अदा नहीं हुआ, तो फिर वह उसी मानी का एक और लफ़्ज़ बोलता है, ताकि वह कमी पूरी हो जाए जो उसके नज़दीक मुबालग़ा में रह गई है। अल्लाह की तारीफ़ (प्रशंसा) में 'रहमान' (अत्यंत करुणामय) का लफ़्ज़ इस्तेमाल करने के बाद फिर 'रहीम' (अत्यंत दयावान) का लफ़्ज़ बढ़ा देने में भी यही बात छिपी हुई है। 'रहमान' अरबी ज़बान में बड़े मुबालग़े का रूट (सेग़ा) है, लेकिन अल्लाह की रहमत (दयालुता) और मेहरबानी अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) पर इतनी ज़्यादा है, इतनी फैली हुई है, ऐसी बेहदो-हिसाब है कि उसके बयान में बड़े से बड़ा मुबालग़े का लफ़्ज़ बोलकर भी जी नहीं भरता। इसलिए उसकी फ़रावानी का हक़ अदा करने के लिए फिर 'रहीम' का लफ़्ज़ और बढ़ा दिया गया है। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे हम किसी शख़्स की फ़य्याज़ी (दानशीलता) के बयान में सख़ी (दाता) का लफ़्ज़ बोलकर जब तिश्नगी (यानी कुछ कमी) महसूस करते हैं तो इस पर 'दाता' का इज़ाफ़ा करते हैं। रंग की तारीफ़ (प्रशंसा) में जब 'गोरे' को काफ़ी नहीं पाते तो उस पर 'चिट्टे' का लफ़्ज़ और बढ़ा देते हैं। लम्बे क़द के ज़िक्र में जब 'लम्बा' कहने से तसल्ली नहीं होती तो उसके बाद 'तंड़गा' भी कहते हैं।

إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَإِيَّاكَ نَسْتَعِينُ ﴿٤﴾
اهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيمَ ﴿٥﴾ صِرَاطَ
الَّذِينَ أَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۙ غَيْرِ
الْمَغْضُوبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّالِّينَ ﴿٧﴾ ع

(4) हम तेरी ही इबादत[6] करते हैं और तुझी से मदद माँगते हैं।[7] (5) हमें सीधा रास्ता दिखा[8], (6) उन लोगों का रास्ता जिनपर तूने इनाम किया[9], (7) जो मातूब (प्रकोप के शिकार) नहीं हुए, जो भटके हुए नहीं हैं।[10]

5. यानी उस दिन का मालिक है जबकि तमाम अगली-पिछली नस्लों को जमा करके उनकी ज़िन्दगी के कारनामों का हिसाब लिया जाएगा और हर इनसान को उसके अमल का पूरा सिला या बदला मिल जाएगा। अल्लाह की तारीफ़ में रहमान और रहीम कहने के बाद बदला दिए जाने के दिन का मालिक कहने से यह बात निकलती है कि वह ख़ाली मेहरबान ही नहीं है, बल्कि मुंसिफ़ (न्यायधीश) भी है, और इनसाफ़ करनेवाला भी ऐसा कि जो बाइख़्तियार है और आख़िरी फ़ैसले के दिन वही पूरे इक्तिदार का मालिक होगा। अगर वह किसी को सज़ा देना चाहेगा तो कोई भी उसमें रुकावट न बन सकेगा और इसी तरह अगर वह किसी को इनाम देना चाहेगा तो कोई भी उसमें रूकावट न बन सकेगा। इसलिए हम उसके रब होने और उसकी रहमत की वजह से उससे मुहब्बत ही नहीं करते, बल्कि उसके इनसाफ़ की वजह से उससे डरते भी हैं। और यह एहसास भी रखते हैं कि हमारे अंजाम की भलाई और बुराई पूरे तौर पर उसी के इख़्तियार में है।
6. इबादत का लफ़्ज़ भी अरबी ज़बान में तीन मानों में इस्तेमाल होता है – (1) पूजा और परस्तिश, (2) इताअत (आज्ञापालन) और फ़रमाँबरदारी (3) बन्दगी और गुलामी। इस जगह पर एक ही साथ ये तीनों मानी मुराद हैं। यानी हम तेरे परस्तार (उपासक) भी हैं, फ़रमाँबरदार और बन्दे व गुलाम भी। और बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि हम तेरे साथ यह ताल्लुक़ रखते हैं, बल्कि वाक़ई हक़ीक़त यह है कि हमारा यह ताल्लुक़ सिर्फ़ तेरे ही साथ है। इन तीनों मानी में से किसी मानी में भी हमारा कोई दूसरा माबूद (उपास्य) नहीं है।
7. यानी तेरे साथ हमारा ताल्लुक़ सिर्फ़ इबादत ही का नहीं है, बल्कि मदद चाहने और मदद लेने का ताल्लुक़ भी हम तेरे ही साथ रखते हैं। हमें मालूम है कि सारे जहान का रब तू ही है और

सारी ताक़तें तेरे ही हाथ में हैं। सारी नेमतों का तू ही अकेला मालिक है। इसलिए हम अपनी ज़रूरतों की तलब में तेरी तरफ़ ही पलटते हैं, तेरे ही आगे हमारा हाथ फैलता है और तेरी मदद ही पर हमारा भरोसा है। इसी वजह से हम अपनी यह दरख़ास्त लेकर तेरी ख़िदमत में हाज़िर हो रहे हैं।

8. यानी ज़िन्दगी के हर शोबे में सोच, अमल और बर्ताव का वह तरीक़ा हमें बता जो बिलकुल सही हो, जिसमें ग़लत देखने और ग़लत करने और बुरे अंजाम का ख़तरा न हो, जिसपर चलकर हम सच्ची कामयाबी और ख़ुशनसीबी (सौभाग्य) हासिल कर सकें। – यह है वह दरख़ास्त जो क़ुरआन का मुताला शुरू करते हुए बन्दा अपने ख़ुदा के सामने पेश करता है। उसकी गुज़ारिश यह है कि आप हमारी रहनुमाई करें और हमें बताएँ कि क़यासी फ़लसफ़ों (काल्पनिक दर्शनों) की इस भूल-भुलैयों में बात की हक़ीक़त क्या है। अख़लाक़ के इन मुख़्तलिफ़ नज़रियों में अख़लाक़ का सही निज़ाम कौन-सा है, ज़िन्दगी की इन बेशुमार पगडंडियों के बीच फ़िक्र व अमल (चिन्तन और कर्म) का सीधा और साफ़ रास्ता कौन-सा है।

9. यह उस सीधे रास्ते की पहचान है जिसका इल्म हम अल्लाह से माँग रहे हैं, यानी वह रास्ता जिसपर हमेशा से तेरे पसंदीदा बन्दे चलते रहे हैं। वह बेख़ता रास्ता कि पुराने ज़माने (प्राचीनकाल) से आज तक जो शख़्स और जो गरोह भी उस पर चला वह तेरे इनामों का हक़दार हुआ और तेरी नेमतों से मालामाल होकर रहा।

10. यानी 'इनाम' पानेवालों से हमारी मुराद वे लोग नहीं हैं जो देखने में तो आरज़ी (अस्थाई) तौर पर तेरी दुनियावी नेमतों से मालामाल तो होते हैं, मगर असल में वे तेरे ग़ज़ब (प्रकोप) के हक़दार हुआ करते हैं और अपनी कामयाबी और ख़ुशनसीबी की राह भूले हुए होते हैं। इस सल्बी तशरीह (नकारात्मक व्याख्या) से यह बात ख़ुद खुल जाती है कि 'इनाम' से हमारी मुराद हक़ीक़ी और हमेशा रहनेवाले इनाम हैं, जो सीधे रास्ते पर चलने और अल्लाह की ख़ुशी के नतीजे में मिला करते हैं, न कि वे वक़्ती और नुमाइशी इनाम जो पहले भी फ़िरऔनों, नमरूदों और क़ारूनों को मिलते रहे हैं और आज भी हमारी आखों के सामने बड़े-बड़े ज़ालिमों, बदकारों और गुमराहों को मिले हुए हैं।

☆☆☆

2. अल-बक़रा

परिचय

नाम और नाम रखने की वजह

इस सूरा का नाम 'बक़रा' इसलिए है कि इसमें एक जगह बक़रा (गाय) का ज़िक्र आया है। क़ुरआन मजीद की हर सूरा में इतने ज्यादा मज़मूनों को बयान किया गया है कि उनके लिए मज़मून के लिहाज़ से जामेअ उनवान (व्यापक शीर्षक) मुतैयन नहीं किया जा सकता। अरबी ज़बान हालाँकि अपनी लुग़त के लिहाज़ से निहायत मालदार है मगर बहरहाल है तो इनसानी ज़बान ही। इनसान जो भी ज़बानें बोलता है, वे इतनी ज़्यादा तंग और महदूद हैं कि वे ऐसे अलफ़ाज़ या जुमले नहीं जुटा सकतीं जो वसीअ मज़ामीन (व्यापक विषयों) के लिए जामेअ उनवान बन सकते हों। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने अल्लाह की रहनुमाई से क़ुरआन की ज़्यादातर सूरतों के लिए उनवानों की जगह पर नाम तजवीज़ किए हैं, जो सिर्फ़ अलामत (पहचान) का काम देते हैं। इस सूरा को बक़रा कहने का मतलब यह नहीं है कि इसमें गाय के बारे में बहस (वार्ता) की गई है, बल्कि इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि 'वह सूरा जिसमें गाय का ज़िक्र आया है।'

उतरने का ज़माना

इस सूरा का ज़्यादातर हिस्सा मदीना की हिजरत के बाद मदनी ज़िन्दगी के बिलकुल शुरुआती दौर में उतरा है और बहुत थोड़ा हिस्सा ऐसा है जो बाद में उतरा और मज़मून (विषय-वस्तु) की मुनासबत के लिहाज़ से इसमें शामिल कर दिया गया, यहाँ तक कि ब्याज (सूद) के मना किए जाने के सिलसिले में जो आयतें उतरी हैं वे भी इसमें शामिल हैं, हालाँकि वे नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी के बिलकुल आख़िरी ज़माने में उतरी थीं। सूरा का ख़ात्मा जिन आयतों पर हुआ है वे हिजरत से पहले मक्का में उतर चुकी थीं। मगर मज़मून की मुनासबत (अनुकूलता) से उनको भी इसी सूरा में शामिल कर दिया गया है।

शाने-नुज़ूल (पृष्ठभूमि)

इस सूरा को समझने के लिए पहले इसका तारीख़ी पसमंज़र अच्छी तरह समझ लेना चाहिए—

1. हिजरत से पहले जब तक मक्का में इस्लाम की दावत दी जाती रही, ख़िताब ज़्यादातर अरब के मुशरिकों (बहुदेववादियों) से था, जिनके लिए इस्लाम की आवाज़ एक नई और ग़ैर-मानूस (अपरिचित) आवाज़ थी। अब हिजरत के बाद वास्ता यहूदियों से पड़ा जिनकी बस्तियाँ मदीना से बिलकुल मिली हुई थीं। ये लोग तौहीद (एकेश्वरवाद), रिसालत (ईशदूतत्व), वह्य (प्रकाशना), आख़िरत (परलोक) और फ़रिश्तों के क़ायल थे, उस शरई ज़ाबते (धर्म-विधान) को तस्लीम करते थे जो ख़ुदा की तरफ़ से उनके नबी मूसा (अलै०) पर उतरा था। और उसूली तौर पर उनका दीन (धर्म) वही इस्लाम था जिसकी तालीम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) दे रहे थे। लेकिन सदियों की लगातार गिरावट ने उनको अस्ल दीन से बहुत दूर हटा दिया था।[1] उनके अक़ीदों (आस्थाओं) में बहुत-सी ग़ैर-इस्लामी बातें दाख़िल हो गई थीं, जिनके लिए तौरात में कोई दलील मौजूद नहीं थी। उनकी अमली ज़िन्दगी में बहुत-सी ऐसी रस्में और तरीक़े रिवाज पा गए थे जो अस्ल दीन में न थे और जिनके लिए तौरात में कोई सुबूत न था। ख़ुद तौरात में उन्होंने इनसानी बातों को दाख़िल करके गड्डमड्ड कर दिया था। ख़ुदा की बातें जिस हद तक लफ़्ज़ी तौर से या मानी के लिहाज़ से महफ़ूज़ थीं उनको भी उन्होंने अपने मनमाने मतलबों और तफ़सीरों से मस्ख़ (विकृत) कर रखा था। दीन की अस्ल रूह उनमें से निकल चुकी थी और ज़ाहिरी मज़हबियत का सिर्फ़ एक बेजान ढाँचा बाक़ी था जिसको वे सीने से लगाए हुए थे। उनके उलमा और बुज़ुर्गों, उनकी क़ौम के सरदारों और आम जनता सबकी एतिक़ादी, अख़लाक़ी और अमली हालत बिगड़ गई थी। और अपने इस बिगाड़ से उनको ऐसी मुहब्बत थी कि वे किसी तरह के सुधार को भी क़बूल करने पर तैयार नहीं होते थे। सदियों से लगातार ऐसा हो रहा था कि जब अल्लाह का कोई बन्दा उन्हें दीन का

---

1. उस वक़्त हज़रत मूसा (अलैहि०) को गुज़रे हुए लगभग उन्नीस सदियाँ गुज़र चुकी थीं। इसराईली इतिहास के हिसाब से हज़रत मूसा (अलैहि०) की 1272 ई० पूर्व मौत हुई और नबी (सल्ल०) सन् 610 ई० बाद पैग़म्बर बनाए गए।

सीधा रास्ता बताने आता तो वे उसे अपना सबसे बड़ा दुश्मन समझते और हर मुमकिन तरीक़े से कोशिश करते थे कि वे किसी भी तरह सुधार करने में कामयाब न हो सके। ये लोग हक़ीक़त में बिगड़े हुए मुसलमान थे, जिनके यहाँ बिद्अतों और (दीनी और धार्मिक बातों में) फेर-बदल और बाल की खाल निकालने की आदतों, फ़िरक़ाबन्दियों, नस्लपरस्ती, बाप-दादाओं (पूर्वजों) के नाम पर इज़्ज़त की चाह और घमण्ड, ख़ुदा को भुला देना और दुनियापरस्ती की वजह से गिरावट इस हद को पहुँच चुकी थी कि वे अपने असल नाम 'मुस्लिम' (ख़ुदा का फ़रमाँबरदार) तक भूल गए थे। वे सिर्फ़ 'यहूदी' बनकर रह गए थे और अल्लाह के दीन को उन्होंने सिर्फ़ इसराईल नस्ल की आबाई विरासत बनाकर रख लिया था। चुनाँचे जब नबी (सल्ल०) मदीना पहुँचे तो अल्लाह ने आपको हिदायत की कि उनको असल दीन की तरफ़ बुलाएँ। इसी लिए इस सूरा बक़रा की शुरुआती 141 आयतों में इसी दावत और पैग़ाम का ज़िक्र है। उनमें यहूदियों के इतिहास और उनकी अख़लाक़ी और दीनी हालत की जिस तरह तनक़ीद (आलोचना) की गई है और जिस तरह उनके बिगड़े हुए दीन और अख़लाक़ की नुमायाँ ख़ूबियों के मुक़ाबले में सच्चे दीन के उसूल पहलू-ब-पहलू पेश किए गए हैं इससे यह बात बिलकुल आईने की तरह वाज़ेह हो जाती है कि एक पैग़म्बर की उम्मत के बिगाड़ की नौईयत (स्थिति) क्या होती है। रस्मी दीनदारी के मुक़ाबले में सच्ची दीनदारी किस चीज़ का नाम है। सच्चे दीन (धर्म) के बुनियादी उसूल क्या हैं और ख़ुदा की निगाह में असल अहमियत किन चीज़ों की है।

2. मदीना पहुँचकर इस्लाम की दावत और उसका पैग़ाम एक नए मरहले (चरण) में दाख़िल हो चुका था। मक्का में तो मामला सिर्फ़ दीन की बुनियादी बातों की तबलीग़ और दीन के क़बूल करनेवालों की अख़लाक़ी तर्बियत तक महदूद था। लेकिन जब अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के मक्का से मदीना आ जाने के बाद अरब के मुख़्तलिफ़ क़बीलों के वे सब लोग जो इस्लाम क़बूल कर चुके थे हर तरफ़ से सिमटकर एक जगह जमा होने लगे और मदीनावासी मुसलमानों (अनसार) की मदद से एक छोटी-सी इस्लामी हुकूमत की बुनियाद पड़ गई, तो अल्लाह ने तमद्दुन (संस्कृति), समाज, मआशी मामलों, क़ानून और सियासत के बारे में भी उसूली हिदायतें देनी शुरू कीं और यह बताया कि इस्लाम

की बुनियाद पर यह नया निज़ामे-ज़िन्दगी किस तरह क़ायम किया जाए। इस सूरा की आयत 142 से लेकर आख़िर तक की आयतों में ज़्यादातर यही हिदायतें बयान की गई हैं। इन हिदायतों में से ज़्यादातर शुरू ही में भेज दी गई थीं और कुछ अलग-अलग शक्ल में ज़रूरत के मुताबिक़ बाद में भेजी जाती रहीं।

3. हिजरत के बाद इस्लाम और ग़ैर-इस्लाम की कश-म-कश भी एक नए मरहले में दाख़िल हो चुकी थी। हिजरत से पहले लोगों को इस्लाम की दावत ख़ुद कुफ़्र के घर में दी जा रही थी और मुख़्तलिफ़ क़बीलों में से जो लोग इस्लाम क़बूल करते थे, वे अपनी-अपनी जगह रहकर ही इस्लाम की तबलीग़ करते और जवाब में ज़ुल्म और मुसीबतों को झेलते रहते थे, मगर हिजरत के बाद जब ये बिखरे हुए मुसलमान मदीना में जमा होकर एक जत्था बन गए और उन्होंने एक छोटा-सी आज़ाद हुकूमत क़ायम कर ली तो हालत यह हो गई कि एक तरफ़ एक छोटी-सी बस्ती थी और दूसरी तरफ़ तमाम अरब उसको जड़ से उखाड़ फेंकने पर तुला हुआ था। अब इस मुट्ठी भर गरोह की कामयाबी का ही नहीं, बल्कि उसके वुजूदो-बक़ा का दारोमदार भी इस बात पर था कि सबसे पहले तो वह पूरे जोश और उमंग के साथ अपने मसलक (विचारों) की तबलीग़ करके ज़्यादा-से-ज़्यादा लोगों को अपना अक़ीदेवाला बनाने की कोशिश करें। दूसरे वह मुख़ालिफ़ों (विरोधियों) का ग़लत रास्ते पर होना इस तरह साबित कर दे कि किसी भी अक़्ल रखनेवाले इनसान को उसमें शक न रहे। तीसरे बेघर होने और पूरे देश की दुश्मनी और रुकावटों से दोचार होने की वजह से भुखमरी और हर वक़्त बेअमनी और बेइतमिनानी की जो हालत उनपर तारी हो गई थी और जिन ख़तरों में वे चारों तरफ़ से घिर गए थे, उनमें वे भयभीत और मायूस न हों, बल्कि पूरे सब्र और जमाव के साथ इन हालात का मुक़ाबला करें और अपने इरादों में ज़रा भी डगमगाहट न आने दें। चौथे यह कि वे पूरी बहादुरी के साथ हर उस हथियारबन्द रुकावटों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो जाएँ, जो उनकी दावत और पैग़ाम को नाकाम करने के लिए किसी ताक़त की तरफ़ से की जाए। और इस बात की ज़रा परवाह न करें कि दुश्मनों की तायदाद और उनकी माद्दी ताक़त (भौतिक शक्ति) कितनी ज़्यादा है। पाँचवें इनमें इतनी हिम्मत पैदा की जाए कि अगर अरब के लोग इस नए निज़ाम को, जो इस्लाम क़ायम करना चाहता है,

समझाने-बुझाने से क़बूल न करें तो उन्हें जाहिलियत के फ़ासिद निज़ामे- ज़िन्दगी (विकृत जीवन-व्यवस्था) को ताक़त के ज़ोर पर मिटा देने में भी झिझक महसूस न करें। अल्लाह ने इस सूरा में इन पाचों बातों के बारे में बुनियादी हिदायतें दी हैं।

4. इस्लामी दावत के इस मरहले में एक नया तबक़ा भी ज़ाहिर होना शुरू हो गया था और यह मुनाफ़िक़ों का तबक़ा था। हालाँकि निफ़ाक़ (कपट) के शुरुआती आसार मक्का के आख़िरी दिनों में ही ज़ाहिर होने लगे थे, मगर वहाँ सिर्फ़ इस क़िस्म के मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) पाए जाते थे, जो इस बात को तो मानते थे कि इस्लाम दीने-हक़ (सत्य-धर्म) है और ईमान का ज़बान से इक़रार भी करते थे लेकिन इसके लिए तैयार न थे कि उस हक़ के लिए अपने हक़ को क़ुरबान करें; अपने दुनियावी सम्बन्धों को तोड़ दें और उन मुसीबतों और परेशानियों को भी सहन कर लें जो उस सच्चे रास्ते को क़बूल करने के साथ ही आनी शुरू हो जाती थीं। मदीना पहुँचकर इस तरह के मुनाफ़िक़ों के अलावा कुछ और तरह के मुनाफ़िक़ भी इस्लामी जमाअत में पाए जाने लगे। एक तरह के मुनाफ़िक़ वे थे जो बिलकुल ही इस्लाम के इनकारी थे और सिर्फ़ फ़ितना (बिगाड़) और उपद्रव) पैदा करने के लिए इस्लामी जमाअत में दाख़िल हो जाते थे। दूसरे तरह के मुनाफ़िक़ वे थे जो इस्लामी उम्मत की हुकूमत के दायरे में घिर जाने की वजह से अपना फ़ायदा और भलाई इसी में देखते थे कि एक तरफ़ मुसलमानों में भी अपनी गिनती कराएँ और दूसरी तरफ़ इस्लाम के दुश्मनों से भी ताल्लुक़ रखें, ताकि दोनों तरफ़ के फ़ायदे उन्हें मिलते रहें और दोनों तरफ़ के ख़तरों से वे बचे रहें। तीसरी तरह के वे लोग थे जो इस्लाम और जाहिलियत (ग़ैर-इस्लाम) के बीच शक और झिझक की कैफ़ियत में पड़े हुए थे। उन्हें इस्लाम के सच्चा दीन होने पर पूरा इतमीनान न था, मगर चूँकि उनके क़बीले या ख़ानदान के ज़्यादातर लोग मुसलमान हो चुके थे इसलिए वे भी मुसलमान हो गए थे। चौथी क़िस्म में वे लोग शामिल थे जो इस बात को तो मानते थे कि इस्लाम सच्चा दीन है मगर जाहिलियत (अज्ञान) के तरीक़े तथा अंधविश्वास और रसमो-रिवाज को छोड़ने और अख़लाक़ी पाबन्दियाँ क़बूल करने, क़र्ज़ों और ज़िम्मेदरियों का बोझ उठाने से उनका मन इनकार करता था।

सूरा बक़रा के उतरने के वक़्त उन मुख़्तलिफ़ क़िस्म के मुनाफ़िक़ों के ज़ाहिर होने की सिर्फ़ शुरुआत थी, इसलिए अल्लाह ने उनकी तरफ़ सिर्फ़ हलके इशारे किए हैं। बाद में जितनी-जितनी उनके किरदार और हरकतें सामने आती गईं, उसी क़द्र तफ़सील के साथ बाद की सूरतों में हर क़िस्म के मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) के बारे में उनके क़िस्म के लिहाज़ से अलग-अलग हिदायतें भेजी गईं।

☆☆☆

(۲) سُوْرَةُ الْبَقَرَةِ مَدَنِيَّةٌ (۸۷) آيَاتُهَا ۲۸٦ رُكُوْعَاتُهَا ٤٠

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الٓمّٓ ۝ ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَا رَيْبَ ۛۚ فِيْهِ ۛۚ هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ ۝

2. अल-बक़रा

(मदीना में उतरी, आयतें 286)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम।[1] (2) यह अल्लाह की किताब है, इसमें कोई शक नहीं।[2]

1. ये 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' (विलग-अक्षर) क़ुरआन मजीद की कुछ सूरतों के शुरू में पाए जाते हैं। जिस ज़माने में क़ुरआन उतरा है, उस ज़माने में बात कहने और बयान करने के जो अन्दाज़ और तरीक़े राइज थे उनमें इस तरह के अलग-अलग हरफ़ों का इस्तेमाल आम तौर पर राइज था। तक़रीर करनेवाले और शायर दोनों बयान के इस अन्दाज़ (शैली) से काम लेते थे। चुनांचे अब भी इस्लाम से पहले के लिट्रेचर के जो नमूने महफ़ूज़ (सुरक्षित) हैं उनमें इसकी मिसालें हमें मिलती हैं। इस आम इस्तेमाल की वजह से ये मुक़त्तआत कोई पहेली न थे जिसको बोलनेवाले के सिवा कोई न समझता हो, बल्कि सुननेवाले आम तौर से जानते थे कि इनसे मुराद क्या है। यही वजह है कि क़ुरआन के ख़िलाफ़ नबी *(सल्ल॰)* के वक़्त के इस्लाम के मुख़ालिफ़ों में से किसी ने भी यह सवाल कभी नहीं किया कि ये बेमानी हरफ़ कैसे हैं, जो तुम क़ुरआन की कुछ सूरतों की शुरुआत में बोलते हो। और यही वजह है कि सहाबा किराम *(रज़ि॰)* से भी ऐसी कोई रिवायत नहीं मिलती कि उन्होंने नबी *(सल्ल॰)* से इनके मानी पूछे हों। बाद में यह अन्दाज़ अरबी ज़बान में ख़त्म होता चला गया और इस वजह से क़ुरआन के मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) के लिए इनका मतलब समझना मुश्किल हो गया। लेकिन यह ज़ाहिर है कि न तो इन हुरूफ़ (अक्षरों) का मतलब समझने पर क़ुरआन से हिदायत (मार्गदर्शन) हासिल करने का दारोमदार है और न यही बात है कि अगर कोई आदमी इनके मानी न जानेगा तो उसका सीधा रास्ता पाने में कोई कमी रह जाएगी। इसलिए एक आम आदमी के लिए कुछ ज़रूरी नहीं है कि वह इनकी खोज में पड़े।
2. इसका एक सीधा-सादा मतलब तो यह है कि "बेशक यह अल्लाह की किताब है", मगर एक मतलब यह भी हो सकता है कि यह ऐसी किताब है जिसमें शक की कोई बात नहीं है। दुनिया में जितनी भी किताबें फ़ितरत से परे और अक़्ल की पहुँच से आगे की हक़ीक़तों के बारे में बातें करती हैं, वे सब अटकल और गुमान पर मबनी (आधारित) हैं। इसी लिए ख़ुद उनके लिखनेवाले भी अपने बयानों के बारे में शक से पाक नहीं हो सकते चाहे वे कितने ही यक़ीन का इज़हार करें। लेकिन यह ऐसी किताब है जो पूरे तौर पर हक़ीक़त के इल्म पर मबनी है।

الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا
رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۙ﴿٣﴾ وَالَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ

हिदायत है उन परहेज़गार लोगों के लिए,[3] (3) जो ग़ैब (परोक्ष) पर ईमान लाते हैं,[4] नमाज़ क़ायम करते हैं,[5] जो रोज़ी हमने उनको दी है उसमें से ख़र्च करते हैं,[6] (4) जो किताब

इसका मुसन्निफ़ (रचयिता) वह है जो तामाम हक़ीक़तों का इल्म रखता है, इसलिए हक़ीक़त में इसमें शक के लिए कोई जगह नहीं। यह दूसरी बात है कि इनसान अपनी नादानी की वजह से इसकी बातों में शक करें।

3. यानी यह किताब है तो सरासर हिदायत और रहनुमाई, मगर इससे फ़ायदा उठाने के लिए ज़रूरी है कि आदमी में कुछ सिफ़ात (गुण) पाई जाती हों। इनमें से पहली सिफ़त यह है कि आदमी 'परहेज़गार' हो, भलाई और बुराई में फ़र्क़ करता हो, बुराई से बचना चाहता हो, भलाई की तलब रखता हो और उसपर अमल करने का ख़ाहिशमन्द हो। रहे वे लोग जो दुनिया में जानवरों की तरह जीते हों, जिन्हें कभी यह फ़िक्र न होती हो कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह सही भी है या नहीं। बस जिधर दुनिया चल रही हो या जिधर मन की ख़ाहिश धकेल दे या जिधर क़दम उठ जाएँ, उसी तरफ़ चल पड़ते हों, तो ऐसे लोगों के लिए क़ुरआन में कोई रहनुमाई नहीं है।

4. यह क़ुरआन से फ़ायदा उठाने के लिए दूसरी शर्त है। 'ग़ैब' (परोक्ष) से मुराद वे हक़ीक़तें हैं, जो इनसान के हवास (ज्ञानेन्द्रियों) से छिपी हुई हैं और कभी सीधे तौर पर आम इनसानों के तजुर्बे और देखने में नहीं आतीं, जैसे ख़ुदा की ज़ातो-सिफ़ात (व्यक्तित्व एवं गुण) फ़रिश्ते, वह्य, जन्नत, दोज़ख़ वग़ैरा। इन हक़ीक़तों को बिना देखे मानना और इस भरोसे पर मानना कि नबी उनकी ख़बर दे रहा है, ग़ैब पर ईमान लाना है। आयत का मतलब यह है कि जो आदमी इन महसूस न होनेवाली हक़ीक़तों को मानने के लिए तैयार हो, सिर्फ़ वही क़ुरआन की रहनुमाई से फ़ायदा उठा सकता है। रहा वह आदमी जो मानने के लिए देखने, चखने और सूँघने की शर्त लगाए और जो कहे कि मैं किसी ऐसी चीज़ को नहीं मान सकता जो नापी और तौली न जा सकती हो तो वह इस किताब से हिदायत नहीं पा सकता।

5. यह तीसरी शर्त है। इसका मतलब यह है कि जो लोग सिर्फ़ मानकर बैठ जानेवाले हों वे क़ुरआन से फ़ायदा नहीं उठा सकते। इससे फ़ायदा उठाने के लिए ज़रूरी है कि आदमी ईमान लाने के बाद फ़ौरन ही अमली इताअत (व्यावहारिक रूप से आज्ञापालन) के लिए तैयार हो जाए, और अमली इताअत की सबसे पहली अलामत और हमेशा की अलामत नमाज़ है। ईमान लाने पर कुछ घंटे भी नहीं गुज़रते कि मुअज़्ज़िन (अज़ान देनेवाला) नमाज़ के लिए पुकारता है और उसी वक़्त फ़ैसला हो जाता है कि ईमान का दावा करनेवाला इताअत (आज्ञापालन) के लिए भी तैयार है या नहीं। फिर यह मुअज़्ज़िन रोज़ पाँच वक़्त पुकारता रहता है, और जब भी इनसान उसकी पुकार पर लब्बै-क (मैं हाज़िर हूँ) न कहे उसी वक़्त ज़ाहिर हो जाता है कि ईमान का दावा करनेवाला इताअत से बाहर हो गया है। तो नमाज़ का छोड़ना असल में इताअत का छोड़ना है, और ज़ाहिर बात है कि जो आदमी किसी की हिदायत पर अमल करने के लिए ही

اِلَيْكَ وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ ۚ وَبِالْاٰخِرَةِ هُمْ يُوْقِنُوْنَ ۝ ۴
اُولٰٓئِكَ عَلٰى هُدًى مِّنْ رَّبِّهِمْ ۗ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝ ۵

तुमपर उतारी गई है (यानी क़ुरआन) और जो किताबें तुमसे पहले उतारी गई थीं उन सबपर ईमान लाते हैं,[7] और आख़िरत (परलोक) पर यक़ीन रखते हैं।[8](5) ऐसे लोग अपने रब की तरफ़ से सीधे रास्ते पर हैं और वही कामयाब होनेवाले हैं।

तैयार न हो उसके लिए हिदायत देना और न देना बराबर है।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि 'नमाज़ क़ायम करना' एक जामेअ इस्तिलाह (व्यापक परिभाषा) है, इसका मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि आदमी पाबन्दी के साथ नमाज़ अदा करे, बल्कि इसका मतलब यह है कि इजतिमाई तौर से नमाज़ का बाक़ायदा इन्तिज़ाम किया जाए। अगर किसी बस्ती में एक-एक शख़्स अकेले नमाज़ पढ़ने का पाबन्द हो, लेकिन जमाअत के साथ इस फ़र्ज़ के अदा करने का इन्तिज़ाम न हो तो यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ नमाज़ क़ायम की जा रही है।

6. यह क़ुरआन की रहनुमाई से फ़ायदा उठाने के लिए चौथी शर्त है कि आदमी तंगदिल न हो, दौलत का पुजारी न हो, बल्कि उसके माल में ख़ुदा और बन्दों के जो हक़ तय किए जाएँ उन्हें अदा करने के लिए तैयार हो। जिस चीज़ पर ईमान लाया है उसके लिए माल की क़ुर्बानी करने में भी कंजूसी न करे।

7. यह पाँचवीं शर्त है कि आदमी उन तमाम किताबों को सच्ची माने जो वह्य (प्रकाशना) के ज़रीए से ख़ुदा ने मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और उनसे पहले के नबियों पर मुख़्तलिफ़ ज़मानों और देशों में उतारीं। इस शर्त की बुनियाद पर क़ुरआन की हिदायत का दरवाज़ा उन सब लोगों पर बन्द है जो सिरे से इसकी ज़रूरत ही न समझते हों कि इनसान को ख़ुदा की तरफ़ से हिदायत मिलनी चाहिए, या इस ज़रूरत के तो क़ायल हों, मगर इसके लिए वह्य और रिसालत (पैग़म्बरी) की तरफ़ रुजू करना (पलटना) ग़ैर-ज़रूरी समझते हों और ख़ुद कुछ नज़रियात (सिद्धान्त) गढ़कर उन्हीं को ख़ुदा की हिदायत समझ बैठें या आसमानी किताबों को भी मानते हों मगर सिर्फ़ उस किताब या उन किताबों पर ईमान लाएँ जिन्हें उनके बाप-दादा मानते चले आए हैं, रहीं उसी सरचश्मे (स्रोत) से निकली हुई दूसरी हिदायतें, तो वे उनको मानने से इनकार कर दें। ऐसे सब लोगों को अलग करके क़ुरआन अपनी मेहरबानी के सरचश्मे से सिर्फ़ उन लोगों को फ़ायदा पहुँचाता है जो अपने आप को ख़ुदाई हिदायत का मुहताज भी मानते हों और यह भी तस्लीम करते हों कि ख़ुदा की यह हिदायत हर इनसान के पास अलग-अलग नहीं आती बल्कि नबियों और आसमानी किताबों के ज़रीए से ही लोगों तक पहुँचती है और फिर वे लोग जिन्हें यह हिदायत मिलती है, किसी नस्ली और क़ौमी तास्सुब (पक्षपात) में भी गिरफ़्तार न हों बल्कि ख़ालिस हक़ को माननेवाले हों, इसलिए हक़ (सत्य) जहाँ-जहाँ जिस शक्ल में भी आया है उसके आगे सिर झुका दें।

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا سَوَاءٌ عَلَيْهِمْ ءَأَنذَرْتَهُمْ أَمْ لَمْ
تُنذِرْهُمْ لَا يُؤْمِنُونَ ۝٦ خَتَمَ اللَّهُ عَلَىٰ قُلُوبِهِمْ وَعَلَىٰ
سَمْعِهِمْ ۖ وَعَلَىٰ أَبْصَارِهِمْ غِشَاوَةٌ ۖ وَلَهُمْ عَذَابٌ

(6) जिन लोगों ने (इन बातों को मानने से) इनकार कर दिया,[9] उनके लिए बराबर है, चाहे तुम उन्हें ख़बरदार करो या न करो, बहरहाल कभी भी वे माननेवाले नहीं हैं। (7) अल्लाह ने उनके दिलों और उनके कानों पर मुहर लगा दी है।[10] और उनकी आँखों

8. यह छठी और आख़िरी शर्त है। 'आख़िरत' एक जामेअ (व्यापक) लफ़्ज़ है जो बहुत-से अक़ीदों के लिए बोला जाता है। इसमें नीचे लिखे अक़ीदे शामिल हैं –
(1) यह कि इनसान इस दुनिया में ग़ैर-ज़िम्मेदार नहीं है, बल्कि अपने तमाम आमाल (कर्मों) के लिए ख़ुदा के सामने जवाबदेह है।
(2) यह कि दुनिया का मौजूदा निज़ाम हमेशा रहनेवाला नहीं है, बल्कि एक वक़्त पर, जिसे सिर्फ़ ख़ुदा ही जानता है, इसका ख़ातमा हो जाएगा।
(3) यह कि इस आलम (जगत) के ख़ातमे के बाद ख़ुदा एक दूसरा आलम बनाएगा और उसमें सारे इनसानों को, जो दुनिया के शुरू से लेकर क़ियामत तक ज़मीन पर पैदा हुए थे, एक साथ दोबारा पैदा करेगा, और सबको जमा करके उनके आमाल (कर्मों) का हिसाब लेगा, और हर एक को उसके किए का पूरा-पूरा बदला देगा।
(4) यह कि ख़ुदा के इस फ़ैसले के मुताबिक़ जो लोग नेक क़रार पाएँगे, वे जन्नत में जाएँगे और जो लोग बुरे ठहरेंगे वे दोज़ख़ में डाले जाएँगे।
(5) यह कि कामयाबी और नाकामी का अस्ली मेआर मौजूदा ज़िन्दगी की ख़ुशहाली और बदहाली नहीं है, बल्कि हक़ीक़त में कामयाब इनसान वह है जो ख़ुदा के आख़िरी फ़ैसले में कामयाब ठहरे, और नाकाम वह है जो वहाँ नाकाम हो।
अक़ीदों के इस मजमूए (संग्रह) पर जिन लोगों को यक़ीन न हो, वे क़ुरआन से कोई फ़ायदा नहीं उठा सकते; क्योंकि इन बातों का इनकार तो दूर की बात है, अगर किसी के दिल में इनके बारे में शक और शुब्हे की कैफ़ियत भी हो तो वह उस रास्ते पर नहीं चल सकता जो इनसानी ज़िन्दगी के लिए क़ुरआन ने बताया है।

9. यानी वे छः की छः शर्तें जो ऊपर बयान हुई हैं, पूरी न कीं और इन सबको या इनमें से किसी एक को भी मानने से इनकार कर दिया।

10. इसका मतलब यह नहीं है कि अल्लाह ने मुहर लगा दी थी इसलिए उन्होंने मानने से इनकार किया, बल्कि मतलब यह है कि जब उन्होंने उन बुनियादी बातों को रद्द कर दिया, जिनका ज़िक्र ऊपर किया गया है और अपने लिए क़ुरआन के बताए हुए रास्ते के ख़िलाफ़ दूसरा रास्ता पसन्द

ع عَظِيْمٌ ۝٧ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَ
بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَمَا هُمْ بِمُؤْمِنِيْنَ ۝٨ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَ
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۚ وَمَا يَخْدَعُوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۝٩
فِيْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ ۙ فَزَادَهُمُ اللّٰهُ مَرَضًا ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ

पर परदा पड़ गया है। वे सख़्त सज़ा के हक़दार हैं। (8) कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि हम अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान लाए हैं, हालाँकि हक़ीक़त में वे ईमानवाले नहीं हैं। (9) वे अल्लाह और ईमान लानेवालों के साथ धोखेबाज़ी कर रहे हैं, मगर असल में वे ख़ुद अपने आप ही को धोखे में डाल रहे हैं और उन्हें इसका शुऊर नहीं है।[11] (10) उनके दिलों में एक बीमारी है जिसे अल्लाह ने और ज़्यादा बढ़ा दिया[12]

कर लिया, तो ख़ुदा ने उनके दिलों और कानों पर मुहर लगा दी। इस मुहर लगने की कैफ़ियत का तजुर्बा हर उस आदमी को होगा जिसे कभी तबलीग़ (प्रचार) करने का इत्तिफ़ाक़ हुआ हो। जब कोई आदमी आपके पेश किए हुए तरीक़े को जाँचने के बाद एक बार रद्द कर देता है, तो उसका ज़ेहन कुछ इस तरह मुख़ालिफ़ सम्त (विपरीत दिशा) में चल पड़ता है कि फिर आपकी कोई बात उसकी समझ में नहीं आती। आपकी दावत के लिए उसके कान बहरे और आपके तरीक़े की ख़ूबियों के लिए उसकी आँखें अन्धी हो जाती हैं, और साफ़ तौर पर महसूस होता है कि हक़ीक़त में उसके दिल पर मुहर लगी हुई है।

11. यानी वे अपने आपको इस ग़लतफ़हमी (भ्रम) में डाल रहे हैं कि उनका यह मुनाफ़िक़ाना (पाखण्डपूर्ण) रवैया उनके लिए फ़ायदेमन्द होगा, हालाँकि असल में यह उनको दुनिया में भी नुक़सान पहुँचाएगा और आख़िरत में भी। दुनिया में एक मुनाफ़िक़ (पाखण्डी) कुछ दिनों के लिए तो लोगों को धोखा दे सकता है, मगर हमेशा उसका धोखा नहीं चल सकता। आख़िर उसकी मुनाफ़िक़त का राज़ खुलकर रहता है और फिर समाज में उसकी कोई साख बाक़ी नहीं रहती। रही आख़िरत, तो वहाँ ईमान का ज़बानी दावा कोई क़ीमत नहीं रखता, अगर अमल उसके ख़िलाफ़ हो।

12. बीमारी से मुराद मुनाफ़िक़त (पाखण्ड) की बीमारी है और अल्लाह की तरफ़ से इस बीमारी को और बढ़ा देने का मतलब यह है कि वह मुनाफ़िक़ों (पाखण्डियों) को उनके कपट (निफ़ाक़) की सज़ा फ़ौरन नहीं देता, बल्कि उन्हें ढील देता है और इस ढील का नतीजा यह होता है कि मुनाफ़िक़ लोग अपनी चालों को ज़ाहिर में कामयाब होता देखकर और ज़्यादा मुकम्मल मुनाफ़िक़ बनते चले जाते हैं।

اَلِيۡمٌۢ ۙ بِمَا كَانُوۡا يَكۡذِبُوۡنَ ۝١٠ وَاِذَا قِيۡلَ لَهُمۡ لَا
تُفۡسِدُوۡا فِى الۡاَرۡضِۙ قَالُوۡۤا اِنَّمَا نَحۡنُ مُصۡلِحُوۡنَ ۝١١
اَلَاۤ اِنَّهُمۡ هُمُ الۡمُفۡسِدُوۡنَ وَلٰـكِنۡ لَّا يَشۡعُرُوۡنَ ۝١٢ وَاِذَا
قِيۡلَ لَهُمۡ اٰمِنُوۡا كَمَاۤ اٰمَنَ النَّاسُ قَالُوۡۤا اَنُؤۡمِنُ
كَمَاۤ اٰمَنَ السُّفَهَآءُ ؕ اَلَاۤ اِنَّهُمۡ هُمُ السُّفَهَآءُ وَلٰـكِنۡ
لَّا يَعۡلَمُوۡنَ ۝١٣ وَاِذَا لَقُوا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا قَالُوۡۤا اٰمَنَّا ۖۚ وَ
اِذَا خَلَوۡا اِلٰى شَيٰطِيۡنِهِمۡۙ قَالُوۡۤا اِنَّا مَعَكُمۡۙ اِنَّمَا نَحۡنُ

और जो झूठ वे बोलते हैं, उसके बदले में उनके लिए दर्दनाक सज़ा है। (11) जब कभी उनसे कहा गया कि धरती में बिगाड़ न पैदा करो, तो उन्होंने यही कहा कि हम तो सुधार करनेवाले हैं (12) — ख़बरदार! हक़ीक़त में यही लोग बिगाड़ पैदा करनेवाले हैं, मगर इन्हें शुऊर नहीं है। (13) और जब इनसे कहा गया कि जिस तरह दूसरे लोग ईमान लाए हैं उसी तरह तुम भी ईमान लाओ[13] तो इन्होंने यही जवाब दिया, "क्या हम बेवक़ूफ़ों की तरह ईमान लाएँ?"[14] — ख़बरदार! सच तो यह है कि ये ख़ुद बेवक़ूफ़ हैं, मगर ये जानते नहीं। (14) जब ईमानवालों से मिलते हैं तो कहते हैं कि हम ईमान लाए हैं और जब अकेले में अपने शैतानों[15] से मिलते हैं तो कहते हैं कि अस्ल में तो हम तुम्हारे साथ हैं

13. यानी जिस तरह तुम्हारी क़ौम के दूसरे लोग सच्चाई और सच्चे दिल के साथ मुसलमान हुए हैं, उसी तरह तुम भी अगर इस्लाम क़बूल करते हो तो ईमानदारी के साथ सच्चे दिल से क़बूल करो।
14. वे अपने नज़दीक उन लोगों को बेवक़ूफ़ समझते थे जो सच्चाई के साथ इस्लाम क़बूल करके अपने आपको तकलीफ़ों, परेशानियों और ख़तरों में डाल रहे थे। उनकी राय में यह बिलकुल ही बेवक़ूफ़ी का काम था कि सिर्फ़ हक़ और सच्चाई के लिए पूरे देश की दुश्मनी मोल ले ली जाए। उनके ख़याल में अक़्लमंदी यह थी कि आदमी हक़ और बातिल (नाहक़) की बहस में न पड़े, बल्कि हर मामले में सिर्फ़ अपने फ़ायदे को देखे।
15. शैतान अरबी ज़बान में सरकश, नाफ़रमान और पागल, दीवाने को कहते हैं। इनसान और जिन्न दोनों के लिए यह लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है। हालाँकि क़ुरआन में यह लफ़्ज़ ज़्यादातर जिन्न

مُسْتَهْزِءُوْنَ ۞ اَللّٰهُ يَسْتَهْزِئُ بِهِمْ وَيَمُدُّهُمْ فِيْ طُغْيَانِهِمْ
يَعْمَهُوْنَ ۞ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الضَّلٰلَةَ بِالْهُدٰى
فَمَا رَبِحَتْ تِّجَارَتُهُمْ وَمَا كَانُوْا مُهْتَدِيْنَ ۞
مَثَلُهُمْ كَمَثَلِ الَّذِى اسْتَوْقَدَ نَارًا ۚ فَلَمَّآ اَضَآءَتْ
مَا حَوْلَهٗ ذَهَبَ اللّٰهُ بِنُوْرِهِمْ وَتَرَكَهُمْ فِىْ ظُلُمٰتٍ
لَّا يُبْصِرُوْنَ ۞ صُمٌّۢ بُكْمٌ عُمْىٌ فَهُمْ لَا يَرْجِعُوْنَ ۞

और उन लोगों से सिर्फ़ मज़ाक़ कर रहे हैं (15) — अल्लाह इनसे मज़ाक़ कर रहा है। वह इनकी रस्सी लम्बी किए जाता है और ये अपनी सरकशी में अन्धों की तरह भटकते चले जाते हैं। (16) ये वे लोग हैं जिन्होंने हिदायत के बदले गुमराही ख़रीद ली है, मगर यह सौदा इनके लिए फ़ायदेमन्द नहीं है और ये हरगिज़ सही रास्ते पर नहीं हैं। (17) इन की मिसाल ऐसी है जैसे एक आदमी ने आग जलाई, और जब उसने सारे माहौल को रौशन कर दिया तो अल्लाह ने इनके देखने की रौशनी छीन ली और इन्हें इस हाल में छोड़ दिया कि अंधेरियों में इन्हें कुछ नज़र नहीं आता।[16] (18) ये बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे

शैतानों के लिए आया है, लेकिन कुछ जगहों पर शैतान जैसी सिफ़त रखनेवाले इनसानों के लिए भी इस्तेमाल किया गया है, और मौक़ा-महल को देखकर आसानी से मालूम हो जाता है कि कहाँ शैतान से इनसान मुराद हैं और कहाँ जिन्न। इस जगह शैतान का लफ़्ज़ उन बड़े-बड़े सरदारों के लिए इस्तेमाल हुआ है, जो उस वक़्त इस्लाम की मुख़ालिफ़त (विरोध) में आगे-आगे थे।

16. मतलब यह है कि जब एक अल्लाह के बन्दे ने रौशनी फ़ैलाई और हक़ को बातिल से, सही को ग़लत से, सीधे रास्ते को गुमराहियों से छाँटकर बिलकुल नुमायाँ कर दिया, तो जो लोग गहराई तक देखने की आँखें रखते थे उनपर तो सारी सच्चाइयाँ खुल गईं, मगर ये मुनाफ़िक़ (पाखण्डी) जो अपने मन की बुरी ख़ाहिशों की ग़ुलामी में पड़कर अंधे हो रहे थे, उनको इस रौशनी में कुछ दिखाई न पड़ा। 'अल्लाह ने देखने की रौशनी छीन ली' के लफ़्ज़ों से किसी को यह ग़लतफ़हमी न हो कि उनके अंधेरे में भटकने की ज़िम्मेदारी ख़ुद उनपर नहीं है। अल्लाह देखने की ताक़त उसी की छीनता है जो ख़ुद सच्चाई का तालिब (इच्छुक) नहीं होता। ख़ुद हिदायत के बजाए गुमराही को अपने लिए पसन्द करता है। ख़ुद सच्चाई का रौशन चेहरा नहीं

اَوْ كَصَيِّبٍ مِّنَ السَّمَآءِ فِيْهِ ظُلُمٰتٌ وَّرَعْدٌ وَّ بَرْقٌ ۚ
يَجْعَلُوْنَ اَصَابِعَهُمْ فِيْٓ اٰذَانِهِمْ مِّنَ الصَّوَاعِقِ حَذَرَ
الْمَوْتِ ۭ وَاللّٰهُ مُحِيْطٌۢ بِالْكٰفِرِيْنَ ۝ يَكَادُ الْبَرْقُ
يَخْطَفُ اَبْصَارَهُمْ ۭ كُلَّمَآ اَضَاۗءَ لَهُمْ مَّشَوْا فِيْهِ ۤ وَاِذَآ
اَظْلَمَ عَلَيْهِمْ قَامُوْا ۭ وَلَوْ شَاۗءَ اللّٰهُ لَذَهَبَ بِسَمْعِهِمْ

हैं,[17] ये अब न पलटेंगे। (19) या फिर इनकी मिसाल यूँ समझो कि आसमान से ज़ोर की बारिश हो रही है और उसके साथ अन्धेरी घटा और कड़क और चमक भी है, ये बिजली के कड़ाके सुनकर अपनी जानों के डर से कानों में उँगलियाँ ठूँसे लेते हैं और अल्लाह हक़ के इन इनकारियों को हर तरफ़ से घेरे में लिए हुए है।[18] (20) चमक से इनकी हालत यह हो रही है कि मानो बहुत जल्द बिजली इनकी आँखों की रौशनी उचक ले जाएगी। जब ज़रा कुछ रौशनी इन्हें महसूस होती है तो उसमें कुछ दूर चल लेते हैं और जब इनपर अन्धेरा छा जाता है तो खड़े हो जाते हैं।[19]– अल्लाह चाहता तो इनके सुनने और देखने

देखना चाहता। जब उन्होंने नूरे-हक़ (हक़ की रौशनी) से मुँह फेरकर बातिल के अंधेरे में ही भटकना चाहा, तो अल्लाह ने उन्हें इसी की तौफ़ीक़ दे दी।

17. हक़ बात सुनने के लिए बहरे, सच बोलने के लिए गूँगे, सच देखने के लिए अंधे।

18. यानी कानों में उँगलियाँ ठूँसकर वे अपने आपको कुछ देर के लिए इस ग़लतफ़हमी में तो डाल सकते हैं कि तबाही से बच जाएँगे, मगर हक़ीक़त में इस तरह से बच नहीं सकते, क्योंकि अल्लाह अपनी तमाम ताक़तों के साथ उनको अपने घेरे में लिए हुए है।

19. पहली मिसाल उन मुनाफ़िक़ों की थी जो दिल में इस्लाम का बिलकुल इनकार करते थे और किसी फ़ायदे और ग़रज़ के लिए 'मुसलमान' बन गए थे। और यह दूसरी मिसाल उनकी है जो शक और शुब्हे और ईमान की कमज़ोरी में पड़े हुए थे, कुछ हक़ के क़ायल भी थे, मगर ऐसी हक़परस्ती (सत्य को मानने) के क़ायल न थे कि उसके लिए तकलीफ़ और मुसीबतों को भी सहन कर जाएँ। इस मिसाल में बारिश से मुराद इस्लाम है जो इनसानियत के लिए रहमत बनकर आया। अंधेरी घटा, कड़क और चमक से मुराद मुश्किलों और मुसीबतों का वह हुजूम (भीड़) और वह सख़्त जिद्दोजुहद है जो इस्लामी तहरीक (आन्दोलन) के मुक़ाबले में अहले-जाहिलियत (अज्ञानियों) की सख़्त मुख़ालिफ़त की वजह से पेश आ रहा था। मिसाल के

وَاَبۡصَارِهِمۡ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىۡءٍ قَدِيۡرٌ ۝٢٠ يٰۤاَيُّهَا
النَّاسُ اعۡبُدُوۡا رَبَّكُمُ الَّذِىۡ خَلَقَكُمۡ وَالَّذِيۡنَ مِنۡ
قَبۡلِكُمۡ لَعَلَّكُمۡ تَتَّقُوۡنَ ۝٢١ الَّذِىۡ جَعَلَ لَكُمُ الۡاَرۡضَ
فِرَاشًا وَّالسَّمَآءَ بِنَآءً وَّاَنۡزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً فَاَخۡرَجَ
بِهٖ مِنَ الثَّمَرٰتِ رِزۡقًا لَّكُمۡ ۚ فَلَا تَجۡعَلُوۡا لِلّٰهِ اَنۡدَادًا وَّ

की ताक़त बिलकुल ही छीन लेता,[20] यक़ीनन वह हर चीज़ की क़ुदरत रखता है। (21) लोगो![21] बन्दगी इख़्तियार करो अपने उस रब की जो तुम्हारा और तुमसे पहले जो लोग हो गुज़रे हैं उन सबका पैदा करनेवाला है, तुम्हारे बचने की उम्मीद[22] इसी सूरत से हो सकती है। (22) वही तो है जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन का फ़र्श बिछाया, आसमान की छत बनाई, ऊपर से पानी बरसाया और उसके ज़रीए से हर तरह की पैदावार निकालकर

आख़िरी हिस्से में इन मुनाफ़िक़ों (कपटचारियों) की इस कैफ़ियत का नक़्शा खींचा गया है कि जब मामला ज़रा आसान होता है तो ये चल पड़ते हैं, और जब कठिनाइयों के बादल छाने लगते हैं या ऐसे हुक्म दिए जाते हैं, जिनसे उनके मन की ख़ाहिश और जाहिलियत (अज्ञानता) के तास्सुबों (पक्षपातों) पर चोट पड़ती है, तो ठिठककर खड़े हो जाते हैं।

20. यानी जिस तरह पहली क़िस्म के मुनाफ़िक़ों के देखने की ताक़त को उसने बिलकुल छीन लिया, उसी तरह अल्लाह उनको भी हक़ के लिए अंधा-बहरा बना सकता था। मगर अल्लाह का यह क़ायदा नहीं है कि जो किसी हद तक देखना और सुनना चाहता हो, उसे उतना भी न देखने-सुनने दे। जितना भी हक़ देखने और हक़ सुनने के लिए ये तैयार थे, उतनी ही देखने और सुनने की ताक़त अल्लाह ने उनके पास रहने दी।

21. हालाँकि क़ुरआन की दावत तमाम इनसानों के लिए आम है, लेकिन इस दावत से फ़ायदा उठाने या न उठाने का दारोमदार लोगों की अपनी आमादगी पर और उस आमादगी के मुताबिक़ अल्लाह की तौफ़ीक़ पर है। इसलिए पहले इनसानों के बीच फ़र्क़ करके वाज़ेह कर दिया गया कि किस क़िस्म के लोग इस किताब की रहनुमाई से फ़ायदा उठा सकते हैं और किस तरह के नहीं उठा सकते। इसके बाद अब तमाम इनसानों के सामने वह असूल बात पेश की जाती है, जिसकी तरफ़ बुलाने के लिए क़ुरआन आया है।

22. यानी दुनिया में ग़लत देखने और ग़लतकारी से और आख़िरत में ख़ुदा के अज़ाब से बचने की उम्मीद।

اَنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ﴿٢٢﴾ وَاِنۡ كُنۡتُمۡ فِىۡ رَيۡبٍ مِّمَّا نَزَّلۡنَا عَلٰى
عَبۡدِنَا فَاۡتُوۡا بِسُوۡرَةٍ مِّنۡ مِّثۡلِهٖ ۖ وَادۡعُوۡا شُهَدَآءَكُمۡ
مِّنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ اِنۡ كُنۡتُمۡ صٰدِقِيۡنَ ﴿٢٣﴾ فَاِنۡ لَّمۡ تَفۡعَلُوۡا
وَلَنۡ تَفۡعَلُوۡا فَاتَّقُوۡا النَّارَ الَّتِىۡ وَقُوۡدُهَا النَّاسُ وَ
الۡحِجَارَةُ ۖۚ اُعِدَّتۡ لِلۡكٰفِرِيۡنَ ﴿٢٤﴾ وَبَشِّرِ الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا وَ

तुम्हारे लिए रोज़ी जुटाई। तो जब तुम यह जानते हो तो दूसरों को अल्लाह के मुक़ाबले[23] में न लाओ।

(23) और अगर तुम्हें इस मामले में संदेह है कि यह किताब जो हमने अपने बन्दे पर उतारी है, यह हमारी है या नहीं, तो इस जैसी एक ही सूरा बना लाओ, अपने सारे हिमायतियों को बुला लो, एक अल्लाह को छोड़कर बाक़ी जिसकी चाहो मदद ले लो, अगर तुम सच्चे हो तो यह काम करके दिखाओ।[24] (24) लेकिन अगर तुमने ऐसा न किया, और यक़ीनन कभी नहीं कर सकते, तो डरो उस आग से जिसका ईंधन बनेंगे इनसान और पत्थर,[25] जो तैयार की गई है हक़ (सत्य) का इनकार करनेवालों के लिए।

23. यानी जब तुम खुद भी इस बात के क़ायल हो और तुम्हें मालूम है कि ये सारे काम अल्लाह ही के हैं, तो फिर तुम्हारी बन्दगी उसी के लिए ख़ास होनी चाहिए। दूसरा कौन इसका हक़दार हो सकता है कि तुम उसकी बन्दगी करो। दूसरों को अल्लाह के मुक़ाबले का ठहराने से मुराद यह है कि बन्दगी और इबादत की मुख़्तलिफ़ क़िस्मों में से किसी भी क़िस्म का रवैया ख़ुदा के सिवा दूसरों के साथ अपनाया जाए। आगे चलकर ख़ुद क़ुरआन ही से तफ़सील (विस्तार) के साथ मालूम हो जाएगा कि इबादत की वे क़िस्में कौन-कौन-सी हैं, जिन्हें सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ास होना चाहिए और जिनमें दूसरों को शरीक ठहराना वह 'शिर्क' है जिसे रोकने के लिए क़ुरआन आया है।

24. इससे पहले मक्का में कई बार यह चैलेंज दिया जा चुका था कि अगर तुम इस क़ुरआन को इनसान की तसनीफ़ (रचना) समझते हो, तो इसी तरह कोई कलाम लिख करके दिखाओ। अब मदीना पहुँचकर फिर दोहराया जा रहा है। (देखिए सूरा 10 यूनुस आयत 38; सूरा 11 हूद आयत 13; सूरा 17 बनी इसराईल आयत 88; सूरा 52 अत्-तूर आयत 33-34)।

25. इसमें यह लतीफ़ (सूक्ष्म) इशारा है कि वहाँ सिर्फ़ तुम ही दोज़ख़ का ईंधन न बनोगे, बल्कि तुम्हारे ये बुत भी वहाँ तुम्हारे साथ ही मौजूद होंगे जिनकी तुम इबादत करते हो और जिनके

عَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ اَنَّ لَهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِىْ مِنْ تَحْتِهَا
الْاَنْهٰرُ ۭ كُلَّمَا رُزِقُوْا مِنْهَا مِنْ ثَمَرَةٍ رِّزْقًا ۙ قَالُوْا
هٰذَا الَّذِىْ رُزِقْنَا مِنْ قَبْلُ ۙ وَاُتُوْا بِهٖ مُتَشَابِهًا ۭ وَلَهُمْ
فِيْهَآ اَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ ڎ وَّهُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝ اِنَّ اللّٰهَ

(25) और ऐ पैग़म्बर! जो लोग इस किताब पर ईमान ले आएँ और (इसके मुताबिक़) अपने अमल (कर्म) ठीक कर लें, उन्हें ख़ुशख़बरी दे दो कि उनके लिए ऐसे बाग़ हैं जिनके नीचे नहरें बहती होंगी, उन बाग़ों के फल देखने में दुनिया के फलों से मिलते-जुलते होंगे। जब कोई फल उन्हें खाने को दिया जाएगा तो वे कहेंगे कि ऐसे ही फल इससे पहले दुनिया में हमको दिए जाते थे।[26] उनके लिए वहाँ पाकीज़ा बीवियाँ होंगी[27] और वे वहाँ हमेशा रहेंगे।

आगे तुम माथा टेकते हो। उस वक़्त तुम्हें ख़ुद ही मालूम हो जाएगा कि ख़ुदाई (ईश्वरत्व) में ये कितना दख़ल रखते थे।

26. यानी निराले और अजनबी फल न होंगे जिन्हें वे पहचानते न हों। शक्ल में उन्हीं फलों से मिलते-जुलते होंगे जिनसे वे दुनिया में वाक़िफ़ थे। अलबत्ता, मज़े में वे उनसे कहीं ज़्यादा बढ़े हुए होंगे। देखने में जैसे आम, अनार और सन्तरे ही होंगे। जन्नती हर फल को देखकर पहचान लेंगे कि यह आम है और यह अनार है और यह सन्तरा है, मगर मज़े में दुनिया के आमों, अनारों और सन्तरों का उनसे कोई ताल्लुक़ न होगा।

27. अरबी इबारत (वाक्य) में 'अज़्वाज' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। यह 'ज़ौज' लफ़्ज़ की जमा (बहुवचन) है, जिसका मतलब है 'जोड़ा' और यह लफ़्ज़ शौहर और बीवी दोनों के लिए इस्तेमाल होता है। शौहर के लिए बीवी 'ज़ौज' है और बीवी के लिए शौहर 'ज़ौज' है। मगर वहाँ ये जोड़े पाकीज़गी की सिफ़त (गुण) के साथ होंगे। अगर दुनिया में कोई मर्द नेक है और उसकी बीवी नेक नहीं है तो आख़िरत में उनका रिश्ता कट जाएगा और नेक मर्द को कोई दूसरी नेक बीवी दे दी जाएगी। अगर यहाँ कोई औरत नेक है और उसका शौहर बुरा है, तो वहाँ उस बुरे शौहर के साथ रहने से छुटकारा पा जाएगी और कोई नेक मर्द उसका शौहर बना दिया जाएगा। और अगर यहाँ कोई शौहर और बीवी दोनों नेक हैं, तो वहाँ उनका यही रिश्ता हमेशा-हमेशा का हो जाएगा।

لَا يَسْتَحْيٖٓ اَنْ يَّضْرِبَ مَثَلًا مَّا بَعُوْضَةً فَمَا فَوْقَهَا ؕ
فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ وَاَمَّا
الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فَيَقُوْلُوْنَ مَاذَآ اَرَادَ اللّٰهُ بِهٰذَا مَثَلًا ۘ
يُضِلُّ بِهٖ كَثِيْرًا ۙ وَّيَهْدِيْ بِهٖ كَثِيْرًا ؕ وَمَا يُضِلُّ بِهٖٓ اِلَّا
الْفٰسِقِيْنَ ۙ﴿۲۶﴾ الَّذِيْنَ يَنْقُضُوْنَ عَهْدَ اللّٰهِ مِنْۢ بَعْدِ

(26) हाँ, अल्लाह इससे हरगिज़ नहीं शर्माता कि मच्छर या इससे भी मामूली किसी[28] चीज़ की मिसालें दे। जो लोग हक़ बात को क़बूल करनेवाले हैं, वे इन्हीं मिसालों को देखकर जान लेते हैं कि यह हक़ (सत्य) है जो उनके रब ही की तरफ़ से आया है, और जो माननेवाले नहीं हैं, वे उन्हें सुनकर कहने लगते हैं कि ऐसी मिसालों से अल्लाह को क्या वास्ता? इस तरह अल्लाह एक ही बात से बहुतों को गुमराही में डाल देता है और बहुतों को सीधा रास्ता दिखा देता है।[29] और गुमराही में वह उन्हीं को डालता है जो फ़ासिक़ हैं,[30] (27) अल्लाह के अह्द (वचन) को मज़बूत बाँध लेने के बाद तोड़ देते हैं,[31]

28. यहाँ एक एतिराज़ (आपत्ति) का ज़िक्र किए बिना उसका जवाब दिया गया है। क़ुरआन में कई जगहों पर मक़सद को वाज़ेह करने के लिए मकड़ी, मक्खी, मच्छर वग़ैरा की जो मिसालें दी गई हैं उनपर मुख़ालिफ़ों को एतिराज़ था कि यह अल्लाह का कैसा कलाम (वाणी) है जिसमें ऐसी मामूली चीज़ों की मिसालें हैं। वे कहते थे कि अगर यह अल्लाह का कलाम (वाणी) होता तो इसमें ये फ़ुज़ूल की बातें न होतीं।

29. यानी जो लोग बात को समझना नहीं चाहते, हक़ की चाहत नहीं रखते, उनकी निगाहें तो सिर्फ़ ज़ाहिरी अलफ़ाज़ (शब्दों) में अटककर रह जाती हैं और वे उन चीज़ों से उलटे नतीजे निकाल कर हक़ से और ज़्यादा दूर चले जाते हैं। इसके बरख़िलाफ़ जो ख़ुद हक़ीक़त को पाना चाहते हैं और सही सूझ-बूझ रखते हैं, उनको इन्हीं बातों में हिकमत के जौहर दिखाई पड़ते हैं और उनका दिल गवाही देता है कि ऐसी हिकमत और सूझ-बूझ से भरी बातें अल्लाह ही की तरफ़ से हो सकती हैं।

30. फ़ासिक़ : नाफ़रमान, इताअत (फ़रमाँबरदारी और बन्दगी) की हद से बाहर निकल जानेवाला।

مِيْثَاقِهٖ ۪ وَيَقْطَعُوْنَ مَآ اَمَرَ اللّٰهُ بِهٖٓ اَنْ يُّوْصَلَ وَ
يُفْسِدُوْنَ فِي الْاَرْضِ ۭ اُولٰۗىِٕكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ۝ كَيْفَ
تَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَكُنْتُمْ اَمْوَاتًا فَاَحْيَاكُمْ ۚ ثُمَّ يُمِيْتُكُمْ ثُمَّ

अल्लाह ने जिसे जोड़ने का हुक्म दिया है उसे काटते हैं,[32] और ज़मीन में बिगाड़ पैदा करते हैं।[33] हक़ीक़त में यही लोग घाटा उठानेवाले हैं।

(28) तुम अल्लाह के साथ इनकार का रवैया कैसे अपनाते हो, हालाँकि तुम बेजान

---

31. बादशाह अपने मुलाज़िमों (कर्मचारियों) और जनता के नाम जो फ़रमान या हिदायतें जारी करता है उनको अरबी मुहावरे में 'अहद' कहा जाता है; क्योंकि उनपर अमल करना और हुक्म को पुरा करना जनता के लिए ज़रूरी होता है। यहाँ 'अहद' का लफ़्ज़ इसी मानी में इस्तेमाल हुआ है।
अल्लाह के अहद से मुराद उसका वह मुस्तक़िल (शाश्वत्) हुक्म है जिसके मुताबिक़ तमाम लोग सिर्फ़ उसी की बन्दगी, फ़रमाँबरदारी और इबादत करने पर लगाए गए हैं। 'मज़बूत बाँध लेने के बाद' से इशारा उस तरफ़ है कि आदम की पैदाइश के वक़्त सारे ही इनसानों से इस फ़रमान की पाबन्दी का इक़रार लिया गया था। इस अहद व क़रार पर क़ुरआन सूरा 7, अल-आराफ़, आयत 172 में ज़्यादा तफ़सील के साथ रौशनी डाली गई है।
32. यानी जिन राब्तों और ताल्लुक़ के क़ायम रहने और मज़बूती पर इनसान की इज्तिमाई (सामाजिक) और इन्फ़िरादी (वैयक्तिक) कामयाबी का दारोमदार है और जिनको ठीक रखने का अल्लाह ने हुक्म दिया है, उनपर ये लोग कुल्हाड़ी चलाते हैं। इस मुख़्तसर से जुमले में इतनी ज़्यादा वुसअत (व्यापकता) है कि इनसानी समझ और अख़लाक़ की पूरी दुनिया पर जो दो आदमियों के ताल्लुक़ से लेकर आलमगीर बैनुल-अक़वामी (विश्वव्यापी अन्तर्राष्ट्रीय) ताल्लुक़ात तक फ़ैली हुई है सिर्फ यही एक जुमला हावी हो जाता है। रिश्तों को काटने से मुराद सिर्फ़ इनसानी ताल्लुक़ात को काटना ही नहीं है, बल्कि ताल्लुक़ात की सही और ज़ाइज़ सूरतों के अलावा जो सूरतें भी इख़्तियार की जाएँगी वे सब इसी के तहत आ जाएँगी, क्योंकि ग़लत और नाजाइज़ तल्लुक़ात का अंजाम वही है जो ताल्लुक़ को काटने का है। यानी इनसानों के बीच के ताल्लुक़ात की ख़राबी और अख़लाक़ और तहज़ीब के निज़ाम (व्यवस्था) की बरबादी।
33. इन तीन जुमलों में फिस्क़ और फ़ासिक़ (अवज्ञा और अवज्ञाकारी) का पूरा मतलब बयान कर दिया गया है। अल्लाह और बन्दे के ताल्लुक़ और इनसान और इनसान के ताल्लुक़ को काटने या बिगाड़ने का लाज़मी नतीजा फ़साद और बिगाड़ है, और जो इस फ़साद (बिगाड़) को पैदा करता है, वही 'फ़ासिक़' यानी बदकार और नाफ़रमान है।

يُحْيِيْكُمْ ثُمَّ اِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ۝ هُوَالَّذِیْ خَلَقَ لَكُمْ مَّا
فِی الْاَرْضِ جَمِيْعًا ۚ ثُمَّ اسْتَوٰٓی اِلَی السَّمَآءِ فَسَوّٰىهُنَّ
سَبْعَ سَمٰوٰتٍ ؕ وَهُوَ بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِيْمٌ ۝ وَاِذْ قَالَ رَبُّكَ ع
لِلْمَلٰٓئِكَةِ اِنِّیْ جَاعِلٌ فِی الْاَرْضِ خَلِيْفَةً ؕ قَالُوْٓا اَتَجْعَلُ

थे, उसने तुमको ज़िन्दगी दी, फिर वही तुम्हें मौत देगा, फिर वही तुम्हें दोबारा ज़िन्दगी देगा, फिर उसी की तरफ़ तुम्हें पलटकर जाना है। (29) वही तो है जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन की सारी चीज़ें पैदा कीं, फिर ऊपर की तरफ़ तवज्जोह की और सात आसमान[34] ठीक तौर पर तैयार किए। और वह हर चीज़ का इल्म रखनेवाला है।[35]

(30) फिर ज़रा[36] उस वक़्त का तसव्वुर करो जब तुम्हारे रब ने फ़रिश्तों[37] से कहा

34. सात आसमानों की हक़ीक़त क्या है, इसका तअय्युन (निर्धारण) मुश्किल है। इनसान हर ज़माने में आसमान या दूसरे लफ़्ज़ों में ज़मीन से परे के बारे में अपने मुशाहिदों (अवलोकनों) और गुमानों के मुताबिक़ मुख़्तलिफ़ तसव्वुरात अपनाता रहा है जो बराबर बदलते रहे हैं। इसलिए उनमें से किसी तसव्वुर को बुनियाद ठहराकर क़ुरआन के इन अलफ़ाज़ का मतलब मुतैयन करना सही नहीं होगा। बस मुख़्तसर तौर पर इतना समझ लेना चाहिए कि या तो इससे मुराद यह है कि ज़मीन से परे जो भी कायनात (जगत्) है उसे अल्लाह ने सात मज़बूत तबक़ों में बाँट रखा है या यह कि ज़मीन इस कायनात के जिस हिस्से में वाक़ेअ (स्थित) है, वह सात तबक़ो (वर्गों) पर मुश्तमिल है।

35. इस जुमले में दो अहम हक़ीक़तों के बारे में ख़बरदार किया गया है। एक यह कि तुम उस ख़ुदा के मुक़ाबले में इनकार और बग़ावत का रवैया अपनाने की जुरअत (दुस्साहस) कैसे करते हो जो तुम्हारी तमाम हरकतों की ख़बर रखता है। जिससे तुम्हारी कोई हरकत छिपी हुई नहीं रह सकती, दूसरे यह कि जो ख़ुदा तमाम हक़ीक़तों का इल्म (ज्ञान) रखता है, जो हक़ीक़त में इल्म का सरचश्मा है, उससे मुँह मोड़कर सिवाए इसके कि तुम जाहिलियत की अंधेरियों में भटको और क्या नतीजा निकल सकता है। जब उसके सिवा इल्म का कोई सरचश्मा है ही नहीं, जब उसके सिवा और कहीं से रौशनी नहीं मिल सकती, जिसमें तुम अपनी ज़िन्दगी का रास्ता साफ़ देख सको तो आख़िर उससे सरकशी करने में क्या फ़ायदा तुमने देखा है।

36. ऊपर के रुकू (परिच्छेद) में रब की बन्दगी की दावत इस बुनियाद पर दी गई थी कि वह तुम्हारा पैदा करनेवाला है, पालनहार है, उसी की मुट्ठी में तुम्हारी ज़िन्दगी और मौत है, और

فِيهَا مَن يُفْسِدُ فِيهَا وَيَسْفِكُ الدِّمَاءَ ۚ وَنَحْنُ نُسَبِّحُ

था कि "मैं ज़मीन में एक ख़लीफ़ा[38] बनानेवाला हूँ।" उन्होंने कहा, "क्या आप ज़मीन में किसी ऐसे को मुक़र्रर करनेवाले हैं जो उसके इन्तिज़ाम को बिगाड़ देगा और ख़ून-ख़राबा

जिस दुनिया में तुम रहते हो उसका मालिक और इन्तिज़ाम चलानेवाला वही है, इसलिए उसकी बन्दगी के सिवा तुम्हारे लिए और कोई दूसरा तरीक़ा सही नहीं हो सकता। अब इस रुकू (परिच्छेद) में वही दावत इस बुनियाद पर दी जा रही है कि इस दुनिया में ख़ुदा ने तुमको अपना ख़लीफ़ा बनाया है। ख़लीफ़ा होने की हैसियत से तुम्हारा फ़र्ज़ और ज़िम्मेदारी सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि उसकी बन्दगी करो, बल्कि यह भी है कि उसकी भेजी हुई हिदायत के मुताबिक़ काम करो। अगर तुमने ऐसा नहीं किया और अपने पैदाइशी दुश्मन शैतान के इशारों पर चले तो बदतरीन बग़ावत के मुजरिम होगे और इसका बहुत बुरा अंजाम देखोगे।

इस सिलसिले में इनसान की हक़ीक़त और कायनात (जगत्) में उसकी हैसियत ठीक-ठीक बता दी गई है और इनसानों की तारीख़ (इतिहास) का वह बाब पेश किया गया है जिसके जानने का कोई दूसरा ज़रीआ इनसान के पास मौजूद नहीं है। इस बाब से जो अहम नतीजे हासिल होते हैं, वे उन नतीजों से बहुत ज़्यादा क़ीमती हैं जो ज़मीन की तहों से बिखरी हुई हड्डियाँ निकालकर और उन्हें अटकल और गुमान से जोड़-जोड़कर आदमी हासिल करने की कोशिश करता है।

37. अरबी में लफ़्ज़ 'मलक' के असूली मायने 'पैग़ाम पहुँचानेवाला' है। इसी का लफ़्ज़ी (शाब्दिक) तर्जमा 'फ़रस्तादा' (भेजा हुआ) या फ़रिश्ता है। ये सिर्फ़ मुजर्रद (एकाकी) क़ुव्वतें नहीं हैं, जो तशख़्ख़ुस (व्यक्तित्व) न रखती हों, बल्कि ये शख़्सियत रखनेवाली हस्तियाँ हैं जिनसे अल्लाह अपनी इस अज़ीमुश्शान सल्तनत के इन्तिज़ाम में काम लेता है। यूँ समझना चाहिए कि ये ख़ुदा की सल्तनत के कारिन्दे (कर्मचारी) हैं जो ख़ुदा के हुक्मों को लागू करते हैं। नासमझ लोग उन्हें ग़लती से ख़ुदाई में हिस्सेदार समझ बैठे। कुछ ने इन्हें ख़ुदा का रिश्तेदार समझा और उनको देवी-देवता बनाकर उनकी इबादत शुरू कर दी।

38. ख़लीफ़ा : वह जो किसी की मिल्कियत में उसके दिए हुए इख़्तियारात को उसके नायब की हैसियत से इस्तेमाल करे। ख़लीफ़ा मालिक नहीं होता, बल्कि असूल मालिक का नायब होता है। उसके इख़्तियारात (अधिकार) उसके अपने नहीं होते, बल्कि मालिक के दिए हुए होते हैं। वह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ काम करने का हक़ नहीं रखता, बल्कि उसका काम मालिक की मर्ज़ी को पूरा करना होता है। अगर वह ख़ुद अपने आप को मालिक समझ बैठे और मिले हुए इख़्तियारात को मनमाने तरीक़े से इस्तेमाल करने लगे, या असूल मालिक के सिवा किसी और को मालिक मान कर उसकी मर्ज़ी की पैरवी और उसके हुक्मों को पूरा करने लगे, तो ये सब ग़द्दारी और बग़ावत के काम होंगे।

بِحَمۡدِكَ وَنُقَدِّسُ لَكَ ۖ قَالَ إِنِّيٓ أَعۡلَمُ مَا لَا تَعۡلَمُونَ ۝
وَعَلَّمَ ءَادَمَ ٱلۡأَسۡمَآءَ كُلَّهَا ثُمَّ عَرَضَهُمۡ عَلَى ٱلۡمَلَٰٓئِكَةِ

करेगा?[39] आपकी तारीफ़ और शुक्र के साथ तसबीह और आपकी पाकी का बयान तो हम कर ही रहे हैं।"[40] कहा, "मैं जानता हूँ जो कुछ तुम नहीं जानते।"[41] (31) इसके बाद अल्लाह ने आदम को सारी चीज़ों के नाम सिखाए,[42] फिर उन्हें फ़रिश्तों के सामने

39. यह फ़रिश्तों का एतिराज़ न था, बल्कि वे समझना चाहते थे। फ़रिश्तों की क्या मजाल कि ख़ुदा के किसी फ़ैसले पर एतिराज़ करें। वे 'ख़लीफ़ा' लफ़्ज़ से यह तो समझ गए थे कि इस नई मख़लूक़ (प्राणी) को ज़मीन में कुछ इख़्तियार दिए जानेवाले हैं, मगर यह बात उनकी समझ में नहीं आती थी कि सल्तनते-कायनात (जगत्) के इस निज़ाम में किसी ऐसी मख़लूक़ की गुंजाइश कैसे हो सकती है, जिसे इख़्तियार हासिल हो और अगर किसी को कुछ थोड़े-से इख़्तियार दे दिए जाएँ तो सल्तनत के जिस हिस्से में भी ऐसा किया जाएगा, वहाँ का निज़ाम ख़राबी से कैसे बच पाएगा। इसी बात को वे समझना चाहते थे।

40. इस जुमले (वाक्य) से फ़रिश्तों का मक़सद यह न था कि ख़लीफ़ा उन्हें बनाया जाए; वे इसके हक़दार हैं, बल्कि उनका मतलब यह था कि हुज़ूर के हुक्मों का पालन पूरी तरह हो रहा है, आपके हुक्म के पालन में हम पूरी तरह लगे हुए हैं, आपकी मर्ज़ी के मुताबिक़ सारे जहान को पाक-साफ़ रखा जाता है और इसके साथ आपकी तारीफ़ और शुक्र और आपकी 'तस्बीह व तक़्दीस' (महानता एवं पवित्रता का गुणगान) भी हम ख़ादिम बड़े अदब से कर रहे हैं। अब कमी किस चीज़ की है कि उसके लिए एक ख़लीफ़ा की ज़रूरत हो? हम इसका मक़सद नहीं समझ सके। तस्बीह लफ़्ज़ के दो मानी हैं। इसका एक मतलब पाकी बयान करना भी है और दूसरा सरगर्मी के साथ काम और लगन के साथ कोशिश करना भी है। इसी तरह तक़्दीस के भी दो मानी हैं, एक पाकी का इज़हार व बयान, दूसरे पाक करना।

41. यह फ़रिश्तों के दूसरे शुब्हे का जवाब है। यानी कहा कि ख़लीफ़ा मुक़र्रर करने की ज़रूरत और मसलिहत (निहित उद्देश्य) मैं जानता हूँ, तुम इसे नहीं समझ सकते। अपनी जिन ख़िदमतों का ज़िक्र तुम कर रहे हो, वे काफ़ी नहीं हैं, बल्कि इनसे बढ़कर कुछ और मतलूब (अभीष्ट) है इसी लिए धरती में एक ऐसी मख़लूक़ के पैदा करने का इरादा किया गया है जिसे कुछ इख़्तियार दिए जाएँ।

42. इनसान के जानने की शक्ल असूल में यही है कि वह नामों के ज़रीए से चीज़ों की जानकारी को अपने ज़ेहन में बिठाता है, इसलिए इनसान की तमाम मालूमात असूल में चीज़ों के नामों पर मुश्तमिल (आधारित) हैं। आदम को सारे नाम सिखाना मानो उनको सभी चीज़ों की जानकारी देनी थी।

فَقَالَ اَنْۢبِـُٔوْنِیْ بِاَسْمَآءِ هٰۤؤُلَآءِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِیْنَ ۝۳۱
قَالُوْا سُبْحٰنَكَ لَا عِلْمَ لَنَاۤ اِلَّا مَا عَلَّمْتَنَا ؕ اِنَّكَ اَنْتَ الْعَلِیْمُ
الْحَكِیْمُ ۝۳۲ قَالَ یٰۤاٰدَمُ اَنْۢبِئْهُمْ بِاَسْمَآىِٕهِمْ ۚ فَلَمَّاۤ اَنْۢبَاَهُمْ
بِاَسْمَآىِٕهِمْ ۙ قَالَ اَلَمْ اَقُلْ لَّكُمْ اِنِّیْۤ اَعْلَمُ غَیْبَ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضِ ۙ وَاَعْلَمُ مَا تُبْدُوْنَ وَمَا كُنْتُمْ تَكْتُمُوْنَ ۝۳۳ وَاِذْ

पेश किया और कहा, ''अगर तुम्हारा ख़याल सही है (कि किसी ख़लीफ़ा के मुक़र्रर करने से इन्तिज़ाम बिगड़ जाएगा) तो ज़रा इन चीज़ों के नाम बताओ।'' (32) उन्होंने अर्ज़ किया, ''ऐब से पाक तो आप ही की हस्ती है। हम तो बस उतना ही इल्म रखते हैं, जितना आपने हमको दे दिया है।[43] हक़ीक़त में सब कुछ जानने और समझनेवाला आपके सिवा कोई नहीं।'' (33) फिर अल्लाह ने आदम से कहा, ''तुम इन्हें इन चीज़ों के नाम बताओ।'' जब उसने उनको उन सबके नाम बता दिए[44] तो अल्लाह ने कहा, ''मैंने तुमसे कहा न था कि मैं आसमानों और ज़मीन की वे सारी हक़ीक़तें जानता हूँ जो तुमसे छिपी हुई हैं। जो कुछ तुम ज़ाहिर करते हो, वह भी मुझे मालूम है और जो कुछ तुम छिपाते हो, उसे भी मैं जानता हूँ।''

43. ऐसा मालूम होता है कि हर फ़रिश्ते और फ़रिश्तों के हर तबक़े का इल्म (ज्ञान) सिर्फ़ उसी शोबे (विभाग) तक महदूद है जिससे उसका ताल्लुक़ है, जैसे हवा के इन्तिज़ाम में जो फ़रिश्ते लगे हुए हैं वे हवा के बारे में सब कुछ जानते हैं, मगर पानी के बारे में कुछ नहीं जानते। यही हाल दूसरे शोबों के फ़रिश्तों का है। इनसान को इसके बरख़िलाफ़ जामेअ इल्म (व्यापक ज्ञान) दिया गया है। एक-एक शोबे के बारे में, चाहे वह उस शोबे के फ़रिश्तों से कम जानता हो, मगर कुल मिलाकर जो वुसअत इनसान के इल्म को दी गई है, वह फ़रिश्तों को हासिल नहीं।

44. यह मुज़ाहिरा फ़रिश्तों के पहले शुब्हे का जवाब था, मानो कि इस तरीक़े से अल्लाह ने उन्हें बता दिया कि मैं आदम को सिर्फ़ इख़्तियार ही नहीं दे रहा हूँ, बल्कि इल्म भी दे रहा हूँ। इस के तक़र्रुर से बिगाड़ का जो अंदेशा तुम्हें हुआ वह इस मामले का सिर्फ़ एक पहलू है। दूसरा पहलू सुधार और इस्लाह का भी है और वह बिगाड़ के पहलू से ज़्यादा वज़नी और ज़्यादा क़ीमती है। हकीम (हिक्मतवाले) का यह काम नहीं है कि छोटी ख़राबी की वजह से बड़ी अच्छाई को अनदेखा कर दे।

قُلْنَا لِلْمَلٰٓئِكَةِ اسْجُدُوْا لِاٰدَمَ فَسَجَدُوْٓا اِلَّآ اِبْلِيْسَ ۭ اَبٰى

(34) फिर जब हमने फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि आदम के आगे झुक जाओ, तो सब[45] झुक गए मगर इबलीस[46] ने इनकार किया। वह अपनी बड़ाई के घमंड में पड़ गया

45. इसका मतलब यह है कि धरती और उससे ताल्लुक़ रखनेवाली कायनात के सभी तबक़ों में जितने फ़रिश्ते काम में लगे हुए हैं, उन सबको हुक्म दिया गया कि वे अपने आपको इनसान की ख़िदमत में लगा दें। चूँकि इस हिस्से में अल्लाह के हुक्म से इनसान ख़लीफ़ा बनाया जा रहा था, इसलिए फ़रमान जारी हुआ कि सही या ग़लत, जिस काम में भी इनसान अपने उन इख़्तियारों को जो हम उसे दे रहे हैं, इस्तेमाल करना चाहे और हम अपनी मर्ज़ी और स्कीम के तहत उसे ऐसा कर लेने का मौक़ा दे दें, तो तुम्हारी ज़िम्मेदारी है कि तुममें से जिस-जिसके दायरा-ए-अमल (कार्य-क्षेत्र) से वह काम ताल्लुक़ रखता हो, वह अपने दायरे की हद तक उसका साथ दे। वह चोरी करना चाहे या नमाज़ पढ़ने का इरादा करे, भलाई करना चाहे, या बुराई करने के लिए जाए दोनों सूरतों में जब तक हम उसे उसकी पसन्द के मुताबिक़ अमल करने की इजाज़त दे रहे हैं, तुम्हें उसके लिए आसानी पैदा करनी होगी। मिसाल के तौर पर इस बात को इस तरह समझिए कि एक हाकिम जब किसी आदमी को अपने देश के किसी सूबे (स्टेट) या ज़िले का ऑफ़िसर मुक़र्रर करता है तो उस इलाक़े में हुकूमत के जितने भी कारिन्दे (कर्मचारी) होते हैं उन सबकी ज़िम्मेदारी होती है कि उसके हुक्मों को मानें और जब तक हाकिम की मर्ज़ी यह है कि उसे अपने इख़्तियारात के इस्तेमाल का मौक़ा दे,, उस वक़्त तक उसका साथ देते रहें, यह देखे बग़ैर कि वह सही काम में उन इख़्तियारात का इस्तेमाल कर रहा है या ग़लत काम में। अलबत्ता जब जिस काम के बारे में भी हाकिम का इशारा हो जाए कि उसे न करने दिया जाए तो वहीं उस ऑफ़िसर का इख़्तियार ख़त्म हो जाता है और उसे ऐसा महसूस होने लगता है कि सारे इलाक़े के कारिन्दों ने मानो हड़ताल कर दी है। यहाँ तक कि जिस वक़्त हाकिम की तरफ़ से उस ऑफ़िसर की बर्ख़ास्तगी और गिरफ़्तारी का हुक्म होता है तो वही मातहत और ख़ादिम जो कल तक उसके इशारों पर हरकत कर रहे थे उसके हाथों में हथकड़ियाँ डालकर उसे जेलख़ाने की तरफ़ ले जाते हैं। फ़रिश्तों को आदम के आगे सजदा करने का जो हुक्म दिया गया था, उसकी हैसियत कुछ इसी तरह की थी। मुमकिन है कि सिर्फ़ मातहत हो जाने ही को सजदा करना कहा गया हो, मगर यह भी मुमकिन है कि इस मातहती की निशानी के तौर पर किसी ज़ाहिरी काम का भी हुक्म दिया गया हो, और यही ज़्यादा सही मालूम होता है।

46. इबलीस लफ़्ज़ का मतलब है —'बेहद नाउम्मीद और मायूस'। इस्लामी इस्तिलाह में यह उस जिन्न का नाम है जिसने अल्लाह के हुक्म की नाफ़रमानी करके आदम और आदम की औलाद के मातहत होने और उसकी फ़रमाँबरदारी से इनकार कर दिया था। और अल्लाह से क़ियामत तक के लिए मुहलत माँगी कि इनसानों को बहकाने और गुमराहियों पर उभारने का उसे मौक़ा दिया जाए। इसी को 'अश्शैतान' भी कहा जाता है । हक़ीक़त में शैतान और इबलीस भी सिर्फ़ किसी एक ताक़त का नाम नहीं है, बल्कि वह भी इनसान की तरह शख़्सियत (व्यक्तित्व)

وَاسۡتَكۡبَرَ وَكَانَ مِنَ الۡكٰفِرِيۡنَ ۝٣٤ وَقُلۡنَا يٰۤـاٰدَمُ اسۡكُنۡ
اَنۡتَ وَزَوۡجُكَ الۡجَـنَّةَ وَكُلَا مِنۡهَا رَغَدًا حَيۡثُ شِئۡتُمَا ۖ وَلَا

और नाफ़रमानों में शामिल हो गया।[47]

(35) फिर हमने आदम से कहा कि "तुम और तुम्हारी बीवी, दोनों जन्नत में रहो और यहाँ जी भरकर जो चाहो खाओ, मगर उस पेड़ का रुख़ न करना[48], वरना

रखनेवाली एक हस्ती है और यह कि किसी को यह ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए कि यह फ़रिश्तों में से था। आगे चलकर क़ुरआन ने ख़ुद यह बात बता दी है कि वह जिन्नों में से था, जो फ़रिश्तों से अलग एक मुस्तक़िल (स्थायी) मख़लूक़ है। (दे॰ क़ुरआन 18:50)

47. इन अलफ़ाज़ से ऐसा मालूम होता है कि शायद इबलीस सजदे से इनकार करने में अकेला न था, बल्कि जिन्नों का एक गरोह नाफ़रमानी पर आमादा हो गया था और इबलीस का नाम सिर्फ़ इसलिए लिया गया है कि वह उनका सरदार और इस बग़ावत में आगे-आगे था। लेकिन इस आयत का दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है कि 'वह कुफ़्र (नाफ़रमानी) करनेवालों में से था।' इस सूरत में मतलब यह होगा कि जिन्नों का एक गरोह पहले से ऐसा मौजूद था जो सरकश और नाफ़रमान था और इबलीस का ताल्लुक़ उसी गरोह से था। क़ुरआन में आम तौर से "शयातीन" (शैतानों) का लफ़्ज़ इन्हीं जिन्नों और उनकी नस्ल के लिए इस्तेमाल हुआ है, और जहाँ शैतानों से इनसान मुराद लेने के लिए कोई इशारा न हो, वहाँ यही जिन्न शैतान मुराद होते हैं।

48. इससे मालूम होता है कि ज़मीन यानी अपनी तक़र्रुरी (नियुक्ति) की जगह पर ख़लीफ़ा की हैसियत से भेजे जाने से पहले उन दोनों को इम्तिहान की ग़रज़ से जन्नत में रखा गया था, ताकि उनके रुझानों की आज़माइश हो जाए। इस आज़माइश के लिए एक पेड़ को चुन लिया गया और हुक्म दिया गया कि उसके क़रीब न जाना और इसका अंजाम भी बता दिया गया कि ऐसा करोगे तो हमारी निगाह में ज़ालिम ठहरोगे। यह बहस ग़ैर-ज़रूरी है कि वह पेड़ कौन-सा था और उसमें क्या ख़ास बात थी कि उससे मना किया गया। मना करने की वजह यह न थी कि उस पेड़ की ख़ासियत (गुण) में कोई ख़राबी थी और उससे आदम व हव्वा को नुक़सान पहुँचने का ख़तरा था। असल ग़रज़ इस बात की आज़माइश थी कि ये शैतान के उकसावों के मुक़ाबले में किस हद तक हुक्म मानने पर क़ायम रहते हैं। इस मक़सद के लिए किसी एक चीज़ को चुन लेना काफ़ी था। इसी लिए अल्लाह ने पेड़ का नाम और उसकी ख़ासियत (विशेषता) का कोई ज़िक्र नहीं किया।

इस इम्तिहान के लिए जन्नत ही की जगह सबसे ज़्यादा मुनासिब थी। असल में उसे इम्तिहान की जगह बनाने का मक़सद इस हक़ीक़त को इनसान के दिल-व-दिमाग़ में ये बिठाना था कि तुम्हारे लिए इनसानियत के मर्तबे के लिहाज़ से जन्नत ही सही और मुनासिब जगह है। लेकिन

تَقْرَبَا هٰذِهِ الشَّجَرَةَ فَتَكُوْنَا مِنَ الظّٰلِمِيْنَ ۝ فَأَزَلَّهُمَا
الشَّيْطٰنُ عَنْهَا فَأَخْرَجَهُمَا مِمَّا كَانَا فِيْهِ ۖ وَقُلْنَا اهْبِطُوْا
بَعْضُكُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ ۚ وَلَكُمْ فِي الْأَرْضِ مُسْتَقَرٌّ وَّمَتَاعٌ

ज़ालिमों[49] में गिने जाओगे।" (36) आख़िरकार शैतान ने उन दोनों को उस पेड़ का लालच देकर हमारे हुक्म की पैरवी से हटा दिया और उन्हें उस हालत से निकलवाकर छोड़ा जिसमें वे थे। हमने हुक्म दिया कि "अब तुम सब यहाँ से उतर जाओ, तुम एक-दूसरे के दुश्मन हो[50] और तुम्हें एक ख़ास वक़्त तक ज़मीन में ठहरना और वहीं

शैतानी उकसाहटों के मुक़ाबले में अगर तुम अल्लाह की फ़रमाँबरदारी के रास्ते से फिर जाओगे तो जिस तरह शुरू में उससे महरूम किए गए थे, उसी तरह आख़िर में भी महरूम ही रहोगे। अपने उस मुनासिब स्थान को, अपनी उस गुमशुदा जन्नत को तुम सिर्फ़ इसी तरह हासिल कर सकते हो कि अपने दुश्मन का कामयाबी से मुक़ाबला करो जो तुम्हें फ़रमाँबरदारी के रास्ते से हटाने की कोशिश करता है।

49. 'ज़ालिम' का लफ़्ज़ निहायत मानाख़ेज़ (अर्थपूर्ण) है। 'ज़ुल्म' असल में हक़ मारने को कहते हैं। ज़ालिम वह है जो किसी का हक़ मारे। जो आदमी ख़ुदा की नाफ़रमानी करता है, वह हक़ीक़त में तीन बड़े बुनियादी हक़ों को मारता है। पहला, ख़ुदा का हक़, क्योंकि वह इसका हक़दार है कि उसका हुक्म माना जाए। दूसरा, उन तमाम चीज़ों के हक़ जिनको उसने इस नाफ़रमानी के काम में इस्तेमाल किया। उसके जिस्मानी आज़ा (अंग), उसकी ज़ेहनी और दिमाग़ी ताक़तें, उसके साथ रहनेवाले इनसान, वे फ़रिश्ते जो उसके इरादे को पूरा करने का इन्तिज़ाम करते हैं और वे चीज़ें जो इस काम में इस्तेमाल होती हैं। उन सबका उसपर यह हक़ था कि वह सिर्फ़ उनके मालिक ही की मर्ज़ी के मुताबिक़ उनपर अपने इख़्तियारों को इस्तेमाल करे। मगर जब उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ उसने इख़्तियार को उन पर इस्तेमाल किया तो हक़ीक़त में उन पर ज़ुल्म किया। तीसरा, ख़ुद अपना हक़, क्योंकि उसपर उसका अपना यह हक़ है कि वह उसे तबाही से बचाए। मगर नाफ़रमानी करके जब वह अपने आपको अल्लाह की सज़ा का हक़दार बनाता है तो असल में अपने ऊपर ज़ुल्म करता है। इन्हीं वजहों से क़ुरआन में जगह-जगह गुनाह के लिए ज़ुल्म और गुनाहगार के लिए ज़ालिम की इस्तिलाह (परिभाषा) इस्तेमाल की गई है।

50. यानी इनसान का दुश्मन शैतान और शैतान का दुश्मन इनसान है। शैतान का, इनसान का दुश्मन होना तो ज़ाहिर है कि वह उसे अल्लाह की फ़रमाँबरदारी के रास्ते से हटाने और तबाही में डालने की कोशिश करता है। रहा इनसान का शैतान का दुश्मन होना, तो हक़ीक़त में इनसानियत तो उससे दुश्मनी ही का तक़ाज़ा करती है। लेकिन मन की ख़ाहिशों के लिए जो

إِلَىٰ حِينٍ ۝ فَتَلَقَّىٰٓ ءَادَمُ مِن رَّبِّهِۦ كَلِمَٰتٍ فَتَابَ عَلَيْهِ ۚ
إِنَّهُۥ هُوَ ٱلتَّوَّابُ ٱلرَّحِيمُ ۝ قُلْنَا ٱهْبِطُوا۟ مِنْهَا جَمِيعًا ۖ

गुज़र-बसर करना है।" (37) उस वक्त आदम ने अपने रब से कुछ कलिमात (बोल) सीखकर तौबा की[51], जिसको उसके रब ने क़बूल कर लिया, क्योंकि वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[52]

तर्ग़ीबात (प्रलोभन) वह पेश करता है, उनसे धोखा खाकर आदमी उसे अपना दोस्त बना लेता है। इस तरह की दोस्ती का मतलब यह नहीं है कि हक़ीक़त में दुश्मनी दोस्ती में बदल गई, बल्कि इसका मतलब यह है कि एक दुश्मन दूसरे दुश्मन से शिकस्त खा गया और उसके जाल में फँस गया।

51. यानी आदम को जब अपने क़ुसूर का एहसास हुआ और उन्होंने नाफ़रमानी से फिर फ़रमाँबरदारी की तरफ़ पलटना चाहा और उनके दिल में यह ख़ाहिश पैदा हुई कि अपने रब से अपनी ग़लती माफ़ कराएँ, तो उन्हें वे अलफ़ाज़ न मिलते थे जिनके साथ वे अपनी ग़लती को माफ़ करने के लिए दुआ कर सकते। अल्लाह ने उनके हाल पर रहम करके उन्हें वे अलफ़ाज बता दिए।

'तौबा' के अस्ल मानी रुजू करना और पलटना है। बन्दे की तरफ़ से तौबा का मतलब यह है कि वह सरकशी से रुक गया, बन्दगी के तरीक़े की तरफ़ पलट आया, और ख़ुदा की तरफ़ से तौबा का मतलब यह है कि वह अपने ग़ुलाम की तरफ़ रहमत के साथ फिर से मुतवज्जेह हो गया। फिर से नज़रे-इनायत (कृपा-दृष्टि) उसकी तरफ़ हो गई।

52. क़ुरआन इस नज़रिए (मत) को ग़लत ठहराता है कि गुनाह के नतीजे ज़रूरी होते हैं और वे इनसान को हर हाल में भुगतने ही होंगे। यह इनसान के अपने गढ़े हुए गुमराहकुन ख़यालों में से एक बड़ा गुमराह करनेवाला नज़रिया है, क्योंकि जो आदमी एक बार गुनाह की ज़िन्दगी में फँस गया, उसको यह नज़रिया हमेशा के लिए मायूस कर देता है। और अगर अपनी ग़लती पर सावधान होने के बाद वह अपने पुराने रवैये की भरपाई और आइन्दा के लिए सुधार करना चाहे तो यह नज़रिया उससे कहता है कि तेरे बचने की अब कोई उम्मीद नहीं है। जो कुछ तू कर चुका है उसके नतीजे हर हाल में तुझे भुगतने ही होंगे। क़ुरआन इसके बरख़िलाफ़ यह बताता है कि भलाई का बदला और बुराई की सज़ा देना बिलकुल अल्लाह के इख़्तियार में है। तुम्हें जिस भलाई पर इनाम मिलता है, वह तुम्हारी भलाई का फ़ितरी नतीजा नहीं है, बल्कि अल्लाह की मेहरबानी है, चाहे दे, चाहे न दे। इसी तरह जिस बुराई पर तुम्हें सज़ा मिलती है, वह भी बुराई का फ़ितरी नतीजा नहीं है कि लाज़मी तौर से निकलकर ही रहे, बल्कि अल्लाह को इसका पूरा-पूरा इख़्तियार है कि वह चाहे तो माफ़ कर दे और चाहे तो सज़ा दे दे। अलबत्ता अल्लाह

فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّىْ هُدًى فَمَنْ تَبِعَ هُدَاىَ فَلَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَكَذَّبُوْا

(38) हमने कहा कि "तुम सब यहाँ से उतर जाओ।[53] फिर जो मेरी तरफ़ से कोई हिदायत तुम्हारे पास पहुँचे, तो जो लोग मेरी उस हिदायत की पैरवी करेंगे उनके लिए किसी ख़ौफ़ और रंज का मौक़ा न होगा, (39) और जो उसको क़बूल करने से इनकार

की मेहरबानी और उसकी रहमत उसकी हिकमत के साथ होती है। वह क्योंकि हिकमतवाला है इसलिए अपने इख़्तियारों (अधिकारों) को अंधाधुन्ध इस्तेमाल नहीं करता। जब किसी भलाई पर इनाम देता है तो यह देखकर ऐसा करता है कि बन्दे ने सच्ची नीयत के साथ उसकी ख़ुशी के लिए भलाई की थी। और जिस भलाई को रद्द कर देता है उसे इस वजह से रद्द करता है कि उसकी ज़ाहिरी शक्ल भले काम की-सी थी, मगर अन्दर अपने रब की ख़ुशी हासिल करने का सच्चा जज़्बा न था। इसी तरह वह सज़ा उस क़ुसूर पर देता है, जिसके पीछे बग़ावत का जज़्बा काम कर रहा हो। और जिसको करने के बाद शर्मिन्दा होने के बजाए और ज़्यादा जुर्म करने की ख़ाहिश मौजूद हो। और अपनी रहमत से माफ़ी उस क़ुसूर पर देता है जिसके बाद बन्दा अपने किए पर शर्मिन्दा हो और आगे के लिए अपने सुधार के लिए तैयार हो। बड़े से बड़े मुजरिम, सख़्त से सख़्त इनकारी के लिए भी ख़ुदा के यहाँ मायूसी और ना उम्मीदी का कोई मौक़ा नहीं, शर्त यह है कि वह अपनी ग़लती को तस्लीम करे, अपनी नाफ़रमानी पर शर्मिन्दा हो और सरकशी तथा बग़ावत की रविश को छोड़कर हुक्म मानने और उस पर चलने के लिए तैयार हो।

53. इस बात को दोबारा बयान करना अपने अन्दर मानी रखता है। ऊपर के जुमले में यह बताया गया है कि आदम *(अलैहि०)* ने तौबा की और अल्लाह ने क़बूल कर ली। इसका मतलब यह हुआ कि आदम *(अलैहि०)* अपनी नाफ़रमानी पर अज़ाब के हक़दार न रहे। गुनाह करने का जो दाग़ उनके दामन पर लग गया था, वह धो डाला गया। न यह दाग़ उनके दामन पर रहा, न उनकी नस्ल के दामन पर और न इसकी ज़रूरत ही पड़ी कि 'मआज़ल्लाह' (अल्लाह की पनाह!)। ख़ुदा को अपना इकलौता भेजकर इनसानों के गुनाहों के कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) के लिए उसे सूली पर चढ़वाना पड़ता। इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह ने आदम *(अलैहि०)* की तौबा क़बूल करने ही पर बस नहीं किया बल्कि उसके बाद उन्हें पैग़म्बरी भी दी, ताकि वे अपनी नस्ल को सीधा रास्ता बताकर जाएँ। अब जो जन्नत से निकलने का हुक्म फिर दोहराया गया, तो इस का मक़सद यह बताना है कि तौबा क़बूल होने का यह तक़ाज़ा न था कि आदम *(अलैहि०)* को जन्नत ही में रहने दिया जाता और ज़मीन पर न उतारा जाता। ज़मीन उनके लिए अज़ाब की जगह न थी। वे यहाँ सज़ा के तौर पर नहीं उतारे गए, बल्कि उन्हें ज़मीन की ख़िलाफ़त (हुक्मरानी) ही के लिए पैदा किया गया था। जन्नत उनके रहने की असली जगह न थी। वहाँ

بِاٰيٰتِنَآ اُولٰٓئِكَ اَصۡحٰبُ النَّارِۚ هُمۡ فِيۡهَا خٰلِدُوۡنَ ۝٣٩ ع

करेंगे और हमारी आयतों [54] को झुठलाएँगे, वे आग में जानेवाले लोग हैं, जहाँ वे हमेशा रहेंगे।"[55]

से निकलने का हुक्म उनके लिए सज़ा की हैसियत न रखता था, असूल मक़सद तो उनको ज़मीन ही पर उतारने का था। हाँ, इससे पहले उनको उस इम्तिहान के लिए जन्नत में रखा गया था जिसका ज़िक्र हाशिया नं॰ 48 में किया जा चुका है।

54. अरबी में 'आयात' 'आयत' की जमा (बहुवचन) है। आयत के असूल मानी उस निशानी (चिह्न) के हैं जो किसी चीज़ की तरफ़ रहनुमाई करे। क़ुरआन में यह लफ़्ज़ चार अलग-अलग मानी में आया है—कहीं इससे मुराद सिर्फ़ अलामत या निशानी ही है, कहीं कायनात (जगत्) की निशानियों को अल्लाह की आयात कहा गया है, क्योंकि क़ुदरत के जलवों में से हर चीज़ उस हक़ीक़त (सच्चाई) की तरफ़ इशारा कर रही है जो उस ज़ाहिरी परदे के पीछे छिपी हुई है। कहीं उन मोजिज़ों (चमत्कारों) को आयात कहा गया है जो नबी *(अलैहि॰)* लेकर आते थे, क्योंकि ये मोजिज़े असूल में इस बात की अलामत होते थे कि ये लोग कायनात के हाकिम के नुमाइन्दे हैं। कहीं अल्लाह की किताब के जुमलों को आयात कहा गया है, क्योंकि वे न सिर्फ़ हक़ और सच्चाई की तरफ़ रहनुमाई करते हैं, बल्कि हक़ीक़त में अल्लाह की तरफ़ से जो किताब भी आती है, उसके सिर्फ़ मज़ामीन (विषयों) ही में नहीं, उसके लफ़्ज़ और अन्दाज़े-बयान और इबादत के तरीक़े तक में उसके जलीलुलक़द्र मुसन्निफ़ (महिमावान रचयिता की) शख़्सियत की निशानियाँ भी वाज़ेह शक्ल में महसूस होती हैं। — हर जगह इबारत और चल रही बात के मौक़ा व महल से आसानी के साथ मालूम हो जाता है, कि 'आयत' का लफ़्ज़ किस मानी में आया है।

55. यह सारे इनसानों के लिए उनकी ज़िन्दगी की शुरुआत से लेकर क़ियामत (फ़ैसले के दिन) तक के लिए अल्लाह का मुस्तक़िल (स्थाई) फ़रमान है और इसी को इसी सूरा की आयत-27 में अल्लाह का 'अह्द' (वचन) कहा गया है। इनसान का काम यह नहीं है कि वह अपने लिए ख़ुद रास्ता तय करे, बल्कि बन्दा और ख़लीफ़ा होने की दोहरी हैसियतों के लिहाज़ से वह इसपर लगाया गया है कि उस रास्ते पर चले जो उसका रब उसके लिए तय करे। और इस रास्ते के मालूम होने की दो ही सूरतें हैं। या तो किसी इनसान के पास सीधे तौर पर अल्लाह की तरफ़ से वह्य (प्रकाशना) आए या फिर वह उस इनसान की पैरवी करे जिसके पास अल्लाह की तरफ़ से वह्य आई हो। कोई तीसरी सूरत यह मालूम होने की नहीं है कि हमारे रब (पालनहार) की ख़ुशी किस राह पर चलने में है। इन दो सूरतों के अलावा हर सूरत ग़लत है, बल्कि ग़लत ही नहीं सरासर ख़ुदा से बग़ावत भी है, जिसकी सज़ा जहन्नम (नरक) के सिवा और कुछ नहीं।

क़ुरआन मजीद में आदम *(अलैहि॰)* की पैदाइश और इनसानों की शुरुआत का यह क़िस्सा सात जगहों पर आया है, जिनमें से पहली जगह यह है और बाक़ी जगहें इस तरह हैं— 7:11-25; 15

يٰبَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ اذْكُرُوْا نِعْمَتِيَ الَّتِيْٓ اَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَاَوْفُوْا بِعَهْدِيْٓ اُوْفِ بِعَهْدِكُمْ ۚ وَاِيَّايَ فَارْهَبُوْنِ ۝ وَ

(40) ऐ बनी-इसराईल![56] ज़रा ख़याल करो मेरी उस नेमत का जो मैंने तुमको दी थी। मेरे साथ तुम्हारा जो अहूद (वचन) था उसे तुम पूरा करो, तो मेरा जो अहूद तुम्हारे साथ था उसे मैं पूरा करूँ, और मुझ ही से तुम डरो। (41) और मैंने जो

: 26-44; 17:61-65; 18:50; 20:16-124; 38:71-85। बाइबल की किताब पैदाइश में पहले, दूसरे और तीसरे बाब (अध्याय) में भी यह क़िस्सा बयान हुआ है। लेकिन दोनों को मिलाकर देखने से नज़र रखनेवाला हर शख़्स महसूस कर सकता है कि दोनों किताबों में क्या फ़र्क़ है। आदम *(अलैहि॰)* को पैदा करने के वक़्त अल्लाह और फ़रिश्तों की बातचीत का ज़िक्र तलमूद में भी आया है। मगर उसके अन्दर भी उन मानी और मक़सदों की कमी है जो क़ुरआन में बयान किए हुए क़िस्से में पाए जाते हैं; बल्कि तलमूद में यह अजीब बात भी-पाई जाती है कि जब फ़रिश्तों ने अल्लाह से पूछा कि इनसानों को आख़िर क्यों पैदा किया जा रहा, तो अल्लाह ने जवाब दिया – ताकि इनमें नेक लोग पैदा हों। बुरे लोगों का ज़िक्र अल्लाह ने नहीं किया वरना फ़रिश्ते इनसान को पैदा करने की मंज़ूरी न देते! (देखें, Talmudic Miscellany Paul Isaac Harshon, London, 1880, P-294, 5)

56. इसराईल के मानी हैं 'अब्दुल्लाह' या 'अल्लाह का बन्दा'। यह हज़रत याक़ूब *(अलैहि॰)* का लक़ब (उपाधि) था, जो उनको अल्लाह की तरफ़ से दिया गया था। वे हज़रत इसहाक़ *(अलैहि॰)* के बेटे और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के पोते थे। इन्हीं की नस्ल को बनी-इसराईल (इसराईल की औलाद या यहूदी) कहते हैं। पिछले चार रुकूओं (आयात 1-39 तक) में तमहीदी (भूमिका के रूप में) तक़रीर थी जिसका ख़िताब (सम्बोधन) सारे ही इनसानों की तरफ़ आम था। अब यहाँ से चौदहवें रुकू (आयत 40-121) तक लगातार एक तक़रीर उस क़ौम को मुख़ातब करते हुए चलती है, जिसमें कहीं-कहीं ईसाइयों और अरब के मुशरिकों की तरफ़ भी बात का रुख़ फिर गया है और मौक़े-मौक़े से उन लोगों को भी ख़िताब किया गया है जो पैग़म्बर मुहम्मद *(सल्ल॰)* की दावत और पैग़ाम पर ईमान लाए थे। इस तक़रीर को पढ़ते हुए नीचे लिखी बातों को ख़ास तौर से सामने रखना चाहिए–

इसका पहला मक़सद यह है कि पिछले पैग़म्बरों की उम्मत (समुदाय) में जो थोड़े-बहुत लोग अभी ऐसे बाक़ी हैं, जिनमें भलाई और बेहतरी पाई जाती है, उन्हें उस सच्चाई पर ईमान लाने और उस काम में शामिल होने की दावत दी जाए जिसके साथ पैग़म्बर मुहम्मद *(सल्ल॰)* उठाए गए थे। इसलिए उनको बताया जा रहा है कि क़ुरआन और यह नबी वही पैग़ाम और वही काम लेकर आया है जो इससे पहले तुम्हारे नबी और तुम्हारे पास आनेवाली किताबें लाई थीं। पहले यह चीज़ तुमको दी गई थी ताकि तुम ख़ुद भी इस पर चलो और दुनिया को भी इसकी तरफ़

बुलाने और इस पर चलाने की कोशिश करो। मगर तुम दुनिया की रहनुमाई तो क्या करते ख़ुद भी उस हिदायत पर क़ायम न रहे और बिगड़ते चले गए। तुम्हारी तारीख़ (इतिहास) और तुम्हारी क़ौम की मौजूदा अख़लाक़ी और दीनी (धार्मिक) हालत ख़ुद तुम्हारे बिगाड़ पर गवाह है। अब अल्लाह ने वही चीज़ देकर अपने एक बन्दे को भेजा है और वही ख़िदमत उसके सुपुर्द की है। यह कोई बेगाना और अजनबी चीज़ नहीं है, तुम्हारी अपनी चीज़ है। इसलिए जानते-बूझते हक़ की मुख़ालफ़त न करो, बल्कि इसे क़बूल कर लो। जो काम तुम्हारे करने का था, मगर तुमने न किया, उसे करने के लिए जो दूसरे लोग उठे हैं उनका साथ दो।

इसका दूसरा मक़सद आम यहूदियों पर हुज्जत पूरी करना है यानी बात को सुबूतों के साथ इस तरह पहुँचा देना है कि उनके लिए इनकार का कोई बहाना बाक़ी न रहे, और साफ़-साफ़ उनकी दीनी और अख़लाक़ी हालत को खोलकर रख देना है। इन पर साबित किया जा रहा है कि यह वही दीन (धर्म) है जो तुम्हारे नबी और पैग़म्बर लेकर आए थे। दीन की बुनियादी बातों में कोई चीज़ भी ऐसी नहीं जिसमें क़ुरआन की तालीम तौरात की तालीम से अलग हो। उन पर साबित किया जा रहा है कि जो हिदायत तुम्हें दी गई थी उसकी पैरवी करने में और जो रहनुमाई करने का मंसब (पद) तुम्हें दिया गया था उसका हक़ अदा करने में तुम बुरी तरह नाकाम हुए हो। इसके सुबूत में ऐसे वाक़िआत पेश किए गए हैं जिनको वे झुठला नहीं सकते थे। फिर जिस तरह हक़ को हक़ जानने के बावजूद वे उसकी मुख़ालफ़त में साज़िशों, वसवसे डालने और उलटी-सीधी बेकार की बहसों और मक्कारियों से काम ले रहे थे और जिन तरकीबों से वे कोशिश कर रहे थे कि किसी तरह ख़ुदा के पैग़म्बर मुहम्मद *(सल्ल.)* का मिशन कामयाब न होने पाए उन सब बातों पर से पर्दा उठाया जा रहा है। इससे यह बात ज़ाहिर हो जाती है कि उनकी ज़ाहिरी मज़हबियत (धार्मिकता) सिर्फ़ एक ढोंग है, जिसके नीचे सच्चाई और हक़परस्ती के बजाए हठधर्मी, जाहिलाना तास्सुब (पक्षपात) और मन की बन्दगी काम कर रही है और हक़ीक़त में वे यह चाहते ही नहीं हैं कि नेकी और भलाई का कोई काम फल-फूल सके। इस तरह हुज्जत पूरी करने का फ़ायदा यह हुआ कि एक तरफ़ ख़ुद उस क़ौम में जो भले लोग मौजूद थे, उनकी आँखें खुल गईं, दूसरी तरफ़ मदीना के लोगों पर और आम तौर से अरब के मुशरिकों पर उन लोगों का जो मज़हबी और अख़लाक़ी असर था, वह ख़त्म हो गया और तीसरी तरफ़ ख़ुद अपने आपको बेनक़ाब देखकर उनकी हिम्मतें इतनी पस्त हो गईं कि वे उस हौसले के साथ कभी मुक़ाबले में खड़े न हो सके, जिसके साथ वह शख़्स खड़ा होता है जिसे अपने हक़ पर होने का यक़ीन होता है।

तीसरा, पिछले चार रुकूओं (1 से 39 आयत तक) में सारे इनसानों को आम दावत देते हुए जो कुछ कहा गया था, उसी के सिलसिले में एक ख़ास क़ौम की एक ख़ास मिसाल लेकर बताया जा रहा है कि जो क़ौम ख़ुदा की भेजी हुई हिदायत से मुँह मोड़ती है, उसका अंजाम क्या होता है। इस बात को वाज़ेह करने के लिए तमाम क़ौमों में से बनी-इसराईल का चुनाव करने की वजह यह है कि दुनिया में सिर्फ़ यही एक क़ौम है जो लगातार चार हज़ार साल से दुनिया की तमाम क़ौमों के सामने इबरत की एक ज़िन्दा मिसाल बनी हुई है। अल्लाह की हिदायत पर

اٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلْتُ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ وَلَا تَكُوْنُوْٓا اَوَّلَ
كَافِرٍۢ بِهٖ ۖ وَلَا تَشْتَرُوْا بِاٰيٰتِیْ ثَمَنًا قَلِيْلًا ۚ وَّاِيَّایَ
فَاتَّقُوْنِ ۝ وَلَا تَلْبِسُوا الْحَقَّ بِالْبَاطِلِ وَتَكْتُمُوا

किताब भेजी है उसपर ईमान लाओ। यह उस किताब की ताईद (समर्थन) में है जो तुम्हारे पास पहले से मौजूद थी, इसलिए सबसे पहले तुम ही इसके इनकार करनेवाले न बन जाओ। थोड़ी क़ीमत पर मेरी आयतों को न बेच डालो[57] और मेरे ग़ज़ब (प्रकोप) से बचो। (42) झूठ का रंग चढ़ाकर हक़ के बारे में शक न पैदा करो और न जानते-बूझते

चलने और न चलने से जितनी ऊँच-नीच किसी क़ौम की ज़िन्दगी में पेश आ सकती है वे सब इस क़ौम क़ी इबरतनाक तारीख़ (शिक्षा-प्रद इतिहास) में नज़र आ जाती है।

चौथा मक़सद, इससे पैग़म्बर मुहम्मद *(सल्ल.)* के माननेवालों को तालीम देना भी है कि वे गिरावट (पतन) के उस गढ़े में गिरने से बचें जिसमें पिछले नबियों की पैरवी करनेवाले गिर गए। यहूदियों की अख़लाक़ी कमज़ोरियों, मज़हबी ग़लतफ़हमियों और अक़ीदे और अमल से ताल्लुक़ रखनेवाली गुमराहियों में से एक-एक की निशानदेही करके इसके मुक़ाबले में दीने-हक़ (सत्य-धर्म) के तक़ाज़े और मुतालबे बयान किए गए हैं, ताकि मुसलमान अपना रास्ता साफ़ देख सकें और ग़लत राहों से बचकर चलें। इस सिलसिले में यहूदियों और ईसाइयों की ग़लतियाँ बताते हुए क़ुरआन जो कुछ कहता है उसको पढ़ते वक़्त मुसलमानों को नबी *(सल्ल.)* की वह हदीस (कथन) याद रखनी चाहिए जिसमें आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया है कि तुम भी आख़िरकार पिछली उम्मतों (समुदायों) ही की रविश पर चलकर रहोगे। यहाँ तक कि अगर वे किसी गोह के बिल में घुसे हैं तो तुम भी उसी में घुसोगे। सहाबा *(रज़ि.)* ने पूछा : ऐ अल्लाह के रसूल! यहूदी और ईसाई (पिछली क़ौम से) मुराद हैं? नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया : और कौन? (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम) नबी *(सल्ल.)* का यह फ़रमान सिर्फ़ इस ग़लत रविश के बारे में बताना न था, बल्कि अल्लाह की दी हुई सूझ-बूझ से आप *(सल्ल.)* यह जानते थे कि नबियों की उम्मतों (अनुयायियों) में बिगाड़ किन-किन रास्तों से आया और किन-किन शक्लों में ज़ाहिर होता रहा है।

57. थोड़ी क़ीमत से मुराद दुनिया के वे फ़ायदे हैं, जिनके लिए ये लोग अल्लाह के हुक्मों और उसकी हिदायतों को रद्द कर रहे थे। हक़ को बेच डालने के बदले में चाहे इनसान दुनियाभर की दौलत ले ले, बहरहाल वह थोड़ी क़ीमत ही है; क्योंकि हक़ उससे कहीं बहुत क़ीमती चीज़ है।

الْحَقَّ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝٤٢ وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا

हक़ को छिपाने की कोशिश करो।[58] (43) नमाज़ क़ायम करो, ज़कात दो,[59] और जो

58. इस आयत को समझने के लिए यह बात सामने रहनी चाहिए कि अरब के लोग आम तौर पर अनपढ़ थे और उनके मुक़ाबले में यहूदियों के अन्दर तालीम की चर्चा वैसे भी ज़्यादा थी और निजी तौर से उनके अन्दर ऐसे-ऐसे बड़े आलिम (विद्वान) पाए जाते थे, जो अरब के बाहर तक मशहूर थे। इस वजह से अरबों पर यहूदियों का इल्मी रौब और दबदबा बहुत ज़्यादा था। फिर उनके उलेमा और उनके बुज़ुर्गों ने अपने मज़हबी दरबारों की ज़ाहिरी शान जमाकर और अपनी छाड़-फूँक और तावीज़-गंडों का कारोबार चलाकर इस रौब और दबदबे को और भी ज़्यादा गहरा कर दिया और फैला दिया था। ख़ासतौर से मदीना के लोगों पर उनका रौब व दबदबा बहुत ज़्यादा था; क्योंकि उनके आस-पास बड़े-बड़े यहूदी क़बीले आबाद थे। रात-दिन का उनसे मेल-जोल था और इस मेल-जोल में वे उनसे उसी तरह बहुत ज़्यादा मुतास्सिर थे जिस तरह एक अनपढ़ आबादी ज़्यादा पढ़े-लिखे, ज़्यादा मुहज़्ज़ब और ज़्यादा नुमायाँ मज़हबी पहचान रखनेवाले पड़ोसियों से मुतास्सिर (प्रभावित) हुआ करती है। इन हालात में जब नबी *(सल्ल॰)* ने अपने आपको नबी की हैसियत से पेश किया और लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना शुरू किया तो क़ुदरती बात थी कि अनपढ़ अरब अह्ले-किताब यहूदियों से जाकर पूछते कि आप लोग भी एक नबी की पैरवी करनेवाले हैं और एक किताब को मानते हैं, आप हमें बताएँ कि ये साहब जो हमारे अन्दर नबी होने का दावा लेकर उठे हैं, उनके बारे में और उनकी तालीम के बारे में आपकी क्या राय है। चुनाँचे यह सवाल मक्का के लोगों ने भी यहूदियों से कई बार किया। और जब नबी *(सल्ल॰)* मदीना पहुँचे तो यहाँ भी बहुत सारे लोग यहूदी आलिमों के पास जा-जाकर यही बात पूछते थे। मगर उन आलिमों ने कभी लोगों को सही बात नहीं बताई। उनके लिए यह कहना तो मुश्किल था कि वह तौहीद (एकेश्वरवाद) जो मुहम्मद *(सल्ल॰)* पेश कर रहे हैं ग़लत है या नबियों और आसमानी किताबों और फ़रिश्तों और आख़िरत के बारे में जो कुछ आप *(सल्ल॰)* कह रहे हैं उसमें कोई ग़लती है या वे अख़लाक़ी उसूल जिनकी आप *(सल्ल॰)* शिक्षा दे रहे हैं उनमें से कोई चीज़ ग़लत है, लेकिन वे साफ़-साफ़ उस हक़ीक़त को मानने के लिए तैयार न थे कि जो कुछ आप *(सल्ल॰)* पेश कर रहे हैं वह सही है। वे न सच्चाई को खुले तौर पर नकार सकते थे, न सीधी तरह उसको सच्चाई मान लेने पर आमादा थे। इन दोनों रास्तों के बीच उन्होंने यह तरीक़ा अपनाया था कि हर पूछनेवाले के दिल में नबी *(सल्ल॰)* के ख़िलाफ़, आप *(सल्ल॰)* की पैरवी करने वालों के ख़िलाफ़ और आपके मिशन के ख़िलाफ़ कोई न कोई शक और वसवसा पैदा कर देते थे, कोई इलज़ाम आप पर मढ़ देते थे, कोई ऐसा शोशा छोड़ देते थे जिससे लोग शुब्हे और शक में पड़ जाएँ और तरह-तरह की उलझन में डालनेवाले सवाल छेड़ देते थे, ताकि लोग उनमें ख़ुद भी उलझें और नबी *(सल्ल॰)* और आपकी पैरवी करनेवालों को भी उलझाने की कोशिश करें। उनका यही रवैया था जिसकी वजह से उनसे कहा जा रहा है कि हक़ पर बातिल के परदे न डालो, अपने झूठे प्रोपगंडे और शरारत भरे शक व शुब्हे और

الزَّكٰوةَ وَارْكَعُوْا مَعَ الرّٰكِعِيْنَ ﴿٤٣﴾ اَتَاْمُرُوْنَ النَّاسَ
بِالْبِرِّ وَتَنْسَوْنَ اَنْفُسَكُمْ وَاَنْتُمْ تَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ؕ اَفَلَا
تَعْقِلُوْنَ ﴿٤٤﴾ وَاسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ وَاِنَّهَا
لَكَبِيْرَةٌ اِلَّا عَلَى الْخٰشِعِيْنَ ﴿٤٥﴾ الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ

लोग मेरे आगे झुक रहे हैं उनके साथ तुम भी झुक जाओ। (44) तुम दूसरों को तो नेकी का रास्ता अपनाने के लिए कहते हो, मगर अपने आपको भूल जाते हो? हालाँकि तुम किताब की तिलावत (पाठ) करते हो! क्या तुम अक़्ल से बिलकुल ही काम नहीं लेते? (45) सब्र और नमाज़[60] से मदद लो। बेशक नमाज़ एक बड़ा ही मुश्किल काम है, मगर उन फ़रमाँबरदार बन्दों के लिए मुश्किल नहीं है, (46) जो समझते हैं कि आख़िरकार उन्हें

एतिराज़ों से हक़ को दबाने और छिपाने की कोशिश न करो, और हक़ और बातिल को गड्ड-मड्ड करके दुनिया को धोखा न दो।

59. नमाज़ और ज़कात हर ज़माने में इस्लाम के सबसे ज़्यादा अहम अरकान (अंग) रहे हैं। सभी नबियों की तरह बनी-इसराईल के नबियों ने भी इसकी सख़्त ताकीद की थी, मगर यहूदी इनसे ग़ाफ़िल हो चुके थे। जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने का निज़ाम उनके यहाँ तक़रीबन छिन्न-भिन्न हो चुका था। क़ौम के ज़्यादातर लोग अपनी इनफ़िरादी नमाज़ भी छोड़ चुके थे और ज़कात देने कें बजाय ये लोग सूद (ब्याज) खाने लगे थे।

60. यानी अगर तुम्हें नेकी के रास्ते पर चलने में परेशानी महसूस होती है, तो इस परेशानी का इलाज सब्र और नमाज़ है। इन दोनों चीज़ों से तुम्हें वह ताक़त मिलेगी जिससे यह राह आसान हो जाएगी।

'सब्र' के लफ़्ज़ी मानी रोकना और बाँधना है और इससे मुराद इरादे की वह मज़बूती, अज़्म (संकल्प) की वह पुख़्तगी और मन की बुरी ख़ाहिशों पर वह कंट्रोल है जिससे एक आदमी मन की बुरी ख़ाहिशों और बाहरी परेशानियों के मुक़ाबले में अपने दिल और ज़मीर (अन्तःकरण) के पसन्द किए हुए रास्ते पर लगातार बढ़ता चला जाए। अल्लाह के इस फ़रमान का मक़सद यह है कि इस अख़लाक़ी सिफ़त को अपने अन्दर परवान चढ़ाओ और इसको बाहर से ताक़त पहुँचाने के लिए नमाज़ की पाबन्दी करो।

أَنَّهُم مُّلَٰقُوا۟ رَبِّهِمْ وَأَنَّهُمْ إِلَيْهِ رَٰجِعُونَ ﴿٤٦﴾ يَٰبَنِىٓ
إِسْرَٰٓءِيلَ ٱذْكُرُوا۟ نِعْمَتِىَ ٱلَّتِىٓ أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَأَنِّى
فَضَّلْتُكُمْ عَلَى ٱلْعَٰلَمِينَ ﴿٤٧﴾ وَٱتَّقُوا۟ يَوْمًا لَّا تَجْزِى نَفْسٌ
عَن نَّفْسٍ شَيْـًٔا وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَٰعَةٌ وَلَا يُؤْخَذُ
مِنْهَا عَدْلٌ وَلَا هُمْ يُنصَرُونَ ﴿٤٨﴾ وَإِذْ نَجَّيْنَٰكُم مِّنْ

अपने रब से मिलना और उसी की तरफ़ पलटकर जाना है।[61]

(47) ऐ बनी-इसराईल (इसराईल की औलाद)! याद करो मेरी उस नेमत को जो मैंने तुमको दी थी और इस बात को कि मैंने तुम्हें दुनिया की सारी क़ौमों (जातियों) पर बड़ाई दी थी।[62] (48) और डरो उस दिन से जब कोई किसी के कुछ काम न आएगा, न किसी की तरफ़ से सिफ़ारिश क़बूल होगी, न किसी को फ़िदया (जुर्माना) लेकर छोड़ा जाएगा, और न मुजरिमों को कहीं से मदद मिल सकेगी।[63]

---

61. यानी जो आदमी ख़ुदा का फरमाँबरदार न हो और आख़िरत को न मानता हो, उसके लिए तो नमाज़ की पाबन्दी एक ऐसी मुसीबत है जिसे वह कभी गवारा ही नहीं कर सकता, मगर जो ख़ुशी-ख़ुशी और लगाव के साथ ख़ुदा के आगे फरमाँबरदारी के लिए सिर झुका चुका हो और जिसे यह यक़ीन हो कि कभी मरकर अपने ख़ुदा के सामने जाना भी है, उसके लिए नमाज़ अदा करना नहीं, बल्कि नमाज़ का छोड़ना मुश्किल है।
62. यह उस दौर की तरफ़ इशारा है जबकि तमाम दुनिया की क़ौमों में एक बनी-इसराईल की क़ौम ही ऐसी थी जिसके पास अल्लाह का दिया हुआ इल्मे-हक़ (सत्य-ज्ञान) था और जिसे दुनिया की क़ौमों का इमाम और रहनुमा बना दिया गया था, ताकि वह रब की बन्दगी के रास्ते पर सब कौमों को बुलाए और चलाए।
63. बनी-इसराईल के बिगाड़ की एक बहुत बड़ी वजह यह थी कि आख़िरत (परलोक) के बारे में उनके अक़ीदे (धारणा) में ख़राबी आ गई थी। वे इस क़िस्म के ग़लत ख़यालों में पड़ गए थे कि हम अज़ीम नबियों की औलाद हैं, बड़े-बड़े वलियों, सुधारकों और ज़ाहिदों (संयम-नियम और जप-तप करनेवाले व्यक्तियों) से ताल्लुक़ रखते हैं। हमारी बख़शिश तो उन्हीं बुज़ुर्गों की मेहरबानी से हो जाएगी। उनका दामन थामने के बाद भला कोई सज़ा कैसे पा सकता है? इन्हीं झूठे भरोसों ने उनको दीन (धर्म) से बेपरवाह और गुनाहों के चक्कर में फँसा दिया था। इसलिए नेमत याद दिलाने के साथ फ़ौरन ही उनकी इन ग़लतफ़हमियों को दूर किया गया है।

اٰلِ فِرْعَوْنَ يَسُوْمُوْنَكُمْ سُوْٓءَ الْعَذَابِ يُذَبِّحُوْنَ
اَبْنَآءَكُمْ وَيَسْتَحْيُوْنَ نِسَآءَكُمْ ۭ وَفِيْ ذٰلِكُمْ بَلَاۗءٌ مِّنْ
رَّبِّكُمْ عَظِيْمٌ ﴿٤٩﴾ وَاِذْ فَرَقْنَا بِكُمُ الْبَحْرَ فَاَنْجَيْنٰكُمْ
وَاَغْرَقْنَآ اٰلَ فِرْعَوْنَ وَاَنْتُمْ تَنْظُرُوْنَ ﴿٥٠﴾ وَاِذْ وٰعَدْنَا
مُوْسٰٓى اَرْبَعِيْنَ لَيْلَةً ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِهٖ

(49) याद करो वह वक़्त[64], जब हमने तुमको फ़िरऔन के लोगों[65] की गुलामी से छुटकारा दिलाया— उन्होंने तुम्हें सख़्त अज़ाब में डाल रखा था, तुम्हारे लड़कों को मार डालते थे और तुम्हारी लड़कियों को ज़िन्दा रहने देते थे। और इस हालत में तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारी बड़ी आज़माइश थी।[66]

(50) याद करो वह वक़्त जब हमने समुद्र फाड़कर तुम्हारे लिए रास्ता बनाया, फिर उसमें से तुम्हें बख़ैरियत (सकुशल) गुज़रवा दिया, फिर वहीं तुम्हारी आँखों के सामने फ़िरऔनियों को डुबो दिया।

(51) याद करो जब हमने मूसा को चालीस दिन व रात के वादे पर बुलाया[67], तो

64. यहाँ से बाद के कई रुकुओं (आयत 49-123) तक लगातार जिन वाक़िआत की तरफ़ इशारे किए गए हैं, वे सब बनी-इसराईल के इतिहास के बहुत मशहूर वाक़िआत हैं, जिन्हें उस क़ौम का बच्चा-बच्चा जानता था। इसी लिए तफ़सील बयान करने के बजाए एक-एक वाक़िए की तरफ़ मुख़्तसर (संक्षिप्त) इशारा किया गया है। इस तारीख़ी बयान में यह दिखाना मक़सद है कि एक तरफ़ ये और ये एहसान हैं, जो अल्लाह ने तुमपर किए और दूसरी तरफ़ ये और ये तुम्हारे करतूत हैं, जो इन एहसानों के जवाब में तुम करते रहे।

65. यह अरबी लफ़्ज़ 'आले-फ़िरऔन' का तर्जमा है, इसमें फ़िरऔन के ख़ानदान और मिस्र का हुक्मराँ तबक़ा दोनों शामिल हैं।

66. आज़माइश इस बात की कि इस भट्टी से तुम ख़ालिस सोना बनकर निकलते हो या निरी खोट बनकर रह जाते हो। और आज़माइश इस बात की कि इतनी बड़ी मुसीबत से उस मोजिज़ाना (चमत्कारपूर्ण) तरीक़े से छुटकारा पाने के बाद भी तुम अल्लाह के शुक्रगुज़ार बन्दे बनते हो या नहीं।

67. मिस्र से छुटकारा पाने के बाद जब बनी-इसराईल जज़ीरा नुमाए-सीना (सीना प्रायद्वीप) में पहुँच गए,

وَاَنْتُمْ ظٰلِمُوْنَ ۞ ثُمَّ عَفَوْنَا عَنْكُمْ مِّنْ بَعْدِ ذٰلِكَ
لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۞ وَاِذْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَ
الْفُرْقَانَ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۞ وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى
لِقَوْمِهٖ يٰقَوْمِ اِنَّكُمْ ظَلَمْتُمْ اَنْفُسَكُمْ بِاتِّخَاذِكُمُ الْعِجْلَ
فَتُوْبُوْٓا اِلٰى بَارِئِكُمْ فَاقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ

उसके पीछे तुम बछड़े को अपना माबूद (उपास्य)[68] बना बैठे। उस वक़्त तुमने बड़ी ज़्यादती की थी, (52) मगर इसपर भी हमने तुम्हें माफ़ कर दिया कि शायद अब तुम शुक्रगुज़ार बनो।

(53) याद करो कि (ठीक उस वक़्त जब तुम यह ज़ुल्म कर रहे थे) हमने मूसा को किताब और फ़ुरक़ान (कसौटी)[69] दी, ताकि तुम उसके ज़रीए से सीधा रास्ता पा सको।

(54) याद करो जब मूसा (यह नेमत लिए हुए पलटा तो उस) ने अपनी क़ौम से कहा कि "लोगो! तुमने बछड़े को अपना माबूद (उपास्य) बनाकर अपने ऊपर बड़ा ज़ुल्म किया है, इसलिए तुम लोग अपने पैदा करनेवाले के सामने तौबा करो और अपनी जानों

तो हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* को अल्लाह ने चालीस दिन व रात के लिए तूर पहाड़ पर बुलाया, ताकि वहाँ उस क़ौम के लिए, जो अब आज़ाद हो चुकी थी, शरीअत के क़ानून और अमली ज़िन्दगी के लिए हिदायत दी जाएँ। (देखिए बाइबल, पुस्तक : निर्गमन, अध्याय 24-31)

68. गाय और बैल की पूजा का रोग बनी-इसराईल की पड़ोसी क़ौमों में हर तरफ़ फैला हुआ था। मिस्र और कनआन में इसका आम रिवाज था। हज़रत यूसुफ़ *(अलैहि॰)* के बाद बनी-इसराईल जब गिरावट (पतन) के शिकार हुए और धीरे-धीरे क़िब्तियों के ग़ुलाम बन गए तो उन्होंने दूसरे बहुत-से रोगों के अलावा यह एक रोग भी अपने हाकिमों से ले लिया। (बछड़े की पूजा का यह वाक़िआ बाइबल की पुस्तक : निर्गमन, अध्याय 32 में तफ़सील के साथ दर्ज है।)

69. फ़ुरक़ान से मुराद है वह चीज़ जिसके ज़रीए से हक़ और बातिल का फ़र्क़ नुमायाँ हो। उर्दू-हिन्दी में इसके मतलब के क़रीब लफ़्ज़ 'कसौटी' है। यहाँ फ़ुरक़ान से मुराद दीन का वह इल्म और समझ है जिससे आदमी हक़ और बातिल में फ़र्क़ करता है।

لَّكُمْ عِنْدَ بَارِئِكُمْ ۭ فَتَابَ عَلَيْكُمْ ۭ اِنَّهٗ هُوَ التَّوَّابُ
الرَّحِيْمُ ۝ وَاِذْ قُلْتُمْ يٰمُوْسٰى لَنْ نُّؤْمِنَ لَكَ حَتّٰى نَرَى
اللّٰهَ جَهْرَةً فَاَخَذَتْكُمُ الصّٰعِقَةُ وَاَنْتُمْ تَنْظُرُوْنَ ۝
ثُمَّ بَعَثْنٰكُمْ مِّنْ بَعْدِ مَوْتِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝ وَ

को हलाक करो,[70] इसी में तुम्हारे पैदा करनेवाले के नज़दीक तुम्हारी भलाई है।" उस वक़्त तुम्हारे पैदा करनेवाले ने तुम्हारी तौबा क़बूल कर ली कि वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(55) याद करो जब तुमने मूसा से कहा था कि हम तुम्हारी बातों पर हरगिज़ यक़ीन न करेंगे, जब तक कि अपनी आँखों से खुले तौर पर ख़ुदा को (तुमसे बातें करते) न देख लें। उस वक़्त तुम्हारे देखते-देखते एक ज़बरदस्त कड़के ने तुमको आ लिया। (56) तुम बेजान होकर गिर चुके थे, मगर फिर हमने तुमको जिला उठाया, शायद कि इस एहसान के बाद तुम शुक्रगुज़ार बन जाओ।[71]

---

70. यानी अपने उन आदमियों को क़त्ल करो, जिन्होंने बछड़े को माबूद (उपास्य) बनाया और उसकी पूजा की।

71. यह इशारा जिस वाक़िए की तरफ़ है उसकी तफ़सील यह है कि चालीस रात-दिन के वादे पर जब हज़रत मूसा तूर पर तशरीफ़ ले गए थे तो उनको हुक्म हुआ था कि अपने साथ बनी-इसराईल के सत्तर नुमाइन्दे भी साथ लेकर आएँ। फिर जब अल्लाह ने मूसा *(अलैहि॰)* को किताब और फ़ुरक़ान अता की तो उन्होंने उसे उन नुमाइन्दों के सामने पेश किया। इस मौक़े पर क़ुरआन कहता है कि उनमें से शरारत करनेवाले कुछ लोग कहने लगे कि हम सिर्फ़ तुम्हारे कहने पर कैसे मान लें कि ख़ुदा ने तुमसे बातें की हैं। इस पर अल्लाह का ग़ज़ब आया और उन्हें सज़ा दी गई, लेकिन बाइबल कहती है कि –
"उन्होंने इसराईल के ख़ुदा को देखा, उसके पाँवों के नीचे नीलम के पत्थर नीलमणि का चबूतरा-सा था, जो आसमान की तरह साफ़ स्वच्छ था और उसने बनी-इसराईल के शरीफ़ लोगों पर अपना हाथ न बढ़ाया; अतः उन्होंने ख़ुदा को देखा और खाया और पिया।" (निर्गमन, 24 : 10, 11)
मज़े की बात यह है कि किताब में आगे चलकर लिखा है कि जब हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* ने ख़ुदा से अर्ज़ किया कि मुझे अपना जलाल (तेज) दिखा दे तो उसने कहा कि तू मुझे नहीं देख सकता। (देखें निर्गमन, अध्याय 33, आयत 18-23)

ظَلَّلْنَا عَلَيْكُمُ الْغَمَامَ وَاَنْزَلْنَا عَلَيْكُمُ الْمَنَّ وَالسَّلْوٰى ۭ
كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقْنٰكُمْ ۭ وَمَا ظَلَمُوْنَا وَلٰكِنْ كَانُوْٓا
اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ۝ وَاِذْ قُلْنَا ادْخُلُوْا هٰذِهِ الْقَرْيَةَ
فَكُلُوْا مِنْهَا حَيْثُ شِئْتُمْ رَغَدًا وَّادْخُلُوا الْبَابَ سُجَّدًا

(57) हमने तुमपर बादल की छाया की[72], 'मन्न व सलवा' का खाना तुम्हारे लिए जुटाया[73] और तुमसे कहा कि जो पाक चीज़ें हमने तुम्हें दी हैं, उन्हें खाओ, (मगर तुम्हारे बाप-दादा ने जो कुछ किया) वह हमपर ज़ुल्म न था, बल्कि उन्होंने आप अपने ही ऊपर ज़ुल्म किया।

(58) फिर याद करो, जब हमने कहा था कि "यह बस्ती[74] जो तुम्हारे सामने है, इसमें दाख़िल हो जाओ, इसकी पैदावार जिस तरह चाहो मज़े से खाओ, मगर बस्ती के

---

72. यानी ज़रीरा नुमाए-सीना (सीना प्रायद्वीप) में जहाँ धूप से बचने के लिए कोई पनाह लेने की जगह तुम्हें मयस्सर न थी, हमने बादल से तुम्हारे बचाव का इन्तिज़ाम किया। इस मौक़े पर ख़याल रहे कि बनी-इसराईल लाखों की तादाद में मिस्र से निकलकर आए थे और सीना के इलाक़े में मकान की क्या बात, सिर छिपाने के लिए उनके पास ख़ेमे तक न थे। उस ज़माने में अगर ख़ुदा की तरफ़ से एक मुद्दत तक आसमान को बादलों से घिरा हुआ न रखा जाता तो यह क़ौम धूप से हलाक हो जाती।

73. 'मन्न' और 'सलवा' खाने की वे क़ुदरती चीज़ें थीं जो उस मुहाजिरत (प्रवास) के ज़माने में उन लोगों को चालीस साल तक बराबर मिलती रहीं। मन्न धनिए के बीज जैसी कोई चीज़ थी, जो ओस की तरह गिरती और ज़मीन पर जम जाती थी और सलवा बटेर के क़िस्म के परिन्दे (पक्षी) थे। ख़ुदा की मेहरबानी से उनकी तादाद इतनी ज़्यादा थी कि एक पूरी की पूरी क़ौम सिर्फ़ इन्हीं खानों पर ज़िन्दगी बसर करती रही और उसे भूख और फ़ाक़े की मुसीबत न उठानी पड़ी। हालाँकि आज किसी निहायत ख़ुशहाल और मुहज़्ज़ब देश में भी अगर कुछ लाख मुहाजिर (शरणार्थी) अचानक आ जाएँ तो उनके खाने का इन्तिज़ाम मुश्किल हो जाता है। (मन्न और सलवा की तफ़सीली जानकारी के लिए देखिए बाइबल, पुस्तक : निर्गमन-16 : 136; गिनती-11: 7-9 व 31-32; यहोशू - 5:11, 12)

74. अभी तक इसकी खोज नहीं हो सकी है कि इस बस्ती से मुराद कौन-सी बस्ती है। वाक़िआत के जिस सिलसिले में इसका ज़िक्र हो रहा है, वह उस ज़माने से ताल्लुक़ रखता है जबकि

وَّقُوۡلُوۡا حِطَّةٌ نَّغۡفِرۡ لَکُمۡ خَطٰیٰکُمۡ ؕ وَسَنَزِیۡدُ الۡمُحۡسِنِیۡنَ ﴿۵۸﴾
فَبَدَّلَ الَّذِیۡنَ ظَلَمُوۡا قَوۡلًا غَیۡرَ الَّذِیۡ قِیۡلَ لَہُمۡ فَاَنۡزَلۡنَا
عَلَی الَّذِیۡنَ ظَلَمُوۡا رِجۡزًا مِّنَ السَّمَآءِ بِمَا کَانُوۡا
يَفۡسُقُوۡنَ ﴿۵۹﴾ ع وَاِذِ اسۡتَسۡقٰی مُوۡسٰی لِقَوۡمِہٖ فَقُلۡنَا
اضۡرِبۡ بِّعَصَاکَ الۡحَجَرَ ؕ فَانۡفَجَرَتۡ مِنۡہُ اثۡنَتَا عَشۡرَۃَ

दरवाज़े में सज्दारेज़ होते हुए (झुके-झुके) दाख़िल होना और कहते जाना 'हित्ततुन-हित्ततुन'[75] हम तुम्हारी ख़ताओं को माफ़ कर देंगे और अच्छे काम करनेवालों पर और ज़्यादा मेहरबानी करेंगे।" (59) मगर जो बात कही गई थी, ज़ालिमों ने उसे बदलकर कुछ और कर दिया। आख़िरकार हमने ज़ुल्म करनेवालों पर आसमान से अज़ाब उतारा। यह सज़ा थी उन नाफ़रमानियों की जो वे कर रहे थे।

(60) याद करो, जब मूसा ने अपनी क़ौम के लिए पानी की दुआ की तो हमने कहा कि फ़ुलाँ चट्टान पर अपनी लाठी मारो। चुनाँचे उससे बारह चश्मे (स्रोत) फूट[76] निकले

बनी-इसराईल अभी ज़रीरा नुमाए-सीना (सीना प्रायद्वीप) ही में थे। इसलिए ज़्यादा मुमकिन यही है कि यह उसी जज़ीरा नुमा का कोई शहर होगा, मगर यह भी मुमकिन है कि इससे मुराद शित्तीम हो, जो यरीहो के सामने यरदन नदी के पूर्वी किनारे पर आबाद था। बाइबल का बयान है कि इस शहर को बनी-इसराईल ने हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* की ज़िन्दगी के आख़िरी ज़माने में फ़तह किया और वहाँ बड़ी बदकारियाँ कीं, जिसके नतीजे में ख़ुदा ने उनपर महामारी भेजी और 24 हज़ार आदमी हलाक कर दिए। (गिनती, अध्याय 25, आयत 1-9)

75. यानी हुक्म यह था कि जाबिर (दमनकारी) और ज़ालिम फ़ातिहों (विजेताओं) की तरह अकड़ते हुए न घुसना, बल्कि ख़ुदा से डरनेवालों की तरह मुन्कसिराना (विनम्रतापूर्ण) शान के साथ दाख़िल होना, जैसे हज़रत मुहम्मद *(सल्ल॰)* मक्का की फ़तह के मौक़े पर मक्का में दाख़िल हुए। और हित्ततुन के दो मतलब हो सकते हैं— एक यह कि ख़ुदा से अपनी ग़लतियों और भूल-चूक की माफ़ी माँगते हुए जाना। दूसरा यह कि लूटमार और क़त्ले-आम के बजाए बस्ती के रहनेवालों में दरगुज़र और आम माफ़ी का एलान करते जाना।

76. वह चट्टान अब तक ज़रीरा नुमाए-सीना (सीना प्रायद्वीप) में मौजूद है। सैर व तफ़रीह करने वाले लोग (टूरिस्ट) उसे जाकर देखते हैं और चश्मों की दराड़ें उसमें अब भी पाई जाती हैं। 12

عَيْنًا ۚ قَدْ عَلِمَ كُلُّ أُنَاسٍ مَّشْرَبَهُمْ ۖ كُلُوا وَاشْرَبُوا مِن
رِّزْقِ اللَّهِ وَلَا تَعْثَوْا فِي الْأَرْضِ مُفْسِدِينَ ۝ وَإِذْ
قُلْتُمْ يَا مُوسَىٰ لَن نَّصْبِرَ عَلَىٰ طَعَامٍ وَاحِدٍ فَادْعُ لَنَا
رَبَّكَ يُخْرِجْ لَنَا مِمَّا تُنبِتُ الْأَرْضُ مِن بَقْلِهَا وَ
قِثَّائِهَا وَفُومِهَا وَعَدَسِهَا وَبَصَلِهَا ۖ قَالَ أَتَسْتَبْدِلُونَ
الَّذِي هُوَ أَدْنَىٰ بِالَّذِي هُوَ خَيْرٌ ۚ اهْبِطُوا مِصْرًا فَإِنَّ
لَكُم مَّا سَأَلْتُمْ ۗ وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ

और हर क़बीले ने जान लिया कि कौन-सी जगह उसके पानी लेने की है। (उस वक़्त यह हिदायत कर दी गई थी कि) अल्लाह की दी हुई रोज़ी खाओ-पियो और ज़मीन में फ़साद (बिगाड़) न फैलाते फिरो।

(61) याद करो, जब तुमने कहा था कि "ऐ मूसा! हम एक ही तरह के खाने पर सब्र नहीं कर सकते। अपने रब से दुआ करो कि हमारे लिए ज़मीन की पैदावार साग, तरकारी, गेहूँ, लहसुन, प्याज़, दाल वग़ैरा पैदा करे।" तो मूसा ने कहा, "क्या एक बेहतर चीज़ की जगह तुम घटिया दरजे की चीज़ें लेना चाहते हो?[77] अच्छा, किसी शहरी आबादी में जा रहो, जो कुछ तुम माँगते हो वहाँ मिल जाएगा।" आख़िरकार नौबत यहाँ तक

चश्मों में यह मसलिहत थी कि बनी-इसराईल के क़बीले भी 12 ही थे। ख़ुदा ने हर एक क़बीले के लिए अलग-अलग चश्मा निकाल दिया, ताकि उनके बीच पानी पर झगड़ा न हो।

77. मतलब यह नहीं है कि 'मन्न व सलवा' छोड़कर, जो कि बिना मेहनत किए मिल रहा है, तुम वे चीज़ें माँग रहे हो जिनके लिए खेती-बाड़ी करनी पड़ेगी; बल्कि मतलब यह है कि जिस बड़े मक़सद के लिए तुमको यह जो जंगल-जंगल घुमाया जा रहा है, इसके मुक़ाबले में क्या तुमको कामोदहन (इच्छा और सुख) की लज़्ज़त इतनी पसन्द है कि उस मक़सद को छोड़ने के लिए तैयार हो और इन चीज़ों से महरूमी कुछ मुद्दत के लिए भी बर्दाश्त नहीं कर सकते? [मुक़ाबले (तुलना) के लिए देखिए, गिनती, अध्याय 11, आयत 4-9]

وَبَاءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ ۚ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ كَانُوْا يَكْفُرُوْنَ
بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَيَقْتُلُوْنَ النَّبِيّٖنَ بِغَيْرِ الْحَقِّ ۚ ذٰلِكَ بِمَا

पहुँची कि ज़िल्लत व रुसवाई और गिरावट व बदहाली उनपर छा गई और वे अल्लाह के ग़ज़ब में घिर गए। यह नतीजा था इसका कि वे अल्लाह की आयतों से कुफ़्र करने लगे[78] और पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल करने लगे।[79] यह नतीजा था उनकी नाफ़रमानियों का और

78. आयतों से कुफ़्र करने की मुख़्तलिफ़ शक्लें हैं। मिसाल के तौर पर एक यह कि .ख़ुदा की भेजी हुई तालीमात (शिक्षाओं) में से जो बात अपने ख़यालों या ख़ाहिशों के ख़िलाफ़ पाई उसको मानने से साफ़ इनकार कर दिया। दूसरी यह कि एक बात को यह जानते हुए कि .ख़ुदा ने फ़रमाई है पूरी ढिठाई और सरकशी के साथ उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी की और .ख़ुदा के हुक्म की कुछ परवाह न की। तीसरी यह कि .ख़ुदा के फ़रमान के मानी और मतलब को अच्छी तरह जानने और समझने के बावजूद अपनी ख़ाहिश के मुताबिक़ उसे बदल डाला।

79. बनी-इसराईल ने अपने इस जुर्म को अपनी तारीख़ (इतिहास) में .ख़ुद तफ़सील के साथ बयान किया है। मिसाल के तौर पर हम बाइबल से कुछ वाक़िआत यहाँ दर्ज करते हैं –

(1) हज़रत सुलैमान के बाद जब बनी-इसराईल की सल्तनत तक़सीम होकर दो रियासतों (यरूशलम की दौलते-यहूदिया और सीरिया की दौलते-इसराईल) में बँट गई तो उनमें आपसी लड़ाई का सिलसिला शुरू हुआ और नौबत यहाँ तक आई कि यहूदियों की रियासत ने अपने ही भाइयों के ख़िलाफ़ दमिश्क़ की आरामी सल्तनत से मदद माँगी। इसपर ख़ुदा के हुक्म से हनानी नबी ने यहूदियों के हाकिम आसा को सख़्त तंबीह की। मगर आसा ने इस तंबीह (और चेतावनी) को क़बूल करने के बजाए ख़ुदा के पैग़म्बर को जेल भेज दिया। (2 इतिहास, 17: 7-10)

(2) हज़रत इलियास (ईलियाह Elliah) ने जब बअल की पूजा पर यहूदियों को मलामत की और नए सिरे से तौहीद के पैग़ाम को फैलाना शुरू किया तो सामरिया का इसराईली बादशाह अख़ी अब अपनी मुशरिक बीवी की ख़ातिर हाथ धोकर उनकी जान के पीछे पड़ गया। यहाँ तक कि उन्हें जज़ीरा नुमाए-सीना (सीना प्रायद्वीप) के पहाड़ों में पनाह लेनी पड़ी। इस मौक़े पर जो दुआ हज़रत इलियास ने माँगी है, वह इस तरह है –

"बनी-इसराईल ने तेरे अहद (वचन) को छोड़ दिया-----------तेरे नबियों को तलवार से क़त्ल किया और एक मैं ही अकेला बचा हूँ, तो वे मेरी जान लेने के दरपे हैं।" (1 राजा, 19: 1-10)

(3) एक और नबी हज़रत मिकायाह को इसी अख़ी अब ने हक़ बोलने के जुर्म में जेल भेजा और हुक्म दिया कि इस शख़्स को मुसीबत की रोटी खिलाना और मुसीबत का पानी पिलाना। (1 राजा, 22: 26,27)

(4) फिर जब यहूदिया की रियासत में खुल्लम-खुल्ला बुतपरस्ती और बदकारी होने लगी और ज़करियाह नबी ने उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई तो बादशाह यहूदाह यूआस के हुक्म से उन्हें ठीक 'हैकले-सुलैमानी' (उपासना-गृह) में 'मक़दिस' और 'क़ुरबानगाह' के बीच पत्थर मार-मार कर हलाक कर दिया गया। (2 इतिहास, 24:21)

ع ۲ عَصَوْا وَّكَانُوْا يَعْتَدُوْنَ ۝۶۱ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ
الَّذِيْنَ هَادُوْا وَالنَّصٰرٰى وَالصّٰبِـِٕيْنَ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ

इस बात का कि वे शरीअत की हदों से निकल-निकल जाते थे।

(62) यक़ीन जानो कि अरबी नबी को माननेवाले हों या यहूदी, ईसाई हों या साबी

---

(5) इसके बाद जब सामरिया की इसराईली रियासत आशूरियों के हाथों ख़त्म हो चुकी और यरूशलम की यहूदी रियासत के सर पर तबाही का तूफ़ान तुला खड़ा था तो यरमियाह नबी अपनी क़ौम की गिरावट पर मातम करने लगे और कूचे-कूचे उन्होंने पुकारना शुरू किया कि संभल जाओ, वरना तुम्हारा अंजाम सामरिया से भी बुरा होगा, मगर क़ौम की तरफ़ से जो जवाब मिला वह यह था कि हर तरफ़ से उनपर लानत और फिटकार की बारिश हुई, पीटे गए, क़ैद किए गए, रस्सी से बाँधकर कीचड़ भरे हौज़ में लटका दिए गए, कि भूख और प्यास से वहीं सूख-सूखकर मर जाएँ। और उनपर इलज़ाम लगाया गया कि वे क़ौम के ग़द्दार हैं, बाहरी दुश्मनों से मिले हुए हैं। (यर्मियाह 15/10, 18/20-23; 20/1-18, 36-40)

(6) एक और नबी हज़रत आमूस के बारे में लिखा है कि जब उन्होंने सामरिया की इसराईली रियासत को उसकी गुमराहियों और बदकारियों पर टोका और इन हरकतों के बुरे अंजाम से ख़बरदार किया तो उन्हें नोटिस दिया गया कि मुल्क से निकल जाओ और बाहर जाकर पैग़म्बरी करो। (आमूस 7/10-13)

(7) हज़रत यहया (यूहन्ना) अलैहि० ने जब इन बदअख़्लाक़ियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई जो यहूदिया के बादशाह हेरोदेस के दरबार में खुल्लम-खुल्ला हो रही थीं तो पहले क़ैद किए गए। फिर बादशाह ने अपनी माशूक़ा (प्रेमिका) की फ़रमाइश पर क़ौम के सबसे भले आदमी का सिर कटवाकर एक थाल में रखकर माशूक़ा को पेश कर दिया। (मरक़ुस 6: 17-29)

(8) आख़िर में हजरत ईसा (अलैलि०) पर बनी-इसराईल के उलमा और क़ौम के सरदारों का ग़ुस्सा भड़का; क्योंकि वे उन्हें उनके गुनाहों और उनकी रियाकारियों (पाखण्डों) पर टोकते थे और ईमान और सच्चाई की नसीहत करते थे। इस क़ुसूर पर उनके ख़िलाफ़ झूठा मुक़द्दिमा तैयार किया गया, रूमी अदालत से उनके क़त्ल का फ़ैसला हासिल किया गया और जब रूमी हाकिम पीलैटिस ने यहूदियों से कहा कि आज ईद (त्योहार) के दिन मैं तुम्हारे लिए यीशू और बरअब्बा डाकू दोनों में किसको रिहा करूँ? तो उनकी पूरी भीड़ ने एक आवाज़ में पुकारकर कहा कि बरअब्बा को छोड़ दे और यीशू को फाँसी पर लटका। (मत्ती 27/20-26)

यह है उस क़ौम के जुर्मों के दास्तान का एक निहायत शर्मनाक बाब जिसकी तरफ़ क़ुरआन की इस आयत में मुख़्तसर तौर पर इशारा किया गया है। अब यह ज़ाहिर है कि जिस क़ौम ने अपने फ़ासिक़ और फ़ाजिर (दुराचारी और भ्रष्ट) लोगों को सरदारी और बादशाही के लिए और अपने नेक और भले लोगों को जेल और फाँसी के लिए पसन्द किया हो, अल्लाह उसको अपनी लानत के लिए पसन्द न करता, तो आख़िर और क्या करता?

وَالۡيَوۡمِ الۡاٰخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا فَلَهُمۡ اَجۡرُهُمۡ عِنۡدَ
رَبِّهِمۡ‌ۚ وَلَا خَوۡفٌ عَلَيۡهِمۡ وَلَا هُمۡ يَحۡزَنُوۡنَ ۝ وَاِذۡ
اَخَذۡنَا مِيۡثَاقَكُمۡ وَرَفَعۡنَا فَوۡقَكُمُ الطُّوۡرَؕ خُذُوۡا مَآ

जो भी अल्लाह और आख़िरी दीन पर ईमान लाएगा और नेक अमल करेगा, उसका बदला उसके रब के पास है और उसके लिए किसी डर और अफ़सोस का मौक़ा नहीं है।[80]

(63) याद करो वह वक़्त जब हमने तूर को तुमपर उठाकर तुमसे पक्का अह्द (वचन) लिया था और कहा था[81] कि "जो किताब हम तुम्हें दे रहे हैं उसे मज़बूती के

80. ऊपर से जो बात चली आ रही है उसके सिलसिले को सामने रखने से यह बात ख़ुद-ब-ख़ुद वाज़ेह हो जाती है कि यहाँ मक़सद ईमान और नेक कामों की तफ़सील बयान करना नहीं है कि किन-किन बातों को आदमी माने और क्या-क्या काम करे तो ख़ुदा के यहाँ इनाम का हक़दार हो। ये चीज़ें अपने-अपने मौक़े पर तफ़सील के साथ आएँगी। यहाँ तो यहूदियों के इस ग़लत दावे का रद्द करना मक़सद है कि वे सिर्फ़ यहूदी गरोह को नजात और कामयाबी का ठेकेदार समझते थे। वे इस ग़लत ख़याल में पड़े हुए थे कि उनके गरोह से अल्लाह का कोई ख़ास रिश्ता है जो दूसरे इनसानों से नहीं है। इसलिए जो उनके गरोह से ताल्लुक़ रखता है, वह चाहे आमाल (कर्मों) और अक़ीदों (धारणाओं) के लिहाज़ से कैसा ही हो, हर हाल में नजात उसकी क़िस्मत में है और बाक़ी तमाम इनसान जो उनके गरोह से बाहर हैं, वे सब जहन्नम का ईंधन बनने के लिए पैदा हुए हैं। इस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए कहा जा रहा है कि अल्लाह के यहाँ असल चीज़ तुम्हारी यह गरोहबन्दियाँ नहीं हैं, बल्कि वहाँ जो कुछ देखे जाएँगे वह ईमान और भले काम हैं। जो इनसान भी ये चीज़ लेकर हाज़िर होगा, वह अपने रब से अपना बदला पाएगा। ख़ुदा के यहाँ फ़ैसला आदमी की सिफ़ात पर होगा, न कि तुम्हारी मर्दुमशुमारी के रजिस्टरों पर।

81. इस वाक़िए को क़ुरआन में मुख़्तलिफ़ जगहों पर जिस अंदाज़ से बयान किया गया है, उससे यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि उस वक़्त बनी-इसराईल में यह एक मशहूर वाक़िआ था, जिसे लोग अच्छी तरह जानते थे। लेकिन अब उसके बारे में तफ़सीली बातें मालूम करना मुश्किल है। बस मुख़्तसर तौर पर इस तरह समझना चाहिए कि पहाड़ के दामन में अहद लेते वक़्त ऐसी डरावनी हालत पैदा कर दी गई थी कि उनको ऐसा मालूम होता था, मानो पहाड़ उनपर आ पड़ेगा। ऐसा ही कुछ नक़्शा क़ुरआन की सूरा-7 आराफ़ की आयत 171 में खींचा गया है। (देखिए क़ुरआन सूरा-7, आराफ़, हाशिया न. 132)

اٰتَیْنٰكُمْ بِقُوَّةٍ وَّاذْكُرُوْا مَا فِیْهِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝۶۳
ثُمَّ تَوَلَّیْتُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ ۚ فَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَیْكُمْ
وَرَحْمَتُهٗ لَكُنْتُمْ مِّنَ الْخٰسِرِیْنَ ۝۶۴ وَلَقَدْ عَلِمْتُمُ
الَّذِیْنَ اعْتَدَوْا مِنْكُمْ فِی السَّبْتِ فَقُلْنَا لَهُمْ كُوْنُوْا
قِرَدَةً خٰسِـِٕیْنَ ۝۶۵ فَجَعَلْنٰهَا نَكَالًا لِّمَا بَیْنَ یَدَیْهَا

साथ थामना और जो हुक्म और हिदायतें उसमें लिखी हुई हैं उन्हें याद रखना। इसी ज़रीए से उम्मीद की जा सकती है कि तुम तक़वा (ईश-परायणता और परहेज़गारी) की रविश पर चल सकोगे।" (64) मगर इसके बाद तुम अपने अहद (वचन) से फिर गए, इसपर भी अल्लाह की मेहरबानी और उसकी रहमत ने तुम्हारा साथ न छोड़ा, वरना तुम कभी के तबाह हो चुके होते।

(65) फिर तुम्हें अपनी क़ौम के उन लोगों का क़िस्सा तो मालूम ही है जिन्होंने सब्त[82] का क़ानून तोड़ा था। हमने उन्हें कह दिया कि बन्दर बन जाओ और इस हाल में रहो कि हर तरफ़ से तुमपर धुतकार और फटकार पड़े।[83] (66) इस तरह हमने उनके

82. सब्त यानी शनिवार का दिन बनी-इसराईल के लिए यह क़ानून मुक़र्रर किया गया था कि वे शनिवार को आराम और इबादत के लिए ख़ास कर रखें। इस दिन किसी तरह का दुनियावी काम, यहाँ तक कि खाने-पकाने का काम भी न ख़ुद करें, न अपने नौकरों से लें। इस बारे में यहाँ तक ताकीद के साथ हिदायतें दी गई थीं कि जो आदमी इस पाक दिन की हुरमत (मर्यादा) को तोड़े, उसको क़त्ल कर देना वाजिब है। (देखिए निर्गमन, अध्याय 31, आयत 12-17) लेकिन जब बनी-इसराईल पर अख़लाक़ी और दीनी गिरावट का वह दौर आया तो वे खुल्लम-खुल्ला सब्त का एहतिराम तोड़ने लगे, यहाँ तक कि उनके शहरों में खुलेआम सब्त के दिन कारोबार होने लगा।

83. इस वाक़िए की तफ़सील क़ुरआन की सातवीं सूरा आराफ़, आयत : 163-164 में आती है। वे बन्दर किस तौर पर बनाए गए इस बात में उलेमा की राएँ अलग-अलग हैं। कुछ यह समझते हैं कि उनकी जिस्मानी बनावट बिगाड़कर बन्दरों जैसी कर दी गई थी और कुछ इसका यह मतलब लेते हैं कि उनमें बन्दरों जैसी सिफ़ात पैदा हो गई थीं, लेकिन क़ुरआन के अलफ़ाज़ और इसके अंदाज़े-बयान (वर्णन-शैली) से ऐसा मालूम होता है कि उनकी शक्लों का बिगाड़ा जाना अख़लाक़ी नहीं, बल्कि जिस्मानी था। मैं यह समझता हूँ कि शायद उनके दिमाग़ ठीक उसी हाल पर रहने दिए गए होंगे जिसमें वे पहले थे और जिस्म बिगड़कर बन्दरों जैसे हो गए होंगे।

وَمَا خَلْفَهَا وَمَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِيْنَ ﴿٦٦﴾ وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى
لِقَوْمِهٖٓ اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تَذْبَحُوْا بَقَرَةً ؕ قَالُوْٓا
اَتَتَّخِذُنَا هُزُوًا ؕ قَالَ اَعُوْذُ بِاللّٰهِ اَنْ اَكُوْنَ مِنَ
الْجٰهِلِيْنَ ﴿٦٧﴾ قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا هِيَ ؕ قَالَ
اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا فَارِضٌ وَّلَا بِكْرٌ ؕ عَوَانٌۢ
بَيْنَ ذٰلِكَ ؕ فَافْعَلُوْا مَا تُؤْمَرُوْنَ ﴿٦٨﴾ قَالُوا ادْعُ لَنَا
رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا لَوْنُهَا ؕ قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا
بَقَرَةٌ صَفْرَآءُ ۙ فَاقِعٌ لَّوْنُهَا تَسُرُّ النّٰظِرِيْنَ ﴿٦٩﴾ قَالُوْا

अंजाम को उस ज़माने के लोगों और बाद की आनेवाली नस्लों के लिए इबरत (शिक्षा) और डरनेवालों के लिए नसीहत बनाकर छोड़ा।

(67) फिर वह वाक़िआ याद करो जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा कि अल्लाह तुम्हें एक गाय ज़ब्ह करने का हुक्म देता है। कहने लगे, "क्या तुम हमसे मज़ाक़ करते हो?" मूसा ने कहा, "मैं इससे ख़ुदा की पनाह माँगता हूँ कि जाहिलों की-सी बातें करूँ।" (68) बोले, "अच्छा, अपने रब से दरख़ास्त करो कि वह हमें उस गाय की कुछ तफ़सील बताए।" मूसा ने कहा कि अल्लाह कहता है कि वह ऐसी गाय होनी चाहिए जो न बूढ़ी हो, न बछिया, बल्कि औसत उम्र की हो। इसलिए जो हुक्म दिया जाता है उसको पूरा करो। (69) फिर कहने लगे कि अपने रब से यह और पूछ दो कि उसका रंग कैसा हो। मूसा ने कहा, "वह कहता है पीले रंग की गाय होनी चाहिए जिसका रंग ऐसा शोख़ (चटकीला) हो कि देखनेवालों का जी ख़ुश हो जाए। (70) फिर बोले, "अपने रब से साफ़-साफ़ पूछकर बताओ, कैसी गाय मतलूब (अभीष्ट) है?" हमें उसे मुतैयन (निश्चित) करने में शुब्हा (संदेह) हो गया है। अल्लाह ने चाहा तो हम उसका

ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَنَا مَا هِيَ ۙ إِنَّ الْبَقَرَ تَشَابَهَ عَلَيْنَا ۖ
وَإِنَّا إِنْ شَاءَ اللَّهُ لَمُهْتَدُونَ ۝٧٠ قَالَ إِنَّهُ يَقُولُ إِنَّهَا
بَقَرَةٌ لَا ذَلُولٌ تُثِيرُ الْأَرْضَ وَلَا تَسْقِي الْحَرْثَ ۚ
مُسَلَّمَةٌ لَا شِيَةَ فِيهَا ۚ قَالُوا الْآنَ جِئْتَ بِالْحَقِّ ۚ
فَذَبَحُوهَا وَمَا كَادُوا يَفْعَلُونَ ۝٧١ وَإِذْ قَتَلْتُمْ نَفْسًا
فَادَّارَأْتُمْ فِيهَا ۖ وَاللَّهُ مُخْرِجٌ مَا كُنْتُمْ تَكْتُمُونَ ۝٧٢

पता पा लेंगे। (71) मूसा ने जवाब दिया, "अल्लाह कहता है कि वह ऐसी गाय है जिससे काम नहीं लिया जाता, न ज़मीन जोतती है, न पानी खींचती है, सही सालिम और बेदाग़ है।" इसपर वे पुकार उठे कि हाँ, अब तुमने ठीक पता बताया है। फिर उन्होंने उसे ज़ब्ह किया, वरना वे ऐसा करते मालूम न होते थे।[84]

(72) और तुम्हें याद है वह वाक़िआ जब तुमने एक आदमी की जान ली थी, फिर उसके बारे में झगड़ने और एक-दूसरे पर क़त्ल का इलज़ाम थोपने लगे थे, और अल्लाह ने फ़ैसला कर लिया था कि जो कुछ तुम छिपाते हो, उसे खोलकर रख देगा।

---

84. चूँकि उन लोगों को अपनी पड़ोसी क़ौमों से गाय की बड़ाई और पाकी और गाय-परस्ती (गाय को पूजने) के मर्ज़ की छूत लग गई थी, इसलिए उनको हुक्म दिया गया कि गाय ज़ब्ह करें। उनके ख़ुदा पर ईमान का इम्तिहान ही इसी तरह हो सकता है कि अगर वे हक़ीक़त में ख़ुदा के सिवा किसी को पूजने के लायक़ नहीं समझते तो यह अक़ीदा इख़्तियार करने से पहले जिस बुत को माबूद (पूजनीय) समझते रहे हैं उसे अपने हाथ से तोड़ें। यह इम्तिहान बहुत सख़्त इम्तिहान था। दिलों में पूरी तरह ईमान उतरा हुआ न था, इसलिए उन्होंने टालने की कोशिश की और तफ़सील पूछने लगे, मगर जितनी तफ़सील वे पूछते गए उतने ही घिरते चले गए, यहाँ तक कि आख़िरकार उसी ख़ास क़िस्म की सुनहरी गाय पर, जिसे उस ज़माने में पूजा के लिए ख़ास किया जाता था, मानो उँगली रखकर बता दिया गया कि इसे ज़ब्ह करो। बाइबल में भी इस वाक़िए की तरफ़ इशारा है, मगर वहाँ यह ज़िक्र नहीं है कि बनी-इसराईल ने इस हुक्म को किस-किस तरह टालने की कोशिश की थी। (देखिए पुस्तक : गिनती, 19 : 1-10)

فَقُلْنَا اضْرِبُوْهُ بِبَعْضِهَا ۚ كَذٰلِكَ يُحْيِ اللّٰهُ الْمَوْتٰى ۙ
وَيُرِيْكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۝٧٣ ثُمَّ قَسَتْ
قُلُوْبُكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ فَهِيَ كَالْحِجَارَةِ اَوْ اَشَدُّ
قَسْوَةً ۚ وَاِنَّ مِنَ الْحِجَارَةِ لَمَا يَتَفَجَّرُ مِنْهُ الْاَنْهٰرُ ۚ
وَاِنَّ مِنْهَا لَمَا يَشَّقَّقُ فَيَخْرُجُ مِنْهُ الْمَآءُ ۚ وَاِنَّ مِنْهَا
لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ ۚ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا

---

(73) उस वक़्त हमने हुक्म दिया कि मक़तूल (क़त्ल किए गए व्यक्ति) की लाश पर उसके एक हिस्से से चोट लगाओ। देखो, इस तरह अल्लाह मुर्दों को ज़िन्दगी देता है और तुम्हें अपनी निशानियाँ दिखाता है, ताकि तुम समझो[85] (74)– मगर ऐसी निशानियाँ देखने के बाद भी आख़िरकार तुम्हारे दिल सख़्त हो गए, पत्थरों की तरह सख़्त, बल्कि सख़्ती में कुछ उनसे भी बढ़े हुए, क्योंकि पत्थरों में से तो कोई ऐसा भी होता है जिसमें से चश्मे (सोते) फूट बहते हैं, कोई फटता है और उसमें से पानी निकल आता है, और कोई ख़ुदा के डर से काँपकर गिर भी पड़ता है। अल्लाह तुम्हारे करतूतों से बेख़बर

---

85. इस जगह पर यह बात बिलकुल साफ़ मालूम होती है कि मारे गए आदमी के अन्दर दोबारा इतनी देर के लिए जान डाली गई कि वह क़ातिल का पता बता दे। लेकिन इस मक़सद के लिए जो तदबीर बताई गई थी यानी लाश को उसके एक हिस्से से ज़र्ब (चोट) लगाओ, इसके अलफ़ाज़ में कुछ इबहाम (अस्पष्टता) महसूस होता है। फिर भी उसका सबसे ज़्यादा क़रीबी मतलब वही है जो क़ुरआन के पुराने मुफ़स्सिरों (व्याख्याकारों) ने बयान किया है, यानी यह कि ऊपर जिस गाय के ज़ब्ह करने का हुक्म दिया गया था उसी के गोश्त से मारे गए आदमी की लाश पर चोट लगाने का हुक्म दिया गया। इस तरह मानो एक पंथ दो काज हो गए। एक यह कि अल्लाह की क़ुदरत का एक निशान उन्हें दिखाया गया, दूसरा यह कि गाय की अज़मत (बड़ाई) और पाकी और उसके माबूद होने पर भी एक गहरी चोट लगी कि इस माबूद समझी जानेवाली गाय के पास अगर कुछ भी ताक़त होती तो उसे ज़ब्ह करने से एक आफ़त और मुसीबत आ जानी चाहिए थी, न कि उसका ज़ब्ह होना उलटा इस तरह फ़ायदेमन्द साबित हो।

تَعْمَلُوْنَ ۞ اَفَتَطْمَعُوْنَ اَنْ يُّؤْمِنُوْا لَكُمْ وَقَدْ
كَانَ فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ يَسْمَعُوْنَ كَلٰمَ اللّٰهِ ثُمَّ يُحَرِّفُوْنَهٗ

नहीं है।

(75) ऐ मुसलमानो! अब क्या इन लोगों से तुम यह उम्मीद रखते हो कि ये तुम्हारी दावत पर ईमान ले आएँगे?[86] हालाँकि इनमें से एक गरोह का रवैया यह रहा है कि

86. यह ख़िताब (सम्बोधन) मदीने के उन नव-मुस्लिमों से है जो क़रीब ही के ज़माने में अरबी पैग़म्बर (यानी हज़रत मुहम्मद *सल्ल०)* पर ईमान लाए थे। इन लोगों के कान में पहले से ही नुबूवत, किताब, फ़रिश्ते, आख़िरत, शरीअत वग़ैरा की जो बातें पड़ी हुई थीं, वे सब उन्होंने अपने पड़ोसी यहूदियों ही से सुनी थीं, और यह भी उन्होंने यहूदियों ही से सुना था कि दुनिया में एक पैग़म्बर और आनेवाले हैं और यह कि जो लोग उनका साथ देंगे, वे सारी दुनिया पर छा जाएँगे। यही मालूमात थीं जिनकी वजह से मदीने के लोगों ने नबी *(सल्ल०)* की चर्चा सुनकर आप *(सल्ल०)* की तरफ़ तवज्जोह की और बड़ी तादाद में आप *(सल्ल०)* के पैग़ाम को क़बूल किया। उन्हें उम्मीद थी कि जो लोग पहले ही से पैग़म्बरों और आसमानी किताबों की पैरवी करते हैं, और जिनकी दी हुई ख़बरों की बदौलत ही हम को इस्लाम की दौलत नसीब हुई है, वे ज़रूर हमारा साथ देंगे, बल्कि इस राह में सब से आगे होंगे। चुनाँचे यही उम्मीदें लेकर ये जोशीले नव-मुस्लिम अपने यहूदी दोस्तों और पड़ोसियों के पास जाते थे और उनको इस्लाम की दावत देते थे। फिर जब वे इस दावत का जवाब इनकार से देते तो मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) और इस्लाम के दुश्मन इससे यह दलील लेते थे कि मामला कुछ गड़बड़ ही लगता है। वरना अगर यह वाक़ई नबी होते तो आख़िर कैसे मुमकिन था कि अहले-किताब (यहूदियों और ईसाईयों) के आलिम और सरदार और बुज़ुर्ग जानते-बूझते ईमान लाने से मुँह मोड़ते और ख़ामख़ाह अपना अंजाम ख़राब कर लेते। इस वजह से बनी-इसराईल की तारीख़ी दास्तान बयान करने के बाद अब उन सादा-दिल मुसलमानों से कहा जा रहा है कि जिन लोगों की पिछली रिवायात (परम्पराएँ) ये कुछ रही हैं, उनसे तुम कुछ बहुत ज़्यादा लंबी-चौड़ी उम्मीदें न रखो, वरना जब उनके पत्थर दिलों से तुम्हारी हक़ की दावत टकराकर वापस आएगी तो तुम्हारे दिल टूट जाएँगे। ये लोग तो सदियों के बिगड़े हुए हैं, अल्लाह की जिन आयतों को सुनकर तुम काँपने लगते हो, उन्हीं से खेलते और मज़ाक़ उड़ाते उनकी नस्लें बीत गई हैं। दीने-हक़ (सत्य-धर्म) को बिगाड़ करके ये अपनी ख़ाहिशों के मुताबिक़ ढाल चुके हैं और इसी बिगड़े दीन (धर्म) से ये नजात (मुक्ति) की उम्मीदें बाँधे बैठे हैं। इनसे यह उम्मीद रखना बेकार है कि सच्चाई की आवाज़ बुलन्द होते ही ये हर तरफ़ से दौड़े चले आएँगे।

مِنْۢ بَعْدِ مَا عَقَلُوْهُ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ۝٧٥ وَاِذَا لَقُوا
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قَالُوْٓا اٰمَنَّا ۚۖ وَاِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ اِلٰى بَعْضٍ
قَالُوْٓا اَتُحَدِّثُوْنَهُمْ بِمَا فَتَحَ اللّٰهُ عَلَيْكُمْ لِيُحَاۗجُّوْكُمْ
بِهٖ عِنْدَ رَبِّكُمْ ۭ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۝٧٦ اَوَلَا يَعْلَمُوْنَ
اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا يُسِرُّوْنَ وَمَا يُعْلِنُوْنَ ۝٧٧ وَمِنْهُمْ

अल्लाह का कलाम (वाणी) सुना और फिर ख़ूब समझ-बूझकर जानते हुए उसमें फेर-बदल किया[87] (76) ये (अल्लाह के रसूल मुहम्मद सल्ल॰ पर) ईमान लानेवालों से मिलते हैं तो कहते हैं कि हम भी उन्हें मानते हैं और जब आपस में एक-दूसरे से अकेले में बातचीत होती है तो कहते हैं कि बेवकूफ़ हो गए हो! इन लोगों को वे बातें बताते हो जो अल्लाह ने तुमपर खोली हैं, ताकि तुम्हारे रब के पास तुम्हारे मुक़ाबले में उन्हें हुज्जत (दलील) में पेश करें?[88] (77) — और क्या ये जानते नहीं हैं कि जो कुछ ये छिपाते हैं और जो कुछ ज़ाहिर करते हैं, अल्लाह को सब बातों की ख़बर है? (78) — इनमें एक दूसरा गरोह

87. 'एक गरोह' से मुराद उनके उलमा और शरीअत रखनेवाले लोग हैं। 'अल्लाह के कलाम' से मुराद तौरात, ज़बूर और वे दूसरी किताबें हैं, जो इन लोगों को उनके नबियों के ज़रीए से पहुँचीं। 'बदल डालने' का मतलब यह है कि बात को असल मानी और मतलब से फेरकर अपनी ख़ाहिश के मुताबिक़ कुछ दूसरे मानी पहना देना, जो कहनेवाले की मंशा के ख़िलाफ़ हों। इसी तरह लफ़्ज़ों में फेर-बदल करने को भी 'बदल डालना' कहते हैं। — बनी-इसराईल के उलमा ने अल्लाह के कलाम में इन दोनों तरह के फेर-बदल किए हैं।

88. यानी वे आपस में एक-दूसरे से कहते थे कि तौरात और दूसरी आसमानी किताबों में जो पेशीनगोइयाँ इस नबी के बारे में पाई जाती हैं या जो आयतें और तालीम हमारी इन पाक किताबों में ऐसी मिलती हैं जिनसे हमारे मौजूदा रवैए पर हमारी पकड़ हो सकती है, उन्हें मुसलमानों के सामने बयान न करो, वरना ये तुम्हारे रब के सामने उनको तुम्हारे ख़िलाफ़ दलील बनाकर पेश करेंगे। यह था अल्लाह के बारे में ज़ालिमों के अक़ीदे की ख़राबी का हाल, मानो वे अपने नज़दीक यह समझते थे कि अगर दुनिया में वे अपनी तहरीफ़ात (फेर-बदल) और हक़ पर परदा डालने को छिपा ले गए तो आख़िरत में उनपर मुक़द्दमा न चल सकेगा। इसी लिए बाद में ऊपर से चली आ रही बात को रोककर बीच में एक दूसरी बात कह कर उनको ख़बरदार किया गया है कि क्या तुम अल्लाह को बेख़बर समझते हो?

أُمِّيُّوْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ الْكِتٰبَ اِلَّآ اَمَانِيَّ وَاِنْ هُمْ اِلَّا
يَظُنُّوْنَ ۝۷۸ فَوَيْلٌ لِّلَّذِيْنَ يَكْتُبُوْنَ الْكِتٰبَ بِاَيْدِيْهِمْ ۗ
ثُمَّ يَقُوْلُوْنَ هٰذَا مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ لِيَشْتَرُوْا بِهٖ ثَمَنًا قَلِيْلًا ؕ
فَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا كَتَبَتْ اَيْدِيْهِمْ وَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا
يَكْسِبُوْنَ ۝۷۹ وَقَالُوْا لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ اِلَّآ اَيَّامًا مَّعْدُوْدَةً ؕ

उम्मियों (अनपढ़ों) का है जो किताब का तो इल्म रखते नहीं, बस अपनी बेबुनियाद उम्मीदों और आरज़ुओं को लिए बैठे हैं और सिर्फ़ वह्म व गुमान पर चले जा रहे हैं।[89] (79) तो हलाकत और तबाही है उन लोगों के लिए जो अपने हाथों से शरअ का नविश्ता (दीन का मसौदा) लिखते हैं, फिर लोगों से कहते हैं कि यह अल्लाह के पास से आया हुआ है, ताकि इसके बदले में थोड़ा-सा फ़ायदा हासिल कर लें।[90] उनके हाथों का यह लिखा भी उनके लिए तबाही का सामान है और उनकी यह कमाई भी उनके लिए तबाही का सबब। (80) वे कहते हैं कि दोज़ख़ (नरक) की आग हमें हरगिज़ छूनेवाली नहीं,

89. यह उनके आम लोगों का हाल था। ख़ुदा की किताब के इल्म से कोरे थे। कुछ न जानते थे कि अल्लाह ने अपनी किताब में दीन (धर्म) के क्या उसूल बताए हैं, अख़लाक़ और शरीअत के क्या क़ायदे सिखाए हैं और इनसान की कामयाबी और नाकामी की बुनियाद किन चीज़ों पर रखी है। इस इल्म के बग़ैर वे अपने बनाए हुए तसव्वुरात और ख़ाहिशों के मुताबिक़ गढ़ी हुई बातों को दीन (धर्म) समझ बैठे थे। और झूठी उम्मीदों पर जी रहे थे।

90. यह उनके उलमा के बारे में कहा जा रहा है। उन लोगों ने सिर्फ़ इतना ही नहीं किया कि ख़ुदा के कलाम के मानी को अपनी ख़ाहिशों के मुताबिक़ बदला हो, बल्कि यह भी किया कि बाइबल में अपनी तफ़सीरों (टीकाओं) को, अपनी क़ौम की तारीख़ (इतिहास) को, अपने अंधविश्वासों और अटकलों को, अपने ख़याली फ़लसफ़ों (दर्शनों) को और अपनी समझ से गढ़े हुए शरीअत के क़ानूनों को अल्लाह के कलाम (ईशवाणी) के साथ गड्ड-मड्ड कर दिया और ये सारी चीज़ें लोगों के सामने इस हैसियत से पेश कीं मानो ये सब अल्लाह ही की तरफ़ से आई हुई हैं। हर तारीख़ी (ऐतिहासिक) कहानी, हर मुफ़स्सिर की तफ़सीर, हर फ़लसफ़ी का ख़ुदा के बारे में अक़ीदा, हर फ़क़ीह की क़ानूनी खोज जिसने पाक किताबों के मजमूए (बाइबल) में जगह पा ली, अल्लाह का बोल (Word of God) बनकर रह गया। उस पर ईमान लाना फ़र्ज़ हो गया और उससे फिरने का मतलब दीन से फिर जाना हो गया।

قُلْ اَتَّخَذْتُمْ عِنْدَ اللّٰهِ عَهْدًا فَلَنْ يُّخْلِفَ اللّٰهُ عَهْدَهٗٓ
اَمْ تَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ۝٨٠ بَلٰى مَنْ كَسَبَ
سَيِّئَةً وَّاَحَاطَتْ بِهٖ خَطِيْٓــَٔتُهٗ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ
هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝٨١ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ
اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ الْجَنَّةِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝٨٢ ع وَاِذْ
اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِيْٓ اِسْرَاۗءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ ۣ وَ
بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّذِي الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ
وَقُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا وَّاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ ۭ

सिवाय इसके कि कुछ दिन की सज़ा मिल जाए तो मिल जाए।[91] इनसे पूछो, क्या तुमने अल्लाह से कोई अह्द (वचन) ले लिया है जिसके ख़िलाफ़ वह नहीं जा सकता? या बात यह है कि तुम अल्लाह के ज़िम्मे डालकर ऐसी बातें कह देते हो जिनके बारे में तुम्हें इल्म नहीं है कि उसने उनका ज़िम्मा लिया है? आख़िर तुम्हें दोज़ख़ की आग क्यों न छुएगी? (81) जो भी बदी (बुराई) कमाएगा और अपनी ख़ताकारी (पापाचार) के चक्कर में पड़ा रहेगा, वह दोज़ख़ी है और दोज़ख़ ही में वह हमेशा रहेगा। (82) और जो लोग ईमान लाएँगे और अच्छे अमल (कर्म) करेंगे वही जन्नती हैं और जन्नत में वे हमेशा रहेंगे।

(83) याद करो, इसराईल की औलाद से हमने पक्का अह्द लिया था कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत (बन्दगी) न करना, माँ-बाप के साथ, रिश्तेदारों के साथ, यतीमों और मुहताजों के साथ अच्छा सुलूक करना, लोगों से भली बात कहना, नमाज़ क़ायम

91. यह यहूदियों की आम ग़लतफ़हमी का बयान है, जिसमें उनके आम लोग और आलिम सभी गिरफ़्तार थे। वे समझते थे कि हम चाहे जो कुछ भी करें, बहरहाल चूँकि हम यहूदी हैं, इसलिए जहन्नम की आग हम पर हराम है और अगर यह बात मान भी ली जाए कि हमको सज़ा दी जाएगी भी, तो बस कुछ दिन के लिए वहाँ भेजे जाएँगे और फिर सीधे जन्नत की तरफ़ पलटा दिए जाएँगे।

ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْكُمْ وَاَنْتُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿٨٣﴾
وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ لَا تَسْفِكُوْنَ دِمَآءَكُمْ وَلَا تُخْرِجُوْنَ
اَنْفُسَكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ ثُمَّ اَقْرَرْتُمْ وَاَنْتُمْ تَشْهَدُوْنَ ﴿٨٤﴾
ثُمَّ اَنْتُمْ هٰٓؤُلَآءِ تَقْتُلُوْنَ اَنْفُسَكُمْ وَتُخْرِجُوْنَ فَرِيْقًا
مِّنْكُمْ مِّنْ دِيَارِهِمْ ز تَظٰهَرُوْنَ عَلَيْهِمْ بِالْاِثْمِ
وَالْعُدْوَانِ ؕ وَاِنْ يَّاْتُوْكُمْ اُسٰرٰى تُفٰدُوْهُمْ وَهُوَ
مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ اِخْرَاجُهُمْ ؕ اَفَتُؤْمِنُوْنَ بِبَعْضِ الْكِتٰبِ
وَتَكْفُرُوْنَ بِبَعْضٍ ۚ فَمَا جَزَآءُ مَنْ يَّفْعَلُ ذٰلِكَ
مِنْكُمْ اِلَّا خِزْيٌ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ

करना और ज़कात देना, मगर थोड़े आदमियों के सिवा तुम सब इस अह्द से फिर गए और अब तक फिरे हुए हो। (84) फिर ज़रा याद करो, हमने तुमसे मज़बूत अह्द लिया था कि आपस में एक-दूसरे का ख़ून न बहाना और न एक-दूसरे को घर से बेघर करना। तुमने इसका इक़रार किया था, तुम ख़ुद इसपर गवाह हो। (85) मगर आज वही तुम हो कि अपने भाई-बन्धुओं को क़त्ल करते हो, अपनी बिरादरी के कुछ लोगों को बेघर कर देते हो, ज़ुल्म व ज़्यादती के साथ उनके ख़िलाफ़ जत्थेबंदियाँ (गरोहबंदियाँ) करते हो, और जब वे लड़ाई में पकड़े हुए तुम्हारे पास आते हैं तो उनकी रिहाई के लिए फ़िदया (जुर्माने) का लेन-देन करते हो, हालाँकि उन्हें उनके घरों से निकालना ही सिरे से तुमपर हराम था। तो क्या तुम किताब के एक हिस्से पर ईमान लाते हो और दूसरे हिस्से का इनकार करते हो?[92] फिर तुममें से जो लोग ऐसा करें, उनकी सज़ा इसके सिवा और क्या है कि दुनिया

92. नबी *(सल्ल॰)* के आने से पहले मदीना के आस-पास के यहूदी क़बीलों ने अपने पड़ोसी अरब क़बीलों (औस और ख़ज़रज) से समझौता करके ताल्लुक़ात बना रखे थे। जब एक अरब क़बीला दूसरे क़बीले से जंग कर रहा होता तो दोनों के दोस्त यहूदी क़बीले भी अपने-अपने समझौतेवाले

يُرَدُّوْنَ إِلٰٓى أَشَدِّ الْعَذَابِ ۗ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ
عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ﴿٨٥﴾ أُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الْحَيٰوةَ
الدُّنْيَا بِالْاٰخِرَةِ ۫ فَلَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ
ع وَلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿٨٦﴾ وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ
وَقَفَّيْنَا مِنْۢ بَعْدِهٖ بِالرُّسُلِ ۫ وَاٰتَيْنَا عِيْسَى ابْنَ
مَرْيَمَ الْبَيِّنٰتِ وَاَيَّدْنٰهُ بِرُوْحِ الْقُدُسِ ۭ اَفَكُلَّمَا
جَآءَكُمْ رَسُوْلٌۢ بِمَا لَا تَهْوٰٓى اَنْفُسُكُمُ اسْتَكْبَرْتُمْ

की ज़िन्दगी में रुसवा और बेइज़्ज़त होकर रहें और आख़िरत (परलोक) में निहायत सख़्त अज़ाब (यातना) की तरफ़ फेर दिए जाएँ? अल्लाह उन हरकतों से बेख़बर नहीं है जो तुम कर रहे हो। (86) — ये वे लोग हैं जिन्होंने आख़िरत बेचकर दुनिया की ज़िन्दगी ख़रीद ली है, इसलिए न इनकी सज़ा में कोई कमी होगी और न इन्हें कोई मदद पहुँच सकेगी।

(87) हमने मूसा को किताब दी, उसके बाद पे-दर-पे (लगातार) रसूल भेजे, आख़िर में मरयम के बेटे ईसा को रौशन निशानियाँ देकर भेजा और पाक रूह (पवित्र आत्मा) से उसकी मदद की।[93] फिर यह तुम्हारा क्या ढंग है कि जब भी कोई रसूल तुम्हारे (नफ़्स)

क़बीले का साथ देते और एक-दूसरे के मुक़ाबले में मैदान में आ जाते थे। यह काम साफ़ तौर पर अल्लाह की किताब के ख़िलाफ़ था और वे जानते-बूझते अल्लाह की किताब की ख़िलाफ़वर्ज़ी कर रहे थे, मगर लड़ाई के बाद जब एक यहूदी क़बीले के जंगी क़ैदी दूसरे यहूदी क़बीले के हाथ आ जाते थे, तो जीतनेवाला क़बीला फ़िदया (अर्थदण्ड) लेकर उन्हें छोड़ता और हारनेवाला क़बीला फ़िदया देकर उन्हें छुड़ाता था और इस फ़िदये के लेन-देन को जाइज़ ठहराने के लिए अल्लाह की किताब से दलील पेश की जाती थी, मानो वह अल्लाह की किताब की इस इजाज़त को तो सिर-आँखों पर रखते थे कि लड़ाई के क़ैदियों को फ़िदया लेकर छोड़ा जाए, मगर इस हुक्म को ठुकरा देते थे कि आपस में लड़ाई ही न की जाए।

93. 'पाक रूह' (पवित्र आत्मा) से मुराद वह्य का इल्म भी है और जिबरील नामी फ़रिश्ते भी जो वह्य का इल्म लाते थे और ख़ुद हज़रत ईसा-मसीह की अपनी पाकीज़ा रूह भी, जिसको अल्लाह ने क़ुद्सी सिफ़ात (पवित्र गुणोंवाला) बनाया था। 'रौशन निशानियों' से मुराद वे खुली-खुली

فَفَرِيقًا كَذَّبْتُمْ وَفَرِيقًا تَقْتُلُونَ ﴿٨٧﴾ وَقَالُوا
قُلُوبُنَا غُلْفٌ ۚ بَل لَّعَنَهُمُ اللَّهُ بِكُفْرِهِمْ فَقَلِيلًا
مَّا يُؤْمِنُونَ ﴿٨٨﴾ وَلَمَّا جَاءَهُمْ كِتَابٌ مِّنْ عِندِ اللَّهِ
مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ وَكَانُوا مِن قَبْلُ يَسْتَفْتِحُونَ عَلَى
الَّذِينَ كَفَرُوا فَلَمَّا جَاءَهُم مَّا عَرَفُوا كَفَرُوا بِهِ ۚ
فَلَعْنَةُ اللَّهِ عَلَى الْكَافِرِينَ ﴿٨٩﴾ بِئْسَمَا اشْتَرَوْا بِهِ

(मन) की ख़ाहिशों के ख़िलाफ़ कोई चीज़ लेकर तुम्हारे पास आया तो तुमने उसके मुक़ाबले में सरकशी ही की; किसी को झुठलाया और किसी को क़त्ल कर डाला! (88)– वे कहते हैं: हमारे दिल महफ़ूज़ (सुरक्षित) हैं।[94] नहीं, असल बात यह है कि उनके इनकार की वजह से उनपर अल्लाह की फिटकार पड़ी है; इसलिए वे कम ही ईमान लाते हैं। (89) – और अब जो एक किताब अल्लाह की तरफ़ से उनके पास आई है, उसके साथ उनका क्या बर्ताव है? इसके बावजूद कि वह उस किताब की तसदीक़ (पुष्टि) करती है जो उनके पास पहले से मौजूद थी, इसके बावजूद कि उसके आने से पहले वे ख़ुद कुफ़्र (सत्य का इनकार) करनेवालों के मुक़ाबले में जीत और मदद की दुआएँ माँगा करते थे; मगर जब वह चीज़ आ गई, जिसे वे पहचान भी गए, तो उन्होंने उसे मानने से इनकार कर दिया।[95] ख़ुदा की लानत इन इनकार करनेवालों पर, (90) कैसा बुरा ज़रीआ है जिससे

अलामतें (लक्षण) हैं जिन्हें देखकर सच्चाई को पसन्द करनेवाला यह जान सकता था कि ईसा *(अलैहि॰)* अल्लाह के नबी हैं।

94. यानी हम अपने अक़ीदे और ख़याल में इतने पुख़्ता हैं कि तुम चाहे कुछ भी कहो, हमारे दिलों पर तुम्हारी बात का असर न होगा। यह वही बात है जो तमाम ऐसे हठधर्म लोग कहा करते हैं जिनके दिल व दिमाग़ पर जाहिलाना तास्सुब (पक्षपात) छाया हुआ होता है। वे इसे अक़ीदे की मज़बूती का नाम देकर एक ख़ूबी शुमार करते हैं। हालाँकि इससे बढ़कर आदमी के लिए कोई ऐब नहीं है कि वह अपने बाप-दादाओं से मिले हुए अक़ीदों और ख़यालों पर जम जाने का फ़ैसला कर ले, चाहे उनका ग़लत होना कितनी ही मज़बूत दलीलों से साबित कर दिया जाए।

95. अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद *(सल्ल॰)* के आने से पहले यहूदी बेचैनी के साथ उस नबी के इन्तिज़ार में थे जिसके आने की पेशीनगोइयाँ उनके नबियों ने की थीं। वे दुआएँ माँगा करते

اَنْفُسَهُمْ اَنْ يَّكْفُرُوْا بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ بَغْيًا اَنْ يُّنَزِّلَ
اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ عَلٰى مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ ۚ فَبَآءُوْ

ये अपने नफ़्स की तसल्ली हासिल करते है[96] कि जो हिदायत अल्लाह ने उतारी है उसको क़बूल करने से सिर्फ़ इस ज़िद के सबब इनकार कर रहे हैं कि अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल (वह्य और रिसालत) से अपने जिस बन्दे को ख़ुद चाहा, नवाज़ दिया।[97] इसलिए अब

थे कि जल्दी से वह आए तो कुफ़्र करनेवालों का ग़लबा मिटे और फिर हमारी तरक़्क़ी का दौर शुरू हो। ख़ुद मदीनावाले इस बात के गवाह थे कि नबी *(सल्ल॰)* के आने से पहले यही उनके पड़ोसी यहूदी आनेवाले नबी की उम्मीद पर जिया करते थे और हर वक़्त उनकी ज़बान पर यही बोल रहते थे कि ''अच्छा, अब तो जिस-जिसका जी चाहे हमपर ज़ुल्म कर ले, जब वह नबी आएगा तो हम इन सब ज़ालिमों को देख लेंगे।'' मदीनावाले ये बातें सुने हुए थे, इसी लिए जब उन्हें नबी *(सल्ल॰)* के हालात मालूम हुए तो उन्होंने आपस में कहा कि देखना, कहीं ये यहूदी तुमसे बाज़ी न ले जाएँ। चलो, पहले हम ही इस नबी पर ईमान ले आएँ। मगर उनके लिए यह अजीब माजरा था कि वही यहूदी जो आनेवाले नबी के इन्तिज़ार में घड़ियाँ गिन रहे थे उसके आने पर सबसे बढ़कर उसके मुख़ालिफ़ बन गए।

यह जो कहा कि 'वे इसको पहचान भी गए', तो इसके बहुत-से सुबूत उसी ज़माने में मिल गए थे। सबसे ज़्यादा भरोसेमन्द गवाही उम्मुल-मोमिनीन हज़रत सफ़ीया *(रज़ि॰)* की है, जो ख़ुद एक बड़े यहूदी आलिम की बेटी और एक दूसरे आलिम की भतीजी थीं। वे कहती हैं कि जब नबी *(सल्ल॰)* मदीना आए तो मेरे बाप और चचा दोनों उनसे मिलने गए। बड़ी देर तक उन्होंने आप *(सल्ल॰)* से बातें कीं, फिर जब घर वापस आए तो मैंने अपने कानों से उन दोनों को ये बातें करते सुना—

चचा : क्या हक़ीक़त में यह वही नबी है, जिसकी ख़बरें हमारी किताबों में दी गई हैं?
बाप : ख़ुदा की क़सम, हाँ!
चचा : क्या तुमको इसका यक़ीन है?
बाप : हाँ।
चचा : फिर क्या इरादा है?
बाप : जब तक जान में जान है इसकी मुख़ालफ़त करूँगा और इसकी बात चलने न दूँगा।

(इब्ने-हिशाम, भाग 2, पृ॰ 165, नया एडिशन)

96. इस आयत का दूसरा तर्जमा यह भी हो सकता है, ''कैसी बुरी चीज़ है, जिसके लिए उन्होंने अपनी जानों को बेच डाला'' यानी अपनी कामयाबी, ख़ुशनसीबी और अपनी नजात (मुक्ति) को क़ुरबान कर दिया।

97. ये (यहूदी) चाहते थे कि आनेवाला नबी उनकी अपनी क़ौम में पैदा हो, मगर जब वह एक दूसरी क़ौम में पैदा हुआ, जिसे वे अपने मुक़ाबले में नीचा समझते थे, तो वे उसके इनकार पर

بِغَضَبٍ عَلٰى غَضَبٍ ۭ وَلِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ۝٩٠ وَ
اِذَا قِيْلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا نُؤْمِنُ بِمَآ
اُنْزِلَ عَلَيْنَا وَيَكْفُرُوْنَ بِمَا وَرَاۗءَهٗ ۚ وَھُوَ الْحَقُّ
مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَھُمْ ۭ قُلْ فَلِمَ تَقْتُلُوْنَ اَنْۢبِيَاۗءَ اللّٰهِ
مِنْ قَبْلُ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۝٩١ وَلَقَدْ جَاۗءَكُمْ مُّوْسٰى
بِالْبَيِّنٰتِ ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِهٖ وَاَنْتُمْ
ظٰلِمُوْنَ ۝٩٢ وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ
الطُّوْرَ ۭ خُذُوْا مَآ اٰتَيْنٰكُمْ بِقُوَّةٍ وَّاسْمَعُوْا ۭ قَالُوْا

ये ग़ज़ब पर ग़ज़ब के हक़दार हो गए हैं और ऐसे इनकारियों के लिए सख़्त रुसवाकुन (अपमानजनक) सज़ा मुक़र्रर है।

(91) जब उनसे कहा जाता है कि जो कुछ अल्लाह ने उतारा है उसपर ईमान लाओ तो वे कहते हैं, "हम तो सिर्फ़ उस चीज़ पर ईमान लाते हैं जो हमारे यहाँ (यानी इसराईल की नस्ल में) उतरी है।" इस दायरे के बाहर जो कुछ आया है उसे मानने से वे इनकार करते हैं, हालाँकि वह हक़ है और उस तालीम (शिक्षा) की तसदीक़ (पुष्टि) और ताईद (समर्थन) कर रहा है जो उनके यहाँ पहले से मौजूद थी। अच्छा, उनसे कहो, अगर तुम उस तालीम ही पर ईमान रखनेवाले हो जो तुम्हारे पास आई थी, तो उससे पहले अल्लाह के उन पैग़म्बरों को (जो ख़ुद बनी-इसराईल में पैदा हुए थे) क्यों क़त्ल करते रहे? (92) तुम्हारे पास मूसा कैसी-कैसी रौशन निशानियों के साथ आया, फिर भी तुम ऐसे ज़ालिम थे कि उसके पीठ मोड़ते ही बछड़े को माबूद (पूज्य) बना बैठे। (93) फिर ज़रा उस मीसाक़ (वचन) को याद करो जो तूर को तुम्हारे ऊपर उठाकर हमने तुमसे लिया

उतर आए, मानो उनका मतलब यह था कि अल्लाह उनसे पूछकर पैग़म्बर भेजता। जब उसने उनसे न पूछा और अपनी मेहरबानी से ख़ुद जिसे चाहा पैग़म्बर बना दिया, तो वे बिगड़ बैठे।

سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا ۚ وَأُشْرِبُوا فِي قُلُوبِهِمُ الْعِجْلَ بِكُفْرِهِمْ ۚ
قُلْ بِئْسَمَا يَأْمُرُكُم بِهِ إِيمَانُكُمْ إِن كُنتُم مُّؤْمِنِينَ ﴿٩٣﴾
قُلْ إِن كَانَتْ لَكُمُ الدَّارُ الْآخِرَةُ عِندَ اللَّهِ خَالِصَةً
مِّن دُونِ النَّاسِ فَتَمَنَّوُا الْمَوْتَ إِن كُنتُمْ صَادِقِينَ ﴿٩٤﴾
وَلَن يَتَمَنَّوْهُ أَبَدًا بِمَا قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ۗ وَاللَّهُ عَلِيمٌ
بِالظَّالِمِينَ ﴿٩٥﴾ وَلَتَجِدَنَّهُمْ أَحْرَصَ النَّاسِ عَلَىٰ

था। हमने ताकीद की थी कि जो हिदायतें हम दे रहे हैं उनकी सख़्ती के साथ पाबन्दी करो और कान लगाकर सुनो। तुम्हारे बुज़ुर्गों ने कहा कि हमने सुन लिया, मगर मानेंगे नहीं। और उनकी बातिलपरस्ती (असत्यवादिता) का यह हाल था कि उनके दिलों में बछड़ा ही बसा हुआ था। कहो : अगर तुम ईमानवाले हो तो यह अजीब ईमान है, जो ऐसी बुरी हरकतों का तुम्हें हुक्म देता है।

(94) इनसे कहो कि अगर वाक़ई अल्लाह के नज़दीक आख़िरत का घर तमाम इनसानों को छोड़कर सिर्फ़ तुम्हारे ही लिए ख़ास है तब तो तुम्हें चाहिए कि मौत की तमन्ना करो[98], अगर तुम अपने इस ख़याल में सच्चे हो (95) – यक़ीन जानो कि ये कभी इसकी तमन्ना न करेंगे, इसलिए कि अपने हाथों जो कुछ कमाकर इन्होंने वहाँ भेजा है उसका तक़ाज़ा यही है (कि ये वहाँ जाने की तमन्ना न करें), अल्लाह इन ज़ालिमों के हाल को अच्छी तरह जानता है। (96) तुम इन्हें सबसे बढ़कर जीने का लालची (लोभी)[99]

---

98. यह एक तारीज़ (व्यंग्य) और निहायत लतीफ़ तारीज़ है उनकी दुनियापरस्ती पर। जिन लोगों को वाक़ई आख़िरत के घर से कोई लगाव होता है, वे दुनिया पर मरे नहीं जाते और न मौत से डरते हैं, मगर यहूदियों का हाल इसके ख़िलाफ़ था और है।

99. मूल अरबी में 'अला हयातिन' के अलफ़ाज़ आए हैं, जिनका मतलब है– 'किसी-न-किसी तरह की ज़िन्दगी।' यानी इन्हें सिर्फ़ इस दुनिया की जिन्दगी का लालच है, चाहे वह किसी तरह की ज़िन्दगी हो, इज़्ज़त और शराफ़त की हो या रुसवाई और कमीनेपन की।

حَيٰوةٍ ۚ وَمِنَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْا ۚ يَوَدُّ اَحَدُهُمْ لَوْ يُعَمَّرُ
اَلْفَ سَنَةٍ ۚ وَمَا هُوَ بِمُزَحْزِحِهٖ مِنَ الْعَذَابِ اَنْ
يُّعَمَّرَ ؕ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌۢ بِمَا يَعْمَلُوْنَ ﴿٩٦﴾ قُلْ مَنْ كَانَ
عَدُوًّا لِّجِبْرِيْلَ فَاِنَّهٗ نَزَّلَهٗ عَلٰى قَلْبِكَ بِاِذْنِ اللّٰهِ
مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَهُدًى وَّبُشْرٰى لِلْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٩٧﴾

पाओगे, यहाँ तक कि ये इस मामले में मुशरिकों (बहुदेववादियों) से भी बढ़े हुए हैं। इनमें से एक-एक आदमी यह चाहता है कि किसी तरह हज़ार बरस जिए, हालाँकि लम्बी उम्र कभी भी उसे अज़ाब से तो दूर नहीं फेंक सकती। जैसे कुछ आमाल (कर्म) ये कर रहे हैं, अल्लाह तो उन्हें देख ही रहा है।

(97) इनसे कहो कि जो कोई जिबरील से दुश्मनी रखता हो[100] उसे मालूम होना चाहिए कि जिबरील ने अल्लाह ही के हुक्म से यह क़ुरआन तुम्हारे दिल पर उतारा है,[101] जो पहले आई हुई किताबों की तसदीक़ (पुष्टि) और ताईद (समर्थन) करता है[102] और ईमान लानेवालों के लिए हिदायत और कामयाबी की ख़ुशख़बरी बनकर आया है।[103]

---

100. यहूदी सिर्फ़ नबी *(सल्ल.)* को और आप पर ईमान लानेवालों ही को बुरा न कहते थे, बल्कि अल्लाह के पसन्दीदा और चुने हुए फ़रिश्ते ज़िबरील को भी गालियाँ देते थे और कहते थे कि वह हमारा दुश्मन है, वह रहमत का नहीं, अज़ाब का फ़रिश्ता है।

101. यानी इस तरह से तुम्हारी (यानी यहूदियों की) गालियाँ जिबरील पर नहीं, बल्कि अज़ीम और बरतर ख़ुदा की हस्ती पर पड़ती हैं।

102. मतलब यह है कि ये गालियाँ तुम इसी लिए तो देते हो कि जिबरील यह क़ुरआन लेकर आया है, और हाल यह है कि यह क़ुरआन पूरे तौर पर तौरात की ताईद में है। इसलिए तुम्हारी गालियों में तौरात भी हिस्सेदार हुई।

103. इसमें लतीफ़ (सूक्ष्म) इशारा है इस बात की तरफ़ कि नादानो! असल में तुम्हारी सारी नाराज़ी हिदायत और सीधे रास्ते के ख़िलाफ़ है। तुम लड़ रहे हो उस सही रहनुमाई के ख़िलाफ़, जिसे अगर सीधी तरह मान लो तो तुम्हारे ही लिए कामयाबी की ख़ुशख़बरी हो।

مَنْ كَانَ عَدُوًّا لِّلّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَرُسُلِهٖ وَجِبْرِيْلَ
وَمِيْكٰلَ فَاِنَّ اللّٰهَ عَدُوٌّ لِّلْكٰفِرِيْنَ ﴿٩٨﴾ وَلَقَدْ
اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ اٰيٰتٍۭ بَيِّنٰتٍ ۚ وَمَا يَكْفُرُ بِهَآ اِلَّا
الْفٰسِقُوْنَ ﴿٩٩﴾ اَوَكُلَّمَا عٰهَدُوْا عَهْدًا نَّبَذَهٗ فَرِيْقٌ
مِّنْهُمْ ؕ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿١٠٠﴾ وَلَمَّا جَآءَهُمْ
رَسُوْلٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ نَبَذَ
فَرِيْقٌ مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ ۙۗ كِتٰبَ اللّٰهِ وَرَآءَ
ظُهُوْرِهِمْ كَاَنَّهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿١٠١﴾ ۫ وَاتَّبَعُوْا مَا تَتْلُوا

---

(98) (अगर जिबरील से इनकी दुश्मनी की वजह यही है तो कह दो कि) जो अल्लाह और उसके फ़रिश्तों और उसके रसूलों और जिबरील और मीकाईल के दुश्मन हैं, अल्लाह उन इनकार करनेवाले विरोधियों का दुश्मन है।

(99) हमने तुम्हारी तरफ़ ऐसी आयतें उतारी हैं जो साफ़-साफ़ हक़ को ज़ाहिर करनेवाली हैं, और उनकी पैरवी से सिर्फ़ वही लोग इनकार करते हैं जो फ़ासिक़ (नाफ़रमान) हैं। (100) क्या हमेशा ऐसा ही नहीं होता रहा है कि जब उन्होंने कोई अहद (वचन) किया तो उनमें से एक-न-एक गरोह ने उसे ज़रूर ही पीठ पीछे डाल दिया? बल्कि इनमें से ज़्यादातर ऐसे ही हैं, जो सच्चे दिल से ईमान नहीं लाते। (101) और जब इनके पास अल्लाह की तरफ़ से कोई रसूल उस किताब की तसदीक़ (पुष्टि) और ताईद करता हुआ आया, जो इनके पास पहले से मौजूद थी, तो इन अहले-किताब में से एक गरोह ने अल्लाह की किताब को इस तरह पीठ पीछे डाला कि मानो वे कुछ जानते ही नहीं। (102) और लगे उन चीज़ों की पैरवी करने जो

الشَّيٰطِيْنُ عَلٰى مُلْكِ سُلَيْمٰنَ ۚ وَمَا كَفَرَ سُلَيْمٰنُ
وَلٰكِنَّ الشَّيٰطِيْنَ كَفَرُوْا يُعَلِّمُوْنَ النَّاسَ السِّحْرَ ۗ وَمَآ
اُنْزِلَ عَلَى الْمَلَكَيْنِ بِبَابِلَ هَارُوْتَ وَمَارُوْتَ ۭ
وَمَا يُعَلِّمٰنِ مِنْ اَحَدٍ حَتّٰى يَقُوْلَآ اِنَّمَا نَحْنُ فِتْنَةٌ
فَلَا تَكْفُرْ ۭ فَيَتَعَلَّمُوْنَ مِنْهُمَا مَا يُفَرِّقُوْنَ بِهٖ بَيْنَ

सुलैमान की सल्तनत का नाम लेकर शैतान पेश किया करते थे।[104] हालाँकि सुलैमान ने कभी कुफ़्र (अधर्म एवं इनकार) नहीं किया, कुफ़्र करनेवाले तो वे शैतान थे जो लोगों को जादूगरी की तालीम (शिक्षा) देते थे। वे पीछे पड़े उस चीज़ के जो बाबिल में दो फ़रिश्तों, हारूत और मारूत, पर उतारी गई थी, हालाँकि वे (फ़रिश्ते) जब भी किसी को उसकी तालीम देते थे तो पहले साफ़ तौर पर आगाह कर दिया करते थे कि "देख, हम सिर्फ़ एक आज़माइश हैं, तू कुफ़्र (अधर्म) में न पड़।"[105] फिर भी ये लोग उनसे वह चीज़

104. शैतानों से मुराद जिन्न शैतान और इनसानी शैतान दोनों हो सकते हैं और दोनों ही यहाँ मुराद हैं। जब बनी-इसराईल पर अख़लाक़ी और माद्दी (आर्थिक) गिरावट का दौर आया और ग़ुलामी और मुहताजी; रुसवाई और जिहालत; ग़रीबी और पस्ती ने उनके अंदर कोई बुलन्द हौसला और ऊँचा इरादा बाकी न छोड़ा तो उनका ध्यान जादू-टोने, झाड़-फूँक, तिलिस्म, अम्लियात और तावीज़-गंडों की तरफ़ खिंचने लगा। वे ऐसी तदबीरें तलाश करने लगे जिनसे किसी मेहनत और जिद्दोजुह्द के बिना सिर्फ़ फूँकों और मंत्रों के बल पर सारे काम बन जाया करें। उस वक़्त शैतानों ने उनको बहकाना शुरू किया कि सुलैमान *(अलैहि.)* की शानदार हुकूमत और उनकी हैरतअंगेज़ ताक़तें तो सब कुछ चन्द लकीरों और मंत्रों का नतीजा थीं और वे हम तुम्हें बताए देते हैं। इसलिए ये लोग बग़ैर उम्मीद के मिल जानेवाली नेमत समझकर इन चीज़ों पर टूट पड़े और फिर न अल्लाह की किताब से उनको कोई दिलचस्पी रही और न हक़ की तरफ़ बुलानेवाले की आवाज़ उन्होंने सुनी।

105. इस आयत का मतलब क्या है? इस बारे में उलमा ने बहुत-सी बातें कही हैं, मगर जो कुछ मैंने समझा है वह यह है कि जिस ज़माने में बनी-इसराईल की पूरी क़ौम बाबिल में क़ैदी और ग़ुलाम बनी हुई थी, अल्लाह तआला ने दो फ़रिश्तों को इनसानी शक्ल में उनकी आज़माइश के लिए भेजा होगा। जिस तरह हज़रत लूत *(अलैहि.)* की क़ौम के पास फ़रिश्ते ख़ूबसूरत लड़कों की शक्ल में गए थे, उसी तरह इन इसराईलियों के पास वे पीरों और फ़क़ीरों की शक्ल में गए होंगे। वहाँ एक तरफ़ उन्होंने जादूगरी के बाज़ार में अपनी दुकान लगाई होगी और दूसरी तरफ़

الْمَرْءِ وَزَوْجِهٖ ۭ وَمَا ھُمْ بِضَاۗرِّيْنَ بِهٖ مِنْ اَحَدٍ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ وَيَتَعَلَّمُوْنَ مَا يَضُرُّھُمْ وَلَا يَنْفَعُھُمْ ۭ

सीखते थे जिससे शौहर और बीवी में जुदाई डाल दें।[106] ज़ाहिर था कि अल्लाह के हुक्म के बिना वे इस ज़रीए से किसी को भी नुक़सान न पहुँचा सकते थे, मगर इसके बावजूद वे ऐसी चीज़ सीखते थे जो ख़ुद उनके लिए फ़ायदेमन्द नहीं, बल्कि नुक़सानदेह थी और

वे हुज्जत पूरी करने के लिए हरेक को ख़बरदार भी कर देते होंगे कि देखो, हम तुम्हारे लिए आज़माइश की हैसियत रखते हैं, तुम अपनी आख़िरत ख़राब न करो। मगर इसके बावजूद लोग उनकी पेश की हुई अम्लियात (तांत्रिक कार्यों), लकीरों और तावीज़-गंडों पर टूटे पड़ते होंगे।

फ़रिश्तों के इनसानी शक्ल में आकर काम करने पर किसी को हैरत नहीं होनी चाहिए, वे अल्लाह की हुकूमत के कारिन्दे हैं। उन्हें जो ज़िम्मेदारियाँ सुपुर्द की गई हैं उनको पूरा करने में जिस वक़्त जो सूरत अपनाने की ज़रूरत होती है, वे उसे अपना सकते हैं। हमें क्या ख़बर कि इस वक़्त भी हमारे आस-पास कितने फ़रिश्ते इनसानी शक्ल में आकर काम कर जाते होंगे। रहा फ़रिश्तों का एक ऐसी चीज़ सिखाना जो अपने आपमें बुरी थी, तो इसकी मिसाल ऐसी है जैसे पुलिस के बेवर्दी सिपाही किसी घूसख़ोर हाकिम को निशान लगे सिक्के और नोट ले जाकर घूस के तौर पर देते हैं, ताकि उसे ठीक उस वक़्त (रंगे हाथों) पकड़ें जबकि वह जुर्म कर रहा हो और उसके लिए बेगुनाही का बहाना करने की गुंजाइश बाक़ी न रहने दें।

106. मतलब यह है कि इस मंडी में सबसे ज़्यादा जिस चीज़ की माँग थी, वह यह थी कि कोई ऐसा अमल या तावीज़ मिल जाए जिससे एक आदमी दूसरे की बीवी को उससे तोड़कर अपने ऊपर आशिक़ कर ले। अख़लाक़ी गिरावट की यह वह आख़िरी हद थी, जिसमें वे लोग गिरफ़्तार हो चुके थे। पस्त-अख़लाक़ी (नैतिकता की गिरावट) का इससे ज़्यादा नीचा मर्तबा और कोई नहीं हो सकता कि एक कौम के लोगों का सबसे ज़्यादा दिलचस्प काम पराई औरतों से आँख लड़ाना हो जाए और किसी शादी-शुदा औरत को उसके शौहर से तोड़कर अपना बना लेने को वे अपनी सबसे बड़ी जीत समझने लगें।

शौहर-बीवी का ताल्लुक़ हक़ीक़त में इनसानी तहज़ीब (सभ्यता) की जड़ है। औरत और मर्द के ताल्लुक़ के ठीक होने पर पूरी इनसानी तहज़ीब के ठीक होने और उसकी ख़राबी पर पूरी इनसानी तहज़ीब के ख़राब होने का दारोमदार है। इसलिए वह आदमी बदतरीन फ़सादी है जो उस पेड़ की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाता हो जिसके क़ायम रहने पर ख़ुद उसका और पूरी सोसाइटी के क़ायम रहने का दारोमदार है। हदीस में आता है कि नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि इबलीस अपने मरकज़ (सेंटर) से धरती के हर कोने में अपने एजेंट भेजा करता है। फिर वे एजेंट वापस आकर अपनी-अपनी कार्रवाइयाँ सुनाते हैं। कोई कहता है : मैंने फुलाँ फ़ितना पैदा किया है, कोई कहता है कि मैंने फुलाँ बुराई पैदा की; मगर इबलीस हर एक से कहता जाता है कि तुमने

وَلَقَدْ عَلِمُوْا لَمَنِ اشْتَرٰىهُ مَا لَهٗ فِى الْاٰخِرَةِ مِنْ
خَلَاقٍ ؕ وَلَبِئْسَ مَا شَرَوْا بِهٖۤ اَنْفُسَهُمْ ؕ لَوْ كَانُوْا
يَعْلَمُوْنَ ۝١٠٢ وَلَوْ اَنَّهُمْ اٰمَنُوْا وَاتَّقَوْا لَمَثُوْبَةٌ مِّنْ
عِنْدِ اللّٰهِ خَيْرٌ ؕ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ۝١٠٣ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ ع
اٰمَنُوْا لَا تَقُوْلُوْا رَاعِنَا وَقُوْلُوا انْظُرْنَا وَاسْمَعُوْا ؕ

उन्हें ख़ूब मालूम था कि जो इस चीज़ का ख़रीदार बना, उसके लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं। कितना बुरा सामान था जिसके बदले उन्होंने अपनी जानों को बेच डाला काश, उन्हें मालूम होता! (103) अगर वे ईमान और तक़वा (परहेज़गारी) अपनाते तो अल्लाह के पास उसका जो बदला मिलता, वह उनके लिए ज़्यादा बेहतर था। काश, उन्हें ख़बर होती!

(104) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो![107] *'राअिना'* न कहा करो, बल्कि *'उन्ज़ुरना'*

कुछ न किया। फिर एक आता है और बताता है कि मैं एक औरत और उसके शौहर में जुदाई डाल आया हूँ। यह सुनकर इबलीस उसको गले लगा लेता है और कहता है कि तू काम करके आया है। इस हदीस पर विचार करने से यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि बनी-इसराईल की आज़माइश के लिए जो फ़रिश्ते भेजे गए थे, उन्हें क्यों हुक्म दिया गया कि औरत और मर्द के बीच जुदाई डालने का 'अमल' उनके सामने पेश करें। असूल में यही एक ऐसी कसौटी थी, जिससे उनकी अख़लाक़ी गिरावट को ठीक-ठीक नापा जा सकता था।

107. इस रुकू (परिच्छेद) और इसके बादवाले रुकू में नबी *(सल्ल.)* की पैरवी करनेवालों को उन शरारतों से ख़बरदार किया गया है जो इस्लाम और इस्लामी जमाअत के ख़िलाफ़ यहूदियों की तरफ़ से की जा रही थीं, उन शक और शुब्हों के जवाब दिए गए हैं जो ये लोग मुसलमानों के दिलों में पैदा करने की कोशिश करते थे और उन ख़ास-ख़ास पॉइंट्स पर बात की गई है जो मुसलमानों के साथ यहूदियों की बातचीत में छिड़ जाया करते थे। इस मौक़े पर यह बात नज़र में रखनी चाहिए कि जब नबी *(सल्ल.)* मदीना पहुँचे और आस-पास के इलाक़ों में इस्लाम की दावत फैलनी शुरू हुई, तो यहूदी जगह-जगह मुसलमानों को मज़हबी बहसों में उलझाने की कोशिश करते थे। बाल की खाल निकालने की अपनी आदत, शक और सन्देह पैदा करने और सवाल में से सवाल निकालने की बीमारी उन सीधे और सच्चे लोगों को भी लगाना चाहते थे

وَلِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝١٠٤ مَا يَوَدُّ الَّذِيْنَ
كَفَرُوْا مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ وَلَا الْمُشْرِكِيْنَ اَنْ يُّنَزَّلَ
عَلَيْكُمْ مِّنْ خَيْرٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ ۭ وَاللّٰهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ
مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ۝١٠٥ مَا نَنْسَخْ مِنْ

कहो और ध्यान से बात को सुनो[108], ये इनकार करनेवाले तो दर्दनाक अज़ाब के हक़दार हैं। (105) ये लोग, जिन्होंने हक़ के पैग़ाम को क़बूल करने से इनकार कर दिया है, चाहे अहले-किताब में से हों या मुशरिक हों, हरगिज़ यह पसन्द नहीं करते कि तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमपर कोई भलाई, उतरे, मगर अल्लाह जिसको चाहता है अपनी रहमत के लिए चुन लेता है और वह बड़ा फ़ज़्ल (अनुग्रह) करनेवाला है।

और ख़ुद नबी *(सल्ल.)* की मजलिस में आकर फ़रेब और मक्कारी भरी बातें करके अपनी घटिया दरजे की ज़ेहनियत का सुबूत दिया करते थे।

108. यहूदी जब नबी *(सल्ल.)* की मजलिस में आते तो अपने सलाम और कलाम (बातचीत) में हर मुमकिन तरीक़े से अपने दिल का बुखार निकालने की कोशिश करते थे। ऐसे लफ़्ज़ बोलते जिनके कई मतलब हो सकते। ज़ोर से कुछ कहते और मुँह ही मुँह में कुछ और कह देते और ज़ाहिरी अदब-आदाब बरक़रार रखते हुए ख़ुफ़िया तौर पर आपकी तौहीन करने में कोई कसर न उठा रखते थे। क़ुरआन में आगे चलकर इसकी बहुत-सी मिसालें बयान की गई हैं। यहाँ जिस ख़ास लफ़्ज़ के इस्तेमाल से मुसलमानों को रोका गया है, यह एक ऐसा लफ़्ज़ था, जिसके कई मतलब हो सकते थे। जब नबी *(सल्ल.)* की बातचीत के दौरान में यहूदियों को कभी यह कहने की ज़रूरत पेश आती कि ठहरिए, ज़रा हमें यह बात समझ लेने दीजिए, तो वे 'राअिना' कहते थे। इस लफ़्ज़ का ज़ाहिरी मतलब तो यह था कि ज़रा हमारी रिआयत कीजिए या हमारी बात सुन लीजिए, मगर इसमें कई पहलुओं से बुरे मतलब भी निकलते थे, जैसे इब्रानी में इससे मिलता-जुलता एक लफ़्ज़ था, जिसका मतलब था, 'सुन, तू बहरा हो जाए' और ख़ुद अरबी में इसके एक मानी घमण्डी, जाहिल और बेवक़ूफ़ के भी थे और बातचीत में यह ऐसे मौक़े पर भी बोला जाता था जब यह कहना हो कि तुम हमारी सुनो, तो हम तुम्हारी सुनें और ज़रा ज़बान को लचका देकर 'राईना' भी बना लिया जाता था, जिसका मतलब होता 'ऐ हमारे चरवाहे'। इसलिए मुसलमानों को हुक्म दिया गया कि तुम इस लफ़्ज़ के इस्तेमाल से बचो और इसके बदले 'उनज़ुरना' कहा करो। यानी हमारी तरफ़ तवज्जोह कीजिए या ज़रा हमें समझ लेने दीजिए। फिर कहा कि 'ध्यान से बात को सुनो' यानी यहूदियों को तो बार-बार यह कहने की ज़रूरत इसलिए

آيَةٍ اَوْ نُنْسِهَا نَاْتِ بِخَيْرٍ مِّنْهَآ اَوْ مِثْلِهَا ۗ اَلَمْ تَعْلَمْ
اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝١٠٦ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ
اللّٰهَ لَهٗ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۗ وَمَا لَكُمْ مِّنْ
دُوْنِ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ۝١٠٧ اَمْ تُرِيْدُوْنَ اَنْ
تَسْـَٔلُوْا رَسُوْلَكُمْ كَمَا سُئِلَ مُوْسٰى مِنْ قَبْلُ ۗ وَمَنْ

(106) हम अपनी जिस आयत को मंसूख़ (निरस्त) कर देते हैं या भुला देते हैं, उसकी जगह उससे बेहतर लाते हैं या कम-से-कम वैसी ही।[109] (107) क्या तुम जानते नहीं हो कि अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है? क्या तुम्हें ख़बर नहीं है कि ज़मीन और आसमानों की फ़रमाँरवाई (शासन) अल्लाह ही के लिए है और उसके सिवा कोई तुम्हारी देखभाल और मदद करनेवाला नहीं है?

(108) फिर क्या तुम अपने रसूल से उस तरह के सवाल और मुतालबे (माँग) करना

पड़ती है कि वे नबी की बात पर ध्यान नहीं देते और उनकी बातचीत के दौरान वे अपने ही ख़यालों में उलझते रहते हैं, मगर तुम्हें ग़ौर से नबी की बातें सुननी चाहिएँ, ताकि यह कहने की ज़रूरत ही न पड़े।

109. यह एक ख़ास शुब्हे का जवाब है, जो यहूदी मुसलमानों के दिलों में डालने की कोशिश करते थे। उनका एतिराज़ यह था कि अगर पिछली किताबें भी अल्लाह की तरफ़ से आई थीं और यह क़ुरआन भी अल्लाह की तरफ़ से है, तो उनके कुछ हुक्मों की जगह इसमें दूसरे हुक्म क्यों दे दिए गए हैं? एक ही ख़ुदा की तरफ़ से अलग वक़्तों में अलग हुक्म कैसे हो सकते हैं? फिर तुम्हारा क़ुरआन यह दावा करता है कि यहूदी और ईसाई उस तालीम के एक हिस्से को भूल गए, जो उन्हें दी गई थी। आख़िर यह कैसे हो सकता है कि अल्लाह की दी हुई तालीम हो और वह याददाश्तों से मिट जाए। ये सारी बातें वे तहक़ीक़ के मक़सद से नहीं, बल्कि इसलिए करते थे कि मुसलमानों को इस बात में शक व शुब्हा हो जाए कि क़ुरआन अल्लाह की तरफ़ से आया है। इसके जवाब में अल्लाह कहता है कि मैं मालिक हूँ, मेरे इख़्तियार ग़ैर-महदूद (असीमित) हैं, अपने जिस हुक्म को चाहूँ, रद्द कर दूँ और जिस चीज़ को चाहूँ, याददाश्तों से मिटा दूँ। मगर जिस चीज़ को मैं रद्द करता या मिटाता हूँ, उससे बेहतर चीज़ उसकी जगह पर लाता हूँ या कम-से-कम वह अपने मौक़े पर उतनी ही फ़ायदेमन्द और मुनासिब होती है, जितनी पहली चीज़ अपने मौक़े पर थी।

يَّتَبَدَّلِ الْكُفْرَ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِيْلِ ﴿١٠٨﴾
وَدَّ كَثِيْرٌ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ لَوْ يَرُدُّوْنَكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ اِيْمَانِكُمْ
كُفَّارًا ۚۖ حَسَدًا مِّنْ عِنْدِ اَنْفُسِهِمْ مِّنْۢ بَعْدِ مَا
تَبَيَّنَ لَهُمُ الْحَقُّ ۚ فَاعْفُوْا وَاصْفَحُوْا حَتّٰى يَاْتِيَ اللّٰهُ
بِاَمْرِهٖ ۗ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿١٠٩﴾ وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ

चाहते हो, जैसे इससे पहले मूसा से किए जा चुके हैं?[110] हालाँकि जिस आदमी ने ईमान की रविश (नीति) को कुफ़्र की रविश (नीति) से बदल लिया, वह सीधे रास्ते से भटक गया। (109) अहले-किताब में से अकसर लोग यह चाहते हैं कि किसी तरह तुम्हें ईमान से फेरकर फिर कुफ़्र की तरफ़ पलटा ले जाएँ। हालाँकि हक़ उनपर ज़ाहिर हो चुका है, मगर अपने नफ़्स के हसद (ईर्ष्या) की बिना पर तुम्हारे लिए उनकी यह ख़ाहिश है। इसके जवाब में तुम माफ़ी और दरगुज़र से काम लो[111], यहाँ तक कि अल्लाह ख़ुद ही अपना फ़ैसला लागू कर दे। इत्मीनान रखो कि अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (110) नमाज़

---

110. यहूदी बाल की खाल निकाल-निकाल करके तरह-तरह के सवाल मुसलमानों के सामने रखते थे और उन्हें उकसाते थे कि अपने नबी से यह पूछो और यह पूछो और यह पूछो। इसपर अल्लाह मुसलमानों को ख़बरदार कर रहा है कि इस मामले में यहूदियों का रवैया अपनाने से बचो। इसी चीज़ पर नबी *(सल्ल.)* ख़ुद भी मुसलमानों को बार-बार ख़बरदार किया करते थे कि बिला वजह के सवाल से और बाल की खाल निकालने से पिछली उम्मतें तबाह हो चुकी हैं, तुम इससे बचो। जिन सवालों को अल्लाह और उसके रसूल ने नहीं छेड़ा, उनकी खोज में न लगो। बस जो हुक्म तुमको दिया जाता है उसकी पैरवी करो और जिन बातों से मना किया जाता है उनसे रुक जाओ। बेकार की बातें छोड़कर काम की बातों पर ध्यान लगाओ!

111. यानी उनकी दुश्मनी, और जलन को देखकर भड़को नहीं, अपना तवाज़ुन (सन्तुलन) न खो बैठो। इनसे बहसें और मुनाज़रे (शास्त्रार्थ) करने और झगड़ने में अपने क़ीमती वक़्त और अपने वक़ार को बरबाद न करो। सब्र के साथ देखते रहो कि अल्लाह क्या करता है। बेकार की बातों में अपनी ताक़त लगाने के बजाय अल्लाह का ज़िक्र और भलाई के कामों में उन्हें लगाओ कि यह अल्लाह के यहाँ काम आनेवाली चीज़ है, न कि वह।

وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ وَمَا تُقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوْهُ
عِنْدَ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿۱۱۰﴾ وَقَالُوْا
لَنْ يَّدْخُلَ الْجَنَّةَ اِلَّا مَنْ كَانَ هُوْدًا اَوْ نَصٰرٰى ؕ
تِلْكَ اَمَانِيُّهُمْ ؕ قُلْ هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ اِنْ كُنْتُمْ
صٰدِقِيْنَ ﴿۱۱۱﴾ بَلٰى ۚ مَنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ
مُحْسِنٌ فَلَهٗۤ اَجْرُهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ ۪ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا
هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿۱۱۲﴾ وَقَالَتِ الْيَهُوْدُ لَيْسَتِ النَّصٰرٰى عَلٰى ع
شَيْءٍ ۖ وَّقَالَتِ النَّصٰرٰى لَيْسَتِ الْيَهُوْدُ عَلٰى شَيْءٍ ۙ

क़ायम करो और ज़कात दो। तुम अपनी आक़बत (परलोक) के लिए जो भलाई कमाकर आगे भेजोगे, अल्लाह के पास उसे मौजूद पाओगे। जो कुछ तुम करते हो, वह सब अल्लाह की नज़र में है।

(111) उनका कहना है कि कोई आदमी जन्नत में न जाएगा, जब तक कि वह यहूदी न हो या (ईसाइयों के ख़याल के मुताबिक़) ईसाई न हो। ये उनकी तमन्नाएँ हैं।[112] उनसे कहो, अपनी दलील पेश करो, अगर तुम अपने दावे में सच्चे हो। (112) असल में न तुम्हारी कुछ ख़ुसूसियत है, न किसी और की। हक़ यह है कि जो भी अपनी हस्ती को अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में सौंप दे और अमली तौर पर नेक रवैया अपनाए, उसके लिए उसके रब के पास उसका बदला है और ऐसे लोगों के लिए किसी डर या रंज का कोई मौक़ा नहीं।

(113) यहूदी कहते हैं : ईसाइयों के पास कुछ नहीं। ईसाई कहते हैं : यहूदियों के

---

112. यानी असल में ये हैं तो उनके दिल की ख़ाहिशें और तमन्नाएँ, मगर वे इन्हें बयान इस तरह कर रहे हैं कि मानो सचमुच यही कुछ होनेवाला है।

وَّهُمْ يَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ؕ كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ
مِثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فِيْمَا
كَانُوْا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ﴿۱۱۳﴾ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ
اللّٰهِ اَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ وَسَعٰى فِيْ خَرَابِهَا ؕ اُولٰٓئِكَ
مَا كَانَ لَهُمْ اَنْ يَّدْخُلُوْهَآ اِلَّا خَآئِفِيْنَ ؕ۬ لَهُمْ فِي
الدُّنْيَا خِزْيٌ وَّلَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿۱۱۴﴾
وَلِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ ۚ فَاَيْنَمَا تُوَلُّوْا فَثَمَّ وَجْهُ

पास कुछ नहीं — हालाँकि दोनों ही किताब पढ़ते हैं — और इसी तरह के दावे उन लोगों के भी हैं जिनके पास किताब का इल्म नहीं है।[113] ये इख़्तिलाफ़ (मतभेद) जिनमें ये लोग पड़े हुए हैं, इनका फ़ैसला अल्लाह क़ियामत के दिन कर देगा।

(114) और उस आदमी से बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह की इबादतगाहों में उसके नाम की याद से रोके और उनको उजाड़ने पर उतारू हो? ऐसे लोग इस क़ाबिल हैं कि उन इबादतगाहों में क़दम न रखें और अगर वहाँ जाएँ भी तो डरते हुए जाएँ।[114] इनके लिए तो दुनिया में रुसवाई (अपमान) है और आख़िरत में बड़ा अज़ाब।

(115) पूरब और पश्चिम सब अल्लाह के हैं। जिस तरफ़ भी तुम रुख़ करोगे, उसी

113. यानी अरब के मुशरिक (अनेकेश्वरवादी)।

114. यानी बजाय इसके कि इबादतगाहें इस तरह के ज़ालिम लोगों के क़ब्ज़े और इख़्तियार में हों और ये उनके मुतवल्ली (ज़िम्मेदार) हों, होना यह चाहिए कि ख़ुदापरस्त और ख़ुदा से डरनेवाले लोगों के हाथ में इख़्तियार हो और वही इबादतगाहों के ज़िम्मेदार रहें, ताकि ये शरारती लोग अगर वहाँ जाएँ भी, तो उन्हें डर हो कि अगर वे शरारत करेंगे तो सज़ा पाएँगे। — यहाँ एक हल्का-सा इशारा मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के उस ज़ुल्म की तरफ़ भी है कि उन्होंने अपनी क़ौम के उन लोगों को जो इस्लाम ला चुके थे, बैतुल्लाह (अल्लाह के घर) में इबादत करने से रोक दिया था।

اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ وَاسِعٌ عَلِيۡمٌ ﴿۱۱۵﴾ وَقَالُوا اتَّخَذَ
اللّٰهُ وَلَدًا ۙ سُبۡحٰنَهٗ ؕ بَلۡ لَّهٗ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَ
الۡاَرۡضِ ؕ كُلٌّ لَّهٗ قٰنِتُوۡنَ ﴿۱۱۶﴾ بَدِيۡعُ السَّمٰوٰتِ وَ
الۡاَرۡضِ ؕ وَاِذَا قَضٰٓى اَمۡرًا فَاِنَّمَا يَقُوۡلُ لَهٗ كُنۡ
فَيَكُوۡنُ ﴿۱۱۷﴾ وَقَالَ الَّذِيۡنَ لَا يَعۡلَمُوۡنَ لَوۡلَا يُكَلِّمُنَا
اللّٰهُ اَوۡ تَاۡتِيۡنَاۤ اٰيَةٌ ؕ كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيۡنَ مِنۡ قَبۡلِهِمۡ

तरफ़ अल्लाह का रुख़ है।[115] अल्लाह बड़ी समाईवाला (सर्वव्यापी) और सब कुछ जाननेवाला है।[116]

(116) उनका कहना है कि अल्लाह ने किसी को बेटा बनाया है। अल्लाह पाक है इन बातों से। सच्ची बात यह है कि ज़मीन और आसमानों में पाई जानेवाली सभी चीज़ों का वह मालिक है, सबके सब उसी के फ़रमाँबरदार हैं। (117) वह आसमानों और ज़मीन का ईजाद करनेवाला (पहली बार पैदा करनेवाला) है और जिस बात का वह फ़ैसला करता है, उसके लिए बस यह हुक्म देता है कि 'हो जा', और वह हो जाती है।

(118) नादान कहते हैं कि अल्लाह ख़ुद हमसे बात क्यों नहीं करता या कोई निशानी हमारे पास क्यों नहीं आती?[117] ऐसी ही बातें इनसे पहले के लोग भी किया करते थे।

115. यानी अल्लाह न पूरबी है, न पश्चिमी। वह तमाम सम्तों (दिशाओं) और जगहों का मालिक है, मगर ख़ुद किसी सम्त या किसी एक जगह में रहने का पाबन्द नहीं है, इसलिए उसकी इबादत के लिए किसी सम्त या जगह को मुक़र्रर करने के मानी ये नहीं हैं कि अल्लाह वहाँ या उस तरफ़ रहता है और न कोई झगड़ने और बहस करने की बात है कि पहले तुम वहाँ या उस तरफ़ इबादत करते थे, अब तुमने इस जगह या सम्त को क्यों बदल दिया।

116. यानी अल्लाह महदूद (सीमित), तंगदिल, तंगनज़र और तंगदस्त नहीं है, जैसा कि तुम लोगों ने अपने ऊपर गुमान करके उसे समझ रखा है, बल्कि उसकी ख़ुदाई भी हर तरफ़ फैली हुई है और उसकी नज़र और मेहरबानी का दायरा भी फैला हुआ है। और वह यह भी जानता है कि उसका कौन-सा बन्दा कहाँ, किस वक़्त, किस इरादे से उसको याद कर रहा है।

117. उनका मतलब यह था कि ख़ुदा, या तो ख़ुद हमारे सामने आकर कहे कि यह मेरी किताब है और ये मेरे हुक्म हैं, तुम लोग इनकी पैरवी करो, या फिर हमें कोई ऐसी निशानी दिखाई जाए जिससे हमें यक़ीन आ जाए कि मुहम्मद *(सल्ल.)* जो कुछ कह रहे हैं, वह ख़ुदा की तरफ़ से है।

مِّثۡلَ قَوۡلِهِمۡ ؕ تَشَابَهَتۡ قُلُوۡبُهُمۡ ؕ قَدۡ بَيَّنَّا الۡاٰيٰتِ
لِقَوۡمٍ يُّوۡقِنُوۡنَ ﴿۱۱۸﴾ اِنَّاۤ اَرۡسَلۡنٰكَ بِالۡحَقِّ بَشِيۡرًا
وَّنَذِيۡرًا ۙ وَّلَا تُسۡـَٔلُ عَنۡ اَصۡحٰبِ الۡجَحِيۡمِ ﴿۱۱۹﴾ وَلَنۡ
تَرۡضٰى عَنۡكَ الۡيَهُوۡدُ وَلَا النَّصٰرٰى حَتّٰى تَتَّبِعَ
مِلَّتَهُمۡ ؕ قُلۡ اِنَّ هُدَى اللّٰهِ هُوَ الۡهُدٰى ؕ وَلَئِنِ

इन सब (अगले-पिछले गुमराहों) की ज़ेहनियतें (मनोवृत्तियाँ) एक जैसी हैं।[118] यक़ीन लानेवालों के लिए तो हम निशानियाँ साफ़-साफ़ ज़ाहिर कर चुके हैं।[119] (119) (इससे बढ़कर निशानी क्या होगी कि) हमने तुमको इल्मे-हक़ के इल्म के साथ ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला बनाकर भेजा।[120] अब जो लोग जहन्नम से रिश्ता जोड़ चुके हैं, उनकी तरफ़ से तुम ज़िम्मेदार और जवाबदेह नहीं हो।

(120) यहूदी और ईसाई तुमसे हरगिज़ राज़ी न होंगे, जब तक तुम उनके तरीक़े पर न चलने लगो।[121] साफ़ कह दो कि रास्ता बस वही है जो अल्लाह ने बताया है। वरना

118. यानी आज के गुमराहों (पथभ्रष्ट लोगों) ने कोई एतिराज़ और कोई मुतालबा ऐसा नहीं घड़ा है जो इनसे पहले के गुमराह पेश न कर चुके हों। पुराने ज़माने से आज तक गुमराही का एक ही मिज़ाज (स्वभाव) है और वह बार-बार एक ही तरह के एतिराज़ों और सवालों को दोहराती रहती है।

119. यह बात कि अल्लाह ख़ुद आकर हमसे बात क्यों नहीं करता, इतनी बेहूदा थी कि उसका जवाब देने की ज़रूरत न थी। जवाब सिर्फ़ इस बात का दिया गया है कि हमें निशानी क्यों नहीं दिखाई जाती। और जवाब यह है कि निशानियाँ तो अनगिनत मौजूद हैं, मगर जो मानना चाहता ही न हो, उसे आख़िर कौन-सी निशानी दिखाई जा सकती है।

120. यानी दूसरी निशानियों का क्या ज़िक्र, सबसे ज़्यादा नुमायाँ निशानी तो मुहम्मद *(सल्ल.)* की अपनी शख़्सियत (व्यक्तित्व) है। आप *(सल्ल.)* को पैग़म्बर बनाए जाने से पहले के हालात और उस क़ौम और मुल्क के हालात, जिसमें आप पैदा हुए, और वे हालात जिनमें आप पले-बढ़े और चालीस साल तक ज़िन्दगी बसर की और फिर वह शानदार कारनामा जो पैग़म्बर होने के बाद आपने अंजाम दिया, यह सब कुछ एक ऐसी रौशन निशानी है जिसके बाद किसी और निशानी की ज़रूरत नहीं रह जाती।

121. मतलब यह है कि इन लोगों की नाराज़ी का सबब यह तो है नहीं कि वे हक़ (सत्य) के सच्चे तालिब (इच्छुक) हैं, और तुमने उनके सामने हक़ को वाज़ेह (स्पष्ट) करने में कुछ कमी की है। वे तो इसलिए तुमसे नाराज़ हैं कि तुमने अल्लाह की आयतों और उसके दीन (धर्म) के साथ

اتَّبَعْتَ أَهْوَآءَهُم بَعْدَ الَّذِى جَآءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ
مَا لَكَ مِنَ اللّٰهِ مِن وَلِىٍّ وَّلَا نَصِيرٍ ﴿١٢٠﴾ اَلَّذِينَ
اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُونَهٗ حَقَّ تِلَاوَتِهٖ ۭ اُولٰٓئِكَ
يُؤْمِنُونَ بِهٖ ۭ وَمَن يَّكْفُرْ بِهٖ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ
ع الْخٰسِرُونَ ﴿١٢١﴾ يٰبَنِىٓ إِسْرَآءِيلَ اذْكُرُوا نِعْمَتِىَ

अगर उस इल्म के बाद, जो तुम्हारे पास आ चुका है, तुमने उनकी ख़ाहिशों की पैरवी की, तो अल्लाह की पकड़ से बचानेवाला कोई दोस्त और मददगार तुम्हारे लिए नहीं है। (121) जिन लोगों को हमने किताब दी है, वे उसे इस तरह पढ़ते हैं जैसा कि पढ़ने का हक़ है। वे इस (क़ुरआन) पर सच्चे दिल से ईमान लाते हैं[122], और जो इसके साथ इनकार का रवैया अपनाएँ, वही असूल में नुक़सान उठानेवाले हैं।

(122) ऐ बनी-इसराईल![123] याद करो मेरी वह नेमत जो मैंने तुम्हें दी थी, और यह

वह मुनाफ़िकाना (कपटपूर्ण) और बाज़ीगराना तरीक़ा क्यों न अपनाया, ख़ुदा की बन्दगी के परदे में वह ख़ुदपरस्ती क्यों न की, दीन (धर्म) के उसूल और हुक्मों को अपने ख़याल, सोच या अपनी ख़ाहिशों के मुताबिक़ ढालने में उस बहादुरी और दिलेरी से क्यों न काम लिया, वह दिखावा क्यों न किया और गेहूँ दिखाकर जौ बेचने के तरीक़े पर क्यों न चला, जो ख़ुद उनका अपना तरीक़ा है। इसलिए इन्हें राज़ी करने की चिन्ता छोड़ दो, क्योंकि जब तक तुम उनके जैसा रंग-ढंग न अपना लो, दीन (धर्म) के साथ वही मामला न करने लगो, जो ख़ुद ये करते हैं और अक़ीदों और अमल की उन्हीं गुमराहियों में न पड़ जाओ, जिनमें ये पड़े हुए हैं, उस वक़्त तक इनका तुमसे राज़ी होना नामुमकिन है।

122. यह अहले-किताब के नेक लोगों की तरफ़ इशारा है कि ये लोग ईमानदारी और सच्चाई के साथ ख़ुदा की किताब को पढ़ते हैं, इसलिए जो कुछ अल्लाह की किताब के मुताबिक़ हक़ है, उसे हक़ मान लेते हैं

123. यहाँ से तक़रीर (बात) का एक दूसरा सिलसिला शुरू होता है, जिसे समझने के लिए नीचे लिखी बातों को अच्छी तरह दिमाग़ में बिठा लेना चाहिए–

(1) हज़रत नूह के बाद हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* पहले नबी हैं जिनको अल्लाह ने इस्लाम का आलमगीर (विश्वव्यापी) पैग़ाम फैलाने के लिए मुक़र्रर किया था। उन्होंने पहले ख़ुद इराक़ से

मिस्र तक और शाम (सीरिया) व फ़लस्तीन से अरब-रेगिस्तान के मुख़्तलिफ़ हिस्सों तक बरसों भाग-दौड़ करके अल्लाह की बन्दगी और फ़रमाँबरदारी (यानी इस्लाम) की तरफ़ लोगों को बुलाया। फिर अपने इस मिशन को फैलाने के लिए मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में ख़लीफ़ा (नायब) मुक़र्रर किए। पूरबी जार्डन में अपने भतीजे हज़रत लूत *(अलैहि॰)* को, शाम व फ़लस्तीन में अपने बेटे हज़रत इसहाक़ *(अलैहि॰)* को और अरब के भीतरी हिस्से में अपने बड़े बेटे हज़रत इसमाईल *(अलैहि॰)* को मिशन पर लगाया। फिर अल्लाह के हुक्म से मक्का में वह घर तामीर किया जिसका नाम काबा है और अल्लाह ही के हुक्म से वह इस मिशन का मर्कज़ (केन्द्र) ठहराया गया।

(2) हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की नस्ल से दो बड़ी शाखाएँ निकलीं—एक, हज़रत इसमाईल *(अलैहि॰)* की औलाद जो अरब में रही। क़ुरैश और अरब के बाद दूसरे क़बीलों का ताल्लुक़ इसी शाखा से था। और जो अरब क़बीले नस्ली तौर पर हज़रत इसमाईल की औलाद न थे, वे भी चूँकि उनके फैलाए हुए मज़हब से कमोबेश मुतास्सिर थे, इसलिए वे अपना सिलसिला उन्हीं से जोड़ते थे। दूसरे हज़रत इसहाक़ *(अलैहि॰)* की औलाद, जिनमें हज़रत याक़ूब, यूसुफ़, मूसा, दाऊद, सुलैमान, यह्या, ईसा *(अलैहि॰)* और बहुत-से दूसरे नबी (अलैहिस्सलाम) पैदा हुए। जैसा कि पहले बयान किया जा चुका है कि हज़रत याक़ूब *(अलैहि॰)* का नाम चूँकि इसराईल था, इसलिए यह नस्ल बनी-इसराईल के नाम से मशहूर हुई। उनकी तबलीग़ (प्रचार) से जिन दूसरी क़ौमों ने उनका दीन क़बूल किया, वे या तो अपनी पहचान ही को ख़त्म करके उनके अन्दर घुल-मिल गईं या वे नस्ली तौर पर तो उनसे अलग रहे, मगर मज़हबी तौर पर उनके पैरोकार (अनुयायी) रहे। इसी शाखा में जब पस्ती और गिरावट का दौर आया, तो पहले यहूदियत पैदा हुई और फिर ईसाइयत ने जन्म लिया।

(3) हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* का असल काम दुनिया को अल्लाह की फ़रमाँबरदारी की तरफ़ बुलाना और अल्लाह की तरफ़ से आई हुई हिदायत के मुताबिक़ इनसानों की इनफ़िरादी और इजतिमाई ज़िन्दगी के निज़ाम को ठीक करना था। वे ख़ुद अल्लाह के फ़रमाँबरदार थे, उसके दिए हुए इल्म (ज्ञान) की पैरवी करते थे, दुनिया में उस इल्म को फैलाते थे और कोशिश करते थे कि सभी इनसान कायनात (जगत्) के मालिक के फ़रमाँबरदार होकर रहें। यही ख़िदमत थी जिसके लिए वे दुनिया के इमाम और पेशवा बनाए गए थे। उनके बाद यह इमामत (नेतृत्व) का मंसब (पद) उनकी नस्ल की उस शाखा को मिला जो हज़रत इसहाक़ *(अलैहि॰)* और हज़रत याक़ूब *(अलैहि॰)* से चली और 'बनी इसराईल' कहलाई। इसी में नबी पैदा होते रहे, इसी को सीधे रास्ते का इल्म (ज्ञान), दिया गया। इसी के सुपुर्द यह ख़िदमत की गई कि इस सीधे रास्ते की तरफ़ दुनिया की क़ौमों की रहनुमाई करे और यही वह नेमत थी जिसे अल्लाह तआला बार-बार इस नस्ल के लोगों को याद दिला रहा है। इस शाखा ने हज़रत सुलैमान के ज़माने में बैतुल-मक़्दिस को अपना मरकज़ (केन्द्र) बनाया, इसलिए जब तक यह शाखा रहनुमाई के मंसब (पद) पर क़ायम रही, बैतुल-मक़्दिस ही अल्लाह की तरफ़ बुलाने का मरकज़ (केन्द्र) और ख़ुदापरस्तों का क़िबला (उपासना-केन्द्र) रहा।

(4) क़ुरआन की इस सूरा के पिछले दस रुकूओं में अल्लाह ने बनी-इसराईल को ख़िताब(सम्बोधित)

करके उनके जुर्मों की तारीख़ी चार्जशीट (ऐतिहासिक अभियोगपत्र) और उनकी वह मौजूदा हालत जो क़ुरआन के उतरने के वक़्त थी बिना किसी कमी-बेशी के पेश कर दी है और उनको बता दिया है कि तुम हमारी उस नेमत की इन्तिहाई नाक़द्री कर चुके हो जो हमने तुम्हें दी थी। तुमने सिर्फ़ यही नहीं किया कि तुम्हारे ज़िम्मे रहनुमाई का जो काम सुपुर्द किया गया था तुमने उसका हक़ अदा करना छोड़ दिया, बल्कि ख़ुद भी हक़ और सच्चाई से फिर गए, और अब बहुत ही थोड़े भले लोगों के सिवा तुम्हारी पूरी उम्मत (समुदाय) में कोई सलाहियत बाक़ी नहीं रही है।

(5) इसके बाद अब उन्हें बताया जा रहा है कि इमामत (रहनुमाई) इबराहीम *(अलैहि॰)* के ख़ूनी रिश्ते (औलाद होने) की मीरास नहीं है बल्कि यह उस सच्ची बन्दगी और फ़रमाँबरदारी का फल है; जिसमें हमारे उस बन्दे ने अपनी हस्ती को गुम कर दिया था, और इसके हक़दार सिर्फ़ वे लोग हैं, जो इबराहीम के तरीक़े पर ख़ुद चलें और दुनिया को इस तरीक़े पर चलाने की खिदमत अंजाम दें। चूँकि तुम इस तरीक़े से हट गए हो और इस ख़िदमत की सलाहियत पूरी तरह खो चुके हो, इसलिए तुम्हें रहनुमाई के मंसब (पद) से हटाया जाता है।

(6) साथ ही इशारों-इशारों में यह भी बता दिया जाता है कि जो ग़ैर-इसराईली क़ौमें मूसा और ईसा *(अलैहि॰)* के वास्ते से हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* के साथ अपना ताल्लुक़ जोड़ती हैं, वे भी इबराहीमी तरीक़े से हटी हुई हैं, और अरब के मुशरिक भी, जो इबराहीम और इसमाईल *(अलैहि॰)* से अपने ताल्लुक़ पर फ़ख़्र (गर्व) करते हैं, सिर्फ़ नस्ल और नसब के फ़ख़्र को लिए बैठे हैं, वरना इबराहीम व इसमाईल *(अलैहि॰)* के तरीक़े से अब उनको दूर का वास्ता भी नहीं रहा है, इसलिए उनमें से भी कोई इमामत के मंसब का हक़दार नहीं है।

(7) फिर यह बात कही जा रही है कि अब हमने इबराहीम की दूसरी शाखा बनी-इसमाईल में वह रसूल पैदा किया है, जिसके लिए इबराहीम और इसमाईल *(अलैहि॰)* ने दुआ की थी। उसका तरीक़ा वही है, जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और दूसरे तमाम नबियों *(अलैहि॰)* का था कि वह और उसके पैरवी करनेवाले तमाम उन पैग़म्बरों की तसदीक़ (पुष्टि) करते हैं, जो दुनिया में ख़ुदा की तरफ़ से आए हैं और उसी रास्ते की तरफ़ दुनिया को बुलाते हैं जिसकी तरफ़ सभी नबी दावत देते चले आए हैं। इसलिए अब इमामत (नेतृत्व) के मंसब के हक़दार सिर्फ़ वे लोग हैं जो इस रसूल की पैरवी करें।

(8) इमामत के मंसब की तब्दीली का एलान होने के साथ ही क़ुदरती तौर पर क़िबले की तब्दीली का एलान भी होना ज़रूरी था। जब तक बनी-इसराईल की इमामत का दौर था, बैतुल-मक़्दिस दावत का मरकज़ (केन्द्र) रहा और वही हक़ की पैरवी करनेवालों का क़िबला भी रहा। ख़ुद नबी *(सल्ल॰)* और आपकी पैरवी करनेवाले भी उस वक़्त तक बैतुल-मक़्दिस ही को क़िबला बनाए रहे। मगर बनी-इसराईल इस मंसब (पद) से बाज़ाब्ता (विधिवत) हटा दिए गए तो बैतुल-मक़्दिस की मर्कज़ियत (केन्द्रीयता) अपने आप ख़त्म हो गई। इसलिए यह एलान किया गया कि अब वह मक़ाम अल्लाह के दीन (धर्म) का मरकज़ (केन्द्र) है, जहाँ से इस रसूल की दावत सामने आई है। और चूँकि शुरू में इबराहीम *(अलैहि॰)* की दावत का मरकज़ (केन्द्र) भी यही जगह थी, इसलिए अहले-किताब और मुशरिकों, किसी के लिए भी यह तसलीम करने के

الَّتِيْٓ اَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَاَنِّيْ فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ۝١٢٢
وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِيْ نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْئًا وَّلَا
يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ وَّلَا تَنْفَعُهَا شَفَاعَةٌ وَّلَا هُمْ
يُنْصَرُوْنَ ۝١٢٣ وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ بِكَلِمٰتٍ فَاَتَمَّهُنَّ ؕ
قَالَ اِنِّيْ جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ اِمَامًا ؕ قَالَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِيْ ؕ

कि मैंने तुम्हें दुनिया की तमाम क़ौमों पर बड़ाई दी थी। (123) और डरो उस दिन से जब कोई किसी के ज़रा काम न आएगा, न किसी से फ़िदया (जुर्माना) क़बूल किया जाएगा, न कोई सिफ़ारिश ही आदमी को फ़ायदा देगी और न मुजरिमों को कहीं से कोई मदद पहुँच सकेगी।

(124) याद करो कि जब इबराहीम को उसके रब ने कुछ बातों में आज़माया[124] और वह उन सब में पूरा उतर गया, तो उसने कहा, "मैं तुझे सब लोगों का पेशवा बनानेवाला हूँ।" इबराहीम ने कहा, "और क्या मेरी औलाद से भी यही वादा है?" उसने जवाब

सिवा चारा नहीं है कि क़िबला होने का ज़्यादा हक़ काबा ही को पहुँचता है। हठधर्मी की बात दूसरी है कि वे हक़ को हक़ जानते हुए भी एतिराज़ किए चले जाएँ।

(9) मुहम्मद *(सल्ल.)* के माननेवालों को दुनिया का रहनुमा बनाए जाने और काबा की मर्कज़ियत (केन्द्रीयता) का एलान करने के बाद ही अल्लाह तआला ने इस सूरा अल-बक़रा के उन्नीसवें रुकू (आयत 153) से लेकर सूरा के आख़िर तक लगातार इस उम्मत को वे हिदायतें दी हैं, जिनपर उसे अमल करना चाहिए।

124. क़ुरआन में मुख़्तलिफ़ जगहों पर उन तमाम सख़्त आज़माइशों की तफ़सील बयान हुई है, जिनसे गुज़रकर हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने अपने आपको इस बात का अहल (योग्य) साबित किया था कि उन्हें तमाम इनसानों का इमाम व रहनुमा बनाया जाए। जिस वक़्त से हक़ उनपर ज़ाहिर हुआ, उस वक़्त से लेकर मरते दम तक उनकी पूरी ज़िन्दगी सरासर क़ुरबानी ही क़ुरबानी थी। दुनिया में जितनी चीज़ें ऐसी हैं जिनसे इनसान मुहब्बत करता है, उनमें से कोई चीज़ ऐसी न थी, जिसको हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने हक़ की ख़ातिर क़ुरबान न किया हो और दुनिया में जितने ख़तरे ऐसे हैं जिनसे आदमी डरता है उनमें से कोई ख़तरा ऐसा न था जिसे उन्होंने हक़ की राह में न झेला हो।

قَالَ لَا يَنَالُ عَهْدِي الظّٰلِمِيْنَ ۝۱۲۴ وَاِذْ جَعَلْنَا
الْبَيْتَ مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَاَمْنًا ؕ وَاتَّخِذُوْا مِنْ
مَّقَامِ اِبْرٰهٖمَ مُصَلًّى ؕ وَعَهِدْنَاۤ اِلٰۤى اِبْرٰهٖمَ وَ
اِسْمٰعِيْلَ اَنْ طَهِّرَا بَيْتِيَ لِلطَّآئِفِيْنَ وَالْعٰكِفِيْنَ
وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ ۝۱۲۵ وَاِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّ اجْعَلْ

दिया, "मेरा वादा ज़ालिमों के बारे में नहीं है।"[125]

(125) और यह कि हमने इस घर (काबा) को लोगों के लिए मरकज़ (केन्द्र) और अम्न की जगह क़रार दिया था और लोगों को हुक्म दिया था कि इबराहीम जहाँ इबादत के लिए खड़ा होता है उस जगह को मुस्तक़िल (स्थाई रूप से) नमाज़ की जगह बना लो, और इबराहीम और इसमाईल को ताक़ीद की थी कि मेरे इस घर को तवाफ़ (परिक्रमा) और एतिकाफ़ और रुकू और सजदा करनेवालों के लिए पाक रखो।[126]

(126) और यह कि इबराहीम ने दुआ की, "ऐ मेरे रब! इस शहर को अम्न

---

125. यानी यह वादा तुम्हारी औलाद के सिर्फ़ उस हिस्से से ताल्लुक़ रखता है जो नेक और परहेज़गार हो। उनमें से जो ज़ालिम होंगे, उनके लिए यह वादा नहीं है। इससे यह बात ख़ुद ज़ाहिर हो जाती है कि गुमराह यहूदी और मुशरिक बनी-इसमाईल से ताल्लुक़ रखनेवाले लोग इस वादे के तहत आते।

126. पाक रखने से मुराद सिर्फ़ यही नहीं है कि कूड़े-करकट से उसे पाक रखा जाए। ख़ुदा के घर की अस्ल पाकी यह है कि उसमें ख़ुदा के सिवा किसी का नाम बुलन्द न हो। जिसने ख़ुदा के घर में ख़ुदा के सिवा किसी दूसरे को मालिक, माबूद (उपास्य), ज़रूरतें पूरी करनेवाला और फ़रियाद सुननेवाले की हैसियत से पुकारा, उसने हक़ीक़त में उसे गन्दा कर दिया। यह आयत एक निहायत लतीफ़ (सूक्ष्म) तरीक़े से क़ुरैश के मुशरिकों के जुर्म की तरफ़ इशारा कर रही है कि ये ज़ालिम लोग इबराहीम और इसमाईल *(अलैहि०)* के वारिस होने पर फ़ख़्र (गर्व) तो करते हैं, मगर विरासत का हक़ अदा करने के बजाय उलटा उस हक़ को पैरों तले रौंद रहे हैं। इसलिए जो वादा इबराहीम *(अलैहि०)* से किया गया था, उससे जिस तरह बनी-इसराईल अलग हो गए हैं, उसी तरह ये बनी-इसमाईल के मुशरिक भी उस वादे से अलग हैं।

هٰذَا بَلَدًا اٰمِنًا وَّارْزُقْ اَهْلَهٗ مِنَ الثَّمَرٰتِ مَنْ
اٰمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ قَالَ وَمَنْ كَفَرَ
فَاُمَتِّعُهٗ قَلِيْلًا ثُمَّ اَضْطَرُّهٗۤ اِلٰى عَذَابِ النَّارِ ؕ وَ
بِئْسَ الْمَصِيْرُ ۝١٢٦ وَاِذْ يَرْفَعُ اِبْرٰهٖمُ الْقَوَاعِدَ
مِنَ الْبَيْتِ وَاِسْمٰعِيْلُ ؕ رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ؕ اِنَّكَ
اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ۝١٢٧ رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ

(शान्ति) का शहर बना दे और इसके रहनेवालों में से जो अल्लाह और आख़िरत को मानें, उन्हें हर क़िस्म के फलों की रोज़ी दे।" जवाब में उसके रब ने कहा, "और जो न मानेगा, दुनिया की कुछ दिनों की ज़िन्दगी का सामान तो मैं उसे भी दूँगा,[127] मगर आख़िरकार उसे जहन्नम के अज़ाब की तरफ़ घसीटूँगा, और वह बहुत ही बुरा ठिकाना है।"

(127) और याद करो इबराहीम और इसमाईल जब उस घर की दीवारें उठा रहे थे, तो दुआ करते जाते थे, "ऐ हमारे रब! हमसे यह ख़िदमत क़बूल कर ले, तू सबकी सुननेवाला और सब कुछ जाननेवाला है। (128) ऐ रब! हम दोनों को अपना मुस्लिम

127. हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* ने जब रहनुमाई और इमामत के मंसब के बारे में पूछा था, तो कहा गया था कि इस मंसब का वादा तुम्हारी औलाद के सिर्फ़ ईमानवालों और अच्छे लोगों के लिए है, ज़ालिम लोगों के लिए यह वादा नहीं है। इसके बाद जब हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* रोज़ी के लिए दुआ करने लगे, तो पिछले हुक्म को नज़र में रखकर उन्होंने सिर्फ़ अपनी मोमिन औलाद ही के लिए दुआ की, मगर अल्लाह ने जवाब में इस ग़लतफ़हमी को फ़ौरन दूर कर दिया और उन्हें बताया कि दुनिया की नेक रहनुमाई और चीज़ है और दुनिया की रोज़ी दूसरी चीज़। दुनिया की नेक रहनुमाई करने का मंसब सिर्फ़ नेक ईमानवालों को मिलेगा, मगर दुनिया की रोज़ी ख़ुदा को माननेवालों और न माननेवालों सबको दी जाएगी। इससे यह बात अपने आप निकल आई कि अगर किसी को दुनिया की रोज़ी बहुत ज़्यादा मिल रही हो तो वह इस ग़लतफ़हमी में न पड़े कि अल्लाह उससे राज़ी भी है और वही अल्लाह की तरफ़ से दुनिया का पेशवा बनने का हक़दार भी है।

لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ ص وَاَرِنَا
مَنَاسِكَنَا وَتُبْ عَلَيْنَا ج اِنَّكَ اَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿١٢٨﴾
رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِكَ
وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيْهِمْ ط اِنَّكَ اَنْتَ
ع ٨/١٥ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿١٢٩﴾ وَمَنْ يَّرْغَبُ عَنْ مِّلَّةِ اِبْرٰهٖمَ
اِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهٗ ط وَلَقَدِ اصْطَفَيْنٰهُ فِي الدُّنْيَا ج
وَاِنَّهٗ فِي الْاٰخِرَةِ لَمِنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿١٣٠﴾ اِذْ قَالَ لَهٗ

(फ़रमाँबरदार) बना, हमारी नस्ल से एक ऐसी क़ौम उठा जो तेरी मुस्लिम हो, हमें अपनी इबादत के तरीक़े बता और हमारी कोताहियों को माफ़ कर, तू बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। (129) और ऐ रब! इन लोगों में ख़ुद इन्हीं की क़ौम से एक ऐसा रसूल उठाना, जो इन्हें तेरी आयतें सुनाए, इनको किताब और हिकमत (तत्त्वदर्शिता) की तालीम दे और इनकी ज़िन्दगियाँ सँवारे।[128] तू बड़ा ज़बरदस्त (प्रभुत्वशाली) और हिकमतवाला (तत्वदर्शी) है।[129]

(130) अब कौन है, जो इबराहीम के तरीक़े से नफ़रत करे? जिसने ख़ुद अपने-आपको बेवक़ूफ़ी और जिहालत में डाल लिया हो उसके सिवा कौन यह हरकत कर सकता है? इबराहीम तो वह शख़्स है जिसको हमने दुनिया में अपने काम के लिए चुन लिया था और आख़िरत में उसकी गिनती अच्छों में होगी। (131) उसका हाल यह था

---

128. ज़िन्दगी सँवारने में ख़याल, अख़लाक़, आदत, रहन-सहन, तहज़ीब, सियासत हर चीज़ को सँवारना शामिल है।

129. इसका मक़सद यह बताना है कि मुहम्मद *(सल्ल०)* को पैग़म्बर बनाया जाना असल में हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* की दुआ का जवाब है।

رَبُّهٗٓ اَسْلِمْ ۙ قَالَ اَسْلَمْتُ لِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿۱۳۱﴾ وَوَصّٰى
بِهَآ اِبْرٰهٖمُ بَنِيْهِ وَيَعْقُوْبُ ؕ يٰبَنِىَّ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰى
لَكُمُ الدِّيْنَ فَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ﴿۱۳۲﴾ؕ اَمْ
كُنْتُمْ شُهَدَآءَ اِذْ حَضَرَ يَعْقُوْبَ الْمَوْتُ ۙ اِذْ قَالَ
لِبَنِيْهِ مَا تَعْبُدُوْنَ مِنْۢ بَعْدِىْ ؕ قَالُوْا نَعْبُدُ اِلٰهَكَ
وَاِلٰهَ اٰبَآئِكَ اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ اِلٰهًا وَّاحِدًا ۚۖ

कि जब उसके रब ने उससे कहा, "मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हो जा"[130], तो उसने फ़ौरन कहा, "मैं कायनात (जगत्) के मालिक का 'मुस्लिम' (फ़रमाँबरदार) हो गया।" (132) इसी तरीक़े पर चलने की हिदायत उसने अपनी औलाद को की थी और इसी की वसीयत याक़ूब[131] अपनी औलाद को कर गया। उसने कहा था कि "मेरे बच्चो, अल्लाह ने तुम्हारे लिए यही दीन (जीवन-विधान)[132] पसन्द किया है, इसलिए मरते दम तक मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) ही रहना।" (133) फिर क्या तुम उस वक़्त मौजूद थे जब याक़ूब इस दुनिया से रुख़सत (विदा) हो रहा था? उसने मरते वक़्त अपने बेटों से पूछा, "बच्चो! मेरे बाद तुम किसकी बन्दगी करोगे?" उन सबने जवाब दिया, "हम उसी एक ख़ुदा की बन्दगी करेंगे जिसे आपने और आपके बुज़ुर्गों इबराहीम, इसमाईल और इसहाक़ ने ख़ुदा

---

130. मुस्लिम : वह जो ख़ुदा के आगे सर झुका दे, ख़ुदा ही को अपना मालिक, आक़ा, हाकिम और माबूद मान ले, जो अपने आपको पूरे तौर पर ख़ुदा के सुपुर्द कर दे और उस हिदायत के मुताबिक़ दुनिया में ज़िन्दगी बसर करे, जो ख़ुदा की तरफ़ से आई हो। इस अक़ीदे और इस रवैये और तरीक़े इस का नाम 'इस्लाम' है और यही तमाम नबियों का दीन (धर्म) था जो शुरू दिन से दुनिया के मुख़्तलिफ़ मुल्कों और क़ौमों में आए।

131. हज़रत याक़ूब *(अलैहि.)* का ज़िक्र ख़ास तौर पर इसलिए किया कि बनी-इसराईल सीधे उन्हीं की औलाद थे।

132. दीन (धर्म) यानी ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा, निज़ामे-हयात, वह दस्तूर जिसपर इनसान दुनिया में अपनी सोच और अमल की बुनियाद रखे।

وَنَحۡنُ لَهٗ مُسۡلِمُوۡنَ ۝١٣٣ تِلۡكَ اُمَّةٌ قَدۡ خَلَتۡ ۚ لَهَا مَا
كَسَبَتۡ وَلَكُمۡ مَّا كَسَبۡتُمۡ ۚ وَلَا تُسۡـَٔلُوۡنَ عَمَّا كَانُوۡا
يَعۡمَلُوۡنَ ۝١٣٤ وَقَالُوۡا كُوۡنُوۡا هُوۡدًا اَوۡ نَصٰرٰى تَهۡتَدُوۡا ؕ

माना है, और हम उसी के मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हैं।"[133]

(134) वे कुछ लोग थे जो गुज़र गए। जो कुछ उन्होंने कमाया, वह उनके लिए है और जो कुछ तुम कमाओगे, वह तुम्हारे लिए है। तुमसे यह न पूछा जाएगा कि वे क्या करते थे?[134]

(135) यहूदी कहते हैं : यहूदी हो जाओ तो सीधा रास्ता पा लोगे। ईसाई कहते हैं :

---

133. बाइबल में हज़रत याक़ूब *(अलैहि०)* की मौत का हाल बड़ी तफ़सील (विस्तार) से लिखा गया है, मगर हैरत है कि इस वसीयत का कोई ज़िक्र नहीं है, अलबत्ता तलमूद में तफ़सील से जो वसीयत दर्ज हुई है, उसका मज़मून (विषय-वस्तु) क़ुरआन के बयान से बहुत मिलता-जुलता है। उसमें हज़रत् याक़ूब *(अलैहि०)* की ये बातें हमें मिलती हैं—
"ख़ुदावन्द, अपने ख़ुदा की बन्दगी करते रहना, वह तुम्हें उसी तरह तमाम आफ़तों से बचाएगा, जिस तरह तुम्हारे बाप-दादा को बचाता रहा है.....अपने बच्चों को ख़ुदा से मुहब्बत करने और उसके हुक्मों पर चलने की तालीम देना, ताकि उनकी ज़िन्दगी की मुहलत लम्बी हो, क्योंकि ख़ुदा उन लोगों की हिफ़ाज़त करता है, जो हक़ के साथ काम करते हैं और उसकी राहों पर ठीक-ठीक चलते हैं।" जवाब में उनके लड़कों ने कहा, "जो कुछ आपने हिदायत की है, हम उसके मुताबिक़ अमल (कर्म) करेंगे। ख़ुदा हमारे साथ हो।" तब याक़ूब *(अलैहि०)* ने कहा, "अगर तुम ख़ुदा की सीधी राह से दाएँ या बाएँ न मुड़ोगे, तो ख़ुदा ज़रूर तुम्हारे साथ रहेगा।"

134. यानी तुम उनकी औलाद ही सही, मगर हक़ीक़त में तुम्हें उनसे कोई वास्ता नहीं। उनका नाम लेने का तुम्हें क्या हक़ है, जबकि तुम उनके तरीक़े से फिर गए। अल्लाह के यहाँ तुमसे यह नहीं पूछा जाएगा कि तुम्हारे बाप-दादा क्या करते थे, बल्कि यह पूछा जाएगा कि तुम ख़ुद क्या करते रहे।
और यह जो कहा, "जो कुछ उन्होंने कमाया, वह उनके लिए है और जो कुछ तुम कमाओगे, वह तुम्हारे लिए है", यह क़ुरआन का ख़ास अन्दाज़े-बयान है। हम जिस चीज़ को अमल (कर्म) कहते हैं, क़ुरआन अपनी ज़बान में उसे कसब या कमाई कहता है। हमारा हर अमल (कर्म) अपना एक अच्छा या बुरा नतीजा रखता है, जो अल्लाह की ख़ुशी या नाराज़ी की सूरत में सामने आएगा। वही नतीजा हमारी कमाई है। चूँकि क़ुरआन की निगाह में असूल अहमियत उसी नतीजे की है, इसलिए अकसर वह हमारे कामों को अमल के लफ़्ज़ों से बयान करने के बजाए 'कसब' (कमाई) के लफ़्ज़ से बयान करता है।

قُلْ بَلْ مِلَّةَ إِبْرٰهِمَ حَنِيفًا ۖ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِينَ ۝ قُولُوٓا آمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَآ أُنْزِلَ إِلَيْنَا وَمَآ أُنْزِلَ إِلٰىٓ إِبْرٰهِمَ وَإِسْمٰعِيلَ وَإِسْحٰقَ وَيَعْقُوبَ وَالْأَسْبَاطِ وَمَآ أُوتِيَ مُوسٰى وَعِيسٰى وَمَآ أُوتِيَ

ईसाई हो जाओ तो हिदायत मिलेगी। इनसे कहो, "नहीं, बल्कि सबको छोड़कर इबराहीम का तरीक़ा। और इबराहीम मुशरिकों में से न था।"[135] (136) मुसलमानो! कहो, "हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस हिदायत पर जो हमारी तरफ़ उतरी है और जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और याक़ूब की औलाद की तरफ़ उतरी थी और जो

---

135. इस जवाब की बारीकी को समझने के लिए दो बातें निगाह में रखिए—

एक यह कि यहूदी मत और ईसाई मत दोनों बाद की पैदावार हैं। यहूदी मत अपने इस नाम और अपनी मज़हबी ख़ुसूसियतों, रस्मो-रिवाज और क़ायदा-क़ानून के साथ तीसरी-चौथी सदी ईसा पूर्व में पैदा हुआ। ईसाई मत जिन अक़ीदों और ख़ास मज़हबी तसव्वुरात (धारणाओं) के मजमूए (संग्रह) का नाम है, वे तो हज़रत मसीह *(अलैहि०)*, के भी एक मुद्दत के बाद वुजूद में आए हैं। अब यह सवाल ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा होता है कि अगर आदमी के हिदायत पर होने का दारोमदार यहूदी मत या ईसाई मत को तस्लीम करने ही पर है, तो हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* और दूसरे नबी और नेक लोग जो इन मज़हबों की पैदाइश से सदियों पहले पैदा हुए थे और जिनको ख़ुद यहूदी और ईसाई भी हिदायत पाया हुआ मानते हैं, वे आख़िर किस चीज़ से हिदायत पाते थे? ज़ाहिर है कि वह यहूदी मज़हब और ईसाई मज़हब न थे, इसलिए यह बात आप-से-आप वाज़ेह हो गई कि इनसान के सही रास्ते पर होने का दारोमदार उन मज़हबी ख़ुसूसियात पर नहीं है, जिनकी वजह से ये ईसाई और यहूदी वग़ैरा मुख़्तलिफ़ फ़िरक़े बने हैं, बल्कि असल में इसका दारोमदार उस आलमगीर (विश्वव्यापी) सीधे रास्ते के अपनाने पर है, जिससे हर ज़माने में इनसान हिदायत पाते रहे हैं।

दूसरे यह कि ख़ुद यहूदियों और ईसाइयों की अपनी पाक किताबें इस बात पर गवाह हैं कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* एक अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की पूजा, बन्दगी, और फ़रमाँबरदारी के क़ायल न थे और उनका मिशन ही यह था कि ख़ुदाई की सिफ़तों और ख़ुसूसियतों में अल्लाह के साथ किसी और को शरीक न ठहराया जाए। इसलिए यह बिलकुल ज़ाहिर है कि यहूदी मज़हब और ईसाई मज़हब दोनों उस सीधे रास्ते से हट गए हैं, जिसपर हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* चलते थे, क्योंकि इन दोनों में शिर्क की मिलावट हो गई है।

النَّبِيُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۖ
وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ﴿١٣٦﴾ فَاِنْ اٰمَنُوْا بِمِثْلِ مَآ اٰمَنْتُمْ بِهٖ
فَقَدِ اهْتَدَوْا ۚ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا هُمْ فِيْ شِقَاقٍ ۚ
فَسَيَكْفِيْكَهُمُ اللّٰهُ ۚ وَهُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿١٣٧﴾ صِبْغَةَ
اللّٰهِ ۚ وَمَنْ اَحْسَنُ مِنَ اللّٰهِ صِبْغَةً ۫ وَّنَحْنُ لَهٗ

मूसा और ईसा और दूसरे तमाम पैग़म्बरों को उनके रब की तरफ़ से दी गई थी। हम उनके बीच कोई फ़र्क़ नहीं करते[136], और हम अल्लाह के मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हैं।''

(137) फिर अगर वे उसी तरह ईमान लाएँ, जिस तरह तुम लाए हो, तो सीधी राह पर हैं, और अगर इससे मुँह फेरें, तो खुली बात है कि वे हठधर्मी में पड़ गए हैं। इसलिए इत्मीनान रखो कि उनके मुक़ाबले में अल्लाह तुम्हारी मदद के लिए काफ़ी है। वह सब कुछ सुनता और जानता है।

(138) कहो, ''अल्लाह का रंग इख़्तियार करो।[137] उसके रंग से अच्छा और किसका

136. पैग़म्बरों के बीच फ़र्क़ न करने का मतलब यह है कि हम उनके बीच इस लिहाज़ से फ़र्क़ नहीं करते कि फ़ुलाँ हक़ पर था और फ़ुलाँ हक़ पर न था, या यह कि हम फ़ुलाँ को मानते हैं या फ़ुलाँ को नहीं मानते। ज़ाहिर है कि ख़ुदा की तरफ़ से जितने पैग़म्बर भी आए हैं, सब-के-सब एक ही सच्चाई और एक ही सच्ची राह की तरफ़ बुलाने आए हैं, इसलिए जो आदमी सही मानी में हक़ को माननेवाला है, उसके लिए तमाम पैग़म्बरों को हक़ पर माने बग़ैर चारा नहीं। जो लोग किसी पैग़म्बर को मानते और किसी का इनकार करते हैं, वे हक़ीक़त में उस पैग़म्बर की भी पैरवी नहीं करते होते हैं, जिसे वे मानते हैं; क्योंकि उन्होंने असल में उस आलमगीर सीधे और सच्चे रास्ते को नहीं पाया है, जिसे हज़रत मूसा या ईसा *(अलैहि०)* या किसी दूसरे पैग़म्बर ने पेश किया था, बल्कि वे सिर्फ़ बाप-दादा की अन्धी पैरवी में एक पैग़म्बर को मान रहे हैं। उनका असल मज़हब नस्लपरस्ती का तास्सुब (पक्षपात) और बाप-दादा की अन्धी तक़लीद (अनुसरण) है, न कि किसी पैग़म्बर की पैरवी।

137. इस आयत के दो तर्जमे हो सकते हैं। एक यह कि ''हमने अल्लाह का रंग अपना लिया है'', दूसरा यह कि ''अल्लाह का रंग इख़्तियार करो।'' ईसाई मत के ज़ाहिर होने से पहले यहूदियों के यहाँ यह रस्म थी कि जो शख़्स उनके मज़हब में दाख़िल होता उसे ग़ुस्ल देते (यानी स्नान

عٰبِدُوْنَ ۝١٣٨ قُلْ اَتُحَآجُّوْنَنَا فِى اللّٰهِ وَهُوَ رَبُّنَا وَ
رَبُّكُمْ ۚ وَلَنَآ اَعْمَالُنَا وَلَكُمْ اَعْمَالُكُمْ ۚ وَنَحْنُ لَهٗ
مُخْلِصُوْنَ ۝١٣٩ اَمْ تَقُوْلُوْنَ اِنَّ اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ

रंग होगा? और हम उसी की बन्दगी करनेवाले लोग हैं।"

(139) ऐ नबी! इनसे कहो, "क्या तुम अल्लाह के बारे में हमसे झगड़ते हो? हालाँकि वही हमारा रब भी है और तुम्हारा रब भी।[138] हमारे आमाल (कर्म) हमारे लिए हैं, तुम्हारे आमाल (कर्म) तुम्हारे लिए, और हम अल्लाह ही के लिए अपनी बंदगी को ख़ालिस कर चुके हैं।[139] (140) या फिर क्या तुम्हारा कहना यह है कि इबराहीम,

कराते) थे और इस ग़ुस्ल का मतलब उनके यहाँ यह था कि मानो उसके गुनाह धुल गए और उसने ज़िन्दगी का एक नया रंग इख़्तियार कर लिया। यही चीज़ बाद में ईसाइयों ने इख़्तियार कर ली। इसका इसतिलाही (पारिभाषिक) नाम उनके यहाँ 'बपतिस्मा' है और यह बपतिस्मा न सिर्फ़ उन लोगों को दिया जाता है जो उनके मज़हब में दाख़िल होते हैं, बल्कि बच्चों को भी दिया जाता है। इसी के बारे में क़ुरआन कहता है, इस रस्मी बपतिस्मा में क्या रखा है? अल्लाह के रंग में रंग जाओ, जो किसी पानी से नहीं चढ़ता, बल्कि उसकी बन्दगी का तरीक़ा इख़्तियार करने से चढ़ता है।

138. यानी हम यही तो कहते हैं कि अल्लाह ही हम सबका रब है और उसी की फ़रमाँबरदारी होनी चाहिए। क्या यह भी कोई ऐसी बात है कि इसपर तुम हमसे झगड़ा करो? झगड़े का अगर कोई मौक़ा है भी, तो वह हमारे लिए है, न कि तुम्हारे लिए; क्योंकि अल्लाह के सिवा दूसरों को बन्दगी का हक़दार तुम ठहरा रहे हो, न कि हम?

असल अरबी में 'अतुहाज्जून-ना फ़िल्लाहि' है। इसका तर्जमा यह भी हो सकता है कि 'क्या तुम्हारा झगड़ा हमारे साथ अल्लाह की राह में है।' इस सूरत में मतलब यह होगा कि अगर वाक़ई तुम्हारा यह झगड़ा तुम्हारी अपनी ज़ात के लिए नहीं है, बल्कि ख़ुदा के वास्ते का है, तो यह बड़ी आसानी से तय हो सकता है।

139. यानी तुम अपनी करनी के ज़िम्मेदार हो और हम अपनी करनी के। तुमने अगर अपनी बन्दगी को बाँट रखा है और अल्लाह के साथ दूसरों को भी ख़ुदाई में शरीक ठहराकर उनकी पूजा करते और फ़रमाँबरदारी करते हो तो तुम्हें ऐसा करने का इख़्तियार है। इसका अंजाम तुम ख़ुद देख लोगे। हम तुम्हें ज़बरदस्ती इससे रोकना नहीं चाहते। लेकिन हमने अपनी बन्दगी, फ़रमाँबरदारी और इबादत को बिलकुल अल्लाह ही के लिए ख़ालिस कर दिया है। अगर तुम तस्लीम कर लो कि हमें भी ऐसा करने का इख़्तियार है, तो ख़ामख़ाह का यह झगड़ा अपने

وَإِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْأَسْبَاطَ كَانُوْا هُوْدًا أَوْ
نَصٰرٰى ۗ قُلْ ءَأَنْتُمْ أَعْلَمُ أَمِ اللّٰهُ ۗ وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّنْ
كَتَمَ شَهَادَةً عِنْدَهٗ مِنَ اللّٰهِ ۗ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا
تَعْمَلُوْنَ ﴿١٤٠﴾ تِلْكَ أُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ ۚ لَهَا مَا كَسَبَتْ
وَلَكُمْ مَّا كَسَبْتُمْ ۚ وَلَا تُسْـَٔلُوْنَ عَمَّا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿١٤١﴾ ع

इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और याक़ूब की औलाद सब-के-सब यहूदी थे या ईसाई थे? कहो, "तुम ज़्यादा जानते हो या अल्लाह?"[140] उस आदमी से बढ़कर ज़ालिम और कौन होगा, जिसके ज़िम्मे अल्लाह की तरफ़ से एक गवाही हो और वह उसे छुपाए? तुम्हारी हरकतों से अल्लाह बेख़बर तो नहीं है।[141] (141) — वे कुछ लोग थे जो गुज़र चुके। उनकी कमाई उनके लिए थी और तुम्हारी कमाई तुम्हारे लिए। तुमसे उनके आमाल (कर्मों) के बारे में पूछा नहीं जाएगा।"

आप ही ख़त्म हो जाए।

140. यह ख़िताब (सम्बोधन) यहूदियों और ईसाइयों के उन जाहिल लोगों से है जो वाक़ई अपने नज़दीक यह समझते थे कि इतनी क़द्र और बड़ाई रखनेवाले ये नबी सब-के-सब यहूदी या ईसाई थे।

141. यह ख़िताब उनके उलेमा से है, जो ख़ुद भी इस हक़ीक़त से नावाक़िफ़ न थे कि यहूदी मज़हब और ईसाई मज़हब अपनी मौजूदा ख़ुसूसियतों के साथ बहुत बाद में पैदा हुए हैं। मगर इसके बावजूद वे हक़ को अपने ही फ़िरक़ों (सम्प्रदायों) तक महदूद (सीमित) समझते थे और आम लोगों को इस ग़लतफ़हमी में डाले रखते थे कि नबियों के मुद्दतों बाद जो अक़ीदे, जो तरीक़े और जो नए क़ायदे-क़ानून उनके फ़क़ीहों (धर्म-शास्त्रियों) सूफ़ियों और फ़लसफ़ियों ने गढ़े और बनाए, उन्हीं की पैरवी पर इनसान की कामयाबी और निजात (मोक्ष) का दारोमदार है। उन उलमा से जब पूछा जाता था कि अगर यही बात है, तो हज़रत इबराहीम, इसहाक़, याक़ूब वग़ैरा नबी *(अलैहि०)* आख़िर तुम्हारे इन गरोहों में से किससे ताल्लुक़ रखते थे, तो वे इसका जवाब देने से बचते थे, क्योंकि उनका इल्म उन्हें यह कहने की तो इजाज़त न देता था कि इन बुज़ुर्गों का ताल्लुक़ हमारे ही गरोह से था। लेकिन अगर वे साफ़ लफ़्ज़ों में यह मान लेते कि ये नबी न यहूदी थे, न ईसाई तो फिर उनकी दलील ही ख़त्म हो जाती।

سَيَقُولُ السُّفَهَآءُ مِنَ النَّاسِ مَا وَلّٰهُمْ عَنْ
قِبْلَتِهِمُ الَّتِىْ كَانُوْا عَلَيْهَا ۭ قُلْ لِّلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَ
الْمَغْرِبُ ۭ يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿١٤٢﴾
وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا لِّتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ
عَلَى النَّاسِ وَيَكُوْنَ الرَّسُوْلُ عَلَيْكُمْ شَهِيْدًا ۭ وَمَا

(142) नादान लोग ज़रूर कहेंगे : इन्हें क्या हुआ कि पहले ये जिस क़िबले (उपासना-दिशा) की तरफ़ रुख़ करके नमाज़ पढ़ते थे, उससे अचानक फिर गए?[142] ऐ नबी! इनसे कहो, "पूरब और पश्चिम सब अल्लाह के हैं। अल्लाह जिसे चाहता है, सीधी राह दिखा देता है।"[143] (143) और इसी तरह तो हमने तुम (मुसलमानों) को एक 'उम्मते-वसत' (उत्तम समुदाय) बनाया है, ताकि तुम दुनिया के लोगों पर गवाह हो और रसूल तुमपर गवाह हो।[144]

142. नबी *(सल्ल.)* हिजरत के बाद मदीना तैयबा में सोलह या सत्तरह महीने तक बैतुल-मक़्दिस की तरफ़ रुख करके नमाज़ पढ़ते रहे। फिर काबे की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ने का हुक्म आया, जिसकी तफ़सील आगे आती है।

143. यह उन नादानों के एतिराज़ का पहला जवाब है। उनके दिमाग़ तंग थे, नज़र महदूद थी। वे सम्त और जगह के बन्दे बने हुए थे। उनका गुमान यह था कि ख़ुदा किसी ख़ास सम्त में क़ैद है, इसलिए सबसे पहले उनके जाहिलाना एतिराज़ के रद्द में यही कहा गया कि पूरब और पश्चिम सब सम्तें अल्लाह की हैं। किसी सम्त को क़िबला बनाने के मानी ये नहीं हैं कि अल्लाह उसी तरफ़ है। जिन लोगों को अल्लाह ने हिदायत बख़्शी है, वे इस क़िस्म की तंग नज़रियों से बहुत ऊँचे होते हैं और उनके लिए आलमगीर हक़ीक़तों को समझने की राह खुल जाती है। (देखिए : हाशिया नम्बर 115-116)

144. यह इस बात का एलान है कि मुहम्मद *(सल्ल.)* को सारी दुनिया की रहनुमाई और पेशवाई की ज़िम्मेदारी सौंप दी गई है। 'इसी तरह' का इशारा दोनों तरफ़ है : अल्लाह की उस रहनुमाई की तरफ़ भी, जिससे मुहम्मद *(सल्ल.)* की पैरवी क़बूल करनेवालों को सीधी राह मालूम हुई और वे तरक़्क़ी करते-करते इस मरतबे पर पहुँचे कि 'उम्मते-वसत' (उच्च और उत्तम समुदाय) क़रार दिए गए और क़िबले की तब्दीली की तरफ़ भी कि नादान इसे सिर्फ़ एक सम्त से दूसरी दिशा की तरफ़ फिरना समझ रहे हैं; हालाँकि असल में बैतुल-मक़्दिस से काबे की तरफ़ क़िबला की

दिशा का फिरना यह मानी रखता है कि अल्लाह ने बनी-इसराईल को दुनिया की पेशवाई के मंसब से बाज़ाब्ता हटा दिया और मुहम्मद *(सल्ल॰)* की उम्मत को इसपर बिठा दिया।

'उम्मते-वसत' (उच्च और उत्तम समुदाय) लफ़्ज़ के अन्दर इतने ज़्यादा मानी पाए जाते हैं कि किसी दूसरे लफ़्ज़ से इसके तर्जमे का हक़ अदा नहीं किया जा सकता। इससे मुराद एक ऐसा आला और बेहतरीन गरोह है, जो अद्ल और इनसाफ़ और मुनासिब और दरम्यानी राह पर चलनेवाला हो, जो दुनिया की क़ौमों के बीच सद्र की हैसियत रखता हो। जिसका ताल्लुक़ सबके साथ यकसाँ हक़ और सच्चाई का ताल्लुक़ हो और नामुनासिब और नाहक़ ताल्लुक़ किसी से न हो।

फिर यह जो कहा कि तुम्हें 'उम्मते-वसत' इसलिए बनाया गया है कि "तुम लोगों पर गवाह हो और रसूल तुमपर गवाह हो" तो इससे मुराद यह है कि आख़िरत (परलोक) में जब सारे इनसानों का इकट्ठा हिसाब लिया जाएगा, उस वक़्त रसूल हमारे ज़िम्मेदार नुमाइन्दे की हैसियत से तुमपर गवाही देगा कि सही फ़िक्र, अच्छे अमल और इनसाफ़ के निज़ाम (व्यवस्था) की जो तालीम हमने उसे दी थी, वह उसने तुम तक बिना कमी-बेशी के पूरी-की-पूरी पहुँचा दी और अमली तौर पर इसके मुताबिक़ काम करके दिखा दिया। इसके बाद रसूल के क़ायम-मक़ाम (नुमाइन्दे) होने की हैसियत से तुमको आम इनसानों पर गवाह की हैसियत से उठना होगा और यह गवाही देनी होगी कि रसूल ने जो कुछ तुम्हें पहुँचाया था, वह तुमने उन्हें पहुँचाने में और जो कुछ रसूल ने तुम्हें दिखाया था, वह तुमने उन्हें देखाने में अपनी हद तक कोई कोताही नहीं की।

इस तरह किसी शख़्स या गरोह का इस दुनिया में ख़ुदा की तरफ़ से गवाही के मंसब पर मुक़र्रर होना ही हक़ीक़त में उसका इमामत और पेशवाई के मक़ाम पर बिठाया जाना है। इसमें जहाँ बुलन्दी और बड़ाई है, वहीं ज़िम्मेदारी का बहुत बड़ा बोझ भी है। इसके मानी ये हैं कि जिस तरह अल्लाह के रसूल *(सल्ल॰)* इस उम्मत के लिए ख़ुदातरसी, सच्चाई, इनसाफ़ और हक़परस्ती की ज़िन्दा गवाही बने, इसी तरह इस उम्मत को भी तमाम दुनिया के लिए भी ज़िन्दा गवाही बनना चाहिए, यहाँ तक कि उसके क़ौल (कथन) और अमल और बरताव, हर चीज़ को देखकर दुनिया को मालूम हो कि ख़ुदातरसी (ईशपरायणता) इसका नाम है, रास्तरवी (सदाचार) यह है, अदालत (न्याय) इसको कहते हैं और हक़परस्ती (सत्यनिष्ठता) ऐसी होती है। फिर इसके मानी ये भी हैं कि जिस तरह ख़ुदा की हिदायत हम तक पहुँचाने के लिए अल्लाह के रसूल *(सल्ल॰)* की ज़िम्मेदारी बड़ी सख़्त थी, यहाँ तक कि अगर वह इसमें ज़रा-सी कोताही भी करते तो ख़ुदा के यहाँ पकड़े जाते, उसी तरह दुनिया के आम इनसानों तक इस हिदायत को पहुँचाने की निहायत सख़्त ज़िम्मेदारी हमपर आती है। अगर हम ख़ुदा की अदालत में वाक़ई इस बात की गवाही न दे सकें कि हमने तेरी हिदायत, जो तेरे रसूल *(सल्ल॰)* के ज़रीए से हमको पहुँची थी, तेरे बन्दों तक पहुँचा देने में कोई कोताही नहीं की है, तो हम बहुत बुरी तरह पकड़े जाएँगे और पेशवाई का यही फ़ख़्र (गर्व) हमें वहाँ ले डूबेगा। हमारी पेशवाई के दौर में हमारी वाक़ई कोताहियों की वजह से सोच और अमल की जितनी गुमराहियाँ दुनिया में फैली हैं और जितने फ़साद और फ़ितने ख़ुदा की ज़मीन में पैदा हुए हैं इन सबके लिए बुराई के सरदारों और इनसान रूपी शैतानों और जिन्न रूपी शैतानों के साथ-साथ हम भी पकड़े जाएँगे। हम से पूछा जाएगा कि जब दुनिया में बुराई और ज़ुल्म और गुमराही का यह तूफ़ान बरपा था, तो तुम कहाँ मर गए थे?

جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ الَّتِىْ كُنْتَ عَلَيْهَآ اِلَّا لِنَعْلَمَ مَنْ
يَّتَّبِعُ الرَّسُوْلَ مِمَّنْ يَّنْقَلِبُ عَلٰى عَقِبَيْهِ ؕ وَاِنْ
كَانَتْ لَكَبِيْرَةً اِلَّا عَلَى الَّذِيْنَ هَدَى اللّٰهُ ؕ وَمَا كَانَ
اللّٰهُ لِيُضِيْعَ اِيْمَانَكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِالنَّاسِ لَرَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۴۳﴾
قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِى السَّمَآءِ ۚ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ

पहले जिस तरफ़ तुम रुख़ करते थे, उसको तो हमने सिर्फ़ यह देखने के लिए क़िबला मुक़र्रर किया था कि कौन रसूल की पैरवी करता है और कौन उलटा फिर जाता है।[145] यह मामला था तो बड़ा सख़्त, लेकिन उन लोगों के लिए कुछ भी सख़्त साबित न हुआ, जिन्हें अल्लाह की हिदायत हासिल थी। अल्लाह तुम्हारे इस ईमान को हरगिज़ अकारथ न करेगा, यक़ीन जानो कि वह लोगों के लिए निहायत मेहरबान और रहमवाला है।

(144) यह तुम्हारे मुँह का बार-बार आसमान की तरफ़ उठना हम देख रहे हैं। लो,

145. यानी इसका मक़सद यह देखना था कि कौन लोग हैं जो जाहिलियत के तास्सुबात (पक्षपात) और ख़ाक और ख़ून की ग़ुलामी में पड़े हैं और कौन हैं जो इन बन्दिशों से आज़ाद होकर सच्चाइयों को सही समझ पाते हैं। एक तरफ़ अरबवाले अपने वतन और नस्ल के घमण्ड में पड़े हुए थे और अरब के 'काबा' को छोड़कर बाहर के बैतुल-मक़्दिस को क़िबला बनाना उनकी इस क़ौम-परस्ती के बुत पर ऐसी चोट थी जिसे वे बरदाश्त नहीं कर पा रहे थे। दूसरी तरफ़ बनी-इसराईल अपनी नस्लपरस्ती के घमण्ड में फँसे हुए थे और अपने बाप-दादों के क़िबला के सिवा किसी दूसरे क़िबला को बरदाश्त करना उनके लिए मुश्किल था। ज़ाहिर है कि ये बुत जिन लोगों के दिलों में बसे हुए हों, वे उस रास्ते पर कैसे चल सकते थे जिसकी तरफ़ अल्लाह का रसूल उन्हें बुला रहा था। इसलिए अल्लाह ने उन बुतपरस्तों को सच्चे हक़परस्तों से अलग छाँट देने के लिए पहले बैतुल-मक़्दिस को क़िबला मुक़र्रर किया, ताकि जो लोग अरबियत (अरबवालों) के बुत की परस्तिश करते हैं, वे अलग हो जाएँ। फिर इस क़िबले को छोड़कर काबा को क़िबला बनाया ताकि जो इसराईलियत के पुजारी हैं, वे भी अलग हो जाएँ। इस तरह सिर्फ़ वे लोग रसूल के साथ रह गए जो किसी बुत के पुजारी (परस्तार) न थे, सिर्फ़ अल्लाह के पुजारी थे।

قِبْلَةً تَرْضٰىهَا ۪ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ
وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ ؕ وَاِنَّ
الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ

हम उसी क़िबले की तरफ़ तुम्हें फेरे देते हैं जिसे तुम पसन्द करते हो। मस्जिदे-हराम (प्रतिष्ठित मस्जिद काबा) की तरफ़ रुख़ फेर दो। अब जहाँ कहीं तुम हो, उसी (मस्जिदे-हराम) की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ा करो।[146]

ये लोग, जिन्हें किताब दी गई थी, ख़ूब जानते हैं कि (क़िबला बदलने का) यह हुक्म

146. यह है वह असल हुक्म जो क़िबला बदलने के बारे में दिया गया था। यह हुक्म अरबी महीने रजब या शाबान सन् 02 हि॰ में उतरा। इब्ने-साद की रिवायत है कि नबी *(सल्ल॰)* अपने एक सहाबी बशरी-बिन-बराअ-बिन-मारूर के यहाँ दावत पर गए हुए थे, वहाँ ज़ुहर का वक़्त हो गया और आप लोगों को नमाज़ पढ़ाने खड़े हुए। दो रकअतें पढ़ा चुके थे कि तीसरी रकअत में यकायक वह्य के ज़रीए से यह आयत नाज़िल हुई और उसी वक़्त आप और आपकी पैरवी में जमाअत के साथ लोग बैतुल-मक़्दिस से काबा के रुख़ फिर गए। इसके बाद मदीना और उसके चारों तरफ़ इसकी आम मुनादी की गई। बरा-बिन-आज़िब कहते हैं कि एक जगह इस मुनादी की आवाज़ इस हालत में पहुँची कि लोग रुकू में थे। हुक्म सुनते ही सब-के-सब उसी हालत में काबा की तरफ़ मुड़ गए। अनस-बिन-मालिक *(रज़ि॰)* कहते हैं कि क़बीला बनी-सलमा में यह ख़बर दूसरे दिन सुबह की नमाज़ के वक़्त पहुँची। लोग एक रकअत पढ़ चुके थे कि उनके कानों में आवाज़ पड़ी, "ख़बरदार रहो कि क़िबला बदलकर काबे की तरफ़ कर दिया गया।" सुनते ही पूरी जमाअत ने अपना रुख़ बदल दिया।

ख़याल रहे कि बैतुल-मक्दिस मदीने से ठीक उत्तर में है और काबा बिलकुल दक्खिन (दक्षिण) में। जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ते हुए क़िबला बदलने में लाज़िमी तौर पर इमाम को चलकर नमाज़ियों (मुक्तदियों) के पीछे आना पड़ा होगा और नमाज़ियों को सिर्फ़ रुख़ ही न बदलना पड़ा होगा, बल्कि कुछ न कुछ उन्हें भी चलकर अपनी सफ़ें ठीक करनी पड़ी होंगी। इसी लिए कुछ रिवायतों में यही तफ़सील मिलती भी है।

और यह जो फ़रमाया कि "हम तुम्हारे मुँह का बार-बार आसमान की तरफ़ उठना देख रहे हैं" और यह कि "हम उसी क़िबले की तरफ़ तुम्हें फेरे देते हैं, जिसे तुम पसन्द करते हो" इससे साफ़ मालूम होता है कि क़िबला बदलने का हुक्म आने से पहले नबी *(सल्ल॰)* इसके इन्तिज़ार में थे। आप ख़ुद यह महसूस कर रहे थे कि बनी-इसराईल की पेशवाई का दौर ख़त्म हो चुका है। और इसके साथ बैतुल-मक़्दिस की मरकज़ियत (केन्द्रीय हैसियत) भी रुख़सत (ख़त्म) हुई। अब असल इबराहीमी मरकज़ (केन्द्र) की तरफ़ रुख़ करने का वक़्त आ गया है।

मस्जिदे-हराम के मानी हैं हुरमत और इज़्ज़तवाली मस्जिद। इससे मुराद वह इबादतगाह है, जिसके बीच में ख़ाना-काबा वाक़ेअ (स्थित) है। काबा की तरफ़ रुख़ करने का मतलब यह नहीं

رَبِّهِمْ ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا يَعْمَلُوْنَ ﴿۱۴۴﴾ وَلَئِنْ
اَتَيْتَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ بِكُلِّ اٰيَةٍ مَّا تَبِعُوْا
قِبْلَتَكَ ۚ وَمَا اَنْتَ بِتَابِعٍ قِبْلَتَهُمْ ۚ وَمَا بَعْضُهُمْ
بِتَابِعٍ قِبْلَةَ بَعْضٍ ؕ وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ اَهْوَآءَهُمْ مِّنْۢ
بَعْدِ مَا جَآءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ اِنَّكَ اِذًا لَّمِنَ الظّٰلِمِيْنَ ﴿۱۴۵﴾
اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَعْرِفُوْنَهٗ كَمَا يَعْرِفُوْنَ اَبْنَآءَهُمْ ؕ

उनके रब ही की तरफ़ से है और बरहक़ है, मगर इसके बावजूद जो कुछ ये कर रहे हैं, अल्लाह उससे बेख़बर नहीं है। (145) तुम इन अहले-किताब के पास चाहे कोई निशानी ले आओ, मुमकिन नहीं कि ये तुम्हारे क़िबले की पैरवी करने लगें, और न तुम्हारे लिए यह मुमकिन है कि उनके क़िबले की पैरवी करो, और इनमें से कोई गरोह भी दूसरे के क़िबले की पैरवी के लिए तैयार नहीं है, और अगर तुमने उस इल्म के बाद, जो तुम्हारे पास आ चुका है, उनकी ख़ाहिशों की पैरवी की, तो यक़ीनन तुम्हारी गिनती ज़ालिमों में होगी।[147] (146) जिन लोगों को हमने किताब दी है, वे इस जगह को (जिसे क़िबला

है कि आदमी चाहे दुनिया के किसी कोने में हो, उसे बिलकुल नाक की सीध में काबे की तरफ़ रुख़ करना चाहिए। ज़ाहिर है कि ऐसा करना हर वक़्त, हर शख़्स के लिए हर जगह मुश्किल है। इसी लिए काबे की तरफ़ मुँह करने का हुक्म दिया गया है, न कि काबे की सीध में। क़ुरआन की रूह से हम इस बात के लिए ज़रूर पाबन्द हैं कि जहाँ तक मुमकिन हो काबा की सही सम्त मालूम करें, मगर इस बात के पाबन्द नहीं हैं कि ज़रूर बिलकुल ही सही सम्त मालूम कर लें। जिस सम्त के बारे में हमें इमकानी तहक़ीक़ से ज़्यादा गुमान हासिल हो जाए कि यह काबा की सम्त है, उधर नमाज़ पढ़ना यक़ीनी तौर पर सही है और अगर कहीं आदमी के लिए क़िबले की सम्त की तहक़ीक़ मुश्किल हो या वह किसी ऐसी हालत में हो कि क़िबले की तरफ़ अपनी सम्त क़ायम न रख सकता हो (जैसे रेल या कश्ती में) तो जिस तरफ़ उसे क़िबले का गुमान हो या जिस तरफ़ रुख़ करना उसके लिए मुमकिन हो उसी तरफ़ वह नमाज़ पढ़ सकता है। अलबत्ता अगर नमाज़ के बीच में क़िबले की सही सम्त मालूम हो जाए या सही सम्त की तरफ़ नमाज़ पढ़ना मुमकिन हो जाए तो नमाज़ की हालत ही में उस तरफ़ फिर जाना चाहिए।

147. मतलब यह है कि क़िबले के बारे में जो हुज्जत और बहस ये लोग करते हैं, उसका फ़ैसला न तो इस तरह हो सकता है कि दलील से उन्हें मुतमइन कर दिया जाए, क्योंकि ये तास्सुब

وَإِنَّ فَرِيقًا مِّنْهُمْ لَيَكْتُمُونَ الْحَقَّ وَهُمْ يَعْلَمُونَ ۝١٤٦
الْحَقُّ مِن رَّبِّكَ فَلَا تَكُونَنَّ مِنَ الْمُمْتَرِينَ ۝١٤٧ ع
وَلِكُلٍّ وِجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيهَا فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرَاتِ
أَيْنَ مَا تَكُونُوا يَأْتِ بِكُمُ اللَّهُ جَمِيعًا إِنَّ اللَّهَ عَلَىٰ كُلِّ

बनाया गया है) ऐसा पहचानते हैं, जैसा अपनी औलाद को पहचानते हैं[148], मगर इनमें से एक गरोह जानते-बूझते हक़ को छिपा रहा है। (147) यह यक़ीनन एक सच्ची चीज़ है तुम्हारे रब की तरफ़ से, इसलिए इसके बारे में तुम हरगिज़ किसी शक में न पड़ो।

(148) हर एक के लिए एक रुख़ है जिसकी तरफ़ वह मुड़ता है। तो तुम भलाइयों की तरफ़ बढ़ने में तेज़ी दिखाओ।[149] जहाँ भी तुम होगे, अल्लाह तुम्हें पा लेगा। उसकी

(पक्षपात) और हठधर्मी में पड़े हुए हैं, और किसी दलील से भी उस क़िबले को छोड़ नहीं सकते, जिसे ये अपनी गरोहबन्दी के तास्सुबात (पक्षपातों) की वजह से पकड़े हुए हैं। और न इसका फ़ैसला इस तरह हो सकता है कि तुम इनके क़िबले को अपना लो, क्योंकि इनका कोई एक क़िबला नहीं है जिसपर ये सारे गरोह एक राय रखते हों और उसे अपना लेने से क़िबले का झगड़ा चुक जाए। मुख़्तलिफ़ गरोहों के मुख़्तलिफ़ क़िबले हैं। एक का क़िबला अपनाकर बस एक ही गरोह को राज़ी कर सकोगे। दूसरों का झगड़ा ज्यों का त्यों बाक़ी रहेगा। और सबसे बड़ी बात यह है कि पैग़म्बर की हैसियत से तुम्हारा यह काम है ही नहीं कि तुम लोगों को राज़ी करते फिरो और उनसे लेन-देन के तरीक़े पर समझौता किया करो। तुम्हारा काम तो यह है कि जो इल्म हमने तुमको दिया है, सबसे बेपरवाह होकर सिर्फ़ उसी पर सख़्ती के साथ डट जाओ। इससे हटकर किसी को राज़ी करने की फ़िक्र करोगे तो अपनी पैग़म्बरी के मंसब पर ज़ुल्म करोगे और उस नेमत की नाशुक्री करोगे, जो दुनिया का रहनुमा बनाकर हमने तुम्हें बख़्शी है।

148. यह अरब का मुहावरा है, जिस चीज़ को आदमी यक़ीनी तौर पर जानता हो और उसके बारे में किसी तरह का शक और शुब्हा न रखता हो, उसे यूँ कहते हैं कि वह उस चीज़ को ऐसा पहचानता है, जैसा अपनी औलाद को पहचानता है। यानी जिस तरह उसे अपने बच्चों को पहचानने में कोई शक (संदेह) नहीं होता, उसी तरह वह बिना किसी शक के यक़ीनी तौर पर उस चीज़ को भी जानता है। यहूदियों और ईसाइयों के उलमा हक़ीक़त में यह बात अच्छी तरह जानते थे कि काबा को हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* ने तामीर किया था और इसके बरख़िलाफ़ बैतुल-मक़्दिस इसके 1300 साल बाद हज़रत सुलैमान *(अलैहि०)* के हाथों तामीर हुआ और उन्हीं के ज़माने में क़िबला क़रार पाया। इस तारीख़ी वाक़िए में उनके लिए ज़र्रा बराबर किसी शक की गुंजाइश न थी।

149. पहले जुमले और दूसरे जुमले के दर्मियान एक बारीक ख़ला (रिक्तता) है, जिसे सुननेवाला ख़ुद थोड़े-से ग़ौर-फ़िक्र से भर सकता है। मतलब यह है कि नमाज़ जिसे पढ़नी होगी, उसे

شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝ وَمِنْ حَيْثُ خَرَجْتَ فَوَلِّ وَجْهَكَ
شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۖ وَإِنَّهُ لَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ ۖ وَمَا
اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝ وَمِنْ حَيْثُ خَرَجْتَ
فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۖ وَحَيْثُ مَا
كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهُ ۙ لِئَلَّا يَكُوْنَ لِلنَّاسِ
عَلَيْكُمْ حُجَّةٌ ۙ إِلَّا الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مِنْهُمْ ۙ فَلَا
تَخْشَوْهُمْ وَاخْشَوْنِيْ ۙ وَلِأُتِمَّ نِعْمَتِيْ عَلَيْكُمْ وَلَعَلَّكُمْ

कुदरत से कोई चीज़ बाहर नहीं।

(149) तुम्हारा गुज़र जिस जगह से भी हो, वहीं से अपना रुख़ (नमाज़ के वक़्त) मस्जिदे-हराम (काबा) की तरफ़ फेर दो, क्योंकि यह तुम्हारे रब का बिलकुल बरहक़ फ़ैसला है और अल्लाह तुम लोगों के आमाल (कर्मों) से बेख़बर नहीं है। (150) और जहाँ से भी होकर तुम्हारा गुज़र हो तुम अपना रुख़ मस्जिदे-हराम (काबा) ही की तरफ़ फ़ेरा करो, और जहाँ भी तुम हो, उसी की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ो, ताकि लोगों को तुम्हारे ख़िलाफ़ झगड़ने की कोई दलील न मिले।[150] — हाँ, उनमें से जो ज़ालिम हैं, वे तो कभी चुप न होंगे। तो उनसे तुम न डरो, बल्कि मुझसे डरो — और इसलिए कि मैं तुमपर अपनी नेमत पूरी कर दूँ।[151] और इस उम्मीद[152] पर कि मेरे इस हुक्म पर चलने से तुम

बहरहाल किसी-न-किसी सम्त की तरफ़ तो रुख़ करना ही होगा, मगर असल चीज़ वह रुख़ नहीं है, जिस तरफ़ तुम मुड़ते हो, बल्कि असल चीज़ वे 'भलाइयाँ' हैं जिन्हें हासिल करने के लिए तुम नमाज़ पढ़ते हो। इसलिए सम्त और जगह की बहस में पड़ने के बजाय तुम्हें फ़िक्र भलाइयों के हासिल करने ही की होनी चाहिए।

150. यानी हमारे इस हुक्म की पूरी पाबन्दी करो। कभी ऐसा न हो कि तुममें से कोई आदमी तय की हुई सम्त के सिवा किसी दूसरी सम्त की तरफ़ नमाज़ पढ़ते देखा जाए। वरना तुम्हारे दुश्मनों को तुमपर यह एतिराज़ करने का मौक़ा मिल जाएगा कि क्या ख़ूब उम्मते-वसत (उत्तम समुदाय) है, कैसे अच्छे हक़परस्ती के गवाह बने हैं, जो यह भी कहते जाते हैं कि यह हुक्म हमारे रब की तरफ़ से आया है और फिर उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी भी किए जाते हैं।

تَهْتَدُوْنَ ﴿۱۵۰﴾ كَمَآ اَرْسَلْنَا فِيْكُمْ رَسُوْلًا مِّنْكُمْ يَتْلُوْا

عَلَيْكُمْ اٰيٰتِنَا وَيُزَكِّيْكُمْ وَيُعَلِّمُكُمُ الْكِتٰبَ وَ

الْحِكْمَةَ وَيُعَلِّمُكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ﴿۱۵۱﴾

فَاذْكُرُوْنِيْٓ اَذْكُرْكُمْ وَاشْكُرُوْا لِيْ وَلَا تَكْفُرُوْنِ ﴿۱۵۲﴾ ع ۱۸ ۵

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اسْتَعِيْنُوْا بِالصَّبْرِ وَالصَّلٰوةِ ۭ اِنَّ

उसी तरह कामयाबी का रास्ता पाओगे, (151) जिस तरह (तुम्हें इस चीज़ से कामयाबी नसीब हुई कि) मैंने तुम्हारे बीच ख़ुद तुम में से एक रसूल भेजा, जो तुम्हें हमारी आयतें सुनाता है, तुम्हारी ज़िन्दगियों को सँवारता है, तुम्हें किताब और हिकमत (तत्वदर्शिता) की तालीम देता है, और तुम्हें वे बातें सिखाता है जो तुम न जानते थे। (152) इसलिए तुम मुझे याद रखो, मैं तुम्हें याद रखूँगा, और मेरा शुक्र अदा करो, नाशुक्री न करो।

(153) ऐ लोगो[153] जो ईमान लाए हो, सब्र और नमाज़ से मदद लो। अल्लाह सब्र

---

151. नेमत से मुराद वही इमामत (नेतृत्व) और पेशवाई की नेमत है, जो बनी-इसराईल से छीन करके उस उम्मत (समुदाय) को दे दी गई थी। दुनिया में एक उम्मत के सीधे रास्ते पर चलने का यह सबसे बड़ा फल है कि वह अल्लाह के हुक्म से दुनिया की क़ौमों की रहनुमा व पेशवा बनाई जाए और सारे इनसानों को ख़ुदापरस्ती और नेकी के रास्ते पर चलाने की ख़िदमत उसके सुपुर्द की जाए। यह मंसब जिस उम्मत को दिया गया, हक़ीक़त में उसपर अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल और इनाम को मुकम्मल कर दिया। अल्लाह तआला यहाँ यह फ़रमा रहा है कि क़िबला बदलने का यह हुक्म असल में इस मंसब पर तुम्हें बिठाए जाने का निशान (प्रतीक) है। तुम्हें इसलिए भी हमारे इस हुक्म की पैरवी करनी चाहिए कि नाशुक्री और नाफ़रमानी करने से कहीं यह मंसब तुमसे छीन न लिया जाए। इसकी पैरवी करोगे तो यह नेमत तुमपर मुकम्मल कर दी जाएगी।

152. यानी इस हुक्म की पैरवी करते हुए यह उम्मीद रखो। बयान करने का यह शाहाना अन्दाज़ है। बादशाह का अपनी बेनियाज़ी (निस्पृहता) की शान के साथ किसी नौकर से यह कह देना कि हमारी तरफ़ से फ़ुलाँ इनाम और मेहरबानी की उम्मीद रखो, इस बात के लिए बिलकुल काफ़ी होता है कि वह नौकर अपने घर में ख़ुशी का जश्न मनाए, उसे मुबारकबादियाँ दी जाने लगें।

153. इमामत (नेतृत्व) के मंसब पर मुक़र्रर करने के बाद, अब इस उम्मत (समुदाय) को ज़रूरी हिदायतें दी जा रही हैं। मगर तमाम दूसरी बातों से पहले उन्हें जिस बात पर ख़बरदार किया जा

اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٥٣﴾ وَلَا تَقُوْلُوْا لِمَنْ يُّقْتَلُ فِيْ سَبِيْلِ
اللّٰهِ اَمْوَاتٌ ؕ بَلْ اَحْيَآءٌ وَّلٰكِنْ لَّا تَشْعُرُوْنَ ﴿١٥٤﴾ وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ
بِشَیْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَالْجُوْعِ وَنَقْصٍ مِّنَ الْاَمْوَالِ وَ
الْاَنْفُسِ وَالثَّمَرٰتِ ؕ وَبَشِّرِ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٥٥﴾ الَّذِيْنَ اِذَاۤ

करनेवालों के साथ है।[154] (154) और जो लोग अल्लाह की राह में मारे जाएँ, उन्हें मुर्दा न कहो, ऐसे लोग तो हक़ीक़त में ज़िन्दा हैं, मगर तुम्हें उनकी ज़िन्दगी का शऊर नहीं होता।[155] (155, 156) और हम ज़रूर तुम्हें ख़ौफ़-व-ख़तर, डर, भूख, जान व माल के नुक़सान और आमदनियों के घाटे में डालकर तुम्हारी आज़माइश करेंगे। इन हालात में जो

रहा है, वह यह है कि यह कोई फूलों का बिस्तर नहीं है, जिसपर आप लोग लिटाए जा रहे हों। यह तो एक बहुत बड़ी और ख़तरों से भरी हुई ख़िदमत है, जिसका बोझ उठाने के साथ ही तुमपर हर क़िस्म की मुसीबतों की बारिश होगी, सख़्त आज़माइशों में डाले जाओगे, तरह-तरह के नुक़सान उठाने पड़ेंगे और जब सब्रो-सबात (धैर्य एंव स्थिरता) और अज़्मो-इस्तिक़लाल (संकल्प एवं दृढ़ता) के साथ इन तमाम मुश्किलों का मुक़ाबला करते हुए ख़ुदा की राह में बढ़े चले जाओगे, तब तुमपर मेहरबानियों की बारिश होगी।

154. यानी इस भारी ख़िदमत का बोझ उठाने के लिए जिस ताक़त की ज़रूरत है, वह तुम्हें दो चीज़ों से हासिल होगी—एक यह कि सब्र (धैर्य) की सिफ़त अपने अन्दर परवान चढ़ाओ, दूसरे यह कि नमाज़ के अमल से अपने आपको मज़बूत करो। आगे चलकर बहुत-सी जगहों पर इस बात की तशरीह (व्याख्या) मिलेगी कि 'सब्र' एक ऐसा नाम है जो बहुत-सी अहमतरीन अख़लाक़ी सिफ़तों (गुणों) को अपने अन्दर समेटे हुए है और हक़ीक़त में यह कामयाबी की वह कुंजी है, जिसके बिना कोई आदमी किसी मक़सद में भी कामयाब नहीं हो सकता। इसी तरह आगे चलकर नमाज़ के बारे में भी तफ़सील से मालूम होगा कि वह किस-किस तरह ईमानवाले लोगों और ईमानवालों की जमाअत को इस बड़े काम के लिए तैयार करती है।

155. मौत का लफ़्ज़ और उसका तसव्वुर इनसान के ज़ेहन पर एक हिम्मत तोड़नेवाला असर डालता है। इसलिए इस बात से मना किया गया कि अल्लाह के रास्ते में शहीद होनेवालों को मुर्दा कहा जाए, क्योंकि इससे जमाअत के लोगों में जिहाद के जज़्बे और जान निछावर करने की रूह के ठंडा पड़ जाने का अन्देशा है। इसके बजाय हिदायत की गई कि ईमानवाले अपने ज़ेहन में यह तसव्वुर जमाए रखें कि जो शख़्स ख़ुदा की राह में जान देता है, वह हक़ीक़त में हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी पाता है। यह तसव्वुर हक़ीक़त के मुताबिक़ भी है और इससे बहादुरी की रूह भी ताज़ा होती और ताज़ा रहती है।

اَصَابَتْهُمْ مُّصِيْبَةٌ ۙ قَالُوْٓا اِنَّا لِلّٰهِ وَاِنَّآ اِلَيْهِ
رٰجِعُوْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ عَلَيْهِمْ صَلَوٰتٌ مِّنْ رَّبِّهِمْ وَ
رَحْمَةٌ ۫ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُهْتَدُوْنَ ۝ اِنَّ الصَّفَا وَ
الْمَرْوَةَ مِنْ شَعَآئِرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنْ حَجَّ الْبَيْتَ اَوِ اعْتَمَرَ
فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ اَنْ يَّطَّوَّفَ بِهِمَا ؕ وَمَنْ تَطَوَّعَ خَيْرًا ۙ

लोग सब्र से काम लें और जब कोई मुसीबत पड़े तो कहें कि "हम अल्लाह ही के हैं और अल्लाह ही की तरफ़ हमें पलटकर जाना है"[156], उन्हें ख़ुशख़बरी दे दो। (157) उनपर उनके रब की तरफ़ से बड़ी इनायतें होंगी, उसकी रहमत (दयालुता) उनपर साया करेगी और ऐसे ही लोग सीधे रास्ते पर चलनेवाले हैं।

(158) यक़ीनन सफ़ा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं। लिहाज़ा जो शख़्स अल्लाह के घर का हज या उमरा करे[157] उसके लिए कोई गुनाह की बात नहीं कि वह इन दोनों पहाड़ियों के बीच सई (तेज़ी से फेरा) कर ले[158] और जो अपनी ख़ुशी और

156. कहने से मुराद सिर्फ़ ज़बान से ये बोल अदा कर देना नहीं है, बल्कि दिल से इस बात का क़ायल होना है कि "हम अल्लाह ही के हैं" इसलिए अल्लाह की राह में हमारी जो चीज़ भी क़ुरबान हुई, वह मानो ठीक अपनी जगह ख़र्च हुई, जिसकी चीज़ थी उसी के काम आ गई और यह कि "अल्लाह ही की तरफ़ हमें पलटना है," यानी बहरहाल हमेशा इस दुनिया में रहना नहीं है। आख़िरकार, देर या सवेर, जाना ख़ुदा ही के पास है। इसलिए क्यों न उसकी राह में जान लड़ाकर उसके सामने हाज़िर हों। यह इससे लाख दर्जा बेहतर है कि हम अपने नफ़्स की परवरिश में लगे रहें और इसी हालत में अपनी मौत ही के वक़्त पर किसी बीमारी या हादसे (दुर्घटना) के शिकार हो जाएँ।

157. ज़िलहिज्जा की मुक़र्रर तारीख़ों में काबा की जो ज़ियारत (दर्शन) की जाती है, उसका नाम 'हज' है और इन तारीख़ों से हटकर दूसरे किसी ज़माने में जो ज़ियारत की जाए, वह 'उमरा' है।

158. सफ़ा और मरवा मस्जिदे-हराम के पास दो पहाड़ियाँ हैं, जिनके बीच में दौड़ना उन तरीक़ों में था, जो अल्लाह ने हज के लिए हज़रत इबराहीम को सिखाए थे। बाद में जब मक्का और आस-पास के सभी इलाक़ों में मुशरिकाना जाहिलियत (बहुदेववादी अज्ञानता) फैल गई, तो सफ़ा पर 'इसाफ़' और मरवा पर 'नाइला' के स्थान बना लिए गए और उनके चारों तरफ़ तवाफ़

فَاِنَّ اللّٰهَ شَاكِرٌ عَلِيْمٌ ﴿١٥٨﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْتُمُوْنَ مَا
اَنْزَلْنَا مِنَ الْبَيِّنٰتِ وَالْهُدٰى مِنْۢ بَعْدِ مَا بَيَّنّٰهُ
لِلنَّاسِ فِى الْكِتٰبِ ۙ اُولٰٓئِكَ يَلْعَنُهُمُ اللّٰهُ وَيَلْعَنُهُمُ
اللّٰعِنُوْنَ ﴿١٥٩﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا وَاَصْلَحُوْا وَبَيَّنُوْا

मरज़ी से कोई भलाई का काम करेगा[159], अल्लाह को उसका इल्म है और वह उसकी क़द्र करनेवाला है।

(159) जो लोग हमारी उतारी हुई रौशन तालीमात (खुली शिक्षाओं) और हिदायतों को छिपाते हैं, हालाँकि हम उन्हें सारे इनसानों की रहनुमाई के लिए अपनी किताब में बयान कर चुके हैं, यक़ीन जानो कि अल्लाह भी उनपर लानत करता है और सभी लानतवाले भी उनपर लानत करते हैं।[160] (160) अलबत्ता जो इस रवैये को छोड़ दें और

(परिक्रमा) होने लगा। फिर जब नबी *(सल्ल.)* के ज़रीए से इस्लाम की रौशनी अरबवालों तक पहुँची, तो मुसलमानों के दिलों में यह सवाल खटकने लगा कि क्या सफ़ा और मरवा की सई हज के असली तरीक़ों में से है या सिर्फ़ शिर्क के ज़माने की पैदावार है और यह कि इस सई से कहीं हम एक मुशरिकाना काम करनेवाले तो नहीं हो जाएँगे। साथ ही हज़रत आइशा *(रज़ि.)* की रिवायत से मालूम होता है कि मदीनावालों के दिलों में पहले ही से सफ़ा और मरवा के बीच सई के बारे में कराहत मौजूद थी, क्योंकि वे 'मनात' को माननेवाले थे और इसाफ़ और नाइला को नहीं मानते थे। इन्हीं वजहों से ज़रूरी हुआ कि मस्जिदे-हराम को क़िबला मुक़र्रर करने के मौक़े पर उन ग़लतफ़हमियों को दूर कर दिया जाए जो सफ़ा और मरवा के बारे में पाई जाती थीं और लोगों को बता दिया जाए कि इन दोनों जगहों के बीच सई करना हज के असली तरीक़ों में से है और यह कि इन मक़ामों (स्थानों) का मुक़द्दस (पवित्र एवं पुनीत) होना ख़ुदा की तरफ़ से है, न कि जाहिलियत के ज़माने के लोगों का मनगढ़त।

159. यानी बेहतर तो यह है कि यह काम दिल की लगन के साथ करो, वरना हुक्म को पूरा करने के लिए तो करना ही होगा।

160. यहूदी उलमा का सबसे बड़ा क़ुसूर यह था कि उन्होंने अल्लाह की किताब के इल्म को फैलाने के बजाए उसको रिब्बियों और मज़हबी पेशावरों के एक महदूद (सीमित) तबक़ों में मुक़ैयद (बंद) कर रखा था और आम लोग तो दरकिनार ख़ुद यहूदी अवाम तक को इसकी हवा तक न लगने देते थे। फिर जब आम जिहालत (सामान्य अज्ञानता) की वजह से उनके अन्दर गुमराहियाँ फैलीं, तो उनके उलमा ने, न सिर्फ़ यह कि इस्लाह की कोई कोशिश नहीं की, बल्कि वे आम

فَأُولَٰٓئِكَ أَتُوبُ عَلَيْهِمْ ۚ وَأَنَا ٱلتَّوَّابُ ٱلرَّحِيمُ ﴿١٦٠﴾
إِنَّ ٱلَّذِينَ كَفَرُوا۟ وَمَاتُوا۟ وَهُمْ كُفَّارٌ أُو۟لَٰٓئِكَ عَلَيْهِمْ

अपने रवैये को सुधार लें और जो कुछ छिपाते थे उसे बयान करने लगें, तो उनको मैं माफ़ कर दूँगा, और मैं बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला हूँ।

(161) जिन लोगों ने कुफ़्र (इनकार) का रवैया[161] अपनाया और कुफ़्र की हालत ही

लोगों में अपनी मक़बूलियत (लोकप्रियता) को बनाए रखने के लिए हर उस गुमराही और बिदअत को, जिसका रिवाज आम हो जाता, अपने क़ौलो-अमल (कथनी और करनी) से या अपनी चुप्पी से उलटे जाइज़ होने की सनद देने लगे। इसी से बचने की ताक़ीद मुसलमानों को की जा रही है। दुनिया की हिदायत का काम जिस उम्मत के सुपुर्द किया जाए, उसका फ़र्ज़ यह है कि उस हिदायत को ज़्यादा-से-ज़्यादा फैलाए, न यह कि कंजूस के माल की तरह उसे छिपा रखे।

161. 'कुफ़्र' के असली मानी 'छिपाने' के हैं। इसी से इनकार का मफ़हूम (भाव) पैदा हुआ और यह लफ़्ज़ 'ईमान' के मुक़ाबले में बोला जाने लगा। ईमान के मानी हैं मानना, क़बूल करना, तस्लीम कर लेना, इसके बरख़िलाफ़ कुफ़्र के मानी हैं न मानना, रद्द कर देना, इनकार करना। क़ुरआन के मुताबिक़ कुफ़्र के रवैये की कई शक्लें हैं। एक यह कि इनसान सिरे से ख़ुदा ही को न माने या उसके इक़्तिदारे-आला (सम्प्रभुत्व) को तस्लीम न करे और उसको अपना और सारे (जगत्) का मालिक और माबूद (पूज्य) मानने से इनकार कर दे या उसे अकेला मालिक और माबूद न माने। दूसरे यह कि अल्लाह को तो माने, मगर उसके हुक्मों और उसकी हिदायतों को इल्म और क़ानून का वाहिद (एक मात्र) सरचश्मा मानने से इनकार कर दे।

तीसरे यह कि उसूली तौर पर इस बात को भी मान ले कि उसे अल्लाह ही की हिदायत पर चलना चाहिए, मगर अल्लाह अपनी हिदायतों और अपने हुक्मों को पहुँचाने के लिए जिन पैग़म्बरों को ज़रीआ बनाता है, उन्हें तस्लीम न करे।

चौथे यह कि पैग़म्बरों के दरमियान फ़र्क़ करे और अपनी पसन्द या अपने तास्सुबात (पक्षपातों) की वजह से उनमें से किसी को माने और किसी को न माने।

पाँचवें यह कि पैग़म्बरों ने ख़ुदा की तरफ़ से अक़ीदों, अख़लाक़ और ज़िन्दगी के क़ानूनों के बारे में जो तालीम दी हैं, उनको या उनमें से किसी चीज़ को क़बूल न करे।

छठे यह कि उसूली तौर पर तो इन सब चीज़ों को मान ले मगर अमली तौर पर अल्लाह के हुक्मों की जान-बूझकर नाफ़रमानी करे और इस नाफ़रमानी पर अड़ा भी रहे और दुनिया की ज़िन्दगी में अपने रवैये की नींव फ़रमाँबरदारी पर नहीं, बल्कि नाफ़रमानी ही पर रखे।

सोचने और अमल करने के ये सभी मुख़्तलिफ़ (विभिन्न) अन्दाज़ अल्लाह के मुक़ाबले में

لَعْنَةُ اللّٰهِ وَالْمَلٰٓئِكَةِ وَالنَّاسِ اَجْمَعِيْنَ ﴿١٦١﴾ خٰلِدِيْنَ
فِيْهَا ۚ لَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنْظَرُوْنَ ﴿١٦٢﴾
وَاِلٰهُكُمْ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الرَّحْمٰنُ
الرَّحِيْمُ ﴿١٦٣﴾ اِنَّ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ وَ
اخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ وَالْفُلْكِ الَّتِيْ تَجْرِيْ
فِي الْبَحْرِ بِمَا يَنْفَعُ النَّاسَ وَمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنَ

में मरे, उनपर अल्लाह और फ़रिश्तों और सारे इनसानों की लानत है। (162) इसी फिटकार की हालत में वे हमेशा रहेंगे, न उनकी सज़ा में कमी होगी और न उन्हें फिर कोई दूसरी मुहलत दी जाएगी।

(163) तुम्हारा ख़ुदा एक ही ख़ुदा है। उस रहमान (कृपाशील) और रहीम (दयावान) के सिवा कोई और ख़ुदा (ईश्वर) नहीं है। (164) (इस हक़ीक़त को पहचानने के लिए अगर कोई निशानी और अलामत चाहिए तो) जो लोग अक़्ल से काम लेते हैं, उनके लिए आसमानों और ज़मीन की बनावट में रात और दिन के मुसलसल एक-दूसरे के बाद आने में, उन नावों में जो इनसान के फ़ायदे की चीज़ें लिए हुए दरियाओं और समन्दरों में

बग़ावत के हैं और इनमें से हर एक रवैये को क़ुरआन कुफ़्र का नाम देता है। इसके अलावा कुछ जगहों पर क़ुरआन में कुफ़्र का लफ़्ज़ नेमत के इनकार के मानी में भी इस्तेमाल हुआ है और शुक्र के मुक़ाबले में बोला गया है। शुक्र के मानी ये हैं कि नेमत जिसने दी है, इनसान उसका एहसानमन्द हो, उसके एहसान की क़द्र करे, उसकी दी हुई नेमत को उसी की ख़ुशी के मुताबिक़ इस्तेमाल करे और उसका दिल अपने एहसान करनेवाले के लिए वफ़ादारी के जज़्बे से भरा हुआ हो। इसके मुक़ाबले में कुफ़्र या नेमत का इनकार यह है कि आदमी या तो अपने एहसान करनेवाले का एहसान ही न माने और उसे अपनी सलाहियत या किसी दूसरे की इनायत (देन) या सिफ़ारिश का नतीजा समझे, या उसकी दी हुई नेमत की नाक़द्री करे और उसे बरबाद कर दे या उसकी नेमत को उसकी ख़ुशी के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करे, या उसके एहसानों के बावजूद उसके साथ ग़द्दारी और बेवफ़ाई करे। इस तरह के कुफ़्र को हमारी ज़बान में आम तौर पर एहसान-फ़रामोशी, नमक हरामी, ग़द्दारी और नाशुक्रेपन के लफ़्ज़ों से बयान किया जाता है।

السَّمَآءِ مِنْ مَّآءٍ فَاَحْيَا بِهِ الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا وَبَثَّ فِيْهَا مِنْ كُلِّ دَآبَّةٍ ۪ وَّتَصْرِيْفِ الرِّيٰحِ وَ السَّحَابِ الْمُسَخَّرِ بَيْنَ السَّمَآءِ وَ الْاَرْضِ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّعْقِلُوْنَ ﴿١٦٤﴾ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّتَّخِذُ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ اَنْدَادًا يُّحِبُّوْنَهُمْ كَحُبِّ اللّٰهِ ؕ وَالَّذِيْنَ

चलती-फिरती हैं, बारिश के उस पानी में जिसे अल्लाह ऊपर से बरसाता है, फिर उसके ज़रीए से ज़मीन को ज़िन्दगी देता है और अपने उसी इन्तिज़ाम की बदौलत ज़मीन में हर तरह की जानदार मख़लूक़ को फैलाता है, हवाओं के चलने में और उन बादलों में जो आसमान और ज़मीन के बीच फ़रमाँबरदार बनाकर रखे गए हैं, बेशुमार निशानियाँ हैं।[162] (165) (लेकिन अल्लाह के एक होने की दलीलें जुटानेवाली इन खुली-खुली निशानियों के होते हुए भी) कुछ लोग ऐसे हैं जो अल्लाह के सिवा दूसरों को उसके बराबर और मद्दे-मुक़ाबिल (प्रतिद्वन्द्वी) ठहराते हैं[163], और उनके ऐसे गिर्वीदा (आसक्त) हैं, जैसी अल्लाह

162. यानी अगर इनसान कायनात (जगत्) के इस कारख़ाने को, जो रात-दिन उसकी आँखों के सामने चल रहा है, सिर्फ़ जानवरों की तरह न देखे, बल्कि अक़्ल से काम लेकर इस निज़ाम पर ग़ौर करे, और ज़िद या तास्सुब (पक्षपात) से आज़ाद होकर सोचे, तो ये निशानियाँ जो उसके देखने में आ रही हैं,, इस नतीजे पर पहुँचाने के लिए बिलकुल काफ़ी हैं कि यह शानदार निज़ाम एक ही क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) हाकिम (ख़ुदा) के हुक्म के तहत है। तमाम इख़्तियार और इक़्तिदार बिल्कुल उसी एक के हाथ में है। किसी दूसरे का ख़ुदमुख़ताराना (स्वयत्ततापूर्ण) दख़ल या भागीदारी के लिए इस निज़ाम में ज़र्रा बराबर कोई गुंजाइश नहीं। इसलिए हक़ीक़त में वही एक ख़ुदा सारे जगत् में मौजूद तमाम चीज़ों का ख़ुदा है। उसके सिवा कोई दूसरी हस्ती किसी क़िस्म के इख़्तियार (संप्रभुता) रखती ही नहीं कि ख़ुदाई (ईश्वरत्व) और माबूद होने में उसका कोई हिस्सा हो।

163. यानी ख़ुदा होने की जो सिफ़ात (गुण) अल्लाह के लिए ख़ास हैं उनमें से कुछ को दूसरों से जोड़ते हैं और ख़ुदा होने की हैसियत से बन्दों पर अल्लाह तआला के जो हक़ हैं वे सब या उनमें से कुछ हक़ ये लोग उन दूसरे बनावटी माबूदों (पूज्यों) को अदा करते हैं। जैसे तमाम असबाब (संसाधनों) पर हुक्मरानी (शासन), ज़रूरतें पूरी करना, मुश्किलें दूर करना, फ़रियादरसी,

اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ ؕ وَلَوْ يَرَى الَّذِيْنَ ظَلَمُوْٓا اِذْ يَرَوْنَ
الْعَذَابَ ۙ اَنَّ الْقُوَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ
الْعَذَابِ ﴿۱۶۵﴾ اِذْ تَبَرَّاَ الَّذِيْنَ اتُّبِعُوْا مِنَ الَّذِيْنَ اتَّبَعُوْا

के साथ गिर्वीदगी (आसक्ति) होनी चाहिए।— हालाँकि ईमान रखनेवाले लोगों को सबसे बढ़कर अल्लाह महबूब (प्रिय) होता है।[164] — काश! जो कुछ अज़ाब को सामने देखकर उन्हें सूझनेवाला है, वह आज ही इन ज़ालिमों को सूझ जाए कि सारी ताक़तें और सारे इख़्तियार अल्लाह ही के क़ब्ज़े में हैं और यह कि अल्लाह सज़ा देने में भी बहुत सख़्त है।
(166) जब वह सज़ा देगा, उस वक़्त कैफ़ियत (दशा) यह होगी कि वही पेशवा और

पुकार सुनना, दुआएँ सुनना और खुली-छिपी हर चीज़ से वाक़िफ़ होना ये सब अल्लाह की ख़ास सिफ़तें हैं। और यह सिर्फ़ अल्लाह ही का हक़ और अधिकार है कि बन्दे उसी को सबसे बड़ा इख़्तियारवाला (सत्ताधिकारी) मानें, बन्दगी का इक़रार करते हुए उसी के आगे सर झुकाएँ, उसी की तरफ़ अपनी ज़रूरतों में रुजू करें, उसी को मदद के लिए पुकारें, उसी पर भरोसा करें, उसी से उम्मीदें रखें और उसी से खुले और छिपे में डरें। इसी तरह सारे जहान का मालिक और हाकिम होने की हैसियत से यह मंसब (पद) भी अल्लाह ही का है कि अपनी रैयत (जनता) के लिए हलाल व हराम की हदें मुक़र्रर करे, उनकी ज़िम्मेदारियों और हक़ों को तय करे और उनको करने और न करने का हुक्म दे। और उन्हें यह बताए कि उसकी दी हुई ताक़तों और उसके दिए हुए वसाइल (साधनों) को वे किस तरह किन कामों में किन मक़सदों के लिए इस्तेमाल करें और यह सिर्फ़ अल्लाह का हक़ है कि बन्दे उसकी हाकिमियत (सम्प्रभुता) को तस्लीम करें। उसके हुक्म को क़ानून का सरचश्मा (स्रोत) मानें, क्या करना है और क्या नहीं करना है इसका मुख़्तार उसी को समझें। अपनी ज़िन्दगी के मामलों में उसके हुक्म को फ़ैसलाकुन क़रार दें और हिदायत व रहनुमाई के लिए उसी की तरफ़ पलटें। जो शख़्स ख़ुदा की इन सिफ़तों में से किसी सिफ़त (गुण) को भी किसी दूसरे से जोड़ देता है और उसके इन हुक़ूक़ (अधिकारों) में से कोई एक हक़ भी किसी दूसरे को देता है, वह अस्ल में उसे ख़ुदा का मद्दे-मुक़ाबिल और हमसर (समकक्ष और प्रतिद्वन्द्वी) बनाता है। इसी तरह जो शख़्स या जो इदारा (संस्था) इन सिफ़तों (गुणों) में से किसी सिफ़त (गुण) का दावेदार हो और इन हक़ों में से किसी हक़ का इनसानों से मुतालबा करता हो, वह भी अस्ल में ख़ुदा का मद्दे-मुक़ाबिल और हमसर बनता है, चाहे ज़बान से ख़ुदा होने का दावा करे या न करे।

164. यानी ईमान का तक़ाज़ा यह है कि आदमी अल्लाह की ख़ुशी को हर दूसरे की ख़ुशी पर तरजीह दे और किसी चीज़ की मुहब्बत भी इनसान के दिल में यह दर्जा और मकाम हासिल न कर ले कि वह अल्लाह की मुहब्बत पर उसे क़ुरबान न कर सकता हो।

وَرَاَوُا الْعَذَابَ وَتَقَطَّعَتْ بِهِمُ الْاَسْبَابُ ﴿١٦٦﴾ وَقَالَ
الَّذِيْنَ اتَّبَعُوْا لَوْ اَنَّ لَنَا كَرَّةً فَنَتَبَرَّاَ مِنْهُمْ كَمَا
تَبَرَّءُوْا مِنَّا ؕ كَذٰلِكَ يُرِيْهِمُ اللّٰهُ اَعْمَالَهُمْ حَسَرٰتٍ
عَلَيْهِمْ ؕ وَمَا هُمْ بِخٰرِجِيْنَ مِنَ النَّارِ ﴿١٦٧﴾ يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ ع
كُلُوْا مِمَّا فِي الْاَرْضِ حَلٰلًا طَيِّبًا ۖ وَّلَا تَتَّبِعُوْا
خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ؕ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ﴿١٦٨﴾ اِنَّمَا
يَاْمُرُكُمْ بِالسُّوْٓءِ وَالْفَحْشَآءِ وَاَنْ تَقُوْلُوْا عَلَى

रहनुमा, जिनकी दुनिया में पैरवी की गई थी, अपने पैरवी करनेवालों से बेताल्लुक़ी ज़ाहिर करेंगे, मगर सज़ा पाकर रहेंगे और उनके सारे असबाब और वसाइल (साधनों) का सिलसिला कट जाएगा। (167) और वे लोग जो दुनिया में उनकी पैरवी करते थे, कहेंगे कि काश! हमको फिर एक मौक़ा दिया जाता तो जिस तरह आज ये हमसे बेज़ारी (विमुखता) ज़ाहिर कर रहे हैं, हम इनसे बेज़ार होकर दिखा देते।[165] यूँ अल्लाह उन लोगों के वे काम, जो ये दुनिया में कर रहे हैं, उनके सामने इस तरह लाएगा कि ये हसरतों और शर्मिन्दगियों के साथ हाथ मलते रहेंगे, मगर आग से निकलने की कोई राह न पाएँगे।

(168) लोगो! ज़मीन में जो हलाल और पाक चीज़ें हैं उन्हें खाओ और शैतान के बताए हुए रास्तों पर न चलो।[166] वह तुम्हारा खुला दुश्मन है। (169) तुम्हें बुराई और फ़हश (अश्लीलता) का हुक्म देता है और यह सिखाता है कि तुम अल्लाह के नाम पर वे

---

165. यहाँ ख़ास तौर पर रास्ता भटकानेवाले पेशवाओं और लीडरों और उनकी पैरवी करनेवाले नादानों के अंजाम का इसलिए ज़िक्र किया गया है कि जिस ग़लती में पड़कर पिछली कौमें भटक गईं, उससे मुसलमान होशियार रहें और रहनुमाओं में फ़र्क़ करना सीखें (कि कौन सही है और कौन ग़लत है) और ग़लत रहनुमाई करनेवालों के पीछे चलने से बचें।

166. यानी खाने-पीने के मामले में उन तमाम पाबन्दियों को तोड़ डालो जो अंधविश्वासों और जाहिलाना रस्मों की वजह से लगी हुई हैं।

اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿١٦٩﴾ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمُ اتَّبِعُوْا
مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا بَلْ نَتَّبِعُ مَآ اَلْفَيْنَا عَلَيْهِ
اٰبَآءَنَا ؕ اَوَلَوْ كَانَ اٰبَآؤُهُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ شَيْـًٔا وَّلَا
يَهْتَدُوْنَ ﴿١٧٠﴾ وَمَثَلُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا كَمَثَلِ
الَّذِيْ يَنْعِقُ بِمَا لَا يَسْمَعُ اِلَّا دُعَآءً وَّنِدَآءً ؕ صُمٌّۢ

बातें कहो जिनके बारे में तुम नहीं जानते कि वे बातें अल्लाह ने कही हैं।[167]

(170) उनसे जब कहा जाता है कि अल्लाह ने जो अहकाम (आदेश) उतारे हैं उनकी पैरवी करो, तो जवाब देते हैं कि हम तो उसी तरीक़े की पैरवी करेंगे जिसपर हमने अपने बाप-दादा को पाया है।[168] अच्छा, अगर उनके बाप-दादा ने अक़्ल से कुछ भी काम न लिया हो और सीधा रास्ता न पाया हो तो क्या फिर भी ये उन्हीं की पैरवी किए चले जाएँगे? (171) ये लोग जिन्होंने ख़ुदा के बताए हुए तरीक़े पर चलने से इनकार कर दिया है, इनकी हालत बिलकुल ऐसी है जैसे चरवाहा जानवरों को पुकारता है और वे हाँक-पुकार की आवाज़ के सिवा कुछ नहीं सुनते।[169] ये बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे हैं,

167. यानी इन वहमी (भ्रामक) रस्मों और पाबन्दियों के बारे में यह ख़याल कि ये सब मज़हबी बातें हैं जो ख़ुदा की तरफ़ से सिखाई गई हैं, असल में शैतानी चालों का करिश्मा है। इसलिए कि हक़ीक़त में इनके अल्लाह की तरफ़ से होने की कोई दलील मौजूद नहीं है।

168. यानी इन पाबन्दियों के लिए उनके पास कोई सुबूत और कोई दलील इसके सिवा नहीं है कि वे कहें कि बाप-दादा से यूँ ही होता चला आया है। नादान समझते हैं कि किसी तरीक़े की पैरवी के लिए यह दलील बिलकुल काफ़ी है।

169. यहाँ जो मिसाल दी गई है उसके दो पहलू हैं। एक यह कि इन लोगों की हालत उन बे-अक़्ल जानवरों की-सी है, जिनके गल्ले (झुण्ड) अपने-अपने चरवाहों के पीछे चले जाते हैं और बिना समझे-बूझे उनकी आवाज़ों पर हरकत करते हैं। और दूसरा पहलू यह है कि उनको बुलाते और दावत देते वक़्त ऐसा महसूस होता है कि मानो जानवरों को पुकारा जा रहा है, जो सिर्फ़ आवाज़ सुनते हैं, मगर कुछ नहीं समझते कि कहनेवाला उनसे क्या कहता है। यहाँ अल्लाह ने ऐसे जामेअ़ (व्यापक) लफ़्ज़ों का इस्तेमाल किया है कि ये दोनों पहलू इनके तहत आ जाते हैं।

بُكْمٌ عُمْيٌ فَهُمْ لَا يَعْقِلُونَ ﴿١٧١﴾ يَا أَيُّهَا الَّذِينَ
آمَنُوا كُلُوا مِنْ طَيِّبَاتِ مَا رَزَقْنَاكُمْ وَاشْكُرُوا
لِلَّهِ إِنْ كُنْتُمْ إِيَّاهُ تَعْبُدُونَ ﴿١٧٢﴾ إِنَّمَا حَرَّمَ عَلَيْكُمُ
الْمَيْتَةَ وَالدَّمَ وَلَحْمَ الْخِنْزِيرِ وَمَا أُهِلَّ بِهِ لِغَيْرِ

इसलिए कोई बात इनकी समझ में नहीं आती।

(172) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अगर तुम हक़ीक़त में अल्लाह ही की बन्दगी करनेवाले हो तो जो पाक चीज़ें हमने तुम्हें दी हैं उन्हें बेझिझक खाओ और अल्लाह का शुक्र अदा करो।[170] (173) अल्लाह की तरफ़ से अगर कोई पाबन्दी तुमपर है तो वह यह है कि मुरदार न खाओ, ख़ून से और सुअर के गोश्त से बचो और कोई ऐसी चीज़ न खाओ जिसपर अल्लाह के सिवा किसी और का नाम लिया गया हो।[171] हाँ, जो

---

170. यानी अगर तुम ईमान लाकर सिर्फ़ ख़ुदा के क़ानून की पैरवी करनेवाले बन चुके हो, जैसा कि तुम्हारा दावा है, तो फिर वह सारी छूत-छात और जाहिलियत के ज़माने की वे सारी बन्दिशें और पाबन्दियाँ तोड़ डालो जो पंडितों और पुरोहितों ने, रिब्बियों और पादरियों ने, योगियों और राहिबों (संन्यासियों) ने और तुम्हारे बाप-दादा ने लगाई थीं। जो कुछ ख़ुदा ने हराम किया है उससे तो ज़रूर बचो, मगर जिन चीज़ों को ख़ुदा ने हलाल किया है, उन्हें बिना किसी कराहत (घृणा) और रुकावट के खाओ-पियो। इसी बात की तरफ़ अल्लाह के नबी *(सल्ल॰)* की वह हदीस भी इशारा करती है, जिसमें आपने फ़रमाया, "जिसने वही नमाज़ पढ़ी जो हम पढ़ते हैं और उसी क़िबले की तरफ़ रुख़ किया, जिसकी तरफ़ हम रुख़ करते हैं और हमारे ज़बीहे (ज़ब्ह किए हुए जानवर) को खाया, वह मुसलमान है।" मतलब यह है कि नमाज़ पढ़ने और क़िबले की तरफ़ रुख़ करने के बावजूद एक शख़्स उस वक़्त तक इस्लाम में पूरी तरह दाख़िल नहीं होता, जब तक कि वह खाने-पीने के मामले में पिछली जाहिलियत की पाबन्दियों को तोड़ न दे और उन अंधविश्वासों की बंदिशों से आज़ाद न हो जाए, जो जाहिलियत के ज़माने के लोगों ने लगा रखी थीं; क्योंकि उसका उन पाबन्दियों पर क़ायम रहना इस बात की अलामत है कि अभी तक उसके जिस्म में जाहिलियत का ज़हर मौजूद है।

171. यह हुक्म उस जानवर के गोश्त पर भी लागू होता है, जिसे ख़ुदा के सिवा किसी और के नाम पर ज़बह किया गया हो और उस खाने पर भी लागू होता है जो अल्लाह के सिवा किसी और के नाम पर, मन्नत के तौर पर पकाया जाए। हक़ीक़त तो यह है कि जानवर हो या अनाज या

اللّٰهِ ۚ فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّلَا عَادٍ فَلَآ اِثْمَ
عَلَيْهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٧٣﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ
يَكْتُمُوْنَ مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنَ الْكِتٰبِ وَيَشْتَرُوْنَ بِهٖ
ثَمَنًا قَلِيْلًا ۙ اُولٰۗىِٕكَ مَا يَاْكُلُوْنَ فِيْ بُطُوْنِهِمْ اِلَّا

आदमी मजबूरी की हालत में हो और वह इनमें से कोई चीज़ खा ले, बिना इसके कि वह क़ानून तोड़ने का इरादा रखता हो या ज़रूरत की हद से आगे बढ़ जाए, तो उसपर कुछ गुनाह नहीं, अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[172]

(174) सच तो यह है कि जो लोग उन हुक्मों को छिपाते हैं जो अल्लाह ने अपनी किताब में उतारे हैं और थोड़े-से दुनियवी फ़ायदों पर उन्हें भेंट चढ़ाते हैं, वे असल में अपने पेट आग से भर रहे हैं।[173] क़ियामत के दिन अल्लाह हरगिज़ उनसे बात न करेगा,

---

और कोई खाने की चीज़, असल में उसका मालिक अल्लाह तआला ही है और अल्लाह ही ने वह चीज़ हमको दी है। इसलिए नेमत को तस्लीम करने या सदक़ा या मन्नत के तौर पर अगर किसी का नाम इन चीज़ों पर लिया जा सकता है तो वह सिर्फ़ अल्लाह ही का नाम है। अल्लाह के सिवा किसी दूसरे का नाम लेना यह मानी रखता है कि हम ख़ुदा को छोड़कर या ख़ुदा के साथ दूसरे की बालातरी (उच्चता) भी तस्लीम कर रहे हैं और दूसरे को भी नेमतें देनेवाला समझते हैं।

172. इस आयत में हराम चीज़ के इस्तेमाल करने की इजाज़त तीन शर्तों के साथ दी गई है–

— एक यह कि वाक़ई मज़बूरी की हालत हो, जैसे भूख या प्यास से जान पर बन गई हो या बीमारी की वजह से जान का ख़तरा हो और इस हालत में कि हराम चीज़ के सिवा और कोई चीज़ मिल न रही हो।

— दूसरे यह कि ख़ुदा के क़ानून को तोड़ने की ख़ाहिश दिल में न पाई जाती हो।

— तीसरे यह कि ज़रूरत की हद से आगे न बढ़ा जाए। जैसे– हराम चीज़ के कुछ लुक्मे या कुछ बूंदें या कुछ घूँट अगर जान बचा सकते हों तो इनसे ज़्यादा इस चीज़ का इस्तेमाल न होने पाए।

173. मतलब यह है कि आम लोगों में ये जितनी ग़लत अंधविश्वास की बातें फैली हुई हैं और झूठी रस्मों और बेजा पाबन्दियों की जो नई-नई शरीअतें (धार्मिक विधान) बन गई हैं, इन सबकी ज़िम्मेदारी उन उलमा पर है, जिनके पास अल्लाह की किताब का इल्म था, मगर उन्होंने आम

النَّارَ وَلَا يُكَلِّمُهُمُ اللّٰهُ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ وَلَا يُزَكِّيْهِمْ ۚ
وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الضَّلٰلَةَ
بِالْهُدٰى وَالْعَذَابَ بِالْمَغْفِرَةِ ۚ فَمَآ اَصْبَرَهُمْ عَلَى
النَّارِ ۝ ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ نَزَّلَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ ۗ وَاِنَّ
الَّذِيْنَ اخْتَلَفُوْا فِي الْكِتٰبِ لَفِيْ شِقَاقٍ بَعِيْدٍ ۝
لَيْسَ الْبِرَّ اَنْ تُوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ وَ

न उन्हें पाकीज़ा ठहराएगा[174] और उनके लिए दर्दनाक सज़ा है। (175) ये वे लोग हैं जिन्होंने हिदायत के बदले गुमराही ख़रीदी और मग़फ़िरत (मोक्ष) के बदले अज़ाब मोल ले लिया। कैसा अजीब है इनका हौसला कि जहन्नम का अज़ाब बरदाश्त करने के लिए तैयार हैं! (176) यह सब कुछ इस वजह से हुआ कि अल्लाह ने तो ठीक-ठीक हक़ के मुताबिक़ किताब उतारी थी मगर जिन लोगों ने किताब में इख़तिलाफ़ निकाले, वे अपने झगड़ों में हक़ से बहुत दूर निकल गए।

(177) नेकी यह नहीं है कि तुमने अपने चेहरे पूरब की तरफ़ कर लिए या पच्छिम

लोगों तक इस इल्म को न पहुँचाया। फिर जब लोगों में जिहालत की वजह से ग़लत तरीक़े रिवाज पाने लगे, तब उस वक़्त भी वे ज़ालिम मुँह में घुनघुनियाँ भरकर बैठे रहे (यानी चुपकी साधे रहे), बल्कि उनमें से बहुतों ने अपना फ़ायदा इसी में देखा कि अल्लाह की किताब के हुक्मों पर परदा ही पड़ा रहे।

174. यह असल में उन पेशवाओं के झूठे दावों और उन ग़लतफ़हमियों का रद्द है, जो उन्होंने आम लोगों में अपने बारे में फैला रखी हैं। वे हर मुमकिन तरीक़े से लोगों के दिलों में यह ख़याल बिठाने की कोशिश करते हैं और लोग भी उनके बारे में ऐसा गुमान रखते हैं कि इनकी हस्तियाँ (व्यक्तित्व) बड़ी ही पाकीज़ा और मुक़द्दस (पावन) हैं और जो उनके दामन को थाम लेगा, उसकी सिफ़ारिश करके वे अल्लाह के यहाँ उसे बख़्शवा लेंगे। जवाब में अल्लाह फ़रमाता है कि हम उन्हें हरगिज़ मुँह न लगाएँगे और न उन्हें पाकीज़ा क़रार देंगे।

الْمَغْرِبِ وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ
الْمَلٰٓئِكَةِ وَالْكِتٰبِ وَالنَّبِيّٖنَ ۚ وَاٰتَى الْمَالَ عَلٰى
حُبِّهٖ ذَوِى الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنَ وَابْنَ
السَّبِيْلِ ۙ وَالسَّآئِلِيْنَ وَفِى الرِّقَابِ ۚ وَاَقَامَ الصَّلٰوةَ
وَاٰتَى الزَّكٰوةَ ۚ وَالْمُوْفُوْنَ بِعَهْدِهِمْ اِذَا عٰهَدُوْا ۚ
وَالصّٰبِرِيْنَ فِى الْبَاْسَآءِ وَالضَّرَّآءِ وَحِيْنَ الْبَاْسِ ؕ
اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ صَدَقُوْا ؕ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ ﴿۱۷۷﴾
يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِصَاصُ فِى

की तरफ़[175], बल्कि नेकी यह है कि आदमी अल्लाह को और आख़िरी दिन (अंतिम दिवस) और फ़रिश्तों को और अल्लाह की उतारी हुई किताब और उसके पैग़म्बरों को दिल से माने और अल्लाह की मुहब्बत में अपना दिलपसन्द माल रिश्तेदारों और यतीमों पर, ग़रीबों और मुसाफ़िरों पर, मदद के लिए हाथ फैलानेवालों पर और ग़ुलामों की रिहाई पर ख़र्च करे; नमाज़ क़ायम करे और ज़कात दे। और नेक वे लोग हैं कि जब वादा करें तो उसे पूरा करें, और तंगी व मुसीबत के वक़्त में और हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) की लड़ाई में सब्र करें। ये हैं सच्चे लोग और यही लोग परहेज़गार हैं।

(178) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! तुम्हारे लिए क़त्ल के मुक़द्दमों में क़िसास[176] का

175. पूरब और पश्चिम की तरफ़ मुँह करने को तो सिर्फ़ मिसाल के तौर पर बयान किया गया है। अस्ल में यह बात दिल और दिमाग़ में बिठाना है कि मज़हब की कुछ ज़ाहिरी रस्मों को अदा कर देना और सिर्फ़ ज़ाब्ते की ख़ानापुरी के तौर पर कुछ तयशुदा मज़हबी कामों को पूरा कर देना और तक़वा (धर्मपरायणता) की कुछ राइज शक्लों को इख़्तियार करके दिखा देना वह हक़ीक़ी नेकी नहीं है जो अल्लाह के यहाँ वज़न और क़ीमत रखती है।

176. क़िसास यानी ख़ून का बदला, यह कि आदमी के साथ वही किया जाए जो उसने दूसरे आदमी के

اَلْقَتْلٰی ؕ اَلْحُرُّ بِالْحُرِّ وَالْعَبْدُ بِالْعَبْدِ وَالْاُنْثٰی
بِالْاُنْثٰی ؕ فَمَنْ عُفِیَ لَهٗ مِنْ اَخِیْهِ شَیْءٌ فَاتِّبَاعٌ

हुक्म लिख दिया गया है। आज़ाद आदमी ने क़त्ल किया हो तो उस आज़ाद आदमी ही से बदला लिया जाए, ग़ुलाम क़ातिल हो तो वह ग़ुलाम ही क़त्ल किया जाए और औरत ने यह जुर्म किया हो तो उस औरत ही से क़िसास[177] लिया जाए। हाँ, अगर किसी

साथ किया। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि क़ातिल (हत्यारे) ने जिस तरीक़े से किसी का क़त्ल किया हो, उसी तरीक़े से उसको क़त्ल किया जाए, बल्कि मतलब सिर्फ़ यह है कि जान लेने की जो हरकत उसने मक़तूल (मारे गए शख़्स) के साथ की है, वही उसके साथ की जाए।

177. जाहिलियत के ज़माने में लोगों का तरीक़ा यह था कि एक क़ौम या क़बीले के लोग अपने मक़तूल (मारे गए शख़्स) के ख़ून को जितना क़ीमती समझते थे, उतनी ही क़ीमत का ख़ून उस ख़ानदान या क़बीले या क़ौम से लेना चाहते थे, जिसके आदमी ने उसे मारा हो। सिर्फ़ मक़तूल के बदले में क़ातिल (हत्यारे) की जान ले लेने से उनका दिल ठंडा न होता था। वे अपने एक आदमी का बदला बीसियों और सैकड़ों से लेना चाहते थे। उनका कोई इज़्ज़तदार आदमी अगर दूसरे गरोह के किसी छोटे आदमी के हाथों मारा गया हो तो वे असली क़ातिल के क़त्ल को काफ़ी नहीं समझते थे, बल्कि उनकी ख़ाहिश यह होती थी कि क़ातिल के क़बीले का भी कोई वैसा ही इज़्ज़तदार आदमी मारा जाए या उसके कई आदमी उनके मक़तूल के बदले में क़त्ल किए जाएँ। इसके बरख़िलाफ़ अगर मक़तूल उनकी निगाह में कोई मामूली दर्जे का शख़्स और क़ातिल कोई ज़्यादा क़द्र और इज़्ज़त रखनेवाला शख़्स होता, तो वे इस बात को पसन्द न करते थे कि मारे गए आदमी के बदले में मारनेवाले की जान ली जाए। और यह हालत कुछ पुरानी जाहिलियत में ही न थी, मौजूदा ज़माने में जिन क़ौमों को इन्तिहाई तहज़ीब-याफ़्ता (सभ्य) समझा जाता है, उनके बाक़ायदा सरकारी एलानों तक में कई बार यह बात बिना किसी शर्म के दुनिया को सुनाई जाती है कि हमारा एक आदमी मारा जाएगा तो हम क़ातिल की क़ौम के पचास आदमियों की जान ले लेंगे। अकसर ये ख़बरें हमारे कान सुनते हैं कि एक शख़्स के क़त्ल पर मग़लूब (पराजित) क़ौम के इतने बन्धक गोली से उड़ाए गए। एक 'तहज़ीब-याफ़्ता' (सभ्य) क़ौम ने इसी बीसवीं सदी में एक आदमी (सरली स्टैक) के क़त्ल का बदला पूरी मिस्री क़ौम से लेकर छोड़ा। दूसरी तरफ़ सिर्फ़ नाम की इन तहज़ीबयाफ़्ता कौमों की बाक़ायदा अदालतों तक का यह रवैया है कि अगर क़ातिल हाकिम क़ौम का आदमी हो और मारे गए आदमी का ताल्लुक़ महकूम क़ौम (शासित वर्ग) से हो तो उनके जज क़िसास (ख़ून के बदले) का फ़ैसला करने से बचते हैं। यही ख़राबियाँ हैं, जिनके रोकने और दूर करने का हुक्म अल्लाह तआला ने इस आयत में दिया है। वह फ़रमाता है कि मारे गए शख़्स के बदले में क़ातिल और सिर्फ़ क़ातिल ही की जान ली जाए, यह देखे बिना कि क़ातिल कौन है और मक़तूल कौन।

بِالْمَعْرُوْفِ وَاَدَآءٌ اِلَيْهِ بِاِحْسَانٍ ؕ ذٰلِكَ تَخْفِيْفٌ
مِّنْ رَّبِّكُمْ وَرَحْمَةٌ ؕ فَمَنِ اعْتَدٰى بَعْدَ ذٰلِكَ
فَلَهٗ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝۱۷۸ وَلَكُمْ فِى الْقِصَاصِ حَيٰوةٌ

क़ातिल के साथ उसका भाई कुछ नर्मी करने के लिए तैयार हो[178], तो भले तरीक़े[179] के मुताबिक़ ख़ूँबहा (जान के बदले माल लेने) का निपटारा होना चाहिए और क़ातिल के लिए ज़रूरी है कि भले तरीक़े से ख़ून का माली बदला चुका दे। यह तुम्हारे रब की तरफ़ से छूट और रहमत है। इसपर भी जो ज़्यादती करे[180], उसके लिए दर्दनाक सज़ा है (179)– अक़्ल और समझ रखनेवालो! तुम्हारे लिए क़िसास (हत्यादण्ड) में ज़िन्दगी

---

178. 'भाई' का लफ़्ज़ कहकर निहायत लतीफ़ (सूक्ष्म) तरीक़े से नर्मी की सिफ़ारिश भी कर दी है। मतलब यह है कि तुम्हारे और दूसरे शख़्स के बीच बाप मारे का वैर ही सही, मगर है तो वह तुम्हारा इनसानी भाई। इसलिए अगर अपने एक ख़ताकार (दोषी) भाई के मुक़ाबले में बदला लेने के ग़ुस्से को पी जाओ तो यह तुम्हारी इनसानियत की शान के ज़्यादा मुताबिक़ है– इस आयत से यह भी मालूम हो गया कि इस्लामी क़ानूने-ताज़ीरात (इस्लामी दण्ड-विधान) में क़त्ल तक का मामला राज़ीनामा के क़ाबिल है। मारे गए शख़्स के वारिसों को यह हक़ पहुँचता है कि क़ातिल को माफ़ कर दें और इस सूरत में अदालत के लिए जाइज़ नहीं कि क़ातिल की जान ही लेने पर अड़ी रहे। अलबत्ता जैसा कि बाद की आयत में कहा गया कि माफ़ी की सूरत में कातिल को 'ख़ूँबहा' (माली हर्जाना) अदा करना होगा।

179. अरबी में असल लफ़्ज़ 'मारूफ़' इस्तेमाल हुआ है और यह लफ़्ज़ क़ुरआन में बहुत ज़्यादा इस्तेमाल हुआ है। इससे मुराद वह सही तरीक़ा-ए-कार (कार्यशैली) है, जिससे आम तौर से लोग वाक़िफ़ होते हैं, जिसके बारे में हर वह शख़्स जिसका कोई ज़ाती (निजी) मफ़ाद किसी ख़ास पहलू से जुड़ा हुआ न हो, यह बोल उठे कि बेशक हक़ और इनसाफ़ यही है और यही मुनासिब रवैया है। आम रिवाज (Common Law) को भी इस्लामी इस्तिलाह (परिभाषा) में 'उर्फ़' और 'मारूफ़' कहा जाता है और वह ऐसे तमाम मामलों में तस्लीम किया जाता है, जिनके बारे में शरीअत ने कोई ख़ास क़ायदा मुक़र्रर न किया हो।

180. मिसाल के तौर पर यह कि मारे गए आदमी का वारिस ख़ूँबहा (माली हर्जाना) वुसूल कर लेने के बाद फिर बदला लेने की कोशिश करे या क़ातिल (हत्यारा) ख़ूँबहा अदा करने में टाल-मटोल करे और मारे गए आदमी के वारिस ने जो एहसान उसके साथ किया है, उसका बदला नाशुक्री की शक्ल में दे।

يٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝ كُتِبَ عَلَيْكُمْ اِذَا
حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ اِنْ تَرَكَ خَيْرَا ۚ ۖ الْوَصِيَّةُ
لِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ حَقًّا عَلَى

है।[181] उम्मीद है कि तुम इस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी से बचोगे।

(180) तुम्हारे लिए लाज़िम किया गया है कि जब तुममें से किसी की मौत का वक़्त आए और वह अपने पीछे माल छोड़ रहा हो, तो माँ-बाप और रिश्तेदारों के लिए भले तरीक़े से वसीयत करे। यह हक़ है परहेज़गारों (अल्लाह का डर रखनेवालों) पर।[182]

181. यह एक दूसरी जाहिलियत की रद्द (खंडन) है, जो पहले भी बहुत-से दिमाग़ों में मौजूद थी और आज भी बहुत ज़्यादा पाई जाती है। जिस तरह जाहिलियत के ज़माने के लोगों का एक गरोह बदला लेने के पहलू में एक इन्तिहा को चला गया, उसी तरह एक दूसरा गरोह माफ़ कर देने के मामले में दूसरी हद तक चला गया और उसने मौत की सज़ा के ख़िलाफ़ इतना प्रोपगंडा किया है कि बहुत-से लोग इसे एक घिनौनी चीज़ समझने लगे हैं और दुनिया के बहुत-से मुल्कों ने इस सज़ा को बिलकुल ख़त्म कर दिया है। क़ुरआन इसी पर अक़्लवालों को मुख़ातिब (संबोधित) करके ख़बरदार करता है कि क़िसास में समाज की ज़िन्दगी है। जो समाज इनसानी जान का एहतिराम न करनेवालों की जान को एहतिराम के क़ाबिल ठहराता है, वह असल में अपनी आस्तीन में साँप पालता है। तुम एक क़ातिल की जान बचाकर बहुत-से बेगुनाह इनसानों की जानें ख़तरे में डालते हो।

182. यह हुक्म उस ज़माने में दिया गया था, जबकि विरासत के बँटवारे के बारे में अभी कोई क़ानून मुक़र्रर नहीं हुआ था। उस वक़्त हर शख़्स पर लाज़िम किया गया कि वह अपने वारिसों के हिस्से वसीयत के ज़रीए से मुक़र्रर कर जाए, ताकि उसके मरने के बाद न तो ख़ानदान में झगड़े हों और न किसी हक़दार का हक़ मारा जाए। बाद में जब विरासत के बँटवारे के बारे में अल्लाह तआला ने ख़ुद एक ज़ाब्ता बना दिया (जो आगे क़ुरआन की सूरा 4, अन-निसा में आनेवाला है) तो नबी *(सल्ल०)* ने वसीयत के हुक्म और मीरास के हुक्म को वाज़ेह करते हुए नीचे लिखे ये दो क़ायदे बयान किए—

एक यह कि अब कोई शख़्स किसी वारिस के हक़ में वसीयत नहीं कर सकता, यानी जिन रिश्तेदारों के हिस्से क़ुरआन में तय कर दिए गए हैं, उनके हिस्सों में न तो वसीयत के ज़रीए से कोई कमी या बेशी की जा सकती है, न किसी वारिस को मीरास से महरूम किया जा सकता है और न किसी वारिस को उसके क़ानूनी हिस्से के अलावा कोई चीज़ वसीयत के ज़रीए दी जा सकती है। दूसरे यह कि वसीयत कुल जायदाद के सिर्फ़ एक तिहाई हिस्से की हद तक की जा सकती है।

الْمُتَّقِيْنَ ﴿١٨٠﴾ فَمَنْ بَدَّلَهٗ بَعْدَ مَا سَمِعَهٗ فَاِنَّمَا
اِثْمُهٗ عَلَى الَّذِيْنَ يُبَدِّلُوْنَهٗ ؕ اِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿١٨١﴾ؕ
فَمَنْ خَافَ مِنْ مُّوْصٍ جَنَفًا اَوْ اِثْمًا فَاَصْلَحَ
بَيْنَهُمْ فَلَاۤ اِثْمَ عَلَيْهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٨٢﴾ ع
يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا
كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ﴿١٨٣﴾

---

(181) फिर जिन्होंने वसीयत सुनी और बाद में उसे बदल डाला, तो इसका गुनाह उन बदलनेवालों पर होगा। अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है। (182) हाँ, जिसको यह डर हो कि वसीयत करनेवाले ने अनजाने में या जान-बूझकर हक़ मारा है, और फिर मामले से ताल्लुक़ रखनेवालों के बीच वह सुधार करे, तो इसपर कुछ गुनाह नहीं है। अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(183) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! तुमपर रोज़े फ़र्ज़ (अनिवार्य) कर दिए गए, जिस तरह तुमसे पहले नबियों के माननेवालों पर फ़र्ज़ किए गए थे। इससे उम्मीद है कि तुममें

इन दो हिदायतों के वाज़ेह कर देने के बाद अब इस आयत का मंशा (मक़सद) यह क़रार पाता है कि आदमी अपना कम से कम दो-तिहाई माल (संपत्ति) तो इसलिए छोड़ दे कि उसके मरने के बाद वह क़ायदे के मुताबिक़ उसके वारिसों में तक़सीम (वितरित) हो जाए और ज़्यादा से ज़्यादा एक तिहाई माल की हद तक उसे अपने उन ग़ैर-वारिस रिश्तेदारों के हक़ में वसीयत करनी चाहिए, जो उसके अपने घर में या उसके ख़ानदान में मदद के हक़दार हों, या जिन्हें वह ख़ानदान के बाहर मदद का मुहताज पाता हो, या आम लोगों की भलाई के कामों में से जिसकी भी वह मदद करना चाहे। बाद के लोगों ने वसीयत के इस हुक्म को सिर्फ़ एक सिफ़ारिशी हुक्म क़रार दे दिया, यहाँ तक कि वसीयत का तरीक़ा आम तौर से ख़त्म ही होकर रह गया, लेकिन क़ुरआन मजीद में इसे एक 'हक़' क़रार दिया गया है, जो ख़ुदा की तरफ़ से नेक और परहेज़गार लोगों पर लागू होता है। अगर इस हक़ को अदा करना शुरू कर दिया जाए तो बहुत-से वे सवाल ख़ुद ही हल हो जाएँ जो मीरास के बारे में लोगों को उलझन में डालते हैं। मिसाल के तौर पर उन पोतों और नवासों का मामला जिनके माँ-बाप, दादा और नाना की ज़िन्दगी में मर जाते हैं।

اَيَّامًا مَّعۡدُوۡدٰتٍ ؕ فَمَنۡ كَانَ مِنۡكُمۡ مَّرِيۡضًا اَوۡ
عَلٰى سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنۡ اَيَّامٍ اُخَرَ ؕ وَعَلَى الَّذِيۡنَ
يُطِيۡقُوۡنَهٗ فِدۡيَةٌ طَعَامُ مِسۡكِيۡنٍ ؕ فَمَنۡ تَطَوَّعَ خَيۡرًا
فَهُوَ خَيۡرٌ لَّهٗ ؕ وَاَنۡ تَصُوۡمُوۡا خَيۡرٌ لَّكُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ
تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۱۸۴﴾ شَهۡرُ رَمَضَانَ الَّذِىۡۤ اُنۡزِلَ فِيۡهِ

परहेज़गारी की सिफ़त (गुण) पैदा होगी।[183] (184) कुछ मुक़र्रर (निश्चित) दिनों के रोज़े हैं। अगर तुममें से कोई बीमार हो या सफ़र पर हो, तो दूसरे दिनों में इतनी ही गिनती पूरी कर ले। और जो लोग रोज़ा रखने की शक्ति रखते हों, (फिर न रखें) तो वे फिदया दें। एक रोज़े का फ़िदया एक मुहताज को खाना खिलाना है, और जो आदमी अपनी ख़ुशी से कुछ ज़्यादा भलाई करे[184] तो यह उसी के लिए अच्छा है। लेकिन अगर तुम समझो तो तुम्हारे लिए अच्छा यही है कि रोज़ा रखो![185]

(185) रमज़ान वह महीना है जिसमें क़ुरआन उतारा गया, जो इनसानों के लिए

183. इस्लाम के ज़्यादातर अहकाम (आदेशों) की तरह रोज़े भी ब-तदरीज (चरणबद्ध रूप में) फ़र्ज़ किए गए हैं। नबी *(सल्ल.)* ने शुरू में मुसलमानों को हर महीने सिर्फ़ तीन दिन के रोज़े रखने की हिदायत की थी, मगर ये रोज़े फ़र्ज़ न थे। फिर सन् 02 हि॰ में रमज़ान के रोज़ों का यह हुक्म क़ुरआन में आया, मगर उसमें भी इतनी रिआयत रखी गई कि जो लोग रोज़े बर्दाश्त करने की ताक़त रखते हों और फिर भी रोज़ा न रखें, वे हर रोज़े के बदले एक मुहताज को खाना खिला दिया करें। बाद में दूसरा हुक्म आया और यह आम छूट ख़त्म कर दी गई। लेकिन बीमार और मुसाफ़िर और हामला (गर्भवती) या दूध पिलानेवाली औरत और ऐसे बूढ़े लोगों के लिए जिनमें रोज़ा रखने की ताक़त न हो, इस छूट और रिआयत को पहले की तरह बाक़ी रहने दिया गया और उन्हें हुक्म दिया गया कि बाद में जब यह मजबूरी बाक़ी न रहे तो क़ज़ा के उतने रोज़े रख लें, जितने रमज़ान में उनसे छूट गए हैं।

184. यानी एक से ज़्यादा आदमियों को खाना खिलाए, या यह कि रोज़ा भी रखे और मुहताज को खाना भी खिलाए।

185. यहाँ तक वह इब्तिदाई हुक्म है, जो रमज़ान के रोज़ों के बारे में सन् 02 हि॰ में बद्र की लड़ाई से पहले उतरा था। इसके बाद की आयतें इसके एक साल बाद उतरीं और मौज़ू की मुनासिबत की वजह से बयान के इसी सिलसिले में शामिल कर दी गई।

الْقُرْاٰنُ هُدًى لِّلنَّاسِ وَبَيِّنٰتٍ مِّنَ الْهُدٰى وَ
الْفُرْقَانِ ۚ فَمَنْ شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْيَصُمْهُ ۖ وَمَنْ
كَانَ مَرِيْضًا اَوْ عَلٰى سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنْ اَيَّامٍ اُخَرَ ۗ
يُرِيْدُ اللّٰهُ بِكُمُ الْيُسْرَ وَلَا يُرِيْدُ بِكُمُ الْعُسْرَ ۖ وَلِتُكْمِلُوا

सरासर रहनुमाई है और ऐसी वाज़ेह तालीमात पर मुश्तमिल (आधारित) है जो सीधा रास्ता दिखानेवाली और सच और झूठ का फ़र्क़ खोलकर रख देनेवाली हैं। इसलिए अब से जो शख़्स इस महीने को पाए, उसके लिए ज़रूरी है कि इस पूरे महीने के रोज़े रखे। और जो कोई बीमार हो या सफ़र पर हो, तो वह दूसरे दिनों में रोज़ों की गिनती पूरी करे।[186] अल्लाह तुम्हारे साथ नरमी करना चाहता है, सख़्ती करना नहीं चाहता। इसलिए

186. सफ़र की हालत में रोज़ा रखना या न रखना आदमी के अपने इख़्तियार पर छोड़ दिया गया है। नबी *(सल्ल.)* के साथ जो सहाबा सफ़र में जाया करते थे, उनमें से कोई रोज़ा रखता था और कोई न रखता था और दोनों गरोहों में से कोई दूसरे पर एतिराज़ न करता था। ख़ुद नबी *(सल्ल.)* ने भी कभी सफ़र में रोज़ा रखा है और कभी नहीं रखा है। एक सफ़र के मौक़े पर एक आदमी बदहाल होकर गिर गया और उसके चारों तरफ़ लोग जमा हो गए। नबी *(सल्ल.)* ने यह हाल देखकर मालूम किया : क्या मामला है? बताया गया कि रोज़े से है। फ़रमाया : यह नेकी नहीं है। लड़ाई के मौक़े पर तो आप हुक्म देकर रोज़े से रोक दिया करते थे, ताकि दुश्मन से लड़ने में कमज़ोरी न आने पाए। हज़रत उमर *(रज़ि.)* की रिवायत है कि हम नबी *(सल्ल.)* के साथ दो मर्तबा रमज़ान में जंग पर गए। पहली मर्तबा बद्र की लड़ाई में और आख़िरी मर्तबा फ़तहे-मक्का (मक्का-विजय) के मौक़े पर और दोनों बार हमने रोज़े छोड़ दिए।

इब्ने-उमर *(रज़ि.)* का बयान है कि मक्का की फ़तह के मौक़े पर अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया था कि यह जंग का दिन है, तो तुम रोज़ा छोड़ दो। दूसरी रिवायतों में यह है कि "दुश्मन से मुक़ाबला करना है, रोज़े छोड़ दो, ताकि तुम्हें लड़ने की ताक़त हासिल हो।"

आम सफ़र के मामले में यह बात कि कितनी दूरी के सफ़र में रोज़ा छोड़ा जा सकता है नबी *(सल्ल.)* के किसी इरशाद (कथन) से वाज़ेह नहीं होती और सहाबा किराम *(रज़ि.)* का अमल इस सिलसिले में अलग-अलग है। सही यही मालूम होता है कि जिस दूरी को आम तौर पर सफ़र समझा जाता है और जिस पर मुसफ़िरों जैसी हालत इनसान पर छा जाती है, वह रोज़ा न रखने के लिए काफ़ी है।

इस पर सभी एक राय हैं कि जिस दिन आदमी सफ़र की शुरुआत कर रहा हो, उस दिन का

الْعِدَّةَ وَلِتُكَبِّرُوا اللّٰهَ عَلٰى مَا هَدٰىكُمْ وَلَعَلَّكُمْ
تَشْكُرُوْنَ ﴿۱۸۵﴾ وَاِذَا سَاَلَكَ عِبَادِيْ عَنِّيْ فَاِنِّيْ

यह तरीक़ा तुम्हें बताया जा रहा है, ताकि तुम रोज़ों की गिनती पूरी कर सको और जिस सीधे रास्ते पर अल्लाह ने तुम्हें लगाया है, उसपर अल्लाह की बड़ाई का इज़हार व एतिराफ़ करो और शुक्रगुज़ार बनो।[187]

(186) और ऐ नबी! मेरे बन्दे अगर तुमसे मेरे बारे में पूछें तो उन्हें बता दो कि मैं

रोज़ा न रखने का उसे इख़्तियार है, चाहे तो घर से खाना खाकर चले और चाहे तो घर से निकलते ही खा ले। दोनों अमल सहाबा के यहाँ मिलते हैं।

यह बात कि अगर किसी शहर पर दुश्मन का हमला हो, तो क्या सफ़र में न होने और अपनी जगह पर ठहरे रहने के बावजूद जिहाद की ख़ातिर रोज़ा छोड़ सकते हैं? उलमा के बीच इस बारे में अलग-अलग राएँ हैं। कुछ उलमा इसकी इजाज़त नहीं देते। मगर अल्लामा इब्ने-तैमिया ने निहायत मज़बूत दलीलों के साथ फ़तवा दिया था कि ऐसा करना बिलकुल जाइज़ है।

187. यानी अल्लाह ने सिर्फ़ रमज़ान ही के दिनों को रोज़ों के लिए ख़ास नहीं कर दिया है, बल्कि जो लोग रमज़ान में किसी शरई मजबूरी की वजह से रोज़े न रख सकें, उनके लिए अल्लाह ने उन छूटे हुए रोज़ों को दूसरे दिनों में रख लेने का रास्ता भी खोल दिया है, ताकि क़ुरआन की जो नेमत ख़ुदा ने इनसानों को दी है, उसका शुक्र अदा करने के इस क़ीमती मौक़े से लोग महरूम न रहने पाएँ।

यहाँ यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि रमज़ान के रोज़ों को सिर्फ़ इबादत और सिर्फ़ तक़्वे (ईशपरायणता) की तरबियत ही नहीं ठहराया गया है, बल्कि इन्हें इससे आगे बढ़कर उस अज़ीमुश्शान हिदायत की नेमत पर अल्लाह तआला का शुक्रिया भी ठहराया गया है, जो क़ुरआन की शक्ल में उसने हमें अता की है। हक़ीक़त यह है कि एक समझदार इनसान के लिए किसी नेमत का शुक्र अदा करने और किसी एहसान को तस्लीम करने की बेहतरीन सूरत अगर हो सकती है तो वह सिर्फ़ यही है कि वह अपने आपको उस मक़सद को पूरा करने के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा तैयार करे, जिसके लिए देनेवाले ने वह नेमत दी हो। क़ुरआन हमको इसलिए दिया गया है कि हम अल्लाह तआला की ख़ुशनूदी का रास्ता जानकर ख़ुद उसपर चलें और दुनिया को उस पर चलाएँ। इस मक़सद के लिए हमको तैयार करने का बेहतरीन ज़रीआ रोज़ा है। इसलिए क़ुरआन के उतरने के महीने में हमारी रोज़ेदारी सिर्फ़ इबादत ही नहीं है और सिर्फ़ अख़लाक़ी तरबियत भी नहीं है, बल्कि उसके साथ ख़ुद क़ुरआन की इस नेमत की भी सही और मुनासिब शुक्रगुज़ारी है।

قَرِيبٌ ۖ أُجِيبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ إِذَا دَعَانِ ۖ فَلْيَسْتَجِيبُوا
لِي وَلْيُؤْمِنُوا بِي لَعَلَّهُمْ يَرْشُدُونَ ﴿١٨٦﴾ أُحِلَّ لَكُمْ
لَيْلَةَ الصِّيَامِ الرَّفَثُ إِلَىٰ نِسَائِكُمْ ۚ هُنَّ لِبَاسٌ
لَّكُمْ وَأَنتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ ۗ عَلِمَ اللَّهُ أَنَّكُمْ

उनसे क़रीब ही हूँ। पुकारनेवाला जब मुझे पुकारता है, मैं उसकी पुकार सुनता और जवाब देता हूँ, तो उन्हें चाहिए कि मेरी पुकार पर लब्बैक (हम हाज़िर हैं) कहें और मुझपर ईमान लाएँ।[188] यह बात तुम उन्हें सुना दो शायद कि वे सीधा रास्ता पा लें।[189]

(187) तुम्हारे लिए रोज़ों के ज़माने में रातों को अपनी बीवियों के पास जाना जाइज़ (वैध) कर दिया गया है। वे तुम्हारे लिए लिबास हैं और तुम उनके लिए लिबास हो।[190]

188. यानी हालाँकि तुम मुझे देख नहीं सकते और न अपने हवास (चेतना) से मुझको महसूस कर सकते हो, लेकिन यह ख़याल न करो कि मैं तुमसे दूर हूँ। नहीं, मैं अपने हर बन्दे से इतना करीब हूँ कि जब वह चाहे, मुझसे अर्ज़-मारूज़ (प्रार्थना) कर अपनी बात कह-सुन सकता है। यहाँ तक कि दिल ही दिल में वह जो कुछ मुझसे गुज़ारिश करता है, मैं उसे भी सुन लेता हूँ और सिर्फ़ सुनता ही नहीं, फ़ैसला भी जारी करता हूँ। जिन बेहक़ीक़त (मिथ्या) और बेइख़्तियार हस्तियों को तुमने अपनी नादानी से इलाह (पूज्य) और रब (पालनहार) क़रार दे रखा है उनके पास तो तुम्हें दौड़-दौड़कर जाना पड़ता है और फिर भी न वे तुम्हारी फ़रियाद सुन सकते हैं और न उनमें यह ताक़त है कि तुम्हारी दरख़ास्तों पर कोई फ़ैसला जारी कर सकें। मगर मैं ला-महदूद कायनात (असीम जगत्) का मुकम्मल इख़्तियारवाला हाकिम, तमाम ताक़तों का मालिक, तुमसे इतना क़रीब हूँ कि तुम ख़ुद बिना किसी वास्ते, वसीले और सिफ़ारिश के सीधे तौर पर हर वक़्त और हर जगह मुझ तक अपनी अर्ज़ियाँ पहुँचा सकते हो। इसलिए तुम अपनी इस नादानी को छोड़ दो कि एक-एक बेइख़्तियार बनावटी ख़ुदा के दर पर मारे-मारे फिरते हो। मैं जो दावत तुम्हें दे रहा हूँ, उसपर लपककर मेरा दामन पकड़ लो, मेरी तरफ़ पलटो, मुझपर भरोसा करो और मेरी बन्दगी और फ़रमाँबरदारी में आ जाओ।

189. यानी तुम्हारे ज़रीए से यह सच्चाई मालूम करके उनकी आँखें खुल जाएँ और वे उस सही रवैये की तरफ़ आ जाएँ, जिसमें उनकी अपनी ही भलाई है।

190. यानी जिस तरह लिबास और जिस्म के बीच कोई परदा नहीं रह सकता, बल्कि दोनों का आपसी ताल्लुक़ और मिलन ऐसा होता है जिनके बीच बिलकुल कोई फ़ासला नहीं होता है, उसी तरह तुम्हारा और तुम्हारी बीवियों का ताल्लुक़ भी है।

كُنْتُمْ تَخْتَانُوْنَ اَنْفُسَكُمْ فَتَابَ عَلَيْكُمْ وَعَفَا عَنْكُمْ
فَالْـٰٔنَ بَاشِرُوْهُنَّ وَابْتَغُوْا مَا كَتَبَ اللّٰهُ لَكُمْ ۪ وَكُلُوْا
وَاشْرَبُوْا حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَكُمُ الْخَيْطُ الْاَبْيَضُ مِنَ

अल्लाह को मालूम हो गया कि तुम लोग चुपके-चुपके अपने आपसे ख़ियानत (चोरी) कर रहे थे, मगर उसने तुम्हारा क़ुसूर माफ़ कर दिया और तुमसे दरगुज़र (अनदेखा) फ़रमा दिया। अब तुम अपनी बीवियों के साथ रात गुज़ारो और जो लुत्फ़ (आनन्द) अल्लाह ने तुम्हारे लिए जाइज़ कर दिया है, उसे हासिल करो।[191] और रातों को खाओ-पियो[192] यहाँ तक कि तुमको रात की स्याही की धारी से सुबह की सफ़ेद धारी साफ़ दिखाई दे

191. शुरू में हालाँकि इस तरह का कोई साफ़ हुक्म मौजूद नहीं था कि रमज़ान की रातों में कोई शख़्स अपनी बीवी से मुबाशरत (संभोग) न करे, लेकिन लोग अपनी जगह यही समझते थे कि ऐसा करना जाइज़ नहीं है। फिर उसके नाजाइज़ या नापसन्दीदा होने का ख़याल दिल में लिए हुए कभी-कभी अपनी बीवियों के पास चले जाते थे। यह मानो अपने ज़मीर (अंतःकरण) के साथ ख़ियानत करना था और इससे अंदेशा था कि एक मुजरिमाना (अपराधी होने) और गुनाहगारना ज़ेहनियत (मानसिकता) उनके अन्दर परवरिश पाती रहेगी। इसलिए अल्लाह ने पहले इस ख़ियानत पर ख़बरदार किया और फिर कहा कि यह काम तुम्हारे लिए जाइज़ है; इसलिए अब इसे बुरा काम समझते हुए न करो, बल्कि अल्लाह की इजाज़त से फ़ायदा उठाते हुए दिल और मन की पूरी पाकी के साथ करो।

192. इस बारे में भी लोग शुरू में ग़लतफ़हमी में पड़े हुए थे। किसी का ख़याल था कि इशा की नमाज़ पढ़ने के बाद से खाना-पीना हराम हो जाता है और कोई यह समझता था कि रात को जब तक आदमी जाग रहा हो, खा-पी सकता है। जहाँ सो गया, फिर दोबारा उठकर वह कुछ नहीं खा सकता। रोज़े के बारे में ये हुक्म लोगों ने ख़ुद अपने मन में समझ रखे थे और इसकी वजह से कभी-कभी बड़ी तक़लीफ़ें उठाते थे। इस आयत में इन्हीं ग़लतफ़हमियों को दूर किया गया है। इसमें रोज़े की हद फ़ज्र के तुलूअ़ (उदय) होने से लेकर सूरज के डूबने तक मुक़र्रर कर दी गई और सूरज के डूबने से फ़ज्र के तुलू होने तक रात भर खाने-पीने और (शौहर-बीवी को) मुबाशरत (संभोग) के लिए आज़ादी दे दी गई। इसके साथ नबी *(सल्ल०)* ने सहरी का क़ायदा मुक़र्रर-कर दिया, ताकि फ़ज्र के तुलूअ़ होने से ठीक पहले आदमी अच्छी तरह खा-पी ले।

الْخَيْطِ الْأَسْوَدِ مِنَ الْفَجْرِ ثُمَّ أَتِمُّوا الصِّيَامَ إِلَى

जाए।[193] तब यह सब काम छोड़कर रात तक अपना रोज़ा पूरा करो।[194] और जब तुम

193. इस्लाम ने अपनी इबादतों के लिए वक़्त का वह पैमाना मुक़र्रर किया है, जिससे दुनिया में हर वक़्त तमद्दुन (सभ्यता) के हर दर्जे के लोग हर जगह वक़्त का तअय्युन (सुनिश्चित) कर सकें, वह घड़ियों के लिहाज से वक़्त मुक़र्रर करने के बजाय उन निशानियों के लिहाज़ से वक़्त मुक़र्रर करता है जो दुनिया में साफ़ दिखाई देती हैं। लेकिन नादान लोग वक़्त मुक़र्रर करने के इस तरीक़े पर आम तौर से यह एतिराज़ करते हैं कि दो ध्रुवों (Poles) के क़रीब जहाँ रात और दिन कई-कई महीनों के होते हैं, वहाँ वक़्त के तय करने का यह तरीक़ा कैसे चल सकेगा? हालाँकि यह ऐतिराज़ असल में जुगराफ़िया के इल्म (भूगोल शास्त्र) की सरसरी जानकारी का नतीजा है। हक़ीक़त में वहाँ न छः महीनों की रात इस मानी में होती है और न छः महीनों का दिन, जिस मानी में हम खत्ते-इसतिवा (भू-मध्य) रेखा के आस-पास रहनेवाले लोग दिन और रात के मानी के लफ़्ज़ का इस्तेमाल करते हैं। चाहे रात का दौर हो या दिन का, बहरहाल सुबह और शाम की निशानियाँ वहाँ पूरी बाक़ायदगी के साथ उफ़ुक़ (क्षितिज) पर नुमायाँ होती हैं और उन्हीं के लिहाज़ से वहाँ के लोग हमारी तरह अपने सोने-जागने, काम करने और सैर-सपाटे करने का वक़्त मुक़र्रर करते हैं। जब घड़ियों का रिवाज आम न था, तब भी फ़िनलैण्ड, नार्वे और ग्रीनलैण्ड वग़ैरा मुल्कों के लोग अपने वक़्त मालूम करते ही थे और इसका ज़रीआ यही उफ़ुक़ (क्षितिज) की निशानियाँ थीं। इसलिए जिस तरह दूसरे तमाम मामलों में ये निशानियाँ उनके लिए वक़्त मुक़र्रर करने का काम देती हैं, उसी तरह नमाज़, सेहरी और इफ़्तार के मामले में भी दे सकती हैं।

194. रात तक रोज़ा पूरा करने से मुराद यह है कि जहाँ रात की सरहद शुरू होती है, वहीं तुम्हारे रोज़े की सरहद ख़त्म हो जाए। ज़ाहिर है कि रात की सरहद सूरज डूबने से शुरू होती है, इसलिए सूरज डूबने ही के साथ इफ़्तार कर लेना चाहिए। सेहर (प्रातः बेला) और इफ़्तार की सही निशानी यह है कि जब रात के आख़िरी हिस्से में उफ़ुक़ (क्षितिज) के पूरबी किनारे पर सुबह के उजाले की बारीक़-सी धारी उभरकर ऊपर उठने लगे, तो सेहरी का वक़्त ख़त्म हो जाता है और जब दिन के आख़िरी हिस्से में पूरब की तरफ़ से रात की स्याही बुलन्द होती नज़र आए, तो इफ़्तार का वक़्त आ जाता है। आजकल लोग सेहरी और इफ़्तार दोनों के मामले में बहुत ज़्यादा एहतियात करने की वजह से कुछ ज़्यादा ही सख़्ती बरतने लगे हैं। मगर शरीअत ने इन दोनों वक़्तों की कोई ऐसी हदबन्दी नहीं की है, जिससे चन्द सेकंड या चन्द मिनट इधर-उधर हो जाने से आदमी का रोज़ा ख़राब हो जाता हो। सेहर (प्रातः बेला) में रात की स्याही से सुबह की सफ़ेदी का उभर आना अच्छी-ख़ासी गुंजाइश अपने अन्दर रखता है और एक शख़्स के लिए यह बिलकुल सही है कि अगर ठीक फ़जूर के तुलूअ़ होने के वक़्त उसकी आँख खुली हो तो वह जल्दी से उठकर कुछ खा-पी ले। हदीस में आता है कि नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "अगर तुममें से कोई शख़्स सेहरी खा रहा हो और अज़ान की आवाज़ आ जाए तो फ़ौरन छोड़ न दे, बल्कि

الَّيۡلِ ۚ وَلَا تُبَاشِرُوۡهُنَّ وَاَنۡتُمۡ عٰكِفُوۡنَ ۙ فِى
الۡمَسٰجِدِ ؕ تِلۡكَ حُدُوۡدُ اللّٰهِ فَلَا تَقۡرَبُوۡهَا ؕ كَذٰلِكَ
يُبَيِّنُ اللّٰهُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمۡ يَتَّقُوۡنَ ﴿۱۸۷﴾ وَلَا

मस्जिदों में एतिकाफ़ (एकान्तवास) में हो तो बीवियों से मुबाशरत (संभोग) न करो।[195] ये अल्लाह की बाँधी हुई हदें हैं, इनके क़रीब न फटकना।[196] इस तरह अल्लाह अपने अहकाम (आदेश) लोगों के लिए खोल-खोलकर बयान करता है। उम्मीद है कि वे ग़लत रवैये से बचेंगे।

अपनी ज़रूरत भर खा-पी ले। इसी तरह इफ़्तार के वक़्त में भी सूरज डूबने के बाद ख़ाह-म-ख़ाह दिन की रौशनी ख़त्म होने का इन्तिज़ार करते रहने की कोई ज़रूरत नहीं। नबी *(सल्ल॰)* सूरज डूबते ही बिलाल *(रज़ि॰)* को आवाज़ देते थे कि 'लाओ हमारा शरबत।' बिलाल *(रज़ि॰)* अर्ज़ करते कि ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल॰)*! अभी तो दिन चमक रहा है। आप फ़रमाते कि "जब रात की स्याही पूरब से उठने लगे, तो रोज़े का वक़्त ख़त्म हो जाता है।"

195. एतिक़ाफ़ (एकान्तवास) की हालत में होने का मतलब यह है कि आदमी रमज़ान के आख़िरी दस दिन मस्जिद में रहे और ये दस दिन अल्लाह के ज़िक्र और उसकी याद के लिए ख़ास कर दे। इस एतिकाफ़ की हालत में आदमी अपनी इनसानी ज़रूरतों के लिए मस्जिद से बाहर जा सकता है, मगर लाज़िम है कि वह अपने आपको शहवानी (वासनापूर्ण) लज़्ज़तों से रोके रखे।

196. यह नहीं फ़रमाया कि इन हदों से आगे न बढ़ना, बल्कि यह कहा कि इनके क़रीब न फटकना। इसका मतलब यह है कि जिस जगह से मासियत (गुनाह) की हद शुरू होती है, ठीक उसी जगह के आख़िरी किनारों पर घूमते रहना आदमी के लिए ख़तरनाक है। भलाई और सलामती इसमें है कि आदमी सरहद से दूर ही रहे, ताकि भूले से भी क़दम उसके पार न चला जाए। यही बात उस हदीस में भी आई है जिसमें नबी *(सल्ल॰)* ने फ़रमाया कि "हर बादशाह की हिमा होती है और अल्लाह की हिमा उसकी वे हदें हैं जो हराम व हलाल का फ़र्क़ करती हैं तो जो जानवर उसके क़रीब चरता रहेगा तो मुमकिन है कि वह एक दिन उसमें दाख़िल हो जाए।" अस्ल अरबी में 'हिमा' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। 'हिमा' उस चरागाह को कहते हैं जिसमें आम जनता के दाख़िल होने पर कोई रईस या बादशाह रोक लगा देता है। इस मिसाल को इस्तेमाल करते हुए नबी *(सल्ल॰)* फ़रमाते हैं, "हर बादशाह की एक हिमा (चरागाह) होती है और अल्लाह की हिमा उसकी वे हदें हैं, जिनसे उसने हलाल व हराम और फ़रमाँबरदारी व नाफ़रमानी का फ़र्क़ क़ायम किया है। जो जानवर हिमा के चारों तरफ़ ही चरता रहेगा, हो सकता है कि एक दिन वह हिमा के अन्दर दाख़िल हो जाए।" अफ़सोस है कि बहुत-से लोग जो शरीअत की रूह से वाक़िफ़ नहीं हैं, हमेशा इजाज़त की आख़िरी हदों तक ही जाने पर ज़िद

تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَتُدْلُوْا بِهَآ اِلَى
الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ
وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿١٨٨﴾ يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْاَهِلَّةِ ۭ قُلْ هِيَ
مَوَاقِيْتُ لِلنَّاسِ وَالْحَجِّ ۭ وَلَيْسَ الْبِرُّ بِاَنْ تَاْتُوا

(188) और तुम लोग न तो आपस में एक-दूसरे के माल ग़लत तरीक़े से खाओ और न हाकिमों के आगे उनको इस मक़सद से पेश करो कि तुम्हें दूसरों के माल का कोई हिस्सा जान-बूझकर ज़ालिमाना (अन्यायपूर्ण) तरीक़े से खाने का मौक़ा मिल जाए।[197]

(189) लोग तुमसे चाँद की घटती-बढ़ती शक्लों के बारे में पूछते हैं। कहो : यह लोगों के लिए तारीख़ों (तिथियों) के तअय्युन (निर्धारण) की और हज की निशानियाँ

करते हैं और बहुत-से उलमा और बुज़ुर्ग भी इसी ग़रज़ के लिए सनदें ढूँढ़-ढूँढ़ कर जाइज़ होने की आख़िरी हदें उन्हें बताया करते हैं, ताकि वे उस फ़र्क़ करनेवाली बारीक लाइन पर ही घूमते रहें, जहाँ फ़रमाँबरदारी और नाफ़रमानी के बीच सिर्फ़ बाल बराबर फ़ासला रह जाता है। इसी का नतीजा है कि बड़ी तादाद में लोग गुनाह और गुनाह से भी बढ़कर गुमराही में पड़ रहे हैं, क्योंकि इन बारीक सरहदी लाइनों की पहचान और इनके किनारे पहुँचकर अपने आपको क़ाबू में रखना हर एक के बस का काम नहीं है।

197. इस आयत का एक मतलब तो यह है कि हाकिमों को रिश्वत देकर नाजाइज़ फ़ायदे उठाने की कोशिश न करो और दूसरा मतलब यह है कि जब तुम ख़ुद जानते हो कि माल दूसरे आदमी का है, तो सिर्फ़ इसलिए कि उसके पास अपनी मिलकियत का कोई सुबूत नहीं है या इस वजह से कि किसी ऐंच-पेंच से तुम उसे खा सकते हो, इसका मुक़द्दमा अदालत में न ले जाओ। हो सकता है कि अदालत का जज मुक़द्दमे की रिपोर्ट के लिहाज़ से वह माल तुमको दिलवा दे, मगर जज का ऐसा फ़ैसला अस्ल में ग़लत बनाई हुई रिपोर्ट से धोखा खा जाने का नतीजा होगा। इसलिए अदालत से उसकी मिलकियत का हक़ पा लेने के बावजूद हक़ीक़त में तुम उसके जाइज़ मालिक न बन जाओगे। अल्लाह की नज़र में वह तुम्हारे लिए हराम ही रहेगा। हदीस में आया है कि नबी *(सल्ल॰)* ने फ़रमाया—

''मैं बहरहाल एक इनसान ही तो हूँ। हो सकता है कि तुम एक मुक़द्दमा मेरे पास लाओ और तुममें से एक फ़रीक़ (पक्ष) दूसरे के मुक़ाबले में ज़्यादा चर्बज़बान (बातूनी) हो और उसकी दलीलें सुनकर मैं उसके हक़ में फ़ैसला कर दूँ। मगर यह समझ लो कि अगर इस तरह अपने किसी भाई के हक़ में से कोई चीज़ तुमने मेरे फ़ैसले के ज़रीए से हासिल की तो अस्ल में दोज़ख़ का एक टुकड़ा हासिल करोगे।''

الْبُيُوْتَ مِنْ ظُهُوْرِهَا وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنِ اتَّقٰى ۚ وَاْتُوا
الْبُيُوْتَ مِنْ اَبْوَابِهَا ۪ وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿۱۸۹﴾

हैं।[198] और उनसे यह भी कहो : यह कोई नेकी का काम नहीं है कि तुम अपने घरों में पीछे की तरफ़ से दाख़िल होते हो, नेकी तो अस्ल में यह है कि आदमी अल्लाह की नाराज़ी से बचे। लिहाज़ा तुम अपने घरों में दरवाज़े ही से आया करो। अलबत्ता अल्लाह से डरते रहो, शायद कि तुम्हें कामयाबी हासिल हो जाए।[199]

---

198. चाँद का घटना-बढ़ना एक ऐसा मंज़र है, जिसने हर ज़माने में इनसान के ध्यान को अपनी तरफ़ खींचा है और उसके बारे में तरह-तरह के अंधविश्वास और ख़याल और रस्मो-रिवाज दुनिया की क़ौमों में राइज (प्रचलित) रहे हैं और अब तक पाए जाते हैं। अरबों में भी इस तरह के औहाम (अंधविश्वास) मौजूद थे। चाँद से अच्छे या बुरे शगुन लेना, कुछ तारीख़ों को मुबारक (शुभ) और कुछ को नामुबारक (अशुभ) समझना, किसी तरीख़ को सफ़र के लिए और किसी को काम शुरू करने के लिए और किसी को शादी-ब्याह के लिए मनहूस या मुबारक ख़याल करना और यह समझना कि चाँद निकलने और डूबने और उसकी कमी व बेशी और उसकी हरकत और उसके गहन (चन्द्र-ग्रहण) का कोई असर इनसान की क़िस्मतों पर पड़ता है, ये सब बातें दूसरी जाहिल क़ौमों की तरह अरबवालों में भी पाई जाती थीं और इस सिलसिले में मुख़्तलिफ़ अन्धविश्वासों से भरी रस्में उनमें पाई जाती थीं। इन्हीं चीज़ों की हक़ीक़त नबी *(सल्ल.)* से मालूम की गई। जवाब में अल्लाह ने बताया कि यह घटता-बढ़ता चाँद तुम्हारे लिए इसके सिवा कुछ नहीं कि एक क़ुदरती जंतरी है, जो आसमान में ज़ाहिर होकर दुनिया-भर के लोगों को एक ही वक़्त में उसकी तारीख़ों (तिथियों) का हिसाब बताती रहती है। हज का ज़िक्र ख़ास तौर पर इसलिए किया गया कि अरबों की मज़हबी, तहज़ीबी और मआशी (माली) ज़िन्दगी में इनकी अहमियत सबसे बढ़कर थी। साल के चार महीने हज और उमरे से जुड़े हुए थे। इन महीनों में लड़ाइयाँ बन्द रहतीं। रास्ते महफ़ूज़ रहते और अम्न की वजह से कारोबार तरक़्क़ी पाते थे।

199. जो अंधविश्वास भरी रस्में अरब में पाई जाती थीं, उनमें से एक रस्म यह भी थी कि जब हज के लिए एहराम बाँध लेते तो अपने घरों में दरवाज़े से दाख़िल न होते थे, बल्कि पीछे से दीवार कूदकर या दीवार में खिड़की-सी बनाकर दाख़िल होते थे, इसी तरह वे सफ़र से वापस आकर भी घरों में पीछे से दाख़िल हुआ करते थे। इस आयत में न सिर्फ़ इस रस्म का रद्द किया गया है, बल्कि तमाम अंधविश्वासों पर यह कहकर चोट की गई है कि नेकी अस्ल में अल्लाह से डरने और उसके हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी से बचने का नाम है। उन बेमानी रस्मों को नेकी से कोई वास्ता नहीं, जो सिर्फ़ बाप-दादा की अन्धी पैरवी में अपनाई जा रही है, और जिनका इनसान की ख़ुशक़िस्मती और बदक़िस्मती से कोई ताल्लुक़ नहीं है।

وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا
تَعْتَدُوا إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ ﴿١٩٠﴾ وَاقْتُلُوهُمْ
حَيْثُ ثَقِفْتُمُوهُمْ وَأَخْرِجُوهُمْ مِّنْ حَيْثُ أَخْرَجُوكُمْ
وَالْفِتْنَةُ أَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ ۚ وَلَا تُقَاتِلُوهُمْ عِندَ
الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتَّىٰ يُقَاتِلُوكُمْ فِيهِ ۖ فَإِن قَاتَلُوكُمْ

(190) और तुम अल्लाह की राह में उन लोगों से लड़ो, जो तुमसे लड़ते हैं,[200] मगर ज़्यादती न करो कि अल्लाह ज़्यादती करनेवालों को पसन्द नहीं करता।[201] (191) उनसे लड़ो जहाँ भी तुम्हारी उनसे मुठभेड़ हो जाए और उन्हें निकालो, जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है, इसलिए कि क़त्ल हालाँकि बुरा है, मगर फ़ितना (उपद्रव) उससे भी ज़्यादा बुरा है।[202] और मस्जिदे-हराम (काबा) के क़रीब जब तक वे तुमसे न लड़ें तुम भी न

200. यानी जो लोग ख़ुदा के काम में तुम्हारा रास्ता रोकते हैं, और इस वजह से तुम्हारे दुश्मन बन गए हैं कि तुम ख़ुदा की हिदायत के मुताबिक़ ज़िन्दगी के निज़ाम का सुधार करना चाहते हो, और इस सुधार के काम में रुकावट पैदा करने के लिए ज़ोर-ज़बरदस्ती और ज़ुल्म की ताक़तें इस्तेमाल कर रहे हैं, उनसे जंग करो। इससे पहले जब तक मुसलमान कमज़ोर और बिखरे हुए थे, उनको सिर्फ़ तबलीग़ (प्रचार) का हुक्म था और दुश्मनों के ज़ुल्मो-सितम पर सब्र करने की हिदायत की जाती थी। अब मदीना में उनकी छोटी-सी शहरी रियासत बन जाने के बाद पहली मरतबा हुक्म दिया जा रहा है कि जो लोग सुधार की इस दावत की राह में हथियारबंद रुकावटें डालते हैं, उनको तलवार का जवाब तलवार से दो। इसके बाद ही बद्र की लड़ाई पेश आई और लड़ाइयों का सिलसिला शुरू हो गया।

201. यानी तुम्हारी जंग न तो अपनी माद्दी अग़राज़ (भौतिक उद्देश्यों) के लिए हो, न उन लोगों पर हाथ उठाओ जो इस सच्चे दीन के रास्ते में रुकावटें नहीं पैदा करते और न लड़ाई में, जाहिलियत के तरीक़े इस्तेमाल करो। औरतों, बच्चों, बूढ़ों और ज़ख़्मियों पर हाथ उठाना, दुश्मन के क़त्ल किए गए लोगों के नाक-कान या जिस्म का कोई हिस्सा काटना, खेतियों और मवेशियों को ख़ाह-म-ख़ाह बरबाद करना और दूसरे तमाम वहशियाना और ज़ालिमाना काम 'हद से गुज़रने' की तारीफ़ (परिभाषा) में आते हैं और हदीस में इन सब कामों से रोका गया है। आयत का मक़सद यह है कि ताक़त का इस्तेमाल वहीं किया जाए, जहाँ वह बिलकुल ज़रूरी हो और उसी हद तक किया जाए, जितनी उसकी ज़रूरत हो।

202. यहाँ 'फ़ितने' का लफ़्ज़ उसी मानी में इस्तेमाल हुआ है, जिसमें अंग्रेज़ी का लफ़्ज़ पर्सिक्यूशन

فَاقْتُلُوْهُمْ ۭ كَذٰلِكَ جَزَاۗءُ الْكٰفِرِيْنَ ۝١٩١ فَاِنِ انْتَهَوْا
فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝١٩٢ وَقٰتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ
فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ لِلّٰهِ ۭ فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا

लड़ो, मगर जब वे वहाँ लड़ने से न चूकें तो तुम भी बेझिझक उन्हें मारो कि ऐसे कुफ़्र (अधर्म) करनेवालों की यही सज़ा है। (192) फिर अगर वे रुक जाएँ, तो जान लो कि अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[203]

(193) तुम उनसे लड़ते रहो, यहाँ तक कि फ़ितना (उपद्रव) बाक़ी न रहे और दीन अल्लाह के लिए हो जाए।[204] फिर अगर वे रुक जाएँ, तो समझ लो कि ज़ालिमों के

(Persecution) इस्तेमाल होता है, यानी किसी गरोह या शख़्स को सिर्फ़ इस वजह से ज़ुल्मो-सितम का निशाना बनाना कि उसने मौजूदा वक़्त के राइज ख़यालों (विचारों) और नज़रियों (दृष्टिकोणों) की जगह कुछ दूसरे ख़यालों और नज़रियों को हक़ पाकर क़बूल कर लिया है और वह तनक़ीदों और बतलीग़ के ज़रीए से उस वक़्त पाए जाने वाले समाज के निज़ाम में सुधार की कोशिश करता है। आयत का मंशा यह है कि बेशक इनसानी ख़ून बहाना बहुत बुरा काम है, लेकिन जब कोई इनसानी गरोह ज़बरदस्ती अपनी सोच और अपने नजरिए को डरा-धमकाकर दूसरों पर थोपने की कोशिश करे और लोगों को हक़ क़बूल करने से ताक़त के ज़रीए से रोके तब्दीली की जाइज़ और मुनासिब कोशिशों का मुक़ाबला दलीलों से करने के बजाय हैवानी (पशुत्व) ताक़त से करने लगे, तो वह क़त्ल के मुक़ाबले में ज़्यादा बड़ी बुराई करता है और ऐसे गरोह को तलवार के ज़ोर से हटा देना बिलकुल जाइज़ है।

203. यानी तुम जिस ख़ुदा पर ईमान लाए हो, उसकी सिफ़त (गुण) यह है कि बुरे से बुरे मुजरिम और गुनाहगार को भी माफ़ कर देता है, जबकि वह मुजरिम अपना बाग़ियाना रवैया छोड़ दे। यही सिफ़त तुम अपने अन्दर भी पैदा करो। इसी लिए कहा गया कि 'तुम लोग अल्लाह की ख़ूबियाँ अपने अन्दर पैदा करो' तुम्हारी लड़ाई इन्तिक़ाम की प्यास बुझाने के लिए न हो, बल्कि ख़ुदा के दीन का रास्ता साफ़ करने के लिए हो। जब तक कोई गरोह ख़ुदा के रास्ते में रुकावटें पैदा करे, बस उसी वक़्त तक उससे तुम्हारी लड़ाई भी रहे और जब वह अपना रवैया छोड़ दे तो तुम्हारा हाथ भी फिर उस पर न उठे।

204. यहाँ 'फ़ितने' का लफ़्ज़ ऊपर के मानी से कुछ अलग मानी में इस्तेमाल हुआ है। मौक़ा-महल से साफ़ ज़ाहिर है कि इस मक़ाम पर 'फ़ितने' से मुराद वह हालत है जिसमें दीन (धर्म) अल्लाह के बजाय किसी और के लिए हो और लड़ाई का मक़सद यह है कि यह फ़ितना ख़त्म हो जाए और दीन सिर्फ़ अल्लाह के लिए हो। फिर जब हम 'दीन' लफ़्ज़ की तहक़ीक़ (मालूम) करते हैं

عُدْوَانَ اِلَّا عَلَى الظّٰلِمِيْنَ ﴿١٩٣﴾ اَلشَّهْرُ الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ

अलावा और किसी पर हाथ उठाना जाइज़ नहीं।[205]

(194) हराम (प्रतिष्ठित) महीने का बदला हराम महीना ही है और तमाम हुर्मतों

तो मालूम होता है कि अरबी ज़बान में दीन के मानी फ़रमाँबरदारी करना है और इस्लामी इस्तिलाह में इससे मुराद ज़िन्दगी गुज़ारने का वह निज़ाम है जो किसी को सबसे बड़ा और सबसे ऊपर मानकर उसके हुक्मों और क़ानूनों की पैरवी में अपनाया जाए। इस लिए 'दीन' लफ़्ज़ के इस मानी से यह बात ख़ुद वाज़ेह हो जाती है कि समाज की वह हालत जिसमें बन्दों पर बन्दों की ख़ुदाई और हुकूमत क़ायम हो और जिसमें अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ ज़िन्दगी बसर करना मुमकिन न रहे, फ़ितने की हालत है। और इस्लामी जंग का मक़सद यह है कि इस फ़ितने की जगह ऐसी हालत क़ायम हो जिसमें बन्दे सिर्फ़ ख़ुदा के क़ानून के पाबन्द होकर रहे।

205. रुक जाने से मुराद इनकार करनेवालों का अपने कुफ़्र और शिर्क से रुक जाना नहीं, बल्कि 'फ़ितने' से रुक जाना है। काफ़िर, मुशरिक, दहरिया (नास्तिक) सभी को इख़्तियार है कि अपना जो अक़ीदा रखता है, रखे और जिसकी चाहे इबादत करे या किसी की न करे। इस गुमराही से उसको निकालने के लिए हम उसे समझाएँ-बुझाएँगे और नसीहत करेंगे, मगर उससे लड़ेंगे नहीं। लेकिन उसे यह हक़ हरगिज़ नहीं है कि ख़ुदा की ज़मीन पर ख़ुदा के क़ानून के बजाय अपने झूठे क़ानून जारी करे और ख़ुदा के बन्दों को अल्लाह के अलावा किसी और का बन्दा बनाए। इस फ़ितने को दूर करने के लिए मौक़ा और इमकान के मुताबिक़ तबलीग़ और ताक़त, दोनों से काम लिया जाएगा और ईमानवाला उस वक़्त तक चैन से न बैठेगा, जब तक कुफ़्र (अधर्म) करनेवाले लोग अपने इस फ़ितने से बाज़ न आ जाएँ।

और यह जो फ़रमाया कि "अगर वे बाज़ आ जाएँ, तो ज़ालिमों के सिवा किसी पर हाथ उठाना सही नहीं"; तो इससे यह इशारा निकलता है कि जब बातिल निज़ाम की जगह हक़ का निज़ाम क़ायम हो जाए तो आम लोगों को तो माफ़ कर दिया जाएगा, लेकिन ऐसे लोगों को सज़ा देने में हक़ को माननेवाले बिलकुल सच्चाई पर होंगे जिन्होंने अपनी हुकूमत के ज़माने में हक़ के निज़ाम का रास्ता रोकने के लिए ज़ुल्मो-सितम की हद कर दी हो, हालाँकि इस मामले में भी अच्छे और नेक ईमानवालों को ज़ेब (शोभा) यही देता है कि माफ़ी और दरगुज़र से काम लें और फ़तह हासिल करने के बाद ज़ालिमों से बदला न लें। मगर जिनके जुर्मों की लिस्ट बहुत ही ज़्यादा काली हो उनको सज़ा देना बिलकुल सही है और इस इजाज़त से ख़ुद नबी *(सल्ल॰)* ने फ़ायदा उठाया है, जिनसे बढ़कर माफ़ और दरगुज़र करनेवाला कोई न था। चुनाँचे बद्र की लड़ाई के क़ैदियों में से उक़बा-बिन-अबी मुईत और नज़्र-बिन-हारिस का क़त्ल और मक्का की फ़तह के बाद नबी *(सल्ल॰)* का 17 आदमियों को आम माफ़ी से अलग रखना और फिर उनमें से चार को मौत की सज़ा देना, इसी इजाज़त की वजह से था।

الْحَرَامِ وَالْحُرُمٰتُ قِصَاصٌ ؕ فَمَنِ اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ فَاعْتَدُوْا عَلَيْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ ۪ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِيْنَ ﴿۱۹۴﴾ وَاَنْفِقُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى

(प्रतिष्ठाओं) का लिहाज़ बराबरी के साथ होगा।[206] तो जो तुमपर हाथ उठाए, तुम भी उसी तरह उसपर हाथ उठाओ, अलबत्ता अल्लाह से डरते रहो और यह जान रखो कि अल्लाह उन्हीं लोगों के साथ है जो उसकी हदें तोड़ने से बचते हैं।

(195) अल्लाह की राह में ख़र्च करो और अपने हाथों अपने आपको हलाकत में न

---

206. अरबवालों में हज़रत इबराहीम *(अलै.)* के वक़्त से यह क़ायदा (नियम) चला आ रहा था कि अरबी के तीन महीने ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा और मुहर्रम हज के लिए ख़ास थे और रजब का महीना उमरे के लिए ख़ास किया गया था, और इन चारों महीनों में जंग (युद्ध) क़त्ल और लूट-पाट मना थी, ताकि काबा की ज़ियारत करनेवाले अमन और सुकून के साथ ख़ुदा के घर तक जाएँ और अपने घरों को वापस हो सकें। इस वजह से इन महीनों को मुहतरम (आदरणीय) महीना कहा जाता था, यानी एहतिरामवाले महीने। आयत का मंशा यह है कि मुहतरम (आदरणीय) महीने के एहतिराम का लिहाज़ कुफ़्फ़ार करें, तो मुसलमान भी करें और अगर वे इस हुरमत (प्रतिष्ठा) को नज़रअंदाज़ करके किसी हराम महीने में मुसलमानों पर हाथ उठा दें, तो फिर मुसलमान भी हराम महीने में बदला लेने का हक़ रखते हैं।

इस इजाज़त की ज़रूरत ख़ास तौर पर इस वजह से पेश आ गई थी कि अरब के लोगों ने लड़ाई-झगड़ों और लूट-मार की ख़ातिर नसी का क़ायदा बना रखा था, जिसके मुताबिक़ वे अगर किसी से बदला लेने के लिए या लूट-मार करने के लिए लड़ाई छेड़ना चाहते थे तो किसी हराम महीने में उस पर छापा मार देते और फिर उस महीने की जगह किसी दूसरे हलाल महीने को हराम करके मानो इस हुरमत का बदला पूरा कर देते थे। इस वजह से मुसलमानों के सामने यह सवाल पैदा हुआ कि अगर दुश्मन अपने 'नसी' के बहाने को काम में लाकर किसी हराम महीने में जंगी कार्रवाई कर बैठें तो इस सूरत में क्या किया जाए। इसी सवाल का जवाब इस आयत में दिया गया है।

مۡ التَّهۡلُكَةِ ۛۚ وَاَحۡسِنُوۡا ۛۚ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الۡمُحۡسِنِيۡنَ ﴿۱۹۵﴾
وَاَتِمُّوا الۡحَجَّ وَالۡعُمۡرَةَ لِلّٰهِ ؕ فَاِنۡ اُحۡصِرۡتُمۡ فَمَا
اسۡتَيۡسَرَ مِنَ الۡهَدۡىِ ۚ وَلَا تَحۡلِقُوۡا رُءُوۡسَكُمۡ حَتّٰى
يَبۡلُغَ الۡهَدۡىُ مَحِلَّهٗ ؕ فَمَنۡ كَانَ مِنۡكُمۡ مَّرِيۡضًا

डालो।[207] एहसान का तरीक़ा अपनाओ कि अल्लाह एहसान करनेवालों को पसन्द करता है।[208]

(196) अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए जब हज और उमरे की नीयत करो तो उसे पूरा करो और अगर कहीं घिर जाओ तो जो क़ुरबानी मयस्सर हो, अल्लाह के हुज़ूर में पेश करो।[209] और अपने सिर न मूँडो जब तक कि क़ुरबानी अपनी जगह न पहुँच जाए।[210]

207. अल्लाह की राह में ख़र्च करने से मुराद अल्लाह के दीन को क़ायम करने की कोशिश में माल-दौलत का क़ुरबान करना है। आयत का मतलब यह है कि अगर तुम ख़ुदा के दीन को सरबुलंद करने के लिए अपना माल ख़र्च न करोगे और उसके मुक़ाबले में अपने ख़ुद के फ़ायदे को अज़ीज़ (प्रिय) रखोगे, तो यह तुम्हारे लिए दुनिया में भी बरबादी की वजह होगा और आख़िरत में भी। दुनिया में तुम इस्लाम के दुश्मनों के हाथों मग़लूब (परास्त) और रुसवा होकर रहोगे और आख़िरत में ख़ुदा तुमसे सख़्त पूछ-गच्छ करेगा।

208. 'एहसान' का लफ़्ज़ हुस्न से बना है जिसका मतलब है किसी काम को ख़ूबी के साथ करना। अमल का एक दरजा यह है कि आदमी के सुपुर्द जो ख़िदमत हो, उसे बस कर दे और दूसरा दरजा यह है कि उसे ख़ूबी के साथ करे। अपनी पूरी क़ाबिलियत और अपने तमाम वसाइल (संसाधन) उसमें लगा दे और दिलो-जान से उसे पूरा करने की कोशिश करे। पहला दरजा सिर्फ़ फ़रमाँबरदारों का दरजा है जिसके लिए सिर्फ़ 'तक़वा' और डर काफ़ी हो जाता है और दूसरा दरजा एहसान का दरजा है जिसके लिए मुहब्बत और गहरे दिली लगाव की ज़रूरत होती है।

209. यानी अगर रास्ते में कोई ऐसी वजह पेश आ जाए, जिसकी वजह से आगे जाना नामुमकिन हो और मजबूर होकर रुक जाना पड़े, तो ऊँट, गाय, बकरी में से जो जानवर भी मिल सके, अल्लाह के लिए क़ुरबान कर दो।

210. इस बात में उलमा की राएँ अलग-अलग हैं कि क़ुरबानी के अपनी जगह पहुँच जाने से क्या मुराद है। हनफ़ी फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) के नज़दीक इससे मुराद हरम है, यानी मगर आदमी रास्ते में रुक जाने पर मजबूर हो तो अपनी क़ुरबानी का जानवर या उसकी क़ीमत भेज दे, ताकि उसकी तरफ़ से हरम की हदों में क़ुरबानी की जाए। और इमाम मालिक और शाफ़ई *(रह.)* के

اَوْ بِهٖۤ اَذًى مِّنْ رَّاْسِهٖ فَفِدْيَةٌ مِّنْ صِيَامٍ اَوْ
صَدَقَةٍ اَوْ نُسُكٍ ۚ فَاِذَاۤ اَمِنْتُمْ ۗ فَمَنْ تَمَتَّعَ بِالْعُمْرَةِ
اِلَى الْحَجِّ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ ۚ فَمَنْ لَّمْ
يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ فِى الْحَجِّ وَسَبْعَةٍ اِذَا
رَجَعْتُمْ ؕ تِلْكَ عَشَرَةٌ كَامِلَةٌ ؕ ذٰلِكَ لِمَنْ لَّمْ يَكُنْ
اَهْلُهٗ حَاضِرِى الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ

मगर जो शख़्स मरीज़ हो या जिसके सिर में कोई तकलीफ़ हो और इस वजह से अपना सिर मुँडवा ले तो चाहिए कि फ़िदया (जुर्माने) के तौर पर रोज़े रखे या सदक़ा दे या क़ुरबानी करे।[211] फिर अगर तुम्हें अम्न नसीब हो जाए[212] (और तुम हज से पहले मक्का पहुँच जाओ) तो जो शख़्स तुममें से हज का वक़्त आने तक उमरे से फ़ायदा उठाए, वह अपनी हैसियत के मुताबिक़ क़ुरबानी दे, और अगर क़ुरबानी मयस्सर न हो तो तीन रोज़े हज के ज़माने में और सात घर पहुँचकर, इस तरह पूरे दस रोज़े रख ले। यह छूट उन लोगों के लिए है जिनके घर-बार मस्जिदे-हराम (काबा) के क़रीब न हों।[213] अल्लाह के

नज़दीक जहाँ आदमी घिर गया हो, वहीं क़ुरबानी कर देना मुराद है।
सिर मूँडने से मुराद हजामत है। मतलब यह है कि जब तक क़ुरबानी न कर लो, हजामत न करवाओ।

211. हदीस से मालूम होता है कि नबी *(सल्ल॰)* ने ऐसी सूरत में तीन दिन के रोज़े रखने या छह मुहताज को खाना खिलाने या कम-से-कम एक बकरी ज़ब्ह करने का हुक्म दिया है।

212. यानी वह सबब दूर हो जाए, जिसकी वजह से मजबूरन तुम्हें रास्ते में रुक जाना पड़ा था। चूँकि उस ज़माने में हज का रास्ता बन्द होने और हाजियों के रुक जाने की वजह ज़्यादातर इस्लाम के दुश्मन क़बीलों की रुकावट ही थी, इसलिए अल्लाह तआला ने ऊपर की आयत में 'घिर जाने' और उसके मुक़ाबले में यहाँ 'अमन हासिल हो जाने' के लफ़्ज़ इस्तेमाल किए हैं। लेकिन जिस तरह 'घिर जाने' के मानी में दुश्मन की रुकावटों के अलावा वे दूसरी तमाम रुकावटें शामिल हैं, उसी तरह 'अमन हासिल हो जाने' का मतलब भी 'हर रुकावट वाली चीज़ का दूर हो जाना' है।

213. अरब के जाहिलियत के ज़माने में यह ख़याल किया जाता था कि एक ही सफ़र में हज और

ع ٨ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿١٩٦﴾ اَلْحَجُّ اَشْهُرٌ
مَّعْلُوْمٰتٌ ۚ فَمَنْ فَرَضَ فِيْهِنَّ الْحَجَّ فَلَا رَفَثَ
وَلَا فُسُوْقَ ۙ وَلَا جِدَالَ فِي الْحَجِّ ۗ وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ
خَيْرٍ يَّعْلَمْهُ اللّٰهُ ۭ وَتَزَوَّدُوْا فَاِنَّ خَيْرَ الزَّادِ

इन हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी से बचो और ख़ूब जान लो कि अल्लाह सख़्त सज़ा देनेवाला है।

(197) हज के महीने सबको मालूम हैं। जो शख़्स उन मुक़र्रर महीनों में हज का इरादा करे, उसे ख़बरदार रहना चाहिए कि हज के दौरान में उससे कोई शहवानी (कामवासना का) काम[214], कोई बुरा काम[215], कोई लड़ाई-झगड़े की बात[216] न होने पाए, और जो अच्छे काम तुम करोगे, उसे अल्लाह जानता होगा। हज के सफ़र के लिए ज़ादे-राह (रास्ते का खाना और ज़रूरत के सामान) साथ ले जाओ। और सबसे अच्छा

उमरा दोनों अदा करना एक बड़ा गुनाह है। उनकी मनगढ़न्त शरीअत (क़ानून) में उमरे के लिए अलग और हज के लिए अलग सफ़र करना ज़रूरी था। अल्लाह तआला ने इस क़ैद को ख़त्म कर दिया और बाहर से आनेवालों के साथ यह रिआयत की कि वे एक ही सफ़र में उमरा और हज दोनों कर लें। लेकिन, जो लोग मक्का के आस-पास की मीक़ातों की हदों के अन्दर (निर्धारित सीमाओं में) रहते हों, उन्हें इस रिआयत से अलग कर दिया, क्योंकि उनके लिए उमरे का सफ़र अलग और हज का सफ़र अलग करना कुछ मुश्किल नहीं।

हज का ज़माना आने तक उमरे का फ़ायदा उठाने से मुराद यह है कि आदमी उमरा करके इहराम खोल ले और उन पाबन्दियों से आज़ाद हो जाए, जो इहराम की हालत में लगाई गई हैं। फिर जब हज के दिन आएँ तो नए सिरे से इहराम बाँध ले।

214. इहराम की हालत में शौहर और बीवी के बीच न सिर्फ़ जिस्मानी ताल्लुक़ मना है, बल्कि उनके बीच कोई ऐसी बातचीत भी न होनी चाहिए, जिसमें शहवानी (वासनात्मक) ख़्वाहिश मौजूद हो।

215. तमाम बुरे काम हालाँकि अपने आप में नाजाइज़ हैं, लेकिन इहराम की हालत में इनका गुनाह बहुत सख़्त है।

216. यहाँ तक कि नौकर को डाँटना जाइज़ नहीं।

التَّقْوٰى وَاتَّقُوْنِ يٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ ﴿١٩٧﴾ لَيْسَ عَلَيْكُمْ
جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ ؕ فَاِذَآ اَفَضْتُمْ
مِّنْ عَرَفٰتٍ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ عِنْدَ الْمَشْعَرِ الْحَرَامِ
وَاذْكُرُوْهُ كَمَا هَدٰىكُمْ ۚ وَاِنْ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ

ज़ादे-राह परहेज़गारी है। तो ऐ अक़्लवालो! मेरी नाफ़रमानी से बचो।[217] (198) और अगर हज के (सफ़र) साथ-साथ तुम अपने रब का फ़ज़्ल (यानी रोज़ी-रोज़गार) भी तलाश करते जाओ तो इसमें कोई हरज नहीं।[218] फिर जब अरफ़ात से चलो तो मशअरे-हराम (मुज़दलफ़ा) के पास ठहरकर अल्लाह को याद करो और उस तरह याद करो जिसकी हिदायत उसने तुम्हें दी है, वरना इससे पहले तो तुम लोग भटके हुए

217. जाहिलियत के ज़माने में हज के लिए रास्ते के लिए खाने-पीने और दीगर ज़रूरत का सामान साथ लेकर निकलने को एक दुनियादारी का काम समझा जाता था और एक मज़हबी आदमी से यह उम्मीद की जाती थी कि वह ख़ुदा के घर की तरफ़ दुनिया का सामान लिए बग़ैर जाएगा। इस आयत में उनके इस ग़लत ख़याल को रद्द किया गया है और उन्हें बताया गया है कि रास्ते का सामान न लेना कोई ख़ूबी नहीं है। असूल ख़ूबी अल्लाह का ख़ौफ़ और उसके हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी से बचना और ज़िन्दगी का पाक़ीज़ा होना है। जो मुसाफ़िर अपने अख़लाक़ दुरुस्त नहीं रखता और अल्लाह से बेख़ौफ़ होकर बुरे काम करता है, वह अगर रास्ते का सामान साथ न लेकर सिर्फ़ ज़ाहिर में फ़क़ीरी की नुमाइश करता है तो इसका कोई फ़ायदा नहीं। ख़ुदा और बन्दों दोनों की निगाह में वह रुसवा होगा और अपने इस मज़हबी काम की भी तौहीन करेगा, जिसके लिए वह सफ़र कर रहा है। लेकिन अगर उसके दिल में ख़ुदा का ख़ौफ़ हो और उसके अख़लाक़ दुरुस्त हों तो ख़ुदा के यहाँ भी उसकी इज़्ज़त होगी और लोग भी उसका एहतिराम करेंगे, चाहे उसका खाने का बर्तन खाने की चीज़ों से भरा हुआ हो।

218. यह भी पुराने अरबों का एक जाहिलाना तसव्वुर था कि हज के सफ़र के दौरान में रोज़ी कमाने के लिए काम करने को वे बुरा समझते थे, क्योंकि उनके नज़दीक रोज़ी कमाने का काम दुनियादारी का एक काम था और हज जैसे एक मज़हबी काम के दौरान में उसका करना नापसन्दीदा था। क़ुरआन इस ख़याल को रद्द करता है और उन्हें बताता है कि एक ख़ुदापरस्त आदमी जब ख़ुदा के क़ानून का एहतिराम करते हुए अपनी रोज़ी के लिए जिद्दोजुह्द करता है, तो असल में अपने रब का फ़ज़्ल (अनुग्रह) तलाश करता है, और कोई गुनाह नहीं अगर वह अपने रब की ख़ुशनूदी के लिए सफ़र करते हुए उसका फ़ज़्ल भी तलाश करता जाए।

الضَّآلِّيْنَ ﴿١٩٨﴾ ثُمَّ اَفِيْضُوْا مِنْ حَيْثُ اَفَاضَ
النَّاسُ وَاسْتَغْفِرُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٩٩﴾
فَاِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ
اٰبَآءَكُمْ اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًا ؕ فَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ

थे।[219] (199) फिर जहाँ से और सब लोग पलटते हैं, वहीं से तुम भी पलटो और अल्लाह से माफ़ी चाहो[220], यक़ीनन वह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है। (200) फिर जब अपने हज के अरकान को पूरा कर चुको तो जिस तरह पहले अपने बाप-दादाओं की चर्चा करते थे, उसी तरह अब अल्लाह का ज़िक्र करो, बल्कि उससे भी

219. यानी जाहिलियत के ज़माने में ख़ुदा की इबादत के साथ जिन दूसरे शिर्क और जाहिलियत से भरे कामों की मिलावट होती थी, उन सबको छोड़ दो और अब जो हिदायत अल्लाह ने तुम्हें बख़्शी है, उसके मुताबिक़ ख़ुलूस के साथ अल्लाह तआला की इबादत करो।

220. हज़रत इबराहीम और इसमाईल *(अलैहि॰)* के ज़माने से अरबों में हज का जाना-पहचाना तरीक़ा यह था कि 9 ज़िलहिज्जा को मिना से अरफ़ात जाते थे और रात को वहाँ से पलटकर मुज़दलफ़ा में ठहरते थे। मगर बाद के ज़माने में जब धीरे-धीरे क़ुरैश की ब्रह्मणियत क़ायम हो गई तो उन्होंने कहा : हम हरमवाले (काबेवाले) हैं, हमारे मरतबे से यह बात गिरी हुई है कि हम आम अरबवालों के साथ अरफ़ात तक जाएँ। इसलिए उन्होंने अपने लिए आम लोगों से अलग यह ख़ास तरीक़ा अपनाया कि मुज्दलफ़ा तक जाकर ही पलट आते और आम लोगों को अरफ़ात तक जाने के लिए छोड़ देते थे। फिर यही ख़ुसूसियत बनी-ख़ुज़ाआ, बनी-किनाना और उन दूसरे क़बीलों को भी हासिल हो गई, जिनके साथ क़ुरैश के शादी-ब्याह के रिश्ते थे। आख़िरकार नौबत यहाँ तक पहुँची कि जिन क़बीलों से क़ुरैश का समझौता था, उनकी शान भी आम अरबों से ऊँची हो गई और उन्होंने भी अरफ़ात जाना छोड़ दिया। इसी फ़ख़्र और घमंड का बुत इस आयत में तोड़ा गया है। आयत का ख़ास ख़िताब क़ुरैश और उनके रिश्तेदार और समझौतेवाले साथी क़बीलों की तरफ़ है और आम ख़िताब उन सबकी तरफ़ है, जो आइन्दा कभी इस क़िस्म की ख़ुसूसियत को अपने लिए ख़ास करना चाहें। उनको हुक्म दिया जा रहा है कि और सब लोग जहाँ तक जाते हैं, उन्हीं के साथ जाओ, उन्हीं के साथ ठहरो, उन्हीं के साथ पलटो और अब तक जाहिलियत के फ़ख़्र और घमंड की वजह से इबराहीमी तरीक़े की जो ख़िलाफ़वर्ज़ी तुम करते रहे हो, उस पर अल्लाह से माफ़ी माँगो।

رَبَّنَا اٰتِنَا فِى الدُّنْيَا وَمَا لَهٗ فِى الْاٰخِرَةِ مِنْ
خَلَاقٍ ۝ وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى
الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِى الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ
النَّارِ ۝ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ نَصِيْبٌ مِّمَّا كَسَبُوْا ؕ
وَاللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝ وَاذْكُرُوا اللّٰهَ فِىْٓ اَيَّامٍ
مَّعْدُوْدٰتٍ ؕ فَمَنْ تَعَجَّلَ فِىْ يَوْمَيْنِ فَلَآ اِثْمَ
عَلَيْهِ ۚ وَمَنْ تَاَخَّرَ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۙ لِمَنِ اتَّقٰى ؕ

बढ़कर।[221] (मगर अल्लाह को याद करनेवाले लोगों में भी बहुत फ़र्क़ है) उनमें से कोई तो ऐसा है जो कहता है कि ऐ हमारे रब! हमें दुनिया ही में सब कुछ दे दे। ऐसे आदमी के लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं। (201) और कोई कहता है कि ऐ हमारे रब! हमें दुनिया में भी भलाई दे और आख़िरत में भी भलाई दे, और आग के अज़ाब से हमें बचा। (202) ऐसे लोग अपनी कमाई के मुताबिक़ (दोनों जगह) हिस्सा पाएँगे और अल्लाह को हिसाब चुकाते कुछ देर नहीं लगती। (203) ये गिनती के कुछ दिन हैं जो तुम्हें अल्लाह की याद में बसर करने चाहिएँ। फिर जो कोई जल्दी करके दो ही दिन में वापस हो गया तो कोई हरज नहीं, और जो कुछ देर ज़्यादा ठहरकर पलटा तो भी कोई हरज नहीं।[222] शर्त यह है कि ये दिन उसने तक़्वा (परहेज़गारी) के साथ बसर किए हों

221. अरबवाले हज पूरा कर लेने के बाद मिना में जलसे (सभाएँ) करते थे, जिनमें हर क़बीले के लोग अपने बाप-दादा के कारनामे फ़ख़्र के साथ बयान करते और अपनी बड़ाई की डींगें मारते थे। इसपर कहा जा रहा है कि इन जाहिलाना बातों को छोड़ो। पहले जो वक़्त बेकार की बातों में लगाया करते थे, अब उसे अल्लाह की याद और उसके 'ज़िक्र' में लगाओ। इस ज़िक्र से मुराद मिना में ठहरने के वक़्त किया जानेवाला ज़िक्र है।

222. यानी तशरीक़ (10 ज़िलहिज्जा से 13 ज़िलहिज्जा) की अवधि तक के दिनों में मिना से मक्के की तरफ़ वापसी, चाहे 12 ज़िलहिज्जा को हो या 13वीं तारीख़ को, दोनों शक्लों में कोई हरज नहीं। असल अहमियत इसकी नहीं कि तुम ठहरे कितने दिन, बल्कि इसकी है कि जितने दिन

وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ اِلَيْهِ تُحْشَرُوْنَ ﴿۲۰۳﴾
وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّعْجِبُكَ قَوْلُهٗ فِي الْحَيٰوةِ
الدُّنْيَا وَيُشْهِدُ اللّٰهَ عَلٰى مَا فِيْ قَلْبِهٖ ۙ وَهُوَ اَلَدُّ
الْخِصَامِ ﴿۲۰۴﴾ وَاِذَا تَوَلّٰى سَعٰى فِي الْاَرْضِ لِيُفْسِدَ
فِيْهَا وَيُهْلِكَ الْحَرْثَ وَالنَّسْلَ ۭ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ

— अल्लाह की नाफ़रमानी से बचो और ख़ूब जान रखो कि एक दिन उसके सामने तुम्हारी पेशी होनेवाली है।

(204) इनसानों में कोई तो ऐसा है जिसकी बातें दुनिया की ज़िन्दगी में तुम्हें बहुत भली मालूम होती हैं और अपनी नेकनीयती पर वह बार-बार ख़ुदा को गवाह ठहराता है[223], मगर हक़ीक़त में वह हक़ का बदतरीन दुश्मन[224] होता है। (205) जब उसे हुकूमत (सत्ता) मिल जाती है[225] तो ज़मीन में उसकी सारी दौड़-धूप इसलिए होती है कि फ़साद (बिगाड़) फैलाए, खेतों को बरबाद करे और इनसानी नस्ल को तबाह करे — हालाँकि अल्लाह (जिसे वह गवाह बना रहा था) फ़साद को हरगिज़ पसन्द नहीं करता। —

भी ठहरे, उनमें अल्लाह के साथ तुम्हारे ताल्लुक़ का क्या हाल रहा, अल्लाह को याद करते रहे या मेलों-ठेलों में लगे रहे।

223. यानी कहता है : ख़ुदा गवाह है कि मैं सिर्फ़ भलाई चाहता हूँ, अपनी निजी ग़रज़ के लिए नहीं, बल्कि सिर्फ़ हक़ और सच्चाई के लिए या लोगों की भलाई के लिए काम कर रहा हूँ।

224. असल अरबी में ''अ-लद्दुल ख़िसाम'' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है, जिसके मानी हैं, ''वह दुश्मन जो तमाम दुश्मनों से ज़्यादा टेढ़ा हो।'' यानी जो हक़ की मुख़ालफ़त में हर मुमकिन हथकंडे से काम ले। किसी झूठ, किसी बेईमानी, बग़ावत, वादाख़िलाफ़ी और किसी टेढ़ी-से-टेढ़ी चाल को भी इस्तेमाल करने में उसको कोई झिझक न हो।

225. असल अरबी में 'इज़ा तवल्ला' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुए हैं, इस जुमले के दो मतलब हो सकते हैं। एक वह जो हमने तर्जमा में इख़्तियार किया है और दूसरा मतलब यह भी निकलता है कि ये मज़े-मज़े की दिल-लुभाने वाली बातें बनाकर ''जब वह पलटता है'', तो अमली तौर पर यह करतूत दिखाता है।

الْفَسَادَ ﴿٢٠٥﴾ وَإِذَا قِيلَ لَهُ اتَّقِ اللَّهَ أَخَذَتْهُ الْعِزَّةُ
بِالْإِثْمِ فَحَسْبُهُ جَهَنَّمُ ۚ وَلَبِئْسَ الْمِهَادُ ﴿٢٠٦﴾ وَمِنَ
النَّاسِ مَنْ يَشْرِي نَفْسَهُ ابْتِغَاءَ مَرْضَاتِ اللَّهِ ۗ
وَاللَّهُ رَءُوفٌ بِالْعِبَادِ ﴿٢٠٧﴾ يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا ادْخُلُوا
فِي السِّلْمِ كَافَّةً وَلَا تَتَّبِعُوا خُطُوَاتِ الشَّيْطَانِ ۚ
إِنَّهُ لَكُمْ عَدُوٌّ مُبِينٌ ﴿٢٠٨﴾ فَإِنْ زَلَلْتُمْ مِنْ بَعْدِ مَا
جَاءَتْكُمُ الْبَيِّنَاتُ فَاعْلَمُوا أَنَّ اللَّهَ عَزِيزٌ حَكِيمٌ ﴿٢٠٩﴾

---

(206) और जब उससे कहा जाता है कि अल्लाह से डर, तो अपने वक़ार (प्रतिभा) का ख़याल उसको गुनाह पर जमा देता है। ऐसे आदमी के लिए तो बस जहन्नम ही काफ़ी है और वह बहुत बुरा ठिकाना है। (207) दूसरी तरफ़ इनसानों ही में कोई ऐसा भी है जो अल्लाह की ख़ुशी की चाह में अपनी जान खपा देता है, और ऐसे बन्दों पर अल्लाह बहुत मेहरबान है। (208) ऐ ईमान लानेवालो! तुम पूरे-के-पूरे इस्लाम (फ़रमाँबरदारी) में आ जाओ[226] और शैतान की पैरवी न करो कि वह तुम्हारा खुला दुश्मन है। (209) जो साफ़-साफ़ हिदायतें तुम्हारे पास आ चुकी हैं अगर उनको पा लेने के बाद फिर तुम बहके, तो ख़ूब जान रखो कि अल्लाह सबपर ग़ालिब और हिकमतवाला और जाननेवाला है।[227]

---

226. यानी किसी तरह की रिआयत व छूट और रिज़र्वेशन के बग़ैर अपनी पूरी ज़िन्दगी को इस्लाम के तहत ले आओ। तुम्हारे ख़यालात, तुम्हारे नज़रिए, तुम्हारे उलूम (ज्ञान-विज्ञान), तुम्हारे तौर-तरीक़े, तुम्हारे मामले और तुम्हारी कोशिश और अमल (कर्म) के रास्ते सब-के-सब बिलकुल इस्लाम के ताबेअ (अधीन) हों। ऐसा न हो कि तुम अपनी ज़िन्दगी को अलग-अलग हिस्सों में बाँटकर कुछ हिस्सों में इस्लाम की पैरवी करो और कुछ हिस्सों को उसकी पैरवी से अलग कर लो।

227. यानी वह ज़बरदस्त ताक़त भी रखता है और यह भी जानता है कि अपने मुजरिमों को सज़ा किस तरह दे।

هَلْ يَنْظُرُوْنَ اِلَّآ اَنْ يَّاْتِيَهُمُ اللّٰهُ فِيْ ظُلَلٍ مِّنَ
الْغَمَامِ وَالْمَلٰٓئِكَةُ وَقُضِيَ الْاَمْرُ ۭ وَاِلَى اللّٰهِ
تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۝۲۱۰ سَلْ بَنِيْٓ اِسْرَاۗءِيْلَ كَمْ اٰتَيْنٰهُمْ

(210) (इन सारी नसीहतों और हिदायतों के बाद भी लोग सीधे न हों तो) क्या अब वे इसके इन्तिज़ार में हैं कि अल्लाह बादलों का छत्र लगाए, फ़रिश्तों का परे (समूह) साथ लिए सामने आ मौजूद हो और फ़ैसला ही कर डाला जाए?[228] — आख़िरकार सारे मामले पेश तो अल्लाह ही के सामने होनेवाले हैं।

(211) बनी-इसराईल से पूछो, कैसी खुली-खुली निशानियाँ हमने उन्हें दिखाई हैं (और

228. ये अलफ़ाज़ ग़ौर करने के क़ाबिल हैं। इनसे एक अहम हक़ीक़त पर रौशनी पड़ती है। इस दुनिया में इनसान की सारी आज़माइश सिर्फ़ इस बात की है कि वह हक़ीक़त को देखे बिना मानता है या नहीं और मानने के बाद इतनी अख़लाक़ी ताक़त रखता है या नहीं कि नाफ़रमानी का इख़तियार रखने के बावजूद फ़रमाँबरदारी इख़्तियार करे।। इसी लिए अल्लाह तआला ने नबियों के भेजे जाने में, किताबों के उतारे जाने में, यहाँ तक कि मोजज़ों तक में अक्ल के इम्तिहान और अख़लाक़ी सलाहियत की आज़माइश का ज़रूर लिहाज़ रखा है और कभी हक़ीक़त को इस तरह बेपरदा नहीं कर दिया है कि आदमी के लिए माने बग़ैर चारा न रहे, क्योंकि इसके बाद तो आज़माइश बिलकुल बेमानी हो जाती है और इम्तिहान में कामयाबी और नाकामी का कोई मतलब ही बाक़ी नहीं रहता। इसी वजह से यहाँ कहा जा रहा है कि उस वक़्त का इन्तिज़ार न करो, जब अल्लाह और उसकी सल्तनत के कारकुन (कार्यकर्त्ता) फ़रिश्ते ख़ुद सामने आ जाएँगे, क्योंकि फिर तो फ़ैसला ही कर डाला जाएगा। ईमान लाने और फ़रमाँबरदारी में सर झुका देने की सारी क़द्र और क़ीमत उसी वक़्त तक है जब तक हक़ीक़त तुम्हारे हवास (इन्द्रियों) से छिपी हुई है और तुम सिर्फ़ दलील से उसको तस्लीम करके अपनी समझदारी का और सिर्फ़ समझाने-बुझाने से उसकी पैरवी और फ़रमाँबरदारी अपना करके अपनी अख़लाक़ी (नैतिक) ताक़त का सबूत देते हो; वरना जब खुली सच्चाई सामने आ जाए और तुम बेनक़ाब आँखों से देख लो कि यह ख़ुदा अपने तख़्ते-जलाल (महान् सिंहासन) पर बैठा है और यह सारी कायनात (जगत्) की सल्तनत उसके हुक्म पर चल रही है और ये फ़रश्ते ज़मीन व आसमान के इन्तिज़ाम में लगे हुए हैं, और यह तुम्हारी हस्ती उसकी क़ुदरत के क़ब्ज़े में पूरी बेबसी के साथ जकड़ी हुई है, उस वक़्त अगर तुम ईमान लाए और फ़रमाँबरदारी पर आमादा हुए, तो उस ईमान और फ़रमाँबरदारी की क़ीमत ही क्या है? उस वक़्त तो कोई कट्टर-से-कट्टर इनकार करनेवाला और बुरे-से-बुरा मुजरिम और नाफ़रमान भी इनकार और नाफ़रमानी की हिम्मत नहीं कर सकता।

مِّنْ اٰيَةٍۭ بَيِّنَةٍ ۭ وَمَنْ يُّبَدِّلْ نِعْمَةَ اللّٰهِ مِنْۢ
بَعْدِ مَا جَاۗءَتْهُ فَاِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿٢١١﴾
زُيِّنَ لِلَّذِيْنَ كَفَرُوا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا وَيَسْخَرُوْنَ
مِنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۘ وَالَّذِيْنَ اتَّقَوْا فَوْقَهُمْ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ ۭ وَاللّٰهُ يَرْزُقُ مَنْ يَّشَاۗءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿٢١٢﴾
كَانَ النَّاسُ اُمَّةً وَّاحِدَةً ۣ فَبَعَثَ اللّٰهُ النَّبِيّٖنَ

फिर यह भी उन्हीं से पूछ लो कि) अल्लाह की नेमत पाने के बाद जो क़ौम उसको बदक़िस्मती से बदलती है, उसे अल्लाह कैसी सख़्त सज़ा देता है।229

(212) जिन लोगों ने इनकार का रास्ता अपनाया है, उनके लिए दुनिया की ज़िन्दगी बड़ी ही महबूब और मनपसन्द बना दी गई है। ऐसे लोग ईमान का रास्ता अपनानेवालों का मज़ाक़ उड़ाते हैं, मगर क़ियामत के दिन परहेज़गार लोग ही उनके मुक़ाबले में ऊँचे मक़ाम पर होंगे। रही दुनिया की रोज़ी, तो अल्लाह को इख़्तियार है, जिसे चाहे बे-हिसाब दे।

(213) शुरू में सब लोग एक ही तरीक़े पर थे। (फिर यह हालत बाक़ी न रही और

ईमान लाने और फ़रमाँबरदारी क़बूल करने की मुहलत बस उसी वक़्त तक है, जब तक कि परदा उठने की वह घड़ी नहीं आती। जब वह घड़ी आ गई, तो फिर न मुहलत है, न आज़माइश है, बल्कि वह फ़ैसले का वक़्त है।

229. इस सवाल के लिए बनी-इसराईल का चुनाव दो वजहों से किया गया है। एक यह कि आसारे-क़दीमा (पुरातत्व) के बेज़बान खंडहरों के मुक़ाबले में एक जीती-जागती क़ौम इबरत और सबक़ हासिल करने का ज़्यादा बेहतर ज़रीआ है। दूसरे यह कि बनी-इसराईल वह क़ौम है, जिसको किताब और नुबूवत (पैग़म्बरी) की मशाल देकर दुनिया की रहनुमाई के मंसब पर मुक़र्रर किया गया था और फिर उसने दुनियापरस्ती, निफ़ाक़ (कपटाचार) और इल्म व अमल की गुमराहियों में पड़कर इस नेमत से अपने आपको महरूम कर लिया, इसलिए जो गरोह इस क़ौम के बाद इनसानों की रहनुमाई के मंसब पर मुक़र्रर हुआ है, उसको सबसे बेहतर सबक़ अगर किसी के अंजाम से मिल सकता है, तो वह यही क़ौम है।

مُبَشِّرِيْنَ وَ مُنْذِرِيْنَ ۪ وَاَنْزَلَ مَعَهُمُ الْكِتٰبَ
بِالْحَقِّ لِيَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ فِيْمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ ؕ
وَمَا اخْتَلَفَ فِيْهِ اِلَّا الَّذِيْنَ اُوْتُوْهُ مِنْۢ بَعْدِ
مَا جَآءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ بَغْيًاۢ بَيْنَهُمْ ۚ فَهَدَى اللّٰهُ
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ مِنَ الْحَقِّ بِاِذْنِهٖ ؕ
وَاللّٰهُ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿۲۱۳﴾

इख़तिलाफ़ पैदा हुए) तब अल्लाह ने नबी भेजे जो सीधी राह पर चलने पर ख़ुशख़बरी देनेवाले, टेढ़ी चाल के नतीजों से डरानेवाले थे, और उनके साथ किताबे-बरहक़ (सत्य पर आधारित किताब) उतारी ताकि हक़ के बारे में लोगों के बीच जो इख़तिलाफ़ (मतभेद) पैदा हो गए थे, उनका फ़ैसला करे – (और इन इख़तिलाफ़ के पैदा होने की वजह यह न थी कि शुरू में लोगों को हक़ बताया नहीं गया था। नहीं,) इख़तिलाफ़ उन लोगों ने किया जिन्हें हक़ का इल्म दिया जा चुका था। उन्होंने रौशन हिदायत पा लेने के बाद सिर्फ़ इसलिए हक़ को छोड़कर अलग-अलग तरीक़े निकाले कि वे आपस में ज़्यादती करना चाहते थे –।[230] तो जो लोग नबियों पर ईमान ले आए, उन्हें अल्लाह ने अपनी इजाज़त से उस हक़ का रास्ता दिखा दिया जिसमें लोगों ने इख़तिलाफ़ किया था। अल्लाह जिसे चाहता है सीधा रास्ता दिखा देता है।

---

230. नावाक़िफ़ लोग जब अपनी अटकल गुमान की बुनियाद पर 'मज़हब' (धर्म) का इतिहास तैयार करते हैं, तो कहते हैं कि इनसान ने अपनी ज़िन्दगी की शुरुआत 'शिर्क' (बहुदेववाद) के अन्धेरों से की; फिर तदरीजी (चरणबद्ध) तरक़्क़ी को तय करने के साथ-साथ यह अंधियारी छँटती गई और रौशनी बढ़ती गई, यहाँ तक कि आदमी तौहीद (एकेश्वरवाद) के मक़ाम पर आ पहुँचा। इसके बरख़िलाफ़ क़ुरआन यह बताता है कि दुनिया में इनसान की ज़िन्दगी की शुरुआत पूरी रौशनी में हुई है। अल्लाह ने सबसे पहले जिस इनसान को पैदा किया था, उसको यह भी बता दिया था कि हक़ीक़त क्या है और तेरे लिए सही रास्ता कौन-सा है। इसके बाद एक मुद्दत तक आदम की नस्ल सीधे रास्ते पर चलती रही और एक उम्मत (समुदाय) बनी रही। फिर

اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ وَلَمَّا يَاْتِكُمْ مَّثَلُ
الَّذِيْنَ خَلَوْا مِنْ قَبْلِكُمْ ؕ مَسَّتْهُمُ الْبَاْسَآءُ وَ
الضَّرَّآءُ وَ زُلْزِلُوْا حَتّٰى يَقُوْلَ الرَّسُوْلُ وَ الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا مَعَهٗ مَتٰى نَصْرُ اللّٰهِ ؕ اَلَآ اِنَّ نَصْرَ اللّٰهِ

(214) फिर क्या[231] तुम लोगों ने यह समझ रखा है कि यूँ ही जन्नत में दाख़िला तुम्हें मिल जाएगा, हालाँकि अभी तुमपर वह सब कुछ नहीं गुज़रा है जो तुमसे पहले ईमान लानेवालों पर गुज़र चुका है? उन लोगों पर सख़्तियाँ गुज़रीं, मुसीबतें आईं, हिला मारे गए, यहाँ तक कि वक़्त का रसूल और उसके साथी ईमानवाले चीख़ उठे कि अल्लाह की मदद कब आएगी? — (उस वक़्त उन्हें तसल्ली दी गई कि) हाँ, अल्लाह

लोगों ने नए-नए रास्ते निकाले और अनेक तरीक़े ईजाद कर लिए, इस वजह से नहीं कि उनको हक़ीक़त नहीं बताई गई थी, बल्कि इस वजह से कि हक़ को जानने के बावजूद कुछ लोग अपने जाइज़ हक़ से बढ़कर इमतियाज़ (विशेषाधिकार) और फ़ायदे हासिल करना चाहते थे, और आपस में एक-दूसरे पर ज़ुल्म, सरकशी और ज़्यादती करने के ख़ाहिशमन्द थे। इसी ख़राबी को दूर करने के लिए अल्लाह ने नबियों को भेजना शुरू किया। ये नबी इसलिए नहीं भेजे गए थे कि हर एक अपने नाम से एक नए मज़हब की बुनियाद डाले और अपनी एक नई उम्मत बना ले, बल्कि उनके भेजे जाने का मक़सद यह था कि लोगों के सामने इस खोए हुए हक़ की राह को वाज़ेह करके उन्हें फिर से एक उम्मत बना दें।

231. ऊपर की आयत और इस आयत के बीच में एक पूरी दास्तान की दास्तान है, जिसे ज़िक्र किए बिना छोड़ दिया गया है, क्योंकि यह आयत ख़ुद उसकी तरफ़ इशारा कर रही है और क़ुरआन की मक्की सूरतों में (जो सूरा बक़रा से पहले उतरी थीं) यह दास्तान तफ़सील के साथ बयान भी हो चुकी है। नबी जब कभी दुनिया में आए, उन्हें और उनपर ईमान लानेवाले लोगों को ख़ुदा के बाग़ी और सरकश (उद्दण्ड) बन्दों से सख़्त मुक़ाबला पेश आया और उन्होंने अपनी जानें जोखिम में डालकर बातिल तरीक़ों के मुक़ाबले में दीने-हक़ (सत्य-धर्म) को क़ायम करने की जिद्दोजुहद की। इस दीन (धर्म) का रास्ता कभी फूलों की सेज नहीं रहा कि "आमन्ना" यानी हम ईमान लाए कहा और चैन से लेट गए। इस "आमन्ना" यानी ईमान ले आने का क़ुदरती तक़ाज़ा हर ज़माने में यह रहा है कि आदमी जिस दीन पर ईमान लाया है, उसे क़ायम करने की कोशिश करे और जो तागूत (यानी ख़ुदा के मुक़ाबले में अपना हक़ जतानेवाली ताक़त) उसके रास्ते में रुकावट हो, उसका ज़ोर तोड़ने में अपने जिस्म और जान की सारी ताक़तें लगा दे।

قَرِيْبٌ ﴿٢١٤﴾ يَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ؕ قُلْ مَآ اَنْفَقْتُمْ
مِّنْ خَيْرٍ فَلِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ
وَابْنِ السَّبِيْلِ ؕ وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ
بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿٢١٥﴾ كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ وَهُوَ كُرْهٌ لَّكُمْ ۚ
وَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَ
عَسٰٓى اَنْ تُحِبُّوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ شَرٌّ لَّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ
يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٢١٦﴾ يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الشَّهْرِ ع
الْحَرَامِ قِتَالٍ فِيْهِ ؕ قُلْ قِتَالٌ فِيْهِ كَبِيْرٌ ؕ وَصَدٌّ
عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَكُفْرٌۢ بِهٖ وَالْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۗ

की मदद क़रीब है।

(215) लोग तुमसे पूछते हैं कि हम क्या खर्च करें? जवाब दो कि जो माल भी तुम ख़र्च करो अपने माँ-बाप पर, नातेदारों पर, यतीमों और मुहताजों और मुसाफ़िरों पर ख़र्च करो। और जो भलाई भी तुम करोगे, अल्लाह उसे जानता होगा।

(216) तुम्हें जंग का हुक्म दिया गया है और वह तुम्हें नापसन्द है — हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें नापसन्द हो और वही तुम्हारे लिए बेहतर हो और हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें पसन्द हो और वही तुम्हारे लिए बुरी हो। अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।

(217) लोग पूछते हैं : माहे-हराम (प्रतिष्ठित महीने) में लड़ना कैसा है? कहो : इसमें लड़ना बहुत बुरा है, मगर ख़ुदा के रास्ते से लोगों को रोकना और अल्लाह से कुफ़्र (इनकार व नाफ़रमानी) करना और मस्जिदे-हराम (काबा) का रास्ता ख़ुदापरस्तों पर बन्द

وَإِخْرَاجُ أَهْلِهِ مِنْهُ أَكْبَرُ عِندَ اللَّهِ ۚ وَالْفِتْنَةُ
أَكْبَرُ مِنَ الْقَتْلِ ۗ وَلَا يَزَالُونَ يُقَاتِلُونَكُمْ حَتَّىٰ
يَرُدُّوكُمْ عَن دِينِكُمْ إِنِ اسْتَطَاعُوا ۚ وَمَن
يَرْتَدِدْ مِنكُمْ عَن دِينِهِ فَيَمُتْ وَهُوَ كَافِرٌ
فَأُولَٰئِكَ حَبِطَتْ أَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ ۖ
وَأُولَٰئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ ۖ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ﴿٢١٧﴾

करना और हरम (मक्का) के रहनेवालों को वहाँ से निकालना अल्लाह के नज़दीक इससे भी ज़्यादा बुरा है, और फ़ितना ख़ून बहाने से भी ज़्यादा सख़्त है।[232] वे तो तुमसे लड़े ही जाएँगे, यहाँ तक कि अगर उनका बस चले तो तुम्हें इस दीन से फेर ले जाएँ। (और यह ख़ूब समझ लो कि) तुममें से जो कोई अपने दीन (धर्म) से फिरेगा और कुफ़्र (इनकार) की हालत में जान देगा,, उसके आमाल दुनिया और आख़िरत (लोक-परलोक) दोनों में बर्बाद हो जाएँगे। ऐसे सब लोग जहन्नमी हैं और हमेशा जहन्नम ही में रहेंगे।[233]

232. इस बात का ताल्लुक़ एक ख़ास वाक़िए (घटना) से है। 'रजब' के महीने सन् 02 हिजरी में नबी *(सल्ल.)* ने आठ आदमियों की एक टुकड़ी नख़ला की तरफ़ भेजी थी (जो मक्का और ताइफ़ के बीच एक जगह है) और उसको हिदायत कर दी थी कि क़ुरैश की चलत-फिरत और उनके आइन्दा इरादों के बारे में जानकारी हासिल करे। लड़ाई की कोई इजाज़त नबी *(सल्ल.)* ने नहीं दी थी, लेकिन इन लोगों को रास्ते में क़ुरैश का एक छोटा-सा तिजारती क़ाफ़िला मिला और उसपर इन्होंने हमला करके एक आदमी को क़त्ल कर दिया और बाक़ी लोगों को उनके माल समेत गिरफ़्तार करके मदीना ले आए। यह कारवाई ऐसे वक़्त हुई जबकि 'रजब' का महीना ख़त्म और शाबान का महीना शुरू हो रहा था और इस बात में शक था कि हमला रजब (एहतिराम किए जानेवाले महीने) ही में हुआ है या नहीं? लेकिन क़ुरैश ने और चोरी-छिपे मिले हुए यहूदियों और मदीना के मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) ने मुसलमानों के ख़िलाफ़ प्रोपगंडा करने के लिए इस वाक़िए को ख़ूब उछाला और सख़्त एतिराज़ शुरू कर दिए कि ये लोग चले हैं बड़े अल्लाह वाले बनकर और हाल यह है कि एहतिराम किए जानेवाले महीने तक में ख़ून बहाने से नहीं चूकते। इन्हीं एतिराज़ों का जवाब इस आयत में दिया गया है।

اِنَّ الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا وَالَّذِیْنَ هَاجَرُوْا وَ جٰهَدُوْا

(218) इसके बरख़िलाफ़ जो लोग ईमान लाए हैं और जिन्होंने ख़ुदा की राह में अपना

जवाब का ख़ुलासा यह है कि बेशक हराम महीने में लड़ना बड़ी बुरी हरकत है, मगर इस पर एतिराज़ करना उन लोगों के मुँह को तो ज़ेब (शोभा) नहीं देता, जिन्होंने मुसलसल तेरह बरस अपने सैकड़ों भाइयों पर सिर्फ़ इसलिए ज़ुल्म ढाए कि वे एक ख़ुदा पर ईमान लाए थे। फिर उनको यहाँ तक तंग किया कि वे अपना वतन (घरबार) छोड़ने पर मजबूर हो गए। फिर इस पर भी बस न किया, और अपने उन भाइयों के लिए मस्जिदे-हराम (काबा) तक जाने का रास्ता भी बन्द कर दिया; हालाँकि मस्जिदे-हराम किसी की जायदाद नहीं है, जिसका वह मालिक हो और पिछले दो हज़ार बरस में कभी ऐसा नहीं हुआ कि किसी को उसकी ज़ियारत से रोका गया हो। अब जिन ज़ालिमों का नामए-आमाल (कर्मपत्र) इन करतूतों से स्याह (काला) है, उनका क्या मुँह है कि एक मामूली-सी सरहदी झड़प पर इस क़द्र ज़ोर-शोर के एतिराज़ करें, हालाँकि इस झड़प में जो कुछ हुआ है, वह नबी *(सल्ल.)* की इजाज़त के बग़ैर हुआ है और इसकी हैसियत इससे ज़्यादा कुछ नहीं है कि इस्लामी जमाअत के कुछ आदमियों से एक ग़ैर-ज़िम्मेदारी का काम हो गया है।

इस मक़ाम पर यह बात भी मालूम रहनी चाहिए कि जब यह टुकड़ी क़ैदी और ग़नीमत के माल लेकर नबी *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर हुई थी तो आप *(सल्ल.)* ने उसी वक़्त कह दिया था कि मैंने तुमको लड़ने की इजाज़त तो नहीं दी थी। यहाँ तक कि आप *(सल्ल.)* ने उनके लाए हुए ग़नीमत के माल में से बैतुलमाल (सार्वजनिक कोष) का हिस्सा लेने से भी इनकार कर दिया था। यह इस बात की अलामत थी कि उनकी यह लूट नाजाइज़ है। आम मुसलमानों ने भी इस अमल पर अपने उन आदमियों को सख़्त मलामत की थी और मदीने में कोई ऐसा न था, जिसने इस काम पर उनकी तारीफ़ की हो।

233. मुसलमानों में से कुछ सादा दिल लोग जिनके दिल और दिमाग़ पर नेकी और सुलहपसन्दी का एक ग़लत तसव्वुर छाया हुआ था, वे मक्का के इस्लाम-दुश्मनों और यहूदियों के ऊपर बयान किए हुए एतिराज़ों से मुतास्सिर (प्रभावित) हो गए थे। इस आयत में उन्हें समझाया गया है कि तुम अपनी इन बातों से यह उम्मीद न रखो कि तुम्हारे और उनके बीच सफ़ाई हो जाएगी। उनके एतिराज़ सफ़ाई की ग़रज़ से हैं ही नहीं। वे तो अस्ल में कीचड़ उछालना चाहते हैं। उन्हें यह बात खल रही है कि तुम इस दीन (धर्म) पर ईमान क्यों लाए हो और उसकी तरफ़ दुनिया को दावत क्यों देते हो? इसलिए जब तक वे अपने इनकार पर अड़े हुए हैं और तुम इस दीन पर क़ायम हो, तुम्हारे और उनके बीच सफ़ाई किसी तरह न हो सकेगी। और ऐसे दुश्मनों को तुम मामूली दुश्मन भी न समझो, जो तुम से माल और दौलत या ज़मीन छीनना चाहता है, वह कमतर दरजे का दुश्मन है; मगर जो तुम्हें दीने-हक़ (सत्य-धर्म) से फेरना चाहता है, वह तुम्हारा बदतरीन दुश्मन है; क्योंकि पहला तो सिर्फ़ तुम्हारी दुनिया ही ख़राब करता है, लेकिन यह दूसरा तुम्हें आख़िरत के हमेशा रहनेवाले अज़ाब में धकेल देने पर तुला हुआ है।

فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۙ اُولٰٓئِكَ يَرْجُوْنَ رَحْمَتَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ
غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۲۱۸﴾ يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ ؕ قُلْ
فِيْهِمَآ اِثْمٌ كَبِيْرٌ وَّمَنَافِعُ لِلنَّاسِ ز وَاِثْمُهُمَآ اَكْبَرُ
مِنْ نَّفْعِهِمَا ؕ وَيَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ۬ؕ قُلِ
الْعَفْوَ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ

घर-बार छोड़ा और जिहाद[234] किया है, वे अल्लाह की रहमत के जाइज़ उम्मीदवार हैं और अल्लाह इनकी भूल-चूक को माफ़ करनेवाला और अपनी रहमत से उन्हें नवाज़नेवाला है।

(219) पूछते हैं : शराब और जुए के बारे में क्या हुक्म है? कहो : इन दोनों चीज़ों में बड़ी ख़राबी है; हालाँकि इनमें लोगों के लिए कुछ फ़ायदे भी हैं, मगर इनका गुनाह इनके फ़ायदे से बहुत ज़्यादा है।[235]

पूछते हैं : हम अल्लाह के रास्ते में क्या ख़र्च करें? कहो : जो कुछ तुम्हारी ज़रूरत से

234. जिहाद के मानी हैं किसी मक़सद को हासिल करने के लिए अपनी सारी कोशिश कर लेना। इसके मानी सिर्फ़ जंग के नहीं है, जंग के लिए तो 'क़िताल' का लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है। 'जिहाद' तो इससे वसीअ (व्यापक) मानी रखता है और इसमें हर क़िस्म की जिद्दोजुहद शामिल है। मुजाहिद (जिहाद करनेवाला) वह शख़्स है जो हर वक़्त अपने मक़सद की धुन में लगा हो।, दिमाग़ से उसी के लिए तदबीरें सोचे, ज़बान और क़लम से उसी की तबलीग़ (प्रचार) करे, हाथ-पाँव से उसी के लिए दौड़-धूप और मेहनत करे, अपने तमाम मुमकिन वसाइल (संसाधनों) को उसको आगे बढ़ाने में लगा दे और हर उस रुकावट का पूरी ताक़त के साथ मुक़ाबला करे, जो इस राह में पेश आए, यहाँ तक कि जब जान की बाज़ी लगाने की ज़रूरत हो तो इसमें भी न झिझके। इसका नाम है 'जिहाद' और अल्लाह के रास्ते में जिहाद करना यह है कि यह सब कुछ सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए हो और इस मक़सद के लिए किया जाए कि अल्लाह का दीन उसकी ज़मीन पर क़ायम हो और अल्लाह का कलिमा (बोल) सारे कलिमों पर छा जाए। इसके सिवा और कोई मक़सद मुजाहिद के सामने न हो।

235. यह शराब और जुए के बारे में पहला हुक्म है जिसमें सिर्फ़ नापसन्दीदगी का इज़हार करके छोड़ दिया गया है, ताकि दिल और दिमाग़ उनके हराम होने को क़बूल करने के लिए तैयार हो जाएँ। बाद में शराब पीकर नमाज़ पढ़ने से रोकने के सिलसिले में हुक्म आया। फिर शराब और जुए और इस तरह की तमाम चीज़ों को बिलकुल हराम कर दिया गया। (देखिए क़ुरआन 4 : 43; 5 : 90)

تَتَفَكَّرُوْنَ ﴿٢١٩﴾ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۭ وَيَسْـَٔلُوْنَكَ
عَنِ الْيَتٰمٰى ۭ قُلْ اِصْلَاحٌ لَّهُمْ خَيْرٌ ۭ وَاِنْ
تُخَالِطُوْهُمْ فَاِخْوَانُكُمْ ۭ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ
الْمُصْلِحِ ۭ وَلَوْ شَاۗءَ اللّٰهُ لَاَعْنَتَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٢٠﴾
وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكٰتِ حَتّٰى يُؤْمِنَّ ۭ وَلَاَمَةٌ مُّؤْمِنَةٌ
خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكَةٍ وَّلَوْ اَعْجَبَتْكُمْ ۚ وَلَا تُنْكِحُوا

ज़्यादा हो। इस तरह अल्लाह तुम्हारे लिए साफ़-साफ़ अहकाम (आदेश) बयान करता है, शायद कि तुम दुनिया और आख़िरत दोनों की फ़िक्र करो।

(220) पूछते हैं : यतीमों के साथ क्या मामला किया जाए? कहो : जिस तरीक़े के अमल (कर्म) में उनके लिए भलाई हो, वही अपनाना अच्छा है।[236] अगर तुम अपना और उनका ख़र्च और रहना-सहना एक साथ रखो, तो इसमें कोई हरज नहीं, आख़िर वे तुम्हारे भाई-बन्धु ही तो हैं। बुराई करनेवाले और भलाई करनेवाले, दोनों का हाल अल्लाह पर ज़ाहिर है। अल्लाह चाहता तो इस मामले में तुमपर सख़्ती करता, मगर वह इख़तियारवाला होने के साथ-साथ हिकमतवाला भी है।

(221) तुम मुशरिक (अनेकेश्वरवादी) औरतों से हरगिज़ निकाह न करना, जब तक कि वे ईमान न ले आएँ। एक मोमिन (एकेश्वरवादी) लौंडी शरीफ़ (कुलीन) मुशरिक

---

236. इस आयत के उतरने से पहले क़ुरआन में यतीमों के हक़ और अधिकारों की हिफ़ाज़त के बारे में बार-बार सख़्त हुक्म आ चुके थे और यहाँ तक कह दिया गया था कि 'यतीम के माल के पास न फटको' और यह कि ''जो लोग यतीमों का माल ज़ुल्म के साथ खाते हैं, वे अपने पेट आग से भरते हैं।'' इन सख़्त हुक्मों की वजह से वे लोग, जिनकी देख-रेख में यतीम बच्चे थे, इस क़द्र डर गए थे कि उन्होंने उनका खाना-पीना तक अपने से अलग कर दिया था और इतनी एहतियात बरतने के बाद भी उन्हें डर था कि कहीं यतीमों के माल का कोई हिस्सा उनके माल में न मिल जाए। इसी लिए उन्होंने नबी *(सल्ल.)* से मालूम किया कि इन बच्चों के साथ हमारे मामले की सही सूरत क्या है।

الْمُشْرِكِيْنَ حَتّٰى يُؤْمِنُوْا ؕ وَلَعَبْدٌ مُّؤْمِنٌ خَيْرٌ مِّنْ
مُّشْرِكٍ وَّلَوْ اَعْجَبَكُمْ ؕ اُولٰٓئِكَ يَدْعُوْنَ اِلَى النَّارِ ۖۚ
وَاللّٰهُ يَدْعُوْٓا اِلَى الْجَنَّةِ وَالْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ ۚ
وَيُبَيِّنُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ﴿٢٢١﴾

औरत से बेहतर है, चाहे वह तुम्हें बहुत पसन्द हो। और अपनी औरतों का निकाह मुशरिक मर्दों से कभी न करना, जब तक कि वे ईमान न ले आएँ। एक मोमिन ग़ुलाम (शरीफ़ कुलीन) मुशरिक मर्द से बेहतर है, चाहे वह तुम्हें बहुत पसन्द हो। ये लोग तुम्हें आग की तरफ़ बुलाते हैं[237] और अल्लाह अपनी इजाज़त से तुमको जन्नत और मग़फ़िरत की तरफ़ बुलाता है, और वह अपने अहकाम (आदेश) वाज़ेह तौर पर लोगों के सामने बयान करता है, उम्मीद है कि वे सबक़ लेंगे और नसीहत क़बूल करेंगे।

237. यह है सबब और मसलिहत (निहित हित) उस हुक्म की जो मुशरिकों के साथ शादी-ब्याह का ताल्लुक़ न रखने के बारे में ऊपर बयान हुआ था। औरत और मर्द के बीच निकाह का ताल्लुक़ सिर्फ़ एक शहवानी (वासनात्मक) ताल्लुक़ नहीं है, बल्कि वह एक गहरा तहज़ीबी (समाजी), अख़लाक़ी और दिली ताल्लुक़ है। मोमिन और मुशरिक के बीच अगर यह दिली ताल्लुक़ हो तो जहाँ इस बात का इमकान (संभावना) है कि मोमिन शौहर या बीवी के असर से मुशरिक (बहुदेववादी) शौहर या बीवी पर और उसके ख़ानदान और आनेवाली नस्ल पर इस्लाम के अक़ीदों और ज़िन्दगी के तौर-तरीक़ों की छाप पड़ेगी, वहीं इस बात का भी इमकान है कि मुशरिक शौहर या बीवी के ख़यालों और तौर-तरीक़ों से न सिर्फ़ मोमिन शौहर या बीवी, बल्कि उसका ख़ानदान और दोनों की नस्ल तक मुतास्सिर (प्रभावित) हो जाएगी। और ज़्यादा इमकान इस बात का है कि ऐसे शौहर-बीवी से इस्लाम और कुफ़्र व शिर्क की एक ऐसी मुरक्कब (सम्मिश्रित) और ख़लत-मलत शक्ल उस घर और ख़ानदान में परवरिश पाएगी, जिसको ग़ैर-मुसलिम चाहे कितना ही पसन्द करें, मगर इस्लाम किसी तरह पसन्द करने के लिए तैयार नहीं है। जो शख़्स सही मानों में मोमिन है, वह सिर्फ़ अपने शहवानी (वासनात्मक) जज़्बे को पूरा करने के लिए कभी यह ख़तरा मोल नहीं ले सकता कि उसके घर और उसके ख़ानदान में काफ़िरों और मुशरिकों जैसे ख़याल और तौर-तरीक़े परवरिश पाएँ और वह ख़ुद भी अनजाने तौर पर अपनी ज़िन्दगी के किसी पहलू में कुफ़्र और शिर्क से मुतास्सिर हो जाए। अगर मान लीजिए कि कोई मोमिन मर्द या औरत किसी मुशरिक औरत या मर्द के इश्क़ में भी मुब्तला हो जाए तब भी उसके ईमान का तक़ाज़ा यही है कि वह अपने ख़ानदान, अपनी नस्ल और ख़ुद अपने दीन व अख़लाक़ पर अपने निजी जज़्बों को क़ुरबान कर दे।

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْمَحِيْضِ ۭ قُلْ هُوَ اَذًى ۙ فَاعْتَزِلُوا
النِّسَاۗءَ فِي الْمَحِيْضِ ۙ وَلَا تَقْرَبُوْھُنَّ حَتّٰى
يَطْهُرْنَ ۚ فَاِذَا تَطَهَّرْنَ فَاْتُوْھُنَّ مِنْ حَيْثُ اَمَرَكُمُ
اللّٰهُ ۭ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ التَّـوَّابِيْنَ وَيُحِبُّ الْمُتَطَهِّرِيْنَ ۝٢٢٢
نِسَاۗؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ ۠ فَاْتُوْا حَرْثَكُمْ اَنّٰى شِئْتُمْ ۡ
وَقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ ۭ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ

(222) पूछते हैं : हैज़ (माहवारी) के बारे में क्या हुक्म है? कहो : वह एक गंदगी की हालत है।[238] इसमें औरतों से अलग रहो और उनके पास न जाओ जब तक कि वे पाक-साफ़ न हो जाएँ।[239] फिर जब वे पाक हो जाएँ तो उनके पास जाओ, उस तरह जैसा कि अल्लाह ने तुमको हुक्म दिया है।[240] अल्लाह उन लोगों को पसन्द करता है जो बुराई से रुके रहें और पाकीज़गी अपनाएँ। (223) तुम्हारी औरतें तुम्हारी खेतियाँ हैं। तुम्हें अधिकार है, जिस तरह चाहो अपनी खेती में जाओ[241] मगर अपने मुस्तक़बिल (भविष्य)

238. असल अरबी में 'अज़ा' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी गन्दगी के भी हैं और बीमारी के भी। माहवारी सिर्फ़ एक गन्दगी ही नहीं है, बल्कि तिब्बी (चिकित्सकीय) पहलू से वह एक ऐसी हालत है, जिसमें औरत तन्दुरुस्ती के मुक़ाबले में बीमारी से ज़्यादा क़रीब होती है।

239. क़ुरआन मजीद इस क़िस्म के मामलों को मिसालों और इशारों में बयान करता है। इसलिए इसने (यानी क़ुरआन मजीद ने) "अलग रहो" और "क़रीब न जाओ" के लफ़्ज़ इस्तेमाल किए हैं। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि माहवारीवाली औरत के साथ एक फ़र्श पर बैठने या एक जगह खाना खाने से भी बचा जाए और उसे बिलकुल अछूत बनाकर रख दिया जाए। जैसा कि कुछ दूसरी क़ौमों का तरीक़ा है। नबी *(सल्ल.)* ने इस हुक्म की जो वज़ाहत कर दी है उससे मालूम होता है कि इस हालत में सिर्फ़ जिस्मानी ताल्लुक़ (संभोग करने) से बचना चाहिए, बाक़ी तमाम ताल्लुक़ात पहले की तरह ही बाक़ी रखे जाएँ।

240. यहाँ हुक्म से मुराद शरई हुक्म नहीं है, बल्कि वह फ़ितरी हुक्म मुराद है जो इनसान और हैवान सबकी फ़ितरत में रख दिया गया है और जिससे हर जानदार फ़ितरी तौर पर वाक़िफ़ है।

241. यानी फ़ितरी तौर पर अल्लाह ने औरतों को मर्दों के लिए सैरगाह नहीं बनाया है, बल्कि इन दोनों के बीच खेत और किसान का-सा ताल्लुक़ है। खेत में किसान सिर्फ़ सैर करने के लिए नहीं

مُّلٰقُوۡهُ ؕ وَبَشِّرِ الۡمُؤۡمِنِيۡنَ ۝٢٢٣ وَلَا تَجۡعَلُوا اللّٰهَ عُرۡضَةً
لِّاَيۡمَانِكُمۡ اَنۡ تَبَرُّوۡا وَتَتَّقُوۡا وَتُصۡلِحُوۡا بَيۡنَ
النَّاسِ ؕ وَاللّٰهُ سَمِيۡعٌ عَلِيۡمٌ ۝٢٢٤ لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ
بِاللَّغۡوِ فِىۡۤ اَيۡمَانِكُمۡ وَلٰكِنۡ يُّؤَاخِذُكُمۡ بِمَا كَسَبَتۡ

की फ़िक्र करो[242] और अल्लाह की नाराज़ी से बचो, ख़ूब जान लो कि तुम्हें एक दिन उससे मिलना है। और ऐ नबी! जो तुम्हारी हिदायतों को मान लें उन्हें कामयाबी और ख़ुशक़िस्मती की ख़ुशख़बरी सुना दो।

(224) अल्लाह के नाम को ऐसी क़समें खाने के लिए इस्तेमाल न करो जिनका मक़सद नेकी और तक़वा (परहेज़गारी) और अल्लाह के बन्दों की भलाई के कामों से रुक जाना हो।[243] अल्लाह तुम्हारी सारी बातें सुन रहा है और सब कुछ जानता है। (225) जो बेमानी क़समें तुम बिना इरादे के खा लिया करते हो, उनपर अल्लाह नहीं पकड़ता[244]

जाता, बल्कि इसलिए जाता है कि उससे पैदावार हासिल करे। इनसानी नस्ल के किसान को भी इनसानियत की इस ख़ेती में इसलिए जाना चाहिए कि वह इससे नस्ल की पैदावार हासिल करे। खुदा की शरीअ़त को इससे बहस नहीं कि तुम उस खेत में खेती किस तरह करते हो। अलबत्ता उसका मुतालबा तुमसे यह है कि जाओ खेत ही में और इस मक़सद के लिए जाओ कि इससे पैदावार हासिल करनी है।

242. यहाँ जिन लफ़्ज़ों का इस्तेमाल हुआ है वे बहुत ही जामेअ़ (व्यापक) लफ़्ज़ हैं। इनसे दो मतलब निकलते हैं और दोनों की बराबर अहमियत है। एक यह कि अपनी नस्ल बाक़ी रखने की कोशिश करो, ताकि तुम्हारे दुनिया छोड़ने से पहले तुम्हारी जगह दूसरे काम करनेवाले पैदा हों। दूसरा यह कि जिस आनेवाली नस्ल को तुम अपनी जगह छोड़नेवाले हो, उसको दीन, अख़लाक़ और आदमियत के जौहरों से सजाने-सँवारने की कोशिश करो। बाद के जुमले में इस बात पर भी ख़बरदार कर दिया गया है कि अगर इन दोनों ज़िम्मेदारियों के अदा करने में तुमने जान-बूझकर कोताही की तो अल्लाह तुमसे पूछ-गच्छ करेगा।

243. सहीह हदीसों से मालूम होता है कि जिस शख़्स ने किसी बात की क़सम खाई हो और बाद में उसपर वाज़ेह हो जाए कि इस क़सम के तोड़ देने ही में ख़ैर और भलाई है, उसे क़सम तोड़ देनी चाहिए और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा करना चाहिए। क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा दस मुहताजों को खाना खिलाना या उन्हें कपड़े पहनाना या एक ग़ुलाम आज़ाद करना या तीन दिन के रोज़े रखना है। (देखिए क़ुरआन 5 : 89)

244. यानी आदत के तौर पर यूँ ही बे-इरादा जो क़समें ज़बान से निकल जाती हैं, ऐसी क़समों पर

قُلُوبُكُمْ ۗ وَاللّٰهُ غَفُورٌ حَلِيمٌ ﴿٢٢٥﴾ لِلَّذِينَ يُؤْلُونَ
مِنْ نِّسَآئِهِمْ تَرَبُّصُ اَرْبَعَةِ اَشْهُرٍ ۚ فَاِنْ فَآءُوْ

मगर जो क़समें तुम सच्चे दिल से खाते हो, उनके बारे में वह ज़रूर पूछेगा। अल्लाह बहुत माफ़ करनेवाला और सहन करनेवाला है।

(226) जो लोग अपनी औरतों से ताल्लुक़ न रखने की क़सम खा बैठते हैं, उनके लिए चार महीने की मुहलत है।[245] अगर वे पलट आएँ तो अल्लाह माफ़ करनेवाला और

न कफ़्फ़ारा है और न उनपर पकड़ होगी।

245. शरीअत की इस्तिलाह (परिभाषा) में इसको 'ईला' कहते हैं। शौहर और बीवी के बीच ताल्लुक़ात हमेशा ख़ुशगवार तो नहीं रह सकते। बिगाड़ की वजहें तो पैदा होती ही रहती हैं, लेकिन ऐसे बिगाड़ को अल्लाह की शरीअत पसन्द नहीं करती कि दोनों एक-दूसरे के साथ क़ानूनी तौर पर शौहर-बीवी के रिश्ते में तो बंधे रहें, मगर अमली तौर पर एक-दूसरे से इस तरह अलग रहें कि मानो वे शौहर-बीवी नहीं हैं। ऐसे बिगाड़ के लिए अल्लाह ने चार महीने की मुद्दत मुक़र्रर कर दी कि या तो इस बीच में अपने ताल्लुक़ात ठीक कर लो वरना शौहर-बीवी का रिश्ता काट दो; ताकि दोनों एक-दूसरे से आज़ाद होकर जिससे निबाह कर सकें, उसके साथ निकाह कर लें।

आयत में चूँकि 'क़सम खा लेने' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं, इसलिए हनफ़ी और शाफ़ई फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने इस आयत का मंशा यह समझा है कि जहाँ शौहर ने बीवी से शौहर-बीवी का ताल्लुक़ न रखने की क़सम खाई हो, सिर्फ़ वहीं यह हुक्म लागू होगा, बाक़ी रहा क़सम खाए बग़ैर ताल्लुक़ तोड़ लेना, तो चाहे कितनी ही लम्बी मुद्दत के लिए हो, इस आयत का हुक्म उस हालत में लागू न होगा। मगर मालिकी फ़ुक़हा की राय यह है कि भले ही क़सम खाई गई हो या न खाई गई हो, दोनों सूरतों में ताल्लुक़ तोड़ने के लिए यही चार महीने की मुद्दत है। एक क़ौल (कथन) इमाम अहमद का भी इसी की ताईद में है। (बिदायतुल-मुज्तहिद, भाग 2, पृ॰ 88, मिस्र, एडिशन 1339 हि॰)

हज़रत अली, इब्ने-अब्बास और हसन बसरी की राय में यह हुक्म सिर्फ़ उस तर्के-ताल्लुक़ (संबंध-विच्छेद) के बारे में है, जो बिगाड़ की वजह से हो। रहा किसी मसलिहत से शौहर का बीवी के साथ जिस्मानी ताल्लुक़ क़ायम न रखना जबकि ताल्लुक़ात ख़ुशगवार हों, तो उस पर यह हुक्म लागू नहीं होता। लेकिन दूसरे फ़ुक़हा की राय में हर वह क़सम जो शौहर और बीवी के बीच जिस्मानी ताल्लुक़ को तोड़ दे 'ईला' है और इसे चार महीने से ज़्यादा क़ायम न रहना चाहिए, चाहे नाराज़ी से हो या रज़ामन्दी से।

فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٢٢٦﴾ وَاِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ
فَاِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٢٧﴾ وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ

रहम करनेवाला है।[246] (227) और अगर उन्होंने तलाक़ ही की ठान ली हो[247] तो जाने रहें कि अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है।[248]

246. कुछ फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने इसका मतलब यह लिया है कि अगर वे इस मुद्दत के अन्दर अपनी क़सम तोड़ दें और फिर से शौहर-बीवी का ताल्लुक़ क़ायम कर लें तो उनपर क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) नहीं है। अल्लाह वैसे ही माफ़ कर देगा, लेकिन अकसर फ़ुक़हा की राय यह है कि क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा देना होगा। माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला कहने का मतलब यह नहीं है कि कफ़्फ़ारे से तुम्हें माफ़ कर दिया गया, बल्कि इसका मतलब यह है कि अल्लाह तुम्हारे कफ़्फ़ारे को क़बूल कर लेगा और ताल्लुक़ न रखने के दौरान में जो ज़्यादती दोनों ने एक-दूसरे पर की हो, उसे माफ़ कर दिया जाएगा।

247. हज़रत उसमान, इब्ने-मसऊद, ज़ैद-बिन-साबित *(रज़ि.)* वग़ैरह के नज़दीक रुजू (पलट आने) का मौक़ा चार महीने के अन्दर ही है। इस मुद्दत का गुज़र जाना ख़ुद इस बात की दलील है कि शौहर ने तलाक़ का इरादा कर लिया है, इसलिए मुद्दत गुज़रते ही तलाक़ ख़ुद-ब-ख़ुद पड़ जाएगी और वह एक तलाक़े-बाइन होगी, यानी इद्दत के दौरान शौहर को रुजू का हक़ न होगा। अलबत्ता अगर वे दोनों चाहें तो दोबारा निकाह कर सकते हैं। हज़रत उमर *(रज़ि.)*, हज़रत अली *(रज़ि.)*, हज़रत इब्ने-अब्बास *(रज़ि.)* और इब्ने उमर *(रज़ि.)* का भी एक क़ौल इसी मानी में मिलता है और हनफ़ी फ़ुक़हा ने इसी राय को क़बूल किया है।

सईद-बिन-मुसय्यिब, मकहूल, ज़ुहरी वग़ैरा बुज़ुर्ग इस राय से यहाँ तक सहमत हैं कि चार महीने की मुद्दत बीत जाने के बाद अपने आप तलाक पड़ जाएगी। मगर उनके नज़दीक तलाक़े – रजई होगी; यानी इद्दत के दौरान में शौहर को रुजू कर लेने का हक़ होगा और रुजू न करे तो इद्दत गुज़र जाने के बाद दोनों अगर चाहें, तो निकाह कर सकेंगे।

इसके बरख़िलाफ़ हज़रत आइशा, अबू-दरदा और मदीना के अकसर फ़ुक़हा की राय यह है कि चार महीने की मुद्दत बीतने के बाद मामला अदालत में पेश होगा और अदालत शौहर को हुक्म देगी कि या तो उस औरत से रुजू करे या उसे तलाक़ दे। हज़रत उमर, हज़रत अली और इब्ने-उमर *(रज़ि.)* का एक क़ौल इसकी ताईद में भी है और इमाम मालिक व शाफ़ई ने इसी राय को अपनाया है।

248. यानी अगर तुमने बीवी को नामुनासिब बात पर छोड़ा है तो अल्लाह से बेख़ौफ़ न रहो, वह तुम्हारी ज़्यादती से नावाक़िफ़ नहीं है।

بِاَنْفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوْٓءٍ ؕ وَلَا يَحِلُّ لَهُنَّ اَنْ
يَّكْتُمْنَ مَا خَلَقَ اللّٰهُ فِيْٓ اَرْحَامِهِنَّ اِنْ كُنَّ
يُؤْمِنَّ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ وَبُعُوْلَتُهُنَّ اَحَقُّ
بِرَدِّهِنَّ فِيْ ذٰلِكَ اِنْ اَرَادُوْٓا اِصْلَاحًا ؕ وَلَهُنَّ
مِثْلُ الَّذِيْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۪ وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ
دَرَجَةٌ ؕ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝۲۲۸ اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ ۪

(228) जिन औरतों को तलाक़ दी गई हो, वे तीन बार माहवारी के दिनों के आने तक अपने आपको रोके रखें, और उनके लिए यह जाइज़ नहीं है कि अल्लाह ने उनके रहम (गर्भाशय) में जो कुछ पैदा किया हो, उसे छिपाएँ। उन्हें हरगिज़ ऐसा न करना चाहिए, अगर वह अल्लाह और आख़िरी दिन पर ईमान रखती हैं। उनके शौहर ताल्लुक़ात ठीक कर लेने पर तैयार हों तो वे इस इद्दत के दौरान में उन्हें फिर अपनी बीवी के रूप में वापस ले लेने के हक़दार हैं।[249]

औरतों के लिए भी भले (सामान्य) तरीक़े के मुताबिक़ वैसे ही हक़ हैं, जैसे मर्दों के हक़ उनपर हैं, अलबत्ता मर्दों को उनपर एक दर्जा हासिल है, और सबपर अल्लाह ग़ालिब इक़्तिदार (प्रभुत्व) रखनेवाला, हिकमतवाला और जाननेवाला मौजूद है।

249. इस आयत के हुक्म में फ़ुक़हा (धर्मशास्त्री) अलग-अलग राय रखते हैं। एक जमाअत (गरोह) के नज़दीक जब तक औरत तीसरी माहवारी से फ़ारिग़ होकर नहा न ले, उस वक़्त तक 'बाइन' तलाक न होगी और शौहर को रुजू का हक़ बाक़ी रहेगा। हज़रत अबू-बक्र, हज़रत उमर, हज़रत अली, हज़रत इब्ने-अब्बास, अबू-मूसा अशअरी, हज़रत इब्ने-मसऊद *(रज़ि.)* और बड़े-बड़े सहाबा की यही राय है और हनफ़ी फ़ुक़हा ने इसी को क़बूल किया है। इसके बरख़िलाफ़ दूसरा गरोह कहता है कि औरत को तीसरी बार माहवारी आते ही शौहर के रुजू करने का हक ख़त्म हो जाता है। यह राय हज़रत आइशा *(रज़ि.)*, इब्ने-उमर *(रज़ि.)* और ज़ैद-बिन-साबित *(रज़ि.)* की है। और शाफ़ई और मालिकी फ़ुक़हा ने इसी को इख़्तियार किया है। मगर वाज़ेह रहे कि यह हुक्म सिर्फ़ उस सूरत से ताल्लुक़ रखता है, जिसमें शौहर ने औरत को एक या दो तलाक़ें दी हों। तीन तलाक़ें देने की सूरत में शौहर को रुजू का हक़ नहीं है।

فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ بِاِحْسَانٍ ؕ وَلَا يَحِلُّ
لَكُمْ اَنْ تَاْخُذُوْا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ شَيْـًٔا اِلَّآ اَنْ

(229) तलाक़ दो बार है, फिर या तो सीधी तरह औरत को रोक लिया जाए या भले तरीक़े से उसको विदा कर दिया जाए।[250] और रुख़सत (विदा) करते हुए ऐसा करना तुम्हारे लिए जाइज़ नहीं है कि जो कुछ तुम उन्हें दे चुके हो, उसमें से कुछ वापस ले

250. इस छोटी-सी आयत में एक बहुत बड़ी सामाजिक ख़राबी का, जो जाहिलियत के ज़माने में अरब में फैली हुई थी, सुधार किया गया है। अरब में क़ायदा यह था कि एक शख़्स अपनी बीवी को अनगिनत तलाक़ देने का इख़्तियार रखता था। जिस औरत से उसका शौहर बिगड़ जाता, उसको वह बार-बार तलाक़ देकर रुजू करता रहता था, ताकि न तो वह बेचारी उसके साथ बस ही सके और न उससे आज़ाद होकर किसी और से निकाह ही कर सके। क़ुरआन मजीद की यह आयत इसी ज़ुल्म का दरवाज़ा बन्द करती है। इस आयत के मुताबिक़ एक मर्द निकाह के बंधन में बंधी अपनी बीवी पर ज़्यादा-से-ज़्यादा दो ही बार रजई तलाक़ का हक़ इस्तेमाल कर सकता है। जो आदमी अपनी बीवी को दो बार तलाक़ देकर उससे रुजू कर चुका हो, वह अपनी उम्र में जब कभी उसको तीसरी बार तलाक़ देगा, औरत उससे हमेशा के लिए जुदा हो जाएगी।

तलाक़ का सही तरीक़ा जो क़ुरआन व हदीस से मालूम होता है, वह यह है कि औरत को पाकी की हालत में एक बार तलाक़ दी जाए। अगर झगड़ा ऐसे ज़माने में हुआ हो, जबकि औरत माहवारी की हालत में हो, तो उसी वक़्त तलाक़ दे बैठना सही नहीं है, बल्कि माहवारी के ख़त्म होने तक शौहर को इन्तिज़ार करना चाहिए। फिर एक तलाक़ देने के बाद अगर चाहे तो दूसरी पाकी की हालत में दोबारा एक तलाक़ और दे दे, वरना बेहतर यही है कि पहली तलाक़ पर बस करे। इस सूरत में शौहर को यह हक़ हासिल रहता है कि इद्दत गुज़रने से पहले-पहले जब चाहे, रुजू कर ले और अगर इद्दत गुज़र भी जाए तो दोनों के लिए मौक़ा बाक़ी रहता है कि फिर आपसी रज़ामंदी से दोबारा निकाह कर लें। लेकिन तीसरी पाकी में तीसरी बार तलाक़ देने के बाद न तो शौहर को रुजू का हक़ बाक़ी रहता है और न इसका ही कोई मौक़ा रहता है कि दोनों का फिर निकाह हो सके। रही यह सूरत कि एक ही वक़्त में तीन तलाक़ें दे डाली जाएँ, जैसा कि आजकल जाहिलों का आम तरीक़ा है, तो यह शरीअत की निगाह में सख़्त गुनाह है। नबी *(सल्ल.)* ने इसकी बड़ी निन्दा की है और हज़रत उमर *(रज़ि.)* से यहाँ तक साबित है कि जो आदमी एक ही वक़्त में अपनी बीवी को तीन तलाक़ें दे देता था, आप उसको दुर्रे लगाते थे। फिर भी गुनाह होने के बावजूद चारों इमामों के नज़दीक तीनों तलाक़ें पड़ जाती हैं और तलाक़े मुग़ल्लज़ा हो जाती हैं (यानी इसके बाद वे शौहर-बावी आपस में रुजू या निकाह नहीं कर सकते।)

يَّخَافَآ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۭ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا
يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا فِيْمَا
افْتَدَتْ بِهٖ ۭ تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَعْتَدُوْھَا ۚ
وَمَنْ يَّتَعَدَّ حُدُوْدَ اللّٰهِ فَاُولٰۗىِٕكَ ھُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝٢٢٩

लो।[251] अलबत्ता यह सूरत इससे अलग है कि मियाँ-बीवी को अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हदों पर क़ायम न रह सकने का डर हो। ऐसी सूरत में अगर तुम्हें यह डर हो कि वे दोनों अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हदों पर क़ायम न रहेंगे, तो उन दोनों के बीच यह मामला हो जाने में कोई हरज नहीं कि औरत अपने शौहर को कुछ मुआवज़ा देकर जुदाई हासिल कर ले।[252] ये अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हदें हैं, इनसे आगे न बढ़ो। और जो लोग अल्लाह की हदों से आगे बढ़ें वही ज़ालिम हैं।

251. यानी महर और वह ज़ेवर और कपड़े वग़ैरा जो शौहर अपनी बीवी को दे चुका हो, उनमें से कोई चीज़ भी उसे वापस माँगने का हक़ नहीं है। यह बात वैसे भी इस्लाम के अख़लाक़ी उसूलों के खिलाफ़ है कि कोई शख़्स किसी ऐसी चीज़ को, जिसे वह दूसरे शख़्स को तोहफ़े के तौर पर दे चुका हो, वापस माँगे। इस घटिया हरकत को हदीस में उस कुत्ते की हरकत की तरह बताया गया है जो अपनी कै (उलटी) को ख़ुद चाट ले। मगर ख़ास तौर पर एक शौहर के लिए यह बड़ी ही शर्मनाक बात है कि वह तलाक़ देकर रुख़सत करते वक़्त अपनी बीवी से वह सब कुछ रखवा लेना चाहे जो उसने कभी उसे ख़ुद दिया था। इसके ख़िलाफ़ इस्लाम ने ये अख़लाक़ सिखाए हैं कि आदमी जिस औरत को तलाक़ दे उसे रुख़सत करते वक़्त कुछ न कुछ देकर रुख़सत करे, जैसा कि आगे आयत 241 में कहा गया है।

252. शरीअत की ज़बान में इसे 'ख़ुलअ' कहते हैं यानी एक औरत का अपने शौहर को कुछ दे-दिलाकर उससे तलाक़ ले लेना। इस मामले में अगर औरत और मर्द के बीच घर के घर ही में कोई मामला तय हो जाए, तो जो कुछ तय हुआ हो, वही लागू होगा; लेकिन अगर अदालत में मामला जाए, तो अदालत सिर्फ़ इस बात की जाँच करेगी कि क्या वाक़ई यह औरत उस मर्द से इस हद तक बेज़ार हो चुकी है कि उसके साथ उसका निबाह नहीं हो सकता। इसकी तहक़ीक़ हो जाने के बाद अदालत को इख़्तियार हासिल है कि हालात के लिहाज़ से जो फ़िदया (जुर्माना) चाहे तय करे और उस फ़िदया को क़बूल करके शौहर को उसे तलाक़ देना होगा। आम तौर से फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) ने इस बात को पसन्द नहीं किया है कि जो माल शौहर ने उस औरत को दिया हो, उसकी वापसी से बढ़कर कोई चीज़ उसे दिलवाई जाए।

فَإِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ لَهُ مِنْ بَعْدُ حَتّٰى تَنْكِحَ
زَوْجًا غَيْرَهُ ۗ فَإِنْ طَلَّقَهَا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ
اَنْ يَّتَرَاجَعَآ اِنْ ظَنَّآ اَنْ يُّقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۗ وَتِلْكَ
حُدُوْدُ اللّٰهِ يُبَيِّنُهَا لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ۝ وَاِذَا طَلَّقْتُمُ

---

(230) फिर अगर (दो बार तलाक़ देने के बाद शौहर ने औरत को तीसरी बार) तलाक़ दे दी, तो वह औरत फिर उसके लिए हलाल न होगी, सिवा इसके कि उसका निकाह किसी दूसरे आदमी से हो और वह उसे तलाक़ दे दे।[253] तब अगर पहला शौहर और यह औरत दोनों यह समझें कि अल्लाह की मुक़र्रर हदों पर क़ायम रहेंगे, तो उनके लिए एक-दूसरे की तरफ़ रुजू कर लेने में कोई हरज नहीं। ये अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हदें हैं, जिन्हें वह उन लोगों की हिदायत के लिए वाज़ेह कर रहा है जो (उसकी हदों को तोड़ने का अंजाम) जानते हैं।

ख़ुलअ़ की सूरत में जो तलाक़ दी जाती है, वह रजई नहीं, बल्कि बाइना है। चूँकि औरत ने मुआवज़ा देकर मानो उस तलाक़ को ख़रीदा है, इसलिए शौहर को यह हक़ बाकी नहीं रहता कि इस तलाक़ से रुजू कर सके। अलबत्ता अगर यही मर्द-औरत फिर एक-दूसरे से राज़ी हो जाएँ और दोबारा निकाह करना चाहें, तो ऐसा करना उनके लिए बिलकुल जाइज़ है।

आम उलमा के नज़दीक ख़ुलाअ की इद्दत वही है जो तलाक़ की है। मगर अबू-दाऊद, तिरमिज़ी और इब्ने-माज़ा वग़ैरा में बहुत-सी रिवायतें ऐसी हैं जिनसे मालूम होता है कि नबी *(सल्ल॰)* ने इसकी इद्दत एक ही माहवारी ठहराई थी और इसी के मुताबिक़ हज़रत उसमान *(रज़ि॰)* ने एक मुक़द्दमे का फ़ैसला किया। (इब्ने-कसीर, जिल्द — 1, पृ॰ 276)

253. सही हदीसों से मालूम होता है कि अगर कोई आदमी अपनी तलाक़शुदा बीवी को अपने लिए सिर्फ़ हलाल करने की ख़ातिर किसी साज़िश के तौर पर उसका निकाह कराए और पहले से यह तय कर ले कि वह निकाह के बाद उसे तलाक़ दे देगा, तो यह सरासर एक नाजाइज़ काम है। ऐसा निकाह, निकाह न होगा, बल्कि सिर्फ़ एक बदकारी होगी और ऐसे साज़िशी निकाह व तलाक़ से औरत हरगिज़ अपने पिछले शौहर के लिए हलाल न होगी। हज़रत अली, इब्ने-मसऊद और अबू-हुरैरा और उक़बा-बिन-आमिर *(रज़ि॰)* इन चारों से रिवायत है कि नबी *(सल्ल॰)* ने इस तरीक़े से हलाला करने और हलाला करानेवाले पर लानत भेजी है।

الِنّسَآءَ فَبَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَاَمْسِكُوْهُنَّ بِمَعْرُوْفٍ
اَوْ سَرِّحُوْهُنَّ بِمَعْرُوْفٍ ۪ وَلَا تُمْسِكُوْهُنَّ ضِرَارًا
لِّتَعْتَدُوْا ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَقَدْ ظَلَمَ نَفْسَهٗ ؕ
وَلَا تَتَّخِذُوْٓا اٰيٰتِ اللّٰهِ هُزُوًا ۚ وَّاذْكُرُوْا نِعْمَتَ
اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَمَآ اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنَ الْكِتٰبِ
وَالْحِكْمَةِ يَعِظُكُمْ بِهٖ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ

---

(231) और जब तुम औरतों को तलाक़ दे दो और उनकी इद्दत पूरी होने को आ जाए, तो या भले तरीक़े से उन्हें रोक लो या भले तरीक़े से विदा कर दो। सिर्फ़ सताने के लिए उन्हें न रोके रखना कि यह ज़्यादती होगी। और जो ऐसा करेगा, वह हक़ीक़त में आप अपने ही ऊपर ज़ुल्म करेगा।[254] अल्लाह की आयतों का खेल न बनाओ। भूल न जाओ कि अल्लाह ने किस बड़ी नेमत से तुम्हें नवाज़ा है। वह तुम्हें नसीहत करता है कि जो किताब और हिकमत (तत्त्वदर्शिता) उसने तुमपर उतारी है, उसके एहतिराम का ख़याल रखो।[255] अल्लाह से डरो और ख़ूब जान लो कि अल्लाह को हर बात की

---

254. यानी ऐसा करना सही नहीं है कि एक शख़्स अपनी बीवी को तलाक़ दे और इद्दत गुज़रने से पहले सिर्फ़ इसलिए रुजू कर ले कि उसे फिर सताने और परेशान करने का मौक़ा हाथ आ जाए। अल्लाह हिदायत फ़रमाता है कि रुजू करते हो तो इस नीयत से करो कि अब भले तरीक़े से रहना है, वरना बेहतर यह है कि शरीफ़ाना तरीक़े से रुख़सत कर दो। (और ज़्यादा तशरीह के लिए देखिए हाशिया न॰ 250)

255. यानी इस सच्चाई को न भुला दो कि अल्लाह ने तुम्हें किताब और हिकमत (तत्त्वदर्शिता) की तालीम देकर दुनिया की रहनुमाई के अज़ीमुश्शान (महान) मक़ाम पर मुक़र्रर किया है। तुम 'उम्मते-वस्त' बनाए गए हो, तुम्हें नेकी और सच्चाई का गवाह बनाकर खड़ा किया गया है। तुम्हारा यह काम नहीं है कि हीले-बहानों से काम लेकर अल्लाह की आयतों का खेल बनाओ, क़ानून के लफ़्ज़ों से क़ानून की रूह के ख़िलाफ़ नाजाइज़ फ़ायदे उठाओ और दुनिया को सीधा रास्ता दिखाने के बजाय ख़ुद अपने घरों में ज़ालिम और बद-राह बनकर रहो।

اللهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ ﴿٢٣١﴾ وَإِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَاءَ
فَبَلَغْنَ أَجَلَهُنَّ فَلَا تَعْضُلُوهُنَّ أَنْ يَنْكِحْنَ
أَزْوَاجَهُنَّ إِذَا تَرَاضَوْا بَيْنَهُمْ بِالْمَعْرُوفِ ۗ ذَٰلِكَ
يُوعَظُ بِهِ مَنْ كَانَ مِنْكُمْ يُؤْمِنُ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ
الْآخِرِ ۗ ذَٰلِكُمْ أَزْكَىٰ لَكُمْ وَأَطْهَرُ ۗ وَاللَّهُ يَعْلَمُ وَأَنْتُمْ
لَا تَعْلَمُونَ ﴿٢٣٢﴾ وَالْوَالِدَاتُ يُرْضِعْنَ أَوْلَادَهُنَّ

ख़बर है।

(232) जब तुम अपनी औरतों को तलाक़ दे चुको और वे अपनी इद्दत (अवधि) पूरी कर लें, तो फिर इसमें रुकावट न बनो कि वे अपने (पसन्द के) शौहरों से निकाह कर लें, जबकि वे भले तरीक़े से आपस में निकाह करने पर राज़ी हों।[256] तुम्हें नसीहत की जाती है कि ऐसी हरकत हरगिज़ न करना अगर तुम अल्लाह और आख़िरी दिन पर ईमान लानेवाले हो। तुम्हारे लिए मुहज़्ज़ब और पाकीज़ा तरीक़ा यही है कि इससे बचो। अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।

(233) जो बाप चाहते हों कि उनके बच्चे दूध पीने की पूरी मुद्दत तक दूध पिएँ, तो

---

256. यानी अगर किसी औरत को उसके शौहर ने तलाक़ दे दी हो और इद्दत के ज़माने के अन्दर उससे रुजू न किया हो। फिर इद्दत गुज़र जाने के बाद वे दोनों आपस में दोबारा निकाह करने पर राज़ी हों तो औरत के रिश्तेदारों को इसमें रुकावट नहीं बनना चाहिए। इसी के साथ ही इसका यह मतलब भी हो सकता है कि जो आदमी अपनी बीवी को तलाक़ दे चुका हो और औरत इद्दत के बाद उससे आज़ाद होकर कहीं दूसरी जगह अपना निकाह करना चाहती हो तो उस पहले वाले शौहर को ऐसी नीच हरकत न करनी चाहिए कि उसके निकाह में रुकावट बने और कोशिश करता फिरे कि जिस औरत को उसने छोड़ा है, उसे कोई निकाह में लाना क़बूल न करे।

حَوْلَيْنِ كَامِلَيْنِ لِمَنْ اَرَادَ اَنْ يُّتِمَّ الرَّضَاعَةَ ؕ
وَعَلَى الْمَوْلُوْدِ لَهٗ رِزْقُهُنَّ وَكِسْوَتُهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ
لَا تُكَلَّفُ نَفْسٌ اِلَّا وُسْعَهَا ۚ لَا تُضَآرَّ وَالِدَةٌۢ
بِوَلَدِهَا وَلَا مَوْلُوْدٌ لَّهٗ بِوَلَدِهٖ ۚ وَعَلَى الْوَارِثِ
مِثْلُ ذٰلِكَ ۚ فَاِنْ اَرَادَا فِصَالًا عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا
وَتَشَاوُرٍ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا ؕ وَاِنْ اَرَدْتُّمْ اَنْ
تَسْتَرْضِعُوْٓا اَوْلَادَكُمْ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِذَا سَلَّمْتُمْ
مَّآ اٰتَيْتُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ

माएँ अपने बच्चों को पूरे दो साल तक दूध पिलाएँ।[257] इस सूरत में बच्चे के बाप को भले तरीक़े से उन्हें खाना-कपड़ा देना होगा, मगर किसी पर उसकी वुसअत (सामर्थ्य) से बढ़कर बोझ न डालना चाहिए। न तो माँ को इस वजह से तकलीफ़ में डाला जाए कि बच्चा उसका है, और न बाप ही को इस वजह से तंग किया जाए कि बच्चा उसका है — दूध पिलानेवाली का यह हक़ जैसा बच्चे के बाप पर है, वैसा ही उसके वारिस पर भी है[258] — लेकिन अगर दोनों फ़रीक़ (पक्ष) आपस के समझौते और मशविरे से दूध छुड़ाना चाहें, तो ऐसा करने में कोई हरज नहीं। और अगर तुम्हारा ख़याल अपनी औलाद को किसी दूसरी औरत से दूध पिलवाने का हो तो इसमें भी कोई हरज नहीं, शर्त यह है कि उसका जो कुछ मुआवज़ा तय करो, वह भले तरीक़े से चुका दो। अल्लाह से डरो और

257. यह उस सूरत का हुक्म है जबकि शौहर-बीवी एक-दूसरे से अलग हो चुके हों, चाहे तलाक़ के ज़रीए से या ख़ुलअ़ या फ़स्ख़ और तफ़रीक़ (निकाह टूटने और अलगाव) के ज़रीए से, और औरत की गोद में दूध-पीता बच्चा हो।

258. यानी अगर बाप मर जाए तो जो उसकी जगह बच्चे का सरपरस्त हो, उसे यह हक़ अदा करना होगा।

اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝ وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ
مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا يَّتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ
اَرْبَعَةَ اَشْهُرٍ وَّعَشْرًا ۚ فَاِذَا بَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ
فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ
بِالْمَعْرُوْفِ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ۝ وَلَا

जान रखो कि जो कुछ तुम करते हो, सब अल्लाह की नज़र में है।

(234) तुममें से जो लोग मर जाएँ, उनके पीछे अगर उनकी बीवियाँ ज़िन्दा हों तो वे अपने आपको चार महीने दस दिन रोके रखें।[259] फिर जब उनकी इद्दत पूरी हो जाए तो उन्हें इख़्तियार है, अपने बारे में कि भले तरीक़े से जो चाहे करें, तुमपर इसकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं। अल्लाह तुम सबके कामों की ख़बर रखता है। (235) इद्दत के

259. शौहर की मौत की यह इद्दत उन औरतों के लिए भी है जिनसे उनके शोहरों ने जिस्मानी ताल्लुक़ न बनाए हों। अलबत्ता हामिला (गर्भवती) औरत इससे अलग है। उसके लिए शौहर की मौत की इद्दत बच्चा जनने तक है, चाहे शौहर की मौत के बाद ही बच्चा पैदा हो जाए या इसमें कई महीने लगें।

''अपने आपको रोके रखें'' से मुराद सिर्फ़ यही नहीं है कि वे इस मुद्दत में निकाह न करें, बल्कि इससे मुराद अपने आपको ज़ीनत (बनाव-शृंगार) से भी रोके रखना है। चुनाँचे हदीसों में वाज़ेह तौर पर ये हुक्म मिलते हैं कि इद्दत के ज़माने में औरत को रंगीन कपड़े और ज़ेवर पहनने से, मेहंदी, सुरमा, ख़ुशबू और ख़िज़ाब लगाने से और बालों को सजाने-सँवारने से परहेज़ करना चाहिए। अलबत्ता इस मामले में उलमा की राएँ अलग-अलग हैं कि क्या उस ज़माने में औरत घर से निकल सकती है या नहीं? हज़रत उमर, उसमान, इब्ने-उमर, ज़ैद-बिन-साबित, इब्ने-मसऊद, उम्मे-सलमा, सईद-बिन-मुसय्यिब *(रज़ि॰)*, इबराहीम, नख़ई, मुहम्मद-बिन-सीरीन (रह०) ये सब हज़रात और चारों इमाम *(रह॰)* इस बात को मानते हैं कि इद्दत के ज़माने में औरत को उसी घर में रहना चाहिए जहाँ उसके शौहर की मौत हुई हो। दिन के वक़्त किसी ज़रूरत से वह बाहर जा सकती है, मगर क़ियाम उसका उसी घर में होना चाहिए। इसके बरख़िलाफ़ हज़रत आइशा, इब्ने-अब्बास, हज़रत अली, जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह *(रज़ि॰)*, अता, ताऊस, हसन बसरी, उमर-बिन-अब्दुल-अज़ीज़ *(रह॰)* और तमाम अहलुज़्ज़ाहिर इस बात को मानते हैं कि औरत अपनी इद्दत का ज़माना जहाँ चाहे गुज़ार सकती है और उस ज़माने में सफ़र भी कर सकती है।

جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا عَرَّضْتُمْ بِهٖ مِنْ خِطْبَةِ النِّسَآءِ
اَوْ اَكْنَنْتُمْ فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ ؕ عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ سَتَذْكُرُوْنَهُنَّ
وَلٰكِنْ لَّا تُوَاعِدُوْهُنَّ سِرًّا اِلَّآ اَنْ تَقُوْلُوْا قَوْلًا
مَّعْرُوْفًا ؕ وَلَا تَعْزِمُوْا عُقْدَةَ النِّكَاحِ حَتّٰى
يَبْلُغَ الْكِتٰبُ اَجَلَهٗ ؕ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا فِيْٓ
اَنْفُسِكُمْ فَاحْذَرُوْهُ ۚ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ﴿٢٣٥﴾ ع
لَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِنْ طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ مَا لَمْ تَمَسُّوْهُنَّ
اَوْ تَفْرِضُوْا لَهُنَّ فَرِيْضَةً ۚ ۖ وَّمَتِّعُوْهُنَّ ۚ عَلَى

ज़माने में चाहे तुम उन बेवा (विधवा) औरतों के साथ मंगनी का इरादा इशारे के तौर पर कर दो, चाहे दिल में छिपाये रखो, दोनों हालतों में कोई हरज नहीं। अल्लाह जानता है कि उनका ख़याल तो तुम्हारे दिल में आएगा ही। मगर देखो, ख़ुफ़िया तौर पर समझौता न करना। अगर कोई बात करनी है तो भले तरीक़े से करो और निकाह का नाता जोड़ने का फ़ैसला उस समय तक न करो, जब तक कि इद्दत पूरी न हो जाए। ख़ूब समझ लो कि अल्लाह तुम्हारे दिलों का हाल तक जानता है, इसलिए उससे डरो और यह भी जान लो कि अल्लाह बुर्दबार (सहनशील) है, (छोटी-छोटी बातों को) माफ़ कर देता है।

(236) तुमपर कुछ गुनाह नहीं अगर अपनी औरतों को तलाक़ दे दो इससे पहले कि हाथ लगाने की नौबत आए या महर मुक़र्रर हो। इस सूरत में उन्हें कुछ-न-कुछ देना ज़रूर चाहिए।[260]

---

260. इस तरह रिश्ता जोड़ने के बाद तोड़ देने से बहरहाल औरत को कुछ-न-कुछ नुक़सान तो पहुँचता ही है, इसलिए अल्लाह ने हुक्म दिया की अपनी हैसियत के मुताबिक़ उस नुक़सान की भरपाई करो।

الْمُوسِعِ قَدَرُهٗ وَعَلَى الْمُقْتِرِ قَدَرُهٗ ۚ مَتَاعًا بِالْمَعْرُوفِ ۚ
حَقًّا عَلَى الْمُحْسِنِينَ ﴿٢٣٦﴾ وَإِنْ طَلَّقْتُمُوهُنَّ مِنْ
قَبْلِ أَنْ تَمَسُّوهُنَّ وَقَدْ فَرَضْتُمْ لَهُنَّ فَرِيضَةً
فَنِصْفُ مَا فَرَضْتُمْ إِلَّا أَنْ يَعْفُونَ أَوْ يَعْفُوَا
الَّذِي بِيَدِهٖ عُقْدَةُ النِّكَاحِ ۚ وَأَنْ تَعْفُوا
أَقْرَبُ لِلتَّقْوَىٰ ۚ وَلَا تَنْسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ ۚ
إِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُونَ بَصِيرٌ ﴿٢٣٧﴾ حَافِظُوا عَلَى

ख़ुशहाल आदमी अपनी ताक़त के मुताबिक़ और ग़रीब आदमी अपनी सकत (सामर्थ्य) के मुताबिक़ भले तरीक़े से दे। यह हक़ है नेक आदमियों पर। (237) और अगर तुमने हाथ लगाने से पहले तलाक़ दी हो, लेकिन महर मुक़र्रर किया जा चुका हो तो इस सूरत में आधा महर देना होगा। यह और बात है कि औरत नरमी बरते (और महर न ले) या वह मर्द, जिसके इख़्तियार में निकाह है, नरमी से काम ले (और पूरा महर दे दे), और तुम (यानी मर्द) नरमी से काम लो तो यह तक़वा (ईश-परायणता) से ज़्यादा निसबत रखता है। आपस के मामलों में फ़ैयाज़ी (उदारता) को न भूलो।[261] तुम्हारे आमाल (कर्मों) को अल्लाह देख रहा है।

---

261. यानी इनसानी ताल्लुक़ात को बेहतर और ख़ुशगवार बनाने के लिए लोगों का आपस में फ़ैयाज़ी (उदारता और दानशीलता) का बरताव करना ज़रूरी है। अगर हर एक आदमी ठीक-ठीक अपने क़ानूनी हक़ ही पर अड़ा रहे, तो सामाजिक ज़िन्दगी कभी ख़ुशगवार नहीं हो सकती।

الصَّلَوٰتِ وَالصَّلٰوةِ الْوُسْطٰى ۗ وَقُوْمُوْا لِلّٰهِ قٰنِتِيْنَ ﴿٢٣٨﴾
فَاِنْ خِفْتُمْ فَرِجَالًا اَوْ رُكْبَانًا ۚ فَاِذَآ اَمِنْتُمْ
فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَمَا عَلَّمَكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ﴿٢٣٩﴾

---

(238) अपनी नमाज़ों की निगरानी[262] करो, ख़ास तौर से ऐसी नमाज़ की जो नमाज़ की ख़ूबियों को समेटे हुए हो।[263] अल्लाह के आगे इस तरह खड़े हो जैसे फ़रमाँबरदार ग़ुलाम खड़े होते हैं। (239) बदअम्नी की हालत हो तो, चाहे पैदल हो या सवार, जिस तरह मुमकिन हो नमाज़ पढ़ो और जब अम्न हासिल हो जाए तो अल्लाह को उस तरीक़े से याद करो जो उसने तुम्हें सिखा दिया है, जिससे तुम पहले नावाक़िफ़ (अनजान) थे।

---

262. रहन-सहन और समाज से ताल्लुक़ रखनेवाले क़ानून बयान करने के बाद अल्लाह तआला इस तक़रीर (वार्ता) को नमाज़ की ताकीद पर ख़त्म करता है, क्योंकि नमाज़ ही वह चीज़ है जो इनसान के अन्दर ख़ुदा का डर, नेकी या पाकीज़गी के जज़्बों और अल्लाह के हुक्म की फ़रमाँबरदारी की स्प्रिट पैदा करती है और उसे सच्चाई पर क़ायम रखती है। यह चीज़ न हो तो इनसान कभी अल्लाह के क़ानूनों की पाबन्दी पर अटल (जमा) नहीं रह सकता और आख़िरकार उसी नाफ़रमानी की धारा में बह निकलता है जिस पर यहूदी बह निकले।

263. असल अरबी लफ़्ज़ 'सलातुल-वुस्ता' इस्तेमाल हुआ है। क़ुरआन के कुछ मुफ़स्सिरों ने इससे मुराद सुबह की नमाज़ ली है। कुछ ने ज़ुहर, कुछ ने मग़रिब और कुछ ने इशा, लेकिन इनमें से कोई बात भी नबी *(सल्ल॰)* से साबित नहीं है। सिर्फ़ मतलब और मानी निकालनेवालों ने इसका यह मतलब निकाला है। सबसे ज़्यादा क़ौल (कथन) अस्र की नमाज़ के हक़ में मिलते हैं और कहा जाता है कि नबी *(सल्ल॰)* ने इसी नमाज़ को 'सलातुल-वुस्ता' ठहराया है। लेकिन जिस वाक़िए से यह नतीजा निकाला जाता है, वह सिर्फ़ यह है कि 'अहज़ाब की लड़ाई' के मौक़े पर नबी *(सल्ल॰)* को दुश्मनों के हमलों ने इतना ज़्यादा मशग़ूल रखा कि सूरज डूबने को आ गया और आप अस्र की नमाज़ न पढ़ सके। उस वक़्त आपने फ़रमाया कि "अल्लाह उन लोगों की क़ब्रें और उनके घर आग से भर दे। उन्होंने हमारी सलातुल-वुस्ता छुड़वाई।" इससे यह समझा गया कि नबी *(सल्ल॰)* ने अस्र की नमाज़ को 'सलातुल-वुस्ता' कहा है, हालाँकि इसका यह मतलब हमारे नज़दीक ज़्यादा ठीक मालूम होता है कि इस मशग़ूलियत ने आला दरजे की नमाज़ हमसे छुड़वा दी, नावक़्त पढ़नी पड़ेगी, जल्दी-जल्दी अदा करनी होगी, ख़ुशू और ख़ुज़ू (विनम्रता और ध्यान) इतमीनान और सुकून के साथ न पढ़ सकेंगे।

'वुस्ता' के मानी बीचवाली चीज़ के भी हैं और ऐसी चीज़ के भी जो आला और ऊँचे दरजे की हो। 'सलातुल-वुस्ता' से मुराद बीच की नमाज़ भी हो सकती है और ऐसी नमाज़ भी जो सही

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا ۚۖ
وَّصِيَّةً لِّاَزْوَاجِهِمْ مَّتَاعًا اِلَى الْحَوْلِ غَيْرَ
اِخْرَاجٍ ۚ فَاِنْ خَرَجْنَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْ مَا
فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ مِنْ مَّعْرُوْفٍ ۗ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ
حَكِيْمٌ ﴿٢٤٠﴾ وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌۢ بِالْمَعْرُوْفِ ۗ حَقًّا
عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ﴿٢٤١﴾ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ
لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿٢٤٢﴾ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ خَرَجُوْا

(240) तुममें से[264] जिन लोगों की मौत हो जाए और वे अपने पीछे बीवियाँ छोड़ रहे हों, तो उनको चाहिए कि अपनी बीवियों के हक़ में यह वसीयत कर जाएँ कि एक साल तक उनको खाना-कपड़ा दिया जाए और वे घर से न निकाली जाएँ, फिर अगर वे ख़ुद निकल जाएँ तो अपने मामले में भले तरीक़े से वे जो कुछ भी करें, उसकी कोई ज़िम्मेदारी तुमपर नहीं है। अल्लाह सबपर ग़ालिब इक़्तिदार रखनेवाला और हिकमतवाला और जाननेवाला है। (241) इसी तरह जिन औरतों को तलाक़ दी गई हो, उन्हें भी मुनासिब तौर पर कुछ-न-कुछ देकर विदा किया जाए। यह हक़ है परहेज़गार लोगों पर।

(242) इस तरह अल्लाह अपने अहकाम (आदेश) तुम्हें साफ़-साफ़ बताता है। उम्मीद है कि तुम समझ-बूझकर काम करोगे।

(243) तुमने[265] उन लोगों की हालत पर भी कुछ ग़ौर किया जो मौत के डर से

वक़्त पर पूरे लगाव के साथ अल्लाह की तरफ़ पूरा ध्यान लगाकर पढ़ी जाए और जिसमें नमाज़ की तमाम ख़ूबियाँ मौजूद हों। बाद का जुमला (वाक्य) कि "अल्लाह के आगे फ़रमाँबरदार बन्दों की तरह खड़े हो" ख़ुद इसका मतलब बयान कर रहा है।

264. तक़रीर (वार्ता) का सिलसिला ऊपर ख़त्म हो चुका था, यह बात उसके ततिम्मा (पूरक) और ज़मीमा (परिशिष्ट) के तौर पर है।

265. यहाँ से तक़रीर (वार्ता) का एक दूसरा सिलसिला शुरू होता है, जिसमें मुसलमानों को ख़ुदा की

مِنْ دِيَارِهِمْ وَهُمْ أُلُوفٌ حَذَرَ الْمَوْتِ ۖ
فَقَالَ لَهُمُ اللَّهُ مُوتُوا ثُمَّ أَحْيَاهُمْ ۚ إِنَّ اللَّهَ
لَذُو فَضْلٍ عَلَى النَّاسِ وَلَٰكِنَّ أَكْثَرَ النَّاسِ
لَا يَشْكُرُونَ ﴿٢٤٣﴾ وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ وَاعْلَمُوا

अपने घर-बार छोड़कर निकले थे और हज़ारों की तादाद में थे? अल्लाह ने उनसे कहा : मर जाओ। फिर उसने उनको दोबारा ज़िन्दगी बख़्शी।[266] हक़ीक़त यह है कि अल्लाह इनसान पर बड़ा फ़ज़्ल (अनुग्रह) करनेवाला है, मगर ज़्यादातर लोग शुक्र अदा नहीं करते। (244) – मुसलमानो! अल्लाह की राह में जंग करो और ख़ूब जान रखो कि अल्लाह

राह में जिहाद और माली क़ुर्बानियाँ करने पर उभारा गया है और उन्हें उन कमज़ोरियों से बचने की हिदायत दी गई है जिनकी वजह से आख़िरकार बनी-इसराईल गिरावट (पतन) से दो-चार हुए। इस मक़ाम को समझने के लिए यह बात सामने रहे कि मुसलमान उस वक़्त मक्के से निकाले जा चुके थे। साल-डेढ़-साल से मदीना में पनाह लिए हुए थे और इस्लाम दुश्मनों के ज़ुल्म से तंग आकर ख़ुद बार-बार माँग कर चुके थे कि हमें लड़ने की इजाज़त दी जाए। मगर जब उन्हें लड़ाई का हुक्म दे दिया गया तो अब उनमें से कुछ लोग कसमसा रहे थे, जैसा कि आयत 116 में कहा गया है। इसलिए यहाँ बनी-इसराईल के इतिहास के दो अहम वाक़िओं से उन्हें सबक़ लेने की बात कही गई है।

266. यह इशारा बनी-इसराईल के उस वाक़िए की तरफ़ है जब वे मिस्र से निकले थे। सूरा माइदा की आयत नम्बर 20 में अल्लाह तआला ने इसकी तफ़सील बयान की है। ये लोग बहुत बड़ी तादाद में मिस्र से निकले थे। जंगलों और बियाबानों में बेघर फिर रहे थे। ख़ुद एक ठिकाने के लिए परेशान थे। मगर जब अल्लाह की इजाज़त से हज़रत मूसा ने उनको हुक्म दिया कि ज़ालिम कनआ़नियों को फ़लस्तीन की धरती से निकाल दो और उस इलाक़े को फ़त्ह कर लो, तो उन्होंने बुज़दिली दिखाई और आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। आख़िरकार अल्लाह ने उन्हें चालीस साल तक ज़मीन में मारा-मारा फिरने के लिए छोड़ दिया, यहाँ तक कि उनकी एक नस्ल ख़त्म हो गई और दूसरी नस्ल रेगिस्तान की गोद में पलकर उठी, तब अल्लाह तआला ने उन्हें कनआ़नियों पर ग़लबा अता किया। मालूम होता है कि इसी मामले को मौत और दोबारा ज़िन्दगी के लफ़्ज़ों में बयान किया गया है।

اَنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝٢٤٥ مَنْ ذَا الَّذِيْ يُقْرِضُ
اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا فَيُضٰعِفَهٗ لَهٗٓ اَضْعَافًا كَثِيْرَةً ؕ
وَاللّٰهُ يَقْبِضُ وَيَبْصُۜطُ ۖ وَاِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ۝٢٤٥ اَلَمْ
تَرَ اِلَى الْمَلَاِ مِنْۢ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ مِنْۢ بَعْدِ مُوْسٰى ۘ
اِذْ قَالُوْا لِنَبِيٍّ لَّهُمُ ابْعَثْ لَنَا مَلِكًا نُّقَاتِلْ
فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ؕ قَالَ هَلْ عَسَيْتُمْ اِنْ كُتِبَ

सुननेवाला और जाननेवाला है। (245) तुममें कौन है जो अल्लाह को अच्छा क़र्ज़[267] दे, ताकि अल्लाह उसे कई गुना बढ़ा-चढ़ाकर वापस करे? घटाना भी अल्लाह के इख़्तियार में है और बढ़ाना भी, और उसी की तरफ़ तुम्हें पलटकर जाना है।

(246) फिर तुमने उस मामले पर भी ग़ौर किया जो मूसा के बाद बनी-इसराईल के सरदारों को पेश आया था? उन्होंने अपने नबी से कहा : हमारे लिए एक बादशाह मुक़र्रर कर दो ताकि हम अल्लाह की राह में जंग करें।[268] नबी ने पूछा : कहीं ऐसा तो न होगा

267. असल में "क़र्ज़े-हसन" इस्तेमाल हुआ है, जिसका तर्जमा है "अच्छा क़र्ज़।" और इससे मुराद ऐसा क़र्ज़ है, जो ख़ालिस नेकी और भलाई के जज़्बे से किसी को दिया जाए। और उसमें देनेवाले के सामने अपनी कोई ग़रज़ न हो। इस तरह जो माल ख़ुदा की राह में ख़र्च किया जाए, उसे अल्लाह तआला अपने ज़िम्मे क़र्ज़ क़रार देता है और वादा करता है कि मैं न सिर्फ़ असल अदा करूँगा, बल्कि इससे कई गुना ज़्यादा दूँगा। अलबत्ता शर्त यह है कि वह हो 'क़र्ज़े-हसन' यानी अपनी किसी निजी ग़रज़ के लिए न दिया जाए, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह की ख़ातिर उन कामों में ख़र्च किया जाए जिनको वह पसन्द करता है।

268. यह तक़रीबन एक हज़ार साल क़ब्ल ईसा (ईसा पूर्व) का वाक़िआ है। उस वक़्त बनी-इसराईल पर अमालिक़ा (क़ौम के लोग) हावी हो गए थे और उन्होंने इसराईलियों से फ़लस्तीन के अकसर इलाक़े छीन लिए थे। शमूएल नबी उस ज़माने में बनी-इसराईल के बीच हुकूमत कर रह थे, मगर वह बहुत बूढ़े हो चुके थे, इसलिए बनी-इसराईल के सरदारों ने यह ज़रूरत महसूस की कि कोई और आदमी उनका हाकिम हो, जिसकी अगुवाई में वे जंग कर सकें। लेकिन उस वक़्त बनी-इसराईल में इस क़द्र जाहिलियत आ चुकी थी और वे ग़ैर-मुस्लिम कौमों के तौर-तरीक़ों से

इतने मुतास्सिर (प्रभावित) हो चुके थे कि ख़िलाफ़त और बादशाही का फ़र्क़ उनके ज़ेहनों से निकल गया था। इसलिए उन्होंने जो दरख़ास्त की वह ख़लीफ़ा मुक़र्रर करने की नहीं थी, बल्कि एक बादशाह मुक़र्रर करने की थी। इस सिलसिले में बाइबल की किताब शमूएल प्रथम में जो तफ़सील बयान हुई है, इस तरह है–

शमूएल ज़िन्दगी भर इसराईलियों का न्याय करता रहा....तब सब इसराईली बुज़ुर्ग इकट्ठा होकर रामा में शमूएल के पास जाकर उससे कहने लगे, "सुन, तू तो अब बूढ़ा हो गया और तेरे बेटे तेरी राह पर नहीं चलते, अब हम पर इनसाफ़ करने के लिए सब क़ौमों (जातियों) के रिवाज के मुताबिक़ हमारे लिए एक बादशाह मुक़र्रर कर दे।"........ यह बात शमूएल को बुरी लगी और शमूएल ने यहोवा (ख़ुदावन्द) से दुआ की और यहोवा ने शमूएल से कहा, "वे लोग जो कुछ तुझसे कहें उसे मान ले; क्योंकि उन्होंने तुमको नहीं, लेकिन मुझी को निकम्मा जाना है कि मैं उनका बादशाह न रहूँ।"....शमूएल ने उन लोगों को जो उससे बादशाह चाहते थे यहोवा (ख़ुदावन्द) की सब बातें कह सुनाईं। उसने कहा, "जो बादशाह तुमपर हुकूमत करेगा उसकी यह चाल होगी, यानी वह तुम्हारे बेटों को लेकर अपने रथों और घोड़ों के काम पर नौकर रखेगा और वे उसके रथों के आगे-आगे दौड़ा करेंगे; फिर वह उनको हज़ार-हज़ार और पचास-पचास के ऊपर जमादार (प्रधान) बनाएगा, और कितनों, से वह अपने हल जुतवाएगा और अपने खेत कटवाएगा, और अपने लिए लड़ाई के हथियार और रथों के साज़ बनवाएगा। फिर वह तुम्हारी बेटियों को लेकर उनसे गुन्धन (सुगन्ध-द्रव्य) और रसोई और रोटियाँ बनवाएगा। फिर वह तुम्हारे खेतों और दाख (अंगूर) और ज़ैतून की बारियों में से जो अच्छी से अच्छी होंगी, उन्हें लेकर अपने ख़िदमतगारों (कर्मचारियों) को देगा। फिर वह तुम्हारे बीज और दाख (अंगूर) की बारियों का दसवाँ हिस्सा लेकर अपने हाकिमों और ख़िदमतगारों को देगा। फिर वह तुम्हारे ग़ुलामों और लौंडियों को, और तुम्हारे अच्छे से अच्छे जवानों को, और तुम्हारे गदहों को भी लेकर अपने काम में लगाएगा। वह तुम्हारी भेड़-बकरियों का भी दसवाँ हिस्सा लेगा; इस तरह तुम उसके ग़ुलाम बन जाओगे। और उस दिन तुम अपने उस चुने हुए बादशाह की वजह से दुहाई दोगे, लेकिन यहोवा उस वक़्त तुम्हारी न सुनेगा।"

तो भी उन लोगों ने शमूएल की बात न सुनी; और कहने लगे, "नहीं! हम ज़रूर अपने लिए बादशाह चाहते हैं, जिससे हम भी और सब क़ौमों (जातियों) की तरह हो जाएँ, और हमारा बादशाह हमारा इनसाफ़ करे, और हमारे आगे-आगे चलकर हमारी तरफ़ से जंग किया करे।"......यहोवा ने शमूएल से कहा, "उनकी बात मानकर उनके लिए बादशाह ठहरा दे।"

(1 शमूएल, 7:15; 8:4-22)

"फिर शमूएल लोगों से कहने लगा......जब तुमने देखा कि अम्मोनियों (बनी-अमून) का बादशाह नाहाश हम पर चढ़ाई करता है, तब हालाँकि तुम्हारा ख़ुदावन्द (परमेश्वर) यहोवा तुम्हारा बादशाह था, तो भी तुमने मुझसे कहा : नहीं, हमपर एक बादशाह हुकूमत करेगा। अब उस बादशाह को देखो जिसे तुमने चुन लिया, और जिसके लिए तुमने दुआ की थी; देखो, यहोवा ने तुमपर एक बादशाह मुक़र्रर कर दिया है। यदि तुम यहोवा का ख़ौफ़ मानते, उसकी इबादत

عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ اَلَّا تُقَاتِلُوْا ؕ قَالُوْا وَمَا لَنَآ اَلَّا نُقَاتِلَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَقَدْ اُخْرِجْنَا مِنْ دِيَارِنَا وَاَبْنَآئِنَا ؕ فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ تَوَلَّوْا اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْهُمْ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِالظّٰلِمِيْنَ ۝

कि तुमको लड़ाई का हुक्म दिया जाए और फिर तुम न लड़ो। वे कहने लगे : भला यह कैसे हो सकता है कि हम अल्लाह की राह में न लड़ें, जबकि हमें अपने घरों से निकाल दिया गया है और हमारे बाल-बच्चे हमसे जुदा कर दिए गए हैं, मगर जब उनको जंग का हुक्म दिया गया तो एक छोटी तादाद के सिवा वे सब पीठ फेर गए, और अल्लाह उनमें से एक-एक ज़ालिम को जानता है।

(उपासना) करते। और उसकी बात सुनते रहो और यहोवा के हुक्म को टालकर उससे बलवा न करो, और तुम और वह जो तुम पर बादशाह हुआ है, दोनों अपने ख़ुदावन्द (परमेश्वर) यहोवा के पीछे-पीछे चलनेवाले बने रहो, तब तो भला होगा। लेकिन अगर तुम यहोवा की बात न मानो, और यहोवा के हुक्म को टालकर उससे बलवा करो, तो यहोवा का हाथ जैसे तुम्हारे पुरखों (बाप-दादाओं) के खिलाफ़ हुआ, वैसे ही तुम्हारे भी ख़िलाफ़ उठेगा।.......तब तुम जान लोगे, और देख भी लोगे कि तुमने बादशाह माँगकर यहोवा की निगाह में बहुत बड़ी बुराई की है।.....फिर यह मुझसे दूर हो कि मैं तुम्हारे लिए दुआ करना छोड़कर यहोवा के ख़िलाफ़ गुनाहगार ठहरूँ; मैं तो तुम्हें अच्छा और सीधा रास्ता दिखाता रहूँगा।'' (1 शमूएल, 12:12-23) किताब शमूएल के इन बयानों से यह बात वाज़ेह हो जाती है कि बादशाही के क़ायम करने का यह मुतालबा अल्लाह और उसके नबी को पसन्द न था। अब रहा यह सवाल कि क़ुरआन मजीद में इस जगह पर बनी-इसराईल के सरदारों के इस मुतालबे की निन्दा क्यों नहीं की गई, तो इसका जवाब यह है कि अल्लाह ने यहाँ इस क़िस्से का ज़िक्र जिस मक़सद के लिए किया है, उससे यह बात कोई ताल्लुक़ नहीं रखती कि उनका मुतालबा सही था या न था। यहाँ तो यह बताना मक़सद है कि बनी-इसराईल कितने बुज़दिल और डरपोक हो गए थे और उनमें कितनी ख़ुदग़र्ज़ी आ गई थी और उनके अन्दर अख़लाक़ी मज़बूती की कितनी कमी थी, जिसकी वजह से आख़िरकार वे गिर गए, और इस ज़िक्र (उल्लेख) की ग़रज़ यह है कि मुसलमान इससे सबक़ हासिल करें और अपने अंदर ये कमज़ोरियाँ न पलने दें।

وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ إِنَّ اللَّهَ قَدْ بَعَثَ لَكُمْ طَالُوتَ
مَلِكًا ؕ قَالُوا أَنَّىٰ يَكُونُ لَهُ الْمُلْكُ عَلَيْنَا وَنَحْنُ
أَحَقُّ بِالْمُلْكِ مِنْهُ وَلَمْ يُؤْتَ سَعَةً مِّنَ الْمَالِ ؕ
قَالَ إِنَّ اللَّهَ اصْطَفَاهُ عَلَيْكُمْ وَزَادَهُ بَسْطَةً
فِي الْعِلْمِ وَالْجِسْمِ ؕ وَاللَّهُ يُؤْتِي مُلْكَهُ مَنْ

(247) उनके नबी ने उनसे कहा कि अल्लाह ने तालूत[269] को तुम्हारे लिए बादशाह मुक़र्रर किया है। यह सुनकर वे बोले, "हम पर बादशाह बनने का वह कैसे हक़दार हो गया? उसके मुक़ाबले में बादशाही के हम ज़्यादा हक़दार हैं। वह तो कोई बड़ा मालदार आदमी नहीं है।" नबी ने जवाब दिया, "अल्लाह ने तुम्हारे मुक़ाबले में उसी को चुना है और उसको दिमाग़ी और जिस्मानी दोनों तरह की भरपूर सलाहियतें दी हैं और अल्लाह को इख़्तियार है कि अपना मुल्क (राज्य) जिसे चाहे दे, अल्लाह बड़ी समाईवाला है और

269. बाइबल में इसका नाम शाऊल लिखा है। यह क़बीला बिन्यामीन (बिन-यमीन) का एक तीस बरस का नवजवान था। "बनी-इसराईल में इससे ख़ूबसूरत कोई आदमी न था और ऐसा लम्बा-तड़ंगा था कि लोग उसके कंधे तक आते थे।" अपने बाप के गुमशुदा गधे ढूँढने निकला था। रास्ते में जब शमूएल नबी की क़ियामगाह (निवास-स्थल) के क़रीब पहुँचा तो अल्लाह ने नबी को इशारा किया कि यही शख़्स है जिसको हमने बनी-इसराईल की बादशाही के लिए चुना है। चुनाँचे शमूएल नबी उसे अपने घर लाए। तेल की कुप्पी लेकर उसके सर पर उंडेली और उसे चूमा और कहा कि "ख़ुदाबन्द ने तुझे मसह (स्पर्श) किया, ताकि तू उसकी मीरास का पेशवा हो।" इसके बाद उन्होंने बनी-इसराईल का आम इजतिमा (सभा) करके उसकी बादशाही का एलान किया। (1-शमूएल, अध्याय 9 व 10)
यह बनी-इसराईल में दूसरा शख़्स था, जिसको ख़ुदा के हुक्म से 'मसह' करके पेशवाई के मंसब पर मुक़र्रर किया गया। इससे पहले हज़रत हारून सरदारे-काहिन (Cheif Priest) की हैसियत से मसह किए गए थे। इसके बाद तीसरे मसह किए हुए या मसीह हज़रत दाऊद (अलै.) हुए और चौथे मसीह हज़रत ईसा (अलै.)। लेकिन तालूत के बारे में ऐसी कोई बात क़ुरआन या हदीस में नहीं है कि वह नुबूवत के मंसब पर भी मुक़र्रर हुआ था। सिर्फ़ बादशाही के लिए नामज़द (नियुक्त) किया जाना, इस बात के लिए काफ़ी नहीं है कि उसे नबी माना जाए।

يَّشَآءُ ۚ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٤٧﴾ وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ
اِنَّ اٰيَةَ مُلْكِهٖٓ اَنْ يَّاْتِيَكُمُ التَّابُوْتُ فِيْهِ
سَكِيْنَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَبَقِيَّةٌ مِّمَّا تَرَكَ اٰلُ مُوْسٰى
وَاٰلُ هٰرُوْنَ تَحْمِلُهُ الْمَلٰٓئِكَةُ ۚ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيَةً
لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ﴿٢٤٨﴾ ع فَلَمَّا فَصَلَ ع

वह सब कुछ जानता है।" (248) इसके साथ उनके नबी ने उनको यह भी बताया कि "अल्लाह की तरफ़ से उसके बादशाह मुक़र्रर होने की पहचान यह है कि उसके दौर में वह संदूक़ तुम्हें वापस मिल जाएगा, जिसमें तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारे लिए दिल के इतमीनान का सामान है, जिसमें मूसा के लोगों और हारून के लोगों की छोड़ी हुई तबुर्रुकात (बरकतवाली चीज़ें) हैं और जिसको इस वक़्त फ़रिश्ते सँभाले हुए हैं।[270] अगर तुम ईमानवाले हो तो यह तुम्हारे लिए बहुत बड़ी निशानी है।

---

270. बाइबल का बयान इस बारे में क़ुरआन से बहुत अलग है। फिर भी उससे असल वाक़िए की तफ़सील (विवरण) पर काफ़ी रौशनी पड़ती है। इससे मालूम होता है कि यह संदूक़ जिसे बनी-इसराईल की इस्तिलाह (परिभाषा) में 'अहद (प्रतिज्ञा) का संदूक़' कहते थे, एक लड़ाई के मौक़े पर फ़िलिस्ती मुशरिकों (बहुदेववादियों) ने बनी-इसराईल से छीन लिया था। लेकिन यह मुशरिकों के जिस शहर और जिस बस्ती में रखा गया वहाँ वबाएँ फूट पड़ीं। आख़िरकार उन्होंने मारे डर के उसे एक बैलगाड़ी पर रखकर गाड़ी को हाँक दिया। (1 शमूएल, अध्याय-4 तथा 5 : 1 से 7 : 1) शायद इसी मामले की तरफ़ क़ुरआन इन लफ़्ज़ों में इशारा करता है कि उस वक़्त वह संदूक़ फ़रिश्तों की हिफ़ाज़त में था, क्योंकि वह गाड़ी बिना किसी गाड़ीवान के हाँक दी गई थी और अल्लाह के हुक्म से यह फ़रिश्तों ही का काम था कि वे उसे हाँककर बनी-इसराईल की तरफ़ ले आएँ। रहा यह कहना कि "इस संदूक़ में तुम्हारे लिए दिल के सुकून का सामान है" तो बाइबल के बयान से इसकी हक़ीक़त यह मालूम होती है कि बनी-इसराईल उसको बड़ा मुबारक और अपने लिए फ़त्ह और मदद का निशान समझते थे। जब वह उनके हाथ से निकल गया तो पूरी क़ौम की हिम्मत टूट गई और हर इसराईली यह सोचने लगा कि ख़ुदा की रहमत हमसे फिर गई है और अब हमारे बुरे दिन आ गए हैं, तो संदूक़ का वापस आना इस क़ौम के लिए दिल की मज़बूती का बड़ा सबब था और यह एक ऐसा ज़रीआ था जिससे उनकी टूटी हुई हिम्मतें फिर बंध सकती थीं।

طَالُوْتُ بِالْجُنُوْدِ ۙ قَالَ اِنَّ اللّٰهَ مُبْتَلِيْكُمْ
بِنَهَرٍ ۚ فَمَنْ شَرِبَ مِنْهُ فَلَيْسَ مِنِّيْ ۚ وَمَنْ
لَّمْ يَطْعَمْهُ فَاِنَّهٗ مِنِّيْٓ اِلَّا مَنِ اغْتَرَفَ غُرْفَةً ۢ
بِيَدِهٖ ۚ فَشَرِبُوْا مِنْهُ اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْهُمْ ۭ فَلَمَّا جَاوَزَهٗ
هُوَ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ ۙ قَالُوْا لَا طَاقَةَ لَنَا الْيَوْمَ
بِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ ۭ قَالَ الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ

(249) फिर जब तालूत फ़ौज लेकर चला तो उसने कहा, ''एक नदी पर अल्लाह की तरफ़ से तुम्हारी आज़माइश होनेवाली है। जो उसका पानी पिएगा, वह मेरा साथी नहीं। मेरा साथी सिर्फ़ वह है जो उससे प्यास न बुझाए; हाँ, एक-आध चुल्लू कोई पी ले, तो पी ले।'' मगर एक छोटे-से गरोह के सिवा उन सबने उस नदी से ख़ूब पानी पिया।[271]

फिर जब तालूत और उसके साथी मुसलमान नदी पार करके आगे बढ़े तो उन्होंने तालूत से कह दिया कि आज हममें जालूत और उसकी फ़ौजों का मुक़ाबला करने की

'मूसा के लोगों और हारून के लोगों की छोड़ी हुई पाक चीज़ें' जो संदूक़ में रखी हुई थीं उनसे मुराद पत्थर की वे तख़्तियाँ हैं, जो सीना पहाड़ पर अल्लाह ने हज़रत मूसा (अलै॰) को दी थीं। इसके अलावा तौरात का वह असूल नुस्ख़ा भी उसमें था, जिसे हज़रत मूसा (अलै॰) ने ख़ुद लिखवाकर बनी-लावी के सुपुर्द किया था। साथ ही एक बोतल में 'मन्न' भी भरकर उसमें रख दिया गया था, ताकि आनेवाली नस्लें अल्लाह के उस एहसान को याद करें, जो रेगिस्तान में उसने उनके बाप-दादा पर किया था और शायद हज़रत मूसा (अलै॰) का वह असा (लाठी) भी उसके अन्दर था जो ख़ुदा के अज़ीमुश्शान मोजज़ात (महान चमत्कारों) का मज़हर (प्रतीक) बना था।

271. मुमकिन है, इससे मुराद जार्डन नदी हो या कोई और नदी या नाला। तालूत बनी-इसराईल की फ़ौज को लेकर उसके पार उतरना चाहता था, मगर चूँकि उसे मालूम था कि उसकी क़ौम के अन्दर अख़लाक़ी मज़बूती बहुत कम रह गई है, इसलिए उसने कारामद और नाकारा लोगों को अलग-अलग करने के लिए यह आज़माइश तजवीज़ (प्रस्तावित) की। ज़ाहिर है कि जो लोग थोड़ी देर के लिए अपनी प्यास तक सहन न कर सकें, उनपर क्या भरोसा किया जा सकता है कि उस दुश्मन के मुक़ाबले में बहादुरी दिखाएँगे जिससे पहले ही वे हार चुके हैं।

مُّلٰقُوا اللّٰهِ ۙ كَمْ مِّنْ فِئَةٍ قَلِيْلَةٍ غَلَبَتْ فِئَةً
كَثِيْرَةً ۢ بِاِذْنِ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿۲۴۹﴾
وَلَمَّا بَرَزُوْا لِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ قَالُوْا رَبَّنَآ اَفْرِغْ
عَلَيْنَا صَبْرًا وَّثَبِّتْ اَقْدَامَنَا وَانْصُرْنَا عَلَى
الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿۲۵۰﴾ؕ فَهَزَمُوْهُمْ بِاِذْنِ اللّٰهِ ۙ۫
وَقَتَلَ دَاوٗدُ جَالُوْتَ وَاٰتٰىهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ وَ
الْحِكْمَةَ وَعَلَّمَهٗ مِمَّا يَشَآءُ ؕ وَلَوْلَا دَفْعُ اللّٰهِ

ताक़त नहीं।[272] लेकिन जो लोग यह समझते थे कि उन्हें एक दिन अल्लाह से मिलना है, उन्होंने कहा, "कई बार ऐसा हुआ है कि एक बहुत छोटा गरोह अल्लाह के हुक्म से एक बड़े गरोह पर छा गया है। अल्लाह सब्र करनेवालों का साथी है।" (250) और जब वे जालूत और उसकी फ़ौजों के मुक़ाबले पर निकले तो उन्होंने दुआ की, "ऐ हमारे रब! हमपर सब्र की बारिश कर, हमारे क़दम जमा दे और इस कुफ़्र (अधर्म) करनेवाले (दुश्मन) गरोह पर कामयाबी दे।" (251) आख़िरकार अल्लाह के हुक्म से उन्होंने काफ़िरों को मार भगाया और दाऊद[273] ने जालूत को क़त्ल कर दिया और अल्लाह ने उसे सल्तनत और हिकमत से नवाज़ा और जिन-जिन चीज़ों का चाहा, उसको इल्म दिया —

272. शायद ऐसा कहनेवाले वही लोग होंगे जिन्होने नदी पर पहले ही अपनी बेसब्री दिखा दी थी।

273. दाऊद (*अलै.*) उस वक़्त एक कम उम्र के नवजवान थे। इत्तिफ़ाक़ से तालूत (शाऊल) की फ़ौज में ठीक उस वक़्त पहुँचे जबकि फ़लिश्तियों की फ़ौज का भारी-भरकम पहलवान जालूत (गोलियत) बनी-इसराईल की फ़ौज को मुक़ाबले के लिए ललकार रहा था और इसराईलियों में से किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि उसके मुक़ाबले को निकले। हज़रत दाऊद (अलै.) यह रंग देखकर बिना इन्तिज़ार किए उसके मुक़ाबले पर मैदान में जा पहुँचे और उसको क़त्ल कर दिया। इस वाक़िए ने उन्हें तमाम इसराईलियों की आँखों का तारा बना दिया। तालूत (शाऊल) ने अपनी बेटी उनसे ब्याह दी और आख़िरकार वही इसराईलियों के बादशाह हुए। (तफ़सील के लिए देखिए बाइबल, पुस्तक 1 शमूएल प्रथम, अध्याय 17 व 18)

النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّفَسَدَتِ الْأَرْضُ وَ
لٰكِنَّ اللّٰهَ ذُو فَضْلٍ عَلَى الْعٰلَمِينَ ﴿٢٥١﴾ تِلْكَ اٰيٰتُ
اللّٰهِ نَتْلُوهَا عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ؕ وَاِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِينَ ﴿٢٥٢﴾
تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۘ
مِنْهُمْ مَّنْ كَلَّمَ اللّٰهُ وَرَفَعَ بَعْضَهُمْ دَرَجٰتٍ ؕ
وَاٰتَيْنَا عِيسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنٰتِ وَاَيَّدْنٰهُ بِرُوحِ
الْقُدُسِ ؕ وَلَوْ شَاءَ اللّٰهُ مَا اقْتَتَلَ الَّذِينَ مِنْ

الجزء الثالث (٣) وقف لازم

अगर इस तरह अल्लाह इनसानों के एक गरोह को दूसरे गरोह के ज़रीए से हटाता न रहता तो ज़मीन का निज़ाम बिगड़ जाता।[274] लेकिन दुनिया के लोगों पर अल्लाह की बड़ी मेहरबानी है (कि वह इस तरह बिगाड़ को दूर करने का इन्तिज़ाम करता रहता है।)

(252) ये अल्लाह की आयतें हैं जो हम ठीक-ठीक तुमको सुना रहे हैं, और (ऐ मुहम्मद!) तुम यक़ीनन उन लोगों में से हो जो रसूल बनाकर भेजे गए हैं। (253) ये रसूल (जो हमारी तरफ़ से इनसानों को रास्ता दिखाने के लिए भेजे गए) हमने उनको एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर दर्जे अता किए। उनमें कोई ऐसा था जिससे अल्लाह ने ख़ुद बातें की, किसी को उसने दूसरी हैसियतों से ऊँचे दर्जे दिए, और आख़िर में मरयम के बेटे ईसा को रौशन निशानियाँ अता कीं और रूहे-पाक से उसकी मदद की। अगर अल्लाह चाहता तो

274. यानी अल्लाह ने धरती का इन्तिज़ाम बनाए रखने के लिए यह क़ायदा बना रखा है कि वह इनसानों के अलग-अलग गरोहों को एक ख़ास हद तक तो ज़मीन में ग़लबा और ताक़त हासिल करने देता है, मगर जब कोई गरोह हद से बढ़ने लगता है तो किसी दूसरे गरोह के ज़रीए से उसका ज़ोर तोड़ देता है। अगर कहीं ऐसा होता कि एक क़ौम और एक पार्टी ही की हुकूमत ज़मीन में हमेशा बाक़ी रखी जाती और उसका क़हर (ज़ुल्म) और उसकी नाइनसाफ़ी कभी ख़त्म होनेवाली न होती, तो यक़ीनन अल्लाह की ज़मीन में एक बड़ी तबाही और फ़साद पैदा हो जाता।

بَعۡدِهِمۡ مِّنۡۢ بَعۡدِ مَا جَآءَتۡهُمُ الۡبَيِّنٰتُ وَلٰـكِنِ
اخۡتَلَفُوۡا فَمِنۡهُمۡ مَّنۡ اٰمَنَ وَمِنۡهُمۡ مَّنۡ كَفَرَ‌ؕ وَلَوۡ
شَآءَ اللّٰهُ مَا اقۡتَتَلُوۡا وَلٰـكِنَّ اللّٰهَ يَفۡعَلُ مَا يُرِيۡدُ‏ ۲۵۳ ع

मुमकिन न था कि इन रसूलों के बाद जो लोग रौशन निशानियाँ देख चुके थे, वे आपस में लड़ते। मगर (अल्लाह यह नहीं चाहता था कि वह लोगों को जबरन इख़तिलाफ़ से रोके, इस वजह से) उन्होंने आपस में इख़तिलाफ़ (मतभेद) किया। फिर कोई ईमान लाया और किसी ने कुफ़्र (अधर्म) का रास्ता अपनाया। हाँ, अल्लाह चाहता तो वे हरगिज़ न लड़ते, मगर अल्लाह जो चाहता, करता है।[275]

275. मतलब यह है कि रसूलों के ज़रीए से इल्म हासिल हो जाने के बाद जो इख़तिलाफ़ लोगों के बीच पैदा हुए और इख़तिलाफ़ों से बढ़कर लड़ाइयों तक जो नौबतें पहुँचीं, तो उसकी वजह यह नहीं थी कि (ख़ुदा की पनाह) अल्लाह बेबस था और उसके पास इन इख़तिलाफ़ों और लड़ाइयों को रोकने की ताक़त न थी। नहीं, अगर वह चाहता तो किसी की मजाल न थी कि नबियों की दावत से मुँह मोड़ सकता और इनकार और बग़ावत के रास्ते पर चल सकता और उसकी ज़मीन में बिगाड़ पैदा कर सकता। मगर वह यह चाहता ही नहीं था कि इनसानों से इरादे और इख़्तियार की आज़ादी छीन ले और उन्हें एक ख़ास तरीक़े पर चलने को मजबूर कर दे। उसने इम्तिहान की ग़रज़ से उन्हें ज़मीन पर पैदा किया था, इसलिए उसने उनको अक़ीदे और अमल की राहों में चुनाव की आज़ादी दी और नबियों को लोगों पर कोतवाल बनाकर नहीं भेजा कि ज़बरदस्ती उन्हें ईमान व इताअत (आस्था और आज्ञापालन) की तरफ़ खींच लाएँ, बल्कि इसलिए भेजा कि दलीलों और खुली निशानियों के ज़रीए से लोगों को सच्चाई की तरफ बुलाने की कोशिश करें। अतः जितने ज़्यादा इख़तिलाफ़ों और लड़ाइयों के हंगामे हुए, वे सब इस वजह से हुए कि अल्लाह ने लोगों को इरादे की जो आज़ादी अता की थी, उससे काम लेकर लोगों ने ये अलग-अलग राहें अपना लीं, न कि इस वजह से कि अल्लाह उनको सच्चाई पर चलाना चाहता था, मगर (अल्लाह की पनाह) उसे कामयाबी न हुई।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَ يَوْمٌ لَّا بَيْعٌ فِيْهِ وَلَا خُلَّةٌ وَّلَا شَفَاعَةٌ ؕ وَالْكٰفِرُوْنَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝ اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ اَلْحَيُّ الْقَيُّوْمُ ۚ لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ ؕ

(254) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! जो कुछ माल-दौलत हमने तुमको दिया है, उसमें से ख़र्च करो[276] इससे पहले कि वह दिन आए जिसमें न ख़रीद-फ़रोख़्त होगी, न दोस्ती काम आएगी और न सिफ़ारिश चलेगी और ज़ालिम असल में वही हैं जो कुफ़्र (इनकार) की रविश अपनाते हैं।[277]

(255) अल्लाह हमेशा ज़िन्दा रहनेवाली वह हस्ती, जो पूरी कायनात को सँभाले हुए है, उसके सिवा कोई ख़ुदा (ईश्वर) नहीं है।[278] वह न सोता है और न उसे ऊँघ लगती

276. मुराद अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करना है। कहा यह जा रहा है कि जिन लोगों ने ईमान का रास्ता अपनाया है, उन्हें उस मक़सद के लिए जिसपर वे ईमान लाए हैं, माली क़ुर्बानियाँ सहनी चाहिएँ।

277. यहाँ कुफ़्र (अधर्म) की रविश अपनानेवालों से मुराद या तो वे लोग हैं जो ख़ुदा के हुक्म पर चलने से इनकार करें और अपने माल को उसकी ख़ूशनूदी से ज़्यादा अज़ीज़ (प्रिय) समझें, या वे लोग हैं जो उस दिन पर अक़ीदा न रखते हों जिसके आने का डर दिलाया गया है। या फिर वे लोग हैं जो इस धोखे में पड़े हों कि आख़िरत में उन्हें किसी-न-किसी तरह नजात ख़रीद लेने का और दोस्ती व सिफ़ारिश से काम निकाल ले जाने का मौक़ा हासिल हो जाएगा।

278. यानी नादान लोगों ने अपनी जगह चाहे कितने ही ख़ुदा और माबूद (उपास्य) बना रखे हों, लेकिन असल बात यह है कि ख़ुदाई (प्रभुता) पूरी की पूरी, किसी दूसरे की साझेदारी के बिना कभी न मिटनेवाली हस्ती की है जो किसी की दी हुई ज़िन्दगी से नहीं, बल्कि आप अपनी ही हयात (जीवन) से ज़िंदा है और जिसके बलबूते ही पर कायनात का यह सारा इन्तिज़ाम क़ायम है। अपनी सल्तनत में ख़ुदाई के तमाम इख़्तियारों और हुक़ूक़ का मालिक वह ख़ुद ही है। कोई दूसरा न उसकी सिफ़ात में उसका साझी है, न उसके इख़्तियारों में और न उसके हक़ और आधिकारों में। इसलिए उसको छोड़कर या उसका साझी ठहराकर ज़मीन या आसमान में जहाँ भी किसी और को माबूद (ख़ुदा) बनाया जा रहा है, एक झूठ गढ़ा जा रहा है और सच्चाई और हक़ीक़त के ख़िलाफ़ जंग की जा रही है।

لَهُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْأَرْضِ ۗ مَنْ ذَا
الَّذِي يَشْفَعُ عِنْدَهُ إِلَّا بِإِذْنِهِ ۚ يَعْلَمُ مَا بَيْنَ
أَيْدِيهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ ۖ وَلَا يُحِيطُونَ بِشَيْءٍ مِّنْ
عِلْمِهِ إِلَّا بِمَا شَاءَ ۚ وَسِعَ كُرْسِيُّهُ السَّمٰوٰتِ وَ

है।[279] ज़मीन और आसमानों में जो कुछ है, उसी का है।[280] कौन है जो उसके सामने उसकी इजाज़त के बिना सिफ़ारिश कर सके?[281] जो कुछ बन्दों के सामने है, उसे भी वह जानता है और जो कुछ उनसे ओझल है, उसे भी वह जानता है और उसके इल्म में से कोई चीज़ उनके इल्म की पकड़ में नहीं आ सकती, यह और बात है कि किसी चीज़ का इल्म वह ख़ुद ही उनको देना चाहे।[282] उसकी हुकूमत[283] आसमानों और ज़मीन पर छाई

279. यह उन लोगों के ख़यालों (धारणाओं) का रद्द है जो सारे जहान के ख़ुदा की हस्ती को अपनी नामुकम्मल हस्तियों पर गुमान करते हैं और उसकी तरफ़ वे कमज़ोरियाँ जोड़ देते हैं जो इनसानों के साथ ख़ास हैं। जैसे बाइबल का यह बयान कि ख़ुदा ने छह दिन में ज़मीन व आसमान को पैदा किया और सातवें दिन आराम किया।

280. यानी वह ज़मीन व आसमान का और हर उस चीज़ का मालिक है जो ज़मीन व आसमान में है। उसकी मिलकियत में, उसकी तद्‌बीर में और उसकी बादशाही और हुक्मरानी में किसी का बिलकुल भी कोई हिस्सा नहीं। इसके बाद कायनात (जगत्) में जिस दूसरी हस्ती के बारे में तुम सोच सकते हो, वह बहरहाल इस कायनात का एक हिस्सा ही होगी, और जो इस कायनात का हिस्सा है, वह अल्लाह की ममलूक (शासित) और ग़ुलाम है, न कि उसका साझी और बराबर।

281. यहाँ उन मुशरिकों (बहुदेववादियों) के ख़यालों का रद्द किया गया है जो बुज़ुर्ग इनसानों या फ़रिश्तों या दूसरी हस्तियों के बारे में यह गुमान रखते हैं कि ख़ुदा के यहाँ उनका बड़ा ज़ोर चलता है। जिस बात पर अड़ बैठें, वह मनवाकर छोड़ते हैं और जो काम चाहें, ख़ुदा से ले सकते हैं। उन्हें बताया जा रहा है कि ज़ोर चलाना तो दूर की बात, कोई बड़े-से-बड़ा पैग़म्बर और कोई क़रीबी-से-क़रीबी फ़रिश्ता भी, आसमानों और ज़मीन के उस बादशाह के दरबार में बिना इजाज़त के ज़बान तक खोलने की हिम्मत नहीं कर सकता।

282. इस हक़ीक़त के ज़ाहिर करने से शिर्क (बहुदेववाद) की बुनियादों पर एक और चोट लगती है। ऊपर के जुमलों में अल्लाह की ग़ैर-महदूद हाकिमियत (सम्प्रभुत्व) और उसके मुतलक़ इख़्तियारात (अबाध अधिकारों) का तसव्वुर पेश करके यह बताया गया था कि उसकी हुकूमत में न तो कोई साझीदार है और न किसी का उसके यहाँ ऐसा ज़ोर चलता है कि वह अपनी

الْاَرْضَ ۚ وَلَا يَئُوْدُهٗ حِفْظُهُمَا ۚ وَهُوَ الْعَلِيُّ
الْعَظِيْمُ ۝٢٥٥ لَآ اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ ۙ قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ

हुई है और उसकी देखभाल उसके लिए कोई थका देनेवाला काम नहीं है। बस वही एक बुज़ुर्ग और बरतर हस्ती है।[284]

(256) दीन के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।[285] सही बात ग़लत ख़यालात

सिफ़ारिशों से उसके फ़ैसलों पर असर डाल सके। अब एक दूसरी हैसियत से यह बताया जा रहा है कि कोई दूसरा उसके काम में दख़ल दे भी कैसे सकता है, जबकि किसी दूसरे के पास वह इल्म (ज्ञान) ही नहीं है, जिससे वह कायनात के निज़ाम और उसकी मसलिहतों को समझ सकता हो। इनसान हों या जिन्न या फ़रिश्ते या दूसरी मख़लूक़ (सृष्टि), सबका इल्म अधूरा और महदूद है। किसी की नज़र भी ऐसी नहीं, जो कायनात की तमाम हकीक़तों को देख रही हो। फिर अगर किसी छोटे-से-छोटे हिस्से में भी किसी बन्दे की आज़ादाना दख़ल-अन्दाज़ी या अटल सिफ़ारिश चल सके तो कायनात का सारा इन्तिज़ाम छिन्न-भिन्न हो जाए। दुनिया का इन्तिज़ाम तो दूर रहा, बन्दे तो ख़ुद अपनी मसलिहतों (भले-बुरे) को भी समझने के क़ाबिल नहीं हैं। उनकी ज़रूरतों को भी कायनात का पालनहार ख़ुदा ही जानता है लिहाज़ा उनके लिए इसके सिवा कोई रास्ता नहीं कि उस ख़ुदा की हिदायत और रहनुमाई पर भरोसा करें जो इल्म का असली सरचश्मा है।

283. असल अरबी लफ्ज़ 'कुर्सी' इस्तेमाल हुआ है, जिसे आम तौर से हुकूमत के लिए मिसाल के तौर पर बोला जाता है। उर्दू और हिन्दी ज़बानों में भी अक्सर कुर्सी का लफ्ज़ बोलकर हाकिमाना इख़्तियार (शासनाधिकार) मुराद लेते हैं।

284. यह आयत 'आयतुल-कुर्सी' के नाम से मशहूर है और इसमें अल्लाह की ऐसी मुकम्मल मारिफ़त (ख़ास पहचान) बख़्शी गई है जिसकी मिसाल कहीं नहीं मिलती। इसी वजह से हदीस में इसको क़ुरआन की सबसे अफ़ज़ल (सर्वश्रेष्ठ) आयत बताया गया है। इस जगह पर यह सवाल पैदा होता है कि यहाँ कायनात के पालनहार की ज़ातो-सिफ़ात (गुणों) का ज़िक्र किस ताल्लुक़ के हुआ है? इसको समझने के लिए एक बार फिर उस तक़रीर पर निगाह डाल लीजिए जो आयत 243 से चली आ रही है। पहले मुसलमानों को सच्चे दीन को क़ायम करने के रास्ते में जान व माल से जिद्दोजुहद करने पर उभारा गया है और उन कमज़ोरियों से बचने की ताकीद की गई है, जिनमें बनी-इसराईल पड़ गए थे। फिर यह हक़ीक़त समझाई गई है कि फ़तह और कामयाबी का दारोमदार तादाद और साज़ो-सामान पर नहीं होता, बल्कि ईमान, सब्र, बरदाश्त और इरादे की पुख़्तगी पर है। फिर लड़ाई के साथ अल्लाह की जो हिकमत जुड़ी हुई है उसकी तरफ़ इशारा किया गया है, यानी यह दुनिया का इन्तिज़ाम बाक़ी रखने के लिए वह हमेशा इनसानों के एक गरोह को दूसरे गरोह के ज़रीए से हटाता रहता है, वरना अगर एक ही

مِنَ الْغَيِّ ۚ فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَ يُؤْمِنْ بِاللّٰهِ
فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ۗ لَا انْفِصَامَ لَهَا ۗ
وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝٢٥٦ اَللّٰهُ وَلِيُّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۙ

से अलग छाँटकर रख दी गई है। अब जो कोई ताग़ूत[286] का इनकार करके अल्लाह पर ईमान ले आया, उसने एक ऐसा मज़बूत सहारा थाम लिया जो कभी टूटनेवाला नहीं और अल्लाह (जिसका सहारा उसने लिया है) सब कुछ सुननेवाला और जाननेवाला है। (257) जो

गरोह को ग़लबा और हुकूमत का हमेशा का पट्टा मिल जाता, तो दूसरों के लिए जीना दुश्वार हो जाता। फिर इस शक को दूर किया गया है जो न जाननेवाले लोगों के दिलों में अकसर खटकता है कि अगर अल्लाह ने अपने पैग़म्बर इख़तिलाफ़ों (मतभेदों) को मिटाने और झगड़ों का दरवाज़ा बन्द करने के लिए ही भेजे थे और उनके आने के बाद भी न वे इख़तिलाफ़ मिटे, न झगड़े ख़त्म हुए, तो क्या अल्लाह ऐसा ही बेबस था कि उसने इन ख़राबियों को दूर करना चाहा और न कर सका। इसका जवाब बता दिया गया कि इख़तिलाफ़ों को ताक़त से रोक देना और इनसान को एक ख़ास रास्ते पर ज़बरदस्ती चलाना अल्लाह चाहता ही नहीं था, वरना इनसान की क्या मजाल थी कि उसके चाहने के ख़िलाफ़ चलता। फिर एक जुमले में उस असूल मज़मून (विषय) की तरफ़ इशारा कर दिया गया जिससे तक़रीर (वार्ता) की शुरुआत हुई थी। इसके बाद अब यह कहा जा रहा है कि इनसानों के अक़ीदे, नज़रिए, मसलक और मज़हब चाहे कितने ही अलग-अलग हों, बहरहाल सच्चाई, जिसपर ज़मीन व आसमान का निज़ाम क़ायम है, यह है जो इस आयत में बयान की गई है। इनसानों की ग़लतफ़हमियों से इस हक़ीक़त में ज़र्रा बराबर कोई फ़र्क़ नहीं आता, मगर अल्लाह यह नहीं चाहता कि उसके मानने पर ज़बरदस्ती लोगों को मजबूर किया जाए। जो उसे मान लेगा, वह ख़ुद ही फ़ायदे में रहेगा और जो उससे मुँह मोड़ेगा, वह आप अपना नुक़सान उठाएगा।

285. यहाँ 'दीन' से मुराद अल्लाह के बारे में वह अक़ीदा है जो ऊपर आयतुल-कुर्सी में बयान हुआ है और वह ज़िन्दगी का पूरा निज़ाम है, जो इस अक़ीदे (अवधारणा) पर बनता है। आयत का मतलब यह है कि अक़ीदा, अख़लाक़ और अमल के बारे में इस्लाम का यह निज़ाम किसी पर ज़बरदस्ती नहीं ठूँसा जा सकता। यह ऐसी चीज़ ही नहीं है जो किसी के सिर ज़बरदस्ती मढ़ी जा सके।

286. 'ताग़ूत' लुग़त (शब्दकोश) के लिहाज़ से हर उस शख़्स को कहा जाएगा, जो अपनी जाइज़ हद से आगे निकल गया हो। क़ुरआन की ज़बान में ताग़ूत से मुराद वह बन्दा है, जो बन्दगी की हद से आगे निकलकर ख़ुद मालिक और ख़ुदा होने का दम भरे और ख़ुदा के बन्दों से अपनी बन्दगी कराए। ख़ुदा के मुक़ाबले में एक बन्दे की सरकशी के तीन दरजे हैं– पहला दरजा यह

يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ؕ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا
اَوْلِيٰٓـُٔهُمُ الطَّاغُوْتُ ۙ يُخْرِجُوْنَهُمْ مِّنَ النُّوْرِ
اِلَى الظُّلُمٰتِ ؕ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا

लोग ईमान लाते हैं, उनका हिमायती और मददगार अल्लाह है और वह उनको अंधेरों से रौशनी में निकाल लाता है।[287] और जो लोग कुफ़्र का रास्ता अपनाते हैं, उनके हिमायती और मददगार ताग़ूत (बढ़े हुए फ़सादी)[288] हैं, और वे उन्हें रौशनी से अंधेरों की तरफ़ खींच ले जाते हैं। ये आग में जानेवाले लोग हैं, जहाँ ये हमेशा रहेंगे।

है कि उसूली तौर पर कोई बन्दा ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी ही को हक़ माने, मगर अमली तौर पर उसके हुक्मों की ख़िलाफ़वर्ज़ी करे। इसका नाम ''फ़िस्क़'' (नाफ़रमानी) है। दूसरा दरजा यह है कि वह उसकी फ़रमाँबरदारी से उसूली तौर पर मुँह फेरकर या तो ख़ुदमुख़्तार बन जाए या उसके सिवा किसी और की बन्दगी करने लगे। यह कुफ़्र है। तीसरा दरजा यह है कि वह मालिक से बाग़ी होकर उसके मुल्क और उसकी रैयत में ख़ुद अपना हुक्म चलाने लगे। इस आख़िरी दर्जे पर जो बन्दा पहुँच जाए, उसी का नाम ताग़ूत है और कोई आदमी सही मानों में अल्लाह को माननेवाला नहीं हो सकता जब तक कि वह उस ताग़ूत का इनकारी न हो।

287. अँधेरों से मुराद जाहिलियत के अँधेरे हैं, जिनमें भटककर इनसान अपनी कामयाबी और भलाई की राह से दूर निकल जाता है और हक़ीक़त के ख़िलाफ़ चलकर अपनी तमाम ताक़तों और कोशिशों को ग़लत रास्तों में लगाने लगता है। और नूर से मुराद हक़ का इल्म (सत्य-ज्ञान) है जिसकी रौशनी में इनसान अपनी और कायनात (जगत्) की हक़ीक़त और अपनी ज़िन्दगी के मक़सद को साफ़-साफ़ देखकर सूझ-बूझ की बुनियाद पर एक सही रास्ते पर चल पड़ता है।

288. 'ताग़ूत' यहाँ 'तवाग़ीत' के मानी में इस्तेमाल किया गया है, (तवाग़ीत लफ़्ज़ ताग़ूत की जमा यानी बहुवचन) है) यानी ख़ुदा से मुँह मोड़कर इनसान एक ही ताग़ूत के चंगुल में नहीं फँसता, बल्कि बहुत-से ताग़ूत उसपर हावी हो जाते हैं। एक ताग़ूत शैतान है जो उसके सामने नित नई झूठी दिल को लुभानेवाली बातों का सदाबहार सब्ज़बाग़ पेश करता है। दूसरा ताग़ूत आदमी का अपना मन है जो उसे जज़्बों और ख़ाहिशों का ग़ुलाम बनाकर ज़िन्दगी के टेढ़े-सीधे रास्तों में खींचे-खींचे लिए फिरता है। और अनगिनत ताग़ूत बाहर की दुनिया में फैले हुए हैं। बीवी-बच्चे, रिश्ते-नातेदार, बिरादरी, खानदान, दोस्त और आशना (पहचान के लोग), समाज और क़ौम, लीडर और रहनुमा, हुकूमत और हाकिम, ये सब उसके लिए ताग़ूत ही ताग़ूत होते हैं, जिनमें से हर एक उससे अपने मक़सद की बन्दगी कराता है, और अनगिनत मालिकों का यह ग़ुलाम सारी उम्र इसी चक्कर में फँसा रहता है कि किस मालिक को ख़ुश करे और किसकी नाराज़ी से बचे।

ع خٰلِدُوْنَ۝۲۵۷ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِىْ حَآجَّ اِبْرٰهٖمَ فِىْ
رَبِّهٖۤ اَنْ اٰتٰىهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ ۘ اِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّىَ
الَّذِىْ يُحْىٖ وَيُمِيْتُ ۙ قَالَ اَنَا اُحْىٖ وَاُمِيْتُ ؕ

(258) क्या[289] तुमने उस आदमी के हाल पर ग़ौर नहीं किया जिसने इबराहीम से झगड़ा किया था?[290] झगड़ा इस बात पर कि इबराहीम का रब कौन है, और इस वजह से कि उस आदमी को अल्लाह ने हुकूमत दे रखी थी।[291] जब इबराहीम ने कहा कि

289. ऊपर दावा किया गया था कि ईमानवाले का हिमायती और मददगार अल्लाह होता है और वह उसे अंधेरों से रौशनी में निकाल लाता है, और कुफ़्र (सत्य का इनकार) करनेवालों के मददगार 'ताग़ूत' होते हैं और वे उसे रौशनी से अंधेरों की तरफ़ खींच ले जाते हैं। अब इसी को वाज़ेह करने के लिए तीन वाक़िआत मिसाल के तौर पर पेश किए जा रहे हैं। उनमें से पहली मिसाल एक ऐसे आदमी की है, जिसके सामने वाज़ेह दलीलों के साथ हक़ीक़त पेश की गई और वह उसके सामने लाजवाब भी हो गया। मगर चूँकि उसने ताग़ूत के हाथ में अपनी नकेल दे रखी थी, इसलिए हक़ वाज़ेह होने के बाद भी वह रौशनी में न आया और अंधेरों ही में भटकता रह गया। बाद की दो मिसालें दो ऐसे आदमियों की हैं, जिन्होंने अल्लाह का सहारा पकड़ा था, तो अल्लाह उनको अंधेरों से इस तरह रौशनी में निकाल लाया कि ग़ैब (परोक्ष) के परदे में छिपी हुई हक़ीक़तों तक को उनकी आँखों से दिखा दिया।

290. उस शख़्स से मुराद नमरूद है, जो हज़रत इबराहीम (*अलै.*) के देश (इराक़) का बादशाह था। जिस वाक़िए का यहाँ ज़िक्र किया जा रहा है उसकी तरफ़ कोई इशारा बाइबल में नहीं है, मगर तलमूद में यह पूरा वाक़िआ मौजूद है और बड़ी हद तक क़ुरआन के मुताबिक़ है। इसमें बताया गया है कि हज़रत इबराहीम (*अलै.*) का बाप नमरूद के यहाँ सल्तनत के सबसे बड़े ओहदेदार (Cheif Officer of the State) के मंसब पर था। हज़रत इबराहीम (*अलै.*) ने जब खुल्लम-ख़ुल्ला शिर्क (बहुदेववाद) की मुख़ालफ़त और तौहीद की तबलीग़ शुरू की और बुतख़ाने में घुसकर बुतों को तोड़ डाला, तो उनके बाप ने ख़ुद उनका मुक़द्दमा बादशाह के दरबार में पेश किया और फिर वह बातचीत हुई, जो यहाँ बयान की गई है।

291. यानी इस झगड़ने में जो बात निज़ाअ (विवाद) की थी, वह यह थी कि इबराहीम (*अलै.*) अपना रब किसको मानते हैं? और यह झगड़ा इस वजह से पैदा हुआ था कि इस झगड़नेवाले शख़्स यानी नमरूद को ख़ुदा ने हुकूमत दे रखी थी। झगड़ा किस तरह का था इन दो जुमलों में उसकी तरफ़ जो इशारा किया गया है, उसके समझने के लिए नीचे लिखी हक़ीक़तों पर निगाह

रहनी ज़रूरी है–

(1) पुराने से पुराने ज़माने से लेकर आज तक तमाम मुशरिक (बहुदेववादी) सोसाइटियों की यह आम ख़ुसूसियत रही है कि वे अल्लाह (ईश्वर) को तमाम पालनहारों का पालनहार और ख़ुदाओं का ख़ुदा की हैसयित से तो मानते हैं, मगर सिर्फ़ उसी को रब और अकेला उसी को ख़ुदा और माबूद नहीं मानते।

(2) ख़ुदाई को मुशरिकों (बहुदेववादियों) ने हमेशा दो हिस्सों में बाँटा है, एक क़ुदरत से परे (Super Natural) ख़ुदाई जो सिलसिलए-असबाब (कार्य-कारण) पर हुक्मराँ है और जिसकी तरफ़ इनसान अपनी ज़रूरतों और मुश्किलों में मदद के लिए रुजू करता है। इस ख़ुदाई में वे अल्लाह के साथ रूहों, फ़रिश्तों, जिन्नों, सैयारों, और दूसरी बहुत-सी हस्तियों को साझी ठहराते हैं। उनसे दुआएँ माँगते हैं, उनके सामने इबादत की तमाम रस्में अदा करते हैं और उनके थानों (आस्तानों) पर चढ़ावे चढ़ाते हैं। दूसरे सामाजिक और सियासी मामलों की ख़ुदाई (हाकिमियत) जो ज़िन्दगी के क़ानून मुक़र्रर करने का इख़तियार रखती हो और फ़रमाँबरदारी की हक़दार हो और जिसे दुनिया के मामलों में हुकूमत करने के तमाम इख़्तियार हासिल हों। इस दूसरी क़िस्म की ख़ुदाई को दुनिया के तमाम मुशरिकों ने क़रीब-क़रीब हर ज़माने में अल्लाह तआला से छीनकर के या उसके साथ शाही ख़ानदानों और मज़हबी पुरोहितों और समाज के अगले-पिछले बड़ों में बाँट दिया है। अकसर शाही ख़ानदान (राजघराने) इसी दूसरे मानी में ख़ुदाई के दावेदार हुए हैं और इसे मज़बूत करने के लिए उन्होंने आम तौर से पहले मानी वाले ख़ुदाओं की औलाद होने का दावा किया है और मज़हबी तबक़े इस मामले में उनके साथ साज़िश में शरीक रहे हैं।

(3) नमरूद का ख़ुदाई का दावा भी इसी दूसरी क़िस्म का था। वह अल्लाह के वुजूद का इनकारी न था। उसका दावा यह नहीं था कि ज़मीन और आसमान का पैदा करनेवाला और कायनात का निज़ाम संभालनेवाला वह ख़ुद है। उसका कहना यह नहीं था कि दुनिया के असबाब के पूरे सिलसिलों पर उसी की हुकूमत चल रही है, बल्कि उसे दावा इस बात का था कि इस इराक़ देश का और इसके रहनेवालों का अकेला सभी इख़्तियार रखनेवाला हाकिम मैं हूँ। मेरी ज़बान क़ानून है। मेरे ऊपर कोई ऊँची हस्ती नहीं है, जिसके सामने मैं जवाबदेह हूँ। और इराक़ का हर वह बाशिन्दा बाग़ी और ग़द्दार है जो इस हैसियत से मुझे अपना रब न माने या मेरे सिवा किसी और को रब माने।

(4) इबराहीम (*अलै.*) ने जब कहा कि मैं कायनात के सिर्फ़ एक पालनहार ही को ख़ुदा, माबूद और रब मानता हूँ और उसके सिवा न तो किसी को ख़ुदा मानता हूँ और न ही किसी को रब तस्लीम करता हूँ– तो सवाल सिर्फ़ यही पैदा नहीं हुआ कि क़ौमी मज़हब और मज़हबी माबूदों के बारे में उनका यह नया अक़ीदा कहाँ तक सहन करने लायक़ है, बल्कि यह सवाल भी उठ खड़ा हुआ कि क़ौमी हुकूमत और उसके मर्कज़ी इक्तिदार (केन्द्रीय सत्ता) पर इस अक़ीदे की जो चोट पड़ती है उसे कैसे नज़रअंदाज़ किया जा सकता है। यही वजह है कि हज़रत इबराहीम (*अलै.*) बग़ावत के जुर्म में नमरूद के सामने पेश किए गए।

قَالَ اِبْرٰهٖمُ فَاِنَّ اللّٰهَ يَاْتِيْ بِالشَّمْسِ مِنَ الْمَشْرِقِ فَاْتِ بِهَا مِنَ الْمَغْرِبِ فَبُهِتَ الَّذِيْ كَفَرَ ؕ وَ اللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ۚ﴿۲۵۸﴾ اَوْ كَالَّذِيْ مَرَّ عَلٰى قَرْيَةٍ وَّهِيَ خَاوِيَةٌ عَلٰى عُرُوْشِهَا ۚ قَالَ اَنّٰى

"मेरा रब वह है जिसके इख़तियार में ज़िन्दगी और मौत है।" तो उसने जवाब दिया, "ज़िन्दगी और मौत मेरे इख़तियार में है।" इबराहीम ने कहा, "अच्छा, अल्लाह सूरज को पूरब से निकालता है, तू ज़रा उसे पश्चिम से निकाल ला।" यह सुनकर वह हक़ का दुश्मन हक्का-बक्का रह गया,[292] मगर अल्लाह ज़ालिमों को सीधा रास्ता नहीं दिखाया करता।

(259) या फिर मिसाल के तौर पर उस आदमी को देखो जिसका गुज़र एक ऐसी बस्ती पर हुआ जो अपनी छतों पर औंधी गिरी पड़ी थी।[293] उसने कहा, "यह आबादी

292. हालाँकि हज़रत इबराहीम (*अलै.*) के पहले जुमले ही से यह बात वाज़ेह हो चुकी थी कि रब अल्लाह के सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता, फिर भी नमरूद इसका जवाब ढिठाई से दे गया। लेकिन दूसरे जुमले के बाद उसके लिए कुछ और ढिठाई से कुछ कहना मुश्किल हो गया। वह ख़ुद भी जानता था कि सूरज और चाँद उसी ख़ुदा के फ़रमान के तहत हैं जिसको इबराहीम ने रब माना है, फिर वह कहता तो आख़िर क्या कहता? मगर इस तरह जो हक़ीक़त उसके सामने बेनक़ाब हो रही थी उसको मान लेने का मतलब अपनी बेलगाम फ़रमारवाई (हुकूमत) से दस्तबरदार हो जाना था, जिसके लिए उसके मन का ताग़ूत तैयार न था। इसी लिए वह सिर्फ़ हक्का-बक्का होकर ही रह गया। ख़ुदपरस्ती (आत्म-पूजा) के अंधेरों से निकलकर हक़परस्ती की रौशनी में न आया। अगर इस ताग़ूत के बजाय उसने ख़ुदा को अपना सरपरस्त और मददगार बनाया होता तो उसके लिए हज़रत इबराहीम (*अलै.*) की इस तबलीग़ (प्रचार) के बाद सीधा रास्ता खुल जाता।

तलमूद का बयान है कि इसके बाद उस बादशाह के हुक्म से हज़रत इबराहीम (*अलै.*) क़ैद कर दिए गए। दस दिन तक वे जेल में रहे, फिर बादशाह की कौंसिल ने उनको ज़िन्दा जलाने का फ़ैसला किया और उनके आग में फेंके जाने का वह वाक़िआ पेश आया, जो क़ुरआन 21:51; 29:16; 37:83 में बयान हुआ है।

293. यह एक ग़ैर-ज़रूरी बहस है कि वह शख़्स कौन था और वह बस्ती कौन-सी थी। असल मुद्दा

يُحۡىٖ هٰذِهِ اللّٰهُ بَعۡدَ مَوۡتِهَا‌ۚ فَاَمَاتَهُ اللّٰهُ مِائَةَ
عَامٍ ثُمَّ بَعَثَهٗ‌ؕ قَالَ كَمۡ لَبِثۡتَ‌ؕ قَالَ لَبِثۡتُ يَوۡمًا
اَوۡ بَعۡضَ يَوۡمٍ‌ؕ قَالَ بَلۡ لَّبِثۡتَ مِائَةَ عَامٍ
فَانۡظُرۡ اِلٰى طَعَامِكَ وَشَرَابِكَ لَمۡ يَتَسَنَّهۡ‌ۚ وَانۡظُرۡ
اِلٰى حِمَارِكَ وَلِنَجۡعَلَكَ اٰيَةً لِّلنَّاسِ وَانۡظُرۡ اِلَى
الۡعِظَامِ كَيۡفَ نُنۡشِزُهَا ثُمَّ نَكۡسُوۡهَا لَحۡمًا‌ؕ

जो तबाह हो चुकी है, इसे अल्लाह किस तरह दोबारा ज़िन्दगी देगा?"[294] इसपर अल्लाह ने उसकी जान निकाल ली और वह सौ साल तक मुर्दा पड़ा रहा। फिर अल्लाह ने उसे दोबारा ज़िन्दगी दी और उससे पूछा, "बताओ, कितनी मुद्दत तक पड़े रहे हो?" उसने कहा, "एक दिन या कुछ घंटे रहा हूँगा।" कहा, "तुमपर सौ साल इसी हालत में बीत चुके हैं। अब ज़रा अपने खाने और पानी को देखो कि इसमें ज़रा भी तबदीली नहीं आई है। दूसरी तरफ़ ज़रा अपने गधे को भी देखो (कि इसका पंजर तक जर्जर हो रहा है)। और यह हमने इसलिए किया है कि हम तुम्हें लोगों के लिए एक निशानी बना देना चाहते हैं।[295] फिर देखो कि हड्डियों के इस पंजर को हम किस तरह उठाकर गोश्त और

जिसके लिए यहाँ इसका ज़िक्र किया गया है सिर्फ़ यह बताना है कि जिसने अल्लाह को अपना सरपरस्त बनाया था, उसे अल्लाह ने किस तरह रौशनी अता की। आदमी और जगह दोनों के तअय्युन (निश्चित) कर लेने का न हमारे पास कोई ज़रीआ है, न इसका कोई फ़ायदा। अलबत्ता बाद के बयान से ज़ाहिर होता है कि जिसके बारे में यह बात हो रही है, वह ज़रूर कोई नबी होंगे।

294. इस सवाल के यह मानी नहीं है कि वे बुज़ुर्ग मरने के बाद की ज़िन्दगी के इनकारी थे या उन्हें इसमें शक था, बल्कि हक़ीक़त में वे सच्चाई को आँखों से देखना चाहते थे, जैसा कि नबियों को दिखाया जाता रहा है।

295. एक ऐसे आदमी का ज़िंदा पलटकर आना, जिसे दुनिया सौ साल पहले मुर्दा समझ चुकी थी, ख़ुद उसको अपने वक़्त के लोगों में एक जीती-जागती निशानी बना देने के लिए काफ़ी था।

فَلَمَّا تَبَيَّنَ لَهٗ ۙ قَالَ اَعْلَمُ اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ
قَدِيْرٌ ﴿٢٥٩﴾ وَاِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّ اَرِنِىْ كَيْفَ تُحْىِ
الْمَوْتٰى ؕ قَالَ اَوَلَمْ تُؤْمِنْ ؕ قَالَ بَلٰى وَلٰكِنْ
لِّيَطْمَئِنَّ قَلْبِىْ ؕ قَالَ فَخُذْ اَرْبَعَةً مِّنَ الطَّيْرِ
فَصُرْهُنَّ اِلَيْكَ ثُمَّ اجْعَلْ عَلٰى كُلِّ جَبَلٍ
مِّنْهُنَّ جُزْءًا ثُمَّ ادْعُهُنَّ يَاْتِيْنَكَ سَعْيًا ؕ وَاعْلَمْ
اَنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٦٠﴾ ع مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ ع

खाल उस पर चढ़ाते हैं।" इस तरह जब हक़ीक़त उसके सामने बिलकुल वाज़ेह हो गई तो उसने कहा, "मैं जानता हूँ कि अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।"

(260) और वह वाक़िआ भी सामने रहे, जब इबराहीम ने कहा था कि "मेरे मालिक! मुझे दिखा दे, तू मुर्दों को कैसे ज़िन्दा करता है?" कहा, "क्या तू ईमान नहीं रखता?" उसने अर्ज़ किया, "ईमान तो रखता हूँ, मगर दिल का इतमीनान चाहता हूँ।"[296] कहा, "अच्छा, तो चार परिन्दे ले और उनको अपने से हिला-मिला ले। फिर उनका एक-एक हिस्सा एक-एक पहाड़ पर रख दे, फिर उनको पुकार, वे तेरे पास दौड़े चले आएँगे। ख़ूब जान ले कि अल्लाह बड़े इक्तिदारवाला और हिकमतवाला है।"[297]

296. यानी वह इतमीनान जो आँखों के देखने से हासिल होता है।

297. इस वाक़िए और ऊपर के वाक़िए के कुछ लोगों ने अजीब-अजीब मानी बताए हैं, लेकिन नबियों के साथ अल्लाह का जो मामला है उसे अगर अच्छी तरह दिल व दिमाग़ में बिठा लिया जाए तो किसी खींच-तान की ज़रूरत पेश नहीं आ सकती। आम ईमानवालों को इस ज़िन्दगी में जो ख़िदमत अंजाम देनी है, उसके लिए तो सिर्फ़ ग़ैब (परोक्ष) पर ईमान (बे-देखे मानना) काफ़ी है। लेकिन नबियों को जो ख़िदमत अल्लाह ने सुपुर्द की थी, उसके लिए ज़रूरी था कि वे अपनी आँखों से उन हक़ीक़तों को देख लेते जिनपर ईमान लाने की दावत उन्हें दुनिया को देनी थी। उनको दुनिया से पूरे ज़ोर के साथ यह कहना था कि तुम लोग तो अटकलें दौड़ाते हो, मगर हम आँखों देखी बात कह रहे हैं। तुम्हारे पास गुमान है और हमारे पास इल्म है, तुम अंधे हो और

اَمۡوَالَهُمۡ فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ كَمَثَلِ حَبَّةٍ اَنۡۢبَتَتۡ سَبۡعَ
سَنَابِلَ فِىۡ كُلِّ سُنۡۢبُلَةٍ مِّائَةُ حَبَّةٍ ‌ؕ وَاللّٰهُ يُضٰعِفُ

(261) जो लोग[298] अपने माल अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं[299], उनके ख़र्च की मिसाल ऐसी है जैसे एक दाना बोया जाए और उससे सात बालें निकलें और हर बाल में

हम आँखवाले हैं। इसी लिए नबियों के सामने फ़रिश्ते अपनी असल शक्ल में आए हैं, उनको आसमान व ज़मीन की हुकूमत के निज़ाम (शासन-व्यवस्था) का मुशाहदा (अवलोकन) कराया गया है, उनको जन्नत और दोज़ख़ आँखों से दिखाई गई है और मरने के बाद उठाए जाने का मंज़र उनके सामने ज़ाहिर करके दिखाया गया है। ग़ैब पर ईमान लाने की इस मंज़िल से ये लोग नबी बनाए जाने से पहले गुज़र चुके होते हैं। नबी होने के बाद उनको आँखों देखी गवाही पर ईमान की नेमत दी जाती है और यह नेमत उन्हीं के साथ ख़ास है।
(ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए सूरा 11 का हाशिया 17, 18, 19, 34)

298. अब फिर बातचीत का सिलसिला उसी मज़मून की तरफ़ पलटता है, जो आयत 244 में छेड़ा गया था। उस तक़रीर (व्याख्यान) की शुरुआत में ईमानवालों को दावत दी गई थी कि जिस बड़े मक़सद पर तुम ईमाम लाए हो, उसके लिए जान व माल की क़ुर्बानियाँ सहन करो, मगर कोई गरोह, जब तक उसका माल से मुताल्लिक़ नज़रिया (आर्थिक दृष्टिकोण), बिलकुल ही न बदल जाए, इस बात पर तैयार नहीं किया जा सकता कि वह अपने ख़ुद के या क़ौम के फ़ायदों से ऊपर उठकर सिर्फ़ एक आला दरजे के अख़लाक़ी मक़सद की ख़ातिर अपना माल बेझिझक ख़र्च करने लगे। माद्दापरस्त (भौतिकवादी) लोग, जो पैसा कमाने के लिए जीते हों और पैसे-पैसे पर जान देते हों और जिनकी निगाह हर वक़्त नफ़ा और नुक़सान की तराज़ू ही पर जमी रहती हो, कभी इस क़ाबिल नहीं हो सकते कि बड़े मक़सद के लिए कुछ कर सकें। वे ज़ाहिर में अख़लाक़ी मक़सद के लिए कुछ ख़र्च करते भी हैं तो पहले अपनी ज़ात या अपनी बिरादरी या अपनी क़ौम के माली फ़ायदों का हिसाब लगा लेते हैं। इस सोच या ज़ेहनियत के साथ उस दीन की राह पर इनसान एक क़दम भी नहीं चल सकता, जिसका मुतालबा यह है कि दुनियवी फ़ायदे और नुक़सान से बेपरवाह होकर सिर्फ़ अल्लाह का कलिमा (बोल) बुलंद करने के लिए अपना वक़्त, अपनी ताक़त और अपनी कमाइयाँ ख़र्च करो। ऐसे रास्ते पर चलने के लिए तो दूसरी ही क़िस्म की अख़लाक़ी ख़ूबियों की ज़रूरत है। इसके लिए नज़र की वुसअत (व्यापकता), हौसले की बुलन्दी, दिल की कुशादगी और सबसे बढ़कर ख़ालिस ख़ुदा को पाने की ज़रूरत है और समाजी ज़िन्दगी के निज़ाम में ऐसे बदलाव की ज़रूरत है कि लोगों के अन्दर दुनियापरस्ती की सिफ़तों (गुणों) के बजाय ये अख़लाक़ी ख़ूबियाँ पलें-बढ़ें। चुनाँचे यहाँ से लगातार तीन रुकूओं (आयत 261 से 281) तक इसी सोच को पैदा करने के लिए हिदायतें दी गई हैं।

299. माल का ख़र्च चाहे अपनी ज़रूरतों के पूरा करने में हो या अपने बाल-बच्चों का पेट पालने में

لِمَنْ يَّشَآءُ ۭ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٦١﴾ اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ
اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ثُمَّ لَا يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا
مَنًّا وَّلَآ اَذًى ۙ لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا
خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٦٢﴾ قَوْلٌ مَّعْرُوْفٌ
وَّمَغْفِرَةٌ خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى ۭ وَاللّٰهُ

सौ दाने हों। इसी तरह अल्लाह जिसके अमल (कर्म) को चाहता है, बढ़ोत्तरी देता है। वह बड़ा खुले हाथवाला भी है और सब कुछ जाननेवाला भी।[300] (262) जो लोग अपने माल अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं और ख़र्च करके फिर एहसान नहीं जताते, न दुख देते हैं, उनका बदला उनके रब के पास है, और उनके लिए किसी रंज और ख़ौफ़ का मौक़ा नहीं।[301] (263) एक मीठा बोल और किसी नागवार बात पर ज़रा-सी आँख बचा जाना उस ख़ैरात से बेहतर है जिसके पीछे दुख हो। अल्लाह बेनियाज़ (निस्पृह) है और बुर्दबारी

या अपने रिश्ते-नातेदारों की ख़बरगीरी में या दीन-दुखियों की मदद में या आम लोगों की भलाई के कामों में या दीन को फैलाने और अथक मेहनत के ज़रीए से मक़सद को हासिल करने में, बहरहाल अगर वह अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ हो और ख़ालिस तौर पर ख़ुदा की ख़ुशनूदी के लिए हो तो इसकी गिनती अल्लाह के रास्ते में होगी।

300. यानी जितने ख़ुलूस और जितने गहरे ज़ज्बे के साथ इनसान अल्लाह की राह में माल ख़र्च करेगा, उतना ही अल्लाह की तरफ़ से उसका बदला ज़्यादा होगा। जो ख़ुदा एक दाने में इतनी बरकत देता है कि उससे सात सौ दाने उग सकते हैं, उसके लिए कुछ मुश्किल नहीं कि तुम्हारी ख़ैरात को भी बढ़ाए और इसी तरह ख़ुदा एक रुपये के ख़र्च को इतना बढ़ा दे कि उसका बदला सात सौ गुना होकर तुम्हारी तरफ़ पलटे। इस हक़ीक़त को बयान करने के बाद अल्लाह की दो सिफ़तें बयान की गई हैं — एक यह कि वह ख़ुले हाथ का है, उसका हाथ तंग नहीं है कि तुम्हारा अमल हक़ीक़त में जितनी तरक़्क़ी और जितने बदले का हक़दार हो, वह न दे सके। दूसरे यह कि वह ख़बर रखता है, वह बेख़बर नहीं है कि जो कुछ तुम ख़र्च करते हो और जिस जज़्बे से करते हो, उससे वह अनजान रह जाए और तुम्हारा बदला मारा जाए।

301. यानी न तो उनके लिए इस बात का कोई ख़तरा है कि उनका बदला बरबाद हो जाएगा और न कभी यह नौबत आएगी कि उसे अपने इस ख़र्च पर पछतावा हो।

غَنِيٌّ حَلِيمٌ ۝ يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ لَا تُبْطِلُوا۟
صَدَقَٰتِكُم بِٱلْمَنِّ وَٱلْأَذَىٰ كَٱلَّذِى يُنفِقُ
مَالَهُۥ رِئَآءَ ٱلنَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُ بِٱللَّهِ وَٱلْيَوْمِ ٱلْءَاخِرِ ۖ
فَمَثَلُهُۥ كَمَثَلِ صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَأَصَابَهُۥ
وَابِلٌ فَتَرَكَهُۥ صَلْدًا ۖ لَّا يَقْدِرُونَ عَلَىٰ شَىْءٍ

(सहन करना) उसकी सिफ़त है।[302] (264) ऐ ईमान लानेवालो! अपने सदक़ों को एहसान जताकर और दुख देकर उस आदमी की तरह मिट्टी में न मिला दो जो अपना माल सिर्फ़ लोगों के दिखाने को ख़र्च करता है और न अल्लाह पर ईमान रखता है, न आख़िरत पर।[303] उसके ख़र्च की मिसाल ऐसी है, जैसे एक चट्टान थी जिस पर मिट्टी की तह जमी हुई थी। उसपर जब ज़ोर की बारिश हुई तो सारी मिट्टी बह गई और साफ़ चट्टान की चट्टान रह गई।[304] ऐसे लोग अपनी नज़र में ख़ैरात करके जो नेकी कमाते हैं, उससे कुछ

302. इस एक जुमले में दो बातें कही गई हैं। एक यह कि अल्लाह तुम्हारी ख़ैरात का ज़रूरतमन्द नहीं है। दूसरे यह कि अल्लाह तआला चूँकि ख़ुद सहन करनेवाला है, इसलिए उसे पसन्द भी वही लोग हैं जो छिछोरे और तंगदिल न हों, बल्कि ऊँचे हौसलेवाले और सहन करनेवाले हों। जो ख़ुदा तुम पर ज़िन्दगी के वसाइल (संसाधनों) की बेहिसाब बारिश कर रहा है और तुम्हारी ग़लतियों के बावजूद तुम्हें बार-बार माफ़ करता है वह ऐसे लोगों को कैसे पसन्द कर सकता है जो किसी ग़रीब को एक रोटी खिला दें तो एहसान जता-जता कर उसके इज़्ज़ते-नफ़्स (आत्म-सम्मान) को मिट्टी में मिला दें। इसी लिए हदीस में आता है कि अल्लाह तआला उस शख़्स से क़ियामत के दिन न बोलेगा और न उसपर मेहरबानी की नज़र डालेगा, जो अपने दिए पर एहसान जताता हो।

303. उसका दिखावा ख़ुद इस बात की दलील है कि वह अल्लाह और आख़िरत पर यक़ीन नहीं रखता। उसका सिर्फ़ लोगों को दिखाने के लिए काम करना खुले तौर पर यह मानी रखता है कि दुनिया ही उसका ख़ुदा है जिससे वह बदला चाहता है। अल्लाह से न उसको बदला मिलने की उम्मीद है और न ही उसे यक़ीन है कि एक दिन आमाल (कर्मों) का हिसाब होगा और बदले दिए जाएँगे।

304. इस मिसाल में बारिश से मुराद ख़ैरात (दान-पुण्य) है। चट्टान से मुराद उस नीयत और उस

مِّمَّا كَسَبُوْا ؕ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ الْكٰفِرِيْنَ ۝ وَمَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَتَثْبِيْتًا مِّنْ اَنْفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍۭ بِرَبْوَةٍ اَصَابَهَا وَابِلٌ فَاٰتَتْ اُكُلَهَا ضِعْفَيْنِ ۚ فَاِنْ لَّمْ

भी उनके हाथ नहीं आता और इनकार करनेवालों को सीधी राह दिखाना अल्लाह का दस्तूर नहीं है।[305] (265) इसके बरख़िलाफ़ जो लोग अपने माल सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी की चाहत में दिल के पूरे जमाव और क़रार के साथ ख़र्च करते हैं, उनके ख़र्च की मिसाल ऐसी है जैसे किसी ऊँची सतह पर एक बाग़ हो। अगर ज़ोर की बारिश हो जाए तो दुगुना फल लाए और अगर ज़ोर की बारिश न भी हो तो एक हल्की फुहार ही उसके

जज़्बे की ख़राबी है जिसके साथ ख़ैरात की गई है। मिट्टी की हल्की तह से मुराद नेकी की वह ज़ाहिरी शक्ल है जिसके नीचे नीयत की ख़राबी छिपी हुई है। इस वज़ाहत के बाद मिसाल अच्छी तरह समझ में आ सकती है। बारिश का फ़ितरी तक़ाज़ा तो यही है कि उससे नमी हो और खेती पले-बढ़े। लेकिन जब नमी क़बूल करनेवाली ज़मीन ऊपर ही ऊपर हो और उस ऊपरी तह के नीचे निरी पत्थर की एक चट्टान रखी हुई हो तो बारिश फ़ायदेमन्द होने के बजाय, उलटी नुक़सानदेह होगी। इसी तरह ख़ैरात भी हालाँकि भलाइयों को बढ़ाने और तरक़्क़ी देने की ताक़त रखती है, मगर उसके फ़ायदेमन्द होने के लिए अच्छी और सच्ची नीयत शर्त है। नीयत नेक न हो तो यह सदक़ा और दान सिर्फ़ माल की बरबादी है और कुछ नहीं। इससे उसके परवान चढ़ने और बढ़ने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

305. यहाँ अस्ल अरबी इबारत में लफ़्ज़ 'काफ़िर' इस्तेमाल हुआ है, जिसका हक़ीक़ी मानी है "इनकार करनेवाला" है। लेकिन यहाँ पर यह लफ़्ज़ नाशुक्रे (कृतघ्न) और नेमत का इनकार करनेवाले के मानी में इस्तेमाल हुआ है। जो आदमी ख़ुदा की दी हुई नेमत को उसकी राह में उसकी ख़ुशनूदी के लिए ख़र्च करने के बजाय दुनिया को ख़ुश करने के लिए ख़र्च करता है, या अगर ख़ुदा की राह में कुछ माल देता भी है तो उसके साथ तकलीफ़ भी देता है, वह अस्ल में नाशुक्रा और अपने ख़ुदा का एहसान-फ़रामोश है। और जबकि वह ख़ुद ही ख़ुदा की रिज़ा (प्रसन्नता) नहीं चाहता है तो अल्लाह को क्या पड़ी है कि उसे ख़ामख़ाह अपनी ख़ुशनूदी का रास्ता दिखाए।

يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿٢٦٥﴾
اَيَوَدُّ اَحَدُكُمْ اَنْ تَكُوْنَ لَهٗ جَنَّةٌ مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّ
اَعْنَابٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ لَهٗ فِيْهَا
مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ وَاَصَابَهُ الْكِبَرُ وَلَهٗ ذُرِّيَّةٌ
ضُعَفَآءُ ۖۚ فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ۗ
كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ﴿٢٦٦﴾ ع

लिए काफ़ी हो जाए।[306] तुम जो कुछ करते हो, सब अल्लाह की नज़र में है।

(266) क्या तुममें से कोई यह पसन्द करता है कि उसके पास एक हरा-भरा बाग़ हो, नहरों से सींचा हुआ, खजूरों और अंगूरों और हर क़िस्म के फलों से लदा हुआ, और वह ठीक उस वक़्त एक तेज़ बगोले की चपेट में आकर झुलस जाए, जबकि वह ख़ुद बूढ़ा हो और उसके छोटे बच्चे अभी किसी लायक़ न हों?[307] इस तरह अल्लाह अपनी बातें तुम्हारे सामने बयान करता है, शायद कि तुम ग़ौर-फ़िक्र (सोच-विचार) करो।

306. 'ज़ोर की बारिश' से मुराद वह ख़ैरात (दान-पुण्य) है, जो भलाई के इन्तिहाई जज़्बे और कमाल दर्जे की नेक नीयती के साथ की जाए और 'हलकी फुहार' से मुराद ऐसी ख़ैरात है जिसके अन्दर भलाई के जज़्बे का ज़ोर न हो।

307. यानी अगर तुम यह पसन्द नहीं करते कि तुम्हारी उम्र भर की कमाई एक ऐसे नाज़ुक मौक़े पर तबाह हो जाए, जबकि तुम उससे फ़ायदा उठाने के सबसे ज़्यादा ज़रूरतमंद हो और नए सिरे से कमाई करने का मौक़ा भी बाक़ी न रहा हो, तो यह बात तुम कैसे पसन्द कर रहे हो कि दुनिया में पूरी उम्र काम करने के बाद आख़िरत की ज़िन्दगी में तुम इस तरह क़दम रखो कि वहाँ पहुँचकर यकायक तुम्हें मालूम हो कि ज़िन्दगी भर का तुम्हारा पूरा कारनामा यहाँ कोई क़ीमत नहीं रखता। जो कुछ तुमने दुनिया के लिए कमाया था, वह दुनिया ही में रह गया, आख़िरत के लिए कुछ कमा कर लाए ही नहीं कि यहाँ उसके फल खा सको। वहाँ तुम्हें इसका कोई मौक़ा न मिलेगा कि नए सिरे से अब आख़िरत के लिए कमाई करो। आख़िरत के लिए काम करने का जो कुछ भी मौक़ा है इसी दुनिया में है। यहाँ अगर तुम आख़िरत की फ़िक्र किए

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ
وَمِمَّاۤ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۪ وَلَا تَيَمَّمُوا
الْخَبِيْثَ مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ وَلَسْتُمْ بِاٰخِذِيْهِ اِلَّاۤ اَنْ
تُغْمِضُوْا فِيْهِ ؕ وَاعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ حَمِيْدٌ ﴿۲۶۷﴾
اَلشَّيْطٰنُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ وَيَاْمُرُكُمْ بِالْفَحْشَآءِ ۚ
وَاللّٰهُ يَعِدُكُمْ مَّغْفِرَةً مِّنْهُ وَفَضْلًا ؕ وَاللّٰهُ

---

(267) ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! जो माल तुमने कमाए हैं और जो कुछ हमने ज़मीन से तुम्हारे लिए निकाला है, उसमें से बेहतर हिस्सा अल्लाह की राह में ख़र्च करो। ऐसा न हो कि उसकी राह में देने के लिए बुरी-से-बुरी चीज़ छाँटने की कोशिश करने लगो, हालाँकि वही चीज़ अगर कोई तुम्हें दे तो तुम हरगिज़ उसे लेना न चाहोगे, यह और बात है कि उसको क़बूल करने में तुम देखी-अनदेखी कर जाओ। तुम्हें जान लेना चाहिए कि अल्लाह बेनियाज़ है और बेहतरीन सिफ़ात (गुणों) वाला है।[308] (268) शैतान तुम्हें ग़रीबी से डराता है और शर्मनाक रवैया अपनाने के लिए उकसाता है, मगर अल्लाह अपनी बख़शिश और मेहरबानी की उम्मीद दिलाता है। अल्लाह बड़ी समाईवाला और सब

बिना सारी उम्र दुनिया ही की धुन में लगे रहे और अपनी तमाम ताक़तें और कोशिशें दुनिया के फ़ायदे तलाश करने ही में खपाते रहे, तो ज़िन्दगी के सूरज के डूबते ही तुम्हारी हालत ठीक उस बूढ़े की तरह हसरत भरी होगी कि जिसकी उम्र भर की कमाई और जिसकी ज़िन्दगी का सहारा एक बाग़ था और वह बाग़ ठीक बुढ़ापे की हालत में उस वक़्त जल गया, जबकि न वह ख़ुद नए सिरे से बाग़ लगा सकता है और न उसकी औलाद ही इस क़ाबिल है कि उसकी मदद कर सके।

308. ज़ाहिर है कि जो ख़ुद आला दरजे की सिफ़ात (गुण) का मालिक हो, वह बुरी सिफ़ात रखनेवालों को पसन्द नहीं कर सकता। अल्लाह तआला ख़ुद फ़ैयाज़ (दाता) है और अपनी मख़लूक़ पर हर वक़्त बख़शिश और मेहरबानी के दरिया बहा रहा है, किस तरह मुमकिन है कि वह तंगनज़र, कम हौसला और गिरे हुए अख़लाक़ के लोगों से मुहब्बत करे।

وَاسِعٌ عَلِيمٌ ﴿٢٦٨﴾ يُؤْتِي الْحِكْمَةَ مَنْ يَشَاءُ ۚ وَمَنْ
يُؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ أُوتِيَ خَيْرًا كَثِيرًا ۗ وَمَا
يَذَّكَّرُ إِلَّا أُولُو الْأَلْبَابِ ﴿٢٦٩﴾ وَمَا أَنْفَقْتُمْ
مِنْ نَفَقَةٍ أَوْ نَذَرْتُمْ مِنْ نَذْرٍ فَإِنَّ اللَّهَ
يَعْلَمُهُ ۗ وَمَا لِلظَّالِمِينَ مِنْ أَنْصَارٍ ﴿٢٧٠﴾ إِنْ تُبْدُوا

कुछ जाननेवाला है। (269) जिसको चाहता है हिकमत अता करता है, और जिसको हिकमत मिली, उसे हक़ीक़त में बड़ी दौलत मिल गई।[309] इन बातों से सिर्फ़ वही लोग सीख लेते हैं जो अक़्लमन्द हैं।

(270) तुमने जो कुछ भी ख़र्च किया हो और जो मन्नत भी मानी हो, अल्लाह उसे जानता है, और ज़ालिमों का कोई मददगार नहीं।[310] (271) अगर अपने सदक़े खुले तौर

309. हिकमत से मुराद सही सूझ-बूझ और फ़ैसले की सही क़ुव्वत (शक्ति) है। यहाँ इस फ़रमान का मक़सद यह बताना है कि जिस आदमी के पास हिकमत (तत्त्वदर्शिता) की दौलत होगी, वह हरगिज़ शैतान के बताए हुए रास्ते पर न जाएगा, बल्कि उस ख़ुले रास्ते को अपनाएगा जो अल्लाह ने दिखाया है। शैतान के तंगनज़र चेलों की निगाह में यह बड़ी होशियारी और अक़्लमन्दी है कि आदमी अपनी दौलत को सम्भाल-सम्भालकर रखे और हर वक़्त और ज़्यादा कमाने की फ़िक्र ही में लगा रहे। लेकिन जिन लोगों ने अल्लाह से सूझ-बूझ की रौशनी पाई है उनकी नज़र में यह बिलकुल ही बेवक़ूफ़ी है। हिकमत और अक़्लमन्दी उनके नज़दीक यह है कि आदमी जो कुछ कमाए, उसे अपनी दर्मियानी ज़रूरतें पूरी करने के बाद दिल खोलकर भलाई के कामों में ख़र्च करे। पहला आदमी मुमकिन है कि दुनिया की इस कुछ दिनों की ज़िन्दगी में दूसरे के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा खुशहाल हो, लेकिन इनसान के लिए दुनिया की यह ज़िन्दगी पूरी ज़िन्दगी नहीं है, बल्कि असल ज़िन्दगी का एक निहायत छोटा-सा हिस्सा है। इस छोटे-से हिस्से की खुशहाली के लिए जो आदमी बड़ी और हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी की बदहाली मोल लेता है वह हक़ीक़त में बड़ा बेवक़ूफ़ है। अक़्लमंद असल में वही है जिसने इस मुख़्तसर (छोटी-सी) ज़िन्दगी की मुहलत से फ़ायदा उठाकर थोड़ी पूँजी ही से उस हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में अपनी ख़ुशहाली का इन्तिज़ाम कर लिया।

310. ख़र्च चाहे अल्लाह के रास्ते में किया हो या शैतान के रास्ते में और नज़्र चाहे अल्लाह के लिए मानी हो या ग़ैर-अल्लाह के लिए, दोनों सूरतों में आदमी की नीयत और उसके कर्म से

الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِيَ ۚ وَإِنْ تُخْفُوهَا وَتُؤْتُوهَا
الْفُقَرَاءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَيُكَفِّرُ عَنْكُمْ مِّنْ
سَيِّاٰتِكُمْ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُونَ خَبِيرٌ ﴿٢٧١﴾ لَيْسَ
عَلَيْكَ هُدٰىهُمْ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَهْدِي مَنْ يَّشَاءُ ۗ

पर दो तो यह भी अच्छा है, लेकिन अगर छिपाकर मुहताजों को दो तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है।[311] तुम्हारी बहुत-सी बुराइयाँ इस तरीक़े से मिट जाती हैं।[312] और जो कुछ तुम करते हो, अल्लाह को हर हाल में उसकी ख़बर है।

(272) (ऐ नबी!) लोगों को रास्ते पर ला देने की ज़िम्मेदारी तुमपर नहीं है। हिदायत

अल्लाह अच्छी तरह वाक़िफ़ है। जिन्होंने उसके लिए ख़र्च किया होगा और उसके लिए नज़र मानी होगी, वे उसका अच्छा बदला पाएँगे और जिन ज़ालिमों ने शैतानी राहों में ख़र्च किया होगा और अल्लाह को छोड़कर दूसरों के लिए नज़्रें मानी होंगी, उनको ख़ुदा की सज़ा से बचाने के लिए कोई मददगार न मिलेगा।

'नज़्र' यह है कि आदमी अपनी किसी मुराद के पूरा होने पर किसी ऐसे ख़र्च या किसी ऐसी ख़िदमत को अपने ऊपर ज़रूरी ठहरा ले, जो उसके ज़िम्मे ज़रूरी न हो। अगर यह मुराद किसी हलाल और जाइज़ बात की हो और अल्लाह से माँगी गई हो और उसके पूरा होने पर अमल करने का जो वादा आदमी ने किया है, वह अल्लाह ही के लिए हो, तो ऐसी नज़्र अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में है और उसको पूरा करने की वजह से उसे अच्छा बदला मिलेगा। अगर यह हालत न हो तो ऐसी नज़्र का मानना बड़ा गुनाह है और उसके पूरा करने से अज़ाब मिलेगा।

311. जो सदक़ा फ़र्ज़ हो उसको एलानिया देना बेहतर है और जो सदक़ा फ़र्ज़ न हो उसको छिपाकर देना ज़्यादा बेहतर है। यही उसूल तमाम कामों के लिए है कि फ़र्ज़ों को एलानिया अंजाम देना फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) रखता है और नफ़्ल को छिपाकर करना बेहतर है।

312. यानी छिपाकर नेकियाँ करने से आदमी के दिल और अख़लाक़ का बराबर सुधार होता चला जाता है, उसकी अच्छी सिफ़त ख़ूब फलती-फूलती हैं और बुरी सिफ़तें धीरे-धीरे मिट जाती हैं और यही चीज़ उसको अल्लाह के यहाँ इतना पसन्दीदा बना देती है कि जो थोड़े-बहुत गुनाह उसके आमालनामे (कर्म-पत्र) में होते भी हैं, उन्हें उसकी ख़ूबियों पर नज़र करते हुए अल्लाह माफ़ कर देता है।

وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَلِاَنْفُسِكُمْ ؕ وَمَا تُنْفِقُوْنَ
اِلَّا ابْتِغَآءَ وَجْهِ اللّٰهِ ؕ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ
يُّوَفَّ اِلَيْكُمْ وَاَنْتُمْ لَا تُظْلَمُوْنَ ﴿۲۷۲﴾ لِلْفُقَرَآءِ
الَّذِيْنَ اُحْصِرُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ
ضَرْبًا فِي الْاَرْضِ يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ اَغْنِيَآءَ مِنَ
التَّعَفُّفِ ۚ تَعْرِفُهُمْ بِسِيْمٰهُمْ ۚ لَا يَسْـَٔلُوْنَ النَّاسَ اِلْحَافًا ؕ

तो अल्लाह ही जिसे चाहता है देता है, और भलाई के रास्ते में जो माल तुम लोग ख़र्च करते हो वह तुम्हारे अपने लिए भला है। आख़िर तुम इसी लिए तो ख़र्च करते हो कि अल्लाह की ख़ुशी हासिल हो। तो जो कुछ माल तुम भलाई के रास्ते में ख़र्च करोगे, उसका पूरा-पूरा बदला तुम्हें दिया जाएगा और तुम्हारा हक़ हरगिज़ न मारा जाएगा।[313]

(273) ख़ास तौर पर मदद के हक़दार वे तंगदस्त (निर्धन) हैं जो अल्लाह के काम में ऐसे घिर गए हैं कि अपनी निजी रोज़ी हासिल करने के लिए ज़मीन में कोई दौड़-धूप नहीं कर सकते। उनकी ख़ुद्दारी को देखकर अनजान आदमी समझता है कि ये ख़ुशहाल लोग हैं। तुम उनके चेहरों से उनकी अन्दरूनी हालत पहचान सकते हो, मगर वे ऐसे लोग नहीं हैं कि लोगों के पीछे पड़कर कुछ माँगें। उनकी मदद में जो

313. शुरू में मुसलमान अपने ग़ैर-मुस्लिम रिश्तेदारों और आम ग़ैर-मुस्लिम ज़रूरतमन्दों की मदद करने में झिझकते थे। उनका ख़याल यह था कि सिर्फ़ मुसलमान ज़रूरतमन्दों की ही मदद करना अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करना है। इस आयत में उनकी यह ग़लतफ़हमी दूर की गई है। अल्लाह के फ़रमान का मतलब यह है कि उन लोगों के दिलों में हिदायत उतार देने की ज़िम्मेदारी तुमपर नहीं है। तुम हक़ बात पहुँचाकर अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर चुके। अब यह अल्लाह के इख़्तियार में है कि उनको सूझ-बूझ की रौशनी दे या न दे। रहा दुनिया के माल व सामान से उनकी ज़रूरतें पूरी करना, तो इसमें तुम सिर्फ़ इस वजह से न झिझको कि उन्होंने हिदायत क़बूल नहीं की है। अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए जिस ज़रूरतमन्द इनसान की भी मदद करोगे, उसका बदला अल्लाह देगा।

وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿۲۷۳﴾ ع
اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ بِالَّيْلِ وَ النَّهَارِ سِرًّا وَّ
عَلَانِيَةً فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿۲۷۴﴾ اَلَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ
الرِّبٰوا لَا يَقُوْمُوْنَ اِلَّا كَمَا يَقُوْمُ الَّذِيْ يَتَخَبَّطُهُ
الشَّيْطٰنُ مِنَ الْمَسِّ ۭ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْٓا اِنَّمَا

कुछ माल तुम ख़र्च करोगे वह अल्लाह से छिपा न रहेगा।[314]

(274) जो लोग अपने माल रात-दिन खुले और छिपे ख़र्च करते हैं उनका बदला उनके रब के पास है और उनके लिए किसी डर और रंज की बात नहीं। (275) मगर जो लोग सूद (ब्याज़)[315] खाते हैं उनका हाल उस आदमी जैसा होता है जिसे शैतान ने छूकर

314. इस गरोह से मुराद वे लोग हैं जो ख़ुदा के दीन की ख़िदमत में अपने आपको पूरी तरह लगा देते हैं और सारा वक़्त दीनी ख़िदमतों में लगा देने की वजह से इस क़ाबिल नहीं रहते कि अपनी रोज़ी हासिल करने के लिए कोई जिद्दोजुहद कर सकें। नबी *(सल्ल॰)* के ज़माने में अपनी मर्ज़ी से दीन की ख़िदमत करनेवालों का एक गरोह था, जो हमेशा इस काम में लगा रहता था। यह गरोह इतिहास में 'असहाबे-सुफ़्फ़ा' (चबूतरेवाले) के नाम से मशहूर है। ये तीन-चार सौ आदमी थे जो अपने-अपने घर-बार छोड़कर मदीना आ गए थे। हर वक़्त नबी *(सल्ल॰)* के साथ रहते थे, हर ख़िदमत के लिए हर वक़्त हाज़िर थे। नबी *(सल्ल॰)* जिस मुहिम पर चाहते, उन्हें भेज देते थे और जब मदीने से बाहर कोई काम न होता, उस वक़्त ये मदीना ही में रहकर दीन का इल्म हासिल करते और ख़ुदा के दूसरे बन्दों को उसकी तालीम देते रहते थे। चूँकि ये लोग पूरा वक़्त देनेवाले कारकुन (कार्य-कर्ता) थे और अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए अपने निजी वसाइल न रखते थे, इसलिए अल्लाह ने आम मुसलमानों को तवज्जोह दिलाई कि ख़ास तौर पर इनकी मदद करना अल्लाह की राह में ख़र्च करने के लिए बेहतरीन मद है।

315. असल अरबी में 'रिबा' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। अरबी जबान में इस के मानी बढ़ोत्तरी के हैं। अरब के लोग इस लफ़्ज़ को ख़ास तौर से उस ज़्यादा रक़म के लिए इस्तेमाल करते थे जो एक क़र्ज़ देनेवाला अपने क़र्ज़ लेनेवाले से एक तयशुदा दर के हिसाब से असल रक़म के अलावा वुसूल करता है। इसी को हमारी ज़बान में सूद (ब्याज) कहते हैं। क़ुरआन उतरने के वक़्त सूदी

الْبَيْعُ مِثْلُ الرِّبٰوا ۘ وَأَحَلَّ اللَّهُ الْبَيْعَ وَحَرَّمَ الرِّبٰوا ۚ

बावला कर दिया हो।[316] और इस हालत में उनके मुब्तला होने की वजह यह है कि वे कहते हैं, "तिजारत भी तो आख़िर सूद ही जैसी चीज़ है।"[317] हालाँकि अल्लाह ने

मामलों की जो शक्लें राइज़ थीं और जिन्हें अरबवाले 'रिबा' कहते थे, वे ये थीं कि मिसाल के तौर पर एक आदमी दूसरे आदमी के हाथ कोई चीज़ बेचता और क़ीमत अदा करने के लिए एक मुद्दत मुक़र्रर कर देता। अगर वह मुद्दत गुज़र जाती और क़ीमत अदा न होती तो वह और मुहलत देता, लेकिन क़ीमत बढ़ा देता। या मसलन एक आदमी दूसरे आदमी को क़र्ज़ देता और उससे तय कर लेता कि इतनी मुद्दत में इतनी रक़म असूल (मूल) से ज़्यादा अदा करनी होगी। या मसलन फिर क़र्ज़ देनेवाले और क़र्ज़ लेनेवाले के बीच एक ख़ास मुद्दत तक के लिए एक दर तय हो जाती थी और अगर इस मुद्दत में असूल रक़म बढ़ी हुई रक़म के साथ अदा न होती तो और ज़्यादा मुहलत पहले से ज़्यादा दर पर दी जाती थी, इसी तरह के मामलों के बारे में हुक्म यहाँ बयान किया जा रहा है।

316. अरब के लोग दीवाने आदमी के लिए 'मजनून' यानी आसेब-ज़दा का लफ़्ज़ इस्तेमाल करते थे और जब किसी शख़्स के बारे में यह कहना होता कि वह पागल हो गया है, तो यूँ कहते कि उसे जिन्न (भूत-प्रेत या आसेब) लग गया है। इसी मुहावरे का इस्तेमाल करते हुए क़ुरआन सूद (ब्याज) खानेवाले की मिसाल उस शख़्स से देता है, जिसके हवास गुम हो गए हों। यानी जिस तरह वह शख़्स अक़्ल से कोरा होकर ग़ैर-मोतदिल (असंतुलित) हरकतें करने लगता है, उसी तरह सूद खानेवाला भी रुपये के पीछे दीवाना हो जाता है और अपनी ख़ुदग़र्ज़ी के पागलपन में कुछ परवाह नहीं करता कि उसके सूद खाने से किस-किस तरह इनसानी मुहब्बत, भाईचारा और हमदर्दी की जड़ें कट रही हैं, इनसानी समाज की भलाई और ख़ुशहाली के कामों पर कितना तबाह करनेवाला असर पड़ रहा है और कितने लोगों की बदहाली से वह अपनी ख़ुशहाली का सामान कर रहा है। यह उसकी दीवानगी का हाल इस दुनिया में है और चूँकि आख़िरत में इनसान उसी हालत में उठाया जाएगा, जिस हालत पर उसने दुनिया में जान दी है, इसलिए सूद खानेवाला आदमी क़ियामत के दिन एक बावले और पागल की हालत में उठेगा।

317. यानी उनकी सोच की ख़राबी यह है कि तिजारत में असूल लागत पर जो मुनाफ़ा लिया जाता है उसमें और सूद में वे फ़र्क़ नहीं समझते और दोनों को एक ही क़िस्म की चीज़ समझकर यूँ दलील देते हैं कि जब तिजारत में लगे हुए रुपये का मुनाफ़ा जाइज़ है तो क़र्ज़ पर दिए हुए रुपये का मुनाफ़ा क्यों नाजाइज़ हो। इसी तरह की दलीलें आज के दौर के सूद (ब्याज) ख़ानेवाले भी सूद के हक़ में पेश करते हैं। वे कहते हैं कि एक आदमी जिस रुपये से ख़ुद फ़ायदा उठा सकता था उसे वह क़र्ज़ पर दूसरे आदमी के सुपुर्द करता है। वह दूसरा आदमी भी बहरहाल उससे फ़ायदा ही उठाता है। फिर आख़िर क्या वजह है कि क़र्ज़ देनेवाले के रुपये से जो फ़ायदा क़र्ज़ लेनेवाला उठा रहा है उसमें से एक हिस्सा वह क़र्ज़ देनेवाले को न अदा करे? मगर ये लोग इस बात पर ग़ौर नहीं करते कि दुनिया में जितने कारोबार हैं, चाहे वह खेती-बाड़ी

فَمَنْ جَآءَهٗ مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا

तिजारत को हलाल किया है और सूद को हराम।[318] इसलिए जिस आदमी को उसके रब की तरफ़ से यह नसीहत पहुँचे और आगे के लिए वह सूदख़ोरी से रुक जाए, तो

के हों, या तिजारत के हों या उद्योग-धंधे के हों और चाहे उन्हें आदमी सिर्फ़ अपनी मेहनत से करता हो या अपनी पूँजी और मेहनत दोनों से, इनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें आदमी नुक़सान का ख़तरा (Risk) मोल न लेता हो और जिसमें आदमी के लिए ज़रूरी तौर पर एक तयशुदा मुनाफ़े की गारंटी हो। फिर आख़िर पूरी कारोबारी दुनिया में एक क़र्ज़ देनेवाला सरमायादार (पूँजीपति) ही ऐसा क्यों हो जो नुक़सान के ख़तरे से बचकर एक तयशुदा और लाज़िमी मुनाफ़े का हक़दार क़रार पाए। मुनाफ़ा न देनेवाले कामों के लिए क़र्ज़ लेनेवाले का मामला थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए और (सूद के) दर की कमी-बेशी के मामले से भी नज़र हटा लीजिए। मामला उसी क़र्ज़ का सही जो फ़ायदा देनेवाले कामों में लगाने के लिए लिया जाए और दर भी थोड़ी ही सही। सवाल यह है कि जो लोग एक कारोबार में अपना वक़्त, अपनी मेहनत, अपनी क़ाबिलियत और अपना माल रात-दिन खपा रहे हैं और जिनकी कोशिशों के बल पर ही वह कारोबार फल-फूल सकता है, उनके लिए तो एक तयशुदा मुनाफ़े की गारंटी न हो, बल्कि नुक़सान का सारा ख़तरा बिलकुल उन्हीं के सिर पर हो, मगर जिसने सिर्फ़ अपना रुपया उन्हें क़र्ज़ दे दिया हो वह बिना ख़तरा मोल लिए एक तयशुदा मुनाफ़ा वुसूल करता चला जाए, यह आख़िर किस अक़्ल, किस दलील, इनसाफ़ के किस उसूल और मआशियात (अर्थशास्त्र) के किस उसूल के मुताबिक़ सही है? और यह किस बुनियाद पर सही है कि एक शख़्स एक कारख़ाने को बीस साल के लिए एक रक़म क़र्ज़ दे और आज ही यह तय कर ले कि अगले बीस साल तक वह बराबर पाँच फ़ीसदी सालाना के हिसाब से अपना मुनाफ़ा लेने का हक़दार होगा, हालाँकि वह कारख़ाना जो माल तैयार करता है, उसके बारे में किसी को भी नहीं मालूम कि मार्केट में उसकी क़ीमतों के अन्दर अगले बीस साल में कितना उतार-चढ़ाव होगा? और यह कैसे सही है कि एक क़ौम के सारे ही तबक़े एक लड़ाई में ख़तरा, नुक़सान और क़ुर्बानियाँ बरदाश्त करें, मगर सारी क़ौम के अन्दर से सिर्फ़ एक क़र्ज़ देनेवाला सरमायादार ही ऐसा हो जो अपने दिए हुए जंगी क़र्ज़ पर अपनी ही क़ौम से लड़ाई के एक सदी बाद तक सूद (ब्याज) वुसूल करता रहे।

318. तिजारत और सूद का उसूली फ़र्क़ जिसकी बुनियाद पर दोनों की माली और अख़लाक़ी हैसियत एक नहीं हो सकती, वह यह है—

(1) तिजारत में बेचनेवाले और ख़रीदनेवाले के बीच मुनाफ़े का बराबरी के साथ लेन-देन होता है, क्योंकि ख़रीदनेवाला उस चीज़ से नफ़ा उठाता है जो उसने बेचनेवाले से ख़रीदी है और बेचनेवाला अपनी उस मेहनत, क़ाबिलियत और वक़्त का मुआवज़ा लेता है जिसको उसने ख़रीदनेवाले के लिए वह चीज़ मुहैया करने में लगाई है। इसके बरख़िलाफ़ सूदी लेन-देन में मुनाफ़े का तबादला बराबरी के साथ नहीं होता। सूद लेनेवाला तो माल की एक तयशुदा

मिक़दार (मात्रा) ले लेता है जो उसके लिए यक़ीनी तौर पर नफ़ा देनेवाली होती है, लेकिन उसके मुक़ाबले मे सूद देनेवाले को सिर्फ़ मुहलत मिलती है, जिसका नफ़ाबख़्श होना यक़ीनी नहीं। अगर उसने पैसे अपनी निजी ज़रूरतों पर ख़र्च करने के लिए लिए हैं तब तो ज़ाहिर है कि मुहलत उसके लिए बिलकुल ही नफ़ा देनेवाली नहीं है और अगर वह तिजारत या खेती या कारख़ाने वग़ैरा में लगाने के लिए पैसा लेता है, तब भी मुहलत में जिस तरह उसके लिए नफ़ा का इमकान है उसी तरह नुक़सान का भी इमकान है। सूद का मामला या तो एक फ़रीक़ के फ़ायदे और दूसरे के नुक़सान पर होता है या एक के यक़ीनी और तयशुदा फ़ायदे और दूसरे के ग़ैर-यक़ीनी और ग़ैर-तयशुदा फ़ायदे पर।

(2) तिजारत में बेचनेवाला ख़रीदनेवाले से चाहे कितना ही ज़्यादा मुनाफ़ा ले, बहरहाल वह जो कुछ लेता है एक ही बार लेता है। लेकिन सूद के मामले में माल देनेवाला अपने माल पर बराबर मुनाफ़ा वुसूल करता रहता है और वक़्त की रफ़्तार के साथ-साथ उसका मुनाफ़ा बढ़ता चला जाता है। क़र्ज़ लेनेवाले ने उसके माल से चाहे कितना ही फ़ायदा हासिल किया हो, बहरहाल उसका फ़ायदा एक ख़ास हद तक ही होगा। मगर क़र्ज़ देनेवाला इस फ़ायदे के बदले में जो नफ़ा उठाता है, उसके लिए कोई हद नहीं। हो सकता है कि वह क़र्ज़ लेनेवाले की पूरी कमाई, कमाने के उसके तमाम वसाइल, यहाँ तक कि उसके तन के कपड़े और घर के बरतन तक हज़म (हड़प) कर ले और फिर भी उसका मुतालबा बाक़ी रह जाए।

(3) तिजारत में चीज़ और उसकी क़ीमत का तबादला होने के साथ ही मामला ख़त्म हो जाता है और उसके बाद ख़रीदनेवाले को कोई चीज़ बेचनेवाले को वापस देनी नहीं होती। मकान या ज़मीन या सामान के किराए में असल चीज़ जिसके इस्तेमाल का मुआवज़ा दिया जाता है, ख़र्च नहीं होता, बल्कि बाक़ी रहती है और उसी शक्ल में मालिक को वापस दे दी जाती है, लेकिन सूद के मामले में क़र्ज़ लेनेवाला पैसे को ख़र्च कर चुका होता है और फिर उसको वह ख़र्च किया हुआ माल दोबारा पैदा करके बढ़ोत्तरी के साथ वापस देना होता है।

(4) तिजारत, कारख़ाने और खेती में इनसान मेहनत, ज़हानत (बुद्धि) और वक़्त लगाकर उसका फ़ायदा लेता है, मगर सूदी कारोबार में वह सिर्फ़ अपनी ज़रूरत से ज़्यादा अपना माल देकर बिना किसी मेहनत और मशक़्क़त के दूसरों की कमाई में भरपूर शरीक बन जाता है। उसकी हैसियत इस्तिलाही (पारिभाषिक) 'भागीदार' (Partner) की नहीं होती जो नफ़ा और नुक़सान दोनों में शरीक होता है और नफ़ा में जिसकी भागीदारी नफ़ा के हिसाब से होती है, बल्कि वह ऐसा भागीदार होता है जो नफ़ा और नुक़सान का लिहाज़ किए बिना और नफ़ा के हिसाब का ख़याल किए बिना अपने तयशुदा मुनाफ़े का दावेदार होता है।

इन वजहों से तिजारत की माली हैसियत और सूद की माली हैसियत में इतना भारी फ़र्क़ हो जाता है कि तिजारत इनसानी समाज की तामीर (निर्माण) करनेवाली क़ुव्वत बन जाती है और इसके बरख़िलाफ़ सूद उसके बिगाड़ की वजह बनता है। फिर अख़लाक़ी हैसियत से सूद की यह ख़ास फ़ितरत है कि वह लोगों में कंजूसी, ख़ुदग़र्ज़ी, संगदिली, बेरहमी और दौलतपरस्ती की सिफ़तें पैदा करता है और हमदर्दी और आपस में एक-दूसरे की मदद की रूह को ख़त्म कर देता है। इसी वजह से सूद माली और अख़लाक़ी दोनों हैसियतों से इनसानी समाज को तबाह व बरबाद करनेवाला है।

سَلَفَ ؕ وَاَمۡرُهٗۤ اِلَى اللّٰهِ ؕ وَمَنۡ عَادَ فَاُولٰٓئِكَ
اَصۡحٰبُ النَّارِ ۚ هُمۡ فِيۡهَا خٰلِدُوۡنَ ﴿۲۷۵﴾ يَمۡحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا
وَيُرۡبِى الصَّدَقٰتِ ؕ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ اَثِيۡمٍ ﴿۲۷۶﴾

जो कुछ वह पहले खा चुका, सो खा चुका, उसका मामला अल्लाह के हवाले है।[319] और जो इस हुक्म के बाद फिर इसी हरकत को दोबारा करे वह जहन्नमी है, जहाँ वह हमेशा रहेगा। (276) अल्लाह सूद का मठ मार देता है और ख़ैरात (दान-पुण्य) को बढ़ाता-चढ़ाता है[320], और अल्लाह किसी नाशुक्रे, बुरे अमलवाले को पसन्द नहीं

319. यह नहीं कहा कि जो कुछ उसने खा लिया उसे अल्लाह माफ़ कर देगा, बल्कि कहा यह जा रहा है कि उसका मामला अल्लाह के हवाले है। इस जुमले से मालूम होता है कि "जो खा चुका सो खा चुका" कहने का मतलब यह नहीं है कि जो खा चुका उसे माफ़ कर दिया गया, बल्कि इससे सिर्फ़ क़ानूनी छूट मुराद है। यानी जो सूद पहले खाया जा चुका है उसे वापस देने का क़ानूनी तौर पर मुतालबा नहीं किया जाएगा; क्योंकि अगर उसका मुतालबा किया जाए, तो मुक़द्दमों का एक ख़त्म न होनेवाला सिलसिला शुरू हो जाए, मगर अख़लाक़ी हैसियत से उस माल की नापाकी पहले की तरह बाक़ी रहेगी जो किसी आदमी ने सूदी कारोबार से समेटा हो। अगर वह हक़ीक़त में ख़ुदा से डरनेवाला होगा और उसका माली और अख़लाक़ी नज़रिया वाक़ई इस्लाम अपनाने से बदल चुका होगा, तो वह ख़ुद अपनी उस दौलत को जो हराम तरीक़े से आई थी, अपने ऊपर ख़र्च करने से परहेज़ करेगा और कोशिश करेगा कि जहाँ तक उन हक़दारों का पता चलाया जा सकता है, जिनका माल उसके पास है, उस हद तक उनका माल उन्हें वापस कर दिया जाए और माल के जिस हिस्से के हक़दारों का पता न लगाया जा सके, उसे आम लोगों की भलाई और ख़ुशहाली के कामों पर ख़र्च किया जाए। यही अमल उसे ख़ुदा की सज़ा से बचा सकेगा। रहा वह शख़्स जो पहले कमाए हुए माल से पहले ही की तरह मज़े उठाता रहे तो नामुमकिन नहीं कि वह अपनी इस हरामख़ोरी की सज़ा पाकर रहे।

320. इस आयत में एक ऐसी हक़ीक़त बयान की गई है जो अख़लाक़ी और रूहानी हैसियत से भी सरासर हक़ है और माली और सामाजिक हैसियत से भी। हालाँकि देखने में सूद से दौलत बढ़ती नज़र आती है और सदक़ों से घटती हुई महसूस होती है, लेकिन हक़ीक़त में मामला इसके ख़िलाफ़ है। ख़ुदा की बनाई हुई फ़ितरत का क़ानून यही है कि सूद अख़लाकी और रूहानी, माली और समाजी तरक़्क़ी में न सिर्फ़ रुकावट बनता है, बल्कि बिगाड़ और गिरावट का ज़रीआ बनता है। और उसके बरख़िलाफ़ सदक़ों से (जिसमें क़र्ज़े-हसन यानी अच्छा क़र्ज़ भी शामिल है, यानी ऐसा क़र्ज़ जो इस नीयत से दिया जाए कि क़र्ज़ लेनेवाला चाहे तो उसे वापस करे और

चाहे तो न करे, क़र्ज़ देनेवाले को इसपर कोई एतिराज न होगा। अख़लाक़ व रूहानियत और समाज और माल व दौलत हर चीज़ को तरक़्क़ी नसीब होती है।

अख़लाक़ी और रूहानी हैसियत से देखिए, तो यह बात बिलकुल वाज़ेह है कि सूद असल में ख़ुदग़र्ज़ी, कंजूसी, तंगदिली और संगदिली जैसी बुरी सिफ़तों का नतीजा है। और इन्हीं सिफ़तों को इनसान के अन्दर पैदा करता और उन्हें बढ़ाता भी है। इसके बरख़िलाफ़ सदक़ात नतीजा हैं फ़ैयाज़ी (दानशीलता) हमदर्दी, कुशादा-दिली और दिल की बुलन्दी जैसी ख़ूबियों का और सदक़ों पर अमल करते रहने से यही सिफ़तें इनसान के अन्दर पलती-बढ़ती हैं। कौन है जो अख़लाक़ी सिफ़तों की इन दोनों क़िस्मों में से पहली क़िस्म को बदतरीन और दूसरे को बेहतरीन न मानता हो?

समाजी हैसियत से देखिए तो बेझिझक यह बात हर शख़्स की समझ में आ जाएगी कि जिस समाज में आदमी एक-दूसरे के साथ ख़ुदग़र्ज़ी का मामला करे, कोई शख़्स अपनी ग़र्ज़ और अपने निजी फ़ायदे के बग़ैर किसी के काम न आए। एक आदमी की ज़रूरत को दूसरा आदमी अपने लिए फ़ायदा उठाने का मौक़ा समझे और उसका पूरा फ़ायदा उठाए और मालदार तबक़ों का मफ़ाद (हित) आम लोगों के मफ़ाद के बिलकुल उलटा हो जाए, ऐसा समाज कभी मज़बूत नहीं हो सकता। ऐसे समाज के लोगों में आपस की मुहब्बत के बजाय आपसी दुश्मनी, जलन और बेदर्दी व बेताल्लुक़ी पले-बढ़ेगी। उसके लोग हमेशा बिखराव और बेचैनी व परेशानी का शिकार रहेंगे। और अगर दूसरी वजहें भी इस सूरते-हाल के लिए मददगार हो जाएँ तो ऐसे समाज के लोगों का आपस में टकराव हो जाना भी कुछ मुश्किल नहीं है। इसके बरख़िलाफ़ जिस समाज का इजतिमाई निज़ाम आपस की हमदर्दी पर क़ायम हो, जिसके लोग एक-दूसरे के साथ फ़ैयाज़ी (दानशीलता) का मामला करें, जिसमें हर शख़्स दूसरे की ज़रूरत के मौक़े पर कुशादादिली के साथ मदद का हाथ बढ़ाए और जिसमें बा-हैसियत लोग बिना हैसियतवाले लोगों से हमदर्दाना मदद या कम से कम इनसाफ़ के साथ मदद का तरीक़ा बरतें, ऐसे समाज में आपस की मुहब्बत, ख़ैरख़ाही और दिलचस्पी पले-बढ़ेगी। इसके लोग एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए और एक-दूसरे के मददगार होंगे। इसमें अन्दरूनी झगड़े और टकराव को राह पाने का मौक़ा न मिल सकेगा। इसमें आपसी मदद और ख़ैरख़ाही की वजह से तरक़्क़ी की रफ़्तार पहली क़िस्म की सोसाइटी के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा तेज़ होगी।

अब मआशी (माली) हैसियत से देखिए। मआशियात (अर्थशास्त्र) के नज़रिए से सूदी क़र्ज़ की दो क़िस्में हैं—एक वह क़र्ज़ जो अपनी निजी ज़रूरतों पर ख़र्च करने के लिए मजबूर और ज़रूरतमन्द लोग लेते हैं। दूसरा वह क़र्ज़ जो तिजारत, कल-कारख़ानों और खेती-बाड़ी वग़ैरा के कामों पर लगाने के लिए कारोबारी लोग लेते हैं। इनमें से पहली क़िस्म के क़र्ज़ को तो एक दुनिया जानती है कि इस पर सूद वुसूल करने का तरीक़ा निहायत तबाह करनेवाला है। दुनिया का कोई देश ऐसा नहीं है, जिसमें महाजन लोग और महाजनी इदारे इस ज़रीए से ग़रीब, मज़दूरों, किसानों और बहुत ही कम रोज़ी कमानेवाले लोगों का ख़ून न चूस रहे हों। सूद की वजह से इस क़िस्म का क़र्ज़ अदा करना उन लोगों के लिए सख़्त मुश्किल, बल्कि कभी-कभी नामुमकिन हो जाता है। फिर एक क़र्ज़ को अदा करने के लिए वे दूसरा और तीसरा क़र्ज़ लेते

चले जाते हैं। असूल रक़म से कई-कई गुना सूद दे चुकने पर भी असूल रक़म ज्यों-की-त्यों बाक़ी रहती है। मेहनतपेशा आदमी की आमदनी का ज़्यादातर हिस्सा क़र्ज़ देनेवाला महाजन ले जाता है और उस ग़रीब की अपनी कमाई में से उसके पास अपना और अपने बच्चों का पेट पालने के लिए भी काफ़ी रुपया नहीं बचता। यह चीज़ धीरे-धीरे अपने असर से मेहनत करनेवालों की दिलचस्पी ख़त्म कर देती है; क्योंकि जब उनकी मेहनत का फल दूसरा ले उड़े तो वे कभी दिल लगाकर मेहनत नहीं कर सकते। फिर सूदी क़र्ज़ के जाल में फँसे हुए लोगों को हर वक़्त की फ़िक्र और परेशानी इतनी घुला देती है, और तंगदस्ती की वजह से उनके लिए सही खाना और इलाज इतना मुश्किल हो जाता है कि उनकी सेहत कभी दुरुस्त नहीं रह सकती। इस तरह सूदी क़र्ज़ का हासिल यह होता है कि कुछ लोग तो लाखों आदमियों का खून चूस-चूस कर मोटे होते रहते हैं, मगर कुल मिलाकर पूरी क़ौम जितनी दौलत पैदा कर सकती थी उसके मुक़ाबले में दौलत की पैदाइश बहुत घट जाती है। और नतीजा यह होता है कि ख़ुद वे ख़ून चूसनेवाले लोग भी इसके नुक़सानों से नहीं बच सकते; क्योंकि उनकी इस ख़ुदग़र्ज़ी से ग़रीब लोगों को जो तकलीफ़ें पहुँचती हैं उनकी वजह से मालदार लोगों के ख़िलाफ़ ग़ुस्से और नफ़रत का एक तूफ़ान दिलों में उठता और घुटता रहता है और किसी इंक़िलाबी हंगामे के मौक़े पर जब यह ज्वालामुखी (आतिशफ़िशाँ) फटता है तो उन ज़ालिम मालदारों को अपने माल के साथ अपनी जान और इज़्ज़त तक से हाथ धोना पड़ जाता है।

रहा दूसरी क़िस्म का क़र्ज़ जो कारोबार में लगाने के लिए लिया जाता है, तो इस पर एक मुक़र्रर सूद की दर के लागू होने से जो बेशुमार नुक़सान पहुँचते हैं, उनमें से कुछ सबसे नुमायाँ ये हैं—

(1) जो काम मौजूदा वक़्त में राइज (प्रचलित) सूद के दर के बराबर नफ़ा न ला सकते हों, चाहे देश और क़ौम के लिए कितने ही ज़रूरी और फ़ायदेमन्द हों, उनपर लगाने के लिए रुपया नहीं मिलता और देश के तमाम माली वसाइल (संसाधनों) का बहाव ऐसे कामों की तरफ़ हो जाता है, जो बाज़ार की सूद की दर के बराबर या उससे ज़्यादा नफ़ा ला सकते हों, चाहे समाजी हैसियत से उनकी ज़रूरत और उनका फ़ायदा बहुत कम हो या कुछ भी न हो।

(2) जिन कामों के लिए सूद पर रुपया मिलता है, चाहे वे तिजारती काम हों, या कल-कारख़ानेवाले या खेती-बाड़ी के काम, इन में से कोई भी ऐसा नहीं है, जिसमें इस बात की गारंटी मौजूद हो कि हमेशा तमाम हालात में उसका मुनाफ़ा एक मुक़र्रर मेयार, मिसाल के तौर पर पाँच, छह या दस फ़ीसदी, तक या उससे ऊपर-ऊपर ही रहेगा और कभी उससे नीचे नहीं गिरेगा। इसकी गारंटी होना तो दूर की बात किसी कारोबार में सिरे से इसी बात की कोई गारंटी नहीं है कि इसमें ज़रूर मुनाफ़ा ही होगा, नुक़सान कभी न होगा। इसलिए किसी कारोबार में ऐसे माल का लगना जिसमें माल लगानेवाले को एक मुक़र्रर दर के मुताबिक़ मुनाफ़ा देने की गारंटी दी गई हो, नुक़सान और ख़तरे के पहलू से कभी ख़ाली नहीं हो सकता।

(3) चूँकि रुपये देनेवाला कारोबार के नफ़ा और नुक़सान में शामिल नहीं होता, बल्कि सिर्फ़ मुनाफ़े और वह भी एक मुक़र्रर मुनाफ़े की दर की गारंटी पर रुपया देता है, इस वजह से कारोबार की भलाई और बुराई से उसको किसी क़िस्म की दिलचस्पी नहीं होती। वह इन्तिहाई ख़ुदग़र्ज़ी के साथ सिर्फ़ अपने मुनाफ़े पर निगाह रखता है और जब कभी उसे ज़रा-सा अन्देशा

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ وَأَقَامُوا الصَّلَاةَ

करता।[321] (277) हाँ, जो लोग ईमान ले आएँ और अच्छे काम करें और नमाज़ क़ायम

हो जाता है कि बाज़ार पर मंदी का हमला होनेवाला है, तो वह सबसे पहले अपना रुपया खींचने की फ़िक्र करता है। इस तरह कभी तो सिर्फ़ उसके ख़ुदग़र्ज़ी से भरे अन्देशों ही की वजह से दुनिया पर मंदी का वाक़ई हमला हो जाता है और कभी अगर दूसरी वजहों से मंदी आ गई हो तो सरमायादारी (पूँजीपति) की ख़ुदग़र्ज़ी उसको बढ़ाकर इन्तिहाई तबाह कर देनेवाली हद तक पहुँचा देती है।

सूद के ये तीन नुक़सान तो ऐसे वाज़ेह हैं कि कोई शख़्स जो मईशत के इल्म (अर्थशास्त्र) की थोड़ी-सी भी जानकारी रखता हो, इनका इनकार नहीं कर सकता। इसके बाद यह माने बग़ैर क्या चारा है कि हक़ीक़त में अल्लाह तआला की बनाई हुई फ़ितरत के क़ानून की निगाह से सूद मआशी (आर्थिक) दौलत को बढ़ाता नहीं, घटाता है।

अब एक नज़र सदक़ों के मआशी (आर्थिक) असर और नतीजों को भी देख लीजिए। अगर समाज के ख़ुशहाल लोगों के काम करने का तरीक़ा यह हो कि वे अपनी हैसियत के मुताबिक़ पूरी कुशादादिली के साथ अपनी और अपने घरवालों की ज़रूरतों की चीज़ें ख़रीदें, फिर जो रुपया उनके पास उनकी ज़रूरत से ज़्यादा बचे, उसे ग़रीबों में बाँट दें, ताकि वे भी अपनी ज़रूरतों की चीज़ें ख़रीद सकें। फिर इस पर भी जो रुपया बच जाए उसे या तो कारोबारी लोगों को बिना सूद के क़र्ज़ दें, या साझेदारी के उसूल पर उनके साथ नफ़ा और नुक़सान में हिस्सेदार बन जाएँ या हुकूमत के पास जमा कर दें कि वह अवामी ख़िदमतों के लिए उनको इस्तेमाल करे; तो हर शख़्स थोड़े-से ग़ौर और फ़िक्र से अन्दाज़ा कर सकता है कि ऐसे समाज में तिजारत और कल-कारख़ाने और खेती-बाड़ी, हर चीज़ को बे-इन्तिहा तरक़्क़ी हासिल होगी। उसके आम लोगों की ख़ुशहाली का मेयार बुलन्द होता चला जाएगा और उसमें कुल मिलाकर दौलत की पैदावार उस समाज के मुक़ाबले में कई गुना ज़्यादा होगी, जिसके अन्दर सूद का रिवाज हो।

321. ज़ाहिर है कि सूद पर रुपया वही शख़्स चला सकता है जिसको दौलत के बँटवारे में उसकी हक़ीक़ी ज़रूरत से ज़्यादा हिस्सा मिला हो। यह ज़रूरत से ज़्यादा हिस्सा, जो एक शख़्स को मिलता है, क़ुरआन के मुताबिक़ असल में अल्लाह का फ़ज़्ल (कृपा) और मेहरबानी है और अल्लाह की इस देन और मेहरबानी का सही शुक्र यह है कि जिस तरह अल्लाह ने अपने बन्दे पर फ़ज़्ल किया है, उसी तरह बन्दा भी अल्लाह के दूसरे बन्दों के साथ मेहरबानी करे। अगर वह ऐसा नहीं करता, बल्कि इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह के फ़ज़्ल को इस मक़सद के लिए इस्तेमाल करता है कि जो बन्दे दौलत के बँटवारे में अपनी ज़रूरत से कम हिस्सा पा रहे हैं, उनके उस थोड़े-से हिस्से में से भी वे अपनी दौलत के बल पर एक-एक जुज़ (अंश) अपनी तरफ़ खींच ले, तो हक़ीक़त में वह नाशुक्रा भी है और ज़ालिम, नाइनसाफ़ और बदअमल भी।

وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٧٧﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا
اتَّقُوا اللّٰهَ وَذَرُوْا مَا بَقِيَ مِنَ الرِّبٰۤوا اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِيْنَ ﴿٢٧٨﴾ فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ
اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ۚ وَاِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ ۚ

करें और ज़कात दें, उनका बदला बेशक उनके रब के पास है और उनके लिए किसी डर और रंज का मौक़ा नहीं।[322]

(278) ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! अल्लाह से डरो और जो कुछ तुम्हारा सूद लोगों पर बाक़ी रह गया है, उसे छोड़ दो अगर हक़ीक़त में तुम ईमान लाए हो। (279) लेकिन अगर तुमने ऐसा न किया, तो आगाह हो जाओ कि अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ से तुम्हारे ख़िलाफ़ जंग का एलान है।[323] अब भी तौबा कर लो (और सूद छोड़ दो) तो

322. इस रुकू (आयत 273 से 281) में अल्लाह बार-बार दो क़िस्म के किरदारों को एक-दूसरे के मुक़ाबले में पेश कर रहा है। एक किरदार ख़ुदग़र्ज़, दौलतपरस्त, शाईलॉक क़िस्म के इनसान का है जो ख़ुदा और बन्दे, दोनों के हक़ों और अधिकारों, से बेपरवाह होकर रुपया गिनने और गिन-गिनकर संभालने और सप्ताहों और हफ़्तों महीनों के हिसाब से उसको बढ़ाने और उसकी बढ़ोत्तरी का हिसाब लगाने में लगा हुआ हो। दूसरा किरदार एक ख़ुदापरस्त, फ़ैयाज़ (दानशील) और हमदर्द इनसान का किरदार है, जो ख़ुदा और ख़ुदा के बन्दों, दोनों के हक़ों का ख़याल रखता हो। अपनी बाज़ुओं की ताक़त से कमाकर ख़ुद खाए और ख़ुदा के दूसरे बन्दों को खिलाए और दिल खोलकर नेक कामों में ख़र्च करे। पहली क़िस्म का किरदार ख़ुदा को सख़्त नापसन्द है। दुनिया में इस किरदार पर कोई अच्छा समाज नहीं बन सकता और आख़िरत में ऐसे किरदार के लिए ग़म, दुख, परेशानी और मुसीबत के सिवा कुछ नहीं है। इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह को दूसरी क़िस्म का किरदार पसन्द है। इसी से दुनिया में अच्छा समाज बनता है और वही आख़िरत में इनसान के लिए कामयाबी और नजात का ज़रीआ बनेगा।

323. यह आयत मक्का की फ़तह के बाद उतरी थी। चूँकि इसमें सूद के सिलसिले में बात कही गई है, इसलिए मज़मून की मुनासबत (अनुकूलता) की वजह से यहाँ यह दाख़िल कर दी गई। इससे पहले हालाँकि सूद एक नापसन्दीदा चीज़ समझा जाता था, मगर क़ानूनी तौर पर इसे बन्द नहीं किया गया था। इस आयत के उतरने के बाद इस्लामी हुकूमत के दायरे में सूदी कारोबार

لَا تَظْلِمُوْنَ وَلَا تُظْلَمُوْنَ ۝ وَاِنْ كَانَ ذُوْ
عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ اِلٰى مَيْسَرَةٍ ۚ وَاَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ
لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝ وَاتَّقُوْا يَوْمًا تُرْجَعُوْنَ
فِيْهِ اِلَى اللّٰهِ ۗ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ

अपना असूल सरमाया (मूलधन) लेने के तुम हक़दार हो। न तुम ज़ुल्म करो, न तुमपर ज़ुल्म किया जाए। (280) तुम्हारा क़र्ज़दार तंगी में हो तो हाथ खुलने तक उसे मुहलत दो और अगर ख़ैरात कर दो, तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा बेहतर है, अगर तुम समझो।[324] (281) उस दिन की रुसवाई और मुसीबत से बचो, जबकि तुम अल्लाह की तरफ़ वापस होगे। वहाँ हर आदमी को अपनी कमाई हुई नेकी या बदी का पूरा-पूरा बदला मिल

एक फ़ौजदारी जुर्म बन गया। अरब के जो क़बीले सूद खाते थे, उनको नबी *(सल्ल.)* ने अपने अफ़सरों के ज़रीए से आगाह करवा दिया कि अगर अब वे इस लेन-देन से न रुके तो उनके ख़िलाफ़ जंग की जाएगी। नजरान के ईसाइयों को जब इस्लामी हुकूमत के तहत अन्दरूनी ख़ुदमुख़्तारी (स्वायत्तता) दी गई, तो समझौते में यह बात भी वाज़ेह तौर पर लिख दी गई कि अगर तुम सूदी कारोबार करोगे, तो समझौता ख़त्म हो जाएगा और हमारे और तुम्हारे बीच जंग की हालत क़ायम हो जाएगी। आयत के आख़िरी लफ़्ज़ों की बुनियाद पर इब्ने-अब्बास, हसन बसरी, इब्ने-सीरीन और रबीअ-बिन-अनस की राय यह है कि जो शख़्स दारुल-इस्लाम (इस्लामी राज्य) में सूद खाए, उसे तौबा पर मजबूर किया जाए और अगर न माने तो उसे क़त्ल कर दिया जाए। दूसरे फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) की राय में ऐसे शख़्स को क़ैद कर देना क़ाफ़ी है. जब तक वह सूदख़ोरी छोड़ देने का वादा न करे, उसे न छोड़ा जाए।

324. इसी आयत से शरीअत में यह हुक्म निकाला गया है कि जो शख़्स क़र्ज़ अदा न कर पा रहा हो और मजबूर हो गया हो, इस्लामी अदालत उसके क़र्ज़ देनेवालों (महाजनों) को मजबूर करेगी कि उसे मुहलत दें और कुछ हालात में अदालत को पूरा क़र्ज़ या क़र्ज़ का एक हिस्सा माफ़ कराने का इख़्तियार भी होगा। हदीस में आता है कि एक शख़्स के कारोबार में घाटा आ गया और उस पर क़र्ज़ों का बोझ बहुत चढ़ गया। मामला नबी *(सल्ल.)* के पास आया। आपने लोगों से अपील की कि अपने इस भाई की मदद करो। चुनाँचे बहुत-से लोगों ने उसको माली मदद दी, मगर क़र्ज़ों की अदायगी फिर भी पूरी न हो सकी। तब आपने उसके क़र्ज़ देनेवालों से फ़रमाया कि जो कुछ हाज़िर है, बस वही लेकर उसे छोड़ दो, इससे ज़्यादा तुम्हें नहीं दिलाया जा सकता। फ़ुक़हा ने इसे और खोलकर लिखा है कि एक शख़्स के रहने का मकान, खाने के

ع ٨ وَهُمْ لَا يُظْلَمُونَ ۝٢٨١ يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوٓا۟ إِذَا
تَدَايَنتُم بِدَيْنٍ إِلَىٰٓ أَجَلٍ مُّسَمًّى فَٱكْتُبُوهُ ۚ
وَلْيَكْتُب بَّيْنَكُمْ كَاتِبٌۢ بِٱلْعَدْلِ ۚ وَلَا يَأْبَ
كَاتِبٌ أَن يَكْتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ ٱللَّهُ ۚ فَلْيَكْتُبْ وَلْيُمْلِلِ
ٱلَّذِى عَلَيْهِ ٱلْحَقُّ وَلْيَتَّقِ ٱللَّهَ رَبَّهُۥ وَلَا يَبْخَسْ
مِنْهُ شَيْـًٔا ۚ فَإِن كَانَ ٱلَّذِى عَلَيْهِ ٱلْحَقُّ سَفِيهًا

जाएगा और किसी पर ज़ुल्म हरगिज़ न होगा।

(282) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! जब किसी मुक़र्रर (निश्चित) मुद्दत के लिए तुम आपस में क़र्ज़ का लेन-देन करो[325] तो उसे लिख लिया करो।[326] दोनों फ़रीक़ों के बीच इनसाफ़ के साथ एक आदमी दस्तावेज़ लिखे। जिसे अल्लाह ने लिखने-पढ़ने की क़ाबिलियत दी हो, उसे लिखने से इनकार न करना चाहिए। वह लिखे और बोलकर वह आदमी लिखाए जिसपर हक़ आता है (यानी क़र्ज़ लेनेवाला), और उसे अल्लाह, अपने रब से डरना चाहिए कि जो मामला तय हुआ हो उसमें कोई कमी-बेशी न करे। लेकिन अगर

बर्तन, पहनने के कपड़े और वे औज़ार जिनसे वह अपनी रोज़ी कमाता हो, किसी हालत में क़ुर्क़ नहीं किए जा सकते।

325. इससे यह हुक्म निकलता है कि क़र्ज़ के मामले में मुद्दत तय हो जानी चाहिए।

326. आम तौर पर दोस्तों और रिश्तेदारों के बीच क़र्ज़ के मामलों में दस्तावेज़ लिखने और गवाहियाँ लेने को बुरा और भरोसा न होने की दलील समझा जाता है, लेकिन अल्लाह का कहना यह है कि क़र्ज़ और कारोबारी समझौते को लिख लेना चाहिए और उस पर गवाही भी ले लेनी चाहिए, ताकि लोगों के बीच मामले साफ़ रहें। हदीस में आता है कि तीन क़िस्म के आदमी ऐसे हैं जो अल्लाह से फ़रियाद करते हैं, मगर उनकी फ़रियाद सुनी नहीं जाती—

☆ एक वह शख़्स जिसकी बीवी बदअख़लाक़ और बदचलन हो और वह उसको तलाक़ न दे,

☆ दूसरा वह शख़्स जो यतीम के बालिग़ होने से पहले उसका माल उसके हवाले कर दे,

☆ तीसरा वह शख़्स जो किसी को अपना माल क़र्ज़ के तौर पर दे और किसी को उस पर गवाह न बनाए।

اَوْ ضَعِيْفًا اَوْ لَا يَسْتَطِيْعُ اَنْ يُّمِلَّ هُوَ فَلْيُمْلِلْ
وَلِيُّهٗ بِالْعَدْلِؕ وَاسْتَشْهِدُوْا شَهِيْدَيْنِ مِنْ
رِّجَالِكُمْۚ فَاِنْ لَّمْ يَكُوْنَا رَجُلَيْنِ فَرَجُلٌ وَّامْرَاَتٰنِ
مِمَّنْ تَرْضَوْنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنْ تَضِلَّ اِحْدٰىهُمَا
فَتُذَكِّرَ اِحْدٰىهُمَا الْاُخْرٰىؕ وَلَا يَاْبَ الشُّهَدَآءُ
اِذَا مَا دُعُوْاؕ وَلَا تَسْـَٔمُوْٓا اَنْ تَكْتُبُوْهُ صَغِيْرًا اَوْ كَبِيْرًا
اِلٰٓى اَجَلِهٖؕ ذٰلِكُمْ اَقْسَطُ عِنْدَ اللّٰهِ وَاَقْوَمُ
لِلشَّهَادَةِ وَاَدْنٰٓى اَلَّا تَرْتَابُوْٓا اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ

क़र्ज़ लेनेवाला ख़ुद नादान या कमज़ोर हो या बोलकर लिखा न सकता हो तो उसका सरपरस्त इनसाफ़ के साथ बोलकर लिखवाए। फिर अपने मर्दों[327] में से दो आदमियों की इसपर गवाही करा लो। और अगर दो मर्द न हों तो एक मर्द और दो औरतें हों, ताकि एक भूल जाए तो दूसरी उसे याद दिला दे। ये गवाह ऐसे लोगों में से होने चाहिएँ जिनकी गवाही तुम्हारे बीच क़बूल की जाती हो।[328] गवाहों को जब गवाह बनने के लिए कहा जाए तो उन्हें इनकार न करना चाहिए। मामला चाहे छोटा हो या बड़ा, मुद्दत तय कर लेने के साथ उसकी दस्तावेज़ लिखवा लेने में सुस्ती न करो। अल्लाह के नज़दीक यह तरीक़ा तुम्हारे लिए ज़्यादा इनसाफ़वाला है। इससे गवाही क़ायम होने में ज़्यादा

327. यानी मुसलमान मर्दों में से। इससे मालूम हुआ कि जहाँ गवाह बनाना अपने इख़्तियार का काम हो, वहाँ मुसलमान सिर्फ़ मुसलमान ही को अपना गवाह बनाएँ। हाँ, ज़िम्मियों (ग़ैर-मुस्लिम) के गवाह ज़िम्मी भी हो सकते हैं।

328. मतलब यह है कि हर ऐरा-ग़ैरा गवाह होने के लिए मुनासिब नहीं है, बल्कि ऐसे लोगों को गवाह बनाया जाए जो अपने अख़लाक़ और ईमानदारी के लिहाज़ से आम तौर पर लोगों के बीच भरोसेमंद और एतिबार के क़ाबिल समझे जाते हों।

تِجَارَةً حَاضِرَةً تُدِيْرُوْنَهَا بَيْنَكُمْ فَلَيْسَ
عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَلَّا تَكْتُبُوْهَا ۭ وَاَشْهِدُوْٓا اِذَا تَبَايَعْتُمْ ۠
وَلَا يُضَاۗرَّ كَاتِبٌ وَّلَا شَهِيْدٌ ڛ وَاِنْ تَفْعَلُوْا
فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ ۭ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ۭ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ۭ
وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ۝٢٨٢ وَاِنْ كُنْتُمْ عَلٰي سَفَرٍ
وَّلَمْ تَجِدُوْا كَاتِبًا فَرِھٰنٌ مَّقْبُوْضَةٌ ۭ فَاِنْ اَمِنَ

आसानी होती है और तुम्हारे शक और शुबहे में पड़ जाने की गुंजाइश कम रह जाती है। हाँ, जो कारोबारी लेन-देन हाथ-के-हाथ तुम लोग आपस में करते हो, उसको न लिखा जाए तो कोई हरज नहीं।[329] मगर कारोबारी मामला तय करते वक़्त गवाह कर लिया करो। लिखानेवाले और गवाह को सताया न जाए।[330] ऐसा करोगे तो गुनाह का काम करोगे। अल्लाह के ग़ज़ब से बचो। वह तुमको सही तरीक़ा अपनाने की तालीम देता है, और उसे हर चीज़ का इल्म है।

(283) अगर तुम सफ़र की हालत में हो और दस्तावेज़ लिखने के लिए कोई लिखनेवाला न मिले तो गिरवी रखकर मामला करो।[331]

329. मतलब यह है कि हालाँकि रोज़मर्रा के ख़रीदने-बेचने के काम में भी बेचने-ख़रीदने जैसे मामले का लिख लिया जाना बेहतर है, जैसा कि आजकल कैशमेमो लिखने का तरीक़ा राइज है। फिर भी ऐसा करना ज़रूरी नहीं है। इसी तरह पड़ोसी ताजिर (व्यापारी) एक-दूसरे से रात-दिन जो लेन-देन करते रहते हैं, उसको भी अगर लिखा न जाए तो कोई हरज नहीं।

330. इसका मतलब यह भी है कि किसी शख़्स को दस्तावेज़ लिखने या उस पर गवाह बनने के लिए मजबूर न किया जाए और यह भी कि कोई फ़रीक़ लिखनेवाले को या गवाह को इस वजह से न सताए कि वह उसके मफ़ाद (हित) के ख़िलाफ़ सही गवाही देता है।

331. यह मतलब नहीं है कि गिरवी (रेहन) का मामला सिर्फ़ सफ़र ही में हो सकता है, बल्कि ऐसी सूरत चूँकि ज़्यादातर सफ़र में पेश आती है, इसलिए ख़ास तौर पर इसका ज़िक्र (उल्लेख) कर दिया गया है। रेहन (गिरवी) के मामले के लिए यह शर्त भी नहीं है कि जब दस्तावेज़ लिखना

بَعۡضُكُم بَعۡضٗا فَلۡيُؤَدِّ ٱلَّذِي ٱؤۡتُمِنَ أَمَٰنَتَهُۥ
وَلۡيَتَّقِ ٱللَّهَ رَبَّهُۥۗ وَلَا تَكۡتُمُواْ ٱلشَّهَٰدَةَۚ وَمَن
يَكۡتُمۡهَا فَإِنَّهُۥٓ ءَاثِمٞ قَلۡبُهُۥۗ وَٱللَّهُ بِمَا تَعۡمَلُونَ عَلِيمٞ ٢٨٣ ع

अगर तुममें से कोई शख़्स दूसरे पर भरोसा करके उसके साथ कोई मामला करे, तो जिसपर भरोसा किया गया है उसे चाहिए कि अमानत अदा करे और अपने रब अल्लाह से डरे।

और गवाही हरगिज़ न छिपाओ।[332] जो गवाही छिपाता है उसका दिल गुनाह में लत-पथ है, और अल्लाह तुम्हारे कामों से बेख़बर नहीं है।

मुमकिन न हो, सिर्फ़ उसी सूरत में रेहन का मामला किया जाए। इसके अलावा एक सूरत यह भी हो सकती है कि जब सिर्फ़ दस्तावेज़ लिखने पर कोई क़र्ज़ देने पर तैयार न हो तो क़र्ज़ चाहनेवाला अपनी कोई चीज़ रेहन रखकर रुपया ले ले। लेकिन क़ुरआन मजीद चूँकि अपनी पैरवी करनेवालों को फ़ैयाज़ी (दानशीलता) की तालीम देना चाहता है और यह बात बुलन्द अख़लाक़ से गिरी हुई है कि एक शख़्स माल रखता हो और वह एक ज़रूरतमंद आदमी को उसकी कोई चीज़ गिरवी रखे बिना क़र्ज़ न दे। इसलिए क़ुरआन ने जान-बूझकर इस दूसरी सूरत का ज़िक्र नहीं किया।

इस सिलसिले में यह भी मालूम होना चाहिए कि गिरवी के सामान को अपने क़ब्ज़े में लेने का मक़सद सिर्फ़ यह है कि क़र्ज़ देनेवाले को अपने क़र्ज़ की वापसी का इतमीनान हो जाए, उसे अपने दिए हुए माल के मुआवज़े में गिरवी रखी हुई चीज़ से फ़ायदा उठाने का हक़ और अधिकार नहीं है। अगर कोई आदमी गिरवी रखे हुए मकान में ख़ुद रहता है या उसका किराया खाता है तो असल में सूद खाता है। क़र्ज़ पर सीधे तौर पर सूद लेने और गिरवी रखी हुई चीज़ से फ़ायदा उठाने में उसूली तौर पर कोई फ़र्क़ नहीं है। हाँ, अगर कोई जानवर गिरवी रखा गया हो तो उसका दूध इस्तेमाल किया जा सकता है और उससे सवारी और सामान ढुलाई की ख़िदमत ली जा सकती है, क्योंकि यह असल में उस चारे का मुआवज़ा है जो वह उस गिरवी रखे हुए जानवर को खिलाता है।

332. गवाही देने से बचना या गवाही में सही बात बताने से बचना, दोनों ही गवाही छिपाना है।

لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ وَاِنْ تُبْدُوْا
مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ اَوْ تُخْفُوْهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ ۭ
فَيَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَاۗءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَاللّٰهُ عَلٰي
كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝۲۸۴ اٰمَنَ الرَّسُوْلُ بِمَآ اُنْزِلَ
اِلَيْهِ مِنْ رَّبِّهٖ وَالْمُؤْمِنُوْنَ ۭ كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ

(284) आसमानों[333] और ज़मीन में जो कुछ है, सब अल्लाह का है।[334] तुम अपने दिल की बातें चाहे ज़ाहिर करो या छिपाओ, अल्लाह हर हाल में उनका हिसाब तुमसे ले लेगा।[335] फिर उसे इख़्तियार है, जिसे चाहे माफ़ कर दे और जिसे चाहे सज़ा दे। उसे हर चीज़ पर क़ुदरत हासिल है।[336]

(285) रसूल उस हिदायत (मार्गदर्शन) पर ईमान लाया है जो उसके रब की तरफ़ से

333. यहाँ बात ख़त्म हो रही है, इसलिए जिस तरह सूरा की शुरुआत दीन की बुनियादी तालीमात से की गई थी, उसी तरह सूरा को ख़त्म करते हुए भी उन तमाम उसूली बातों को बयान कर दिया गया है, जिनपर दीने-इस्लाम (इस्लाम-धर्म) की बुनियाद क़ायम है। यहाँ बयान की गई बातों को समझने के लिए इस सूरा के पहले रुकू (शुरू की सात आयतों) को सामने रख लिया जाए तो ज़्यादा फ़ायदेमन्द होगा।

334. यह दीन की सबसे पहली बुनियाद है। अल्लाह का ज़मीन व आसमान का मालिक होना और उन तमाम चीज़ों का, जो आसमान व ज़मीन में हैं, अल्लाह ही की मिलकियत होना, असल में यही वह बुनियादी हक़ीक़त है जिसकी वजह पर इनसान के लिए कोई दूसरा तर्ज़े-अमल (रवैया) इसके सिवा जाइज़ और सही नहीं हो सकता कि वह अल्लाह की फ़रमाँबरदारी के लिए सिर झुका दे।

335. इस जुमले में और दो बातें कही गई हैं। एक यह कि हर इनसान अल्लाह के सामने अपनी-अपनी निजी हैसियत से ज़िम्मेदार और जवाबदेह है, दूसरे यह कि ज़मीन व आसमान के जिस बादशाह के सामने इनसान जवाबदेह है, वह खुले-छिपे सबका इल्म रखनेवाला है, यहाँ तक कि दिलों के छिपे हुए इरादे और ख़यालात तक उससे छिपे हुए नहीं हैं।

336. यह बयान उस अल्लाह का है जो तमाम और सारे इख़्तियारों का मालिक है। उसको किसी क़ानून ने बाँध नहीं रखा है कि उसके मुताबिक़ काम करने पर वह मजबूर हो, बल्कि वह सारे इख़्तियारों का मालिक है। सज़ा देने और माफ़ करने के सभी इख़्तियार उसे हासिल हैं।

وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ ۗ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ
مِّنْ رُّسُلِهٖ ۗ وَقَالُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ٗ غُفْرَانَكَ
رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ﴿٢٨٥﴾ لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا
وُسْعَهَا ۭ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَعَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ۭ

उसपर उतरी है। और जो लोग इस रसूल के माननेवाले हैं, उन्होंने भी इस हिदायत को दिल से मान लिया है। ये सब अल्लाह और उसके फ़रिश्तों और उसकी किताबों और उसके रसूलों को मानते हैं और उनका कहना यह है कि "हम अल्लाह के रसूलों को एक-दूसरे से अलग नहीं करते। हमने हुक्म सुना और फ़रमाँबरदार हुए। मालिक! हम तुझसे ग़लतियों पर माफ़ी चाहते हैं और हमें तेरी ही तरफ़ पलटना है।[337]

(286) अल्लाह किसी जान पर उसकी ताक़त से बढ़कर ज़िम्मेदारी का बोझ नहीं डालता।[338] हर आदमी ने जो नेकी कमाई है, उसका फल उसी के लिए है और जो बदी

337. इस आयत में तफ़सील में जाए बिना इस्लाम के अक़ीदे और इस्लामी तर्ज़े-अमल (कार्य-नीति) का ख़ुलासा बयान कर दिया गया है और वह यह है— अल्लाह को, उसके फ़रिश्तों को और उसकी किताबों को मानना, उसके तमाम रसूलों को तस्लीम करना बग़ैर इसके कि उनके बीच फ़र्क़ किया जाए (यानी किसी को माना जाए और किसी को न माना जाए) और इस बात को मानना कि आख़िरकार हमें उसके सामने हाज़िर होना है। ये पाँच बातें इस्लाम के बुनियादी अक़ीदे (मूल धारणाएँ) हैं। इन अक़ीदों को क़बूल करने के बाद एक मुसलमान के लिए सही तर्ज़े-अमल यह है कि अल्लाह की तरफ़ से जो हुक्म पहुँचे, उसे वह दिल व जान से क़बूल करे। उसकी फ़रमाँबरदारी करे और अपने अच्छे कामों पर घमंड न करे, बल्कि अल्लाह से माफ़ी और दरगुज़र की दरख़ास्त करता रहे।

338. अल्लाह के यहाँ इनसान की ज़िम्मेदारी उसकी ताक़त (सामर्थ्य) के लिहाज़ से है। ऐसा हरगिज़ नहीं होगा कि बन्दा एक काम करने की ताक़त न रखता हो और अल्लाह उससे पूछताछ करे कि फ़ुलाँ काम तूने क्यों न किया या एक चीज़ से बचना हक़ीक़त में उसकी ताक़त से बाहर हो और अल्लाह उस पर पकड़ करे कि उससे परहेज़ क्यों न किया। लेकिन यह बात याद रहे कि अपनी ताक़त और सकत का फ़ैसला करनेवाला इनसान ख़ुद नहीं है। इसका फ़ैसला अल्लाह ही कर सकता है कि एक शख़्स हक़ीक़त में किस चीज़ की ताक़त रखता था और किस चीज़ की न रखता था।

رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَآ اِنْ نَّسِيْنَآ اَوْ اَخْطَاْنَا ۚ رَبَّنَا
وَلَا تَحْمِلْ عَلَيْنَآ اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَى الَّذِيْنَ
مِنْ قَبْلِنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا بِهٖ ۚ
وَاعْفُ عَنَّا ۗ وَاغْفِرْ لَنَا ۗ وَارْحَمْنَا ۗ اَنْتَ مَوْلٰىنَا
فَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٨٦﴾ ع

समेटी है, उसका वबाल उसी पर है।[339]

(ईमान लानेवालो! तुम यूँ दुआ किया करो,) ऐ हमारे रब! हमसे भूल-चूक में जो क़ुसूर हो जाएँ, उनपर पकड़ न कर। मालिक! हमपर वह बोझ न डाल जो तूने हमसे पहले लोगों पर डाले थे।[340] पालनहार! जिस बोझ को उठाने की ताक़त हममें नहीं है, वह हम पर न रख[341] हमारे साथ नर्मी कर, हमें माफ़ कर दे। हमपर रहम कर, तू हमारा मौला (स्वामी) है, कुफ़्र (अधर्म) करनेवालों के मुक़ाबले में हमारी मदद कर।[342]

---

339. बदला दिए जाने के बारे में ख़ुदा का जो कानून मुक़र्रर है, यह उसका दूसरा बुनियादी नियम है। हर आदमी इनाम उसी ख़िदमत पर पाएगा जो उसने ख़ुद अंजाम दी हो। यह मुमकिन नहीं है कि एक आदमी की ख़िदमतों पर दूसरा इनाम पाए और इसी तरह हर आदमी उसी क़ुसूर में पकड़ा जाएगा जो उसने खुद किया हो। यह नहीं हो सकता कि एक के क़ुसूर में दूसरा पकड़ा जाए। हाँ, यह ज़रूर मुमकिन है कि एक आदमी ने किसी नेक काम की बुनियाद रखी हो और दुनिया में हज़ारों साल तक उस काम का असर बाक़ी रहे और ये सब उसके कारनामों में लिखे जाएँ। और एक दूसरे शख़्स ने किसी बुराई की बुनियाद रखी हो और सदियों तक दुनिया में उसका असर जारी रहे और उसे पहले ज़ालिम के हिसाब में लिखा जाता रहे, लेकिन यह अच्छा या बुरा जो कुछ भी फल होगा, उसी की कोशिश और उसी की कमाई का नतीजा होगा। बहरहाल, यह मुमकिन नहीं है कि जिस भलाई या जिस बुराई में आदमी की नीयत या कोशिश और काम का कोई हिस्सा न हो, उसकी सज़ा या कोई अच्छा फल मिल जाए। काम का बदला मिलने का यह उसूल ऐसा नहीं है कि करे कोई और भरे कोई और।

340. यानी उन लोगों को जो हमसे पहले गुज़र चुके हैं, तेरी राह में जो आज़माइशें पेश आईं, जिन

ज़बरदस्त आज़माइशों से वे गुज़रे, जिन मुश्किलों से उन्हें दो-चार होना पड़ा, उनसे हमें बचा। हालाँकि ख़ुदा की सुन्नत यही रही है कि जिसने भी हक़ और सच्चाई की पैरवी का इरादा किया है, उसे सख़्त आज़माइशों और फ़ितनों से दो-चार होना पड़ा है और जब आज़माइशें पेश आएँ तो ईमानवालों का काम यही है कि पूरे जमाव और मज़बूती से उनका मुक़ाबला करे, लेकिन बहरहाल ईमानवाले को ख़ुदा से दुआ यही करनी चाहिए कि वह उसके लिए हक़परस्ती (सत्य) की राह को आसान कर दे।

341. यानी मुश्किलों का उतना ही बोझ हम पर डाल जिसे हम बरदाश्त कर लें। आज़माइशें बस उतनी ही भेज कि उनमें हम पूरे उतर जाएँ। ऐसा न हो कि हमारी बरदाश्त की ताक़त से बढ़कर सख़्तियाँ हमपर आएँ और हमारे क़दम हक़ के रास्ते से डगमगा जाएँ।

342. इस दुआ की पूरी रूह को समझने के लिए यह बात नज़र में रहनी चाहिए कि ये आयतें हिजरत से क़रीब एक साल पहले मेराज के मौक़े पर उतरी थीं, जबकि मक्का में कुफ़्र व इस्लाम की कश-म-कश अपनी आख़िरी हद को पहुँच चुकी थी और मुसलमानों पर मुश्किलों और मुसीबतों के पहाड़ टूट रहे थे। और सिर्फ़ मक्का ही नहीं, बल्कि अरब की ज़मीन पर कोई जगह ऐसी नहीं थी जहाँ ख़ुदा के किसी बन्दे ने दीने-हक़ (सत्य-धर्म) की पैरवी इख़्तियार की हो और उसके लिए, ख़ुदा की ज़मीन पर सांस लेना दुश्वार न कर दिया गया हो। इन हालात में मुसलमानों को नसीहत की गई कि अपने मालिक से इस तरह दुआ माँगा करो। ज़ाहिर है कि देनेवाला ख़ुद ही जब माँगने का ढंग बताए तो मिलने का यक़ीन आपसे आप पैदा होता है। इसलिए यह दुआ उस वक़्त मुसलमानों के लिए ग़ैर-मामूली तौर पर दिल की तसल्ली की वजह बनी। इसके अलावा इस दुआ में अलग से यह बात भी मुसलमानों से कह दी गई कि वे अपने जज़बात को किसी नामुनासिब रुख़ पर न बहने दें, बल्कि उन्हें इस दुआ के साँचें में ढाल लें। एक तरफ़ रूह को हिला देनेवाले उन ज़ुल्मों को देखिए, जो सिर्फ़ हक़ के रास्ते पर चलने के जुर्म में उन लोगों पर तोड़े जा रहे थे और दूसरी तरफ़ इस दुआ को देखिए, जिसमें दुश्मनों के ख़िलाफ़ ज़रा भी किसी कड़वाहट का शाइबा (अंश) तक नहीं। एक तरफ़ उन जिस्मानी तकलीफ़ों और माली नुक़सानों को देखिए, जिनमें ये लोग पड़े हुए थे, और दूसरी तरफ़ उस दुआ को देखिए जिसमें दुनिया के किसी फ़ायदे की तलब का मामूली इशारा तक नहीं है; एक तरफ़ इन हक़परस्तों की इन्तिहाई बदहाली को देखिए और दूसरी तरफ़ उन बुलन्द और पाकीज़ा जज़्बों को देखिए, जिनसे यह दुआ लबरेज़ (परिपूर्ण) है। दोनों में इस फ़र्क़ ही से सही अन्दाज़ा हो सकता है कि उस वक़्त ईमानवालों को किस तरह की अख़लाक़ी और रूहानी तरबियत (ट्रेनिंग) दी जा रही थी।

☆☆☆

3. आले-इमरान

परिचय

नाम

इस सूरा में एक जगह पर (आयत-33 में) 'आले-इमरान' का ज़िक्र हुआ है। उसी को पहचान के तौर पर इस सूरा का यह नाम रख दिया गया है। (आले-इमरान के मानी हैं इमरान की औलाद।)

उतरने का ज़माना और मज़मून

इसमें चार तक़रीरें शामिल हैं :

पहली तक़रीर सूरा के शुरू से आयत 32 तक है और वह शायद बद्र की लड़ाई के बाद क़रीबी ज़माने ही में उतरी है।

दूसरी तक़रीर आयत 33, "अल्लाह ने आदम और नूह और इबराहीम की औलाद और इमरान की औलाद को तमाम दुनियावालों पर तरजीह देकर (अपनी रिसालत के काम के लिए) चुन लिया था" से शुरू होती है और आयत 63 पर ख़त्म होती है। यह सन् 09 हिजरी में नजरान के वफ़्द (प्रतिनिधिमंडल) के आने के मौक़े पर उतरी।

तीसरी तक़रीर आयत 64 से शुरू होती है और आयत 120 तक चलती है और इसका ज़माना पहली तक़रीर के ज़माने से बिल्कुल मिला हुआ ही मालूम होता है।

चौथी तक़रीर आयत 121 से शुरू होकर सूरा के अन्त तक चलती है। यह उहुद की लड़ाई के बाद उतरी है।

ख़िताब (सम्बोधन) और मबाहिस (वार्ताएँ)

इस सूरा का मक़सद और इसके मर्कज़ी मज़मून (केन्द्रीय विषय) की एकसानियत (एकरूपता) इन सभी मुख़्तलिफ़ तक़रीरों को मिलाकर एक मुसलसल मज़मून बनाती है। सूरा का ख़िताब (सम्बोधन) ख़ास तौर से दो गरोहों की तरफ़ है। एक अहले-किताब (यहूदी और ईसाई), दूसरे वे लोग जो मुहम्मद (सल्ल०) पर ईमान लाए थे।

पहले गरोह को उसी ढंग से और ज़्यादा तबलीग़ की गई है, जिसका सिलसिला सूरा-2 (अल-बक़रा) में शुरू किया गया था। उनके अक़ीदे की गुमराहियों और अख़्लाक़ी

ख़राबियों पर उनको ख़बरदार करते हुए उन्हें बताया गया है कि यह रसूल और यह क़ुरआन उसी दीन की तरफ़ बुला रहा है जिसकी तरफ़ पिछले सारे पैग़म्बर बुलाते चले आए हैं और जो अल्लाह की बनाई हुई फ़ितरत के मुताबिक़ एक ही दीने-हक़ (सत्यधर्म) है। इस दीन के सीधे रास्ते से हटकर जो राहें तुमने इख़्तियार की हैं वे ख़ुद उन किताबों के मुताबिक़ भी सही नहीं हैं जिनका आसमानी किताब होना तुम तसलीम करते हो। इसलिए इस सच्चाई को क़बूल करो जिसके सच्चा होने से तुम ख़ुद भी इनकार नहीं कर सकते।

दूसरे गरोह को जो अब बेहतरीन उम्मत (समुदाय) होने की हैसियत से हक़ का अलमबरदार और दुनिया के सुधार का ज़िम्मेदार बनाया जा चुका है उसी सिलसिले में कुछ और हिदायतें दी गई हैं जो सूरा-2, (अल-बक़रा) में शुरू हुई थीं। उन्हें पिछली उम्मतों के मज़हबी और अख़लाक़ी गिरावट का सबक़आमोज़ नक़्शा दिखाकर ख़बरदार किया गया है कि उनके नक़्शे-क़दम (पदचिह्नों) पर चलने से बचें। उन्हें बताया गया है कि एक सुधारक गरोह होने की हैसियत से वे किस तरह काम करें और उन अहले-किताब और मुनाफ़िक़ मुसलमानों के साथ क्या मामला करें जो ख़ुदा के रास्ते में तरह-तरह से रुकावटें डाल रहे थे। उन्हें अपनी उन कमज़ोरियों को दूर करने पर भी तवज्जोह दिलाई गई है जो उहुद की लड़ाई में ज़ाहिर हुई थीं। इस तरह यह सूरा न सिर्फ़ आप अपने मुख़्तलिफ़ हिस्सों में मुसलसल और मरबूत (क्रमबद्ध) है, बल्कि पिछली सूरा-2 (अल-बक़रा) के साथ भी इसका ऐसा क़रीबी ताल्लुक़ नज़र आता है कि यह बिलकुल उसका ततिम्मा (पूरक) मालूम होती है और महसूस होता है कि यह फ़ितरी तौर पर सूरा-2 (अल-बक़रा) से जुड़ी हुई है।

शाने-नुज़ूल (अवतरण की पृष्ठभूमि)

इस सूरा का तारीख़ी पसमंज़र यह है —

(1) सूरा-2 (बक़रा) में इस दीने-हक़ पर ईमान लानेवालों को जिन आज़माइशों, मुसीबतों और कठिनाइयों से वक़्त से पहले ख़बरदार कर दिया गया था, वे पूरी शिद्दत के साथ सामने आ चुकी थीं। बद्र की लड़ाई में हालाँकि ईमानवालों को जीत हासिल हुई थी, लेकिन यह लड़ाई मानो भिड़ों के छत्ते में पत्थर मारने जैसी थी। इस हथियारबन्द पहले मुक़ाबले ने अरब की उन सब ताक़तों को चौंका दिया था, जो इस नई तहरीक से दुश्मनी रखती थीं। हर तरफ़ तूफ़ान के आसार (लक्षण) ज़ाहिर हो रहे थे और मुसलमानों पर एक दाइमी (स्थाई) ख़ौफ़ और बेइतमीनानी की हालत छाई हुई थी और ऐसा महसूस होता था कि मदीने की यह छोटी-सी बस्ती, जिसने आसपास की सारी दुनिया से लड़ाई मोल ले ली है, बिलकुल मिटा डाली जाएगी। इन हालात का मदीने की

माली हालत पर भी निहायत बुरा असर पड़ रहा था। पहले तो एक तो छोटे-से क़स्बे में जिसकी आबादी कुछ सौ घरों से ज़्यादा न थी, अचानक मुहाजिरों की एक बड़ी तादाद के आ जाने से माली (आर्थिक) सन्तुलन बिगड़ चुका था, इस पर और ज़्यादा मुसीबत जंग की इस हालत की वजह से आ पड़ी।

(2) हिजरत के बाद नबी (सल्ल०) ने मदीना के आस-पास के यहूदी क़बीलों के साथ जो समझौते किए थे, उन लोगों ने उन समझौतों का कुछ भी लिहाज़ न किया। बद्र की लड़ाई के मौक़े पर इन किताबवालों की हमदर्दियाँ तौहीद, पैग़म्बर और ख़ुदा की किताब और आख़िरत के माननेवाले मुसलमानों के बजाय बुत पूजनेवाले मुशरिकों के साथ थीं। बद्र के बाद ये लोग खुल्लम-खुल्ला क़ुरैश और अरब के दूसरे क़बीलों को मुसलमानों के ख़िलाफ़ जोश दिला-दिलाकर बदला लेने पर उकसाने लगे। खास तौर से बनी-नज़ीर के सरदार कअब-बिन-अशरफ़ ने तो इस सिलसिले में अपनी मुख़ालिफ़ाना कोशिशों को अंधी दुश्मनी बल्कि कमीनेपन की हद तक पहुँचा दिया। मदीनावालों के साथ इन यहूदियों के पड़ोसी और दोस्ती के जो ताल्लुक़ात सदियों से चले आ रहे थे उनका भी ज़रा ख़याल उन्होंने नहीं किया। आख़िरकार जब उनकी शरारतें और वादाख़िलाफ़ियाँ बर्दाश्त से बाहर हो गईं तो नबी (सल्ल०) ने बद्र के कुछ महीने बाद बनी-क़ैनुक़ाअ पर, जो इन यहूदी क़बीलों में सबसे ज़्यादा शरारती और बाग़ी थे, हमला कर दिया और उन्हें मदीना के आस-पास से निकाल बाहर किया, लेकिन इससे दूसरे यहूदी क़बीलों की दुश्मनी की आग और ज़्यादा भड़क उठी। उन्होंने मदीना के मुनाफ़िक़ मुसलमानों और हिजाज़ के मुशरिक क़बीलों के साथ साँठ-गाँठ करके इस्लाम और मुसलमानों के लिए हर तरफ़ ख़तरे ही ख़तरे पैदा कर दिए। यहाँ तक कि ख़ुद नबी (सल्ल०) की जान के बारे में हर वक़्त यह डर रहने लगा कि न मालूम कब आप (सल्ल०) पर क़ातिलाना हमला हो जाए। सहाबा (रज़ि०) उस ज़माने में आमतौर से हथियार लेकर सोते थे, कहीं रात में अचानक हमला न हो जाए इस डर से रातों को पहरे दिए जाते थे। नबी (सल्ल०) अगर थोड़ी देर के लिए भी कहीं निगाहों से ओझल हो जाते तो सहाबा (रज़ि०) घबराकर ढूँढने के लिए निकल पड़ते थे।

(3) बद्र की लड़ाई की हार के बाद क़ुरैश के दिलों में अपने आप ही बदला लेने की आग भड़क रही थी, इसपर यहूदियों ने और तेल छिड़क दिया। नतीजा यह हुआ कि एक ही साल बाद मक्का से तीन हज़ार की भारी सेना मदीना पर हमलावर हो गई और उहुद के दामन में वह लड़ाई हुई जो उहुद की लड़ाई के नाम से मशहूर है। इस जंग के लिए नबी (सल्ल०) के साथ एक हज़ार आदमी मदीना से निकले थे, मगर रास्ते में से तीन

सौ मुनाफ़िक़ यकायक अलग होकर मदीना की तरफ़ पलट गए और सात सौ आदमी नबी (सल्ल०) के साथ रह गए थे, उनमें भी मुनाफ़िक़ों की एक छोटी-सी पार्टी शामिल रही, जिसने जंग के दौरान में मुसलमानों के बीच फ़ितना पैदा करने की हर मुमकिन कोशिश की। यह पहला मौक़ा था जब मालूम हुआ कि मुसलमानों के अपने घर में इतनी बड़ी तादाद में आस्तीन के साँप मौजूद हैं और इस तरह वे बाहर के दुश्मनों से मिलकर ख़ुद अपने भाई-बन्दों को नुक़सान पहुँचाने पर तुले हुए हैं।

(4) उहुद की लड़ाई में मुसलमानों की जो हार हुई, उसमें हालाँकि मुनाफ़िक़ों की चालों का एक बड़ा रोल था, लेकिन इसके साथ मुसलमानों की अपनी कमज़ोरियों का हिस्सा भी कुछ कम न था, और यह एक क़ुदरती बात थी कि सोचने के ख़ास ढंग और अख़लाक़ के एक ख़ास निज़ाम पर जो जमाअत अभी ताज़ा-ताज़ा ही बनी थी, जिसकी अख़लाक़ी तरबियत अभी मुकम्मल न हो सकी थी और जिसे अपने अक़ीदे और तरीक़े की हिमायत में लड़ने का एक दूसरा ही मौक़ा पेश आया था उसके काम में कुछ कमज़ोरियाँ भी ज़ाहिर होतीं। इसलिए यह ज़रूरत पेश आई कि लड़ाई के बाद इस लड़ाई की पूरी दास्तान का एक तफ़सीली जाइज़ा लिया जाए और इसमें इस्लामी पहलुओं से जो कमज़ोरियाँ मुसलमानों के भीतर पाई गई थीं, उनमें से एक-एक की निशानदेही करके उसके सुधार के बारे में हिदायतें दी जाएँ। इस सिलसिले में यह बात नज़र में रखने लायक़ है कि इस लड़ाई पर क़ुरआन के जाइज़े उन जाइज़ों से कितने अलग हैं जो दुनिया के फ़ौजी ज़िम्मेदार अपनी लड़ाइयों के बाद लिया करते हैं।

☆☆☆

(آیاتها ۲۰۰) (۳) سُوْرَةُ آلِ عِمْرٰنَ مَدَنِيَّةٌ (۸۹) (رکوعاتها ۲۰)

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

الٓمّٓ ۝ اللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الْحَيُّ الْقَيُّوْمُ ۝ نَزَّلَ
عَلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ
وَاَنْزَلَ التَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ ۝ مِنْ قَبْلُ هُدًى
لِّلنَّاسِ وَاَنْزَلَ الْفُرْقَانَ ۗ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِ

3. आले-इमरान

(मदीना में उतरी, आयतें-200)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) अलिफ़-लाम-मीम, (2) अल्लाह, वह ज़िन्दा-ए-जावेद (हमेशा रहनेवाली) हस्ती जो कायनात के निज़ाम को सँभाले हुए है, हक़ीक़त में उसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं है।[1]

(3, 4) (ऐ नबी!) उसने तुमपर यह किताब उतारी, जो हक़ लेकर आई है और उन किताबों की तसदीक़ (पुष्टि) कर रही है जो पहले से आई हुई थीं। इससे पहले वह इनसानों की हिदायत और रहनुमाई के लिए तौरात और इंजील उतार चुका है[2], और उसने वह कसौटी उतारी है (जो हक़ और बातिल का फ़र्क़ दिखानेवाली है)। अब जो

1. इसका मतलब समझने के लिए देखिए सूरा-2, (अल-बक़रा) हाशिया-278।
2. आमतौर से लोग तौरात से मुराद बाइबल के पुराने नियम (Old Testament) की शुरू की पाँच किताबें और इंजील से मुराद नए नियम (New Testament) की चार मशहूर किताबें ले लेते हैं। इस वजह से यह उलझन पेश आती है कि क्या हक़ीक़त में ये किताबें अल्लाह का कलाम हैं? और क्या हक़ीक़त में क़ुरआन उन सब बातों की तसदीक़ (पुष्टि) करता है जो उनमें लिखी हुई हैं? लेकिन असल हक़ीक़त यह है कि तौरात बाइबल के पुराने नियम की पहली पाँच

किताबों का नाम नहीं है, बल्कि वह उनके अन्दर दर्ज है और इंजील नए नियम की चार किताबों का नाम नहीं है, बल्कि वह उनके अन्दर पाई जाती हैं।

असल में तौरात से मुराद वे अहकाम (आदेश एवं निर्देश) हैं जो हज़रत मूसा (अलैहि॰) को पैग़म्बर बनाकर भेजे जाने से लेकर उनके इन्तिक़ाल तक तक़रीबन चालीस साल के दौरान में उनपर नाज़िल हुए। उनमें से दस अहकाम तो वे थे जो अल्लाह ने पत्थर की तख़्तियों पर खोदकर उन्हें दिए थे, बाक़ी बचे अहकाम को हज़रत मूसा (अलैहि॰) ने लिखवाकर उसकी 12 नक़लें बनी-इसराईल के 12 क़बीलों को दे दी थीं और एक नक़ल बनी-लावी (लावी के वंशज) के सुपुर्द की थी, ताकि वे उसकी हिफ़ाज़त करें। इसी किताब का नाम 'तौरात' था। यह एक मुकम्मल किताब की हैसियत से बैतुल-मक़्दिस की पहली तबाही के वक़्त तक महफ़ूज़ थी। इसकी एक कॉपी जो बनी-लावी के सुपुर्द की गई थी, पत्थर की तख़्तियों के साथ, अहद के सन्दूक़ में रख दी गई थी और बनी-इसराईल उसको तौरात ही के नाम से जानते थे। लेकिन उससे उनकी लापरवाही इस हद तक पहुँच गई थी कि यहूदिया के बादशाह यूसिआ के दौर में, जब हैकले-सुलैमानी की मरम्मत हुई तो इत्तिफ़ाक़ से सरदार काहिन (यानी हैकल के सज्जादानशीन और क़ौम के सबसे बड़े मज़हबी पेशवा) ख़िलकियाह को एक जगह तौरात रखी हुई मिल गई और उसने एक अजूबे की तरह उसे शाही मुंशी (राजमन्त्री) को दिया और शाही मुंशी ने उसे ले जाकर बादशाह के सामने इस तरह पेश किया, जैसे उसपर एक अजीब राज़ (रहस्य) खुल गया है। (देखिए — बाइबल, 2 राजा 22 : 8-13)। यही वजह है कि जब बख़्त नस्सर ने यरूशलम जीता और हैकल समेत शहर की ईंट से ईंट बजा दी तो बनी-इसराईल ने तौरात के वे असल नुस्खे, जो उनके यहाँ भुला दिए गए थे और बहुत ही थोड़ी तादाद में थे, हमेशा के लिए गुम कर दिए। फिर जब अज़रा काहिन (उज़ैर) के ज़माने में बनी-इसराईल के बचे-खुचे लोग बाबिल की क़ैद से वापस यरूशलम आए और दोबारा बैतुल-मक़्दिस तामीर किया गया तो अज़रा ने अपनी क़ौम के कुछ दूसरे बुज़ुर्गों की मदद से बनी-इसराईल का पूरा इतिहास लिखा, जो इस वक़्त बाइबल की पहली सतरह किताबों पर मुश्तमिल (आधारित) है। इस इतिहास के चार बाब, यानी निर्गमन, लैव्यव्यवस्था, गिनती और व्यवस्थाविवरण हज़रत मूसा (अलैहि॰) की सीरत (जीवनी) पर मुश्तमिल हैं और इस सीरत ही में नाज़िल होने की तारीख़ की तरतीब के मुताबिक़ तौरात की वे आयतें भी मौक़े के लिहाज़ से दर्ज कर दी गई हैं जो अज़रा और उनके मददगार बुज़ुर्गों को मिल सकीं। तो हक़ीक़त में अब तौरात उन बिखरे हुए हिस्सों का नाम है जो मूसा (अलैहि॰) की सीरत के अन्दर पाए जाते हैं। हम इन्हें सिर्फ़ इस अलामत से पहचान सकते हैं कि इस तारीख़ी बयान के दौरान में जहाँ कहीं मूसा (अलैहि॰) की सीरत का लिखनेवाला कहता है कि ख़ुदा ने मूसा से यह कहा या मूसा ने कहा कि 'ख़ुदावन्द तुम्हारा ख़ुदा यह कहता है' वहाँ से तौरात का एक हिस्सा शुरू होता है और जहाँ फिर से सीरत की तक़रीर शुरू हो जाती है वहाँ वह हिस्सा ख़त्म हो जाता है। बीच में जहाँ कहीं कोई चीज़ बाइबल के लिखनेवाले ने तशरीह (व्याख्या) के तौर पर बढ़ा दी है, वहाँ एक आम आदमी के लिए यह फ़र्क़ करना सख़्त मुश्किल है कि क्या यह असल तौरात का हिस्सा है या उसकी शरह (व्याख्या) और तशरीह। फिर भी जो लोग आसमानी किताबों में गहरी निगाह रखते हैं वे एक हद तक सही तौर

اللّٰهِ لَهُمْ عَذَابٌ شَدِيدٌ ۗ وَاللّٰهُ عَزِيزٌ ذُو انْتِقَامٍ ۝

लोग अल्लाह के आदेशों को क़बूल करने से इनकार करें, उनको यक़ीनन सख़्त सज़ा मिलेगी। अल्लाह बेपनाह ताक़त का मालिक है और बुराई का बदला देनेवाला है।

पर यह मालूम कर सकते हैं कि इन हिस्सों में कहाँ-कहाँ तफ़सीर और मतलब वाज़ेह करते हुए अपनी तरफ़ से बहुत-सी बातें बढ़ा दी गई हैं।

क़ुरआन इन्हीं बिखरे हुए हिस्सों को 'तौरात' कहता है और इन्हीं की वह तसदीक़ (पुष्टि) करता है, और सच तो यह है कि इन हिस्सों को जमा करके जब क़ुरआन से मिलाकर इनको देखा जाता है तो, सिवाए इसके कि कहीं-कहीं पर छोटी-छोटी बातों में इख़्तिलाफ़ है, उसूली बातों में दोनों किताबों के दरमियान बाल बराबर भी फ़र्क़ नहीं पाया जाता। देखनेवाला कोई शख़्स आज भी साफ़ तौर पर महसूस कर सकता है कि ये दोनों तालीमात एक ही जगह से आई हुई हैं।

इसी तरह इंजील असल में नाम है उन इल्हामी ख़ुतबों और बातों का जो मसीह (अलैहि॰) ने अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी ढाई-तीन सालों में नबी की हैसियत से कही थीं। वे पाक कलिमात आपकी ज़िन्दगी में लिखे और मुरत्तब किए गए थे या नहीं, इस सिलसिले में मालूमात का अब हमारे पास कोई ज़रीआ नहीं है। मुमकिन है कि कुछ लोगों ने उन्हें नोट कर लिया हो और मुमकिन है कि सुननेवाले कुछ शागिर्दों ने उनको ज़बानी याद कर रखा हो। बहरहाल एक मुद्दत के बाद जब मसीह (अलैहि॰) की सीरत पर बहुत-सी किताबें लिखी गईं तो उनमें तारीख़ी बयान के साथ-साथ जगह-जगह वे ख़ुतबे और बातें भी मौक़े के लिहाज़ से दर्ज कर दी गईं जो इन किताबों के लिखनेवालों तक ज़बानी रिवायतों और लिखी हुई याद्दाश्तों के ज़रीए से पहुँची थीं। आज मत्ती, मरक़ुस, लूक़ा और यूहन्ना की जिन किताबों को 'इंजील' कहा जाता है, अस्ल में इंजील वे नहीं हैं, बल्कि इंजील हज़रत ईसा के वे कथन हैं जो उनके अन्दर दर्ज हैं। हमारे पास इनको पहचानने और सीरत (जीवनी) के लिखनेवालों के अपने कलाम से उनको अलग करने का इसके सिवा कोई ज़रीआ नहीं है कि जहाँ सीरत का लिखनेवाला यह कहता है कि 'मसीह ने यह कहा या लोगों को यह तालीम दी' सिर्फ़ वही मक़ाम अस्ल इंजील के हिस्से हैं। क़ुरआन इन्हीं सब हिस्से के मजमूए को 'इंजील' कहता है और इन्हीं की वह तस्दीक़ करता है। आज कोई शख़्स जगह-जगह बिखरे हुए इन हिस्सों को तरतीब देकर क़ुरआन से उनको मिलाकर देखे तो वह दोनों में बहुत ही कम फ़र्क़ पाएगा, और जो थोड़ा-बहुत फ़र्क़ महसूस होगा तो उसको भी तास्सुब के बग़ैर ग़ौर-फ़िक्र के बाद बहुत ही आसानी से दूर किया जा सकता है।

إِنَّ اللَّهَ لَا يَخْفَىٰ عَلَيْهِ شَيْءٌ فِي الْأَرْضِ وَلَا فِي
السَّمَاءِ ۝ هُوَ الَّذِي يُصَوِّرُكُمْ فِي الْأَرْحَامِ كَيْفَ
يَشَاءُ ۚ لَا إِلَٰهَ إِلَّا هُوَ الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ ۝٦ هُوَ
الَّذِي أَنْزَلَ عَلَيْكَ الْكِتَابَ مِنْهُ آيَاتٌ مُحْكَمَاتٌ

(5) ज़मीन और आसमान की कोई चीज़ अल्लाह से छिपी नहीं।[3] (6) वही तो है जो तुम्हारी माओं के पेट में तुम्हारी शक्लें, जैसी चाहता है, बनाता है।[4] उस ज़बरदस्त हिक्मतवाले के सिवा कोई और ख़ुदा नहीं है। (7) वही ख़ुदा है, जिसने यह किताब तुमपर उतारी है। इस किताब में दो तरह की आयतें हैं, एक मुह्कमात[5], जो किताब की

---

3. यानी वह कायनात की तमाम हक़ीक़तों का जाननेवाला है, इसलिए जो किताब उसने उतारी हो वह सरासर हक़ ही होनी चाहिए, बल्कि ख़ालिस हक़ सिर्फ़ उसी किताब में इनसान को मिल सकता है जो उस सब कुछ जाननेवाले और समझ-बूझ रखनेवाली हस्ती की तरफ़ से नाज़िल हो।

4. इसमें दो अहम हक़ीक़तों की तरफ़ इशारा है। एक यह कि तुम्हारी फ़ितरत को जैसा वह जानता है, न कोई दूसरा जान सकता है, न तुम ख़ुद जान सकते हो। इसलिए उसकी रहनुमाई पर भरोसा किए बिना तुम्हारे लिए कोई चारा नहीं है। दूसरे यह कि जिसने तुम्हारे हम्ल (गर्भ) ठहरने से लेकर बाद के मरहलों तक हर मौक़े पर तुम्हारी छोटी से छोटी ज़रूरतों तक को पूरा करने का ध्यान रखा, किस तरह मुमकिन था कि वह दुनिया की ज़िन्दगी में तुम्हारी हिदायत और रहनुमाई का इन्तिज़ाम न करता, हालाँकि तुम सबसे बढ़कर अगर किसी चीज़ के मुहताज हो तो वह यही है।

5. 'मुह्कम' पक्की और पुख़्ता चीज़ को कहते हैं। 'मुह्कम आयतों' से मुराद वे आयतें हैं जिनकी ज़बान (भाषा) बिल्कुल साफ़ है, जिनका मतलब तय करने में किसी शक या शुब्ह की गुंजाइश नहीं है, जिनके लफ़्ज़, मानी और मफ़हूम को साफ़ तौर पर वाज़ेह (स्पष्ट) करते हैं, जिनसे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ ग़लत मतलब निकालने का मौक़ा मुश्किल ही से किसी को मिल सकता है। ये आयतें "किताब की असूल बुनियाद हैं।" यानी क़ुरआन जिस मक़सद के लिए उतरा है उस मक़सद को यही आयतें पूरा करती हैं। इन्हीं में इस्लाम की तरफ़ दुनिया को दावत दी गई है, इन्हीं में इबरत और नसीहत की बातें कही गई हैं, इन्हीं में गुमराहियों की तरदीद (खण्डन) की गई है और सीधे रास्ते को वाज़ेह किया गया है। इन्हीं में दीन के बुनियादी उसूल बयान किए गए हैं। इन्हीं में अक़ीदों, इबादतों, अख़लाक़, फ़राइज़ (अनिवार्य कर्मों) और भलाइयों को करने और बुराइयों से रुकने के अहकाम दिए गए हैं। इसलिए जो शख़्स हक़ को अपनाना चाहता हो और यह जानने के लिए क़ुरआन की तरफ़ पलटना चाहता हो कि वह किस

هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ وَاُخَرُ مُتَشٰبِهٰتٌ ؕ فَاَمَّا الَّذِيْنَ
فِيْ قُلُوْبِهِمْ زَيْغٌ فَيَتَّبِعُوْنَ مَا تَشَابَهَ مِنْهُ ابْتِغَآءَ

असल बुनियाद हैं और दूसरी मुतशाबिहात[6]। जिन लोगों के दिलों में टेढ़ है, वे फ़ितने की

रास्ते पर चले और किस रास्ते पर न चले, उसको अपनी इस प्यास को बुझाने के लिए इन्हीं मुहकम आयतों ही की तरफ़ रुजू करना होगा और फ़ितरी तौर पर उसकी सारी तवज्जोह इन्हीं आयतों पर मरकूज़ (केन्द्रित) होगी, और ज़्यादातर उन्हीं से फ़ायदा उठाने में वह लगा होगा।

6. 'मुतशाबिहात' यानी वे आयतें जिनके मानी और मतलब निकालने में ग़लती या शक की गुंजाइश है।

यह ज़ाहिर है कि इनसान के लिए ज़िन्दगी का कोई रास्ता तय नहीं किया जा सकता, जब तक कायनात की हक़ीक़त, इसकी शुरुआत और अंजाम और इसमें इनसान की हैसियत और ऐसी ही दूसरी बुनियादी हक़ीक़तों के बारे में कम-से-कम ज़रूरी मालूमात इनसान को न दी जाएँ। और यह भी ज़ाहिर है कि जो चीज़ें इनसान के शुऊर (चेतना) से परे हैं, जो इनसानी इल्म की पकड़ में न कभी आई हैं और न आ सकती हैं, जिनको उसने न कभी देखा, न छुआ और न चखा है, उनके लिए इनसानी ज़बान में न ऐसे अलफ़ाज़ मिल सकते हैं जो उन्हीं के लिए बनाए गए हों और न बयान करने के ऐसे अन्दाज़ मिल सकते हैं जिनसे हर सुननेवाले के ज़ेहन में उनकी सही तस्वीर खिंच जाए। यक़ीनी तौर पर यह ज़रूरी है कि इस तरह की बातों को बयान करने के लिए ऐसे अलफ़ाज़ और बयान करने के ऐसे अन्दाज़ इस्तेमाल किए जाएँ जो असल हक़ीक़त से ज़्यादा से ज़्यादा मिलती-जुलती महसूस चीज़ों के लिए इनसानी ज़बान में पाए जाते हैं। इसलिए इनसान के शुऊर से परे की इन हक़ीक़तों के बयान में क़ुरआन के अन्दर ऐसी ही ज़बान इस्तेमाल की गई है। और मुतशाबिहात से मुराद वे आयतें हैं जिनमें यह ज़बान इस्तेमाल हुई है।

लेकिन इस ज़बान का ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा बस इतना ही हो सकता है कि आदमी को हक़ीक़त के क़रीब तक पहुँचा दे या उसका एक धुँधला-सा तसव्वुर पैदा कर दे। ऐसी आयतों के मतलब या मानी को तय करने की जितनी ज़्यादा कोशिश की जाएगी, उतना ही ज़्यादा शक व शुब्हे में इनसान पड़ेगा, यहाँ तक कि वह सच्चाई से क़रीबतर होने के बजाय और ज़्यादा दूर होता चला जाएगा। इसलिए जो लोग हक़ को जानना और उस पर चलना चाहते हैं और बेकार की बातों में दिलचस्पी नहीं रखते, वे तो मुतशाबिह आयतों से हक़ीक़त के उस धुँधले तसव्वुर पर बस (सन्तोष) कर लेते हैं, जो काम चलाने के लिए काफ़ी है और अपनी सारी तवज्जोह मुहकम आयतों पर लगा देते हैं। मगर जो लोग बेकार की बातों में दिलचस्पी रखनेवाले या फ़ितना पैदा करनेवाले होते हैं, उनका तमामतर काम मुतशाबिह आयतों पर बहस और तबसिरा व सवाल-जवाब करना होता है।

الْفِتْنَةِ وَابْتِغَاءَ تَأْوِيلِهِ ۚ وَمَا يَعْلَمُ تَأْوِيلَهُ إِلَّا
اللَّهُ ۗ وَالرَّاسِخُونَ فِي الْعِلْمِ يَقُولُونَ آمَنَّا بِهِ
كُلٌّ مِنْ عِنْدِ رَبِّنَا ۗ وَمَا يَذَّكَّرُ إِلَّا أُولُو الْأَلْبَابِ ۝٧
رَبَّنَا لَا تُزِغْ قُلُوبَنَا بَعْدَ إِذْ هَدَيْتَنَا وَهَبْ
لَنَا مِنْ لَدُنْكَ رَحْمَةً ۚ إِنَّكَ أَنْتَ الْوَهَّابُ ۝٨
رَبَّنَا إِنَّكَ جَامِعُ النَّاسِ لِيَوْمٍ لَا رَيْبَ فِيهِ ۚ

तलाश में हमेशा मुतशाबिहात ही के पीछे पड़े रहते हैं और उनका (मनमाना) मतलब निकालने की कोशिश किया करते हैं, हालाँकि उनका सही मतलब अल्लाह के सिवा कोई नहीं जानता। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग इल्म में पुख़्ता हैं, वे कहते हैं कि "हमारा उनपर ईमान है, ये सब हमारे रब ही की तरफ़ से हैं[7]।" और सच यह है कि किसी चीज़ से सही सबक़ सिर्फ़ सूझ-बूझवाले लोग ही हासिल करते हैं। (8) वे अल्लाह से दुआ करते रहते हैं कि "पालनहार! जब तू हमें सीधे रास्ते पर लगा चुका है तो फिर कहीं हमारे दिलों में टेढ़ न पैदा कर देना। हमें अपने ख़ज़ान-ए-फ़ैज़ (कृपा-भंडार) से रहमत अता कर कि तू ही असल दाता है। (9) पालनहार! तू यक़ीनन सब लोगों को एक दिन जमा

---

7. यहाँ किसी को यह शक न हो कि जब वे लोग मुतशाबिह आयतों का सही मतलब जानते ही नहीं तो उनपर ईमान कैसे ले आए। हक़ीक़त यह है कि एक समझदार आदमी को क़ुरआन के अल्लाह का कलाम होने का यक़ीन मुहकम आयतों के देखने और समझने से ही हासिल होता है, न कि मुतशाबिह आयतों की तावीलों और उनका मतलब समझ लेने से। और जब मुहकम आयतों में ग़ौर-फ़िक्र करने से उसको यह इतमीनान हासिल हो जाता है कि यह किताब सचमुच अल्लाह ही की किताब है, तो फिर मुतशाबिह आयतें उसके दिल में कोई शक या बेचैनी पैदा नहीं करतीं। जहाँ तक उनका सीधा-सादा मतलब उसकी समझ में आ जाता है, उसको वह ले लेता है और जहाँ कुछ मुश्किल या पेचीदगी सामने आती है, वहाँ खोज लगाने और बाल की खाल निकालने के बजाय वह अल्लाह के कलाम पर मुजमल ईमान लाकर (यानी उसकी तफ़सील में जाए बग़ैर उसको तस्लीम करके) अपनी तवज्जोह काम की बातों की तरफ़ फेर देता है।

إِنَّ اللَّهَ لَا يُخْلِفُ الْمِيعَادَ ۝٩ إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا
لَن تُغْنِيَ عَنْهُمْ أَمْوَالُهُمْ وَلَا أَوْلَادُهُم مِّنَ
اللَّهِ شَيْئًا ۖ وَأُولَٰئِكَ هُمْ وَقُودُ النَّارِ ۝١٠ كَدَأْبِ آلِ
فِرْعَوْنَ ۙ وَالَّذِينَ مِن قَبْلِهِمْ ۚ كَذَّبُوا بِآيَاتِنَا
فَأَخَذَهُمُ اللَّهُ بِذُنُوبِهِمْ ۗ وَاللَّهُ شَدِيدُ الْعِقَابِ ۝١١
قُل لِّلَّذِينَ كَفَرُوا سَتُغْلَبُونَ وَتُحْشَرُونَ إِلَىٰ
جَهَنَّمَ ۚ وَبِئْسَ الْمِهَادُ ۝١٢ قَدْ كَانَ لَكُمْ آيَةٌ
فِي فِئَتَيْنِ الْتَقَتَا ۖ فِئَةٌ تُقَاتِلُ فِي سَبِيلِ اللَّهِ

करनेवाला है, जिसके आने में कोई शक नहीं। तू हरगिज़ अपने वादे से टलनेवाला नहीं है।''

(10) जिन लोगों ने कुफ़्र (इनकार) का रवैया अपनाया है[8], उन्हें अल्लाह के मुक़ाबले में न उनका माल कुछ काम देगा, न औलाद। वे दोज़ख़ का ईंधन बनकर रहेंगे। (11) उनका अंजाम वैसा ही होगा जैसा कि फ़िरऔन के साथियों और उनसे पहले के नाफ़रमानों का हो चुका है कि उन्होंने अल्लाह की आयतों को झुठलाया। नतीजा यह हुआ कि अल्लाह ने उनके गुनाहों पर उन्हें पकड़ लिया; और सच यह है कि अल्लाह सख़्त सज़ा देनेवाला है। (12) तो ऐ नबी! जिन लोगों ने तुम्हारे पैग़ाम को क़बूल करने से इनकार कर दिया है, उनसे कह दो कि क़रीब है वह वक़्त जब तुम मग़लूब (परास्त) और महकूम हो जाओगे और जहन्नम की तरफ़ हाँके जाओगे, और जहन्नम बड़ा ही बुरा ठिकाना है। (13) तुम्हारे लिए उन दो गरोहों में इबरत की एक (शिक्षाप्रद) निशानी थी,

---

8. इस बात को तफ़सील से जानने के लिए देखिए सूरा-2, (बक़रा), हाशिया 161।

وَاُخْرٰى كَافِرَةٌ يَّرَوْنَهُمْ مِّثْلَيْهِمْ رَاْيَ الْعَيْنِ ۭ
وَاللّٰهُ يُؤَيِّدُ بِنَصْرِهٖ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ
لَعِبْرَةً لِّاُولِي الْاَبْصَارِ ﴿١٣﴾ زُيِّنَ لِلنَّاسِ حُبُّ

जिन्होंने (बद्र में) एक-दूसरे से जंग की। एक गरोह अल्लाह की राह में लड़ रहा था और दूसरा गरोह (हक़ का) इनकारी था। देखनेवाले सर की आँखों से देख रहे थे कि (हक़ का) इनकारी गरोह ईमानवाले गरोह से दो गुना है।[9] मगर (नतीजे ने साबित कर दिया कि) अल्लाह अपनी फ़तह और नुसरत (सहायता) से जिसको चाहता है, मदद देता है। आँखें खुली रखनेवालों के लिए इसमें बड़ा सबक़ छिपा हुआ है।[10]

(14) लोगों के लिए मनपसन्द चीज़ें—औरतें, औलाद, सोने-चाँदी के ढेर, चुने हुए

9. हालाँकि हक़ीक़त में फ़र्क़ तो तीन गुना था, लेकिन सरसरी निगाह से देखनेवाला भी यह महसूस किए बिना तो नहीं रह सकता था कि दुश्मनों का लश्कर मुसलमानों से दोगुना है।

10. बद्र की लड़ाई का वाक़िआ उस वक़्त क़रीबी ज़माने में ही पेश आ चुका था। इसलिए उसके वाज़ेह वाक़िआत और नतीजों की तरफ़ इशारा करके लोगों को इबरत दिलाई गई है। इस लड़ाई में तीन बातें बहुत ही सबक़-आमोज़ (शिक्षाप्रद) थीं—

एक यह कि मुसलमान और इस्लाम-दुश्मन जिस शान से एक-दूसरे के मुक़ाबले में आए थे, उससे दोनों का अख़लाक़ी फ़र्क़ साफ़ ज़ाहिर हो रहा था। एक तरफ़ इस्लाम-दुश्मनों के लश्कर में शराबों के दौर चल रहे थे, नाचने और गानेवाली लौंडियाँ साथ आई थीं और ख़ूब मौज-मस्ती की जा रही थी। दूसरी तरफ़ मुसलमानों के लश्कर में परहेज़गारी थी, अल्लाह का डर था, इन्तिहा दरजे का अख़लाक़ी कंट्रोल था, नमाज़ें थीं और रोज़े थे। बात-बात पर ख़ुदा का नाम था और ख़ुदा ही के आगे दुआएँ और गुज़ारिशें (प्रार्थनाएँ) की जा रही थीं। दोनों फ़ौजों को देखकर हर आदमी आसानी से जान सकता था कि दोनों में से कौन अल्लाह की राह में लड़ रहा है।

दूसरी यह कि मुसलमान अपनी कम तादाद और जंगी सामानों की कमी के बावजूद दुश्मनों की भारी तादाद और बेहतर हथियार रखनेवाली फ़ौज के मुक़ाबले में जिस तरह कामयाब हुए उससे साफ़ मालूम हो गया था कि उनको अल्लाह की मदद हासिल थी।

तीसरी यह कि अल्लाह की ग़ालिब ताक़त से बेपरवाह होकर जो लोग अपने सरो-सामान और अपने हामियों की भारी तादाद पर फूले हुए थे, उनके लिए यह वाक़िआ एक धमकी थी कि अल्लाह किस तरह कुछ मुफ़लिस, बेहाल, परदेसी मुहाजिरों और मदीना के किसानों के एक मुट्ठी भर गरोह के ज़रीए से क़ुरैश जैसे क़बीले को शिकस्त दिलवा सकता है, जो तमाम अरब का सरताज था।

الشَّهَوٰتِ مِنَ النِّسَآءِ وَالْبَنِيْنَ وَالْقَنَاطِيْرِ الْمُقَنْطَرَةِ
مِنَ الذَّهَبِ وَالْفِضَّةِ وَالْخَيْلِ الْمُسَوَّمَةِ وَ
الْاَنْعَامِ وَالْحَرْثِ ؕ ذٰلِكَ مَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ
وَاللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الْمَاٰبِ ۝١٤ قُلْ اَؤُنَبِّئُكُمْ
بِخَيْرٍ مِّنْ ذٰلِكُمْ ؕ لِلَّذِيْنَ اتَّقَوْا عِنْدَ رَبِّهِمْ
جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا
وَاَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ وَّرِضْوَانٌ مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ
بَصِيْرٌۢ بِالْعِبَادِ ۝١٥ ۚ اَلَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اِنَّنَآ اٰمَنَّا

घोड़े, मवेशी और खेती की ज़मीनें—बड़ी सुहावनी बना दी गई हैं, मगर ये सब दुनिया के कुछ दिनों की ज़िन्दगी के सामान हैं। हक़ीक़त में जो बेहतर ठिकाना है, वह तो अल्लाह के पास है। (15) कहो : मैं तुम्हें बताऊँ कि इनसे ज़्यादा अच्छी चीज़ क्या है? जो लोग तक़वा और परहेज़गारी का रवैया अपनाएँ उनके लिए उनके रब के पास बाग़ हैं, जिनके नीचे नहरें बहती होंगी। वहाँ उन्हें हमेशगी की ज़िन्दगी हासिल होगी, पाकीज़ा बीवियाँ उनकी रफ़ीक़ (साथी) होंगी[11] और अल्लाह की ख़ुशनूदी (प्रसन्नता) उन्हें हासिल होगी। अल्लाह अपने बन्दों के रवैये पर गहरी नज़र रखता है।[12] (16) ये वे लोग हैं जो कहते हैं कि "मालिक! हम ईमान लाए, हमारी ख़ताओं को माफ़ कर और हमें दोज़ख़ की

---

11. इस को समझने के लिए देखिए सूरा-2 (बक़रा) हाशिया-27।
12. यानी अल्लाह ग़लत तरीक़े से देनेवाला नहीं है और न सरसरी और ऊपरी तौर पर फ़ैसला करनेवाला है। वह बन्दों के अमल और कामों को और उनकी नीयतों और इरादों को ख़ूब जानता है। उसे अच्छी तरह मालूम है कि बन्दों में से कौन उसके इनाम का हक़दार है और कौन नहीं।

فَاغْفِرْلَنَا ذُنُوْبَنَا وَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ﴿١٦﴾ اَلصّٰبِرِيْنَ وَ
الصّٰدِقِيْنَ وَالْقٰنِتِيْنَ وَالْمُنْفِقِيْنَ وَالْمُسْتَغْفِرِيْنَ
بِالْاَسْحَارِ ﴿١٧﴾ شَهِدَ اللّٰهُ اَنَّهٗ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۙ وَ
الْمَلٰٓئِكَةُ وَاُولُوا الْعِلْمِ قَآئِمًۢا بِالْقِسْطِ ۭ لَآ اِلٰهَ اِلَّا

आग से बचा ले।" (17) ये लोग सब्र करनेवाले हैं[13], सच्चे हैं, फ़रमाँबरदार और फ़ैयाज़ (दानी) हैं और रात की आख़िरी घड़ियों में अल्लाह से मग़फ़िरत की दुआएँ माँगा करते हैं।

(18) अल्लाह ने ख़ुद इस बात की गवाही दी है कि उसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं है[14] और फ़रिश्ते और सब इल्म रखनेवाले भी सच्चाई और इनसाफ़ के साथ इसपर गवाह हैं[15]

---

13. यानी हक़ की राह में पूरी मज़बूती से जमे रहनेवाले हैं। किसी नुक़सान या मुसीबत से हिम्मत नहीं हारते, किसी नाकामी से इनका दिल नहीं टूटता, किसी लालच से ये फिसल नहीं जाते और ऐसी हालत में भी ये हक़ का दामन मज़बूती से थामे रहते हैं जबकि ज़ाहिर में उसकी कामयाबी की कोई उम्मीद नज़र नहीं आती हो। [देखिए सूरा-2 (बक़रा), हाशिया-60]

14. यानी अल्लाह जो कायनात (सृष्टि) की तमाम हक़ीक़तों का सीधे तौर पर इल्म रखता है, जो तमाम चीज़ों को बे परदा देख रहा है, जिसकी निगाह से ज़मीन और आसमान की कोई चीज़ छिपी हुई नहीं है यह उसकी गवाही है – और उससे बढ़कर भरोसेमन्द चश्मदीद गवाही और किसकी होगी – कि पूरे आलमे-वुजूद में उसकी अपनी हस्ती के सिवा कोई ऐसी हस्ती नहीं है जो ख़ुदाई की सिफ़ात रखती हो, ख़ुदाई ताक़त की मालिक हो और ख़ुदाई के हुक़ूक़ की हक़दार हो।

15. अल्लाह के बाद सबसे ज़्यादा भरोसेमन्द गवाही फ़रिश्तों की है, क्योंकि वे कायनात की सल्तनत के इन्तिज़ामी कारिन्दे हैं और वे सीधे तौर पर अपने ख़ुद के इल्म की बुनियाद पर गवाही दे रहे हैं कि इस सल्तनत में अल्लाह के सिवा किसी का हुक्म नहीं चलता और उसके सिवा कोई हस्ती ऐसी नहीं है जिसकी तरफ़ ज़मीन और आसमान के इन्तिज़ामी मामलों में वे रुजू करते हों। इसके बाद मख़लूक़ में से जिन लोगों को भी हक़ीक़तों (तथ्यों) का थोड़ा या बहुत इल्म हासिल हुआ है, उन सबकी शुरू से लेकर आज तक यह मुत्तफ़क़ा (सर्वसम्मत) गवाही रही है कि एक ही ख़ुदा इस पूरी कायनात का मालिक और हाकिम है।

هُوَ الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ ﴿١٨﴾ إِنَّ الدِّينَ عِندَ اللَّهِ الْإِسْلَامُ ۗ
وَمَا اخْتَلَفَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ إِلَّا مِن بَعْدِ
مَا جَاءَهُمُ الْعِلْمُ بَغْيًا بَيْنَهُمْ ۗ وَمَن يَكْفُرْ
بِآيَاتِ اللَّهِ فَإِنَّ اللَّهَ سَرِيعُ الْحِسَابِ ﴿١٩﴾ فَإِنْ

कि उस ज़बरदस्त हिकमतवाले के सिवा हक़ीक़त में कोई ख़ुदा नहीं है। (19) अल्लाह के नज़दीक दीन सिर्फ़ इस्लाम[16] है। इस दीन से हटकर जो बहुत-से तरीक़े उन लोगों ने अपनाए, जिन्हें किताब दी गई थी, उनके इस रवैये की कोई वजह इसके सिवा न थी कि उन्होंने इल्म आ जाने के बाद आपस में एक-दूसरे पर ज़ुल्म करने के लिए ऐसा किया[17], और जो कोई अल्लाह के हुक्मों और हिदायतों को मानने से इनकार कर दे, अल्लाह को उससे हिसाब लेते कुछ देर नहीं लगती। (20) (ऐ नबी!) अब अगर ये लोग तुमसे झगड़ा

16. यानी अल्लाह के नज़दीक इनसान के लिए सिर्फ़ एक ही निज़ामे-ज़िन्दगी और ज़िन्दगी गुज़ारने का एक ही तरीक़ा सही और ठीक है। और वह यह है कि इनसान अल्लाह को अपना मालिक व माबूद (उपास्य) माने और उसकी बन्दगी व ग़ुलामी में अपने आपको बिलकुल सुपुर्द कर दे और उसकी बन्दगी करने का तरीक़ा ख़ुद से न गढ़े, बल्कि उसने अपने पैग़म्बरों के ज़रीए से जो हिदायत और रहनुमाई भेजी है, बिना कुछ घटाए-बढ़ाए सिर्फ़ उसी की पैरवी करे। सोचने और अमल करने के इसी तरीक़े का नाम 'इस्लाम' है। और यह बात बिलकुल ठीक और हक़ है कि कायनात का ख़ालिक़ व मालिक अपनी मख़लूक़ और रिआया के लिए इस इस्लाम के सिवा किसी दूसरे तरीक़े को जाइज़ न माने। आदमी अपनी बेवक़ूफ़ी और नासमझी से अपने आपको (ख़ुदा का इनकार) से लेकर शिर्क व बुतपरस्ती तक हर नज़रिए और हर मसलक (पंथ) की पैरवी का जाइज़ हक़दार समझ सकता है, मगर कायनात के बादशाह (अल्लाह) की निगाह में तो यह खुली बग़ावत है।

17. मतलब यह है कि अल्लाह की तरफ़ से जो पैग़म्बर भी दुनिया के किसी कोने और किसी ज़माने में आया है उसका दीन (धर्म) इस्लाम ही था और जो किताब भी दुनिया की किसी ज़बान और किसी क़ौम में उतरी है, उसने इस्लाम ही की तालीम (शिक्षा) दी है। इस असुल दीन (धर्म) को बिगाड़कर और इसमें कमी-बेशी करके जो बहुत-से दीन इनसानों में राइज किए गए, उनके पैदा होने का सबब इसके सिवा कुछ न था कि लोगों ने अपनी जाइज़ हद से बढ़कर हुक़ूक़, फ़ायदे और अपने लिए ख़ास दर्जे हासिल करने चाहे और अपनी ख़ाहिशों के मुताबिक़ असुल दीन के अक़ीदों, उसूलों और हुकमों में फेर-बदल कर डाला।

حَآجُّوكَ فَقُلْ اَسْلَمْتُ وَجْهِيَ لِلّٰهِ وَمَنِ اتَّبَعَنِ ؕ
وَقُلْ لِّلَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ وَالْاُمِّيّٖنَ ءَاَسْلَمْتُمْ ؕ
فَاِنْ اَسْلَمُوْا فَقَدِ اهْتَدَوْا ۚ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا
عَلَيْكَ الْبَلٰغُ ؕ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌۢ بِالْعِبَادِ ۝٢٠ اِنَّ
الَّذِيْنَ يَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَيَقْتُلُوْنَ النَّبِيّٖنَ
بِغَيْرِ حَقٍّ ۙ وَّيَقْتُلُوْنَ الَّذِيْنَ يَاْمُرُوْنَ بِالْقِسْطِ
مِنَ النَّاسِ ۙ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ ۝٢١ اُولٰٓئِكَ

करें तो इनसे कहो, "मैंने और मेरी पैरवी करनेवालों ने तो अल्लाह के आगे अपने आपको डाल दिया है।" फिर किताबवालों से और उन लोगों से, जिनके पास कोई किताब नहीं है, दोनों से पूछो, "क्या तुमने भी उसकी फ़रमाँबरदारी और बन्दगी क़बूल की?"[18] अगर की, तो वे सीधा रास्ता पा गए और अगर उससे मुँह मोड़ा तो तुमपर सिर्फ़ पैग़ाम पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी थी। आगे अल्लाह ख़ुद अपने बन्दों के मामलों को देखनेवाला है।

(21) जो लोग अल्लाह के अहकाम (आदेशों) और हिदायतों को मानने से इनकार करते हैं और उसके पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल करते हैं और ऐसे लोगों की जान लेने के पीछे पड़ जाते हैं जो ख़ुदा के बन्दों में से इनसाफ़ और सच्चाई का हुक्म देने के लिए उठें, उनको दर्दनाक सज़ा की ख़ुशख़बरी सुना दो।[19] (22) ये वे लोग हैं जिनके आमाल

18. दूसरे लफ़्ज़ों में, इस बात को इस तरह समझिए कि "मैं और मेरी पैरवी करनेवाले तो इस ठेठ इस्लाम के क़ायल हो चुके हैं जो ख़ुदा का अस्ल दीन (धर्म) है। अब तुम बताओ कि क्या तुम अपने और अपने बाप-दादाओं की गढ़ी हुई बातों को छोड़कर इस अस्ली और हक़ीक़ी दीन की तरफ़ आते हो?"

19. यह तंज़िया (व्यंग्यपूर्ण) अन्दाज़े-बयान है। मतलब यह है कि अपनी जिन करतूतों पर वे आज बहुत ख़ुश हैं और समझ रहे हैं कि हम बहुत अच्छा काम कर रहे हैं तो उन्हें बता दो कि तुम्हारे इन कामों का अंजाम यह है।

الَّذِيْنَ حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ؗ وَمَا لَهُمْ
مِّنْ نّٰصِرِيْنَ ۝٢٢ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ اُوْتُوْا نَصِيْبًا
مِّنَ الْكِتٰبِ يُدْعَوْنَ اِلٰى كِتٰبِ اللّٰهِ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ
ثُمَّ يَتَوَلّٰى فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ وَهُمْ مُّعْرِضُوْنَ ۝٢٣
ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْا لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ اِلَّآ اَيَّامًا
مَّعْدُوْدٰتٍ ۪ وَّغَرَّهُمْ فِيْ دِيْنِهِمْ مَّا كَانُوْا

(कर्म) दुनिया और आख़िरत दोनों में बर्बाद हो गए[20], और उनका मददगार कोई नहीं है।[21]

(23) तुमने देखा नहीं कि जिन लोगों को किताब के इल्म में से कुछ हिस्सा मिला है, उनका हाल क्या है? उन्हें जब अल्लाह की किताब की तरफ़ बुलाया जाता है ताकि वह उनके बीच फ़ैसला करे[22], तो उनमें से एक गरोह उससे पहलू बचाता है और उस फ़ैसले की तरफ़ आने से मुँह फेर जाता है। (24) उनका यह रवैया इस वजह से है कि वे कहते हैं, ''दोज़ख़ की आग तो हमें छुएगी भी नहीं और अगर दोज़ख़ की सज़ा हमें मिलेगी भी

20. यानी उन्होंने अपनी क़ुव्वतें और कोशिशें ऐसे रास्ते में लगाई हैं जिसका नतीजा दुनिया में भी ख़राब है और आख़िरत में भी ख़राब है।
21. यानी कोई ताक़त ऐसी नहीं है जो उनकी इस ग़लत कोशिश और अमल को अच्छा फल देनेवाला बना सके या कम से कम बुरे अंजाम ही से बचा सके। जिन-जिन ताक़तों पर वे भरोसा रखते हैं कि वे दुनिया में या आख़िरत में या दोनों जगह उनके काम आएँगी; तो उनमें से हक़ीक़त में कोई भी ताक़त उनकी मदद न कर सकेगी।
22. यानी उनसे कहा जाता है कि ख़ुदा की किताब को आख़िरी सनद मान लो, उसके फ़ैसले के आगे सर झुका दो और जो कुछ उसके मुताबिक़ हक़ साबित हो उसे हक़ और जो उसके मुताबिक़ बातिल (ग़लत) साबित हो उसे बातिल तसलीम कर लो। यहाँ यह बात वाज़ेह रहे कि इस जगह पर ख़ुदा की किताब से मुराद तौरात व इंजील हैं और ''किताब के इल्म में से कुछ हिस्सा पानेवालों'' से मुराद यहूदी और ईसाइयों के आलिम (विद्वान) लोग हैं।

يَفْتَرُوْنَ ۝٢٤ فَكَيْفَ إِذَا جَمَعْنٰهُمْ لِيَوْمٍ لَّا رَيْبَ
فِيْهِ ۚ وَوُفِّيَتْ كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا
يُظْلَمُوْنَ ۝٢٥ قُلِ اللّٰهُمَّ مٰلِكَ الْمُلْكِ تُؤْتِي الْمُلْكَ
مَنْ تَشَآءُ وَتَنْزِعُ الْمُلْكَ مِمَّنْ تَشَآءُ ۚ وَتُعِزُّ
مَنْ تَشَآءُ وَتُذِلُّ مَنْ تَشَآءُ ۭ بِيَدِكَ الْخَيْرُ ۭ اِنَّكَ
عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝٢٦ تُوْلِجُ الَّيْلَ فِي النَّهَارِ وَ
تُوْلِجُ النَّهَارَ فِي الَّيْلِ ۡ وَتُخْرِجُ الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ

तो बस कुछ दिन[23]।'' उनके अपने मनगढ़त अक़ीदों ने उनको अपने दीन (धर्म) के मामले में बड़ी ग़लतफ़हमियों में डाल रखा है। (25) मगर क्या बनेगी उनपर जब हम उन्हें उस दिन इकट्ठा करेंगे जिसका आना यक़ीनी है? उस दिन हर शख़्स को उसकी कमाई का बदला पूरा-पूरा दे दिया जाएगा और किसी पर ज़ुल्म न होगा।

(26) कहो, ''ऐ अल्लाह! मुल्क के मालिक! तू जिसे चाहे हुकूमत दे और जिससे चाहे छीन ले। जिसे चाहे इज़्ज़त दे और जिसको चाहे रुसवा कर दे, भलाई तेरे इख़्तियार में है। बेशक तुझे हर चीज़ पर क़ुदरत हासिल है। (27) रात को दिन में पिरोता हुआ ले आता है और दिन को रात में। बेजान में से जानदार को निकालता है और जानदार में से

---

23. यानी ये लोग अपने आपको ख़ुदा का चहेता समझ बैठे हैं। ये इस ग़लत ख़याल में पड़े हुए हैं कि हम चाहे कुछ भी करें, हर हाल में जन्नत हमारी है। हम ईमानवाले हैं, हम फ़ुलाँ की औलाद और फ़ुलाँ की उम्मत और फ़ुलाँ के मुरीद हैं और हम फ़ुलाँ के दामन को पकड़े हुए हैं, भला जहन्नम की क्या मजाल है कि हमें छू जाए। और मान लीजिए अगर हम जहन्नम में डाले भी गए तो बस कुछ दिन वहाँ रखे जाएँगे ताकि गुनाहों की जो गन्दगी लग गई है वह साफ़ हो जाए, फिर सीधे जन्नत में पहुँचा दिए जाएँगे। इसी तरह के ख़यालों ने उनको इतना निडर और बेबाक बना दिया है कि वे सख़्त जुर्म कर बैठते हैं, बुरे-से-बुरे गुनाह करते हैं, खुल्लम-खुल्ला हक़ से फिर जाते हैं और ज़रा भी ख़ुदा का डर उनके दिल में नहीं आता।

وَتُخۡرِجُ الۡمَيِّتَ مِنَ الۡحَيِّ‌ وَتَرۡزُقُ مَنۡ تَشَآءُ
بِغَيۡرِ حِسَابٍ ۝٢٧ لَا يَتَّخِذِ الۡمُؤۡمِنُوۡنَ الۡكٰفِرِيۡنَ
اَوۡلِيَآءَ مِنۡ دُوۡنِ الۡمُؤۡمِنِيۡنَ‌ۚ وَمَنۡ يَّفۡعَلۡ ذٰ لِكَ
فَلَيۡسَ مِنَ اللّٰهِ فِىۡ شَىۡءٍ اِلَّاۤ اَنۡ تَتَّقُوۡا مِنۡهُمۡ

बेजान को। और जिसे चाहता है बेहिसाब रोज़ी देता है।[24]

(28) ईमानवाले ईमानवालों को छोड़कर (हक़ का) इनकार करनेवालों को अपना दोस्त और मददगार हरगिज़ न बनाएँ। जो ऐसा करेगा उसका अल्लाह से कोई ताल्लुक़ नहीं। हाँ, यह माफ़ है कि तुम उनके ज़ुल्म से बचने के लिए ऊपरी तौर पर यह रवैया अपना लो[25]। और अल्लाह तुम्हें अपने आपसे डराता है, और तुम्हें उसी की तरफ़

---

24. जब इनसान एक तरफ़ हक़ के इनकारियों और नाफ़रमानों की करतूत देखता है और फिर यह देखता है कि वे दुनिया में किस तरह फल-फूल रहे हैं, दूसरी तरफ़ ईमानवालों की फ़रमाँबरदारियाँ देखता है और फिर उनको उस ग़रीबी, मुफ़लिसी और उन मुसीबतों और दुखों का शिकार देखता है जिनमें नबी (सल्ल०) और आपके सहाबा किराम सन् 03 हि० और उसके आस-पास के ज़माने में शिकार थे, तो क़ुदरती तौर पर उसके दिल में एक अजीब हसरत भरा सवाल घूमने लगता है। अल्लाह तआला ने यहाँ इसी सवाल का जवाब दिया है और ऐसे लतीफ़ (सूक्ष्म) अन्दाज़ में दिया है कि इससे ज़्यादा लताफ़त (सूक्ष्मता) का तसव्वुर नहीं किया जा सकता।

25. यानी अगर कोई ईमानवाला किसी इस्लाम-दुश्मन गरोह के चंगुल में फँस गया हो और उसे उनके ज़ुल्म व सितम का डर हो, तो उसको इजाज़त है कि अपने ईमान को छिपाए रखे और इस्लाम के उन दुश्मनों के साथ ज़ाहिर में इस तरह रहे कि मानो उन्हीं में का एक आदमी है या अगर उसका मुसलमान होना ज़ाहिर हो गया हो तो अपनी जान बचाने के लिए वह दुश्मनों के साथ दोस्ताना रवैये का इज़हार कर सकता है। यहाँ तक कि सख़्त डर की हालत में जो शख़्स बरदाश्त की ताक़त न रखता हो उसको कलिम-ए-कुफ़्र यानी दीन के ख़िलाफ़ बात भी कह जाने की छूट है।

تُقٰىةً ۭ وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ وَاِلَى اللّٰهِ الْمَصِيْرُ ۝٢٨
قُلْ اِنْ تُخْفُوْا مَا فِيْ صُدُوْرِكُمْ اَوْ تُبْدُوْهُ يَعْلَمْهُ
اللّٰهُ ۭ وَيَعْلَمُ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ
وَاللّٰهُ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝٢٩ يَوْمَ تَجِدُ كُلُّ
نَفْسٍ مَّا عَمِلَتْ مِنْ خَيْرٍ مُّحْضَرًا ښ وَّمَا عَمِلَتْ
مِنْ سُوْۗءٍ ڔ تَوَدُّ لَوْ اَنَّ بَيْنَهَا وَبَيْنَهٗٓ اَمَدًۢا بَعِيْدًا ۭ

पलटकर जाना है[26]। (29) ऐ नबी! लोगों को ख़बरदार कर दो कि तुम्हारे दिलों में जो कुछ है, उसे चाहे तुम छिपाओ या ज़ाहिर करो, अल्लाह हर हाल में उसे जानता है। ज़मीन व आसमान की कोई चीज़ उसके इल्म से बाहर नहीं है, और उसका इक़्तिदार (शासन) हर चीज़ पर हावी है। (30) वह दिन आनेवाला है जब हर नफ़्स (प्राणी) अपने किए का फल मौजूद पाएगा, चाहे उसने भलाई की हो या बुराई। उस दिन आदमी यह तमन्ना करेगा कि काश! अभी यह दिन उससे बहुत दूर होता। अल्लाह तुम्हें अपने आपसे

26. यानी कहीं इनसानों का डर तुमपर इतना न छा जाए कि ख़ुदा का डर दिल से निकल जाए। इनसान ज़्यादा-से ज़्यादा तुम्हारी दुनिया बिगाड़ सकते हैं, मगर अल्लाह तुम्हें हमेशा का अज़ाब दे सकता है। इसलिए अपने बचाव के लिए अगर मजबूरी की हालत में कभी इस्लाम के दुश्मनों के साथ हीले-हवाले और बहानेबाज़ी की बात करनी पड़े, तो वह बस इस हद तक होनी चाहिए कि इस्लाम के मिशन और इस्लामी गरोह के फ़ायदे और किसी मुसलमान की जान-माल को नुक़सान पहुँचाए बिना तुम अपनी जान व माल की हिफ़ाज़त कर लो। लेकिन ख़बरदार! कुफ़्र या इस्लाम-दुश्मनों की कोई ऐसी ख़िदमत तुम्हारे हाथों अंजाम न होने पाए कि जिससे इस्लाम के मुक़ाबले में कुफ़्र को बढ़ावा मिलने और मुसलमानों पर इस्लाम-दुश्मनों के ग़ालिब आ जाने का इमकान हो। ख़ूब समझ लीजिए कि अगर अपने आपको बचाने के लिए तुमने अल्लाह के दीन को या ईमानवालों के गरोह को या किसी एक मुसलमान को भी नुक़सान पहुँचाया या ख़ुदा के बाग़ियों की कोई सच्ची ख़िदमत की तो अल्लाह की पकड़ से हरगिज़ न बच सकोगे। हर हाल में तुमको उसी के पास जाना है।

وَيُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ۭ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌۢ بِالْعِبَادِ ۝۳۰ ع
قُلْ اِنْ كُنْتُمْ تُحِبُّوْنَ اللّٰهَ فَاتَّبِعُوْنِيْ يُحْبِبْكُمُ اللّٰهُ
وَيَغْفِرْ لَكُمْ ذُنُوْبَكُمْ ۭ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝۳۱
قُلْ اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ ۚ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّ اللّٰهَ
لَا يُحِبُّ الْكٰفِرِيْنَ ۝۳۲ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰٓي اٰدَمَ وَ

डराता है, और वह अपने बन्दों का ख़ैरख़ाह है।[27]

(31) ऐ नबी! लोगों से कह दो कि "अगर तुम हक़ीक़त में अल्लाह से मुहब्बत रखते हो तो मेरी पैरवी करो, अल्लाह तुमसे मुहब्बत करेगा और तुम्हारी ग़लतियों को माफ़ कर देगा। वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।" (32) उनसे कहो कि "अल्लाह और रसूल की फ़रमाँबरदारी अपनाओ", फिर अगर वे तुम्हारी यह बात न मानें तो यक़ीनन यह मुमकिन नहीं है कि अल्लाह ऐसे लोगों से मुहब्बत करे जो उसकी और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी से इनकार करते हों।[28]

---

27. यानी यह उसकी इन्तहाई ख़ैरख़ाही है कि वह तुम्हें वक़्त से पहले ऐसे आमाल (कर्मों) पर सावधान कर रहा है जो तुम्हारे अंजाम की ख़राबी का सबब बन सकते हैं।

28. यहाँ पहली तक़रीर ख़त्म होती है। इसके मज़मून (विषय-वस्तु) में ख़ास तौर से बद्र की लड़ाई की तरफ़ जो इशारा इसमें किया गया है उस के अन्दाज़ पर ग़ौर करने से ज़्यादा गुमान यही होता है कि इस तक़रीर के उतरने का ज़माना बद्र की लड़ाई के बाद और उहुद की लड़ाई से पहले का है, यानी 03 हि॰। मुहम्मद-बिन-इसहाक़ की रिवायत से आम तौर से लोगों को यह ग़लतफ़हमी हुई है कि इस सूरा की शुरू की 80 आयतें नजरान के वफ़्द (प्रतिनिधिमंडल) के आने के मौक़े पर सन् 09 हि॰ में उतरी थीं, लेकिन एक तो इस तमहीदी (आरम्भिक) तक़रीर का मज़मून साफ़ बता रहा है कि यह उससे बहुत पहले उतरी होगी, दूसरे मुक़ातिल-बिन-सुलैमान की रिवायत में यह ज़िक्र है कि नजरान के वफ़्द के आने पर सिर्फ़ वे आयतें उतरी हैं जो हज़रत यहया और हज़रत ईसा (अलैहि॰) के बयान पर मुश्तमिल (सम्मिलित) हैं और जिनकी तादाद 30 या उससे कुछ ज़्यादा है।

نُوْحًا وَّاٰلَ اِبْرٰهِيْمَ وَاٰلَ عِمْرٰنَ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ﴿٣٣﴾
ذُرِّيَّةً ۢ بَعْضُهَا مِنْ ۢ بَعْضٍ ؕ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٣٤﴾
اِذْ قَالَتِ امْرَاَتُ عِمْرٰنَ رَبِّ اِنِّىْ نَذَرْتُ لَكَ

(33) अल्लाह ने[29] आदम और नूह और इबराहीम की औलाद और इमरान[30] की औलाद को तमाम दुनियावालों पर तरजीह देकर (अपनी रिसालत के लिए) चुन लिया था। (34) ये एक सिलसिले के लोग थे जो एक-दूसरे की नस्ल से पैदा हुए थे। अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है।[31] (35) (वह उस वक़्त सुन रहा था) जब इमरान की

29. यहाँ से दूसरी तक़रीर शुरू होती है। इसके उतरने का ज़माना सन् 09 हि॰ है, जबकि नजरान की ईसाई जमहूरी हुकूमत का वफ़्द नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ था। नजरान का इलाक़ा हिजाज़ और यमन के बीच है। उस वक़्त उस इलाक़े में 73 बस्तियाँ शामिल थीं और कहा जाता है कि एक लाख बीस हज़ार लड़ने के क़ाबिल मर्द उनमें से निकल सकते थे। आबादी पूरी-की-पूरी ईसाई थी और तीन सरदारों की सरदारी में थी। एक 'आक़िब' कहलाता था जिसकी हैसियत क़ौम के अमीर (सरदार) की थी। दूसरा 'सैयद' कहलाता था जो उनके समाजी और सियासी मामलों की निगरानी करता था और तीसरा 'उस्क़ुफ़' (बिशप) था जिसके ज़िम्मे मज़हबी रहनुमाई करना था। जब नबी (सल्ल॰) ने मक्का पर फ़तूह हासिल की और तमाम अरबवालों को यक़ीन हो गया कि देश का मुस्तक़बिल (भविष्य) अब अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के हाथ में है तो अरब के मुख़्तलिफ़ जगहों से आप (सल्ल॰) के पास वफ़ूद (प्रतिनिधिमंडल) आने शुरू हो गए। इसी सिलसिले में नजरान के तीनों सरदार भी 60 आदमियों का एक वफ़्द लेकर मदीना पहुँचे। जंग के लिए बहरहाल वे तैयार न थे। अब सवाल सिर्फ़ यह था कि क्या वे इस्लाम क़बूल करते हैं या ज़िम्मी बनकर रहना चाहते हैं। इस मौक़े पर अल्लाह ने नबी (सल्ल॰) पर यह ख़ुतबा (तक़रीर) उतारा। ताकि इसके ज़रीए से नजरान के वफ़्द को इस्लाम की तरफ़ बुलाया जाए।

30. इमरान हज़रत मूसा और हारून के वालिद का नाम था, जिसे बाइबल [निर्ग॰ 10, 6:10] में 'अमराम' लिखा गया है।

31. मसीहियों (ईसाइयों) की गुमराही की सारी वजह यह है कि वे मसीह को बन्दा और रसूल मानने के बजाय अल्लाह का बेटा और उलूहियत (ईश्वरत्व) में उसका शरीक क़रार देते हैं। अगर उनकी यह बुनियादी ग़लती दूर हो जाए तो सही और ख़ालिस इस्लाम की तरफ़ उनका पलट आना बहुत आसान हो जाए। इसी लिए इस ख़ुतबे (तक़रीर) की शुरुआत इस तरह की

مَا فِىْ بَطْنِىْ مُحَرَّرًا فَتَقَبَّلْ مِنِّىْ ۚ اِنَّكَ اَنْتَ
السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿٣٥﴾ فَلَمَّا وَضَعَتْهَا قَالَتْ رَبِّ
اِنِّىْ وَضَعْتُهَآ اُنْثٰى ؕ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا وَضَعَتْ ؕ وَ
لَيْسَ الذَّكَرُ كَالْاُنْثٰى ۚ وَاِنِّىْ سَمَّيْتُهَا مَرْيَمَ وَاِنِّىْٓ

औरत[32] कह रही थी कि "मेरे पालनहार! मैं इस बच्चे को, जो मेरे पेट में है, तेरी नज़्र (भेंट) करती हूँ, वह तेरे ही काम के लिए वक़्फ़ होगा। मेरी इस नज़्र को क़बूल कर ले, तू सुनने और जाननेवाला है[33]।" (36) फिर जब वह बच्ची उसके यहाँ पैदा हुई तो उसने कहा, "मालिक! मेरे यहाँ तो लड़की पैदा हो गई है – हालाँकि जो कुछ उसने जना था, अल्लाह को उसकी ख़बर थी – और लड़का लड़की की तरह नहीं होता।[34] ख़ैर, मैंने

गई है कि आदम, नूह, इबराहीम की औलादों और इमरान पैग़म्बर इनसान थे, एक की नस्ल से दूसरा पैदा होता चला आया, उनमें से कोई भी ख़ुदा न था, उनकी ख़ुसूसियत बस यह थी कि ख़ुदा ने अपने दीन की तबलीग़ (प्रचार) और दुनिया के सुधार के लिए उनको चुन लिया था।

32. अगर इमरान की औरत से मुराद 'इमरान की बीवी' ली जाए तो इसका मतलब यह होगा कि ये वे इमरान नहीं हैं जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ है, बल्कि ये हज़रत मरयम के बाप थे, जिनका नाम शायद इमरान होगा {मसीही रिवायतों में हज़रत मरयम के बाप का नाम युआख़ीम (Ioachim) लिखा है।} और अगर इमरान की औरत से मुराद आले-इमरान की औरत ली जाए, तो इसका मतलब यह होगा कि हज़रत मरयम की माँ इस क़बीले से ताल्लुक़ रखती थीं। लेकिन हमारे पास जानने का कोई ऐसा ज़रीआ मौजूद नहीं है जिससे हम यक़ीनी तौर पर इन दोनों मानों में से किसी एक को तरजीह (प्राथमिकता) दे सकें, क्योंकि इतिहास में इसका कोई ज़िक्र नहीं है कि हज़रत मरयम के बाप कौन थे और उनकी माँ किस क़बीले की थीं। अलबत्ता अगर यह रिवायत सही मान ली जाए कि हज़रत यह्या की माँ और हज़रत मरयम की माँ आपस में रिश्ते की बहनें थीं, तो फिर 'इमरान की औरत' के मानी 'इमरान क़बीले की औरत' ही सही होंगे, क्योंकि लूक़ा की इंजील में हमें यह बात मिलती है कि हज़रत यह्या की माँ हज़रत हारून की औलाद से थीं। (लूक़ा, 1:5)

33. यानी तू अपने बन्दों की दुआएँ सुनता है और उनकी नीयतों का हाल जानता है।

34. यानी लड़का उन बहुत-सी फ़ितरी (स्वाभाविक) कमज़ोरियों और समाजी पाबन्दियों से आज़ाद होता है जो लड़की के साथ लगी हुई होती हैं, इसलिए अगर लड़का होता तो वह मक़सद ज़्यादा

أُعِيذُهَا بِكَ وَذُرِّيَّتَهَا مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ ۝٣٦
فَتَقَبَّلَهَا رَبُّهَا بِقَبُوْلٍ حَسَنٍ وَّاَنْۢبَتَهَا نَبَاتًا
حَسَنًا ۙ وَّكَفَّلَهَا زَكَرِيَّا ۚ كُلَّمَا دَخَلَ عَلَيْهَا زَكَرِيَّا
الْمِحْرَابَ ۙ وَجَدَ عِنْدَهَا رِزْقًا ۚ قَالَ يٰمَرْيَمُ اَنّٰى
لَكِ هٰذَا ۗ قَالَتْ هُوَ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۗ اِنَّ اللّٰهَ يَرْزُقُ

इसका नाम मरयम रख दिया है और मैं इसे और इसकी आगे की नस्ल को धुतकारे हुए शैतान के फ़ितने से तेरी पनाह में देती हूँ।" (37) आख़िरकार उसके रब ने उस लड़की को ख़ुशी के साथ क़बूल कर लिया, उसे बड़ी अच्छी लड़की बनाकर उठाया और ज़करिय्या को उसका सरपरस्त बना दिया।

ज़करिय्या[35] जब कभी उसके पास मेहराब[36] में जाता तो उसके पास कुछ-न-कुछ खाने-पीने का सामान पाता। पूछता, "मरयम! यह तेरे पास कहाँ से आया?" वह जवाब

अच्छी तरह हासिल हो सकता था जिसके लिए मैं अपने बच्चे को तेरी राह में नज़्र (भेंट) करना चाहती थी।

35. अब उस वक़्त का ज़िक्र शुरू होता है जब हज़रत मरयम सिने-रुश्द (सूझ-बूझ की उम्र) को पहुँच गईं और बैतुल-मक़्दिस की इबादतगाह (हैकल) में दाख़िल कर दी गईं और वे अल्लाह के ज़िक्र में रात-दिन मशग़ूल रहने लगीं। हज़रत ज़करिय्या, जिनकी देखभाल में वे दी गई थीं, शायद रिश्ते में उनके ख़ालू (मौसा) थे और हैकल के मुजाविरों में से थे। ये वे ज़करिय्या नबी नहीं हैं जिनके क़त्ल का ज़िक्र बाइबल के पुराने नियम (Old Testament) में हुआ है।

36. शब्द "मेहराब" से लोगों का ध्यान आम तौर से उस मेहराब की तरफ़ चला जाता है जो हमारी मस्जिदों में इमाम के खड़ा होने के लिए बनाई जाती है, लेकिन यहाँ मेहराब से यह चीज़ मुराद नहीं है। गिरजाघरों और कनीसों में असल इबादतगाह की इमारत से मिले हुए और ज़मीन की सतह से काफ़ी ऊँचाई पर जो कमरे बनाए जाते हैं, जिनमें इबादतगाह के मुजाविर, ख़ादिम और मोतकिफ़ (एकान्त में बैठकर और यकसू होकर ख़ुदा की याद में लगे रहनेवाले) लोग रहा करते हैं, उन्हें 'मेहराब' कहा जाता है। इसी क़िस्म के कमरों में से एक में हज़रत मरयम मोतकिफ़ रहती थीं।

مَنْ يَّشَآءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ﴿٣٧﴾ هُنَالِكَ دَعَا زَكَرِيَّا
رَبَّهٗ ۚ قَالَ رَبِّ هَبْ لِيْ مِنْ لَّدُنْكَ ذُرِّيَّةً
طَيِّبَةً ۚ اِنَّكَ سَمِيْعُ الدُّعَآءِ ﴿٣٨﴾ فَنَادَتْهُ الْمَلٰٓئِكَةُ
وَهُوَ قَآئِمٌ يُّصَلِّيْ فِي الْمِحْرَابِ ۙ اَنَّ اللّٰهَ يُبَشِّرُكَ
بِيَحْيٰى مُصَدِّقًۢا بِكَلِمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ وَسَيِّدًا وَّ
حَصُوْرًا وَّنَبِيًّا مِّنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿٣٩﴾ قَالَ رَبِّ اَنّٰى

देती, "अल्लाह के पास से आया है। अल्लाह जिसे चाहता है, बेहिसाब रोज़ी देता है।" (38) यह हाल देखकर ज़करिय्या ने अपने रब को पुकारा, "पालनहार! अपनी क़ुदरत से मुझे नेक औलाद दे। तू ही दुआ सुननेवाला है।"[37] (39) जवाब में फ़रिश्तों ने आवाज़ दी, जबकि वह मेहराब में खड़ा नमाज़ पढ़ रहा था, कि "अल्लाह तुझे यह्या[38] की ख़ुशख़बरी देता है। वह अल्लाह की तरफ़ से एक फ़रमान[39] की तस्दीक़ (पुष्टि) करनेवाला बनकर आएगा। उसमें सरदारी और बुज़ुर्गी की शान होगी, कमाल दर्जे का ज़ाबित (अत्यन्त संयमी) होगा, नबी बनाया जाएगा और अच्छों में उसकी गिनती होगी।" (40) ज़करिय्या

---

37. हज़रत ज़करिय्या उस वक़्त तक बे-औलाद थे। उस नौजवान नेक लड़की को देखकर फ़ितरी तौर से उनके दिल में यह तमन्ना पैदा हुई कि काश अल्लाह उन्हें भी ऐसी ही नेक औलाद दे! और यह देखकर कि अल्लाह किस तरह अपनी क़ुदरत से इस गोशानशीन (एकान्तवासी) लड़की को रोज़ी पहुँचा रहा है, उन्हें यह उम्मीद हुई कि अल्लाह चाहे तो इस बुढ़ापे में भी उनको औलाद दे सकता है।

38. बाइबल में इनका नाम 'यूहन्ना बपतिस्मा देनेवाला' (John The Baptist) लिखा है। इनके हालात के लिए देखिए मत्ती, अध्याय 3, 11, 14; मरक़ुस, अध्याय 1 और 6; लूक़ा, अध्याय 1 और 3।

39. अल्लाह के 'फ़रमान' से मुराद हज़रत ईसा (अलैहि०) हैं। चूँकि उनकी पैदाइश अल्लाह के एक ग़ैर-मामूली फ़रमान से चमत्कार के रूप में हुई थी, इसलिए उनको क़ुरआन मजीद में 'कलिमतुम-मिनल्लाह' यानी अल्लाह का फ़रमान कहा गया है।

يَكُوْنُ لِيْ غُلٰمٌ وَّقَدْ بَلَغَنِيَ الْكِبَرُ وَامْرَاَتِيْ عَاقِرٌ ؕ
قَالَ كَذٰلِكَ اللّٰهُ يَفْعَلُ مَا يَشَآءُ ۝٤٠ قَالَ رَبِّ
اجْعَلْ لِّيْٓ اٰيَةً ؕ قَالَ اٰيَتُكَ اَلَّا تُكَلِّمَ النَّاسَ
ثَلٰثَةَ اَيَّامٍ اِلَّا رَمْزًا ؕ وَاذْكُرْ رَّبَّكَ كَثِيْرًا وَّ
سَبِّحْ بِالْعَشِيِّ وَالْاِبْكَارِ ۝٤١ وَاِذْ قَالَتِ الْمَلٰٓئِكَةُ
يٰمَرْيَمُ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰىكِ وَطَهَّرَكِ وَاصْطَفٰىكِ

ने कहा, "पालनहार! भला मेरे यहाँ लड़का कहाँ से होगा? मैं तो बहुत बूढ़ा हो चुका हूँ और मेरी बीवी बाँझ है।" जवाब मिला, "ऐसा ही होगा,[40] अल्लाह जो चाहता है, करता है।" (41) कहा, "मालिक! फिर कोई निशानी मेरे लिए मुक़र्रर कर दे।"[41] कहा, "निशानी यह है कि तुम तीन दिन तक लोगों से इशारे के सिवा कोई बातचीत न करोगे (या न कर सकोगे)। इस बीच अपने रब को बहुत याद करना और सुबह व शाम उसकी बड़ाई और तस्बीह (महिमागान) करते रहना।"[42]

(42) फिर वह वक़्त आया जब मरयम से फ़रिश्तों ने आकर कहा, "ऐ मरयम!

40. यानी तेरे बुढ़ापे और तेरी बीवी के बाँझपन के बावजूद अल्लाह तुझे बेटा देगा।

41. यानी ऐसी अलामत बता दे कि जब एक बूढ़े खूसट और एक बूढ़ी बाँझ के यहाँ लड़के की पैदाइश जैसा अजीब ग़ैर-मामूली वाक़िआ पेश आनेवाला हो तो उसकी ख़बर मुझे पहले से हो जाए।

42. इस तक़रीर का असल मक़सद ईसाइयों पर उनके इस अक़ीदे की ग़लती वाज़ेह करना है कि वे मसीह *(अलैहि.)* को ख़ुदा का बेटा और इलाह (उपास्य) समझते हैं। शुरू में हज़रत यहया *(अलैहि.)* का ज़िक्र इस वजह से किया गया है कि जिस तरह मसीह *(अलैहि.)* की पैदाइश मोजिज़ाना (चामत्कारिक) तरीक़े से हुई थी उसी तरह उनसे छः ही महीने पहले उसी ख़ानदान में हज़रत यहया की पैदाइश भी एक दूसरी तरह के चमत्कार से हो चुकी थी। इससे अल्लाह तआला ईसाइयों को यह समझाना चाहता है कि अगर यहया को उनकी मोजिज़ाना (चामत्कारिक) पैदाइश ने इलाह (उपास्य) नहीं बनाया तो मसीह सिर्फ़ अपनी ग़ैर-मामूली पैदाइश के बल पर इलाह या ख़ुदा कैसे हो सकते हैं।

عَلٰى نِسَآءِ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٤٢﴾ يٰمَرْيَمُ اقْنُتِىْ لِرَبِّكِ
وَاسْجُدِىْ وَارْكَعِىْ مَعَ الرّٰكِعِيْنَ ﴿٤٣﴾ ذٰلِكَ
مِنْ اَنْۢبَآءِ الْغَيْبِ نُوْحِيْهِ اِلَيْكَ ؕ وَمَا كُنْتَ
لَدَيْهِمْ اِذْ يُلْقُوْنَ اَقْلَامَهُمْ اَيُّهُمْ يَكْفُلُ مَرْيَمَ ۪
وَمَا كُنْتَ لَدَيْهِمْ اِذْ يَخْتَصِمُوْنَ ﴿٤٤﴾ اِذْ قَالَتِ
الْمَلٰٓئِكَةُ يٰمَرْيَمُ اِنَّ اللّٰهَ يُبَشِّرُكِ بِكَلِمَةٍ مِّنْهُ ۖۗ
اسْمُهُ الْمَسِيْحُ عِيْسَى ابْنُ مَرْيَمَ وَجِيْهًا فِى

अल्लाह ने तुझे चुना और पाकीज़गी अता की और तमाम दुनिया की औरतों पर तुझको तरजीह देकर अपनी ख़िदमत के लिए चुन लिया। (43) ऐ मरयम! अपने रब के हुक्मों की पाबन्द बनकर रह, उसके आगे सिर को झुका और जो बन्दे उसके सामने झुकनेवाले हैं, उनके साथ तू भी झुक जा।"

(44) ऐ नबी! ये ग़ैब (परोक्ष) की ख़बरें हैं जो हम तुमको वह्य के ज़रीए से बता रहे हैं, वरना तुम उस वक़्त वहाँ मौजूद न थे जब हैकल के ख़ादिम यह फ़ैसला करने के लिए कि मरयम का सरपरस्त कौन हो, अपने-अपने क़लम फेंक रहे थे[43], और न तुम उस वक़्त हाज़िर थे जब उनके बीच झगड़ा खड़ा हो गया था।

(45) और जब फ़रिश्तों ने कहा, "ऐ मरयम! अल्लाह तुझे अपने एक फ़रमान की ख़ुशख़बरी देता है। उसका नाम मसीह, मरयम का बेटा ईसा होगा, दुनिया और आख़िरत

43. यानी पर्ची डाल रहे थे। यह पर्ची डालने की ज़रूरत इसलिए पेश आई थी कि हज़रत मरयम *(अलैहि०)* की माँ ने उनको अल्लाह के काम के लिए हैकल की नज़्र (भेंट) कर दिया था और वे चूँकि लड़की थीं, इसलिए यह एक नाज़ुक मसला बन गया था कि हैकल के मुजाविरों में से किसकी सरपरस्ती में वे रहें।

الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ وَمِنَ الْمُقَرَّبِيْنَ ﴿٤٥﴾ وَيُكَلِّمُ
النَّاسَ فِي الْمَهْدِ وَكَهْلًا وَّمِنَ الصّٰلِحِيْنَ ﴿٤٦﴾
قَالَتْ رَبِّ اَنّٰى يَكُوْنُ لِيْ وَلَدٌ وَّلَمْ يَمْسَسْنِيْ
بَشَرٌ ۭ قَالَ كَذٰلِكِ اللّٰهُ يَخْلُقُ مَا يَشَاۗءُ ۭ اِذَا قَضٰٓى

में इज़्ज़तदार होगा, अल्लाह के क़रीबी बन्दों में गिना जाएगा, (46) लोगों से पालने में भी बात करेगा और बड़ी उम्र को पहुँचकर भी और वह एक नेक और भला इनसान होगा।" (47) यह सुनकर मरयम बोली, "पालनहार! मेरे यहाँ बच्चा कहाँ से होगा? मुझे तो किसी मर्द ने हाथ तक नहीं लगाया।" जवाब मिला, "ऐसा ही होगा,[44] अल्लाह जो चाहता है,

44 यानी बावजूद इसके कि किसी मर्द ने तुझे हाथ नहीं लगाया, तेरे यहाँ बच्चा पैदा होगा। यही लफ़्ज़ 'क-ज़ालि-क' (ऐसा ही होगा) हज़रत ज़करिय्या के जवाब में भी कहा गया था। इसके जो मानी वहाँ हैं, वही यहाँ भी होने चाहिएँ। साथ ही बाद का जुमला, बल्कि पिछला और अगला सारा बयान इसी मानी की ताईद करता है कि हज़रत मरयम को बिना किसी जिस्मानी ताल्लुक़ के बच्चा पैदा होने की ख़ुशख़बरी दी गई थी और हक़ीक़त में इसी सूरत से हज़रत ईसा की पैदाइश हुई। वरना अगर बात यही थी कि हज़रत मरयम के यहाँ उसी जाने-पहचाने फ़ितरी तरीक़े से बच्चा पैदा होनेवाला था जिस तरह दुनिया में औरतों के यहाँ हुआ करता है और अगर हज़रत ईसा *(अलैहि॰)* की पैदाइश हक़ीक़त में उसी तरह हुई होती तो यह सारा बयान बिलकुल बेमतलब और बेमानी ठहरता है जो इस सूरा की आयत 35 से आयत 63 तक चला जा रहा है, और वे सारे बयान भी बेमानी ठहरते हैं जो मसीह *(अलैहि॰)* की पैदाइश के सिलसिले में क़ुरआन की दूसरी जगहों पर हमें मिलते हैं। ईसाइयों ने हज़रत ईसा को ख़ुदा और ख़ुदा का बेटा इसी वजह से समझा था कि उनकी पैदाइश ग़ैर-फ़ितरी तौर पर बग़ैर बाप के हुई थी और यहूदियों ने हज़रत मरयम पर इल्ज़ाम भी इसी वजह से लगाया था कि सबके सामने यह वाक़िआ पेश आया था कि एक लड़की ग़ैर-शादी-शुदा थी और उसके यहाँ बच्चा पैदा हुआ। अगर सिरे से यह वाक़िआ पेश ही न आया होता तब इन दोनों गरोहों की बातों को झुठलाने के लिए बस इतना कह देना बिलकुल काफ़ी होता कि तुम लोग ग़लत कहते हो, वह लड़की शादी-शुदा थी। फ़ुलाँ आदमी इसका शौहर था और उसी के नुत्फ़े (वीर्य) से ईसा पैदा हुए थे। यह मुख़्तसर-सी दोटूक बात कहने के बजाय आख़िर इतनी लम्बी तमहीद (भूमिका) बाँधने, पेंच-दर-पेंच बातें करने और साफ़-साफ़ फ़ुलाँ का बेटा मसीह कहने के बजाय मरियम का बेटा मसीह कहने की आख़िर क्या ज़रूरत थी जिससे बात सुलझने के बजाय और उलझ जाए। तो जो लोग क़ुरआन को अल्लाह का कलाम मानते हैं और फिर मसीह *(अलैहि॰)* के सिलसिले में यह भी साबित करने की कोशिश करते हैं कि उनकी पैदाइश मामूल के मुताबिक़ बाप और माँ

اَمۡرًا فَاِنَّمَا يَقُوۡلُ لَهٗ كُنۡ فَيَكُوۡنُ ۝٤٧ وَيُعَلِّمُهُ
الۡكِتٰبَ وَالۡحِكۡمَةَ وَالتَّوۡرٰىةَ وَالۡاِنۡجِيۡلَ ۝٤٨ وَرَسُوۡلًا
اِلٰى بَنِىۡۤ اِسۡرَآءِيۡلَ ۙ اَنِّىۡ قَدۡ جِئۡتُكُمۡ بِاٰيَةٍ
مِّنۡ رَّبِّكُمۡ ۙ اَنِّىۡۤ اَخۡلُقُ لَكُمۡ مِّنَ الطِّيۡنِ كَهَیْـَٔةِ
الطَّيۡرِ فَاَنۡفُخُ فِيۡهِ فَيَكُوۡنُ طَيۡرًاۢ بِاِذۡنِ اللّٰهِ ۚ وَ
اُبۡرِئُ الۡاَكۡمَهَ وَالۡاَبۡرَصَ وَاُحۡىِ الۡمَوۡتٰى بِاِذۡنِ اللّٰهِ ۚ
وَاُنَبِّئُكُمۡ بِمَا تَاۡكُلُوۡنَ وَمَا تَدَّخِرُوۡنَ ۙ فِىۡ
بُيُوۡتِكُمۡ ؕ اِنَّ فِىۡ ذٰلِكَ لَاٰيَةً لَّكُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ

पैदा करता है। वह जब किसी काम के करने का फ़ैसला फ़रमाता है, तो बस कहता है कि हो जा, और वह हो जाता है।'' (48) (फ़रिश्तों ने फिर अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा) ''और अल्लाह उसे किताब और हिक्मत की तालीम (शिक्षा) देगा, तौरात और इंजील का इल्म सिखाएगा (49) और बनी-इसराईल की तरफ़ अपना रसूल मुक़र्रर करेगा।''

(और जब वह रसूल की हैसियत से बनी-इसराईल के पास आया तो उसने कहा,) ''मैं तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारे पास निशानी लेकर आया हूँ। मैं तुम्हारे सामने मिट्टी से परिन्दे की शक्ल का एक मुजस्समा (आकृति) बनाता हूँ और उसमें फूँक मारता हूँ, वह अल्लाह के हुक्म से परिन्दा बन जाता है। मैं अल्लाह के हुक्म से जन्मजात अन्धे और कोढ़ी को अच्छा करता हूँ और मुर्दे को ज़िन्दा करता हूँ। मैं तुम्हें बताता हूँ कि तुम क्या खाते हो और क्या अपने घरों में जमा करके रखते हो। इसमें तुम्हारे लिए काफ़ी

के मिलन से हुई थी, वे असल में साबित यह करते हैं कि अल्लाह दिल की बात ज़ाहिर करने और मक़सद को बयान करने की उतनी ताक़त भी नहीं रखता जितनी ख़ुद ये लोग रखते हैं। (अल्लाह की पनाह)

مُّؤْمِنِيْنَ ۝ وَمُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيَّ مِنَ
التَّوْرٰىةِ وَلِاُحِلَّ لَكُمْ بَعْضَ الَّذِيْ حُرِّمَ عَلَيْكُمْ

निशानी है अगर तुम ईमान लानेवाले हो।[45] (50) और मैं उस तालीम (शिक्षा) और हिदायत की तस्दीक़ (पुष्टि) करनेवाला बनकर आया हूँ जो तौरात में से इस वक़्त मेरे ज़माने में मौजूद है,[46] और इसलिए आया हूँ कि तुम्हारे लिए कुछ उन चीज़ों को हलाल

---

45. यानी ये निशानियाँ तुमको इस बात का भरोसा दिलाने के लिए काफ़ी हैं कि मैं उस ख़ुदा का भेजा हुआ हूँ जो कायनात (सृष्टि) का पैदा करनेवाला और ताक़त रखनेवाला हाकिम है। बस शर्त यह है कि तुम हक़ को मानने के लिए तैयार हो जाओ और हठधर्म न बनो।

46. यानी मुझे अल्लाह की तरफ़ से भेजे जाने का यह एक और सुबूत है। अगर मैं उसकी तरफ़ से भेजा हुआ न होता, बल्कि झूठा दावेदार होता, तो ख़ुद एक अलग मज़हब की नींव डालता और अपने इन कमालात के ज़ोर पर तुम्हें पिछले दीन से हटाकर अपने गढ़े हुए दीन की तरफ़ लाने की कोशिश करता, लेकिन मैं तो उसी असल दीन को मानता हूँ और उसी तालीम को सही क़रार दे रहा हूँ जो ख़ुदा की तरफ़ से उसके पैग़म्बर मुझसे पहले लाए थे।

यह बात कि मसीह *(अलैहि॰)* वही दीन लेकर आए थे जो मूसा *(अलैहि॰)* और दूसरे नबियों ने पेश किया था, आज की मौजूद इंजीलों (यानी बाइबल) में साफ़ तौर से हमें मिलती है। मिसाल के तौर पर मत्ती की रिवायत के मुताबिक़ पहाड़ी के उपदेश में मसीह (अलैहि॰) साफ़ कहते हैं—
"यह न समझो कि मैं तौरात धर्म-व्यवस्था या नबियों की किताबों को मंसूख़ (निरस्त) करने आया हूँ। मंसूख़ करने नहीं, बल्कि पूरा करने आया हूँ।" (मत्ती, 5:17)

एक यहूदी आलिम ने हज़रत मसीह *(अलैहि॰)* से पूछा कि दीन के अहकाम (आदेशों) में सबसे पहला हुक्म कौन-सा है? जवाब में उन्होंने कहा—

"तू अपने ख़ुदा (प्रभु-परमेश्वर) से अपने सारे दिल और अपनी सारी जान और अपनी सारी अक़्ल के साथ मुहब्बत कर। बड़ा और पहला हुक्म यही है। और दूसरा इसके जैसा हुक्म यह भी है कि अपने पड़ोसी से अपने बराबर मुहब्बत कर। इन ही दो हुक्मों पर तौरात और नबियों की शिक्षाओं की बुनियाद है।" (मत्ती, 22 : 37-40)

फिर मसीह अपने शागिर्दों से कहते हैं—

"फ़क़ीह (धर्मशास्त्री) और फ़रीसी मूसा की गद्दी पर बैठे हैं। इसलिए वे तुमसे जो कुछ कहें, वह करना और मानना, मगर उनके जैसे काम न करना, क्योंकि वे कहते तो हैं मगर करते नहीं।"
(मत्ती, 23 : 2-3)

وَجِئْتُكُمْ بِاٰيَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَ
اَطِيْعُوْنِ ۝٥٠ اِنَّ اللّٰهَ رَبِّيْ وَرَبُّكُمْ فَاعْبُدُوْهُ ؕ
هٰذَا صِرَاطٌ مُّسْتَقِيْمٌ ۝٥١ فَلَمَّآ اَحَسَّ عِيْسٰى مِنْهُمُ

कर दूँ जो तुमपर हराम कर दी गई हैं।[47] देखो, मैं तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारे पास निशानी लेकर आया हूँ, इसलिए अल्लाह से डरो और मेरा कहना मानो। (51) अल्लाह मेरा रब भी है और तुम्हारा रब भी, इसलिए तुम उसी की बन्दगी इख़्तियार करो, यही सीधा रास्ता है।"[48]

(52) जब ईसा ने महसूस किया कि बनी-इसराईल कुफ़्र और इनकार पर आमादा हैं

47. यानी तुम्हारे जाहिलों के अन्धविश्वास, तुम्हारे फ़क़ीहों (धर्म-विधिज्ञों) का क़ानून के सिलसिले में बाल की खाल निकालना, तुम्हारे रहबानियत-पसन्द लोगों की सख़्तियाँ और ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों के ग़ालिब होने और छा जाने की वजह से तुम्हारे यहाँ ख़ुदा की असल शरीअत में जिन पाबन्दियों को बढ़ा लिया गया है, मैं उनको ख़त्म करूँगा और तुम्हारे लिए वही चीज़ें हलाल और वही हराम क़रार दूँगा जिन्हें अल्लाह ने हलाल या हराम किया है।

48. इससे मालूम हुआ कि तमाम नबियों की तरह हज़रत ईसा *(अलैहि॰)* के पैग़ाम की भी यही तीन बुनियादी बातें थीं—

एक यह कि इक़्तिदारे-आला (सम्प्रभुत्त्व) जिसके मुक़ाबले में बन्दगी या फ़रमाँबरदारी का रवैया इख़्तियार किया जाता है और जिसकी इताअत पर अख़लाक़ और सामाजिकता (सभ्यता) का पूरा निज़ाम क़ायम होता है, सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ास माना जाए;

दूसरी यह कि उस मुक़्तदिरे-आला (सम्प्रभु) के नुमाइन्दे की हैसियत से नबी के हुक्म पर चला जाए,

तीसरी यह कि इनसानी ज़िन्दगी को हलाल व हराम और जायज़-नाजायज़ (वैध-अवैध) की पाबन्दियों से जकड़नेवाला क़ानून व ज़ाब्ता सिर्फ़ अल्लाह का हो, दूसरों के लागू किए हुए क़ानून रद्द कर दिए जाएँ।

इसलिए हक़ीक़त में हज़रत ईसा *(अलैहि॰)*, हज़रत मूसा *(अलैहि॰)*, हज़रत मुहम्मद *(सल्ल॰)* और दूसरे नबियों के मिशन में बाल बराबर भी फ़र्क़ नहीं है। जिन लोगों ने अलग-अलग पैग़म्बरों के अलग-अलग मिशन बताए हैं और उनके बीच मक़सद और नौईयत के लिहाज़ से फ़र्क़ किया है, उन्होंने सख़्त ग़लती की है। मुल्क के मालिक की तरफ़ से उसकी रिआया की तरफ़ जो शख़्स भी मुक़र्रर किया जाएगा, उसके आने का मक़सद इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता कि वह रिआया को नाफ़रमानी और मनमानी से रोके और शिर्क से यानी इस बात से कि वे

इख़्तिदारे-आला और (सम्प्रभुत्व) में किसी हैसियत से दूसरों को मुल्क के मालिक के साथ शरीक ठहराएँ और अपनी वफ़ादारियों और इबादत-गुज़ारियों को उनमें बाँट दें मना करे और असल मालिक की ख़ालिस बन्दगी व इताअत और इबादत व वफ़ादारी की तरफ़ बुलाए।

अफ़सोस है कि मौजूदा इंजीलों में मसीह *(अलैहि॰)* के मिशन को इस वज़ाहत और तफ़सील के साथ नहीं बयान किया गया, जिस तरह ऊपर क़ुरआन में पेश किया गया है। फिर भी बिखरे इशारों की शक्ल में वे तीनों बुनियादी बातें हमें इनके अन्दर मिलती हैं जो ऊपर बयान हुई हैं। मिसाल के तौर पर यह बात कि मसीह सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी के क़ायल थे, उनके इस बयान से साफ़ ज़ाहिर होती है– "तू अपने प्रभु-परमेश्वर को प्रणाम (यानी सजदा) कर और सिर्फ़ उसी की इबादत कर।" (बाइबल, मत्ती, 4 : 10)

और सिर्फ़ यही नहीं कि वे इसके क़ायल थे, बल्कि उनकी सारी कोशिशों का मक़सद यह था कि ज़मीन पर अल्लाह के शरई हुक्मों का उसी तरह पालन हो जिस तरह आसमान पर उसके तकवीनी क़ानूनों (नैसर्गिक नियमों) का पालन हो रहा है– "तेरी बादशाही आए। तेरी मरज़ी जैसी आसमान पर पूरी होती है वैसी ज़मीन पर भी हो।" (बाइबल, मत्ती, 6 : 10)

फिर यह बात कि मसीह *(अलैहि॰)* अपने आपको नबी और आसमानी बादशाहत के नुमाइन्दे की हैसियत से पेश करते थे और इसी हैसियत से लोगों को अपनी इताअत की तरफ़ बुलाते थे, उनके बहुत-से अक़वाल (कथनों) से मालूम होती है। उन्होंने जब अपने वतन नासरा से अपने पैग़ाम की शुरुआत की तो उनके अपने ही भाई-बन्धु और शहर के लोग उनकी मुख़ालिफ़त के लिए खड़े हो गए। इसपर मत्ती, मरक़ुस और लूक़ा तीनों ने ही यह रिवायत की है कि उन्होंने फ़रमाया-

"नबी अपने वतन में मक़बूल (लोकप्रिय) नहीं होता।" (लूक़ा, 4 : 24)

और जब यरूशलम में उनके क़त्ल की साज़िशें होने लगीं और लोगों ने उनको मशविरा दिया कि आप कहीं और चले जाएँ, तो उन्होंने जवाब दिया–

"मुमकिन नहीं कि नबी यरूशलम से बाहर हलाक हो।" (लूक़ा, 13 : 33)

आख़िरी बार जब वे यरूशलम में दाख़िल हो रहे थे तो उनके शागिर्द ने ऊँची आवाज़ से कहना शुरू किया– "मुबारक है वह बादशाह, जो प्रभु के नाम से आता है।" (लूक़ा, 19 : 38) इसपर यहूदी उलमा नाराज़ हुए और उन्होंने हज़रत मसीह से कहा कि आप अपने शागिर्दों को चुप करें। इसपर उन्होंने कहा– "अगर ये चुप रहेंगे तो पत्थर पुकार उठेंगे।" (लूक़ा, 19 : 40) एक और मौक़े पर उन्होंने कहा– "ऐ मेहनत करनेवालो और बोझ से दबे हुए लोगो! सब मेरे पास आओ, मैं तुमको आराम दूँगा। मेरा जुआ अपने ऊपर उठा लो। ... क्योंकि मेरा जुआ सहज है और मेरा बोझ हल्का है।" (मत्ती, 11 : 28-30)

फिर यह बात कि मसीह *(अलैहि॰)* इनसान के बनाए हुए क़ानूनों के बजाय अल्लाह के क़ानून का पालन कराना चाहते थे, मत्ती और मरक़ुस की उस रिवायत से साफ़ तौर पर वाज़ेह होती है, जिसका ख़ुलासा यह है कि यहूदी उल्मा ने ईसा (*अलैहि॰*) से पूछा कि आपके शागिर्द बुज़ुर्गों की रिवायतों और परम्पराओं पर क्यों नहीं चलते और बिना हाथ धोए खाना खाते हैं। इसपर हज़रत मसीह *(अलैहि॰)* ने उनसे कहा– "तुम रियाकारों (पाखंडियों) की हालत वही है जिस पर यसायाह नबी की ज़बान से यह ताना (व्यंग्य) दिया गया है कि 'यह उम्मत ज़बान से तो मेरी

اَلْكُفْرَ قَالَ مَنْ اَنْصَارِيْٓ اِلَى اللّٰهِ ۭ قَالَ الْحَوَارِيُّوْنَ
نَحْنُ اَنْصَارُ اللّٰهِ ۚ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ ۚ وَاشْهَدْ بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ۝

तो उसने कहा, "कौन अल्लाह की राह में मेरा मददगार होता है?" हवारियों[49] ने जवाब दिया, "हम अल्लाह के मददगार हैं,[50] हम अल्लाह पर ईमान लाए, गवाह रहो कि हम

इज़्ज़त करती है मगर उनके दिल मुझसे दूर हैं, क्योंकि ये इनसानी अहकाम की तालीम (शिक्षा) देते हैं।' तुम लोग ख़ुदा के हुक्म को तो टाल देते हो और अपने गढ़े हुए क़ानूनों को बरक़रार रखते हो। अल्लाह ने तौरात में हुक्म दिया था कि माँ-बाप की इज़्ज़त करो और जो कोई माँ-बाप को बुरा कहे वह जान से मारा जाए, मगर तुम कहते हो कि अगर कोई शख़्स अपनी माँ या बाप से यह कह दे कि मेरी जो ख़िदमतें तुम्हारे काम आ सकती थीं उन्हें मैं ख़ुदा की नज़्र कर चुका हूँ, उसके लिए तो बिलकुल जाइज़ है कि वह माँ या बाप की कोई ख़िदमत करे न करे।" (मत्ती 15 : 2-9, मरक़ुस 7 : 5-13)

49. हवारी लफ़्ज़ के क़रीब-क़रीब वही मानी हैं जो अरबी में 'अनसार' (मददगार) लफ़्ज़ के हैं। बाइबल में आम तौर से हवारियों के बजाय 'शागिर्दों' का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है और कुछ जगहों पर उन्हें रसूल भी कहा गया है, मगर रसूल इस मानी में कि मसीह *(अलैहि०)* उनको तबलीग़ (प्रचार) के लिए भेजते थे, न कि इस मानी में कि ख़ुदा ने उनको रसूल मुक़र्रर किया था।

50. दीने-इस्लाम की इक़ामत (स्थापना) में हिस्सा लेने को क़ुरआन मजीद में अकसर जगहों पर 'अल्लाह की मदद करना' कहा गया है। ज़रूरत है कि इस बात को खोल कर वाज़ेह किया जाए। ज़िन्दगी के जिस दायरे में अल्लाह ने इनसान को इरादे व इख़्तियार की आज़ादी दी है, उसमें वह इनसान को इनकार करने या ईमान लाने, बग़ावत करने या इताअत (अज्ञा-पालन) करने में से किसी एक राह को अपनाने पर अपनी ख़ुदाई ताक़त से मजबूर नहीं करता। इसके बजाय वह दलील और नसीहत से इनसान को इस बात का क़ायल करना चाहता है कि इनकार व नाफ़रमानी और बग़ावत की आज़ादी रखने के बावजूद उसके लिए हक़ यही है और उसकी कामयाबी व नजात का रास्ता भी यही है कि अपने पैदा करनेवाले की बन्दगी व इताअत इख़्तियार करे। इस तरह समझाने-बुझाने और नसीहत के ज़रीए से बन्दों को सीधे रास्ते पर लाने की तदबीर करना, यह असल में अल्लाह का काम है, और जो बन्दे इस काम में अल्लाह का साथ दें, उनको अल्लाह अपना दोस्त और मददगार क़रार देता है, और यह वह बुलन्द से बुलन्द मक़ाम है जिसपर किसी बन्दे की पहुँच हो सकती है। नमाज़, रोज़ा और हर तरह की इबादतों में तो इनसान सिर्फ़ बन्दा और ग़ुलाम होता है, मगर दीन की तबलीग़ और प्रचार तथा दीन को क़ायम करने की कोशिशों में बन्दे को ख़ुदा का साथ और उसकी मददगारी का शर्फ़ (सौभाग्य) हासिल होता है जो इस दुनिया में रूहानी इर्तिक़ा यानी आध्यात्मिक विकास का सबसे ऊँचा दर्जा है।

رَبَّنَآ اٰمَنَّا بِمَآ اَنْزَلْتَ وَاتَّبَعْنَا الرَّسُوْلَ فَاكْتُبْنَا
مَعَ الشّٰهِدِيْنَ ۝٥٣ وَمَكَرُوْا وَمَكَرَ اللّٰهُ ؕ وَاللّٰهُ خَيْرُ
الْمٰكِرِيْنَ ۝٥٤ اِذْ قَالَ اللّٰهُ يٰعِيْسٰٓى اِنِّىْ مُتَوَفِّيْكَ
وَرَافِعُكَ اِلَىَّ وَمُطَهِّرُكَ مِنَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا

मुस्लिम (अल्लाह के फ़रमाँबरदार) हैं। (53) मालिक! जो फ़रमान तूने उतारा है, हमने
उसे मान लिया और रसूल की पैरवी क़बूल की। हमारा नाम गवाही देनेवालों में लिख ले।"
(54) फिर बनी-इसराईल (मसीह के ख़िलाफ़) ख़ुफ़िया तदबीरें करने लगे। जवाब में
अल्लाह ने भी ख़ुफ़िया तदबीर की, और ऐसी तदबीरों में अल्लाह सबसे बढ़कर है।
(55) (वह अल्लाह की ख़ुफ़िया तदबीर ही थी) जब उसने कहा कि "ऐ ईसा! अब मैं तुझे
वापस ले लूँगा[51] और तुझको अपनी तरफ़ उठा लूँगा, और जिन्होंने तेरा इनकार किया है

---

51. अरबी में लफ़्ज़ 'मु-त-वफ़्फ़ी-क' इस्तेमाल हुआ है। यह लफ़्ज़ तवफ़्फ़ी से बना है। 'तवफ़्फ़ी' के असल मानी लेना और वुसूलना है। 'जान निकालना' तो इस लफ़्ज़ का मजाज़ी (लाक्षणिक) इस्तेमाल है, न कि असल मानी। यहाँ यह लफ़्ज़ अंग्रेज़ी लफ़्ज़ 'To Recall' के मानी में इस्तेमाल हुआ है। यानी किसी ओहदेदार को उसके पद और काम से वापस बुला लेना। चूँकि बनी-इसराईल सदियों से बराबर नाफ़रमानी करते चले आ रहे थे, बार-बार ख़बरदार करने और समझाने-बुझाने के बावजूद उनकी क़ौमी रविश (सामूहिक नीति) बिगड़ती ही चली जा रही थी। एक के बाद एक कई नबियों को क़त्ल कर चुके थे और हर उस नेक बन्दे के ख़ून के प्यासे हो जाते थे जो नेकी और सच्चाई की तरफ़ उन्हें बुलाता था। इसलिए अल्लाह ने उनपर हुज्जत पूरी करने और उन्हें एक आख़िरी मौक़ा देने के लिए हज़रत ईसा और हज़रत यह्या *(अलैहि॰)* जैसे दो अज़ीम पैग़म्बरों को एक ही वक़्त में भेजा, जिनके साथ अल्लाह की तरफ़ से भेजे जाने के सुबूत में ऐसी खुली-खुली निशानियाँ थीं कि उनसे इनकार सिर्फ़ वही लोग कर सकते थे जो हक़ और सच्चाई से इन्तिहाई दर्जे की दुश्मनी रखते हों और हक़ के मुक़ाबले में जिनका दुस्साहस और बेबाकी हद को पहुँच चुकी हो, मगर बनी-इसराईल ने इस आख़िरी मौक़े को भी हाथ से खो दिया और सिर्फ़ इतना ही न किया कि इन दोनों पैग़म्बरों के पैग़ाम को ठुकरा दिया, बल्कि इनके एक सरदार ने एलानिया हज़रत यह्या *(अलैहि॰)* जैसे अज़ीम इनसान का सिर एक नाचनेवाली की फ़रमाइश पर उड़वा दिया और उनके उलमा व फ़ुक़हा (विद्वान और धर्मशास्त्रियों) ने साज़िश करके हज़रत ईसा को रूमी सल्तनत से मौत की सज़ा दिलवाने की

وَجَاعِلُ الَّذِيْنَ اتَّبَعُوْكَ فَوْقَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا

उनसे (यानी उनकी संगति से और उनके गन्दे माहौल में उनके साथ रहने से) तुझे पाक

कोशिश की। इसके बाद बनी-इसराईल को समझाने-बुझाने पर और ज़्यादा वक़्त और ताक़त लगाना बिलकुल बेकार था। इसलिए अल्लाह ने अपने पैग़म्बर को वापस बुला लिया और क़ियामत तक के लिए बनी-इसराईल पर अपमान और रुसवाई की ज़िन्दगी का फ़ैसला लिख दिया।

यहाँ यह बात और समझ लेनी चाहिए कि क़ुरआन का यह पूरा बयान असल में ईसाइयों के इस अक़ीदे को कि ईसा ख़ुदा हैं रद्द करने और उसको सुधारने के लिए है। ईसाइयों में इस झूठे अक़ीदे के पैदा होने के सबसे अहम सबब तीन थे—

1. हज़रत मसीह का चामत्कारिक तरीक़े पर पैदा होना;
2. उनके खुले तौर पर महसूस होनेवाले मोजज़े (चमत्कार);
3. उनका आसमान की तरफ़ उठाया जाना, जिसका ज़िक्र साफ़ अल्फ़ाज़ में उनकी किताबों में पाया जाता है।

क़ुरआन ने पहली बात को सही ठहराते हुए कहा कि मसीह का बिना बाप का पैदा होना सिर्फ़ अल्लाह की क़ुदरत का करिश्मा था। अल्लाह जिसको जिस तरह चाहता है, पैदा करता है। पैदाइश का यह ग़ैर-मामूली तरीक़ा हरगिज़ इस बात की दलील नहीं है कि मसीह ख़ुदा था या ख़ुदाई में कुछ भी हिस्सा रखता था।

दूसरी बात की भी क़ुरआन ने तस्दीक़ की और ख़ुद मसीह के मोजज़े (चमत्कार) एक-एक करके गिनाए, मगर बता दिया कि ये सारे काम उसने अल्लाह की इजाज़त से किए थे, अपनी इख़्तियार से कुछ भी नहीं किया। इसलिए इनमें से भी कोई बात ऐसी नहीं है जिससे तुम्हें यह नतीजा निकालने में कुछ भी हक़ पर कहा जा सके कि मसीह का ख़ुदाई में कोई हिस्सा था।

अब तीसरी बात के बारे में अगर ईसाइयों का कहना सिरे से बिलकुल ही ग़लत होता तब तो उनके इस अक़ीदे को कि ईसा मसीह ख़ुदा हैं, रद्द करने के लिए ज़रूरी था कि साफ़-साफ़ कह दिया जाता कि जिसे तुम ख़ुदा और ख़ुदा का बेटा बना रहे हो, वह मर कर मिट्टी में मिल चुका है, और ज़्यादा इत्मीनान चाहते हो तो फ़ुलाँ जगह जाकर उसकी क़ब्र देख लो, लेकिन ऐसा करने के बजाय क़ुरआन सिर्फ़ यही नहीं कि उनकी मौत को वाज़ेह तौर पर बयान नहीं करता और सिर्फ़ यही नहीं कि ऐसे लफ़्ज़ इस्तेमाल करता है जो ज़िन्दा उठाए जाने का कम से कम मतलब तो रखते ही हैं, बल्कि ईसाइयों को उलटा यह और बता देता है कि मसीह सिरे से सूली पर चढ़ाए ही नहीं गए, यानी वह जिसने आख़िरी वक़्त में 'ऐली ऐली लिमा शबक़तानी' कहा था और जिसकी सूली के तख़्ते पर चढ़ी हुई हालत की तस्वीर तुम लिए फिरते हो, वह मसीह न था, मसीह को तो इससे पहले ही अल्लाह ने उठा लिया था।

इसके बाद जो लोग क़ुरआन की आयतों से मसीह की मौत का मतलब निकालने की कोशिश करते हैं, वे असल में यह साबित करते हैं कि अल्लाह को साफ़-सुलझे अल्फ़ाज़ में अपना मतलब बयान करने तक का सलीक़ा नहीं। इस तरह की सोच से हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं।

إِلَىٰ يَوْمِ الْقِيَامَةِ ۖ ثُمَّ إِلَيَّ مَرْجِعُكُمْ فَأَحْكُمُ
بَيْنَكُمْ فِيمَا كُنتُمْ فِيهِ تَخْتَلِفُونَ ﴿٥٥﴾ فَأَمَّا
الَّذِينَ كَفَرُوا فَأُعَذِّبُهُمْ عَذَابًا شَدِيدًا فِي
الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ وَمَا لَهُم مِّن نَّاصِرِينَ ﴿٥٦﴾ وَأَمَّا
الَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ فَيُوَفِّيهِمْ أُجُورَهُمْ ۗ
وَاللَّهُ لَا يُحِبُّ الظَّالِمِينَ ﴿٥٧﴾ ذَٰلِكَ نَتْلُوهُ عَلَيْكَ
مِنَ الْآيَاتِ وَالذِّكْرِ الْحَكِيمِ ﴿٥٨﴾ إِنَّ مَثَلَ عِيسَىٰ

कर दूँगा और तेरी पैरवी करनेवालों को क़ियामत तक उन लोगों पर हावी रखूँगा जिन्होंने तेरा इनकार किया है।[52] फिर तुम सबको आख़िरकार मेरे पास आना है, उस वक़्त मैं उन बातों का फ़ैसला कर दूँगा जिनमें तुम्हारे बीच इख़्तिलाफ़ हुआ है। (56) जिन लोगों ने कुफ़्र और इनकार का रवैया अपनाया है, उन्हें दुनिया और आख़िरत दोनों में सख़्त सज़ा दूँगा और वे कोई मददगार न पाएँगे, (57) और जिन्होंने ईमान और नेक अमली का रवैया अपनाया है उन्हें उनके बदले पूरे-पूरे दे दिए जाएँगे, और (ख़ूब जान लो कि) ज़ालिमों से अल्लाह हरगिज़ मुहब्बत नहीं करता।''

(58) ऐ नबी! ये आयतें और हिक्मत (तत्त्वज्ञान) से भरे हुए बयान हैं जो हम तुम्हें सुना रहे हैं। (59) अल्लाह के नज़दीक ईसा की मिसाल आदम जैसी है कि अल्लाह ने

52. इनकार करनेवालों से मुराद यहूदी हैं जिनको हज़रत ईसा ने ईमान लाने की दावत दी और उन्होंने उसे ठुकरा दिया। इसके बरख़िलाफ़ पैरवी करनेवालों से मुराद अगर सही पैरवी करनेवाले हों तो वे सिर्फ़ मुसलमान हैं, और अगर इससे मुराद हज़रत ईसा *(अलैहि॰)* के तमाम माननेवाले हों तो इनमें ईसाई और मुसलमान दोनों शामिल हैं।

عِنْدَ اللّٰهِ كَمَثَلِ اٰدَمَ ؕ خَلَقَهٗ مِنْ تُرَابٍ ثُمَّ قَالَ
لَهٗ كُنْ فَيَكُوْنُ ﴿٥٩﴾ اَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ فَلَا تَكُنْ مِّنَ
الْمُمْتَرِيْنَ ﴿٦٠﴾ فَمَنْ حَآجَّكَ فِيْهِ مِنْ بَعْدِ مَا

उसे मिट्टी से पैदा किया और हुक्म दिया कि हो जा और वह हो गया।[53] (60) यह असल हक़ीक़त है जो तुम्हारे रब की तरफ़ से बताई जा रही है, और तुम उन लोगों में शामिल न हो जो इसमें शक करते हैं।[54]

(61) यह इल्म आ जाने के बाद अब जो कोई इस मामले में तुमसे झगड़ा करे तो

---

53. यानी अगर सिर्फ़ मोजज़े (चमत्कार) के तौर पर पैदाइश ही किसी को ख़ुदा या ख़ुदा का बेटा बनाने के लिए काफ़ी दलील है, तब तो फिर तुम्हें (यानी ईसाइयों को) आदम के बारे में सबसे पहले ऐसा अक़ीदा इख़्तियार करना चाहिए था, क्योंकि मसीह तो सिर्फ़ बिना-बाप ही के पैदा हुए थे, मगर आदम माँ और बाप दोनों के बिना पैदा हुए।

54. यहाँ तक के बयान में जो बुनियादी बातें ईसाइयों के सामने पेश की गई हैं वे इस तरह हैं—

पहली बात, जो उनके ज़ेहन में बिठाने की कोशिश की गई है, वह यह है कि मसीह को ख़ुदा बनाए जाने का अक़ीदा तुम्हारे अन्दर जिन वजहों से पैदा हुआ है उनमें से कोई भी वजह ऐसे अक़ीदे के लिए सही नहीं है। एक इनसान था जिसको अल्लाह ने अपनी मस्लहतों के तहत मुनासिब समझा कि उसको ग़ैर-मामूली तरीक़े से पैदा करे और उसे ऐसे मोजज़े (चमत्कार) अता करे जो नुबूवत की खुली अलामत हों और हक़ का इनकार करनेवालों को उसे सूली पर न चढ़ाने दे, बल्कि उसको अपने पास उठा ले। मालिक को इख़्तियार है, अपने जिस बन्दे को जिस तरह चाहे इस्तेमाल करे। सिर्फ़ इस ग़ैर-मामूली बर्ताव को देखकर यह नतीजा निकालना कैसे सही हो सकता है कि वह ख़ुद मालिक था, या मालिक का बेटा था, या मिल्कियत में उसका शरीक था।

दूसरी अहम बात जो उनको समझाई गई है वह यह है कि मसीह जिस चीज़ की तरफ़ बुलाने आए थे, वह वही चीज़ है जिसकी तरफ़ मुहम्मद *(सल्ल.)* बुला रहे हैं। दोनों के मिशन में बाल बराबर भी फ़र्क़ नहीं है।

तीसरी बुनियादी बात इस बयान में यह है कि मसीह के बाद उनके हवारियों का मज़हब भी यही इस्लाम था जो क़ुरआन पेश कर रहा है। हालाँकि बाद की ईसाइयत न उस तालीम (शिक्षा) पर क़ायम रही जो मसीह *(अलैहि.)* ने दी थी और न उस मज़हब पर चलनेवाली रही जिसपर मसीह के हवारी चलते थे।

جَآءَكَ مِنَ الْعِلْمِ فَقُلْ تَعَالَوْا نَدْعُ اَبْنَآءَنَا وَ
اَبْنَآءَكُمْ وَنِسَآءَنَا وَنِسَآءَكُمْ وَاَنْفُسَنَا وَاَنْفُسَكُمْ قف
ثُمَّ نَبْتَهِلْ فَنَجْعَلْ لَّعْنَتَ اللّٰهِ عَلَى الْكٰذِبِيْنَ ﴿٦١﴾
اِنَّ هٰذَا لَهُوَ الْقَصَصُ الْحَقُّ ۚ وَمَا مِنْ اِلٰهٍ اِلَّا
اللّٰهُ ۭ وَاِنَّ اللّٰهَ لَهُوَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿٦٢﴾ فَاِنْ

ऐ नबी! उससे कहो कि "आओ, हम और तुम ख़ुद भी आ जाएँ और अपने-अपने बाल-बच्चों को भी ले आएँ और ख़ुदा से दुआ करें कि जो झूठा हो उसपर ख़ुदा की लानत[55] हो।" (62) ये बिल्कुल सही वाक़िआत हैं, और सच तो यह है कि अल्लाह के सिवा कोई ख़ुदा नहीं है, और वह अल्लाह ही की हस्ती है जिसकी ताक़त सबसे बढ़कर है और जिसकी हिक्मत कायनात के निज़ाम में काम कर रही है। (63) तो अगर ये लोग

---

55. फ़ैसले की यह सूरत पेश करने का मक़सद दरअसुल यह साबित करना था कि नजरान का वफ्द (प्रतिनिधिमंडल) जान-बूझकर हठधर्मी कर रहा है। ऊपर जो बातें बयान की गई हैं, उनमें से किसी का जवाब भी उन लोगों के पास न था। ईसाई मज़हब के मुख़्तलिफ़ अक़ीदों में से किसी के हक़ में भी वे ख़ुद अपनी मुक़द्दस किताबों की ऐसी सनद (प्रमाण) न पाते थे, जिसकी बुनियाद पर पूरे यक़ीन के साथ यह दावा कर सकते कि उनका अक़ीदा सच्चाई के मुताबिक़ है और हक़ इसके ख़िलाफ़ बिलकुल नहीं है। फिर नबी *(सल्ल.)* की सीरत (आचरण), आपकी तालीम (शिक्षा) और आपके कारनामों को देखकर बड़ी तादाद में वफ्द के लोग अपने दिलों में आपकी नुबूव्वत के क़ायल भी हो गए थे या कम-से-कम अपने इनकार में डगमगा गए थे। इसलिए जब उनसे कहा गया कि अच्छा अगर तुम्हें अपने अक़ीदे के बारे में पूरा यक़ीन है कि वह हक़ के मुताबिक़ है तो आओ, हमारे मुक़ाबले में दुआ करो कि जो झूठा हो उसपर अल्लाह की लानत हो, तो इनमें से कोई इस मुक़ाबले के लिए तैयार न हुआ। इस तरह यह बात पूरे अरब के सामने खुल गई कि नजरानी मसीही धर्म के पेशवा और पादरी, जिनके तक़द्दुस (पावनता) का सिक्का दूर-दूर तक चल रहा है, असुल में वे ऐसे अक़ीदों की पैरवी कर रहे हैं जिनकी सच्चाई पर ख़ुद उन्हें पूरा भरोसा नहीं है।

تَوَلَّوْا فَاِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌۢ بِالْمُفْسِدِيْنَ ﴿٦٣﴾ قُلْ يٰٓاَهْلَ ع
الْكِتٰبِ تَعَالَوْا اِلٰى كَلِمَةٍ سَوَآءٍۢ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ
اَلَّا نَعْبُدَ اِلَّا اللّٰهَ وَلَا نُشْرِكَ بِهٖ شَيْـًٔا وَّلَا يَتَّخِذَ
بَعْضُنَا بَعْضًا اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ ۭ فَاِنْ تَوَلَّوْا
فَقُوْلُوا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ﴿٦٤﴾ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ
لِمَ تُحَآجُّوْنَ فِيْٓ اِبْرٰهِيْمَ وَمَآ اُنْزِلَتِ التَّوْرٰىةُ

(इस शर्त पर मुक़ाबले में आने से) मुँह मोड़ें तो (उनका फ़सादी होना साफ़ खुल जाएगा) और अल्लाह तो फ़सादियों के हाल को जानता ही है।

(64) (ऐ नबी!) कहो,[56] "ऐ किताबवालो! आओ एक ऐसी बात की तरफ़ जो हमारे और तुम्हारे बीच यकसाँ (समान) है[57], यह कि हम अल्लाह के सिवा किसी की बन्दगी न करें, उसके साथ किसी को साझी न ठहराएँ और हममें से कोई अल्लाह के सिवा किसी को अपना रब न बना ले।"—इस पैग़ाम को क़बूल करने से अगर वे मुँह मोड़ें तो साफ़ कह दो कि गवाह रहो, हम तो मुस्लिम (सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी और इताअत करनेवाले) हैं।"

(65) ऐ किताबवालो! तुम इबराहीम के बारे में हमसे क्यों झगड़ा करते हो? तौरात

56. यहाँ से एक तीसरा बयान शुरू होता है जिसके मज़मून (विषय) पर ग़ौर करने से अन्दाज़ा होता है कि यह बद्र और उहुद की लड़ाइयों के बीच के ज़माने का है। लेकिन इन तीनों बयानों के बीच मतलब और मानी की ऐसी क़रीबी मुनासबत पाई जाती है कि शुरू सूरा से लेकर यहाँ तक, किसी जगह बात का सिलसिला टूटता नज़र नहीं आता। इसी वजह से क़ुरआन की तफ़्सीर बयान करने वाले उलमा को गुमान हुआ कि ये बाद की आयतें भी नजरान के वफ़्द वाले बयान ही के सिलसिले की हैं, मगर यहाँ से जो बयान शुरू हो रहा है उसका अन्दाज़ साफ़ बता रहा है कि ये बातें यहूदियों से कही जा रही हैं।

57. यानी एक ऐसे अक़ीदे (धारणा) पर हमसे इत्तिफ़ाक़ (सहमति) कर लो जिसपर हम भी ईमान लाए हैं और जिसके सही होने से तुम भी इनकार नहीं कर सकते। तुम्हारे अपने नबियों से यही अक़ीदा नक़ल किया गया है। तुम्हारी अपनी मुक़द्दस किताबों में इसकी तालीम मौजूद है।

وَالْاِنْجِيْلُ اِلَّا مِنْ بَعْدِهٖ ؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ۝۶۵
هٰۤاَنْتُمْ هٰۤؤُلَاۤءِ حَاجَجْتُمْ فِيْمَا لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ فَلِمَ
تُحَآجُّوْنَ فِيْمَا لَيْسَ لَكُمْ بِهٖ عِلْمٌ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَ
اَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ۝۶۶ مَا كَانَ اِبْرٰهِيْمُ يَهُوْدِيًّا
وَّلَا نَصْرَانِيًّا وَّلٰكِنْ كَانَ حَنِيْفًا مُّسْلِمًا ؕ وَمَا
كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝۶۷ اِنَّ اَوْلَى النَّاسِ بِاِبْرٰهِيْمَ
لَلَّذِيْنَ اتَّبَعُوْهُ وَهٰذَا النَّبِيُّ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ؕ

और इंजील तो इबराहीम के बाद ही उतरी हैं। फिर क्या तुम इतनी बात भी नहीं समझते?[58] (66) — तुम लोग जिन चीज़ों का इल्म रखते हो उनमें तो ख़ूब बहसें कर चुके, अब उन मामलों में क्यों बहस करने चले हो जिनका तुम्हारे पास कुछ भी इल्म नहीं। अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते। (67) इबराहीम न यहूदी था, न ईसाई, बल्कि वह तो एक मुस्लिमे-यकसू (एकाग्रचित्त आज्ञापालक) था[59] और वह हरगिज़ शिर्क करनेवालों में से न था। (68) इबराहीम से ताल्लुक़ रखने का सबसे ज़्यादा हक़ अगर किसी को पहुँचता है तो उन लोगों को पहुँचता है जिन्होंने उसकी पैरवी की, और अब

58. यानी तुम्हारा यह यहूदी मत और यह ईसाई मत बहरहाल तौरात और इंजील के उतरने के बाद पैदा हुए हैं, और इबराहीम *(अलैहि॰)* इन दोनों के उतरने से बहुत पहले गुज़र चुके थे। अब एक मामूली अक़्ल का आदमी भी यह बात आसानी के साथ समझ सकता है कि इबराहीम *(अलैहि॰)* जिस मज़हब पर थे वह बहरहाल यहूदी मत या ईसाई मत तो न था। फिर अगर हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* सीधे रास्ते पर थे और उन्हें नजात (मुक्ति) हासिल हुई थी तो ज़रूरी हो जाता है कि आदमी का सीधे रास्ते पर होने और नजात पाने का दारोमदार यहूदी मत और ईसाई मत की पैरवी पर नहीं है। (देखें सूरा-2 बक़रा, हाशिया नं-135 और 141)

59. अस्ल अरबी में शब्द 'हनीफ़' इस्तेमाल हुआ है, जिससे मुराद ऐसा शख़्स है जो हर तरफ़ से रुख़ फेरकर एक ख़ास रास्ते पर चले। इसी मानी को हमने 'मुस्लिमे-यकसू' (एकाग्रचित्त आज्ञापालक) से अदा किया है।

وَ اللّٰهُ وَلِيُّ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٦٨﴾ وَدَّتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْ
اَهْلِ الْكِتٰبِ لَوْ يُضِلُّوْنَكُمْ ؕ وَمَا يُضِلُّوْنَ اِلَّاۤ
اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ﴿٦٩﴾ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ
تَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَاَنْتُمْ تَشْهَدُوْنَ ﴿٧٠﴾ يٰۤاَهْلَ
الْكِتٰبِ لِمَ تَلْبِسُوْنَ الْحَقَّ بِالْبَاطِلِ وَتَكْتُمُوْنَ الْحَقَّ

यह नबी और इसके माननेवाले इस ताल्लुक़ के ज़्यादा हक़दार है। अल्लाह सिर्फ़ उन्हीं का हिमायती और मददगार है जो ईमान रखते हों।

(69) (ऐ ईमान लानेवालो!) किताबवालों में से एक गरोह चाहता है कि किसी तरह तुम्हें सीधे रास्ते से हटा दे, हालाँकि सच तो यह है कि वे अपने सिवा किसी को गुमराही में नहीं डाल रहे हैं, मगर उन्हें इसका शुऊर नहीं है। (70) ऐ किताबवालो! क्यों अल्लाह की आयतों का इनकार करते हो, हालाँकि तुम ख़ुद उनको देख रहे हो?[60] (71) ऐ किताबवालो! क्यों हक़ को बातिल का रंग चढ़ाकर संदिग्ध बनाते हो? क्यों जानते-बूझते

60. दूसरा तर्जमा इस जुमले का यह भी हो सकता है कि 'तुम ख़ुद गवाही देते हो'। दोनों हालतों में असल मतलब में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। असल में नबी (सल्ल.) की पाकीज़ा ज़िन्दगी और सहाबा किराम *(रज़ि.)* की ज़िन्दगियों पर आपकी तालीम व तरबियत के हैरत-अंगेज़ असरात और वे ऊँचे दर्जे की बातें जो क़ुरआन में बयान हो रही थीं, ये सारी चीज़ें अल्लाह की ऐसी रौशन निशानियाँ थीं कि जो शख़्स नबियों के हालात और आसमानी किताबों के अन्दाज़ से वाक़िफ़ हो, उसके लिए इन निशानियों को देखकर नबी *(सल्ल.)* की नुबुव्वत में शक करना बहुत ही मुश्किल था। चुनाँचे यह एक हक़ीक़त है कि बहुत-से किताबवाले (ख़ास तौर से उनके आलिम) यह जान चुके थे कि मुहम्मद *(सल्ल.)* वही नबी हैं जिनके आने का वादा पिछले नबियों ने किया था, यहाँ तक कि कभी-कभी हक़ की ज़बरदस्त ताक़त से मजबूर होकर उनकी ज़बानें नबी *(सल्ल.)* की इस बात को मान लेती थीं कि मुहम्मद *(सल्ल.)* सच्चे नबी हैं, और आप *(सल्ल.)* की पेश की हुई तालीम (शिक्षा) हक़ है। इसी वजह से क़ुरआन बार-बार उनकी यह ग़लती उनको बताता है कि अल्लाह की जिन आयतों (निशानियों) को तुम आँखों से देख रहे हो, जिनके हक़ होने पर तुम ख़ुद गवाही देते हो, उनको तुम जान-बूझकर अपने मन की शरारत से झुठला रहे हो।

وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝٧١ وَقَالَتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْ اَهْلِ ع ٨ ١٥
الْكِتٰبِ اٰمِنُوْا بِالَّذِیْٓ اُنْزِلَ عَلَى الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا وَجْهَ
النَّهَارِ وَاكْفُرُوْٓا اٰخِرَهٗ لَعَلَّهُمْ یَرْجِعُوْنَ ۝٧٢ وَلَا تُؤْمِنُوْٓا
اِلَّا لِمَنْ تَبِعَ دِیْنَكُمْ ؕ قُلْ اِنَّ الْهُدٰى هُدَى اللّٰهِ ۙ
اَنْ یُّؤْتٰٓى اَحَدٌ مِّثْلَ مَآ اُوْتِیْتُمْ اَوْ یُحَآجُّوْكُمْ
عِنْدَ رَبِّكُمْ ؕ قُلْ اِنَّ الْفَضْلَ بِیَدِ اللّٰهِ ۚ یُؤْتِیْهِ مَنْ

हक़ (सत्य) को छिपाते हो?

(72) किताबवालों में से एक गरोह कहता है कि इस नबी के माननेवालों पर जो कुछ उतरा है, उसपर सुबह को ईमान लाओ और शाम को उससे इनकार कर दो, शायद इस तरकीब से ये लोग अपने ईमान से फिर जाएँ।[61] (73) यह भी ये लोग आपस में कहते हैं कि अपने मज़हबवाले के सिवा किसी की बात न मानो। ऐ नबी! इनसे कह दो कि "असल में हिदायत तो अल्लाह की हिदायत है और यह उसी की देन है कि किसी को वही कुछ दे दिया जाए जो कभी तुमको दिया गया था, या यह कि दूसरों को तुम्हारे रब के सामने पेश करने के लिए तुम्हारे ख़िलाफ़ ठोस हुज्जत मिल जाए।" ऐ नबी! इनसे कहो कि "इज़्ज़त और बड़ाई तो अल्लाह के इख़्तियार में है, जिसे चाहे दे, वह

---

61. यह उन चालों में से एक चाल थी जो मदीना के आस-पास रहनेवाले यहूदियों के लीडर और मज़हबी पेशवा इस्लाम के पैग़ाम को कमज़ोर करने के लिए चलते रहते थे। उन्होंने मुसलमानों को बददिल करने और नबी *(सल्ल०)* से आम लोगों को बदगुमान करने के लिए ख़ुफ़िया तौर पर आदमियों को तैयार करके भेजना शुरू किया, ताकि पहले सब लोगों के सामने इस्लाम क़बूल करें, फिर उससे फिर जाएँ, और इसके बाद जगह-जगह लोगों में यह बात फैलाते फिरें कि हमने इस्लाम में और मुसलमानों में और उनके पैग़म्बर में ये और ये ख़राबियाँ देखी हैं; तभी तो हम उनसे अलग हो गए।

يَّشَآءُ ۚ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿٧٣﴾ يَّخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ مَنْ
يَّشَآءُ ۚ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ﴿٧٤﴾ وَمِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ
مَنْ اِنْ تَاْمَنْهُ بِقِنْطَارٍ يُّؤَدِّهٖٓ اِلَيْكَ ۚ وَمِنْهُمْ مَّنْ
اِنْ تَاْمَنْهُ بِدِيْنَارٍ لَّا يُؤَدِّهٖٓ اِلَيْكَ اِلَّا مَا دُمْتَ
عَلَيْهِ قَآئِمًا ۭ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْا لَيْسَ عَلَيْنَا فِي

वसीउन्-नज़र (व्यापक दृष्टिवाला) है[62] और सब कुछ जानता है।[63] (74) अपनी रहमत (दयालुता) के लिए जिसको चाहता है ख़ास कर लेता है और उसका फ़ज़्ल बहुत बड़ा है।''

(75) किताबवालों में कोई तो ऐसा है कि अगर तुम उसपर भरोसा करते हुए माल और दौलत का एक ढेर भी दे दो तो वह तुम्हारा माल तुम्हें लौटा देगा, और किसी का हाल यह है कि अगर तुम एक दीनार के मामले में भी उसपर भरोसा करो तो वह अदा न करेगा, यह और बात है कि तुम उसके सिर पर सवार हो जाओ। उनकी इस अख़लाक़ी हालत की वजह यह है कि वे कहते हैं, ''उम्मियों (ग़ैर-यहूदियों) के मामले में

---

62. असल में अरबी लफ़्ज़ 'वासिअ' इस्तेमाल हुआ है जो आम तौर से क़ुरआन में तीन मौक़ों पर आया करता है। एक वह मौक़ा जहाँ इनसानों के किसी गरोह की तंग ख़याली (संकीर्ण विचार) और तंग-नज़री (संकीर्ण दृष्टि) का ज़िक्र आता है और उसे इस हक़ीक़त पर ख़बरदार करने की ज़रूरत पेश आती है कि अल्लाह तुम्हारी तरह तंग-नज़र नहीं है। दूसरा वह मौक़ा जहाँ किसी की कंजूसी, ओछेपन, तंगदिली (संकीर्ण हृदयता) और कायरता पर मलामत करते हुए यह बताना होता है कि अल्लाह खुले हाथोंवाला है, तुम्हारी तरह कंजूस नहीं है। तीसरा वह मौक़ा जहाँ लोग अपनी तंग (संकीर्ण) सोच की वजह से अल्लाह से भी इस तरह की बात जोड़ देते हैं जिससे पता चले कि वह भी तंग और सीमित सोचवाला है। ऐसे लोगों को ऐसे मौक़े पर यह बताना होता है कि अल्लाह ग़ैर-महदूद (असीम) है। (देखिए सूरा-2, बक़रा, हाशिया नं॰ 116)

63. यानी अल्लाह को मालूम है कि कौन बड़ाई और इज़्ज़त का हक़दार है।

الْأُمِّيّٖنَ سَبِيْلٌ ۚ وَيَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ وَهُمْ
يَعْلَمُوْنَ ۝٧٥ بَلٰى مَنْ اَوْفٰى بِعَهْدِهٖ وَاتَّقٰى فَاِنَّ اللّٰهَ
يُحِبُّ الْمُتَّقِيْنَ ۝٧٦ اِنَّ الَّذِيْنَ يَشْتَرُوْنَ بِعَهْدِ اللّٰهِ
وَاَيْمَانِهِمْ ثَمَنًا قَلِيْلًا اُولٰٓئِكَ لَا خَلَاقَ لَهُمْ فِى

हमारी कोई पकड़ नहीं है"।[64] और यह बात वे सिर्फ़ झूठ गढ़कर अल्लाह से जोड़ देते हैं, हालाँकि उन्हें मालूम है कि अल्लाह ने ऐसी कोई बात नहीं कही है। (76) आख़िर क्यों उनसे पूछताछ नहीं होगी? जो भी अपने अहद (वचन) को पूरा करेगा और बुराई से बचकर रहेगा वह अल्लाह का महबूब बनेगा, क्योंकि परहेज़गार लोग अल्लाह को पसन्द हैं। (77) रहे वे लोग जो अल्लाह के अहद और अपनी क़समों को थोड़ी क़ीमत पर बेच डालते हैं, तो उनके लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं, अल्लाह क़ियामत के दिन न

64. यह सिर्फ़ आम यहूदियों ही का जाहिलाना ख़याल न था, बल्कि उनके यहाँ की मज़हबी तालीम भी यही कुछ थी और उनके बड़े-बड़े मज़हबी पेशवाओं के फ़िक़ही अहकाम (धार्मिक नियम) ऐसे ही थे। बाइबल क़र्ज़ और सूद (ब्याज) से मुताल्लिक़ अहकाम में इसराईली और ग़ैर इसराईली के बीच साफ़ फ़र्क़ करती है (देखें व्यवस्थाविवरण 15:1-3, 23:20)। तलमूद में कहा गया है कि अगर किसी इसराईली का बैल किसी ग़ैर-इसराईली के बैल को घायल कर दे तो उसपर कोई जुर्माना नहीं, मगर ग़ैर-इसराईली का बैल अगर इसराईली के बैल को घायल कर दे तो उसपर जुर्माना है। अगर किसी आदमी को किसी जगह कोई गिरी-पड़ी चीज़ मिले तो उसे देखना चाहिए कि आस-पास में आबादी किन लोगों की है। अगर इसराईलियों की हो तो उसे एलान करना चाहिए और ग़ैर-इसराईली की हो तो उसे बिना-एलान वह चीज़ रख लेनी चाहिए।

रिब्बी शमूएल कहता है कि अगर इसराईली और ग़ैर-इसराईली का मुक़द्दमा क़ाज़ी (जज) के पास आए तो क़ाज़ी अगर इसराईली क़ानून के मुताबिक़ अपने मज़हबी इसराईली भाई को जितवा सकता हो तो उसके मुताबिक़ जितवाए और कहे कि यह हमारा क़ानून है, और अगर ग़ैर-इसराईलियों के क़ानून के तहत जितवा सकता हो तो उसके तहत जितवाए और कहे कि यह तुम्हारा क़ानून है, और अगर दोनों क़ानून साथ न देते हों तो फिर जिस चाल से भी वह इसराईली को कामयाब कर सकता हो, करे। रिब्बी शमूएल कहता है कि ग़ैर-इसराईली की हर ग़लती से फ़ायदा उठाना चाहिए। (तालमूदिक मस्सलेनी, पॉल-आइज़िक हरशों, लन्दन 1880 ई., पृ. 37, 210, 221)

الْاٰخِرَةِ وَلَا يُكَلِّمُهُمُ اللّٰهُ وَلَا يَنْظُرُ اِلَيْهِمْ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ وَلَا يُزَكِّيْهِمْ ۖ وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝ وَاِنَّ
مِنْهُمْ لَفَرِيْقًا يَّلْوٗنَ اَلْسِنَتَهُمْ بِالْكِتٰبِ لِتَحْسَبُوْهُ
مِنَ الْكِتٰبِ وَمَا هُوَ مِنَ الْكِتٰبِ ۚ وَيَقُوْلُوْنَ هُوَ مِنْ
عِنْدِ اللّٰهِ وَمَا هُوَ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۚ وَيَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ

उनसे बात करेगा, न उनकी तरफ़ देखेगा और न उन्हें पाक करेगा,[65] बल्कि उनके लिए तो बड़ी दर्दनाक सज़ा है।

(78) उनमें कुछ लोग ऐसे हैं जो किताब पढ़ते हुए इस तरह ज़बान का उलट-फेर करते हैं कि तुम समझो, जो कुछ वे पढ़ रहे हैं वह किताब ही की इबारत है, हालाँकि वह किताब की इबारत नहीं होती।[66] वे कहते हैं कि यह जो कुछ हम पढ़ रहे हैं, यह ख़ुदा की तरफ़ से है, हालाँकि वह ख़ुदा की तरफ़ से नहीं होता। वे जान-बूझकर झूठ बात को

65. वजह यह है कि ये लोग ऐसे-ऐसे सख़्त अख़लाक़ी जुर्म करने के बाद भी अपनी जगह यह समझते हैं कि क़ियामत के दिन बस यही लोग अल्लाह के क़रीबी बन्दे होंगे। इन्हीं पर अल्लाह मेहरबानी करेगा और जो थोड़ा-बहुत गुनाहों का मैल दुनिया में उनको लग गया है, वह भी बुज़ुर्गों की वजह से उनपर से धो डाला जाएगा, हक़ीक़त में वहाँ उनके साथ इसके बिलकुल उलटा मामला होगा।

66. इसका मतलब हालाँकि यह भी हो सकता है कि वे अल्लाह की किताब के मानी में रद्दो-बदल करते हैं या अल्फ़ाज़ का उलट-फेर करके कुछ-का-कुछ मतलब निकाल लेते हैं, लेकिन इसका असल मतलब यह है कि वे किताब को पढ़ते हुए किसी ख़ास लफ़्ज़ या जुमले को जो उनके फ़ायदे और भलाई का हो या उनके ख़ुद के गढ़े हुए नज़रियों और अक़ीदों के ख़िलाफ़ पड़ता हो, ज़बान को हिलाकर, कुछ का कुछ बना देते हैं। इसकी मिसालें क़ुरआन को माननेवाले अहले-किताब में भी पाई जाती हैं। मिसाल के तौर पर कुछ लोग जो नबी के बशर यानी इनसान होने के इनकारी हैं, वे क़ुरआन की इस आयत – "क़ुल इन्नमा अना ब-श-रुम्-मिस्लुकुम" में 'इन्नमा' को 'इन-न मा' पढ़ते हैं और इसका तर्जमा इस तरह करते हैं कि "ऐ नबी! कह दो कि 'बेशक, नहीं हूँ मैं इनसान तुम जैसा।"

الْكِتٰبِ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ﴿٧٨﴾ مَا كَانَ لِبَشَرٍ اَنْ يُّؤْتِيَهُ
اللّٰهُ الْكِتٰبَ وَالْحُكْمَ وَالنُّبُوَّةَ ثُمَّ يَقُوْلَ لِلنَّاسِ
كُوْنُوْا عِبَادًا لِّيْ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلٰكِنْ كُوْنُوْا رَبّٰنِيّٖنَ
بِمَا كُنْتُمْ تُعَلِّمُوْنَ الْكِتٰبَ وَبِمَا كُنْتُمْ تَدْرُسُوْنَ ﴿٧٩﴾
وَلَا يَاْمُرَكُمْ اَنْ تَتَّخِذُوا الْمَلٰٓئِكَةَ وَالنَّبِيّٖنَ اَرْبَابًا ؕ
اَيَاْمُرُكُمْ بِالْكُفْرِ بَعْدَ اِذْ اَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ﴿٨٠﴾ ع وَاِذْ

अल्लाह से जोड़ देते हैं।

(79) किसी इनसान का यह काम नहीं है कि अल्लाह तो उसको किताब और हुक्म और पैग़म्बरी दे और वह लोगों से कहे कि अल्लाह के बजाय तुम मेरे बन्दे बन जाओ। वह तो यही कहेगा कि सच्चे रब्बानी[67] बनो, जैसा कि उस किताब की तालीम का तक़ाज़ा है, जिसे तुम पढ़ते और पढ़ाते हो। (80) वह तुमसे हरगिज़ यह न कहेगा कि फ़रिश्तों को या पैग़म्बरों को अपना रब बना लो। क्या यह मुमकिन है कि एक नबी तुम्हें कुफ़्र (नाफ़रमानी) का हुक्म दे, जबकि तुम 'मुस्लिम' (ख़ुदा के फ़रमाँबरदार) हो?[68]

---

67. यहूदियों के यहाँ जो उलमा मज़हबी ओहदेदार होते थे और जिनका काम मज़हबी मामलों में लोगों की रहनुमाई करना और इबादतों को क़ायम करना और दीनी अहकाम को लागू करना होता था, उनके लिए लफ़्ज़ 'रब्बानी' इस्तेमाल किया जाता था, जैसा कि ख़ुद क़ुरआन में कहा गया है, "इनके रब्बानी और इनके उलमा इनको गुनाह की बातें करने और हराम के माल खाने से क्यों नहीं रोकते थे"(5:44)। इसी तरह ईसाइयों के यहाँ लफ़्ज़ डिवाइन (Divine) का मतलब भी वही है जो 'रब्बानी' शब्द का है।

68. यह उन तमाम ग़लत बातों की एक जामे तरदीद (व्यापक खंडन) है जो दुनिया की बहुत-सी क़ौमों ने अल्लाह की तरफ़ से आए हुए पैग़म्बरों से जोड़कर अपनी मज़हबी किताबों में शामिल कर दी हैं और जिनके मुताबिक़ कोई पैग़म्बर या फ़रिश्ता किसी न किसी तरह 'ख़ुदा' और माबूद (उपास्य) बना लिया जाता है। इन आयतों में यह आम क़ायदा और उसूल बताया गया है कि ऐसी कोई तालीम, जो अल्लाह के सिवा किसी और की बन्दगी और इबादत सिखाती हो और किसी बन्दे को बन्दगी की हद से बढ़ाकर 'ख़ुदा के मक़ाम' तक ले जाती हो, हरगिज़

أَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ النَّبِيّٖنَ لَمَآ اٰتَيْتُكُمْ مِّنْ كِتٰبٍ
وَّحِكْمَةٍ ثُمَّ جَآءَكُمْ رَسُوْلٌ مُّصَدِّقٌ لِّمَا مَعَكُمْ
لَتُؤْمِنُنَّ بِهٖ وَلَتَنْصُرُنَّهٗ ؕ قَالَ ءَاَقْرَرْتُمْ وَ اَخَذْتُمْ
عَلٰى ذٰلِكُمْ اِصْرِيْ ؕ قَالُوْٓا اَقْرَرْنَا ؕ قَالَ فَاشْهَدُوْا

(81) याद करो, अल्लाह ने पैग़म्बरों से अहद (वचन) लिया था कि "आज हमने तुम्हें किताब और हिकमत और समझ-बूझ दी है, कल अगर कोई दूसरा रसूल तुम्हारे पास उसी तालीम की तसदीक़ (पुष्टि) करता हुआ आए, जो पहले से तुम्हारे पास मौजूद है, तो तुमको उसपर ईमान लाना होगा और उसकी मदद करनी होगी।"[69] यह बात कहकर अल्लाह ने पूछा, "क्या तुम इसका इक़रार करते हो और इसपर मेरी तरफ़ से अहद की भारी ज़िम्मेदारी उठाते हो?" उन्होंने कहा, "हाँ, हम इक़रार करते हैं।" अल्लाह ने

किसी पैग़म्बर की दी हुई शिक्षा नहीं हो सकती। जहाँ किसी मज़हबी किताब में यह चीज़ नज़र आए, समझ लीजिए कि यह गुमराह और भटके हुए लोगों के फेर-बदल का नतीजा है।

69. मतलब यह है कि हर पैग़म्बर से इस बात का वादा लिया जाता रहा है — और जो वादा पैग़म्बर से लिया गया हो वह लाज़िमी तौर पर उसकी पैरवी करनेवालों पर भी आप-से-आप लागू हो जाता है — कि जो नबी हमारी तरफ़ से उस दीन (धर्म) को लोगों तक पहुँचाने और उसे क़ायम करने के लिए भेजा जाए, जिसको पहुँचाने और क़ायम करने के काम पर तुम्हें मुक़र्रर किया गया है, उसका तुम्हें साथ देना होगा। उसके साथ तास्सुब (पक्षपात) न बरतना, अपने आपको दीन का ठेकेदार न समझना, हक़ की मुख़ालिफ़त (विरोध) न करना, बल्कि जहाँ जो शख़्स भी हमारी तरफ़ से हक़ का झंडा ऊँचा करने के लिए उठाया जाए, उसके झंडे तले जमा हो जाना।

यहाँ इतनी बात और समझ लेनी चाहिए कि हज़रत मुहम्मद *(सल्ल०)* से पहले हर नबी से यही वादा लिया जाता रहा है और इसी बुनियाद पर हर नबी ने अपनी उम्मत (लोगों) को बाद के आनेवाले नबी की ख़बर दी है और उसका साथ देने का हुक्म दिया है। लेकिन न क़ुरआन में और न हदीस में, कहीं भी इस बात का पता नहीं चलता कि हज़रत मुहम्मद *(सल्ल०)* से ऐसा कोई वादा लिया गया हो या आपने अपनी उम्मत को किसी बाद के आनेवाले नबी की ख़बर देकर उसपर ईमान लाने का हुक्म दिया हो, बल्कि क़ुरआन में साफ़ तौर पर बताया गया है कि नबी *(सल्ल०)* 'ख़ातमुन्नबीयीन' (आख़िरी नबी) हैं और बहुत-सी हदीसों में नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया है कि "मेरे बाद कोई नबी आनेवाला नहीं है।"

وَ اَنَا مَعَكُمْ مِّنَ الشّٰهِدِيْنَ ﴿٨١﴾ فَمَنْ تَوَلّٰى بَعْدَ
ذٰلِكَ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ ﴿٨٢﴾ اَفَغَيْرَ دِيْنِ اللّٰهِ
يَبْغُوْنَ وَلَهٗٓ اَسْلَمَ مَنْ فِى السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ
طَوْعًا وَّكَرْهًا وَّاِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ ﴿٨٣﴾ قُلْ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ
وَمَآ اُنْزِلَ عَلَيْنَا وَمَآ اُنْزِلَ عَلٰٓى اِبْرٰهِيْمَ وَاِسْمٰعِيْلَ
وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ وَمَآ اُوْتِىَ مُوْسٰى
وَعِيْسٰى وَالنَّبِيُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ

फ़रमाया, ''अच्छा तो गवाह रहो और मैं भी तुम्हारे साथ गवाह हूँ। (82) इसके बाद जो अपने अहद से फिर जाए वही फ़ासिक़ (नाफ़रमान) है।''[70]

(83) अब क्या ये लोग अल्लाह की फ़रमाँबरदारी का तरीक़ा (यानी अल्लाह का दीन) छोड़कर कोई और तरीक़ा चाहते हैं? हालाँकि आसमानों और ज़मीन की सारी चीज़ें चाहे-अनचाहे अल्लाह ही की फ़रमाँबरदार (मुस्लिम) हैं।[71] और उसी की तरफ़ सबको पलटना है। (84) ऐ नबी! कहो कि, ''हम अल्लाह को मानते हैं, उस तालीम को मानते हैं जो हमपर उतारी गई है, उन तालीमात को भी मानते हैं जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब और याक़ूब की औलाद पर उतरी थीं और उन हिदायतों पर भी ईमान रखते हैं जो मूसा और ईसा और दूसरे पैग़म्बरों को उनके रब की तरफ़ से दी गईं। हम

70. यह बात कहने का मक़सद किताबवालों को ख़बरदार करना है कि तुम अल्लाह के अहद (वचन) को तोड़ रहे हो, मुहम्मद *(सल्ल०)* का इनकार और उनकी मुख़ालिफ़त करके उस वादे को तोड़ रहे हो जो तुम्हारे नबियों से लिया गया था, इसलिए अब तुम नाफ़रमान हो चुके हो, यानी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी से निकल गए हो।

71. यानी पूरी कायनात और कायनात की हर चीज़ का दीन (धर्म) तो यही इस्लाम यानी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी और उसकी बन्दगी है। अब तुम इस कायनात के अन्दर रहते हुए इस्लाम को छोड़कर ज़िन्दगी गुज़ारने का और कौन-सा तरीक़ा तलाश कर रहे हो?

اَحَدٍ مِّنْهُمْ ز وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ﴿٨٤﴾ وَمَنْ يَّبْتَغِ
غَيْرَ الْاِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ ۚ وَهُوَ فِي
الْاٰخِرَةِ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ ﴿٨٥﴾ كَيْفَ يَهْدِي اللّٰهُ قَوْمًا
كَفَرُوْا بَعْدَ اِيْمَانِهِمْ وَشَهِدُوْٓا اَنَّ الرَّسُوْلَ حَقٌّ وَّ
جَآءَهُمُ الْبَيِّنٰتُ ۭ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ﴿٨٦﴾
اُولٰٓئِكَ جَزَآؤُهُمْ اَنَّ عَلَيْهِمْ لَعْنَةَ اللّٰهِ وَالْمَلٰٓئِكَةِ

उनके बीच फ़र्क़ नहीं करते[72], और हम अल्लाह के फ़रमाँबरदार (मुस्लिम) हैं।" (85) इस फ़रमाँबरदारी (इस्लाम) के सिवा जो शख़्स कोई और तरीक़ा अपनाना चाहे उसका वह तरीक़ा हरगिज़ क़बूल न किया जाएगा और आख़िरत में वह नाकाम और नामुराद रहेगा।

(86) कैसे हो सकता है कि अल्लाह उन लोगों को हिदायत दे जिन्होंने ईमान की नेमत पा लेने के बाद फिर कुफ़्र (इनकार) इख़्तियार किया, हालाँकि वे ख़ुद इस बात पर गवाही दे चुके हैं कि यह रसूल हक़ पर है और उनके पास रौशन निशानियाँ भी आ चुकी हैं।[73] अल्लाह ज़ालिमों को तो हिदायत नहीं दिया करता। (87) उनके ज़ुल्म का सही

72. यानी हमारा तरीक़ा यह नहीं है कि हम किसी नबी को मानें और किसी को न मानें, किसी को झूठा कहें और किसी को सच्चा। हम भेदभाव और जाहिलाना तास्सुब (पक्षपात) से पाक हैं। दुनिया में जो भी अल्लाह का बन्दा जहाँ कहीं भी अल्लाह की तरफ़ से हक़ लेकर आया है, हम उसके हक़ पर होने की गवाही देते हैं।

73. यहाँ फिर उसी बात को दोहराया गया है जो इससे पहले बार-बार बयान की जा चुकी है कि नबी *(सल्ल.)* के ज़माने में अरब के यहूदी उलमा जान चुके थे और उनकी ज़बानों तक से इस बात की गवाही मिल चुकी थी कि मुहम्मद *(सल्ल.)* सच्चे नबी हैं और जो तालीम आप लाए हैं, वह वही तालीम है जो पिछले नबी लाते रहे हैं। इसके बाद इन यहूदी उलमा ने जो कुछ किया वह सिर्फ़ तास्सुब (पक्षपात), ज़िद और हक़ से दुश्मनी की उस पुरानी आदत का नतीजा था जिसके वे सदियों से मुजरिम चले आ रहे थे।

وَالنَّاسِ اَجْمَعِيْنَ ﴿٨٧﴾ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۚ لَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ
الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنْظَرُوْنَ ﴿٨٨﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا مِنْۢ
بَعْدِ ذٰلِكَ وَاَصْلَحُوْا ۟ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٨٩﴾ اِنَّ
الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بَعْدَ اِيْمَانِهِمْ ثُمَّ ازْدَادُوْا كُفْرًا لَّنْ
تُقْبَلَ تَوْبَتُهُمْ ۚ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الضَّآلُّوْنَ ﴿٩٠﴾ اِنَّ
الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَمَاتُوْا وَهُمْ كُفَّارٌ فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْ
اَحَدِهِمْ مِّلْءُ الْاَرْضِ ذَهَبًا وَّلَوِ افْتَدٰى بِهٖ ۭ
اُولٰٓئِكَ لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ وَّمَا لَهُمْ مِّنْ نّٰصِرِيْنَ ﴿٩١﴾ ع

बदला यही है कि उनपर अल्लाह और फ़रिश्तों और तमाम इनसानों की फिटकार है, (88) इसी हालत में वे हमेशा रहेंगे, न उनकी सज़ा में कमी होगी और न उन्हें मुहलत दी जाएगी। (89) अलबत्ता, वे लोग बच जाएँगे जो इसके बाद तौबा करके अपने रवैये में सुधार कर लें, अल्लाह बख़्शनेवाला और रहम करनेवाला है। (90) मगर जिन लोगों ने ईमान लाने के बाद कुफ़्र (इनकार) इख़्तियार किया, फिर अपने कुफ़्र में बढ़ते चले गए,[74] उनकी तौबा भी क़बूल न होगी, ऐसे लोग तो पक्के गुमराह हैं। (91) यक़ीन रखो, जिन लोगों ने कुफ़्र इख़्तियार किया और कुफ़्र ही की हालत में जान दी, उनमें से कोई अगर अपने आपको सज़ा से बचाने के लिए धरती भरकर भी सोना बदले में दे तो उसे क़बूल न किया जाएगा। ऐसे लोगों के लिए दर्दनाक सज़ा तैयार है, और वे अपना कोई मददगार न पाएँगे।

74. यानी सिर्फ़ इनकार ही पर बस न किया, बल्कि अमली तौर पर मुख़ालिफ़त की और रुकावटें भी खड़ी कीं। लोगों को ख़ुदा के रास्ते से रोकने की कोशिश में एड़ी-चोटी तक का ज़ोर लगाया, लोगों के अन्दर शक और शुबहात पैदा किए और बदगुमानियाँ फैलाईं, दिलों में वसवसे डाले और बुरी-से-बुरी साज़िशें रचीं और शरारतें कीं, ताकि नबी का मिशन किसी तरह कामयाब न होने पाए।

الجزء الرابع (٤)

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ ۬ؕ

وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ شَیْءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِیْمٌ ﴿۹۲﴾ كُلُّ
الطَّعَامِ كَانَ حِلًّا لِّبَنِیْۤ اِسْرَآءِیْلَ اِلَّا مَا حَرَّمَ
اِسْرَآءِیْلُ عَلٰی نَفْسِهٖ مِنْ قَبْلِ اَنْ تُنَزَّلَ التَّوْرٰىةُ ؕ

(92) तुम नेकी को नहीं पहुँच सकते जब तक कि अपनी वे चीज़ें (ख़ुदा की राह में) ख़र्च न करो जिन्हें तुम अज़ीज़ (प्रिय) रखते हो,[75] और जो कुछ तुम ख़र्च करोगे अल्लाह उससे बेख़बर न होगा।

(93) खाने की ये सारी चीज़ें (जो मुहम्मद की शरीअत में हलाल हैं) बनी-इसराईल के लिए भी हलाल थीं,[76] अलबत्ता कुछ चीज़ें ऐसी थीं जिन्हें तौरात के उतारे जाने से

75. इसका मक़सद उनकी उस ग़लतफ़हमी को दूर करना है जो वे 'नेकी' के बारे में रखते थे। उनके दिमाग़ों में नेकी का ऊँचे से ऊँचा तसव्वुर बस यह था कि सदियों की विरासत से "शरीअत की पाबन्दी" की जो एक ख़ास ज़ाहिरी शक्ल उनके यहाँ बन गई थी, उसका पूरा चर्बा आदमी अपनी ज़िन्दगी में उतार ले। और उनके उलमा की क़ानून में बाल की खाल निकालने की आदत से जो एक लम्बा-चौड़ा फ़िक़ही (मज़हबी) निज़ाम बन गया था उसके मुताबिक़ रात-दिन ज़िन्दगी के छोटे-छोटे, ज़िम्नी व फ़ुरूई (गौण एंव अप्रधान) मामलों की नाप-तौल आदमी करता रहे। शरीअत की पाबन्दी की ऊपरी सतह के नीचे आम तौर से यहूदियों के बड़े-बड़े 'दीनदार' लोग तंगदिली, लोभ-लालच, कंजूसी, हक़ को छिपाने और उसे बेचने जैसे ऐबों को छिपाए हुए थे और आम लोग उनको नेक समझते थे। इसी ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए उन्हें बताया जा रहा है कि 'नेक इनसान' होने का मक़ाम उन चीज़ों से ऊपर है जिनको तुमने भलाई और नेकी की कसौटी समझ रखा है। नेकी की असल रूह ख़ुदा की मुहब्बत है, ऐसी मुहब्बत कि अल्लाह को राज़ी करने के मुक़ाबले में दुनिया की कोई चीज़ ज़्यादा महबूब न हो। जिस चीज़ की मुहब्बत भी इनसान के दिल पर इतनी छा जाए कि वह उसे अल्लाह की मुहब्बत पर क़ुरबान न कर सकता हो, बस वह उसका बुत और माबूद (पूज्य प्रभू) है और जब तक उस बुत को आदमी तोड़ न दे, नेकी के दरवाज़े उसपर बन्द हैं। इस रूह से ख़ाली होने के बाद ज़ाहिरी शरीअत की पाबन्दी व दीनदारी की हैसियत सिर्फ़ उस चमकदार रंग-रौग़न की-सी है जो घुन खाई हुई लकड़ी पर फेर दिया गया हो। इनसान ऐसे रंग-रौग़नों से धोखा खा सकते हैं, मगर अल्लाह नहीं खा सकता।

76. क़ुरआन और मुहम्मद *(सल्ल॰)* की तालीमात पर जब यहूदियों के उलमा कोई उसूली एतिराज़

قُلْ فَأْتُوا بِالتَّوْرٰىةِ فَاتْلُوهَا إِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِينَ ﴿٩٣﴾
فَمَنِ افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ مِنْ بَعْدِ ذٰلِكَ
فَأُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُونَ ﴿٩٤﴾ قُلْ صَدَقَ اللّٰهُ قف
فَاتَّبِعُوا مِلَّةَ إِبْرٰهِيمَ حَنِيفًا ط وَمَا كَانَ مِنَ

أوقف جبرئيل عليه السلام

पहले[77] इसराईल (याक़ूब) ने ख़ुद अपने लिए हराम कर लिया था। उनसे कहो, अगर तुम (अपने एतिराज़ में) सच्चे हो तो लाओ तौरात और पेश करो उसकी कोई इबारत (अनुलेख) — (94) इसके बाद भी जो लोग अपनी झूठी गढ़ी हुई बातें अल्लाह से जोड़ते रहें, वही असल में ज़ालिम हैं। (95) कहो, अल्लाह ने जो कुछ कहा है, सच कहा है। तुमको यकसू होकर इबराहीम के तरीक़े की पैरवी करनी चाहिए, और इबराहीम शिर्क

न कर सके (क्योंकि दीन की बुनियाद जिन बातों पर है उनमें पिछले नबियों की तालीम और हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की तालीम में बाल बराबर भी फ़र्क़ न था) तो उन्होंने फ़िक़्ही (कर्मकांड से सम्बन्धित) एतिराज़ शुरू किए। इस सिलसिले में उनका पहला एतिराज़ यह था कि आपने खाने-पीने की कुछ ऐसी चीज़ों को हलाल कर दिया है जो पिछले नबियों के ज़माने से हराम चली आ रही हैं। इसी एतिराज़ का जवाब यहाँ दिया जा रहा है।

{इसी तरह एक एतिराज़ उनका यह भी था कि बैतुल-मक़्दिस को छोड़कर ख़ाना-काबा को क़िबला (उपासना-दिशा) क्यों बनाया गया। बाद की आयतें इसी एतिराज़ के जवाब में हैं।}

77. 'इसराईल' से मुराद अगर बनी-इसराईल लिए जाएँ तो मतलब यह होगा कि तौरात के उतरने से पहले कुछ चीज़ें बनी-इसराईल ने सिर्फ़ रस्मी तौर पर हराम ठहरा ली थीं। और अगर इसराईल से मुराद हज़रत याक़ूब *(अलैहि.)* लिए जाएँ तो इसका मतलब यह होगा कि याक़ूब *(अलैहि.)* ने अपनी किसी बीमारी या तबीयत को पसन्द न आने की वजह से कुछ चीज़ों को खाने से परहेज़ किया था और उनकी औलाद ने बाद में उन चीज़ों को अल्लाह की तरफ़ से मना किया हुआ समझ लिया। यही बाद की बात ज़्यादा मशहूर है और आगे आनेवाली आयत से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि ऊँट और ख़रगोश वग़ैरा के हराम किए जाने का जो हुक्म बाइबल में लिखा है वह असल तौरात का हुक्म नहीं है, बल्कि यहूदी उलमा ने बाद में इसे किताब में दाख़िल कर दिया है। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखिए सूरा-6, अनआम, हाशिया नं. 122)

الْمُشْرِكِيْنَ ۝٩٥ إِنَّ اَوَّلَ بَيْتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِىْ
بِبَكَّةَ مُبٰرَكًا وَّهُدًى لِّلْعٰلَمِيْنَ ۝٩٦ فِيْهِ اٰيٰتٌۢ

करनेवालों में से न था।[78]

(96) बेशक सबसे पहली इबादतगाह, जो इनसानों के लिए बनाई गई, वह वही है जो मक्का में है। उसको भलाई और बरकत दी गई थी और तमाम जहानवालों के लिए हिदायत का मर्कज़ (केन्द्र) बनाया गया था।[79] (97) उसमें खुली हुई निशानियाँ हैं,[80]

78. मतलब यह है कि फ़िक़ही (धर्मशास्त्रीय) इन छोटी-छोटी बातों में कहाँ जा फँसे हो। दीन की जड़ (मूल) तो एक अल्लाह की बन्दगी है, जिसे तुमने छोड़ दिया और शिर्क की गन्दगियों में फँस गए। अब फ़िक़ही और क़ानूनी मसलों में बहस करते हो, हालाँकि ये वे मसले हैं जो इबराहीम *(अलैहि०)* के असूल रास्ते से हट जाने के बाद गिरावट की लम्बी सदियों में तुम्हारे उलमा के बाल की खाल निकालने के रवैए से पैदा हुए हैं।

79. यहूदियों का दूसरा एतिराज़ यह था कि तुमने बैतुल-मक़्दिस को छोड़कर काबा को क़िबला क्यों बनाया, हालाँकि पिछले नबियों का क़िबला बैतुल-मक़्दिस ही था। इसका जवाब सूरा-2 अल-बक़रा, आयत-142 में दिया जा चुका है। लेकिन यहूदी इसके बाद भी अपने एतिराज़ पर अड़े रहे। इसलिए यहाँ फिर इसका जवाब दिया गया है। बैतुल-मक़्दिस के बारे में ख़ुद बाइबल में मौजूद है कि हज़रत मूसा *(अलैहि०)* के साढ़े चार सौ साल बाद हज़रत सुलैमान *(अलैहि०)* ने उसकी तामीर (निर्माण) की (1-राजा, 6 : 1)। और हज़रत सुलैमान *(अलैहि०)* ही के ज़माने में वह एक ख़ुदा को माननेवालों का क़िबला क़रार दिया गया (1-राजा, 8 : 29,30)। इसके बरख़िलाफ़ अरब की लगभग सभी किताबें और रिवायतें इस बात पर सहमत हैं कि काबा को हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* ने तामीर किया और वह हज़रत मूसा *(अलैहि०)* से आठ-नौ सौ साल पहले गुज़रे हैं। इसलिए काबा का पहले होना एक ऐसी हक़ीक़त है जिसमें किसी एतिराज़ की गुंजाइश नहीं।

80. यानी उस घर में ऐसी खुली निशानियाँ पाई जाती हैं जिनसे साबित होता है कि वह अल्लाह के यहाँ क़बूल हो चुका है और उसे अल्लाह ने अपने घर की हैसियत से पसन्द कर लिया है। यह काबा पहले तो वीरान और चटयल मैदान में बनाया गया और फिर अल्लाह ने इसके आस-पास रहनेवाले लोगों को रोज़ी (आजीविका) पहुँचाने का बेहतरीन इन्तिज़ाम कर दिया। ढाई हज़ार साल तक जाहिलियत की वजह से सारा अरब देश घोर बेअमनी (अशान्ति) की हालत में पड़ा रहा, लेकिन इस फ़साद से भरी ज़मीन पर काबा और काबा के आस-पास का ही एक इलाक़ा ऐसा था जिसमें अमन क़ायम रहा, बल्कि इसी काबा की यह बरकत थी कि साल भर में चार महीने के लिए पूरे मुल्क को इसकी वजह से अमन नसीब हो जाता था। फिर अभी आधी सदी

بَيِّنٰتٌ مَّقَامُ اِبْرٰهِيْمَ ۚ وَمَنْ دَخَلَهٗ كَانَ اٰمِنًا ؕ
وَلِلّٰهِ عَلَى النَّاسِ حِجُّ الْبَيْتِ مَنِ اسْتَطَاعَ اِلَيْهِ
سَبِيْلًا ؕ وَمَنْ كَفَرَ فَاِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنِ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٩٧﴾
قُلْ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ لِمَ تَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ۖۗ
وَاللّٰهُ شَهِيْدٌ عَلٰى مَا تَعْمَلُوْنَ ﴿٩٨﴾ قُلْ يٰۤاَهْلَ
الْكِتٰبِ لِمَ تَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ مَنْ اٰمَنَ
تَبْغُوْنَهَا عِوَجًا وَّاَنْتُمْ شُهَدَآءُ ؕ وَمَا اللّٰهُ

इबराहीम की इबादत की जगह है, और उसका हाल यह है कि जो उसमें दाख़िल हुआ महफ़ूज़ (सुरक्षित) हो गया।[81] लोगों पर अल्लाह का यह हक़ है कि जो उस घर तक पहुँचने की ताक़त रखता हो, वह उसका हज करे, और जो कोई इस हुक्म की पैरवी से इनकार करे तो उसे मालूम हो जाना चाहिए कि अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है।

(98) कहो, ऐ किताबवालो! तुम क्यों अल्लाह की बातें मानने से इनकार करते हो? जो हरकतें तुम कर रहे हो, अल्लाह सब कुछ देख रहा है। (99) कहो, ऐ किताबवालो! यह तुम्हारा क्या रवैया है कि जो अल्लाह की बात मानता है उसे भी तुम अल्लाह के रास्ते से रोकते हो और चाहते हो कि वह टेढ़ी राह चले, हालाँकि तुम ख़ुद (उसके सीधे

पहले ही सब देख चुके थे कि अबरहा ने जब काबा को ढाने के लिए मक्का पर हमला किया तो उसकी फ़ौज किस तरह अल्लाह के ग़ुस्से और अज़ाब की शिकार हुई। इस वाक़िए को उस वक़्त अरब का बच्चा-बच्चा जानता था और इसके चश्मदीद गवाह इन आयतों के उतरने के वक़्त मौजूद थे।

81. जाहिलियत (इस्लाम से पहले) के अंधेरे दौर में भी उस घर का यह एहतिराम था कि ख़ून के प्यासे दुश्मन एक-दूसरे को वहाँ देखते थे, लेकिन उनमें एक-दूसरे पर हाथ डालने की हिम्मत न होती थी।

بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ﴿٩٩﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا
اِنْ تُطِيْعُوْا فَرِيْقًا مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ يَرُدُّوْكُمْ
بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ كٰفِرِيْنَ ﴿١٠٠﴾ وَكَيْفَ تَكْفُرُوْنَ وَ
اَنْتُمْ تُتْلٰى عَلَيْكُمْ اٰيٰتُ اللّٰهِ وَفِيْكُمْ رَسُوْلُهٗ ؕ
وَمَنْ يَّعْتَصِمْ بِاللّٰهِ فَقَدْ هُدِيَ اِلٰى صِرَاطٍ
مُّسْتَقِيْمٍ ﴿١٠١﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ حَقَّ
تُقٰتِهٖ وَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ﴿١٠٢﴾ وَاعْتَصِمُوْا
بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا ۪ وَاذْكُرُوْا نِعْمَتَ

रास्ते पर होने पर) गवाह हो। तुम्हारी हरकतों से अल्लाह बेख़बर नहीं है।

(100) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अगर तुमने इन किताबवालों में से एक गरोह की बात मानी तो ये तुम्हें ईमान से फिर कुफ़्र (इनकार) की तरफ़ फेर ले जाएँगे।

(101) तुम्हारे लिए कुफ़्र की ओर जाने का अब क्या मौक़ा बाक़ी है, जबकि तुमको अल्लाह की आयतें सुनाई जा रही हैं और तुम्हारे बीच में उसका रसूल मौजूद है? जो अल्लाह का दामन मज़बूती के साथ थामेगा, वह ज़रूर सीधा रास्ता पा लेगा।

(102) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह से डरो जैसा कि उससे डरने का हक़ है। तुमको मौत न आए मगर इस हाल में कि तुम मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हो।[82]

(103) सब मिलकर अल्लाह की रस्सी[83] को मज़बूत पकड़ लो और तफ़रक़ा (फूट)

82. यानी मरते दम तक अल्लाह की फ़रमाँबरदारी और वफ़ादारी पर क़ायम रहो।
83. अल्लाह की रस्सी से मुराद उसका दीन (धर्म) है और दीन को रस्सी इसलिए कहा गया है कि यही वह रिश्ता है जो एक तरफ़ ईमानवालों का ताल्लुक़ अल्लाह से क़ायम करता है और दूसरी तरफ़ तमाम ईमान लानेवालों को आपस में मिलाकर एक जमाअत बनाता है। इस रस्सी को 'मज़बूत पकड़ने' का मतलब यह है कि मुसलमानों की निगाह में अस्ल अहमियत 'दीन' की है

اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ كُنْتُمْ اَعْدَآءً فَاَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِكُمْ
فَاَصْبَحْتُمْ بِنِعْمَتِهٖٓ اِخْوَانًا ۚ وَكُنْتُمْ عَلٰى شَفَا حُفْرَةٍ
مِّنَ النَّارِ فَاَنْقَذَكُمْ مِّنْهَا ۗ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ
اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ﴿١٠٣﴾ وَلْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ

में न पड़ो। अल्लाह के उस एहसान को याद रखो जो उसने तुमपर किया है। तुम एक-दूसरे के दुश्मन थे, उसने तुम्हारे दिल जोड़ दिए और उसकी मेहरबानी और फ़ज़्ल से तुम भाई-भाई बन गए। तुम आग से भरे हुए एक गढ़े के किनारे खड़े थे, अल्लाह ने तुमको उससे बचा लिया।[84] इस तरह अल्लाह अपनी निशानियाँ तुम्हारे सामने रौशन करता है, शायद कि इन निशानियों से तुम्हें अपनी कामयाबी का सीधा रास्ता नज़र आ जाए।[85]

(104) तुममें कुछ लोग तो ऐसे ज़रूर ही रहने चाहिएँ जो नेकी की तरफ़ बुलाएँ,

---

इसी से उनको दिलचस्पी हो, इसी को क़ायम करने की वे कोशिशें करते रहें और इसी की ख़िदमत के लिए आपस में मदद (सहयोग) करते रहें। जहाँ दीन की असूल और बुनियादी तालीम (शिक्षाओं) और उसकी इक़ामत (स्थापना) के नस्बुलऐन (लक्ष्य) से मुसलमान हटे और उनकी तवज्जोह (ध्यान) और दिलचस्पियाँ छोटी-छोटी और बेकार की बातों की तरफ़ फिरीं, फिर लाज़िमी तौर पर नतीजा यह होगा कि उनमें आपस में उसी तरह की फूट और इख़्तिलाफ़ पैदा हो जाएगा जिस तरह उनसे पहले के नबियों की उम्मतों में हुआ और वे ज़िन्दगी के असूल मक़सद को भुलाकर दुनिया और आख़िरत की रुसवाई में पड़कर रहे।

84. यह इशारा है उस हालत की तरफ़ जिसमें इस्लाम से पहले अरब के लोग पड़े हुए थे। क़बीलों की आपसी रंजिशें और दुश्मनियाँ, बात-बात पर उनकी लड़ाइयाँ और रात-दिन के ख़ून-ख़राबों की वजह से क़रीब था कि पूरी अरब-क़ौम तबाह और बरबाद हो जाती। इस आग में जल-मरने से अगर किसी चीज़ ने उन्हें बचाया तो वह यही इस्लाम की नेमत थी। ये आयतें जिस वक़्त उतरी हैं, उससे तीन-चार साल पहले ही मदीना के लोग मुसलमान हुए थे और इस्लाम की इस जीती-जागती नेमत को सब देख रहे थे कि औस और ख़ज़रज के वे क़बीले, जो सालहा-साल से एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे थे, वे आपस में घुल-मिलकर एक हो चुके थे और इन दोनों क़बीलों के लोग मक्का से आनेवाले मुहाजिरों के साथ क़ुरबानी और मुहब्बत का ऐसा बेमिसाल बर्ताव कर रहे थे जो एक ख़ानदान के लोग भी आपस में नहीं करते।

85. यानी अगर तुम आँखें रखते हो तो इन निशानियों को देखकर ख़ुद अन्दाज़ा कर सकते हो कि क्या तुम्हारी कामयाबी इस दीन को मज़बूती से थामने में है या इसे छोड़कर फिर उसी हालत

يَّدْعُوْنَ إِلَى الْخَيْرِ وَيَأْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ
عَنِ الْمُنْكَرِ ۭ وَاُولٰۗىِٕكَ ھُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ۝۱۰۴ وَلَا تَكُوْنُوْا
كَالَّذِيْنَ تَفَرَّقُوْا وَاخْتَلَفُوْا مِنْۢ بَعْدِ مَا جَاۗءَھُمُ
الْبَيِّنٰتُ ۭ وَاُولٰۗىِٕكَ لَھُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۝۱۰۵ يَّوْمَ
تَبْيَضُّ وُجُوْهٌ وَّتَسْوَدُّ وُجُوْهٌ ۚ فَاَمَّا الَّذِيْنَ
اسْوَدَّتْ وُجُوْھُھُمْ ۣ اَكَفَرْتُمْ بَعْدَ اِيْمَانِكُمْ

भलाई का हुक्म दें और बुराइयों से रोकते रहें। जो लोग यह काम करेंगे, वही कामयाब होंगे। (105) कहीं तुम उन लोगों की तरह न हो जाना जो फ़िरक़ों और गरोहों में बँट गए और खुली-खुली साफ़ हिदायतें पाने के बाद फिर इख़्तिलाफ़ात (विभेदों) में पड़ गए।[86] जिन्होंने यह रवैया अपनाया वे उस दिन सख़्त सज़ा पाएँगे, (106) जबकि कुछ लोग कामयाब होंगे और कुछ लोगों का मुँह काला होगा। जिनका मुँह काला होगा (उनसे कहा जाएगा कि) ईमान की नेमत पाने के बाद भी तुमने कुफ़्र (नाशुक्री) का रवैया अपनाया? अच्छा, तो अब नेमत के इस कुफ़्र के बदले में अज़ाब का मज़ा चखो।

की तरफ़ पलट जाने में जिसमें तुम पहले से पड़े हुए थे? क्या तुम्हारा असूल भलाई चाहनेवाला अल्लाह और उसका रसूल है या वे यहूदी और मुशरिक और मुनाफ़िक़ लोग जो तुमको पिछली हालत की तरफ़ पलटा ले जाने की कोशिश कर रहे हैं?

86. यह इशारा उन उम्मतों (समुदायों) की तरफ़ है जिन्होंने अल्लाह के पैग़म्बरों से दीने-हक़ की साफ़ और सीधी तालीम (शिक्षा) पाई, मगर कुछ वक़्त गुज़र जाने के बाद दीन (धर्म) की बुनियाद को छोड़ दिया और ऐसे मसलों की बुनियाद पर जिनका दीन से कोई ताल्लुक़ नहीं और जो ज़िमनी (गौण) और फ़ुरूई (अमौलिक) थीं, अलग-अलग फ़िरक़े बनाने शुरू कर दिए, जिनका दीन से कोई ताल्लुक़ नहीं था। फिर फ़िज़ूल और बेकार की बातों पर झगड़ने में ऐसे लगे कि न उन्हें उस काम का होश रहा जो अल्लाह ने उनके सुपुर्द किया था और न अक़ीदे और अख़्लाक़ के उन बुनियादी उसूलों से कोई दिलचस्पी रही जिनपर हक़ीक़त में इनसान की कामयाबी और ख़ुशक़िस्मती का दारोमदार है।

فَذُوْقُوا الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْفُرُوْنَ ۝١٠٦ وَ اَمَّا
الَّذِيْنَ ابْيَضَّتْ وُجُوْهُهُمْ فَفِيْ رَحْمَةِ اللّٰهِ ؕ
هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝١٠٧ تِلْكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتْلُوْهَا
عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ؕ وَمَا اللّٰهُ يُرِيْدُ ظُلْمًا لِّلْعٰلَمِيْنَ ۝١٠٨
وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَاِلَى اللّٰهِ
ع تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۝١٠٩ كُنْتُمْ خَيْرَ اُمَّةٍ اُخْرِجَتْ
لِلنَّاسِ تَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ

(107) रहे वे लोग जिनके चेहरे रौशन होंगे, तो उनको अल्लाह की रहमत की छाया में जगह मिलेगी और हमेशा वे इसी हालत में रहेंगे। (108) ये अल्लाह की बातें हैं जो हम तुम्हें ठीक-ठीक सुना रहे हैं, क्योंकि अल्लाह दुनियावालों पर ज़ुल्म करने का कोई इरादा नहीं रखता।[87] (109) ज़मीन और आसमानों की सारी चीज़ों का मालिक अल्लाह है और सारे मामले अल्लाह ही के सामने पेश होते हैं।

(110) अब दुनिया में वह बेहतरीन गरोह तुम हो जिसे इनसानों की रहनुमाई और सुधार के लिए मैदान में लाया गया है।[88] तुम नेकी का हुक्म देते हो, बुराई से रोकते हो

87. यानी चूँकि अल्लाह दुनियावालों पर ज़ुल्म करना नहीं चाहता, इसलिए वह उनको सीधा रास्ता भी बता रहा है और इस बात से भी उन्हें वक़्त से पहले आगाह किए देता है कि आख़िरकार वह किन बातों पर उनसे पूछताछ करनेवाला है। इसके बाद भी जो लोग टेढ़ी राह अपनाएँ और अपने ग़लत कामों से बाज़ न आएँ, तो वे अपने ऊपर ख़ुद ज़ुल्म करेंगे।

88. यह वही मज़मून (विषय) है जो सूरा-2,अल-बक़रा के 17 वें रुकू [आयत-142 से 147] में बयान हो चुका है। अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की पैरवी करनेवालों को बताया जा रहा है कि दुनिया की इमामत (नेतृत्व) और रहनुमाई के जिस पद से बनी-इसराईल क़ाबलियत खो देने की वजह से हटाए जा चुके हैं, उसपर अब तुमको बिठाया गया है। इसलिए कि किरदार और अख़लाक़ के लिहाज़ से अब तुम दुनिया में सबसे बेहतर इनसानी गरोह बन

وَتُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ؕ وَلَوْ اٰمَنَ اَهْلُ الْكِتٰبِ لَكَانَ
خَيْرًا لَّهُمْ ؕ مِنْهُمُ الْمُؤْمِنُوْنَ وَاَكْثَرُهُمُ الْفٰسِقُوْنَ ﴿۱۱۰﴾
لَنْ يَّضُرُّوْكُمْ اِلَّاۤ اَذًى ؕ وَاِنْ يُّقَاتِلُوْكُمْ يُوَلُّوْكُمُ
الْاَدْبَارَ ۫ ثُمَّ لَا يُنْصَرُوْنَ ﴿۱۱۱﴾ ضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ
الذِّلَّةُ اَيْنَ مَا ثُقِفُوْۤا اِلَّا بِحَبْلٍ مِّنَ اللّٰهِ وَحَبْلٍ
مِّنَ النَّاسِ وَبَآءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَضُرِبَتْ

और अल्लाह पर ईमान रखते हो। ये किताबवाले[89] ईमान लाते तो इन्हीं के हक़ में अच्छा था। हालाँकि इनमें कुछ लोग ईमानवाले भी पाए जाते हैं, मगर इनके ज़्यादातर लोग नाफ़रमान हैं। (111) ये तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, ज़्यादा से ज़्यादा बस कुछ सता सकते हैं। अगर ये तुमसे लड़ेंगे तो मुक़ाबले में पीठ दिखाएँगे, फिर ऐसे बेबस होंगे कि कहीं से इनको मदद न मिलेगी। (112) ये जहाँ भी पाए गए इनपर ज़िल्लत की मार ही पड़ी। कहीं अल्लाह के ज़िम्मे या इनसानों के ज़िम्मे में पनाह मिल गई तो यह और बात है।[90] ये अल्लाह के ग़ज़ब में घिर चुके हैं, इनपर मुहताजी और मग़लूबी (पराजय)

गए हो और तुममें वह सिफ़ात (गुण) पैदा हो गई हैं जो इमामते-अदलिया (न्याय पर आधारित नेतृत्व) के लिए ज़रूरी हैं, नेकी को क़ायम करने, बुराई को मिटाने का जज़्बा और अमल और एक अल्लाह जिसका कोई शरीक नहीं, को अक़ीदे के तौर पर और अमली तौर पर अपना इलाह (पूज्य प्रभु) और रब तसलीम करना। इसलिए अब यह काम तुम्हारे सुपुर्द किया गया है और तुम्हारे लिए ज़रूरी है कि अपनी ज़िम्मेदारियों को समझो और उन ग़लतियों से बचो जो तुमसे पहले के लोग कर चुके हैं। (देखिए सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया, 123 और 144)

89. यहाँ किताबवालों से मुराद बनी-इसराईल हैं।

90. यानी दुनिया में अगर कहीं उनको थोड़ा-बहुत अमन-चैन नसीब भी हुआ है तो वह उनके अपने बलबूते पर क़ायम किया हुआ नहीं है, बल्कि दूसरों की हिमायत और मेहरबानी का नतीजा है। कहीं किसी मुस्लिम हुकूमत ने उनको अल्लाह के नाम पर अमान दे दी और कहीं किसी ग़ैर-मुस्लिम हुकूमत ने अपने तौर पर उन्हें अपनी हिमायत (शरण) में ले लिया। इसी तरह कभी-कभी उन्हें दुनिया में कहीं ज़ोर पकड़ने का मौक़ा भी मिल गया है, लेकिन वह भी उनकी बाज़ुओं के बल पर नहीं, बल्कि सिर्फ़ किसी ताक़तवर पड़ोसी के बल पर।

عَلَيْهِمُ الْمَسْكَنَةُ ؕ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ كَانُوْا يَكْفُرُوْنَ
بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَيَقْتُلُوْنَ الْاَنْۢبِيَآءَ بِغَيْرِ حَقٍّ ؕ ذٰلِكَ
بِمَا عَصَوْا وَّكَانُوْا يَعْتَدُوْنَ ﴿۱۱۲﴾ لَيْسُوْا سَوَآءً ؕ مِنْ
اَهْلِ الْكِتٰبِ اُمَّةٌ قَآئِمَةٌ يَّتْلُوْنَ اٰيٰتِ اللّٰهِ اٰنَآءَ
الَّيْلِ وَهُمْ يَسْجُدُوْنَ ﴿۱۱۳﴾ يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ
الْاٰخِرِ وَيَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ
الْمُنْكَرِ وَيُسَارِعُوْنَ فِى الْخَيْرٰتِ ؕ وَاُولٰٓئِكَ مِنَ
الصّٰلِحِيْنَ ﴿۱۱۴﴾ وَمَا يَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَلَنْ يُّكْفَرُوْهُ ؕ
وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِالْمُتَّقِيْنَ ﴿۱۱۵﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَنْ
تُغْنِىَ عَنْهُمْ اَمْوَالُهُمْ وَلَآ اَوْلَادُهُمْ مِّنَ اللّٰهِ

मुसल्लत कर दी गई है और यह सब कुछ सिर्फ़ इस वजह से हुआ है कि ये अल्लाह की आयतों से इनकार करते रहे और इन्होंने पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल किया। यह इनकी नाफ़रमानियों और ज़्यादतियों का अंजाम है।

(113) मगर सभी किताबवाले बराबर नहीं है। इनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सीधे रास्ते पर क़ायम हैं, रातों को अल्लाह की आयतें पढ़ते हैं और उसके आगे सजदा करते हैं। (114) अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हैं, नेकी का हुक्म देते हैं, बुराइयों से रोकते हैं और भलाई के कामों में लगे रहते हैं। ये नेक लोग हैं, (115) और जो नेकी भी ये करेंगे उसकी नाक़द्री नहीं की जाएगी। अल्लाह परहेज़गार लोगों को ख़ूब जानता है। (116) रहे वे लोग जिन्होंने इनकार का रवैया अपनाया, तो अल्लाह के मुक़ाबले में उनको न उनका माल कुछ काम देगा, और न औलाद वे तो आग में

شَيْـًٔا ۚ وَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿١١٦﴾
مَثَلُ مَا يُنْفِقُوْنَ فِيْ هٰذِهِ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا كَمَثَلِ
رِيْحٍ فِيْهَا صِرٌّ اَصَابَتْ حَرْثَ قَوْمٍ ظَلَمُوْٓا
اَنْفُسَهُمْ فَاَهْلَكَتْهُ ۚ وَمَا ظَلَمَهُمُ اللّٰهُ وَلٰكِنْ
اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ﴿١١٧﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوْا

जानेवाले लोग हैं और आग ही में हमेशा रहेंगे। (117) जो कुछ वे अपनी इस दुनिया की ज़िन्दगी में ख़र्च कर रहे हैं उसकी मिसाल उस हवा जैसी है जिसमें पाला हो और वह उन लोगों की खेती पर चले जिन्होंने अपने ऊपर आप ज़ुल्म किया है और उसे बर्बाद करके रख दे।[91] अल्लाह ने उनपर ज़ुल्म नहीं किया, असल में ये ख़ुद अपने ऊपर ज़ुल्म कर रहे हैं।
(118) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अपने गरोह के लोगों के सिवा दूसरों को अपना

91. इस मिसाल में खेती से मुराद ज़िन्दगी की वह खेती है जिसकी फ़सल आदमी को आख़िरत में काटनी है। हवा से मुराद भलाई का वह ऊपरी जज़्बा है जिसकी वजह से हक़ का इनकार करनेवाले लोग आम लोगों की भलाई के कामों और ख़ैरात वग़ैरा में दौलत ख़र्च करते हैं। और पाले से मुराद सही ईमान और अल्लाह के क़ानून की पैरवी न करना है जिसकी वजह से उनकी पूरी ज़िन्दगी ग़लत होकर रह गई है। अल्लाह इस मिसाल से यह बताना चाहता है कि हवा खेतियों की परवरिश के लिए फ़ायदेमन्द है, लेकिन अगर उसी हवा में पाला हो तो वह खेती की परवरिश करने के बजाय उसे तबाह कर डालती है। इसी तरह ख़ैरात भी हालाँकि इनसान की आख़िरत की खेती को परवरिश करनेवाली चीज़ है मगर जब उसके अन्दर कुफ़्र (अधर्म) का ज़हर मिला हुआ हो तो यही ख़ैरात फ़ायदेमन्द होने के बजाय उलटी हलाक करनेवाली बन जाती है। ज़ाहिर है कि इनसान का मालिक अल्लाह है और उस माल का मालिक भी अल्लाह ही है जिसको इनसान इस्तेमाल कर रहा है, और यह मुल्क भी अल्लाह ही का है जिसके अन्दर रहकर इनसान काम कर रहा है। अब अगर अल्लाह का यह ग़ुलाम अपने मालिक के सबसे बड़े इक़्तिदार (सत्ता और अधिकार) को तसलीम नहीं करता या उसकी बन्दगी के साथ किसी और की नाजाइज़ बन्दगी को भी शरीक करता है और अल्लाह के माल और उसकी सल्तनत का ग़लत इस्तेमाल करते हुए उसके क़ानून और ज़ाब्ते की पाबन्दी नहीं करता, तो उसका इन सब चीज़ों का ग़लत इस्तेमाल ऊपर से नीचे तक जुर्म बन जाता है। अज्र और इनाम मिलना तो दूर की बात वह तो सिर्फ़ इस बात का हक़दार है कि इन तमाम हरकतों के लिए उसपर फ़ौजदारी का मुक़द्दमा क़ायम किया जाए। उसकी ख़ैरात (दान) की मिसाल ऐसी है जैसे एक नौकर अपने

بِطَانَةً مِّنْ دُوْنِكُمْ لَا يَأْلُوْنَكُمْ خَبَالًا ۭ وَدُّوْا
مَا عَنِتُّمْ ۚ قَدْ بَدَتِ الْبَغْضَاۗءُ مِنْ اَفْوَاهِهِمْ ښ
وَمَا تُخْفِيْ صُدُوْرُھُمْ اَكْبَرُ ۭ قَدْ بَيَّنَّا لَكُمُ
الْاٰيٰتِ اِنْ كُنْتُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿١١٨﴾ ھٰٓاَنْتُمْ اُولَاۗءِ

राज़दार न बनाओ। वे तुम्हारी ख़राबी के किसी मौक़े से फ़ायदा उठाने से नहीं चूकते।[92] तुम्हें जिस चीज़ से नुक़सान पहुँचे, वही उनको पसन्द है। उनके दिल का बुग़्ज़ (द्वेष) उनके मुँह से निकला पड़ता है, और जो कुछ वे अपने सीनों में छिपाए हुए हैं वह इससे बढ़कर है। हमने तुम्हें साफ़-साफ़ हिदायतें दे दी हैं। अगर तुम अक़्लवाले हो (तो इनसे ताल्लुक़ रखने में सावधानी बरतोगे)। (119) तुम उनसे मुहब्बत करते हो, मगर वे तुमसे

मालिक की इजाज़त के बिना उसका ख़ज़ाना खोले और जहाँ-जहाँ अपनी समझ से सही समझे, ख़र्च कर डाले।

92. मदीना के चारों तरफ़ जो यहूदी आबाद थे उनके साथ औस और ख़ज़रज क़बीले के लोगों की पुराने ज़माने से दोस्ती चली आ रही थी। निजी तौर पर भी इन क़बीलों के लोग यहूदियों से दोस्ताना ताल्लुक़ रखते थे और क़बीले की हैसियत से भी ये लोग एक-दूसरे के पड़ोसी और दोस्त थे। जब औस और ख़ज़रज के क़बीले मुसलमान हो गए तो इसके बाद भी वे यहूदियों के साथ वही पुराने ताल्लुक़ को निभाते रहे और इनके लोग अपने पिछले यहूदी दोस्तों से उसी मुहब्बत और ख़ुलूस के साथ मिलते रहे। लेकिन यहूदियों को अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद *(सल्ल०)* और आपके मिशन से जो दुश्मनी हो गई थी, उसकी वजह से वे किसी भी ऐसे आदमी के साथ साफ़ दिल से दोस्ताना ताल्लुक़ रखने के लिए तैयार न थे जो इस नई तहरीक (आन्दोलन) में शामिल हो गया हो। उन्होंने अनसार के साथ ज़ाहिर में तो वही ताल्लुक़ रखे जो पहले से चले आ रहे थे, मगर दिल में वे अब उनके सख़्त दुश्मन हो चुके थे और इस दिखावे की दोस्ती से नाजाइज़ फ़ायदा उठाकर हर वक़्त इस कोशिश में लगे रहते थे कि किसी तरह मुसलमानों की जमाअत में अन्दरूनी फ़ितना और फ़साद पैदा कर दें और उनके जमाअती राज़ मालूम करके उनके दुश्मनों तक पहुँचाएँ। अल्लाह तआला यहाँ उनकी इसी मुनाफ़िक़ाना रविश (कपटपूर्ण नीति) से मुसलमानों को ख़बरदार रहने की हिदायत कर रहा है।

تُحِبُّوْنَهُمْ وَلَا يُحِبُّوْنَكُمْ وَتُؤْمِنُوْنَ بِالْكِتٰبِ
كُلِّهٖ ۚ وَاِذَا لَقُوْكُمْ قَالُوْٓا اٰمَنَّا ۚۖ وَاِذَا خَلَوْا عَضُّوْا
عَلَيْكُمُ الْاَنَامِلَ مِنَ الْغَيْظِ ؕ قُلْ مُوْتُوْا بِغَيْظِكُمْ ؕ
اِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ الصُّدُوْرِ ﴿۱۱۹﴾ اِنْ تَمْسَسْكُمْ
حَسَنَةٌ تَسُؤْهُمْ ۫ وَاِنْ تُصِبْكُمْ سَيِّئَةٌ يَّفْرَحُوْا
بِهَا ؕ وَاِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا لَا يَضُرُّكُمْ كَيْدُهُمْ
شَيْـًٔا ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِمَا يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطٌ ﴿۱۲۰﴾ وَاِذْ غَدَوْتَ

मुहब्बत नहीं करते, हालाँकि तुम सभी आसमानी किताबों को मानते हो।[93] जब वे तुमसे मिलते हैं तो कहते हैं कि हमने भी (तुम्हारे रसूल और तुम्हारी किताब को) मान लिया है, मगर जब अलग होते हैं तो तुम्हारे ख़िलाफ़ उनके ग़ुस्से और ग़ज़ब का यह हाल होता है कि अपनी उँगलियाँ चबाने लगते हैं। – उनसे कह दो कि अपने ग़ुस्से में आप जल मरो, अल्लाह दिलों के छिपे हुए राज़ तक जानता है (120) – तुम्हारा भला होता है तो इनको बुरा मालूम होता है, और तुमपर कोई मुसीबत आती है तो ये ख़ुश होते हैं, मगर इनकी कोई चाल तुम्हारे ख़िलाफ़ कामयाब नहीं हो सकती, शर्त यह है कि तुम सब्र से काम लो और अल्लाह से डरकर काम करते रहो। जो कुछ ये कर रहे हैं, अल्लाह उसपर हावी है।

(121) (ऐ पैग़म्बर![94] मुसलमानों के सामने उस मौक़े की चर्चा करो) जब तुम

93. यानी यह बड़ी अजीब बात है कि शिकायत बजाय इसके कि तुम्हें उनसे होती, उनको तुमसे है। तुम तो क़ुरआन के साथ तौरात को भी मानते हो, इसलिए उनको तुमसे शिकायत होने की कोई मुनासिब वजह नहीं हो सकती। हाँ, अगर शिकायत हो सकती थी तो तुम्हें उनसे हो सकती थी, क्योंकि वे क़ुरआन को नहीं मानते।

94. यहाँ से चौथी तक़रीर शुरू होती है। यह उहुद की लड़ाई के बाद उतरी और इसमें उहुद की लड़ाई पर तबसिरा (समीक्षा) किया गया है। ऊपर की तक़रीर ख़त्म करते हुए आख़िर में कहा

गया था कि "उनकी कोई चाल तुम्हारे ख़िलाफ़ कामयाब नहीं हो सकती, शर्त यह है कि तुम सब्र से काम लो और अल्लाह से डरकर काम करते रहो।" अब चूँकि उहुद के मैदान में मुसलमानों की हार की असूल वजह ही यह बनी कि उनके अन्दर सब्र की भी कमी थी और उनके लोगों से कुछ ऐसी ग़लतियाँ भी हो गई थीं जो ख़ुदातरसी के ख़िलाफ़ थीं। इसलिए यह तक़रीर जिसमें उन्हें इन कमज़ोरियों पर ख़बरदार किया गया है, ऊपर के फ़िक़रे (वाक्य) के फ़ौरन बाद ही दर्ज किया गया।

इस तक़रीर के बयान का अन्दाज़ यह है कि उहुद की लड़ाई के सिलसिले में जितनी अहम वाक़िए (घटनाएँ) पेश आए थे, उनमें से एक-एक को लेकर उसपर कुछ जँचे-तुले जुम्लों में निहायत सबक़आमोज़ तबसिरा किाया गया है। इसको समझने के लिए वाक़िआ (घटनाओं) से जुड़े पसमंज़र को निगाहों में रखना ज़रूरी है।

शव्वाल सन् 03 हिजरी के शुरू में क़ुरैश के इस्लाम दुश्मनों ने लगभग तीन हज़ार की सेना लेकर मदीना पर हमला किया। ज़्यादा तादाद में होने के साथ-साथ उनके पास लड़ाई का सामान भी मुसलमानों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा था और फिर ये बद्र की लड़ाई की हार का बदला लेने के जोश से भी भरे हुए थे। नबी *(सल्ल.)* और तजुर्बेकार सहाबा *(रज़ि.)* की राय यह थी कि मदीना में ही में रहकर अपना बचाव किया जाए, मगर कुछ नौजवानों ने — जो शहीद होने के शौक़ से बेताब थे और जिन्हें बद्र की लड़ाई में शामिल होने का मौक़ा न मिला था — बाहर निकलकर लड़ने की ज़िद की। आख़िरकार उनकी ज़िद पर मजबूर होकर नबी *(सल्ल.)* ने बाहर निकलने ही का फ़ैसला कर लिया। एक हज़ार आदमी आपके साथ निकले, मगर शौत नामक जगह पर पहुँचकर अब्दुल्लाह-इब्ने-उबई अपने तीन सौ साथियों को लेकर अलग हो गया। ऐन वक़्त पर उसकी इस हरकत से मुसलमानों की सेना में अच्छी-ख़ासी बेचैनी फैल गई, यहाँ तक कि क़बीला बनू-सलमा और बनू-हारिसा के लोग तो ऐसे घबराए कि उन्होंने भी पलट जाने का इरादा कर लिया था, मगर फिर साहसी और हौसलामन्द सहाबियों की कोशिशों से यह बेचैनी दूर हो गई। इन बाक़ी बचे सात सौ आदमियों के साथ नबी *(सल्ल.)* आगे बढ़े और उहुद की पहाड़ी के दामन में (मदीना से लगभग चार मील की दूरी पर) अपनी फ़ौज को सफ़ में इस तरह खड़ा किया कि पहाड़ पीछे था और क़ुरैश का लश्कर सामने। पहलू में सिर्फ़ एक दर्रा ऐसा था जिससे अचानक हमले का ख़तरा हो सकता था। वहाँ आप *(सल्ल.)* ने अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर की रहनुमाई में पचास तीरन्दाज़ बिठा दिए और उनको ताकीद कर दी कि "किसी को हमारे क़रीब न फटकने देना, और किसी हाल में भी यहाँ से न हटना। अगर तुम देखो कि हमारी बोटियाँ परिन्दे नोचे लिए जाते हैं, तब भी तुम उस जगह से न टलना।" इसके बाद लड़ाई शुरू हुई। शुरू में मुसलमानों का पल्ला भारी रहा, यहाँ तक कि दुश्मन की फ़ौज में बेचैनी फैल गई, लेकिन इस शुरुआती कामयाबी को पूरी तरह से जीत में बदलने के बजाय मुसलमान ग़नीमत के माल के लालच में पड़ गए और उन्होंने दुश्मन की फ़ौज को लूटना शुरू कर दिया। उधर जिन तीरन्दाज़ों को नबी *(सल्ल०)* ने पिछले हिस्से की हिफ़ाज़त के लिए बिठाया था, उन्होंने जो देखा कि दुश्मन भाग निकला है और ग़नीमत का माल लूटा जा रह है, तो वे भी अपनी जगह छोड़कर ग़नीमत के माल की तरफ़ लपके। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर ने उनको नबी *(सल्ल०)* का ताकीदी हुक्म याद दिलाकर बहुत रोका मगर कुछ ही आदमियों के सिवा वहाँ कोई न रुका।

مِنْ اَهْلِكَ تُبَوِّئُ الْمُؤْمِنِيْنَ مَقَاعِدَ لِلْقِتَالِ ؕ
وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝ اِذْ هَمَّتْ طَّآئِفَتٰنِ مِنْكُمْ
اَنْ تَفْشَلَا ۙ وَاللّٰهُ وَلِيُّهُمَا ؕ وَعَلَى اللّٰهِ فَلْيَتَوَكَّلِ

सुबह-सवेरे अपने घर से निकले थे और (उहुद के मैदान में) मुसलमानों को जंग के लिए जगह-जगह तैनात कर रहे थे। अल्लाह सारी बातें सुनता है और वह बहुत ही ख़बर रखनेवाला है।

(122) याद करो जब तुममें से दो गरोह बुज़दिली दिखाने पर आमादा हो गए थे[95], हालाँकि अल्लाह उनकी मदद पर मौजूद था, और ईमानवालों को अल्लाह ही पर भरोसा

इस मौक़े से ख़ालिद-बिन-वलीद ने, जो उस वक़्त दुश्मन की सेना की एक टुकड़ी के कमांडर थे, मौक़े का फ़ायदा उठाया और पहाड़ी का चक्कर काटकर पहलू के दर्रे से हमला कर दिया। अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर ने, जिनके साथ सिर्फ़ कुछ ही आदमी रह गए थे, इस हमले को रोकना चाहा, लेकिन रोक न सके और यह सैलाब यकायक मुसलमानों पर टूट पड़ा। दूसरी तरफ़ जो दुश्मन भाग गए थे, उन्होंने भी पलटकर हमला कर दिया। इस तरह लड़ाई का पाँसा एकदम पलट गया और मुसलमान उम्मीद के ख़िलाफ़ अचानक ऐसी हालत पैदा हो जाने पर इतना घबराए कि उनकी फ़ौज का एक बड़ा हिस्सा तितर-बितर होकर भाग निकला। फिर भी कुछ बहादुर सिपाही अभी तक मैदान में डटे हुए थे। इतने में कहीं से यह अफ़वाह उड़ गई कि नबी *(सल्ल०)* शहीद हो गए। इस ख़बर ने सहाबा के रहे-सहे होश व हवास भी गुम कर दिए और बाक़ी बचे हुए लोग भी हिम्मत हार बैठे। उस समय नबी *(सल्ल०)* के आस-पास दस-बारह जाँनिसार रह गए थे और आप खुद ज़ख़्मी हो चुके थे। मुकम्मल हार में कोई कसर बाक़ी न थी, लेकिन ठीक उसी वक़्त सहाबा *(रज़ि०)* को मालूम हो गया कि प्यारे नबी *(सल्ल०)* ज़िन्दा हैं। चुनाँचे वे हर तरफ़ से सिमटकर फिर आपके पास जमा हो गए और आपको सलामत पहाड़ी की तरफ़ ले गए। इस मौक़े पर की यह घटना एक पहेली है जो हल नहीं हो सकी कि वह क्या चीज़ थी कि जिसने मक्का के दुश्मनों को ख़ुद ही वापस फेर दिया। मुसलमान इतने बिखर चुके थे कि उनका फिर जमा होकर बाक़ाइदा जंग करना मुश्किल था। अगर दुश्मन अपनी जीत को अंजाम तक पहुँचाने की कोशिश करते तो उनकी कामयाबी नामुमकिन न थी, लेकिन न जाने किस तरह वे आप-ही-आप मैदान छोड़कर वापस चले गए।

95. यह इशारा है बनू-सलमा और बनू-हारिसा क़बीले की तरफ़ जो अब्दुल्लाह-बिन-उबई और उसके साथियों की वापसी के बाद हिम्मत हार बैठे थे।

الْمُؤْمِنُوْنَ ﴿١٢٢﴾ وَلَقَدْ نَصَرَكُمُ اللّٰهُ بِبَدْرٍ وَّ
اَنْتُمْ اَذِلَّةٌ ۚ فَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿١٢٣﴾
اِذْ تَقُوْلُ لِلْمُؤْمِنِيْنَ اَلَنْ يَّكْفِيَكُمْ اَنْ يُّمِدَّكُمْ
رَبُّكُمْ بِثَلٰثَةِ اٰلٰفٍ مِّنَ الْمَلٰٓئِكَةِ مُنْزَلِيْنَ ﴿١٢٤﴾ ؕ
بَلٰٓى ۙ اِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا وَيَاْتُوْكُمْ مِّنْ فَوْرِهِمْ
هٰذَا يُمْدِدْكُمْ رَبُّكُمْ بِخَمْسَةِ اٰلٰفٍ مِّنَ الْمَلٰٓئِكَةِ
مُسَوِّمِيْنَ ﴿١٢٥﴾ وَمَا جَعَلَهُ اللّٰهُ اِلَّا بُشْرٰى لَكُمْ ع
وَلِتَطْمَئِنَّ قُلُوْبُكُمْ بِهٖ ؕ وَمَا النَّصْرُ اِلَّا مِنْ

रखना चाहिए। (123) आख़िर इससे पहले बद्र की लड़ाई में अल्लाह तुम्हारी मदद कर चुका था, हालाँकि उस वक़्त तुम बहुत कमज़ोर थे। इसलिए तुमको चाहिए कि अल्लाह की नाशुक्री से बचो, उम्मीद है कि अब तुम शुक्रगुज़ार बनोगे।

(124) (ऐ नबी!) याद करो जब तुम ईमानवालों से कह रहे थे, "क्या तुम्हारे लिए यह बात काफ़ी नहीं कि अल्लाह तीन हज़ार फ़रिश्ते उतारकर तुम्हारी मदद करे?"[96] (125) — बेशक अगर तुम सब्र से काम लो और अल्लाह से डरते हुए काम करो, तो जिस वक़्त दुश्मन तुम्हारे ऊपर चढ़कर आएँगे, उसी वक़्त तुम्हारा रब (तीन हज़ार नहीं) पाँच हज़ार निशानवाले (ख़ास) फ़रिश्तों से तुम्हारी मदद करेगा। (126) यह बात अल्लाह ने तुम्हें इसलिए बता दी है कि तुम ख़ुश हो जाओ और तुम्हारे दिल मुतमइन हो जाएँ। फ़तह और मदद जो कुछ भी है अल्लाह की तरफ़ से है, जो बड़ी ताक़तवाला और

---

96. मुसलमानों ने जब देखा कि एक तरफ़ दुश्मन तीन हज़ार हैं और हमारे एक हज़ार में से भी तीन सौ अलग हो गए हैं, तो उनके दिल टूटने लगे। उस समय नबी *(सल्ल०)* ने उनसे यह बात कही थी।

عِنْدِ اللّٰهِ الْعَزِيْزِ الْحَكِيْمِ ﴿١٢٦﴾ لِيَقْطَعَ طَرَفًا مِّنَ
الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَوْ يَكْبِتَهُمْ فَيَنْقَلِبُوْا خَآئِبِيْنَ ﴿١٢٧﴾
لَيْسَ لَكَ مِنَ الْاَمْرِ شَيْءٌ اَوْ يَتُوْبَ عَلَيْهِمْ اَوْ
يُعَذِّبَهُمْ فَاِنَّهُمْ ظٰلِمُوْنَ ﴿١٢٨﴾ وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ
وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ يَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَاۗءُ وَيُعَذِّبُ
مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٢٩﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ ع

सूझ-बूझवाला है। (127) (और यह मदद वह तुम्हें इसलिए देगा) ताकि कुफ़्र (इनकार) की राह चलनेवालों का एक बाज़ू काट दे, या उनको ऐसी रुसवाकुन शिकस्त (पराजय) दे कि वे नाकामी के साथ परास्त हो जाएँ।

(128) (ऐ पैग़म्बर!) फ़ैसले के इख़्तियारों में तुम्हारा कोई हिस्सा नहीं, अल्लाह को इख़्तियार है, चाहे उन्हें माफ़ करे, चाहे सज़ा दे, क्योंकि वे ज़ालिम हैं। (129) ज़मीन और आसमानों में जो कुछ है उसका मालिक अल्लाह है, जिसको चाहे माफ़ कर दे और जिसको चाहे सज़ा दे। वह माफ़ करनेवाला और रहमवाला है।[97]

(130) ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! यह बढ़ता और चढ़ता सूद खाना छोड़ दो[98]

97. उहुद की लड़ाई में जब नबी *(सल्ल०)* ज़ख़्मी हुए तो आपके मुँह से दुश्मनों के लिए बद्दुआ निकल गई, और आपने फ़रमाया कि "वह क़ौम कैसे कामयाब हो सकती है जो अपने नबी को ज़ख़्मी करे।" ये आयतें उसी के जवाब में आई हैं।

98. उहुद की हार की एक बड़ी वजह यह थी कि मुसलमान ठीक कामयाबी के वक़्त माल के लालच का शिकार हो गए और अपने काम को पूरा करने के बजाय ग़नीमत का माल लूटने में लग गए। इसलिए हकीमे-मुत्लक़ (परम तत्वदर्शी अल्लाह) ने इस हालत के सुधार के लिए दौलत की पूजा के दहाने पर बाँध बाँधना ज़रूरी समझा और हुक्म दिया कि सूद और ब्याज खाने से बाज़ आओ, जिसमें आदमी रात-दिन अपने फ़ायदे के बढ़ने और चढ़ने का हिसाब लगाता रहता है और जिसकी वजह से आदमी के अन्दर रुपये का लालच बेहद बढ़ता चला जाता है।

اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوا الرِّبٰٓوا اَضْعَافًا مُّضٰعَفَةً ۖ وَّاتَّقُوا
اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ۚ﴿۱۳۰﴾ وَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِيْٓ اُعِدَّتْ
لِلْكٰفِرِيْنَ ۚ﴿۱۳۱﴾ وَاَطِيْعُوا اللّٰهَ وَالرَّسُوْلَ لَعَلَّكُمْ
تُرْحَمُوْنَ ۚ﴿۱۳۲﴾ وَسَارِعُوْٓا اِلٰى مَغْفِرَةٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ
وَجَنَّةٍ عَرْضُهَا السَّمٰوٰتُ وَالْاَرْضُ ۙ اُعِدَّتْ
لِلْمُتَّقِيْنَ ۙ﴿۱۳۳﴾ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ فِي السَّرَّآءِ وَ
الضَّرَّآءِ وَالْكٰظِمِيْنَ الْغَيْظَ وَالْعَافِيْنَ
عَنِ النَّاسِ ۭ وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ۚ﴿۱۳۴﴾ وَالَّذِيْنَ

और अल्लाह से डरो, उम्मीद है कि कामयाब होगे। (131) उस आग से बचो जो (हक़ के) इनकारियों के लिए जुटाई गई है (132) और अल्लाह और रसूल का हुक्म मान लो, उम्मीद है कि तुमपर रहम किया जाएगा। (133) दौड़कर चलो उस राह पर जो तुम्हारे रब की बख़्शिश और उस जन्नत की तरफ़ जाती है जिसका फैलाव ज़मीन और आसमानों जैसा है, और वह अल्लाह से डरनेवाले उन लोगों के लिए तैयार की गई है (134) जो हर हाल में अपने माल ख़र्च करते हैं, चाहे बुरे हाल में हों या अच्छे हाल में; जो ग़ुस्से को पी जाते हैं और दूसरों की ग़लती माफ़ कर देते हैं — ऐसे नेक लोग अल्लाह को बहुत पसन्द हैं[99]

99. सूदख़ोरी जिस समाज में मौजूद होती है उसके अन्दर सूदखोरी की वजह से दो क़िस्म के अख़लाक़ी मर्ज़ पैदा हो जाते हैं। सूद लेनेवालों में लोभ-लालच, कंजूसी और ख़ुदग़रज़ी आ जाती है और सूद देनेवालों में नफ़रत, ग़ुस्सा, कीना (द्वेष) और जलन पैदा हो जाती है। उहुद (की लड़ाई) की हार में इन दोनों तरह की बीमारियों का कुछ-न-कुछ हिस्सा शामिल था। अल्लाह मुसलमानों को बताता है कि सूदख़ोरी से दोनों फ़रीक़ (लेनेवाले और देनेवाले) में जो अख़लाक़ी ख़राबी पैदा होती है उसके बिलकुल बरख़िलाफ़ अल्लाह की राह में ख़र्च करने से ये दूसरी क़िस्म की ख़ूबियाँ पैदा हुआ करती हैं, और अल्लाह की बख़्शिश और उसकी जन्नत इसी दूसर क़िस्म की ख़ूबियों से हासिल हो सकती है, न कि पहली क़िस्म की ख़राबियों से। (और ज़्यादा जानकारी के लिए देखिए सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया न० 320)

إِذَا فَعَلُوا فَاحِشَةً أَوْ ظَلَمُوا أَنفُسَهُمْ ذَكَرُوا
اللَّهَ فَاسْتَغْفَرُوا لِذُنُوبِهِمْ ۗ وَمَن يَغْفِرُ
الذُّنُوبَ إِلَّا اللَّهُ ۗ وَلَمْ يُصِرُّوا عَلَىٰ مَا فَعَلُوا
وَهُمْ يَعْلَمُونَ ﴿١٣٥﴾ أُولَٰئِكَ جَزَاؤُهُم مَّغْفِرَةٌ
مِّن رَّبِّهِمْ وَجَنَّاتٌ تَجْرِي مِن تَحْتِهَا الْأَنْهَارُ
خَالِدِينَ فِيهَا ۚ وَنِعْمَ أَجْرُ الْعَامِلِينَ ﴿١٣٦﴾ قَدْ
خَلَتْ مِن قَبْلِكُمْ سُنَنٌ فَسِيرُوا فِي الْأَرْضِ
فَانظُرُوا كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُكَذِّبِينَ ﴿١٣٧﴾ هَٰذَا
بَيَانٌ لِّلنَّاسِ وَهُدًى وَمَوْعِظَةٌ لِّلْمُتَّقِينَ ﴿١٣٨﴾

---

(135) — और जिनका हाल यह है कि अगर कभी कोई फ़ुहश (अश्लील) काम उनसे हो जाता है या किसी गुनाह में पड़कर वे अपने ऊपर ज़ुल्म कर बैठते हैं तो फ़ौरन उन्हें अल्लाह याद आ जाता है और उससे वे अपने क़ुसूरों की माफ़ी चाहते हैं — क्योंकि अल्लाह के सिवा और कौन है जो गुनाह माफ़ कर सकता हो — और वे जानते-बूझते अपने किए पर कभी नहीं अड़ते। (136) ऐसे लोगों का बदला उनके रब के पास यह है कि वह उनको माफ़ कर देगा और ऐसे बाग़ों में उन्हें दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और वहाँ वे हमेशा रहेंगे। कैसा अच्छा बदला है अच्छे काम करनेवालों के लिए! (137) तुमसे पहले बहुत-से दौर गुज़र चुके हैं। ज़मीन में चल-फिरकर देख लो कि उन लोगों का क्या अंजाम हुआ जिन्होंने (अल्लाह के अहकाम और हिदायतों को) झुठलाया। (138) यह लोगों के लिए एक साफ़ और खुली तंबीह (चेतावनी) है और जो अल्लाह से डरते हों उनके लिए हिदायत (मार्गदर्शन) और नसीहत।

وَلَا تَهِنُوْا وَلَا تَحْزَنُوْا وَاَنْتُمُ الْاَعْلَوْنَ اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِيْنَ ﴿١٣٩﴾ اِنْ يَّمْسَسْكُمْ قَرْحٌ فَقَدْ مَسَّ الْقَوْمَ
قَرْحٌ مِّثْلُهٗ ؕ وَتِلْكَ الْاَيَّامُ نُدَاوِلُهَا بَيْنَ النَّاسِ ۚ
وَلِيَعْلَمَ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَيَتَّخِذَ مِنْكُمْ شُهَدَآءَ ؕ
وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الظّٰلِمِيْنَ ﴿١٤٠﴾ وَلِيُمَحِّصَ اللّٰهُ الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا وَيَمْحَقَ الْكٰفِرِيْنَ ﴿١٤١﴾ اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تَدْخُلُوا

(139) हिम्मत न हारो, ग़म न करो, तुम ही ग़ालिब (प्रभावी) रहोगे अगर तुम ईमानवाले हो। (140) इस वक़्त अगर तुम्हें चोट लगी है तो इससे पहले ऐसी ही चोट तुम्हारे दुश्मनों को भी लग चुकी है।[100] ये तो ज़माने के उतार-चढ़ाव हैं जिन्हें हम लोगों के बीच गर्दिश देते रहते हैं। तुमपर यह वक़्त इसलिए लाया गया कि अल्लाह देखना चाहता था कि तुममें सच्चे ईमानवाले कौन हैं, और उन लोगों को छाँट लेना चाहता था जो हक़ीक़त में (सच्चाई के) गवाह हों[101] — क्योंकि ज़ालिम लोग अल्लाह को पसन्द नहीं हैं (141) — और वह इस आज़माइश के ज़रीए से ईमानवालों को अलग छाँटकर हक़ का इनकार करनेवालों (दुश्मनों) को कुचल देना चाहता था। (142) क्या तुमने यह समझ

100. यह इशारा है बद्र की लड़ाई की तरफ़। और कहने का मतलब यह है कि जब उस चोट को खाकर दुश्मनों ने हिम्मत नहीं हारी तो उहुद की लड़ाई में यह चोट खाकर तुम क्यों हिम्मत हार रहे हो?

101. इस आयत में अस्ल अरबी जुमला 'व यत्तख़ि-ज़ मिन-कुम शुहदा-अ' इस्तेमाल हुआ है। इसका एक मतलब तो यह है कि "तुममें से कुछ 'शहीद' लेना चाहता था," यानी कुछ लोगों को (अल्लाह) 'शहादत' का बाइज़्ज़त मक़ाम देना चाहता था और दूसरा मतलब यह है कि ईमानवालों और मुनाफ़िक़ों के उस मिले-जुले गरोह में से, जिस शक्ल में तुम इस वक़्त हो, उन लोगों को अलग छाँट लेना चाहता था जो हक़ीक़त में 'शुहदा-अ-अलन्नास' (लोगों पर गवाह) हैं, यानी उस आला मंसब (प्रतिष्ठित पद) के क़ाबिल हैं जिसपर हमने मुस्लिम उम्मत को मुक़र्रर किया है।

الْجَنَّةَ وَلَمَّا يَعْلَمِ اللّٰهُ الَّذِيْنَ جٰهَدُوْا مِنْكُمْ
وَيَعْلَمَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٤٢﴾ وَلَقَدْ كُنْتُمْ تَمَنَّوْنَ الْمَوْتَ
مِنْ قَبْلِ اَنْ تَلْقَوْهُ ۖ فَقَدْ رَاَيْتُمُوْهُ وَاَنْتُمْ
تَنْظُرُوْنَ ﴿١٤٣﴾ وَمَا مُحَمَّدٌ اِلَّا رَسُوْلٌ ۚ قَدْ خَلَتْ
مِنْ قَبْلِهِ الرُّسُلُ ۭ اَفَا۟ىِٕنْ مَّاتَ اَوْ قُتِلَ انْقَلَبْتُمْ
عَلٰٓى اَعْقَابِكُمْ ۭ وَمَنْ يَّنْقَلِبْ عَلٰى عَقِبَيْهِ فَلَنْ

रखा है कि यूँ ही जन्नत में चले जाओगे, हालाँकि अभी अल्लाह ने यह तो देखा ही नहीं कि तुममें कौन वे लोग हैं जो उसकी राह में जानें लड़ानेवाले और उसके लिए सब्र करनेवाले हैं। (143) तुम तो मौत की तमन्नाएँ कर रहे थे! मगर यह उस वक़्त की बात थी जब मौत सामने न आई थी, लो अब वह तुम्हारे सामने आ गई और तुमने उसे आँखों से देख लिया।[102]

(144) मुहम्मद इसके सिवा कुछ नहीं कि बस एक रसूल हैं, उनसे पहले और रसूल भी गुज़र चुके हैं। फिर क्या अगर उनका इन्तिक़ाल हो जाए या उनको क़त्ल कर दिया जाए तो तुम लोग उलटे पाँव फिर जाओगे?[103] याद रखो! जो उलटा फिरेगा, वह अल्लाह

---

102. इशारा है शहीद होने की तमन्ना रखनेवाले उन लोगों की तरफ़ जिनके इसरार (आग्रह) पर नबी *(सल्ल॰)* ने मदीने से बाहर निकलकर लड़ने का फ़ैसला लिया था।

103. जब नबी *(सल्ल॰)* के शहीद होने की ख़बर फैली तो ज़्यादातर सहाबा अपनी हिम्मत हार बैठे। इस हालत में मुनाफ़िक़ों ने (जो मुसलमानों के साथ ही लगे हुए थे) कहना शुरू किया कि चलो अब्दुल्लाह-बिन-उबई के पास चलें, ताकि वह हमारे लिए अबू-सुफ़ियान से पनाह (शरण) ले दे, और कुछ ने यहाँ तक कह डाला कि अगर मुहम्मद अल्लाह के रसूल होते तो क़त्ल कैसे होते? चलो, अब बाप-दादा के दीन की तरफ़ लौट चलें। इन्हीं बातों के जवाब में कहा जा रहा है कि अगर तुम्हारी 'हक़परस्ती' सिर्फ़ मुहम्मद की शख़्सियत (व्यक्तित्व) से जुड़ी हुई है और तुम्हारा इस्लाम ऐसी कमज़ोर बुनियाद रखता है कि मुहम्मद के दुनिया से विदा होते ही तुम उसी कुफ़्र की तरफ़ पलट जाओगे जिससे निकलकर आए थे, तो अल्लाह के दीन को तुम्हारी ज़रूरत नहीं है।

يَّضُرَّ اللّٰهَ شَيْـًٔا ؕ وَسَيَجْزِي اللّٰهُ الشّٰكِرِيْنَ ﴿١٤٤﴾
وَمَا كَانَ لِنَفْسٍ اَنْ تَمُوْتَ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ كِتٰبًا
مُّؤَجَّلًا ؕ وَمَنْ يُّرِدْ ثَوَابَ الدُّنْيَا نُؤْتِهٖ مِنْهَا ۚ
وَمَنْ يُّرِدْ ثَوَابَ الْاٰخِرَةِ نُؤْتِهٖ مِنْهَا ؕ وَسَنَجْزِي
الشّٰكِرِيْنَ ﴿١٤٥﴾ وَكَاَيِّنْ مِّنْ نَّبِيٍّ قٰتَلَ ۙ مَعَهٗ

का कुछ नुक़सान नहीं करेगा। हाँ, जो अल्लाह के शुक्रगुज़ार बन्दे बनकर रहेंगे, उन्हें वह उसका बदला देगा।

(145) कोई जानदार अल्लाह की इजाज़त के बिना नहीं मर सकता। मौत का वक़्त तो लिखा हुआ है।[104] जो शख़्स दुनिया में बदला पाने के इरादे से काम करेगा, उसको हम दुनिया ही में से देंगे और जो आख़िरत के बदले[105] के इरादे से काम करेगा, वह आख़िरत का बदला पाएगा, और शुक्र करनेवालों[106] को हम उनका बदला ज़रूर देंगे। (146) इससे पहले कितने ही नबी ऐसे हुए हैं जिनके साथ मिलकर बहुत-से ख़ुदापरस्तों

104. इससे यह बात मुसलमानों के मन में बिठानी है कि मौत के डर से तुम्हारा भागना बेकार है। कोई आदमी न तो अल्लाह के तय किए हुए वक़्त से पहले मर सकता है और न उसके बाद जी सकता है। इसलिए तुमको फ़िक्र मौत से बचने की नहीं, बल्कि इस बात की होनी चाहिए कि ज़िन्दगी की जो मुहलत भी तुम्हें मिली हुई है, उसमें तुम्हारी कोशिशों और दौड़-धूप का मक़सद क्या है, दुनिया या आख़िरत (लोक या परलोक)?

105. आयत के असल लफ़्ज़ 'सवाब' का यहाँ पर 'बदला' तर्जमा किया गया है। सवाब का मतलब होता है किए गए अमल (कर्म) का नतीजा। दुनिया में बदले से मुराद वे फ़ायदे और लाभ हैं जो इनसान को उसकी कोशिशों और कामों के नतीजे में इसी दुनिया की ज़िन्दगी में हासिल हों, और आख़िरत (परलोक) के बदले से मुराद वे फ़ायदे और लाभ हैं जो उसी काम और कोशिश के नतीजे में आख़िरत की हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी में हासिल होंगे। इस्लाम की निगाह से इनसानी अख़लाक़ के मामले में फ़ैसला करनेवाला सवाल यही है कि ज़िन्दगी के इस मैदान में आदमी जो दौड़-धूप कर रहा है, उसमें वह दुनिया के नतीजों पर निगाह रखता है या आख़िरत के नतीजों पर?

106. 'शुक्र करनेवालों' से मुराद वे लोग हैं जो अल्लाह की इस नेमत की क़द्र करते हों कि उसने दीन की सही तालीम देकर उन्हें दुनिया और उसकी महदूद (सीमित) ज़िन्दगी से बहुत ज़्यादा वसीअ (व्यापक) एक असीम और अथाह दुनिया की ख़बर दी और उन्हें इस सच्चाई से वाक़िफ़

رِبِّيُّوْنَ كَثِيْرٌ فَمَا وَهَنُوْا لِمَآ اَصَابَهُمْ فِيْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ وَمَا ضَعُفُوْا وَمَا اسْتَكَانُوْا ؕ وَاللّٰهُ
يُحِبُّ الصّٰبِرِيْنَ ﴿١٤٧﴾ وَمَا كَانَ قَوْلَهُمْ اِلَّاۤ اَنْ
قَالُوْا رَبَّنَا اغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَاِسْرَافَنَا فِيْۤ
اَمْرِنَا وَثَبِّتْ اَقْدَامَنَا وَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ
الْكٰفِرِيْنَ ﴿١٤٨﴾ فَاٰتٰىهُمُ اللّٰهُ ثَوَابَ الدُّنْيَا وَ

ने जंग की। अल्लाह की राह में जो मुसीबतें उनपर पड़ीं उनसे उन्होंने हिम्मत नहीं हारी, उन्होंने कमज़ोरी नहीं दिखाई, वे (बातिल के आगे) झुके नहीं।[107] ऐसे ही सब्र करनेवालों को अल्लाह पसन्द करता है। (147) उनकी दुआ बस यह थी कि "ऐ हमारे रब! हमारी ग़लतियों और कोताहियों को माफ़ कर, हमारे काम में तेरी हदों से जो ज़्यादती हो गई हो उसे माफ़ कर दे, हमारे क़दम जमा दे और काफ़िरों (इनकार करने वालों) के मुक़ाबले में हमारी मदद कर।" (148) आख़िरकार अल्लाह ने उनको इस दुनिया का बदला भी दिया

कराया कि इनसानी कोशिशों और अमल और उसके काम के नतीजे सिर्फ़ इस दुनिया की कुछ साल की ज़िन्दगी तक महदूद नहीं हैं, बल्कि इस ज़िन्दगी के बाद एक दूसरी दुनिया तक उनका सिलसिला चलता है। यह वुसअते-नज़र (व्यापक दृष्टि) और यह दूर तक देखने की सलाहियत और अंजाम को सामने रखने की ताक़त हासिल हो जाने के बाद जो आदमी अपनी कोशिशों और मेहनतों को इस दुनियावी ज़िन्दगी के शुरुआती मरहले में फलदायी होते न देखे या उनका उलटा नतीजा निकलता देखे, और इसके बावजूद अल्लाह के भरोसे पर वह काम करता चला जाए जिसके बारे में अल्लाह ने उसे यक़ीन दिलाया है कि हर हाल में आख़िरत में उसका नतीजा अच्छा ही निकलेगा, वह शुक्रगुज़ार बन्दा है। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग इसके बाद भी दुनिया-परस्ती और भौतिकवाद की तंग-नज़री में पड़े रहें, जिनका हाल यह हो कि दुनिया में जिन ग़लत कोशिशों के साफ़ तौर पर अच्छे नतीजे निकलते दिखाई दें उनकी तरफ़ वे आख़िरत के बुरे नतीजों की परवाह किए बिना झुक पड़ें और जिन सही कोशिशों के यहाँ फलदायी होने की उम्मीद न हो, या जिन से यहाँ नुक़सान पहुँचने का ख़तरा हो उनमें आख़िरत के भले नतीजे की उम्मीद पर अपना वक़्त, अपना माल और अपनी ताक़तें लगाने के लिए तैयार न हों, वे नाशुक्रे हैं, वह उस इल्म की क़द्र नहीं जानते जो अल्लाह ने उन्हें दिया है।

107. यानी अपनी तादाद की कमी और बे-सरोसामानी और दुश्मनों की भारी तादाद व ताक़त को देखकर उन्होंने झूठ के पुजारियों के आगे हथियार नहीं डाले।

حُسْنَ ثَوَابِ الْاٰخِرَةِ ؕ وَ اللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ۝١٤٨ ع
يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِنْ تُطِيْعُوا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا
يَرُدُّوْكُمْ عَلٰۤى اَعْقَابِكُمْ فَتَنْقَلِبُوْا خٰسِرِيْنَ ۝١٤٩ بَلِ
اللّٰهُ مَوْلٰىكُمْ ۚ وَهُوَ خَيْرُ النّٰصِرِيْنَ ۝١٥٠ سَنُلْقِيْ فِيْ
قُلُوْبِ الَّذِيْنَ كَفَرُوا الرُّعْبَ بِمَاۤ اَشْرَكُوْا بِاللّٰهِ
مَا لَمْ يُنَزِّلْ بِهٖ سُلْطٰنًا ۚ وَمَاْوٰىهُمُ النَّارُ ؕ وَ
بِئْسَ مَثْوَى الظّٰلِمِيْنَ ۝١٥١ وَلَقَدْ صَدَقَكُمُ اللّٰهُ

और उससे बेहतर आख़िरत (परलोक) का बदला भी दिया। अल्लाह को ऐसे ही नेक काम करनेवाले लोग पसन्द हैं।

(149) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अगर तुम उन लोगों के इशारों पर चलोगे जिन्होंने कुफ़्र (इनकार) की राह इख़्तियार की है, तो वे तुमको उलटा फेर ले जाएँगे[108] और तुम नामुराद हो जाओगे। (150) (उनकी बातें ग़लत हैं) हक़ीक़त यह है कि अल्लाह तुम्हारा हामी और मददगार है और वह सबसे अच्छा मदद करनेवाला है। (151) जल्द ही वह वक़्त आनेवाला है जब हम हक़ का इनकार करनेवालों के दिलों में तुम्हारा रोब बिठा देंगे, इसलिए कि उन्होंने अल्लाह के साथ उनको ख़ुदाई में साझी ठहराया है जिनके साझी होने पर अल्लाह ने कोई सनद नहीं उतारी। उनका आख़िरी ठिकाना जहन्नम है, और बहुत ही बुरी है वह ठहरने की जगह जो उन ज़ालिमों को मिलेगी।

108. यानी जिस कुफ़्र (अधर्म) की हालत से तुम निकलकर आए हो उसी में ये तुम्हें फिर वापस ले जाएँगे। मुनाफ़िक़ और यहूदी, उहुद की हार के बाद मुसलमानों में यह अफ़वाह फैलाने की कोशिश कर रहे थे कि मुहम्मद अगर सचमुच नबी होते तो हार क्यों जाते। ये तो एक मामूली आदमी हैं। इनका मामला भी दूसरे आदमियों की तरह है। आज जीत है तो कल हार। ख़ुदा की जिस हिमायत और मदद का उन्होंने तुमको यक़ीन दिला रखा है, वह सिर्फ़ एक ढोंग है।

وَعْدَهٗۤ اِذْ تَحُسُّوْنَهُمْ بِاِذْنِهٖ ۚ حَتّٰۤى اِذَا فَشِلْتُمْ وَ
تَنَازَعْتُمْ فِى الْاَمْرِ وَ عَصَيْتُمْ مِّنْۢ بَعْدِ مَاۤ
اَرٰىكُمْ مَّا تُحِبُّوْنَ ؕ مِنْكُمْ مَّنْ يُّرِيْدُ الدُّنْيَا وَ
مِنْكُمْ مَّنْ يُّرِيْدُ الْاٰخِرَةَ ۚ ثُمَّ صَرَفَكُمْ عَنْهُمْ
لِيَبْتَلِيَكُمْ ۚ وَلَقَدْ عَفَا عَنْكُمْ ؕ وَاللّٰهُ ذُوْ فَضْلٍ
عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ ۝۱۵۲ اِذْ تُصْعِدُوْنَ وَلَا تَلْوٗنَ
عَلٰۤى اَحَدٍ وَّ الرَّسُوْلُ يَدْعُوْكُمْ فِىۡۤ اُخْرٰىكُمْ

(152) अल्लाह ने (हिमायत और मदद का) जो वादा तुमसे किया था वह तो उसने पूरा कर दिया। शुरू में उसके हुक्म से तुम ही उनको क़त्ल कर रहे थे, मगर जब तुमने कमज़ोरी दिखाई और अपने काम में आपस में इख़्तिलाफ़ किया, और जैसे ही वह चीज़ अल्लाह ने तुम्हें दिखाई जिसकी मुहब्बत में तुम गिरफ़्तार थे (यानी माले-ग़नीमत) तुम अपने सरदार के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी कर बैठे — इसलिए कि तुममें से कुछ लोग दुनिया की ख़ाहिश रखते थे और कुछ आख़िरत की ख़ाहिश रखते थे — तब अल्लाह ने तुम्हें काफ़िरों के मुक़ाबले में शिकस्त दी ताकि तुम्हारी आज़माइश करे, और सच तो यह है कि अल्लाह ने फिर भी तुम्हें माफ़ ही कर दिया[109], क्योंकि ईमानवालों पर अल्लाह बड़ी नज़रे-इनायत (कृपादृष्टि) रखता है।

(153) याद करो जब तुम भागे चले जा रहे थे, किसी की तरफ़ पलट कर देखने

109. यानी तुमने ग़लती तो ऐसी की थी कि अगर अल्लाह तुम्हें माफ़ न कर देता तो उस वक़्त तुम्हें उखाड़कर फेंक दिया गया होता। यह अल्लाह का फ़ज़्ल (कृपा) था और उसकी हिमायत और उसकी मदद थी जिसकी वजह से तुम्हारे दुश्मन तुमपर क़ाबू पा लेने के बाद भी होश गुम कर बैठे और बिला वजह ख़ुद ही हार मान कर चले गए।

فَاَثَابَكُمْ غَمًّا بِغَمٍّ لِّكَيْلَا تَحْزَنُوْا عَلٰى مَا فَاتَكُمْ
وَلَا مَآ اَصَابَكُمْ ؕ وَاللّٰهُ خَبِيْرٌۢ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ﴿۱۵۳﴾ ثُمَّ
اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ الْغَمِّ اَمَنَةً نُّعَاسًا
يَّغْشٰى طَآئِفَةً مِّنْكُمْ ۙ وَطَآئِفَةٌ قَدْ اَهَمَّتْهُمْ
اَنْفُسُهُمْ يَظُنُّوْنَ بِاللّٰهِ غَيْرَ الْحَقِّ ظَنَّ الْجَاهِلِيَّةِ ؕ

तक का होश तुम्हें न था, और रसूल तुम्हारे पीछे तुमको पुकार रहा था।[110] उस समय तुम्हारे इस रवैये का बदला अल्लाह ने तुम्हें यह दिया कि तुमको रंज-पर-रंज दिए,[111] ताकि आगे के लिए तुम्हें यह सबक़ मिले कि जो कुछ तुम्हारे हाथ से जाए या जो मुसीबत तुमपर नाज़िल हो, उसपर दुखी न हो। अल्लाह तुम्हारे सब कामों की ख़बर रखता है।

(154) इस ग़म के बाद फिर अल्लाह ने तुममें से कुछ लोगों पर ऐसी इतमीनान की-सी हालत पैदा कर दी कि वे ऊँघने लगे।[112] मगर एक दूसरा गरोह, जिसके लिए

---

110. उहुद की लड़ाई में जब मुसलमानों पर अचानक दो तरफ़ से एक ही वक़्त में हमला हुआ और उनकी सफ़ें तितर-बितर हो गईं तो कुछ लोग मदीना की तरफ़ भाग निकले और कुछ उहुद पर चढ़ गए, लेकिन नबी *(सल्ल॰)* एक इंच अपनी जगह से न हटे। दुश्मनों की चारों तरफ़ भीड़ थी। आप *(सल्ल॰)* के पास आपके अपने दस-बारह आदमियों की मुट्ठी भर जमाअत रह गई थी, लेकिन अल्लाह के रसूल इस नाज़ुक मौक़े पर भी पहाड़ की तरह अपनी जगह जमे हुए थे और भागनेवालों को पुकार रहे थे, "इलै-य इबादल्लाह, इलै-य इबादल्लाह" (अल्लाह के बन्दो! मेरी तरफ़ आओ, अल्लाह के बन्दो! मेरी तरफ़ आओ।)

111. रंज (दुख) शिकस्त होने का, रंज इस अफ़वाह फैलाने का कि नबी *(सल्ल॰)* शहीद हो गए, रंज अपनी भारी तादाद में क़त्ल किए गए लोगों और जख़्मियों का, रंज इस बात का कि अब घरों की भी ख़बर नहीं, तीन हज़ार दुश्मन जिनकी तादाद मदीना की कुल आबादी से भी ज़्यादा है, हारी हुई फ़ौज को रौंदते हुए क़स्बे में आ घुसेंगे और सबको तबाह कर देंगे।

112. यह एक अजीब तजुर्बा था जो उस वक़्त इस्लामी लश्कर के कुछ लोगों को पेश आया। हज़रत अबू-तलहा *(रज़ि॰)* जो उस लड़ाई में शरीक थे, ख़ुद बयान करते हैं कि इस हालत में हमपर ऊँघ ऐसी छाई जा रही थी कि तलवारें हाथ से छूटी पड़ती थीं।

يَقُوْلُوْنَ هَلْ لَّنَا مِنَ الْاَمْرِ مِنْ شَيْءٍ ؕ قُلْ اِنَّ
الْاَمْرَ كُلَّهٗ لِلّٰهِ ؕ يُخْفُوْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِمْ مَّا لَا
يُبْدُوْنَ لَكَ ؕ يَقُوْلُوْنَ لَوْ كَانَ لَنَا مِنَ الْاَمْرِ
شَيْءٌ مَّا قُتِلْنَا هٰهُنَا ؕ قُلْ لَّوْ كُنْتُمْ فِيْ بُيُوْتِكُمْ
لَبَرَزَ الَّذِيْنَ كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقَتْلُ اِلٰى مَضَاجِعِهِمْ ۚ
وَلِيَبْتَلِيَ اللّٰهُ مَا فِيْ صُدُوْرِكُمْ وَلِيُمَحِّصَ مَا
فِيْ قُلُوْبِكُمْ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ الصُّدُوْرِ ﴿١٥٤﴾
اِنَّ الَّذِيْنَ تَوَلَّوْا مِنْكُمْ يَوْمَ الْتَقَى الْجَمْعٰنِ ۙ

सारी अहमियत बस अपने फ़ायदे की ही थी, अल्लाह के बारे में तरह-तरह के जाहिलाना (अज्ञानतापूर्ण) गुमान करने लगा जो सरासर हक़ के ख़िलाफ़ थे। ये लोग अब कहते हैं कि "इस काम के चलाने में हमारा भी कोई हिस्सा है?" उनसे कहो, "(किसी का कोई हिस्सा नहीं) इस काम के सारे इख़्तियार अल्लाह के हाथ में हैं।" असल में ये लोग अपने दिलों में जो बात छिपाए हुए हैं उसे तुमपर ज़ाहिर नहीं करते। उनका असल मक़सद यह है कि "अगर (क़ियादत या नेतृत्व के) इख़्तियार में हमारा कुछ हिस्सा होता तो यहाँ हम न मारे जाते।" इनसे कह दो कि "अगर तुम अपने घरों में भी होते तो जिन लोगों की मौत लिखी हुई थी, वे ख़ुद अपने मारे जाने की जगहों की तरफ़ निकल आते।" और यह मामला जो पेश आया, यह तो इसलिए था कि जो कुछ तुम्हारे सीनों में छिपा हुआ है अल्लाह उसे जाँच ले और जो खोट तुम्हारे दिलों में है उसे छाँट दे। अल्लाह दिलों का हाल ख़ूब जानता है।

(155) तुममें से जो लोग मुक़ाबले के दिन पीठ फेर गए थे, उनके इस फिसलन की

إِنَّمَا اسْتَزَلَّهُمُ الشَّيْطٰنُ بِبَعْضِ مَا كَسَبُوْا ۚ
وَلَقَدْ عَفَا اللّٰهُ عَنْهُمْ ۗ إِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ﴿١٥٥﴾ ع
يٰٓأَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَكُوْنُوْا كَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا
وَقَالُوْا لِإِخْوَانِهِمْ إِذَا ضَرَبُوْا فِي الْأَرْضِ أَوْ
كَانُوْا غُزًّى لَّوْ كَانُوْا عِنْدَنَا مَا مَاتُوْا وَ مَا
قُتِلُوْا ۚ لِيَجْعَلَ اللّٰهُ ذٰلِكَ حَسْرَةً فِيْ قُلُوْبِهِمْ ۗ وَ
اللّٰهُ يُحْيٖ وَيُمِيْتُ ۗ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿١٥٦﴾

वजह यह थी कि उनकी कुछ कमज़ोरियों की वजह से शैतान ने उनके क़दम डगमगा दिए थे। अल्लाह ने उन्हें माफ़ कर दिया, अल्लाह बहुत माफ़ करनेवाला और बुर्दबार (सहनशील) है।

(156) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, कुफ़्र (इनकार) करनेवालों जैसी बातें न करो जिनके नाते-रिश्तेदार अगर कभी सफ़र पर जाते हैं या जंग में शरीक होते हैं (और वहाँ किसी हादसे के शिकार हो जाते हैं) तो वे कहते हैं कि अगर वे हमारे पास होते तो न मारे जाते और न क़त्ल होते। अल्लाह इस तरह की बातों को उनके दिलों में हसरत और पछतावे की वजह बना देता है,[113] वरना हक़ीक़त में मारने और जिलानेवाला तो अल्लाह ही है, और तुम्हारी तमाम हरकतों पर वही निगरानी करनेवाला है। (157) अगर तुम

113. यानी इन बातों की बुनियाद हक़ीक़त पर नहीं है। सच तो यह है कि अल्लाह का फ़ैसला किसी के टाले नहीं टल सकता, मगर जो लोग अल्लाह पर ईमान नहीं रखते और सब कामों को अपनी कोशिशों और तदबीरों ही का नतीजा समझते हैं उनके लिए इस तरह के गुमान बस हसरत और तमन्ना के दाग़ बनकर रह जाते हैं और वे हाथ मलते रह जाते हैं कि काश यूँ होता तो यह हो जाता।

وَلَئِنْ قُتِلْتُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَوْ مُتُّمْ لَمَغْفِرَةٌ
مِّنَ اللّٰهِ وَرَحْمَةٌ خَيْرٌ مِّمَّا يَجْمَعُوْنَ ﴿١٥٧﴾ وَلَئِنْ مُّتُّمْ
اَوْ قُتِلْتُمْ لَاِلَى اللّٰهِ تُحْشَرُوْنَ ﴿١٥٨﴾ فَبِمَا رَحْمَةٍ مِّنَ
اللّٰهِ لِنْتَ لَهُمْ ۚ وَلَوْ كُنْتَ فَظًّا غَلِيْظَ الْقَلْبِ
لَانْفَضُّوْا مِنْ حَوْلِكَ ۖ فَاعْفُ عَنْهُمْ وَاسْتَغْفِرْ
لَهُمْ وَشَاوِرْهُمْ فِي الْاَمْرِ ۚ فَاِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ
عَلَى اللّٰهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَوَكِّلِيْنَ ﴿١٥٩﴾ اِنْ
يَّنْصُرْكُمُ اللّٰهُ فَلَا غَالِبَ لَكُمْ ۚ وَاِنْ يَّخْذُلْكُمْ فَمَنْ
ذَا الَّذِيْ يَنْصُرُكُمْ مِّنْ بَعْدِهٖ ۭ وَعَلَى اللّٰهِ فَلْيَتَوَكَّلِ

अल्लाह की राह में मारे जाओ या मर जाओ तो अल्लाह की जो रहमत और बख़्शिश तुम्हारे हिस्से में आएगी, वह उन सारी चीज़ों से ज़्यादा अच्छी है जिन्हें ये लोग जमा करते हैं। (158) और चाहे तुम मरो या मारे जाओ, हर हाल में तुम सबको सिमटकर जाना अल्लाह ही की तरफ़ है।

(159) (ऐ पैग़म्बर!) यह अल्लाह की बड़ी रहमत है कि तुम इन लोगों के लिए बहुत नर्म मिज़ाज हो, वरना अगर कहीं तुम सख़्त और पत्थर दिल होते तो ये सब तुम्हारे आस-पास से छँट जाते। इनकी ग़लतियों को माफ़ कर दो, इनके लिए 'मग़फ़िरत' (माफ़ी) की दुआ करो और दीन के काम में इनको भी मशविरे में शरीक रखो, फिर जब तुम किसी राय पर जम जाओ तो अल्लाह पर भरोसा करो, अल्लाह को वे लोग पसन्द हैं जो उसी के भरोसे पर काम करते हैं। (160) अल्लाह तुम्हारी मदद पर हो तो कोई ताक़त तुमपर ग़ालिब आनेवाली नहीं और अगर वह तुम्हें छोड़ दे तो उसके बाद कौन है जो तुम्हारी मदद कर सकता हो? इसलिए जो सच्चे ईमानवाले हैं उनको अल्लाह ही पर

الْمُؤْمِنُوْنَ ﴿١٦٠﴾ وَمَا كَانَ لِنَبِيٍّ اَنْ يَّغُلَّ ۭ وَمَنْ
يَّغْلُلْ يَاْتِ بِمَا غَلَّ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۚ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ
نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَھُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ﴿١٦١﴾ اَفَمَنِ
اتَّبَعَ رِضْوَانَ اللّٰهِ كَمَنْۢ بَاۗءَ بِسَخَطٍ مِّنَ اللّٰهِ
وَمَاْوٰىهُ جَهَنَّمُ ۭ وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ﴿١٦٢﴾ هُمْ دَرَجٰتٌ عِنْدَ

भरोसा रखना चाहिए।

(161) किसी नबी का यह काम नहीं हो सकता कि वह ख़ियानत कर जाए[114]—और जो कोई ख़ियानत करे तो वह अपनी ख़ियानत समेत क़ियामत के दिन हाज़िर हो जाएगा, फिर हर किसी को उसकी कमाई का पूरा-पूरा बदला मिल जाएगा और किसी पर कुछ ज़ुल्म न होगा।—(162) भला यह कैसे हो सकता है कि जो शख़्स हमेशा अल्लाह की मरज़ी पर चलनेवाला हो वह उस शख़्स जैसा काम करे जो अल्लाह के अज़ाब में घिर गया हो और जिसका आख़िरी ठिकाना जहन्नम हो, जो सबसे बुरा ठिकाना है? (163) अल्लाह के

114. जिन तीरन्दाज़ों को नबी *(सल्ल。)* ने पीछे के दर्रे की तरफ़ हिफ़ाज़त के लिए बिठाया था, उन्होंने जब देखा कि दुश्मन के लश्कर को लूटा जा रहा है तो उनको अन्देशा हुआ कि कहीं ग़नीमत का सारा माल उन्हीं लोगों को न मिल जाए जो उसे लूट रहे हैं और हम बँटवारे के वक़्त महरूम रह जाएँ। इसी वजह से उन्होंने अपनी जगह छोड़ दी थी। लड़ाई ख़त्म होने के बाद जब नबी *(सल्ल。)* मदीना वापस आए तो आपने उन लोगों को बुलाकर इस नाफ़रमानी की वजह मालूम की। उन्होंने जवाब में कुछ वजहें बताईं जो बहुत कमज़ोर थीं। इसपर नबी *(सल्ल。)* ने फ़रमाया, "असल बात यह है कि तुमको हमपर इत्मीनान न था, तुमने यह गुमान किया कि हम तुम्हारे साथ ख़ियानत (धोखा) करेंगे और तुमको हिस्सा नहीं देंगे।" इस आयत में इसी मामले की तरफ़ इशारा किया गया है। अल्लाह के फ़रमान का मतलब यह है कि जब तुम्हारी फ़ौज का कमांडर ख़ुद अल्लाह का नबी था और सारे मामले उसके हाथ में थे, तो तुम्हारे मन में यह अन्देशा कैसे पैदा हुआ कि नबी के हाथ में तुम्हारा फ़ायदा और भलाई महफ़ूज़ (सुरक्षित) न होगा। क्या अल्लाह के पैग़म्बर से यह उम्मीद रखते हो कि जो माल उसकी निगरानी में हो वह ईमानदारी, दयानतदारी और इनसाफ़ के सिवा किसी और तरीक़े से भी तक़सीम हो सकता है।

اللّٰهِ ؕ وَ اللّٰهُ بَصِيْرٌۢ بِمَا يَعْمَلُوْنَ ۝١٦٣ لَقَدْ مَنَّ اللّٰهُ
عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ اِذْ بَعَثَ فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْ اَنْفُسِهِمْ
يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِهٖ وَ يُزَكِّيْهِمْ وَ يُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ
وَالْحِكْمَةَ ۚ وَاِنْ كَانُوْا مِنْ قَبْلُ لَفِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ۝١٦٤
اَوَلَمَّآ اَصَابَتْكُمْ مُّصِيْبَةٌ قَدْ اَصَبْتُمْ مِّثْلَيْهَا ۙ
قُلْتُمْ اَنّٰى هٰذَا ؕ قُلْ هُوَ مِنْ عِنْدِ اَنْفُسِكُمْ ؕ اِنَّ

नज़दीक दोनों तरह के आदमियों में बहुत बड़ा फ़र्क़ है और अल्लाह सबके आमाल (कर्मों) पर नज़र रखता है। (164) हक़ीक़त में ईमानवालों पर तो अल्लाह ने यह बहुत बड़ा एहसान किया है कि उनके बीच ख़ुद उन्हीं में से एक ऐसा पैग़म्बर उठाया जो उसकी आयतें उन्हें सुनाता है, उनकी ज़िन्दगियों को सँवारता है और उनको किताब और दानाई (गहरी समझ) की तालीम (शिक्षा) देता है, हालाँकि इससे पहले यही लोग खुली गुमराहियों में पड़े हुए थे।

(165) और यह तुम्हारा क्या हाल है कि जब तुमपर मुसीबत आ पड़ी तो तुम कहने लगे, यह कहाँ से आई?[115] हालाँकि (बद्र की लड़ाई में) इससे दो गुनी मुसीबत तुम्हारे हाथों (दुश्मनों पर) पड़ चुकी है।[116] ऐ नबी! इनसे कहो, यह मुसीबत तुम्हारी अपनी लाई

115. बड़े-बड़े सहाबा तो हक़ीक़त को समझते थे और किसी ग़लतफ़हमी में नहीं पड़ सकते थे। मगर आम मुसलमान यह समझ रहे थे कि जब अल्लाह का रसूल *(सल्ल.)* हमारे बीच मौजूद है और अल्लाह की हिमायत और उसकी मदद हमारे साथ है तो किसी हाल में दुश्मन हम पर जीत हासिल कर ही नहीं सकते। इसलिए जब उहुद में उनकी हार हुई तो उनकी उम्मीदों को बड़ा धक्का लगा और उन्होंने हैरान होकर पूछना शुरू किया कि यह क्या हुआ? हम अल्लाह के दीन के लिए लड़ने गए, उसकी मदद का वादा हमारे साथ था, उसका रसूल ख़ुद लड़ाई के मैदान में मौजूद था और फिर भी हम हार गए? और हारे भी उनसे जो अल्लाह के दीन को मिटाने आए थे? ये आयतें इसी हैरानी को दूर करने के लिए उतरी हैं।

116. उहुद की लड़ाई में मुसलमानों के 70 आदमी शहीद हुए। इसके मुक़ाबले में बद्र की लड़ाई में दुश्मन के 70 आदमी मुसलमानों के हाथों मारे गए थे और 70 आदमी गिरफ़्तार होकर आए थे।

اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ ﴿١٦٥﴾ وَمَآ اَصَابَكُمْ يَوْمَ
الْتَقَى الْجَمْعٰنِ فَبِاِذْنِ اللّٰهِ وَلِيَعْلَمَ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿١٦٦﴾
وَلِيَعْلَمَ الَّذِيْنَ نَافَقُوْا ۚ وَقِيْلَ لَهُمْ تَعَالَوْا
قَاتِلُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ اَوِ ادْفَعُوْا ۚ قَالُوْا لَوْ نَعْلَمُ
قِتَالًا لَّا اتَّبَعْنٰكُمْ ۚ هُمْ لِلْكُفْرِ يَوْمَئِذٍ اَقْرَبُ
مِنْهُمْ لِلْاِيْمَانِ ۚ يَقُوْلُوْنَ بِاَفْوَاهِهِمْ مَّا لَيْسَ

हुई है,[117] अल्लाह को हर चीज़ पर क़ुदरत हासिल है।[118] (166, 167) जो नुक़सान लड़ाई के दिन तुम्हें पहुँचा वह अल्लाह की इजाज़त से था और इसलिए था कि अल्लाह देख ले कि तुममें से ईमानवाले कौन हैं और मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) कौन। वे मुनाफ़िक़ कि जब उनसे कहा गया "आओ, अल्लाह की राह में लड़ो या कम-से-कम (अपने शहर की) हिफ़ाज़त ही करो," तो कहने लगे, "अगर हम जानते कि आज लड़ाई होगी तो हम ज़रूर तुम्हारे साथ चलते।"[119] यह बात जब वे कह रहे थे उस वक़्त वे ईमान के मुक़ाबले कुफ़्र (इनकार) से ज़्यादा क़रीब थे। वे अपनी ज़बानों से वे बातें कहते हैं जो उनके दिलों

---

117. यानी यह (परेशानी) तुम्हारी अपनी कमज़ोरियों और ग़लतियों का नतीजा है। तुमने सब्र का दामन हाथ से छोड़ा, कुछ काम तक़वा (ईश-भय और संयम) के ख़िलाफ़ किए, (अपने कमांडर के) हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी की, माल के लालच में पड़े, आपस में झगड़े और इख़्तिलाफ़ किए, फिर क्यों पूछते हो कि यह मुसीबत कहाँ से आई?

118. यानी अल्लाह अगर तुम्हें फ़त्ह दिलाने की ताक़त रखता है तो शिकस्त (पराजय) दिलाने की ताक़त भी रखता है।

119. अब्दुल्लाह-बिन-उबई जब तीन सौ मुनाफ़िक़ों को अपने साथ लेकर रास्ते से पलटने लगा तो कुछ मुसलमानों ने जाकर उसे समझाने की कोशिश की और साथ चलने के लिए तैयार करना चाहा। मगर उसने जवाब दिया कि हमें यक़ीन है कि आज लड़ाई नहीं होगी, इसलिए हम जा रहे हैं। वरना अगर हमें उम्मीद होती कि आज लड़ाई होगी तो हम ज़रूर तुम्हारे साथ चलते।

فِيْ قُلُوْبِهِمْ ۭ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِمَا يَكْتُمُوْنَ ۝١٦٧ اَلَّذِيْنَ
قَالُوْا لِاِخْوَانِهِمْ وَقَعَدُوْا لَوْ اَطَاعُوْنَا مَا قُتِلُوْا ۭ
قُلْ فَادْرَءُوْا عَنْ اَنْفُسِكُمُ الْمَوْتَ اِنْ كُنْتُمْ
صٰدِقِيْنَ ۝١٦٨ وَلَا تَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ قُتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ
اللّٰهِ اَمْوَاتًا ۭ بَلْ اَحْيَاۗءٌ عِنْدَ رَبِّهِمْ يُرْزَقُوْنَ ۝١٦٩ۙ
فَرِحِيْنَ بِمَآ اٰتٰىھُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۙ وَيَسْتَبْشِرُوْنَ
بِالَّذِيْنَ لَمْ يَلْحَقُوْا بِهِمْ مِّنْ خَلْفِهِمْ ۙ اَلَّا خَوْفٌ

में नहीं होतीं, और जो कुछ वे दिलों में छिपाते हैं अल्लाह उसे ख़ूब जानता है। (168) ये वही लोग हैं जो ख़ुद तो बैठे रहे और उनके जो भाई-बन्धु लड़ने गए और मारे गए, उनके बारे में उन्होंने कह दिया कि अगर वे हमारी बात मान लेते तो न मारे जाते। इनसे कहो कि अगर तुम अपनी इस बात में सच्चे हो तो ख़ुद तुम्हारी मौत जब आए तो उसे टालकर दिखा देना।

(169) जो लोग अल्लाह की राह में क़त्ल हुए हैं उन्हें मुर्दा न समझो, वे तो हक़ीक़त में ज़िन्दा हैं,[120] अपने रब के पास रोज़ी पा रहे हैं, (170) जो कुछ अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से उन्हें दिया है उसपर बहुत ख़ुशो-ख़ुर्रम (प्रसन्न) हैं,[121] और मुत्मइन हैं कि जो

---

120. सब बात का मतलब जानने के लिए देखिए सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया नं. 155।

121. हदीस की किताब 'मुस्नद अहमद' में नबी *(सल्ल.)* की एक हदीस है, जिसमें नबी *(सल्ल.)* ने कहा है कि जो शख़्स नेक अमल लेकर दुनिया से जाता है उसे अल्लाह के यहाँ इतनी ख़ुशियों से भरी और मस्ती भरी ज़िन्दगी मिलती है जिसके बाद वह कभी दुनिया में वापस आने की तमन्ना नहीं करता, मगर शहीद इससे अलग है। वह तमन्ना करता है कि उसे फिर से दुनिया में भेजा जाए और फिर उस मज़े, सुरूर और उस नशे से लुत्फ़ उठाए जो अल्लाह की राह में जान देते वक़्त उसे हासिल हुआ है।

عَلَيۡهِمۡ وَلَا هُمۡ يَحۡزَنُوۡنَ ۝١٧٠ يَسۡتَبۡشِرُوۡنَ بِنِعۡمَةٍ
مِّنَ اللّٰهِ وَفَضۡلٍ ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ لَا يُضِيۡعُ اَجۡرَ
الۡمُؤۡمِنِيۡنَ ۝١٧١ اَلَّذِيۡنَ اسۡتَجَابُوۡا لِلّٰهِ وَالرَّسُوۡلِ
مِنۡۢ بَعۡدِ مَاۤ اَصَابَهُمُ الۡقَرۡحُ ۛ لِلَّذِيۡنَ اَحۡسَنُوۡا
مِنۡهُمۡ وَاتَّقَوۡا اَجۡرٌ عَظِيۡمٌ ۝١٧٢ اَلَّذِيۡنَ قَالَ لَهُمُ
النَّاسُ اِنَّ النَّاسَ قَدۡ جَمَعُوۡا لَكُمۡ فَاخۡشَوۡهُمۡ

ईमानवाले उनके पीछे दुनिया में रह गए हैं और अभी वहाँ नहीं पहुँचे हैं, उनके लिए भी किसी डर और रंज का मौक़ा नहीं है। (171) वे अल्लाह के इनाम और उसकी रहमत पर बहुत ख़ुश हैं और उनको मालूम हो चुका है कि अल्लाह ईमानवालों के अज्र ज़ाया (विनष्ट) नहीं करता।

(172) (ऐसे ईमानवालों के बदले को) जिन्होंने ज़ख़्म खाने के बाद भी अल्लाह और रसूल की पुकार पर लब्बैक (मैं हाज़िर हूँ) कहा[122] – उनमें जो लोग नेक और परहेज़गार हैं, उनके लिए बड़ा बदला है (173) – जिनसे[123] लोगों ने कहा कि "तुम्हारे ख़िलाफ़ बड़ी फ़ौजें जमा हुई हैं, उनसे डरो", तो यह सुनकर उनका ईमान और बढ़ गया और

122. उहुद की लड़ाई से पलटकर जब मुशरिक कई कोस दूर चले गए तो उन्हें होश आया और उन्होंने आपस में कहा कि यह हमने क्या हरकत की कि मुहम्मद *(सल्ल.)* की ताक़त को तोड़ देने का जो क़ीमती मौक़ा हमें मिला था उसे खोकर चले आए। चुनाँचे एक जगह ठहरकर उन्होंने आपस में मशविरा किया कि मदीना पर फ़ौरन ही दूसरा हमला कर दिया जाए, लेकिन फिर हिम्मत न पड़ी और मक्का वापस चले गए। इधर नबी *(सल्ल.)* को भी यह अन्देशा था कि ये लोग कहीं फिर न पलट आएँ। इसलिए उहुद की लड़ाई के दूसरे ही दिन आपने मुसलमानों को जमा करके कहा कि दुश्मनों का पीछा करने के लिए चलना चाहिए। यह हालाँकि बड़ा नाज़ुक मौक़ा था, लेकिन फिर भी जो सच्चे ईमानवाले थे वे जान न्योछावर करने के लिए तैयार हो गए और नबी *(सल्ल.)* के साथ हमरा-उल-असद तक गए जो मदीना से 8 मील की दूरी पर है। इस आयत का इशारा इन्हीं फ़िदाकारों की तरफ़ है।

123. ये कुछ आयतें उहुद की लड़ाई के एक साल बाद उतरी थीं, मगर चूँकि उनका ताल्लुक़ उहुद ही के वाक़िए के सिलसिले से था, इसलिए उनको भी इस तक़रीर में शामिल कर दिया गया।

فَزَادَهُمْ إِيمَانًا ۖ وَقَالُوا حَسْبُنَا اللَّهُ وَنِعْمَ الْوَكِيلُ ﴿١٧٣﴾
فَانْقَلَبُوا بِنِعْمَةٍ مِنَ اللَّهِ وَفَضْلٍ لَمْ يَمْسَسْهُمْ
سُوءٌ وَاتَّبَعُوا رِضْوَانَ اللَّهِ ۗ وَاللَّهُ ذُو فَضْلٍ عَظِيمٍ ﴿١٧٤﴾
إِنَّمَا ذَٰلِكُمُ الشَّيْطَانُ يُخَوِّفُ أَوْلِيَاءَهُ فَلَا تَخَافُوهُمْ
وَخَافُونِ إِنْ كُنْتُمْ مُؤْمِنِينَ ﴿١٧٥﴾ وَلَا يَحْزُنْكَ
الَّذِينَ يُسَارِعُونَ فِي الْكُفْرِ ۚ إِنَّهُمْ لَنْ يَضُرُّوا

उन्होंने जवाब दिया कि ''हमारे लिए अल्लाह काफ़ी है और वही सबसे अच्छा काम बनानेवाला है।'' (174) आख़िरकार वे अल्लाह की नेमत और मेहरबानी के साथ पलट आए। उनको किसी तरह की तकलीफ़ भी न पहुँची और अल्लाह की मरज़ी पर चलने का सौभाग्य भी उन्हें हासिल हो गया, अल्लाह बड़ा फ़ज़्ल करनेवाला है। (175) अब तुम्हें मालूम हो गया कि वह हक़ीक़त में शैतान था जो अपने दोस्तों से बेवजह डरा रहा था, इसलिए अब तुम इनसानों से न डरना, मुझसे डरना अगर तुम हक़ीक़त में ईमानवाले हो।[124]

(176) (ऐ पैग़म्बर!) जो लोग आज कुफ़्र (इनकार और अधर्म) के रास्ते में बड़ी

124. उहुद से वापस होते हुए अबू-सुफ़ियान मुसलमानों को चुनौती दे गया था कि अगले साल बद्र में हमारा-तुम्हारा फिर मुक़ाबला होगा। मगर जब वादे का वक़्त क़रीब आया तो उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया, क्योंकि उस साल मक्का में अकाल पड़ा था। इसलिए उसने पहलू बचाने के लिए यह तदबीर की कि ख़ुफ़िया तौर पर एक आदमी को मदीना भेजा जिसने वहाँ पहुँचकर मुसलमानों में ये ख़बरें फैलानी शुरू कीं कि इस साल क़ुरैश ने बड़ी ज़बरदस्त तैयारी की है और ऐसी भारी फ़ौज जमा कर रहे हैं जिसका मुक़ाबला पूरे अरब में कोई न कर सकेगा। इससे मक़सद यह था कि मुसलमान डरकर अपनी जगह रह जाएँ और मुक़ाबले पर न आने की ज़िम्मेदारी उन्हीं पर रहे। अबू-सुफ़ियान की इस चाल का यह असर हुआ कि जब हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* ने बद्र की तरफ़ चलने के लिए मुसलमानों से अपील की तो उसका कोई हिम्मत भरा जवाब न मिला। आख़िरकार अल्लाह के रसूल ने तमाम लोगों के सामने एलान कर दिया कि अगर कोई न जाएगा तो मैं अकेला जाऊँगा। इसपर 1500 फ़िदाकार आपके साथ चलने के लिए तैयार हो गए और आप इन्हीं को लेकर बद्र के मैदान में पहुँच गए। उधर से अबू-सुफ़ियान

اللهَ شَيْـًٔا ۗ يُرِيْدُ اللهُ اَلَّا يَجْعَلَ لَهُمْ حَظًّا فِي
الْاٰخِرَةِ ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿١٧٦﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا
الْكُفْرَ بِالْاِيْمَانِ لَنْ يَّضُرُّوا اللهَ شَيْـًٔا ۚ وَلَهُمْ
عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٧٧﴾ وَلَا يَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَنَّمَا
نُمْلِيْ لَهُمْ خَيْرٌ لِّاَنْفُسِهِمْ ۗ اِنَّمَا نُمْلِيْ لَهُمْ
لِيَزْدَادُوْٓا اِثْمًا ۚ وَلَهُمْ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ﴿١٧٨﴾ مَا كَانَ
اللهُ لِيَذَرَ الْمُؤْمِنِيْنَ عَلٰى مَآ اَنْتُمْ عَلَيْهِ حَتّٰى

दौड़-धूप कर रहे हैं उनकी सरगर्मियों से तुम दुखी न हो, ये अल्लाह का कुछ भी न बिगाड़ सकेंगे। अल्लाह का इरादा यह है कि उनके लिए आख़िरत में कोई हिस्सा न रखे, और आख़िरकार उनको सख़्त सज़ा मिलनेवाली है। (177) जो लोग ईमान को छोड़कर कुफ़्र (इनकार) के ख़रीदार बने हैं, वे यक़ीनन अल्लाह का कोई नुक़सान नहीं कर रहे हैं, उनके लिए दर्दनाक अज़ाब तैयार है। (178) यह ढील जो हम उन्हें दिए जाते हैं उसको ये काफ़िर (अधर्मी) अपने लिए अच्छी न समझें, हम तो उन्हें इसलिए ढील दे रहे हैं कि ये अच्छी तरह गुनाहों का बोझ समेट लें, फिर उनके लिए सख़्त रुसवा करनेवाली सज़ा है।

(179) अल्लाह ईमानवालों को इस हालत में हरगिज़ नहीं रहने देगा जिसमें तुम लोग

दो हज़ार की फ़ौज लेकर चला, मगर दो दिन का रास्ता तय करने के बाद उसने अपने साथियों से कहा कि इस साल लड़ना मुनासिब नहीं मालूम होता, अगले साल आएँगे। इसलिए अबू-सुफ़ियान और उसके साथी वापस हो गए। हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* आठ दिन तक बद्र नामी जगह पर उसके इन्तिज़ार में ठहरे रहे और इस बीच आपके साथियों ने एक कारोबारी क़ाफ़िले से कारोबार करके ख़ूब माली फ़ायदा उठाया, फिर जब यह ख़बर मिल गई कि दुश्मन वापस चले गए तो आप *(सल्ल.)* मदीना वापस तशरीफ़ ले आए।

يَمِيزَ الْخَبِيثَ مِنَ الطَّيِّبِ ۗ وَمَا كَانَ اللّٰهُ لِيُطْلِعَكُمْ
عَلَى الْغَيْبِ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَجْتَبِىْ مِنْ رُّسُلِهٖ مَنْ
يَّشَآءُ ۖ فَاٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَ رُسُلِهٖ ۚ وَاِنْ تُؤْمِنُوْا وَ
تَتَّقُوْا فَلَكُمْ اَجْرٌ عَظِيْمٌ ۝١٧٩ وَلَا يَحْسَبَنَّ الَّذِيْنَ
يَبْخَلُوْنَ بِمَآ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ هُوَ خَيْرًا لَّهُمْ ۗ
بَلْ هُوَ شَرٌّ لَّهُمْ ۗ سَيُطَوَّقُوْنَ مَا بَخِلُوْا بِهٖ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ ۗ وَلِلّٰهِ مِيْرَاثُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۗ وَ

इस वक़्त पाए जाते हो।[125] वह पाक लोगों को नापाक लोगों से अलग करके रहेगा। मगर अल्लाह का यह तरीक़ा नहीं है कि तुम लोगों पर ग़ैब (परोक्ष) को ज़ाहिर कर दे।[126] ग़ैब की बातें बताने के बारे में तो अल्लाह अपने रसूलों में से जिसको चाहता है चुन लेता है, इसलिए (ग़ैब की बातों के बारे में) अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान (विश्वास) रखो। अगर तुम ईमान और परहेज़गारी की रविश पर चलोगे तो तुमको बड़ा बदला मिलेगा।

(180) जिन लोगों को अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से नवाज़ा है और फिर वे कंजूसी से काम लेते हैं, वे यह न समझें कि यह कंजूसी उनके लिए अच्छी है। नहीं, यह उनके लिए बहुत ही बुरी है। जो कुछ वे अपनी कंजूसी से जमा कर रहे हैं वही क़ियामत के दिन उनके गले का तौक़ बन जाएगा। ज़मीन और आसमानों की मीरास अल्लाह ही के लिए

125. यानी अल्लाह मुसलमानों की जमाअत को इस हालत में देखना पसन्द नहीं करता कि उनके बीच सच्चे ईमानवाले और मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) सब ख़लत-मलत रहें।

126. यानी ईमानवाले और मुनाफ़िक़ की पहचान नुमायाँ करने के लिए अल्लाह यह तरीक़ा नहीं अपनाया करता कि ग़ैब (परोक्ष) से मुसलमानों को दिलों का हाल बता दे कि फ़ुलाँ ईमानवाला है और फ़ुलाँ मुनाफ़िक़, बल्कि उसके हुक्म से इम्तिहान के ऐसे मौक़े पेश आएँगे जिनमें तजुर्बे से मोमिन और मुनाफ़िक़ की हालत साफ़ हो जाएगी।

ع اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ﴿١٨٠﴾ لَقَدْ سَمِعَ اللّٰهُ
قَوْلَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ فَقِيْرٌ وَّنَحْنُ اَغْنِيَآءُ ۘ
سَنَكْتُبُ مَا قَالُوْا وَقَتْلَهُمُ الْاَنْۢبِيَآءَ بِغَيْرِ حَقٍّ ۙ
وَّنَقُوْلُ ذُوْقُوْا عَذَابَ الْحَرِيْقِ ﴿١٨١﴾ ذٰلِكَ بِمَا قَدَّمَتْ
اَيْدِيْكُمْ وَاَنَّ اللّٰهَ لَيْسَ بِظَلَّامٍ لِّلْعَبِيْدِ ﴿١٨٢﴾ ۚ
اَلَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ عَهِدَ اِلَيْنَآ اَلَّا نُؤْمِنَ

है,[127] और तुम जो कुछ करते हो अल्लाह उसे जानता है।

(181) अल्लाह ने उन लोगों की बात सुनी जो कहते हैं कि अल्लाह फ़क़ीर है और हम धनी हैं।[128] उनकी ये बातें भी हम लिख लेंगे और इससे पहले जो वे पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल करते रहे हैं वह भी उनके आमालनामे में दर्ज है। (जब फ़ैसले का वक़्त आएगा, उस वक़्त) हम उनसे कहेंगे कि लो, अब जहन्नम के अज़ाब का मज़ा चखो, (182) यह तुम्हारे अपने हाथों की कमाई है, अल्लाह अपने बन्दों के लिए ज़ालिम नहीं है।

(183) जो लोग कहते हैं कि "अल्लाह ने हमको हिदायत कर दी है कि हम किसी

---

127. यानी ज़मीन और आसमान की जो चीज़ भी कोई मख़लूक़ (प्राणी) इस्तेमाल कर रही है, वह हक़ीक़त में अल्लाह की मिल्कियत है और उसपर किसी मख़लूक़ का क़ब्ज़ा और इख़्तियार वक़्ती है। हर एक को अपने क़ब्ज़े की चीज़ों से हर हाल में बेदख़ल होना है और आख़िरकार सब कुछ अल्लाह ही के पास रह जानेवाला है। इसलिए अक़लमन्द है वह जो इस वक़्ती क़ब्ज़े के दौरान में अल्लाह के माल को अल्लाह की राह में दिल खोलकर ख़र्च करता है। और बड़ा बेवक़ूफ़ है वह जो उसे बचा-बचाकर रखने की कोशिश करता है।

128. यह कहना यहूदियों का था। क़ुरआन मजीद में जब यह आयत (2:245) आई 'कि (मन-ज़ल्लज़ी युक़रि-ज़ुल्ला-ह क़र्ज़न ह-स-न) यानी कौन है जो अल्लाह को अच्छा क़र्ज दे' तो उसका मज़ाक़ उड़ाते हुए यहूदियों ने कहना शुरू किया कि "जी हाँ, अल्लाह मियाँ मुहताज और ग़रीब हो गए हैं, अब वे बन्दों से क़र्ज़ माँग रहे हैं।"

لِرَسُوۡلٍ حَتّٰى يَاۡتِيَنَا بِقُرۡبَانٍ تَاۡكُلُهُ النَّارُ‌ؕ قُلۡ
قَدۡ جَآءَكُمۡ رُسُلٌ مِّنۡ قَبۡلِىۡ بِالۡبَيِّنٰتِ وَبِالَّذِىۡ
قُلۡتُمۡ فَلِمَ قَتَلۡتُمُوۡهُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ صٰدِقِيۡنَ ‏﴿۱۸۳﴾
فَاِنۡ كَذَّبُوۡكَ فَقَدۡ كُذِّبَ رُسُلٌ مِّنۡ قَبۡلِكَ جَآءُوۡ

को रसूल तस्लीम न करें, जब तक वह हमारे सामने ऐसी क़ुरबानी न करे जिसे (ग़ैब से आकर) आग खा ले।" उनसे कहो, "तुम्हारे पास मुझसे पहले बहुत-से रसूल आ चुके हैं, जो बहुत-सी रौशन निशानियाँ लाए थे और वह निशानी भी लाए थे जिसका ज़िक्र तुम करते हो, फिर अगर (ईमान लाने के लिए यह शर्त पेश करने में) तुम सच्चे हो तो उन रसूलों को तुमने क्यों क़त्ल किया?"[129] (184) अब ऐ नबी! अगर ये लोग तुम्हें झुठलाते

129. बाइबल में बहुत-सी जगहों पर यह बात बयान हुई है कि ख़ुदा के यहाँ किसी क़ुरबानी के क़बूल किए जाने की पहचान यह थी कि ग़ैब से एक आग निकलकर उसे भस्म कर देती थी (न्यायियों, 6:20, 21 और 13:19, 20) इसके अलावा यह बयान भी बाइबल में आता है कि कुछ मौक़ों पर कोई नबी जलानेवाली क़ुरबानी करता था; और एक ग़ैबी आग आकर उसे खा लेती थी। (लैव्यव्यवस्था 9 : 24, इतिहास भाग - 2 इतिहास 7 : 1, 2)। लेकिन यह किसी जगह भी नहीं लिखा कि इस तरह की क़ुरबानी नुबूवत की कोई लाज़िमी निशानी है या यह कि जिस आदमी को यह मोजिज़ा (चमत्कार) न दिया गया हो वह हरगिज़ नबी नहीं हो सकता। यह सिर्फ़ एक मनगढ़त बहाना था जो यहूदियों ने मुहम्मद *(सल्ल.)* के नबी होने का इनकार करने के लिए गढ़ लिया था, लेकिन इससे भी बढ़कर उनकी हक़-दुश्मनी का सुबूत यह था कि ख़ुद बनी-इसराईल के नबियों में से कुछ नबी ऐसे गुज़रे हैं जिन्होंने आग की इस क़ुरबानी का मोजिज़ा पेश किया और फिर भी ये जुर्म करने के आदी लोग उनके क़त्ल करने से नहीं रुके। मिसाल के तौर पर बाइबल में हज़रत इलियास (एलिय्याह तिशबी) के बारे में लिखा है कि उन्होंने बअ़ल के पुजारियों को चुनौती दी कि आम लोगों के बीच में एक बैल की क़ुरबानी तुम करो और एक की क़ुरबानी मैं करता हूँ। जिसकी क़ुरबानी को ग़ैबी (परोक्ष की) आग खा ले वही हक़ पर है। चुनाँचे लोगों की एक भारी भीड़ के सामने यह मुक़ाबला हुआ और ग़ैबी आग ने हज़रत इलियास की क़ुरबानी खाई। लेकिन इसका जो कुछ नतीजा निकला वह यह था कि

بِالْبَيِّنٰتِ وَالزُّبُرِ وَالْكِتٰبِ الْمُنِيْرِ ﴿١٨٤﴾ كُلُّ نَفْسٍ
ذَآئِقَةُ الْمَوْتِ ؕ وَاِنَّمَا تُوَفَّوْنَ اُجُوْرَكُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ
فَمَنْ زُحْزِحَ عَنِ النَّارِ وَاُدْخِلَ الْجَنَّةَ فَقَدْ فَازَ ؕ
وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَآ اِلَّا مَتَاعُ الْغُرُوْرِ ﴿١٨٥﴾ لَتُبْلَوُنَّ
فِيْٓ اَمْوَالِكُمْ وَاَنْفُسِكُمْ ۫ وَلَتَسْمَعُنَّ مِنَ الَّذِيْنَ

हैं तो बहुत-से रसूल तुमसे पहले झुठलाए जा चुके हैं, जो खुली-खुली निशानियाँ और सहीफ़े (ग्रंथ) और रौशनी देनेवाली किताबें लाए थे। (185) आख़िरकार हर एक को मरना है और तुम सब अपना-अपना पूरा बदला क़ियामत के दिन पानेवाले हो। कामयाब असल में वह है जो वहाँ दोज़ख़ की आग से बच जाए और जन्नत में दाख़िल कर दिया जाए। रही यह दुनिया, तो यह सिर्फ़ एक खुले धोखे की चीज़ है।[130]

(186) मुसलमानो! तुम्हें माल और जान दोनों की आज़माइशों में ज़रूर डाला जाएगा

इसराईल के बादशाह की बअ्ल की पुजारिन रानी हज़रत इलियास *(अलैहि०)* की दुश्मन हो गई और वह औरत-परस्त बादशाह अपनी बीवी महारानी के लिए हज़रत इलियास *(अलैहि०)* को क़त्ल कर देने पर उतारू हुआ और मजबूरन मुल्क से निकलकर हज़रत इलियास *(अलैहि०)* को सीना प्रायद्वीप के पहाड़ों में पनाह लेनी पड़ी (1-राजा, अध्याय 18, 19)। इसी लिए कहा गया कि ऐ हक़ के दुश्मनो! तुम किस मुँह से आग की क़ुरबानी का मोजज़ा माँगते हो? जिन पैग़म्बरों ने यह मोज़जा दिखाया था उन्हीं के क़त्ल से तुम कब बाज़ रहे।

130. यानी इस दुनिया की ज़िन्दगी में जो नतीजे सामने आते हैं उन्हीं को अगर कोई इनसान असली और आख़िरी नतीजा समझ बैठे और उन्हीं पर हक़ और नाहक़ और कामयाबी और नाकामी के फ़ैसले की बुनियाद रखे, तो हक़ीक़त में वह बड़े धोखे में पड़ जाएगा। यहाँ किसी पर नेमतों की बारिश होना इस बात का सुबूत नहीं है कि वही हक़ पर भी है और वही अल्लाह का क़रीबी बन्दा है। और इसी तरह यहाँ किसी का मुसीबतों और मुश्किलों में पड़ना भी यक़ीनी तौर पर यह मानी नहीं रखता कि वह हक़ पर नहीं है और अल्लाह के यहाँ का ठुकराया हुआ है। ज़्यादातर इस शुरू के मरहले के नतीजे उन आख़िरी नतीजों के बरख़िलाफ़ होते हैं जो हमेशा की ज़िन्दगी के मरहले में पेश आनेवाले हैं, और असल एतिबार (भरोसा) उन्हीं नतीजों का है।

أُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَمِنَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْٓا
اَذًى كَثِيْرًا ۭ وَاِنْ تَصْبِرُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ ذٰلِكَ
مِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ ۝۱۸۶ وَاِذْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ
الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَتُبَيِّنُنَّهٗ لِلنَّاسِ وَلَا
تَكْتُمُوْنَهٗ ۡ فَنَبَذُوْهُ وَرَاۗءَ ظُهُوْرِھِمْ وَاشْتَرَوْا بِهٖ

और तुम किताबवालों और मुशरिकों से बहुत-सी तकलीफ़देह बातें सुनोगे। अगर इन सब हालतों में तुम सब्र और ख़ुदातरसी की रविश पर जमे रहो[131] तो यह बड़े हौसले का काम है। (187) इन किताबवालों को वह वादा भी याद दिलाओ जो अल्लाह ने उनसे लिया था कि तुम्हें किताब की तालीमात को लोगों में फैलाना होगा, उन्हें छिपाकर रखना नहीं होगा।[132] मगर उन्होंने किताब को पीठ पीछे डाल दिया और थोड़ी क़ीमत पर उसे बेच

---

131. यानी उनके तानों और व्यंग्यों, उनके इल्ज़ामों और बेहूदा बातों और उनके झूठे प्रोपेगण्डों के मुक़ाबले में बे-सब्र होकर तुम ऐसी बातों पर न उतर आओ जो सच्चाई और इनसाफ़, वक़ार (स्वाभिमान), तहज़ीब और अच्छे अख़लाक़ के ख़िलाफ़ हों।

132. यानी उन्हें यह तो याद रह गया कि कुछ पैग़म्बरों को आग में जलनेवाली क़ुरबानी निशानी के तौर पर दी गई थी, मगर यह याद नहीं रहा कि अल्लाह ने अपनी किताब उनके सुपुर्द करते वक़्त उनसे क्या वादा लिया था और किस बड़ी ख़िदमत की ज़िम्मेदारी उनपर डाली थी।

यहाँ जिस वादे का ज़िक्र किया गया है, उसका ज़िक्र जगह-जगह बाइबल में मिलता है, ख़ास तौर से किताब व्यवस्थाविवरण में हज़रत मूसा *(अलैहि.)* की जो आख़िरी तक़रीर बयान की गई है, उसमें तो वे बार-बार बनी-इसराईल से वादा लेते हैं कि जो अहकाम मैंने तुमको पहुँचाए हैं उन्हें अपने दिल में बिठा लेना, और अपनी अगली नस्लों को सिखाना, घर बैठे और राह चलते और लेटते और उठते, हर वक़्त उनकी चर्चा करना, अपने घर की चौखटों पर और अपने फाटकों पर उनको लिख देना।(6:4-9) फिर अपनी आख़िरी वसीयत में उन्होंने ताकीद की कि फ़िलिस्तीन की हद में दाख़िल होने के बाद पहला काम यह करना कि एबाल पहाड़ पर बड़े-बड़े पत्थर लगा कर तौरात के सारे अहकाम को उनपर लिख देना (व्यवस्थाविवरण 27 : 2-4)। इसके साथ ही मूसा ने बनी-लावी को तौरात का एक नुस्ख़ा (प्रति) देकर ताकीद की कि हर सातवें साल ईदे-ख़ियाम (तम्बूओं के पर्व) के मौक़े पर क़ौम के मर्दों, औरतों और बच्चों सबको

ثَمَنًا قَلِيْلًا ؕ فَبِئْسَ مَا يَشْتَرُوْنَ ۝١٨٧ لَا تَحْسَبَنَّ
الَّذِيْنَ يَفْرَحُوْنَ بِمَآ اَتَوْا وَّيُحِبُّوْنَ اَنْ يُّحْمَدُوْا
بِمَا لَمْ يَفْعَلُوْا فَلَا تَحْسَبَنَّهُمْ بِمَفَازَةٍ مِّنَ الْعَذَابِ ۚ
وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝١٨٨ وَلِلّٰهِ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَ
الْاَرْضِ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝١٨٩ اِنَّ فِيْ
خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَاخْتِلَافِ الَّيْلِ وَالنَّهَارِ

डाला। कितना बुरा कारोबार है जो ये कर रहे हैं! (188) तुम उन लोगों को अज़ाब से महफ़ूज़ (सुरक्षित) न समझो जो अपनी करतूतों पर ख़ुश हैं और चाहते हैं कि ऐसे कामों की तारीफ़ उन्हें हासिल हो जो हक़ीक़त में उन्होंने नहीं किए हैं।[133] हक़ीक़त में उनके लिए दर्दनाक सज़ा तैयार है। (189) ज़मीन और आसमानों का मालिक अल्लाह है, और उसकी क़ुदरत सब पर हावी है।

(190) ज़मीन[134] और आसमानों की पैदाइश में और रात और दिन के बारी-बारी से

जगह-जगह जमा करके इस पूरी किताब का एक-एक लफ़्ज़ उनको सुनाते रहना (व्यवस्थाविवरण 31 : 9-11), लेकिन इसपर भी अल्लाह की किताब से बनी-इसराईल की ग़फ़लत धीरे-धीरे यहाँ तक बढ़ी कि हज़रत मूसा *(अलैहि.)* के सात सौ साल बाद हैकले सुलैमानी के सज्जादा-नशीन और यरूशलम के यहूदी हाकिमों तक को यह मालूम न था कि उनके यहाँ तौरात नामी कोई किताब भी मौजूद है। (2-राजा 22:8-13)

133. मिसाल के तौर पर वे अपनी तारीफ़ में यह सुनना चाहते हैं कि हज़रत बड़े परहेज़गार हैं, दीनदार और पारसा हैं और दीन की बड़ी ख़िदमत करनेवाले और ख़ुदा के दीन के पक्के हामी हैं, समाज सुधारक और लोगों का तज़किया करनेवाले हैं। हालाँकि ये कुछ भी नहीं हैं। ये अपने लिए यह ढिंढोरा पिटवाना चाहते हैं कि फ़ुलाँ साहब बड़ी क़ुरबानी देनेवाले और दयानतदार (सत्यनिष्ठ) रहनुमा हैं और उन्होंने मिल्लत की बड़ी ख़िदमत की है, हालाँकि मामला बिलकुल इसके उलटा है।

134. यह तक़रीर का आख़िरी हिस्सा है। इसका ताल्लुक़ ऊपर की क़रीबी आयतों में नहीं, बल्कि पूरी सूरा में तलाश करना चाहिए। इसको समझने के लिए ख़ास तौर से सूरा के दीबाचे (परिचय) को नज़र में रखना ज़रूरी है।

لَاٰیٰتٍ لِّاُولِی الْاَلْبَابِ ۝۱۹۰ الَّذِیْنَ یَذْكُرُوْنَ
اللّٰهَ قِیٰمًا وَّقُعُوْدًا وَّعَلٰی جُنُوْبِهِمْ وَیَتَفَكَّرُوْنَ
فِیْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۚ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ
هٰذَا بَاطِلًا ۚ سُبْحٰنَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ۝۱۹۱
رَبَّنَآ اِنَّكَ مَنْ تُدْخِلِ النَّارَ فَقَدْ اَخْزَیْتَهٗ ۭ وَمَا
لِلظّٰلِمِیْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ۝۱۹۲ رَبَّنَآ اِنَّنَا سَمِعْنَا مُنَادِیًا

आने में उन होश रखनेवाले लोगों के लिए बहुत-सी निशानियाँ हैं (191) जो उठते, बैठते और लेटते, हर हाल में अल्लाह को याद करते हैं और ज़मीन और आसमानों की बनावट में ग़ौर-फ़िक्र करते हैं।[135] (वे बेइख़्तियार बोल उठते हैं,) "पालनहार! यह सब कुछ तूने फ़िज़ूल और बेमक़सद नहीं बनाया है, तू पाक है इससे कि बेकार काम करे। इसलिए ऐ रब! हमें दोज़ख़ के अज़ाब से बचा ले।[136] (192) तूने जिसे दोज़ख़ में डाला, उसे हक़ीक़त में बड़ी ज़िल्लत व रुसवाई में डाल दिया, और फिर ऐसे ज़ालिमों का कोई मददगार न होगा। (193) मालिक! हमने एक पुकारनेवाले को सुना जो ईमान की तरफ़

135. यानी इन निशानियों से हर आदमी आसानी के साथ सच्चाई तक पहुँच सकता है। बस शर्त यह है कि वह अल्लाह से ग़ाफ़िल न हो और कायनात (सृष्टि) की निशानियों को जानवरों की तरह न देखे, बल्कि ग़ौर-फ़िक्र के साथ देखे।

136. जब वे कायनात के निज़ाम (सृष्टि-व्यवस्था) को ग़ौर से देखते हैं तो यह हक़ीक़त उनपर खुल जाती है कि यह निज़ाम पूरे तौर पर हिकमत और सूझ-बूझ पर बना है। और यह बात सरासर हिक्मत के ख़िलाफ़ है कि जिस मख़लूक़ में अल्लाह ने अख़लाक़ी हिस्स (नैतिक चेतना) पैदा की हो, जिसे इस्तेमाल करने के इख़तियार दिए हों, जिसे अक़्ल और समझ दी गई हो, उससे उसके दुनिया की ज़िन्दगी के कामों की पूछ-गच्छ न हो और उसे नेकी पर इनाम और बुराई पर सज़ा न दी जाए। इस तरह कायनात के निज़ाम पर ग़ौर-फ़िक्र करने से उन्हें आख़िरत का यक़ीन हासिल हो जाता है और वे अल्लाह की सज़ा से पनाह माँगने लगते हैं।

يُّنَادِيْ لِلْاِيْمَانِ اَنْ اٰمِنُوْا بِرَبِّكُمْ فَاٰمَنَّا ۖۗ رَبَّنَا
فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَكَفِّرْ عَنَّا سَيِّاٰتِنَا وَتَوَفَّنَا
مَعَ الْاَبْرَارِ ۝١٩٣ رَبَّنَا وَاٰتِنَا مَا وَعَدْتَّنَا عَلٰى رُسُلِكَ
وَلَا تُخْزِنَا يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ اِنَّكَ لَا تُخْلِفُ الْمِيْعَادَ ۝١٩٤
فَاسْتَجَابَ لَهُمْ رَبُّهُمْ اَنِّىْ لَاۤ اُضِيْعُ عَمَلَ
عَامِلٍ مِّنْكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ اُنْثٰى ۚ بَعْضُكُمْ مِّنْۢ

बुलाता था और कहता था कि अपने रब को मानो। हमने उसके पैग़ाम को क़बूल कर लिया,[137] तो ऐ हमारे मालिक! जो ग़लतियाँ हमसे हुई हैं उनको माफ़ कर दे, जो बुराइयाँ हममें हैं उन्हें दूर कर दे और हमारा ख़ात्मा (अन्त) नेक लोगों के साथ कर। (194) ऐ हमारे रब! जो वादे तूने अपने रसूलों के ज़रीए से किए हैं उनको हमारे साथ पूरा कर और क़ियामत के दिन हमें रुसवाई में न डाल, बेशक तू अपने वादे के ख़िलाफ़ करनेवाला नहीं है।"[138]

(195) जवाब में उनके रब ने कहा, "मैं तुममें से किसी का अमल अकारथ करने

---

137. इसी तरह उनका कायनात पर ग़ौर-फ़िक्र के साथ देखना उनको इस बात पर भी मुत्मइन कर देता है कि पैग़म्बर इस कायनात और इसके शुरू होने और ख़त्म होने के बारे में जो नज़रिया पेश करते हैं और ज़िन्दगी का जो रास्ता बताते हैं, वह सरासर हक़ है।

138. यानी उन्हें इस बात में तो शक नहीं है कि अल्लाह अपने वादों को पूरा करेगा या नहीं। अलबत्ता उलझन है तो इस बात पर कि क्या हम भी उन वादों के हक़दार होंगे या नहीं, इसलिए वे अल्लाह से दुआ माँगते हैं कि हमें उन वादों के मुताबिक़ इनाम पाने का हक़दार बना दे और हमारे साथ उन्हें पूरा कर, कहीं ऐसा न हो कि दुनिया में तो हम पैग़म्बरों पर ईमान लाकर काफ़िरों के मज़ाक़ और तानों का निशाना बने ही हैं, क़ियामत में भी इन काफ़िरों के सामने हमारी रुसवाई हो और वे हमपर फब्ती कसें कि ईमान लाकर भी इनका भला न हुआ।

بَعۡضٍ ۚ فَالَّذِيۡنَ هَاجَرُوۡا وَاُخۡرِجُوۡا مِنۡ دِيَارِهِمۡ
وَاُوۡذُوۡا فِىۡ سَبِيۡلِىۡ وَقٰتَلُوۡا وَقُتِلُوۡا لَاُكَفِّرَنَّ
عَنۡهُمۡ سَيِّاٰتِهِمۡ وَلَاُدۡخِلَنَّهُمۡ جَنّٰتٍ تَجۡرِىۡ مِنۡ
تَحۡتِهَا الۡاَنۡهٰرُ ۚ ثَوَابًا مِّنۡ عِنۡدِ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ عِنۡدَهٗ
حُسۡنُ الثَّوَابِ ﴿۱۹۵﴾ لَا يَغُرَّنَّكَ تَقَلُّبُ الَّذِيۡنَ
كَفَرُوۡا فِى الۡبِلَادِ ﴿۱۹۶﴾ مَتَاعٌ قَلِيۡلٌ ۟ ثُمَّ مَاۡوٰٮهُمۡ
جَهَنَّمُ ؕ وَبِئۡسَ الۡمِهَادُ ﴿۱۹۷﴾ لٰكِنِ الَّذِيۡنَ اتَّقَوۡا رَبَّهُمۡ

वाला नहीं हूँ। चाहे मर्द हो या औरत, तुम सब एक-दूसरे के हमजिंस (सहजाति) हो,[139] इसलिए जिन लोगों ने मेरे लिए अपने वतन छोड़े और जो मेरी राह में अपने घरों से निकाले गए और सताए गए और मेरे लिए लड़े और मारे गए, उनके सब क़ुसूर मैं माफ़ कर दूँगा और उन्हें ऐसे बाग़ों में दाख़िल करूँगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी। यह उनका बदला है अल्लाह के यहाँ, और सबसे अच्छा बदला अल्लाह ही के पास है।"[140]

(196) ऐ नबी! दुनिया के मुल्कों में अल्लाह के नाफ़रमान लोगों की चलत-फिरत तुम्हें किसी धोखे में न डाले। (197) यह सिर्फ़ कुछ दिनों की ज़िन्दगी का थोड़ा-सा मज़ा है, फिर ये सब जहन्नम में जाएँगे, जो बहुत ही बुरा ठिकाना है। (198) इसके बरख़िलाफ़

139. यानी तुम सब इनसान हो और मेरी निगाह में बराबर हो। मेरे यहाँ यह दस्तूर नहीं है कि औरत और मर्द, मालिक और ग़ुलाम, काले और गोरे, ऊँच और नीच के लिए इनसाफ़ के उसूल और फ़ैसले के पैमाने अलग-अलग हों।

140. रिवायत (उल्लिखित) है कि कुछ ग़ैर-मुस्लिम नबी *(सल्ल.)* के पास आए और कहा कि मूसा लाठी और यदे-बैज़ा (चमकता हुआ सफ़ेद हाथ) लाए थे। ईसा *(अलैहि.)* अंधों को आँखवाला और कोढ़ियों को अच्छा करते थे। दूसरे पैग़म्बर भी कुछ-न-कुछ मोजिज़े (चमत्कार) लाए थे। आप बताएँ कि आप क्या लाए हैं? इसपर आप *(सल्ल.)* ने आयत 90 से यहाँ तक की आयतें पढ़ीं और उनसे कहा, "मैं तो यह लाया हूँ।"

لَهُمْ جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ
فِيْهَا نُزُلًا مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ ؕ وَمَا عِنْدَ اللّٰهِ خَيْرٌ
النصف لِّلْاَبْرَارِ ﴿۱۹۸﴾ وَاِنَّ مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ لَمَنْ يُّؤْمِنُ بِاللّٰهِ
وَمَاۤ اُنْزِلَ اِلَيْكُمْ وَمَاۤ اُنْزِلَ اِلَيْهِمْ خٰشِعِيْنَ لِلّٰهِ ۙ
لَا يَشْتَرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ثَمَنًا قَلِيْلًا ؕ اُولٰٓئِكَ لَهُمْ
اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ﴿۱۹۹﴾
يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اصْبِرُوْا وَصَابِرُوْا وَرَابِطُوْا ۟ قف
وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿۲۰۰﴾ ع ۲۰

जो लोग अपने रब से डरते हुए ज़िन्दगी बसर करते हैं, उनके लिए ऐसे बाग़ हैं जिनके नीचे नहरें बहती हैं, उन बाग़ों में वे हमेशा रहेंगे, अल्लाह की तरफ़ से यह मेहमानी का सामान है उनके लिए, और जो कुछ अल्लाह के पास है नेक लोगों के लिए वही सबसे अच्छा है। (199) किताबवालों में भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अल्लाह को मानते हैं, इस किताब पर ईमान लाते हैं जो तुम्हारी तरफ़ भेजी गई है और उस किताब पर भी ईमान रखते हैं जो इससे पहले ख़ुद उनकी तरफ़ भेजी गई थी। अल्लाह के आगे झुके हुए हैं, और अल्लाह की आयतों को थोड़ी-सी क़ीमत पर बेच नहीं देते। उनका बदला उनके रब के पास है, और अल्लाह हिसाब चुकाने में देर नहीं लगाता।

(200) ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! सब्र से काम लो, बातिलपरस्तों (असत्यवादियों) के मुक़ाबले में जमे रहो,[141] हक़ की ख़िदमत के लिए कमर कसे रहो, और अल्लाह से डरते रहो, उम्मीद है कि कामयाबी पाओगे।

---

141. अस्ल अरबी मतन में 'साबिरू' का लफ़्ज़ आया है। इसके दो मानी (मतलब) हैं, एक यह कि कुफ़्र करनेवाले लोग अपने कुफ़्र पर जो मज़बूती दिखा रहे हैं और उसको ऊँचा रखने के लिए जो तकलीफ़ें उठा रहे हैं, तुम उनके मुक़ाबले में उनसे बढ़कर मज़बूती दिखाओ। दूसरे यह कि उनके मुक़ाबले में एक-दूसरे से बढ़कर मज़बूती दिखाओ।

4. अन-निसा

परिचय

उतरने का ज़माना और मज़मून

इस सूरा में बहुत-से ख़ुतबे (तक़रीरें) हैं जो शायद सन् 3 हिजरी के आख़िर से लेकर 4 हिजरी के आख़िर या 5 हिजरी के शुरू तक अलग-अलग वक़्तों में उतरे हैं। हालाँकि यह तय करना मुश्किल है कि किस आयत से किस आयत तक की आयतें एक तक़रीर के सिलसिले के तौर पर उतरी थीं और उनके उतरने का ठीक ज़माना क्या है। लेकिन कुछ हुक्मों और वाक़िआत (घटनाओं) की तरफ़ कुछ इशारे ऐसे हैं जिनके उतरने की तारीख़ें हमें रिवायतों से मालूम हो जाती हैं। इसलिए इनकी मदद से हम उन अलग-अलग तक़रीरों की एक सरसरी-सी हदबन्दी कर सकते हैं जिनमें ये हुक्म और ये इशारे पाए जाते हैं।

मिसाल के तौर पर हमें मालूम है कि विरासत के बँटवारे और यतीमों के हुक़ूक़ के बारे में हिदायतें उहुद की जंग के बाद उतरी थीं, जबकि मुसलमानों के सत्तर आदमी शहीद हो गए थे और मदीना की छोटी-सी बस्ती में इस हादसे की वजह से बहुत-से घरों में यह सवाल पैदा हो गया था कि शहीदों की मीरास किस तरह बाँटी जाए, और जो यतीम बच्चे उन्होंने छोड़े हैं उनके क़ायदों और भलाइयों की हिफ़ाज़त कैसे हो? इस बुनियाद पर हम गुमान कर सकते हैं कि आयत-1 से 28 उसी ज़माने में उतरी होंगी।

रिवायतों में 'सलाते-ख़ौफ़' (जंग की हालत में नमाज़ पढ़ने) का बयान हमें 'ज़ातुर्रिक़ाअ' की जंग में मिलता है, जो सन् 04 हि० में हुई। इसलिए अन्दाज़ा किया जा सकता है कि इसी के क़रीब के ज़माने में वह ख़ुतबा उतरा होगा जिसमें इस नमाज़ का तरीक़ा और तरतीब बयान की गई है। (आयत- 97 से 104)

(एक यहूदी क़बीले) बनी-नज़ीर को माह रबीउल-अव्वल सन 04 हि० में मदीना से निकाला गया था। इसलिए ज़्यादा उम्मीद इस बात की है कि वह ख़ुतबा इससे पहले क़रीबी ज़माने ही में उतरा होगा, जिसमें यहूदियों को आख़िरी चेतावनी दी गई है कि 'ईमान ले आओ, इससे पहले कि हम चेहरे बिगाड़कर पीछे फेर दें।'

पानी न मिलने पर तयम्मुम की इजाज़त बनू-मुस्तलिक़ की लड़ाई के मौक़े पर दी गई थी जो सन् 05 हि० में हुई। इसलिए उस ख़ुतबे को, जिसमें तयम्मुम का बयान

आया है, उसी ज़माने के क़रीब ही में उतरा हुआ समझना चाहिए। (आयत-43 से 50)

शाने-नुज़ूल और बहसें

इस तरह कुल मिलाकर सूरा के उतरने का ज़माना मालूम हो जाने के बाद हमें उस वक़्त की तारीख़ (इतिहास) पर एक नज़र डाल लेनी चाहिए ताकि सूरा के मज़मूनों को समझने में उससे मदद ली जा सके।

नबी *(सल्ल०)* के सामने उस वक़्त जो काम था उसे तीन बड़े-बड़े हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक, उस नई मुनज़्ज़म (सुसंगठित) इस्लामी सोसाइटी की तरक़्क़ी और उसका फलना-फूलना जिसकी बुनियाद मदीना और उसके आस-पास के इलाक़ों में हिजरत के साथ ही पड़ चुकी थी और जिसमें जाहिलियत के पुराने तरीक़ों को मिटाकर अख़लाक़, तमद्दुन (संस्कृति), मुआशरत (सामाजिकता), मईशत (अर्थव्यवस्था) और मुल्क को चलाने की स्कीमों और तदबीरों के नए उसूल लागू किए जा रहे थे। दूसरे, उस कश-म-कश का मुक़ाबला जो अरब के मुशरिकों, यहूदी क़बीलों और मुनाफ़िक़ों की इस्लाह-मुख़ालिफ़ ताक़तों के साथ पूरे ज़ोर-शोर से जारी थी। तीसरे, राह में रुकावट बनीं इन ताक़तों के मुक़ाबले में इस्लाम के पैग़ाम को न सिर्फ़ फैलाना, बल्कि लोगों के दिलों को और ज़्यादा जीतना। अल्लाह की तरफ़ से इस मौक़े पर जितने ख़ुतबे उतारे गए उन सबका ताल्लुक़ इन्हीं तीन हिस्सों से है।

इस्लामी सोसाइटी को संगठित (मुनज़्ज़म) करने के लिए सूरा-2, अल-बक़रा में जो हिदायतें दी गई थीं, अब इस सोसाइटी को उससे ज़्यादा हिदायतों की ज़रूरत थी। इसलिए सूरा निसा के इन ख़ुतबों में ज़्यादा तफ़सील से बताया गया कि मुसलमान अपनी इज्तिमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी को इस्लामी तरीक़े पर किस तरह ठीक करें। ख़ानदान को मुनज़्ज़म करने के उसूल बताए गए। निकाह की तादाद तय की गई। समाज में औरत और मर्द के ताल्लुक़ात की हद मुक़र्रर की गई। यतीमों के हुक़ूक़ तय किए गए। विरासत के बँटवारे का ज़ाब्ता और क़ानून मुक़र्रर किया गया। माली मामलों को ठीक रखने के लिए हिदायतें दी गईं। घरेलू झगड़ों के सुधार का तरीक़ा सिखाया गया। फ़ौजदारी क़ानून की बुनियाद रखी गई। शराब पीने पर पाबन्दी लगाई गई। सफ़ाई और पाकी के आदेश दिए गए। मुसलमानों को बताया गया कि एक नेक और भले इनसान का रवैया ख़ुदा और बन्दों के साथ कैसा होना चाहिए। मुसलमानों को हिदायतें दी गईं कि वे अपने अन्दर एक जमाअत के तौर पर नज़्म और ज़ब्त (अनुशासन, Discipline) क़ायम रखें। किताबवालों के अख़लाक़ी और मज़हबी रवैये पर तनक़ीद (आलोचना) करके

मुसलमानों को ख़बरदार किया गया कि अपने इन पहले की उम्मतों (समुदायों) के नक़्शे-क़दम पर चलने से बचें। मुनाफ़िक़ों के रवैये पर तनक़ीद करके सच्ची ईमानदारी के तक़ाज़े वाज़ेह किए गए और ईमान तथा निफ़ाक़ (कपटाचार) की सिफ़ात (गुणों) को बिलकुल वाज़ेह करके रख दिया।

इस्लाह और सुधार की मुख़ालिफ़ ताक़तों से जो कश-म-कश (संघर्ष) चल रही थी उसने उहुद की जंग के बाद ज़्यादा संगीन शक्ल इख़्तियार कर ली थी। मुसलमानों के उहुद की जंग हार जाने से मदीना के आस-पास के मुशरिक क़बीलों, पड़ोस के यहूदियों और घर के मुनाफ़िक़ों की हिम्मतें बढ़ गई थीं और मुसलमान हर तरफ़ से ख़तरों में घिर गए थे। इन हालात में अल्लाह ने एक तरफ़ जोशीली तक़रीरों के ज़रीए से मुसलमानों को मुक़ाबले के लिए उभारा और दूसरी तरफ़ जंग की हालत में काम करने के लिए उन्हें बहुत-सी ज़रूरी हिदायतें दीं। मदीना में मुनाफ़िक़ और कमज़ोर ईमान के लोग हर तरह की ख़ौफ़नाक अफ़वाहें उड़ाकर मुसलमानों के क़दम उखाड़ने की कोशिश कर रहे थे। हुक्म दिया गया कि इस तरह की हर ख़बर ज़िम्मेदार लोगों तक पहुँचाई जाए और जब तक वे किसी ख़बर की तहक़ीक़ और छान-बीन न कर लें उसको फैलने से रोका जाए।

मुसलमानों को बार-बार जंगों में जाना पड़ता था और ज़्यादातर ऐसे रास्तों से गुज़रना पड़ता था जहाँ पानी नहीं मिल सकता था। इजाज़त दी गई कि पानी न मिले तो ग़ुस्ल और वुज़ू दानों के बजाय 'तयम्मुम' कर लिया जाए। साथ ही, ऐसी हालत में नमाज़ को छोटी करने की भी इजाज़त दे दी गई और जहाँ ख़तरा सिर पर हो, वहाँ सलाते-ख़ौफ़ (डर की हालत में नमाज़) अदा करने का तरीक़ा बताया गया। अरब के अलग-अलग इलाक़ों में जो मुसलमान दुश्मन क़बीलों के बीच में बिखरे हुए थे और कभी-कभी जंग की लपेट में भी आ जाते थे उनका मामला मुसलमानों के लिए बड़ा ही सख़्त और परेशान करनेवाला था। इस मसले में एक तरफ़ इस्लामी जमाअत को तफ़सीली हिदायतें दी गईं और दूसरी तरफ़ उन मुसलमानों को भी हिजरत पर उभारा गया कि वे हर तरफ़ से सिमट कर दारुल-इस्लाम में आ जाएँ।

यहूदियों में से बनी-नज़ीर का रवैया ख़ास तौर से बहुत ही सख़्त दुश्मनी का हो गया था और वे मुआहिदों (सन्धियों) को तोड़कर खुल्लम-खुल्ला इस्लाम-दुश्मनों का साथ दे रहे थे और ख़ुद मदीना में मुहम्मद *(सल्ल०)* और आपकी जमाअत के ख़िलाफ़ साज़िशों के जाल बिछा रहे थे। उनके इस रवैये पर सख़्त पकड़ की गई और उन्हें साफ़ लफ़्ज़ों में आख़िरी चेतावनी दे दी गई। इसके बाद ही मदीना से उन्हें निकाल दिया गया।

मुनाफ़िक़ों के अलग-अलग गरोह अलग-अलग रवैये अपनाए हुए थे और

मुसलमानों के लिए यह फ़ैसला करना मुश्किल था कि किस तरह के मुनाफ़िक़ों से क्या मामला करें। इन सब लोगों को अलग-अलग तबक़ों में बाँटकर हर तबक़े के मुनाफ़िक़ों के बारे में बता दिया गया कि उनके साथ यह बर्ताव होना चाहिए।

ऐसे ग़ैर-जानिबदार (तटस्थ) क़बीलों के साथ, जिनके साथ समझौते हुए थे, जो रवैया मुसलमानों का होना चाहिए था उसको भी वाज़ेह किया गया।

सबसे ज़्यादा अहम बात यह थी कि मुसलमान का अपना किरदार (चरित्र) बे-दाग़ हो, क्योंकि इस कश-म-कश (संघर्ष) में यह मुट्ठी भर जमाअत अगर जीत सकती थी तो अपने अच्छे अख़लाक़ ही के बल पर जीत सकती थी। इसलिए मुसलमानों को अच्छे से अच्छे अख़लाक़ की तालीम दी गई और जो कमज़ोरी भी उनकी जमाअत में ज़ाहिर हुई, उसपर सख़्त पकड़ की गई।

(इस्लाम की) दावत और तबलीग़ का पहलू भी इस सूरा में छूटने नहीं पाया है। जाहिलियत के मुक़ाबले में इस्लाम जिस अख़लाक़ी और तमद्दुनी (सांस्कृतिक) सुधार की तरफ़ दुनिया को बुला रहा था उसको वाज़ेह करने के अलावा यहूदियों, ईसाइयों और मुशरिकों, तीनों गरोहों के ग़लत दीनी अक़ीदों और बुरे अख़लाक़ और आमाल पर भी इस सूरा में तनक़ीद करके उनको दीने-हक़ (सत्य-धर्म) की तरफ़ दावत दी गई है।

☆☆☆

(آیاتھا ۱۷۶) (۴) سُوْرَةُ النِّسَآءِ مَدَنِيَّةٌ (۹۲) (رکوعاتھا ۲۴)

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ الَّذِيْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّخَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا

4. अन-निसा

(मदीना में उतरी, आयतें-176)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) लोगो, अपने रब से डरो जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी जान से उसका जोड़ा बनाया और इन दोनों से बहुत मर्द और औरत दुनिया में फैला दिए।[1]

---

1. चूँकि आगे चलकर इनसानों के आपसी हक़ और अधिकार बयान किए जाने हैं और ख़ास तौर से ख़ानदानी निज़ाम को बेहतर और पायदार बनाने के लिए ज़रूरी क़ानून बयान किए जाने हैं, इसलिए शुरुआत इस तरह की गई कि एक तरफ़ अल्लाह से डरने और उसकी नाराज़ी से बचने की ताकीद की और दूसरी तरफ़ यह बात दिल और दिमाग़ में बिठाई कि सभी इनसान एक असल (मूल) से हैं और एक-दूसरे का ख़ून और हाड़-मांस हैं।

'तुमको एक जान से पैदा किया', यानी इनसानों की पैदाइश सबसे पहले एक आदमी से की। दूसरी जगह क़ुरआन ख़ुद इसको वाज़ेह करते हुए बताता है कि वह पहला इनसान आदम था, जिससे दुनिया में इनसानी नस्ल फैली।

'उसी जान से उसका जोड़ा बनाया', इस बात की तफ़सील हमारे इल्म में नहीं है कि उसे किस तरह बनाया गया। आम तौर पर जो बात क़ुरआन के मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) ने बयान की है और जो बाइबल में भी बयान की गई है, वह यह है कि आदम की पसली से हव्वा को पैदा किया गया। (तलमूद में और ज़्यादा खोलकर बताया गया है कि हज़रत हव्वा को हज़रत आदम (अलै०) की दाहिनी तरफ़ की तेरहवीं पसली से पैदा किया गया था), लेकिन अल्लाह की किताब क़ुरआन इस बारे में ख़ामोश है और जो हदीस इसकी ताईद में पेश की जाती है उसका मतलब वह नहीं है जो लोगों ने समझा है। इसलिए बेहतर यह है कि बात को इसी तरह मुजमल (अस्पष्ट) रहने दिया जाए जिस तरह अल्लाह ने उसे मुजमल रखा है और इसकी तफ़सीली कैफ़ियत तय करने में वक़्त बरबाद न किया जाए।

رِجَالًا كَثِيرًا وَّنِسَآءً ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِىۡ تَسَآءَلُوۡنَ
بِهٖ وَالۡاَرۡحَامَ ‌ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلَيۡكُمۡ رَقِيۡبًا ①
وَاٰتُوا الۡيَتٰمٰٓى اَمۡوَالَهُمۡ‌ وَلَا تَتَبَدَّلُوا الۡخَبِيۡثَ
بِالطَّيِّبِ‌ ۖ وَلَا تَاۡكُلُوۡۤا اَمۡوَالَهُمۡ اِلٰٓى اَمۡوَالِكُمۡ‌ ؕ
اِنَّهٗ كَانَ حُوۡبًا كَبِيۡرًا ② وَاِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا تُقۡسِطُوۡا
فِى الۡيَتٰمٰى فَانۡكِحُوۡا مَا طَابَ لَكُمۡ مِّنَ النِّسَآءِ مَثۡنٰى

उस ख़ुदा से डरो जिसका वास्ता देकर तुम एक-दूसरे से अपने हक़ माँगते हो, और नाते-रिश्तों के ताल्लुक़ात को बिगाड़ने से बचो। यक़ीन जानो कि अल्लाह तुमपर निगरानी कर रहा है।

(2) यतीमों के माल उनको वापस दो,[2] अच्छे माल को बुरे माल से न बदल लो[3], और उनके माल अपने माल के साथ मिलाकर न खा जाओ, यह बहुत बड़ा गुनाह है।

(3) और अगर तुम यतीमों के साथ नाइनसाफ़ी करने से डरते हो तो जो औरतें तुमको पसन्द आएँ उनमें से दो-दो, तीन-तीन, चार-चार से निकाह कर लो।[4] लेकिन अगर

2. यानी जब तक वे बच्चे हैं, उनके माल उन्हीं के फ़ायदे और भलाई पर ख़र्च करो और जब वे बड़े हो जाएँ तो जो उनका हक़ है वह उन्हें वापस कर दो।
3. यह एक ऐसा जुमला है जो अपने अन्दर बहुत से मानी और मतलब रखता है, जिसका एक मतलब यह है कि हलाल की कमाई के बजाय हरामख़ोरी न करने लगो, और दूसरा मतलब यह है कि यतीमों के अच्छे माल को अपने बुरे माल से न बदल लो।
4. क़ुरआन के मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) ने इसके तीन मतलब बयान किए हैं–
(1) हज़रत आइशा (रज़ि॰) इसकी तफ़सीर करते हुए कहती हैं कि जाहिलियत के ज़माने में जो यतीम बच्चियाँ लोगों की सरपरस्ती में होती थीं उनके माल और उनके हुस्न और ख़ूबसूरती की वजह से या यह सोचकर कि उनका कोई सिरधरा (सरपरस्त) तो है नहीं, जिस तरह हम चाहेंगे दबाकर रखेंगे, वे उनसे ख़ुद निकाह कर लेते थे और फिर उनपर ज़ुल्म किया करते थे। इसपर कहा गया कि अगर तुमको यह अन्देशा हो कि यतीम लड़कियों के साथ इनसाफ़ न कर सकोगे तो दूसरी औरतें दुनिया में मौजूद हैं, उनमें से जो तुम्हें पसन्द आएँ उनके साथ निकाह कर लो। इसी सूरा की 127वीं आयत इस तफ़सीर की ताईद और पुष्टि (तसदीक़) करती है।

وَثُلٰثَ وَرُبٰعَ ۚ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً

तुम्हें डर हो कि उनके साथ इनसाफ़ न कर सकोगे तो फिर एक ही बीवी रखो[5] या उन

(2) इब्ने-अब्बास और उनके शागिर्द इकरिमा इस आयत की तफ़सीर यह बयान करते हैं कि जाहिलियत के ज़मानें में निकाह की कोई हद न थी। एक-एक आदमी दस-दस बीवियाँ कर लेता था और जब बीवियों की इस बड़ी तादाद से ख़र्च बढ़ जाते थे तो मजबूर होकर अपने यतीम भतीजों, भांजों और दूसरे बे-बस रिश्तेदारों के हक़ों पर हाथ डालता था। इस पर अल्लाह ने निकाह के लिए चार की हद मुक़र्रर कर दी और फ़रमाया कि ज़ुल्म और नाइनसाफ़ी से बचने की सूरत यह है कि एक से लेकर चार तक इतनी बीवियाँ करो जिनके साथ तुम इनसाफ़ पर क़ायम रह सको।

(3) सईद-बिन-जुबैर और क़तादा और कुछ दूसरे मुफ़स्सिर (टीकाकार) कहते हैं कि जहाँ तक यतीमों का मामला है जाहिलियत के ज़माने के लोग भी उनके साथ नाइनसाफ़ी करने को अच्छी निगाह से नहीं देखते थे। लेकिन औरतों के मामले में उनके दिल और दिमाग़ अदल और इनसाफ़ के तसव्वुर से ख़ाली थे। जितनी चाहते थे, शादियाँ कर लेते थे और फिर उनके साथ ज़ुल्म और ज़्यादती से पेश आते थे। इसपर ख़ुदा ने कहा कि अगर तुम यतीमों के साथ नाइनसाफ़ी करने से डरते हो तो औरतों के साथ भी नाइनसाफ़ी करने से डरो। पहली बात तो चार से ज़्यादा निकाह ही न करो और दूसरे इस चार की हद में भी बस उतनी ही बीवियाँ रखो जिनके साथ इनसाफ़ कर सको।

आयत के अलफ़ाज़ में इन तीनों बातों की गुंजाइश है और अजब नहीं कि तीनों मतलब मुराद हों। साथ ही इसका एक मतलब यह भी हो सकता है कि अगर तुम यतीमों के साथ उस तरह इनसाफ़ नहीं कर सकते तो उन औरतों से निकाह कर लो जिनके साथ यतीम बच्चे हैं।

5. इस बात पर मुसलमानों के सभी आलिम एक राय रखते हैं कि इस आयत के मुताबिक़ निकाह की तादाद की हदबन्दी कर दी गई है और एक ही वक़्त में चार से ज़्यादा बीवियाँ रखने को मना कर दिया गया है। रिवायतों से भी इसकी तस्दीक़ होती है। चुनाँचे हदीसों में आया है कि ताइफ़ के सरदार ग़ैलान ने जब इस्लाम क़बूल किया तो उसकी नौ बीवियाँ थीं। नबी *(सल्ल०)* ने उसे हुक्म दिया कि चार बीवियाँ रख ले और बाक़ी को तलाक़ दे दे। इसी तरह एक दूसरे आदमी (नोफ़ल-बिन-मुआविया) की पाँच बीवियाँ थीं। नबी *(सल्ल०)* ने हुक्म दिया कि इनमें से एक को तलाक़ दे दे।

इसी के साथ-साथ यह आयत एक से ज़्यादा बीवी रखने की इजाज़त के लिए अदल और इनसाफ़ की शर्त जो आदमी इनसाफ़ की शर्त पूरी नहीं करता मगर एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त से फ़ायदा उठाता है वह अल्लाह के साथ दग़ाबाज़ी करता है। इस्लामी हुकूमत की अदालतों को यह हक़ हासिल है कि जिस बीवी या जिन बीवियों के साथ वह इनसाफ़ न कर रहा हो उनको इनसाफ़ दिलाएँ।

कुछ लोग मग़रिब (पश्चिम) के मसीही ख़यालों से मुतास्सिर होकर और रौब खाकर यह साबित

اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ۭ ذٰلِكَ اَدْنٰٓى اَلَّا تَعُوْلُوْا ۝۳
وَاٰتُوا النِّسَاۗءَ صَدُقٰتِهِنَّ نِحْلَةً ۭ فَاِنْ طِبْنَ لَكُمْ عَنْ

औरतों को बीवी बनाओ जो तुम्हारे क़ब्ज़े में आई हैं।[6] नाइनसाफ़ी से बचने के लिए यह ज़्यादा अच्छा है।

(4) और औरतों के महर ख़ुशी से (फ़र्ज़ जानते हुए) अदा करो। अलबत्ता अगर वे

करने की कोशिश करते हैं कि क़ुरआन का असल मक़सद कई बीवियाँ रखने के तरीक़े को (जो मग़रिब की नज़र में बुरा तरीक़ा है) मिटा देना था। मगर चूँकि यह तरीक़ा बहुत ज़्यादा रिवाज पा चुका था इसलिए इस पर सिर्फ़ पाबन्दियाँ लगाकर छोड़ दिया गया। लेकिन इस तरह की बातें असल में सिर्फ़ ज़ेहनी ग़ुलामी (मानसिक दासता) का नतीजा हैं। इस बात को तस्लीम नहीं किया जा सकता कि एक से ज़्यादा बीवियाँ रखना अपने-आप में कोई बुराई है, क्योंकि कुछ हालतों में यह चीज़ एक तहज़ीबी, समाजी और अख़लाक़ी ज़रूरत बन जाती है। अगर इसकी इजाज़त न हो तो फिर वे लोग जो एक बीवी पर मुत्मइन नहीं हो सकते, शादी के बन्धन और दायरे से बाहर जिंसी बदअमनी फैलाने लगते हैं, जिसके नुक़सान तहज़ीब, समाज और अख़लाक़ के लिए इससे कहीं ज़्यादा हैं जो कई बीवियाँ रखने से पहुँच सकते हैं। इसी लिए क़ुरआन ने उन लोगों को इसकी इजाज़त दी है जो इसकी ज़रूरत महसूस करें। फिर भी जिन लोगों के नज़दीक एक से ज़्यादा बीवियाँ रखना अपने आप में एक बुराई है उनको यह इख़्तियार तो ज़रूर हासिल है कि चाहें तो क़ुरआन के बरख़िलाफ़ एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने को बुरा क़रार दें और इसे ख़त्म कर देने का मश्विरा दें। लेकिन यह हक़ उन्हें नहीं पहुँचता कि अपनी राय को ख़ाह-म-ख़ाह क़ुरआन की राय से जोड़ें। क्योंकि क़ुरआन ने साफ़ शब्दों में इसको जायज़ ठहराया है और इशारे लफ़्ज़ों में भी इसके बुरा होने में कोई ऐसा लफ़्ज़ इस्तेमाल नहीं किया है जिससे मालूम हो कि हक़ीक़त में क़ुरआन इसे ख़त्म करना चाहता था। (इस सिलसिले में और ज़्यादा जानकारी के लिए देखें मेरी किताब 'सुन्नत की आईनी हैसियत' पेज-307 से 316।)

6. यहाँ औरतों से मुराद लौंडियाँ या दासियाँ हैं, यानी वे औरतें जो जंग में गिरफ्तार होकर आएँ और हुकूमत की तरफ़ से लोगों में तक़सीम कर दी जाएँ। मतलब यह है कि अगर एक आज़ाद ख़ानदानी बीवी का भार भी बर्दाश्त न कर सको तो फिर लौंडी से निकाह कर लो, जैसा कि आगे आयत-23 से 25 में आ रहा है। या यह कि अगर एक से ज़्यादा औरतों की तुम्हें ज़रूरत हो और आज़ाद ख़ानदानी बीवियों के दर्मियान इनसाफ़ करना तुम्हारे लिए मुश्किल हो तो लौंडियों की तरफ़ रुजू करो; क्योंकि उनकी वजह से तुम पर ज़िम्मेदारियों का भार ख़ानदानी बीवियों के मुक़ाबले में कम पड़ेगा। (आगे हाशिया-44 में लौंडियों के बारे में जो हुक्म और आदेश हो, उनकी और अधिक जानकारी मिलेगी।

شَیۡءٍ مِّنۡهُ نَفۡسًا فَكُلُوۡهُ هَنِيۡٓـًٔا مَّرِيۡٓـًٔا ۝ وَلَا تُؤۡتُوا
السُّفَهَآءَ اَمۡوَالَكُمُ الَّتِىۡ جَعَلَ اللّٰهُ لَكُمۡ قِيٰمًا
وَّارۡزُقُوۡهُمۡ فِيۡهَا وَاكۡسُوۡهُمۡ وَقُوۡلُوۡا لَهُمۡ قَوۡلًا

ख़ुद ही अपनी ख़ुशी से महर का कोई हिस्सा तुम्हें माफ़ कर दें तो उसे तुम मज़े से खा सकते हो।[7]

(5) और अपने वे माल जिन्हें अल्लाह ने तुम्हारे लिए ज़िन्दगी को बाक़ी रखने का ज़रीआ बनाया है, नादान लोगों के हवाले न करो, अलबत्ता उन्हें खाने और पहनने के लिए दो और उनकी अच्छी रहनुमाई करो।[8]

---

7. हज़रत उमर (रज़ि०) और क़ाज़ी शुरैह का फ़ैसला यह है कि अगर किसी औरत ने अपने शौहर का पूरा महर या उसका कोई हिस्सा माफ़ कर दिया हो और बाद में वह इसकी फिर माँग करे तो शौहर इसके अदा करने पर मजबूर किया जाएगा; क्योंकि उसकी माँग का मतलब यह है कि वह औरत अपनी ख़ुशी से महर या उसका कोई हिस्सा छोड़ना नहीं चाहती। (ज़्यादा जानकारी के लिए देखें मेरी किताब 'इस्लाम में पति-पत्नी के अधिकार' अध्याय 'महर')
8. यह आयत अपने अन्दर बहुत-से मानी और मतलब रखती है। इसमें मुस्लिम उम्मत (समुदाय) को यह जामे हिदायत की गई है कि माल, जो ज़िन्दगी को बाक़ी रखने का ज़रीआ है, बहरहाल ऐसे नादान और नासमझ लोगों के अधिकार और इस्तेमाल में नहीं रहना चाहिए जो उसे ग़लत तरीक़े से इस्तेमाल करके समाजी, मआशी (आर्थिक) और यहाँ तक कि अख़लाक़ी निज़ाम को बिगाड़ दें। मिल्कियत के हक़ जो किसी को अपने माल-जायदाद पर हासिल हैं वे इतने लामहदूद नहीं हैं कि वह अगर इन हक़ों को सही तौर पर इस्तेमाल करने के लायक़ न हो और उनके इस्तेमाल से वह समाज में फ़साद फैला दे तब भी उसके वे हक़ छीने न जा सकें। जहाँ तक आदमी की ज़िन्दगी की ज़रूरतों की बात है वे तो ज़रूर पूरी होनी चाहिएँ, लेकिन जहाँ तक मालिकाना हक़ों के आज़ादाना इस्तेमाल की बात है उस पर यह पाबन्दी लागू होनी चाहिए कि यह इस्तेमाल अख़लाक़, समाज और इज्तिमाई मईशत (समाज की आर्थिक व्यवस्था) के लिए खुले तौर पर नुक़सान देनेवाला न हो। इस हिदायत के मुताबिक़ छोटे पैमाने पर माल रखनेवाले हर आदमी को इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि वह अपना माल जिसके हवाले कर रहा है वह इसके इस्तेमाल की सलाहियत रखता है या नहीं। और बड़े पैमाने पर इस्लामी हुकूमत को इस बात का इन्तिज़ाम करना चाहिए कि जो लोग अपने मालों पर ख़ुद मालिक की हैसियत से ख़र्च करने की सलाहियत न रखते हों या जो लोग अपनी दौलत को बुरे तरीक़ों से इस्तेमाल कर रहे हों, उनके माल-जायदाद को वह अपने इन्तिज़ाम में ले ले और उनकी ज़िन्दगी की ज़रूरतों का इन्तिज़ाम कर दे।

مَّعْرُوفًا ۝ وَابْتَلُوا الْيَتٰمٰى حَتّٰىٓ اِذَا بَلَغُوا النِّكَاحَ ۚ فَاِنْ
اٰنَسْتُمْ مِّنْهُمْ رُشْدًا فَادْفَعُوْٓا اِلَيْهِمْ اَمْوَالَهُمْ ۚ وَلَا
تَاْكُلُوْهَآ اِسْرَافًا وَّبِدَارًا اَنْ يَّكْبَرُوْا ۭ وَمَنْ كَانَ
غَنِيًّا فَلْيَسْتَعْفِفْ ۚ وَمَنْ كَانَ فَقِيْرًا فَلْيَاْكُلْ
بِالْمَعْرُوْفِ ۭ فَاِذَا دَفَعْتُمْ اِلَيْهِمْ اَمْوَالَهُمْ

(6) और यतीमों की आज़माइश करते रहो, यहाँ तक कि वे निकाह की उम्र को पहुँच जाएँ।[9] फिर अगर तुम उनके अन्दर सलाहियत पाओ तो उनके माल उनके हवाले कर दो।[10] ऐसा कभी न करना कि इनसाफ़ की हद से आगे बढ़कर इस डर से उनके माल जल्दी-जल्दी खा जाओ कि वे बड़े होकर अपने हक़ की माँग करेंगे। यतीम का जो सरपरस्त मालदार हो वह परहेज़गारी से काम ले और जो ग़रीब हो वह भले तरीक़े से खाए।[11] फिर जब उनके माल उनके हवाले करने लगो तो लोगों को इसपर गवाह बना

9. यानी जब वे बालिग़ (वयस्क) होने की उम्र के क़रीब पहुँच रहे हों तो देखते रहो कि उनकी ज़ेहनी तरक़्क़ी कैसी है और उनमें अपने मामलों को ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारी पर चलाने की सलाहियत किस हद तक पैदा हो रही है?

10. माल उनके हवाले करने के लिए दो शर्तें लगाई गई हैं। एक 'बालिग़ होना' (वयस्कता), दूसरी 'समझदारी' यानी माल के सही इस्तेमाल की सलाहियत। पहली शर्त के बारे में तो मुस्लिम उम्मत के फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) में इत्तिफ़ाक़ है। दूसरी शर्त के बारे में इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) की राय यह है कि अगर बालिग़ होने की उम्र को पहुँचने पर यतीम में समझदारी न पाई जाए तो उस यतीम के सरपरस्त को ज़्यादा से ज़्यादा सात साल और इन्तिज़ार करना चाहिए। फिर चाहे समझदारी पाई जाए या न पाई जाए उसका माल उसके हवाले कर देना चाहिए। और इमाम अबू-यूसुफ़, इमाम मुहम्मद और इमाम शाफ़ई (रह०) की राय यह है कि माल हवाले किए जाने के लिए बहरहाल समझदारी का पाया जाना ज़रूरी है। शायद बाद के लोगों की राय के मुताबिक़ यह बात ज़्यादा सही होगी कि इस मामले में क़ाज़ी (जज) से रुजू किया जाए और अगर क़ाज़ी के सामने यह बात साबित हो जाए कि यतीम में समझदारी नहीं पाई जाती तो वह इसके मामलों की निगरानी के लिए ख़ुद कोई मुनासिब इन्तिज़ाम कर दे।

11. यानी वह यतीम की जो ख़िदमत कर रहा है उसके बदले में इस हद तक माल ले कि हर ग़ैर-जानिबदार (निष्पक्ष) समझदार आदमी उसको मुनासिब समझे। साथ ही यह भी कि अपनी ख़िदमत के बदले में वह जो कुछ भी ले चोरी-छिपे न ले बल्कि एलानिया तय करके ले और

فَاَشۡهِدُوۡا عَلَيۡهِمۡ‌ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ حَسِيۡبًا ۝۶ لِلرِّجَالِ
نَصِيۡبٌ مِّمَّا تَرَكَ الۡوَالِدٰنِ وَالۡاَقۡرَبُوۡنَ ۖ وَ
لِلنِّسَآءِ نَصِيۡبٌ مِّمَّا تَرَكَ الۡوَالِدٰنِ وَ الۡاَقۡرَبُوۡنَ
مِمَّا قَلَّ مِنۡهُ اَوۡ كَثُرَ‌ؕ نَصِيۡبًا مَّفۡرُوۡضًا ۝۷ وَاِذَا
حَضَرَ الۡقِسۡمَةَ اُولُوا الۡقُرۡبٰى وَالۡيَتٰمٰى وَالۡمَسٰكِيۡنُ
فَارۡزُقُوۡهُمۡ مِّنۡهُ وَقُوۡلُوۡا لَهُمۡ قَوۡلًا مَّعۡرُوۡفًا ۝۸

लो, और हिसाब लेने के लिए अल्लाह काफ़ी है।

(7) मर्दों के लिए उस माल में हिस्सा है जो माँ-बाप और रिश्तेदारों ने छोड़ा हो, और औरतों के लिए भी उस माल में हिस्सा है जो माँ-बाप और रिश्तेदारों ने छोड़ा हो, चाहे थोड़ा हो या बहुत,[12] और यह हिस्सा (अल्लाह की तरफ़ से) मुक़र्रर है।

(8) और जब बाँटने के मौक़े पर कुंबे के लोग और यतीम और मिस्कीन आएँ तो उस माल में से उनको भी कुछ दो और उनके साथ भले मानसों की-सी बात करो।[13]

उसका हिसाब रखे।

12. इस आयत में वाज़ेह तौर पर पाँच क़ानूनी हुक्म दिए गए हैं—

एक यह कि मीरास सिर्फ़ मर्दों ही का हिस्सा नहीं है बल्कि औरतें भी इसकी हक़दार हैं। दूसरे यह कि मीरास का हर हाल में बँटवारा होना चाहिए, चाहे वह कितनी ही कम हो, यहाँ तक कि अगर मरनेवाले ने एक गज़ कपड़ा छोड़ा है और दस वारिस हैं तो उसे भी दस हिस्सों में बाँटा जाना चाहिए। यह और बात है कि एक वारिस दूसरे वारिसों से उनका हिस्सा ख़रीद ले। तीसरे इस आयत से यह बात भी मालूम होती है कि विरासत का क़ानून हर क़िस्म के मालों और जायदादों पर लागू होगा। चाहे वे मनक़ूला हो या ग़ैर-मनक़ूला (चल सम्पत्ति हो या अचल), चाहे खेती-बाड़ी की हों या उद्योग-धन्धों (Industrial) की या किसी और तरह के माल में उनकी गिनती होती हो। चौथे इससे मालूम होता है कि मीरास का हक़ उस वक़्त पैदा होता है जब कोई आदमी (मूरिस) माल छोड़कर मरा हो। पाँचवें इससे यह क़ायदा भी निकलता है कि क़रीबी रिश्तेदार की मौजूदगी में दूर का रिश्तेदार मीरास न पाएगा। आगे इसी उसूल को आयत 11 के आख़िर में और आयत 33 में और ज़्यादा वाज़ेह किया गया है।

13. यह हिदायत मैयत के वारिसों को की जा रही है और हुक्म दिया जा रहा है कि मीरास के

وَلْيَخْشَ الَّذِيْنَ لَوْ تَرَكُوْا مِنْ خَلْفِهِمْ ذُرِّيَّةً ضِعٰفًا
خَافُوْا عَلَيْهِمْ ۖ فَلْيَتَّقُوا اللّٰهَ وَلْيَقُوْلُوْا قَوْلًا سَدِيْدًا ﴿٩﴾
اِنَّ الَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ الْيَتٰمٰى ظُلْمًا اِنَّمَا
يَاْكُلُوْنَ فِيْ بُطُوْنِهِمْ نَارًا ؕ وَسَيَصْلَوْنَ سَعِيْرًا ﴿١٠﴾ ع
يُوْصِيْكُمُ اللّٰهُ فِيْٓ اَوْلَادِكُمْ ۗ لِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ

---

(9) लोगों को इस बात का ख़याल करके डरना चाहिए कि अगर वे ख़ुद अपने पीछे बे-बस औलाद छोड़ते तो मरते वक़्त उन्हें अपने बच्चों के बारे में कैसे-कैसे अन्देशे होते। इसलिए चाहिए कि वे ख़ुदा का ख़ौफ़ करें और सीधी-सच्ची बात करें। (10) जो लोग ज़ुल्म के साथ यतीमों के माल खाते हैं हक़ीक़त में वे अपने पेट आग से भरते हैं, और वे ज़रूर जहन्नम की भड़कती हुई आग में झोंके जाएँगे।[14]

(11) तुम्हारी औलाद के बारे में अल्लाह तुम्हें हिदायत करता है कि—

मर्द का हिस्सा दो औरतों के बराबर है।[15]

बँटवारे के मौक़े पर जो दूर और क़रीब के रिश्तेदार और कुंबे के ग़रीब और मुहताज लोग और यतीम बच्चे आ जाएँ उनके साथ तंगदिली न बरतो। मीरास में शरीअत के मुताबिक़ उनका हिस्सा नहीं है तो न सही, फ़राख़दिली और कुशादादिली से काम लेकर मैयत के ज़रीए छोड़े गए माल में से उनको भी कुछ न कुछ दे दो और उनके साथ ऐसी दिल तोड़ देनेवाली बातें न करो जो ऐसे मौक़ों पर आम तौर से छोटे दिल के छिछोरे लोग किया करते हैं।

14. हदीस में आया है कि उहुद की लड़ाई के बाद हज़रत साद-बिन-रबीअ की बीवी अपनी दो बच्चियों को लिए हुए नबी (सल्ल०) के पास आईं और उन्होंने कहा कि "ऐ अल्लाह के रसूल! ये साद की बच्चियाँ हैं जो आपके साथ उहुद की लड़ाई में शहीद हुए हैं। इनके चचा ने पूरी जायदाद पर क़ब्ज़ा कर लिया है और इनके लिए एक दाना तक नहीं छोड़ा है। अब भला इन बच्चियों से कौन निकाह करेगा?" इस पर ये आयतें नाज़िल हुईं।

15. मीरास के मामले में यह सबसे पहली उसूली हिदायत है कि मर्द का हिस्सा औरत से दो गुना है। चूँकि शरीअत ने ख़ानदानी ज़िन्दगी में मर्द पर ज़्यादा (मआशी) ज़िम्मेदारियों का बोझ डाला है और औरत को बहुत-सी मआशी ज़िम्मेदारियों के बोझ से आज़ाद रखा है, इसलिए इनसाफ़ का तक़ाज़ा यही था कि मीरास में औरत का हिस्सा मर्द के मुक़ाबले में कम रखा जाता।

الْأُنثَيَيْنِ ۚ فَإِن كُنَّ نِسَاءً فَوْقَ اثْنَتَيْنِ فَلَهُنَّ
ثُلُثَا مَا تَرَكَ ۖ وَإِن كَانَتْ وَاحِدَةً فَلَهَا النِّصْفُ ۚ
وَلِأَبَوَيْهِ لِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ مِمَّا تَرَكَ
إِن كَانَ لَهُ وَلَدٌ ۚ فَإِن لَّمْ يَكُن لَّهُ وَلَدٌ وَوَرِثَهُ
أَبَوَاهُ فَلِأُمِّهِ الثُّلُثُ ۚ فَإِن كَانَ لَهُ إِخْوَةٌ فَلِأُمِّهِ

● अगर (मैयत की वारिस) दो से ज़्यादा लड़कियाँ हों तो उन्हें तरके (छोड़े हुए माल) का दो तिहाई दिया जाए।[16]

● और अगर एक ही लड़की वारिस हो तो छोड़े हुए माल में से आधा उसका है।

● अगर मरनेवाले के औलाद हो तो उसके माँ-बाप में से हर एक को छोड़े हुए माल का छठा हिस्सा मिलना चाहिए।[17]

● और अगर वह औलादवाला न हो और माँ-बाप ही उसके वारिस हों तो माँ को तीसरा हिस्सा दिया जाए।[18]

● और अगर मरनेवाले के भाई-बहन भी हों तो माँ छठे हिस्से की हक़दार होगी।[19]

16. यही हुक्म दो लड़कियों पर भी लागू होगा। मतलब यह है कि अगर किसी आदमी ने कोई लड़का न छोड़ा हो और उसकी औलाद में सिर्फ़ लड़कियाँ ही लड़कियाँ हों तो चाहे दो लड़कियाँ हों या दो से ज़्यादा, बहरहाल उसके कुल तरके में का 2/3 हिस्सा उन लड़कियों में बाँटा जाएगा और बाक़ी 1/3 दूसरे वारिसों में। लेकिन अगर मैयत का सिर्फ़ एक लड़का हो तो इस पर सभी का इत्तिफ़ाक़ है कि दूसरे वारिसों की ग़ैर-मौजूदगी में वह पूरे माल का वारिस होगा, और दूसरे वारिस मौजूद हों तो उनका हिस्सा देने के बाद बाक़ी सब माल उसे मिलेगा।

17. यानी अगर मरनेवाले (मैयत) ने अपनी कोई औलाद छोड़ी है तो इस सूरत में उसके माँ-बाप में से हर एक 1/6 का हक़दार होगा, चाहे मैयत की वारिस सिर्फ़ बेटियाँ हों, या सिर्फ़ बेटे हों, या बेटे और बेटियाँ हों, या एक बेटा हो या एक बेटी। रहा बाक़ी 2/3 तो इनमें दूसरे वारिस शरीक होंगे।

18. माँ-बाप के सिवा कोई और वारिस न हो तो बाक़ी दो तिहाई बाप को मिलेगा। वरना दो तिहाई हिस्से में बाप और दूसरे वारिस शरीक होंगे।

19. भाई-बहन होने की सूरत में माँ का हिस्सा एक तिहाई के बजाय छठा कर दिया गया है। इस

السُّدُسُ مِنْۢ بَعْدِ وَصِيَّةٍ يُّوْصِيْ بِهَآ اَوْ دَيْنٍ ؕ

(ये सब हिस्से उस वक़्त निकाले जाएँगे) जबकि वसीयत, जो मरनेवाले ने की हो, पूरी कर दी जाए और क़र्ज़ जो उसपर हो अदा कर दिया जाए।[20]

तरह माँ के हिस्से में से जो छठा हिस्सा लिया गया है वह बाप के हिस्से में डाला जाएगा, क्योंकि इस सूरत में बाप की ज़िम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। यह बात वाज़ेह रहे कि मैयत के माँ-बाप अगर ज़िन्दा हों तो इसके बहन-भाइयों को हिस्सा नहीं पहुँचता।

20. वसीयत को क़र्ज़ से पहले इसलिए बयान किया गया है कि क़र्ज़ का होना हर मरनेवाले के हक़ में ज़रूरी नहीं है और वसीयत करना उसके लिए ज़रूरी है। लेकिन हुक्म के एतिबार से मुस्लिम उम्मत इसमें राय है कि क़र्ज़ का नम्बर वसीयत से पहले है। यानी अगर मैयत के ज़िम्मे क़र्ज़ हो तो सबसे पहले मैयत के तरके में से उसे अदा किया जाएगा, फिर वसीयत पूरी की जाएगी, और इसके बाद विरासत बाँटी जाएगी।

वसीयत के बारे में सूरा-2, अल-बक़रा के हाशिए 182 में हम बता चुके हैं कि आदमी को अपने कुल माल के एक तिहाई 1/3 हिस्से की हद तक वसीयत करने का इख़्तियार है और यह वसीयत का क़ायदा इसलिए मुक़र्रर किया गया है कि विरासत के क़ानून के मुताबिक़ जिन रिश्तेदारों को मीरास में से हिस्सा नहीं पहुँचता उनमें से जिसको या जिस-जिसको आदमी मदद का हक़दार पाता हो उसके लिए अपने इख़्तियार से हिस्सा मुक़र्रर कर दे। जैसे कोई यतीम पोता या पोती मौजूद है, या किसी बेटे की बेवा मुसीबत के दिन काट रही है या कोई भाई या बहन या भावज या भतीजा या भांजा या और कोई रिश्तेदार ऐसा है जो सहारे का मुहताज नज़र आता है तो उसके हक़ में वसीयत के ज़रीए से हिस्सा मुक़र्रर किया जा सकता है। और अगर रिश्तेदारों में कोई ऐसा नहीं है तो दूसरे हक़दारों के लिए या (आम लोगों की भलाई) के किसी काम में ख़र्च करने के लिए वसीयत की जा सकती है। ख़ुलासा यह है कि आदमी की कुल जायदाद में से दो तिहाई या इससे कुछ ज़्यादा के बारे में शरीअत ने मीरास का क़ानून बना दिया है जिसमें से उन वारिसों को तयशुदा हिस्सा मिलेगा जिनके नाम शरीअत ने बता दिए हैं। और एक तिहाई या इससे कुछ कम को ख़ुद उसकी समझ पर छोड़ दिया गया है कि अपने ख़ास ख़ानदानी हालात के लिहाज़ से (जो ज़ाहिर है कि हर आदमी के मामले में अलग-अलग होंगे) जिस तरह मुनासिब समझे बाँटने की वसीयत कर दे। फिर अगर कोई आदमी अपनी वसीयत में ज़ुल्म करे या दूसरे लफ़्ज़ों में अपने इख़्तियार को ग़लत तौर पर इस तरह इस्तेमाल करे जिससे किसी के जाइज़ हक़ों पर असर पड़ता हो तो उसके लिए यह तरीक़ा रख दिया है कि ख़ानदान के लोग आपस की रज़ामन्दी से इसका सुधार कर लें या क़ाज़ी (जज) से दख़ल देने की दरख़ास्त की जाए और वह वसीयत को ठीक कर दे। ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें हमारी किताब 'यतीम पोते की विरासत।'

اٰبَآؤُكُمْ وَاَبْنَآؤُكُمْ لَا تَدْرُوْنَ اَيُّهُمْ اَقْرَبُ لَكُمْ
نَفْعًا ۚ فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ ۗ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا
حَكِيْمًا ۝ وَلَكُمْ نِصْفُ مَا تَرَكَ اَزْوَاجُكُمْ اِنْ لَّمْ
يَكُنْ لَّهُنَّ وَلَدٌ ۚ فَاِنْ كَانَ لَهُنَّ وَلَدٌ فَلَكُمُ
الرُّبُعُ مِمَّا تَرَكْنَ مِنْۢ بَعْدِ وَصِيَّةٍ يُّوْصِيْنَ بِهَآ
اَوْ دَيْنٍ ۗ وَلَهُنَّ الرُّبُعُ مِمَّا تَرَكْتُمْ اِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّكُمْ
وَلَدٌ ۚ فَاِنْ كَانَ لَكُمْ وَلَدٌ فَلَهُنَّ الثُّمُنُ مِمَّا

तुम नहीं जानते कि तुम्हारे माँ-बाप और तुम्हारी औलाद में से फ़ायदे और नफ़ा के लिहाज़ से कौन ज़्यादा तुमसे क़रीब है। ये हिस्से अल्लाह ने तय कर दिए हैं, और अल्लाह यक़ीनन सब हक़ीक़तों को जानता है और सारी मसलिहतों का जाननेवाला है।[21]

(12) और तुम्हारी बीवियों ने जो कुछ छोड़ा हो उसका आधा हिस्सा तुम्हें मिलेगा अगर उनकी कोई औलाद न हो, वरना औलाद होने की सूरत में छोड़े हुए माल का एक चौथाई हिस्सा तुम्हारा है, जबकि वसीयत जो उन्होंने की हो पूरी कर दी जाए, और क़र्ज़ जो उन्होंने छोड़ा हो अदा कर दिया जाए। और वे तुम्हारे छोड़े हुए माल में से चौथाई की हक़दार होंगी अगर तुम बेऔलाद हो, वरना औलाद होने की सूरत में उनका हिस्सा आठवाँ होगा।[22] इसके बाद कि जो वसीयत तुमने की हो वह पूरी कर दी जाए और जो

21. यह जवाब है उन सब नादानों को जो मीरास के इस ख़ुदाई क़ानून को नहीं समझते और अपनी कम अक़्ली से इस कमी को पूरा करना चाहते हैं जो उनके नज़दीक अल्लाह के बनाए हुए क़ानून में रह गई है।

22. यानी चाहे एक बीवी हो या कई बीवियाँ हों औलाद होने की सूरत में वे आठवें (1/8) हिस्से की और औलाद न होने की सूरत में चौथाई (1/4) हिस्से की हक़दार होंगी और यह चौथाई या आठवाँ हिस्सा सब बीवियों में बराबरी के साथ बाँटा जाएगा।

تَرَكْتُمْ مِّنْ بَعْدِ وَصِيَّةٍ تُوْصُوْنَ بِهَآ اَوْ دَيْنٍ ؕ وَ
اِنْ كَانَ رَجُلٌ يُّوْرَثُ كَلٰلَةً اَوِامْرَاَةٌ وَّلَهٗٓ اَخٌ
اَوْ اُخْتٌ فَلِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ ۚ فَاِنْ كَانُوْٓا
اَكْثَرَ مِنْ ذٰلِكَ فَهُمْ شُرَكَآءُ فِى الثُّلُثِ مِنْۢ بَعْدِ
وَصِيَّةٍ يُّوْصٰى بِهَآ اَوْ دَيْنٍ ۙ غَيْرَ مُضَآرٍّ ۚ وَصِيَّةً

क़र्ज़ तुमने छोड़ा हो वह अदा कर दिया जाए।

और अगर वह मर्द या औरत (जिसकी मीरास, बाँटी जानी है) बे-औलाद भी हो और उसके माँ-बाप भी ज़िन्दा न हों, मगर उसका एक भाई या एक बहन मौजूद हो तो भाई और बहन हर एक को छठा हिस्सा मिलेगा, और भाई-बहन एक से ज़्यादा हों तो छोड़े हुए कुल माल के एक तिहाई में वे सब शरीक होंगे,[23] जबकि वसीयत जो की गई हो पूरी कर दी जाए और क़र्ज़ जो मरनेवाले ने छोड़ा हो अदा कर दिया जाए, शर्त यह है कि वह नुक़सान पहुँचानेवाली न हो।[24] यह हुक्म है अल्लाह की तरफ़ से, और अल्लाह

23. बाक़ी 5/6 या 2/3 जो बचते हैं उनमें अगर कोई और वारिस मौजूद हो तो उसको हिस्सा मिलेगा वरना इस पूरी बाक़ी बची हुई जायदाद के बारे में उस आदमी को वसीयत करने का हक़ होगा।

इस आयत के बारे में क़ुरआन के सभी आलिम एकमत हैं कि इसमें भाई और बहनों से मुराद अख़याफ़ी भाई-बहन हैं यानी जो मैयत के साथ सिर्फ़ माँ की तरफ़ से रिश्ता रखते हों और बाप उनका दूसरा हो। रहे सगे भाई-बहन और वे सौतेले भाई-बहन जो बाप की तरफ़ से मैयत के साथ रिश्ता रखते हों, तो उनका हुक्म इसी सूरा के आख़िर में आया है।

24. वसीयत में नुक़सान पहुँचाना यह है कि ऐसे ढंग से वसीयत की जाए जिससे हक़दार रिश्तेदारों के हक़ मारे जाते हों। और क़र्ज़ में नुक़सान पहुँचाना यह है कि सिर्फ़ हक़दारों को महरूम करने के लिए आदमी ख़ाह-म-ख़ाह अपने ऊपर ऐसे क़र्ज़ का इक़रार करे जो उसने हक़ीक़त में न लिया हो। या और कोई ऐसी चाल चले जिससे मक़सद यह हो कि हक़दार मीरास से महरूम हो जाएँ। इस तरह के नुक़सान को बड़ा गुनाह (महापाप) कहा गया है। चुनाँचे हदीस में आया है कि वसीयत में नुक़सान पहुँचाना बड़े गुनाहों में से है। और एक दूसरी हदीस में नबी *(सल्ल०)* का फ़रमान है कि आदमी पूरी उम्र जन्नतियों के से काम करता रहता है मगर मरते वक़्त

مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَلِيْمٌ ؕ ﴿۱۲﴾ تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ ؕ
وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ يُدْخِلْهُ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ
تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ؕ وَذٰلِكَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ﴿۱۳﴾
وَمَنْ يَّعْصِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَيَتَعَدَّ حُدُوْدَهٗ
يُدْخِلْهُ نَارًا خَالِدًا فِيْهَا ۪ وَلَهٗ عَذَابٌ مُّهِيْنٌ ﴿۱۴﴾ ع

जानता, देखता और नर्मख़ू (सहनशील) है।[25]

(13) ये अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हदें हैं जो अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी करेगा उसे अल्लाह ऐसे बाग़ों में दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और उन बाग़ों में वह हमेशा रहेगा, और यही बड़ी कामयाबी है। (14) और जो अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करेगा और उसकी मुक़र्रर की हुई हदों से आगे बढ़ेगा उसे अल्लाह आग में डालेगा जिसमें वह हमेशा रहेगा, और उसके लिए रुसवा कर देनेवाली सज़ा है।[25अ]

वसीयत में नुक़सान पहुँचाकर अपनी ज़िन्दगी की किताब को ऐसे अमल पर ख़त्म कर जाता है जो उसे दोज़ख़ का हक़दार बना देता है। यह नुक़सान पहुँचाना और हक़ मारना हालाँकि हर हाल में गुनाह है, मगर ख़ास तौर पर 'कलाला' के बारे में अल्लाह ने इसका बयान इसलिए किया है कि जिस आदमी के न औलाद हो और न माँ-बाप हों उसमें आम तौर से यह रुझान पैदा हो जाता है कि अपनी जायदाद को किसी न किसी तरह ख़त्म कर जाए और दूर के रिश्तेदारों को हिस्सा पाने से महरूम कर दे।

25. यहाँ अल्लाह की एक सिफ़त (गुण) 'इल्म' दो वजहों से बयान की गई है : एक यह कि अगर इस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी की गई तो अल्लाह की पकड़ से आदमी न बच सकेगा। दूसरी यह कि अल्लाह ने जो हिस्से जिस तरह मुक़र्रर किए हैं वे बिलकुल सही हैं, क्योंकि बन्दों की भलाई जिस चीज़ में है अल्लाह उसको ख़ुद बन्दों से ज़्यादा बेहतर जानता है। और अल्लाह की सिफ़ते-'हिल्म' यानी उसकी नर्मख़ूई (सहनशीलता) का बयान इसलिए किया कि अल्लाह ने इन क़ानूनों को मुक़र्रर करने में सख़्ती नहीं की है, बल्कि ऐसे क़ायदे मुक़र्रर किए हैं जिनमें बन्दों के लिए ज़्यादा से ज़्यादा सुहूलत है; ताकि वे सख़्ती और तंगी में गिरफ़्तार न हों।

25. (अ) यह एक बड़ी डरावनी आयत है जिसमें उन लोगों को हमेशा के अज़ाब की धमकी दी गई है जो अल्लाह के मुक़र्रर किए हुए विरासत के क़ानून को बदलें या उन दूसरी क़ानूनी हदों को

وَالّٰتِيْ يَاْتِيْنَ الْفَاحِشَةَ مِنْ نِّسَآئِكُمْ فَاسْتَشْهِدُوْا
عَلَيْهِنَّ اَرْبَعَةً مِّنْكُمْ ۚ فَاِنْ شَهِدُوْا فَاَمْسِكُوْهُنَّ
فِي الْبُيُوْتِ حَتّٰى يَتَوَفّٰىهُنَّ الْمَوْتُ اَوْ يَجْعَلَ اللّٰهُ
لَهُنَّ سَبِيْلًا ﴿۱۵﴾ وَالَّذٰنِ يَاْتِيٰنِهَا مِنْكُمْ فَاٰذُوْهُمَا ۚ
فَاِنْ تَابَا وَاَصْلَحَا فَاَعْرِضُوْا عَنْهُمَا ۗ اِنَّ اللّٰهَ

(15) तुम्हारी औरतों में से जो बदकारी के काम कर बैठें उनपर अपने में से चार आदमियों की गवाही लो, और अगर चार आदमी गवाही दे दें तो उनको घरों में बन्द रखो यहाँ तक कि उन्हें मौत आ जाए या अल्लाह उनके लिए कोई रास्ता निकाल दे। (16) और तुममें से जो इस तरह की हरकत कर बैठें उन दोनों को तकलीफ़ दो, फिर अगर वे तौबा करें और अपना सुधार कर लें तो उन्हें छोड़ दो कि अल्लाह बहुत तौबा

तोड़ें जो ख़ुदा ने अपनी किताब में साफ़ तौर पर मुक़र्रर कर दी हैं। लेकिन सख़्त अफ़सोस है कि इतनी सख़्त धमकी के होते हुए भी मुसलमानों ने बिलकुल यहूदियों की सी ढिठाई के साथ ख़ुदा के क़ानून को बदला और उसकी हदों को तोड़ा। विरासत के इस क़ानून के मामले में जो नाफ़रमानियाँ की गई हैं वे ख़ुदा के ख़िलाफ़ खुली बग़ावत की हद तक पहुँचती हैं। कहीं औरतों को मीरास से हमेशा के लिए महरूम किया गया; कहीं सिर्फ़ बड़े बेटे को मीरास का हक़दार समझा गया; कहीं सिरे से विरासत के बँटवारे के तरीक़े को छोड़कर 'मुश्तरक ख़ानदानी जायदाद' (संयुक्त पारिवारिक सम्पत्ति) का तरीक़ा अपना लिया गया। कहीं औरतों और मर्दों का हिस्सा बराबर कर दिया गया; और अब उन पुरानी बग़ावतों के साथ सबसे ताज़ा बग़ावत यह है कि कुछ मुसलमान हुकूमतें मग़रिब वालों की पैरवी में 'वफ़ात-टैक्स' (मृत्यु-कर) अपने यहाँ लागू कर रही हैं, जिसका मतलब यह है कि मरनेवाले के वारिसों में एक वारिस हुकूमत भी है जिसका हिस्सा रखना अल्लाह मियाँ भूल गए थे हालाँकि इस्लामी उसूल पर अगर मरनेवाले का छोड़ा हुआ माल-जायदाद किसी सूरत में हुकूमत को पहुँचता है तो वह सिर्फ़ यह है कि किसी मरनेवाले का कोई क़रीब व दूर का रिश्तेदार मौजूद न हो और उसका छोड़ा हुआ सारा माल बे-दावा जायदादों (Unclaimed properties) की तरह बैतुल-माल में दाखिल हो जाए या फिर हुकूमत इस सूरत में कोई हिस्सा पा सकती है जबकि मरनेवाला अपनी वसीयत में उसके लिए कोई हिस्सा मुक़र्रर कर जाए।

كَانَ تَوَّابًا رَّحِيْمًا ۝ إِنَّمَا التَّوْبَةُ عَلَى اللّٰهِ لِلَّذِيْنَ

क़बूल करनेवाला और रहम करनेवाला है।[26]

(17) हाँ, यह जान लो कि अल्लाह पर उन्हीं लोगों की तौबा को क़बूल करने का

26. इन दोनों (15 और 16) आयतों में ज़िना (व्यभिचार) की सज़ा बयान की गई है। पहली आयत सिर्फ़ ज़िना करनेवाली औरतों के बारे में है और उनकी सज़ा यह बताई गई है कि उन्हें दूसरे हुक्म तक क़ैद रखा जाए। दूसरी आयत ज़िना करनेवाले मर्द और ज़िना करनेवाली औरत दोनों के बारे में है कि दोनों को तकलीफ़ दी जाए, यानी मारा-पीटा जाए, सख़्त-सुस्त कहा जाए और उनको रुसवा किया जाए। ज़िना के बारे में यह शुरुआती हुक्म था। बाद में सूरा-24, अन-नूर की आयत-2 नाज़िल हुई जिसमें मर्द और औरत दोनों के लिए एक ही हुक्म दिया गया कि उन्हें सौ-सौ कौड़े लगाए जाएँ। अरब के लोग चूँकि उस वक़्त तक किसी बाक़ायदा हुकूमत के मातहत रहने और अदालत व क़ानून के निज़ाम की इताअत करने के आदी न थे, इसलिए यह बात हिकमत और समझदारी के ख़िलाफ़ होती अगर इस्लामी हुकूमत क़ायम होते ही सज़ा का क़ानून (दंड-संहिता) बनाकर फ़ौरन उनपर लागू कर दिया जाता। अल्लाह ने उनको धीरे-धीरे सज़ा के क़ानून का आदी बनाने के लिए पहले ज़िना के बारे में ये सज़ाएँ तय कीं, फिर धीरे-धीरे ज़िना, क़ज़फ़ (लांछन) और चोरी की सज़ाएँ तय कीं और आख़िर में इसी बुनियाद पर वह तफ़सीली क़ानून बना जो नबी *(सल्ल०)* और ख़ुलफ़ाए-राशिदीन की हुकूमत में लागू था।

क़ुरआन के एक मुफ़स्सिर (टीकाकार) सुद्दी को इन दोनों आयतों के ज़ाहिरी फ़र्क़ से यह ग़लतफ़हमी हुई है कि पहली आयत शादी-शुदा औरतों के लिए है और दूसरी आयत ग़ैर-शादी-शुदा मर्द और औरत के लिए। लेकिन यह एक कमज़ोर तफ़सीर है जिसकी ताईद में कोई वज़नी दलील नहीं। और इससे ज़्यादा कमज़ोर बात वह है जो अबू-मुस्लिम अस्फ़हानी ने लिखी है कि पहली आयत औरत और औरत के नाजाइज़ ताल्लुक़ के बारे में है और दूसरी आयत मर्द और मर्द के नाजाइज़ ताल्लुक़ के बारे में। ताज्जुब है अबू-मुस्लिम जैसे आलिम की नज़र इस हक़ीक़त की तरफ़ क्यों न गई कि क़ुरआन इनसानी ज़िन्दगी के लिए क़ानून और अख़लाक़ की शाहेराह (राजमार्ग) बनाता है और उन्हीं मसलों से बहस करता है जो शाहेराह पर पेश आते हैं। रहीं गलियाँ और पगडण्डियाँ, तो उनकी तरफ़ ध्यान देना और उनपर पेश आनेवाले छोटे-छोटे मसलों से बहस करना शाहाना कलाम के लिए हरगिज़ मुनासिब नहीं है। ऐसी चीज़ों को उसने इज्तिहाद (इस्लामी तालीमात की रौशनी में समझदारी के साथ फ़ैसले) के लिए छोड़ दिया है। यही वजह है कि नुबूवत के दौर के बाद जब यह सवाल पैदा हुआ कि मर्द और मर्द के नाजाइज़ ताल्लुक़ पर क्या सज़ा दी जाए तो सहाबा *(रज़ि०)* में किसी ने भी यह नहीं समझा कि सूरा निसा की इस आयत में इसका हुक्म मौजूद है।

يَعْمَلُوْنَ السُّوْٓءَ بِجَهَالَةٍ ثُمَّ يَتُوْبُوْنَ مِنْ قَرِيْبٍ
فَاُولٰٓئِكَ يَتُوْبُ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ
عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿١٧﴾ وَلَيْسَتِ التَّوْبَةُ لِلَّذِيْنَ يَعْمَلُوْنَ
السَّيِّاٰتِ ۚ حَتّٰٓى اِذَا حَضَرَ اَحَدَهُمُ الْمَوْتُ قَالَ
اِنِّىْ تُبْتُ الْـٰٔنَ وَلَا الَّذِيْنَ يَمُوْتُوْنَ وَهُمْ كُفَّارٌ ۭ
اُولٰٓئِكَ اَعْتَدْنَا لَهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ﴿١٨﴾ يٰٓاَيُّهَا

हक़ है जो नादानी की वजह से कोई बुरा काम कर गुज़रते हैं और उसके बाद जल्दी ही तौबा कर लेते हैं। ऐसे लोगों पर अल्लाह अपनी मेहरबानी की निगाह के साथ फिर तवज्जोह करता है, और अल्लाह सारी बातों की ख़बर रखनेवाला, हिक्मतवाला (तत्त्वदर्शी) और सूझ-बूझवाला है। (18) मगर तौबा उन लोगों के लिए नहीं है जो बुरे काम किए चले जाते हैं, यहाँ तक कि जब उनमें से किसी की मौत का वक़्त आ जाता है उस वक़्त वह कहता है कि अब मैंने तौबा की। और इसी तरह तौबा उनके लिए भी नहीं है जो मरते दम तक काफ़िर (हक़ के इनकारी) रहें। ऐसे लोगों के लिए तो हमने दर्दनाक सज़ा तैयार कर रखी है।[27]

27. तौबा के मानी हैं पलटना और रुजू करना। गुनाह के बाद बन्दे का ख़ुदा से तौबा करना यह मानी रखता है कि एक ग़ुलाम जो अपने मालिक का नाफ़रमान बनकर उससे मुँह फेर गया था अब अपने किए पर शर्मिन्दा है और इताअत और फ़रमाँबरदारी की तरफ़ पलट आया है। और ख़ुदा की तरफ़ से बन्दे पर तौबा का यह मतलब है कि ग़ुलाम की तरफ़ से मालिक की नज़रे-इनायत (कृपा-दृष्टि) जो फिर गई थी वह नए सरे से उसकी तरफ़ पलट आई। अल्लाह इस आयत में फ़रमाता है कि मेरे यहाँ माफ़ी सिर्फ़ उन बन्दों के लिए है जो जान-बूझ कर नहीं बल्कि नादानी और नासमझी की वजह से ग़लती करते हैं और जब आँखों पर से जिहालत का परदा हटता है तो शर्मिन्दा होकर अपने क़ुसूर की माफ़ी माँग लेते हैं। ऐसे बन्दे जब भी अपनी ग़लती पर शर्मिन्दा होकर अपने मालिक की तरफ़ पलटेंगे उसका दरवाज़ा खुला पाएँगे कि—

ईं दरगहे मा दरगहे नौमीदी नेस्त।
सद बार अगर तौबा शिकस्ती बाज़ आ।।

الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَرِثُوا النِّسَآءَ
كَرْهًا ؕ وَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ لِتَذْهَبُوْا بِبَعْضِ مَآ
اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اِلَّآ اَنْ يَّاْتِيْنَ بِفَاحِشَةٍ مُّبَيِّنَةٍ ۚ
وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ
فَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا

(19) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, तुम्हारे लिए यह हलाल (जाइज़) नहीं है कि ज़बरदस्ती औरतों के वारिस बन बैठो,[28] और न यह हलाल है कि उन्हें तंग करके उस महर का कुछ हिस्सा उड़ा लेने की कोशिश करो जो तुम उन्हें दे चुके हो। हाँ, अगर वे कोई खुली बदचलनी कर बैठें (तो ज़रूर तुम्हें तंग करने का हक़ है।)[29] उनके साथ भले तरीक़े से ज़िन्दगी गुज़ारो। अगर वे तुम्हें नापसन्द हों तो हो सकता है कि एक चीज़ तुम्हें पसन्द न हो मगर अल्लाह ने उसी में बहुत कुछ भलाई रख दी हो।[30] (20) और अगर

(यह चौखट नाउम्मीदी-मायूसी की चौखट नहीं है। सौ बार भी अगर तौबा टूट जाए तो भी गुनाह को छोड़ दे।)

मगर तौबा उनके लिए नहीं है जो अपने ख़ुदा से निडर और बेपरवाह होकर सारी उम्र गुनाह पर गुनाह किए चले जाएँ और फिर ठीक उस वक़्त जबकि मौत का फ़रिश्ता सामने खड़ा हो माफ़ी माँगने लगें। इसी बात को नबी *(सल्ल०)* ने इस तरह बयान किया है कि "अल्लाह बन्दे की तौबा बस उसी वक़्त तक क़बूल करता है जब तक कि मौत की निशानियाँ दिखाई देनी शुरू न हों।" क्योंकि इम्तिहान की मोहलत जब पूरी हो गई और ज़िन्दगी की किताब ख़त्म हो चुकी तो अब पलटने का कौन-सा मौक़ा है? इसी तरह जब कोई आदमी कुफ़्र और नाफ़रमानी की हालत में दुनिया से विदा हो जाए और दूसरी ज़िन्दगी की सरहद में दाख़िल होकर अपनी आँखों से देख ले कि मामला उसके बरख़िलाफ़ है जो वह दुनिया में समझता रहा, तो उस वक़्त माफ़ी माँगने का कोई मौक़ा नहीं।

28. इससे मुराद यह है कि शौहर के मरने के बाद उसके ख़ानदानवाले उसकी बेवा को मैयत की मीरास समझकर उसके वली-वारिस न बन बैठें। औरत का शौहर जब मर गया तो वह आज़ाद है। इद्दत गुज़ारकर जहाँ चाहे जाए और जिससे चाहे निकाह कर ले।

29. माल उड़ाने के लिए नहीं, बल्कि बदचलनी की सज़ा देने के लिए।

30. यानी अगर औरत ख़ूबसूरत न हो या उसमें कोई और ऐसी कमी हो जिसकी वजह से वह

كَثِيْرًا ﴿١٩﴾ وَاِنْ اَرَدْتُّمُ اسْتِبْدَالَ زَوْجٍ مَّكَانَ
زَوْجٍ ۙ وَّاٰتَيْتُمْ اِحْدٰىهُنَّ قِنْطَارًا فَلَا تَاْخُذُوْا مِنْهُ
شَيْـًٔا ؕ اَتَاْخُذُوْنَهٗ بُهْتَانًا وَّاِثْمًا مُّبِيْنًا ﴿٢٠﴾ وَكَيْفَ
تَاْخُذُوْنَهٗ وَقَدْ اَفْضٰى بَعْضُكُمْ اِلٰى بَعْضٍ وَّ
اَخَذْنَ مِنْكُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا ﴿٢١﴾ وَلَا تَنْكِحُوْا

तुम एक बीवी की जगह दूसरी बीवी ले आने का इरादा ही कर लो तो चाहे तुमने उसे ढेर सारा माल ही क्यों न दिया हो, उसमें से कुछ वापस न लेना। क्या तुम उसे बुहतान लगाकर और खुले तौर पर ज़ुल्म करके वापस लोगे? (21) और आख़िर तुम उसे किस तरह ले लोगे जबकि तुम एक-दूसरे से लुत्फ़ (आनन्द) ले चुके हो और तुमसे पुख़्ता वादा ले चुकी हैं?[31]

शौहर को पसन्द न आए तो यह मुनासिब नहीं है कि शौहर फ़ौरन बददिल होकर उसे छोड़ देने को तैयार हो जाए। जहाँ तक हो सके उसे सब्र और बर्दाश्त से काम लेना चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक औरत ख़ूबसूरत नहीं होती, मगर उसमें कुछ दूसरी ख़ूबियाँ ऐसी होती हैं जो इज़दिवाजी ज़िन्दगी (दाम्पत्य-जीवन) में शक्ल-सूरत की ख़ूबसूरती से ज़्यादा अहमियत रखती हैं। अगर उसे अपनी उन ख़ूबियों को ज़ाहिर करने का मौक़ा मिले तो वही शौहर जो शुरू में सिर्फ़ उसकी शक्ल-सूरत की ख़राबी की वजह से बददिल हो रहा था उसकी सीरत और किरदार के हुस्न पर फ़िदा हो जाता है। इसी तरह कभी-कभी इज़दिवाजी ज़िन्दगी (दाम्पत्य-जीवन) की शुरुआत में औरत की कुछ बातें शौहर को नापसन्द होती हैं और वह उससे बददिल हो जाता है, लेकिन अगर वह सब्र से काम ले और औरत की सभी ख़ूबियों को उभरने का मौक़ा दे तो उसपर ख़ुद साबित हो जाता है कि उसकी बीवी बुराइयों से बढ़कर ख़ूबियाँ रखती है। इसलिए यह बात पसन्दीदा नहीं है कि आदमी शादी के ताल्लुक़ को तोड़ने में जल्दबाज़ी से काम ले। तलाक़ बिलकुल आख़िरी रास्ता है जिसको बिलकुल मजबूरी की हालतों में इस्तेमाल करना चाहिए। नबी *(सल्ल०)* का फ़रमान है कि तलाक़ हालाँकि जाइज़ है, मगर तमाम जाइज़ कामों में अल्लाह को सबसे ज़्यादा नापसन्दीदा अगर कोई चीज़ है तो वह तलाक़ है। दूसरी हदीस में है कि नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि शादी करो और तलाक़ न दो, क्योंकि अल्लाह ऐसे मर्दों और औरतों को पसन्द नहीं करता जो भौंरे की तरह फूल-फूल का मज़ा चखते फिरें।

31. पुख़्ता वादा लेने से मुराद निकाह है; क्योंकि निकाह हक़ीक़त में वफ़ादारी का एक मज़बूत इक़रार है जिसकी मज़बूती पर भरोसा करके ही एक औरत अपने आपको एक मर्द के हवाले

مَا نَكَحَ اٰبَآؤُكُمْ مِّنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ؕ اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً وَّمَقْتًا ؕ وَسَآءَ سَبِيْلًا ۝۲۲

(22) और जिन औरतों से तुम्हारे बाप निकाह कर चुके हों उनसे हरगिज़ निकाह न करो, मगर जो पहले हो चुका सो हो चुका।[32] हक़ीक़त में यह एक बेशर्मी और बेहयाई का काम है, नापसन्दीदा है और बुरा चलन है।[33]

करती है। अब अगर मर्द अपनी ख़ाहिश से इसको तोड़ता है तो उसे वह मुआवज़ा वापस लेने का हक़ नहीं है जो उसने समझौता करते वक़्त पेश किया था। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-251)

32. रहन-सहन और समाजी मसलों में जाहिलियत के ग़लत तरीक़ों को हराम ठहराते हुए आम तौर से क़ुरआन मजीद में यह बात ज़रूर फ़रमाई जाती है कि 'जो हो चुका सो हो चुका'। इसके दो मतलब हैं। एक यह कि बेइल्मी और नादानी के ज़माने में जो ग़लतियाँ तुम लोग करते रहे हो उनपर कोई पकड़ नहीं की जाएगी। शर्त यह है कि अब हुक्म आ जाने के बाद अपने रवैये में सुधार कर लो और जो काम ग़लत हैं उन्हें छोड़ दो। दूसरा यह कि पिछले ज़माने के किसी तरीक़े को अब अगर हराम ठहराया गया है तो उससे यह नतीजा निकालना सही नहीं है कि पिछले क़ानून या रस्म व रिवाज के मुताबिक़ जो काम पहले किए जा चुके हैं उनको ख़त्म, उनसे पैदा होनेवाले नतीजों को नाजाइज़ और डाली गई ज़िम्मेदारियों को लाज़िमी तौर पर ख़त्म भी किया जा रहा है। जैसे कि अगर सौतेली माँ से निकाह को आज हराम किया गया है तो इसका मतलब यह नहीं है कि अब तक जितने लोगों ने ऐसे निकाह किए थे उनकी औलाद हरामी ठहराई जा रही है और अपने बापों के माल में उनके विरासत के हक़ को ख़त्म किया जा रहा है। इसी तरह अगर लेन-देन के किसी तरीक़े को हराम किया गया है तो इसका मतलब यह नहीं है कि पहले जितने मामले इस तरीक़े पर हुए हैं उन्हें भी ख़त्म कर दिया गया है और अब वह सब दौलत जो इस तरीक़े से किसी ने कमाई हो उससे वापस ली जाएगी या उसे हराम ठहराया जाएगा।

33. इस्लामी क़ानून में यह काम फ़ौजदारी जुर्म है और पुलिस को इसपर पकड़ करने का हक़ हासिल है। अबू-दाऊद, नसई और मुस्नद अहमद में ये रिवायतें मिलती हैं कि नबी *(सल्ल०)* ने इस जुर्म के करनेवालों को मौत और जायदाद ज़ब्त करने की सज़ा दी है। इब्ने-माजा ने इब्ने-अब्बास से जो रिवायत बयान की है उससे मालूम होता है कि नबी *(सल्ल०)* ने यह बुनियादी उसूल बताया था कि जो आदमी महरम औरतों (वे क़रीबी रिश्ते की औरतें जिनसे निकाह न हो सके) में से किसी के साथ ज़िना करे उसे क़त्ल की सज़ा दो। फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) का इस मसले में इख़्तिलाफ़ है। इमाम अहमद तो इसी बात की ताईद करते हैं कि ऐसे आदमी को क़त्ल किया जाए और उसका माल ज़ब्त कर लिया जाए। इमाम

حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ اُمَّهٰتُكُمْ وَبَنٰتُكُمْ وَاَخَوٰتُكُمْ وَ

(23) तुमपर हराम की गईं तुम्हारी माएँ,[34] बेटियाँ,[35] बहनें,[36] फूफियाँ, ख़ालाएँ,

अबू-हनीफ़ा, इमाम मालिक और इमाम शाफ़ई की राय यह है कि अगर उसने महरम औरतों में से किसी के साथ ज़िना किया हो तो उसपर ज़िना की सज़ा का क़ानून लागू होगा और अगर निकाह किया हो तो उसे सख़्त इबरतनाक सज़ा दी जाएगी।

34. माँ से मुराद सगी और सौतेली दोनों तरह की माएँ हैं। इसलिए दोनों हराम हैं। साथ ही इस हुक्म में बाप की माँ और माँ की माँ भी शामिल हैं।

इस बात में उलमा में इख़्तिलाफ़ है कि जिस औरत से बाप का नाजाइज़ जिस्मानी ताल्लुक़ हो चुका हो वह भी बेटे पर हराम है या नहीं। पहले के मुस्लिम आलिमों में से कुछ इसको हराम नहीं मानते और कुछ ऐसे भी हैं जो इसे हराम कहते हैं, बल्कि उनके नज़दीक जिस औरत को बाप ने शहवत (कामातुरता) से हाथ लगाया हो वह भी बेटे पर हराम है। इसी तरह पहले के आलिमों में इस बात में भी इख़्तिलाफ़ रहा है कि जिस औरत से बेटे का नाजइज़ जिस्मानी ताल्लुक़ हो चुका हो वह बाप पर हराम है या नहीं। और जिस मर्द से माँ या बेटी का नाजयज़ ताल्लुक़ रहा हो या बाद में हो जाए उससे निकाह माँ और बेटी दोनों के लिए हराम है या नहीं। इस बारे में क़ानूनी बहसें तो बहुत लम्बी हैं मगर यह बात मामूली-से शिक्षक के बग़ैर समझ में आ सकती है कि किसी आदमी के निकाह में ऐसी औरत का होना जिसपर उसका बाप या उसका बेटा भी नज़र रखता हो या जिसकी माँ या बेटी पर भी उसकी निगाह हो एक नेक और भले समाज के लिए किसी तरह मुनासिब नहीं हो सकता। ख़ुदा की शरीअत का मिज़ाज इस मामले में उन क़ानूनी बाल की खाल निकालने को क़बूल नहीं करता जिनकी बुनियाद पर निकाह और ग़ैर-निकाह, निकाह से पहले और निकाह के बाद, छूने और बुरी नज़र डालने में फ़र्क़ किया जाता है। सीधी और साफ़ बात यह है कि ख़ानदानी ज़िन्दगी में एक ही औरत के साथ बाप और बेटे के या एक ही मर्द के साथ माँ और बेटी के शहवानी जज़बात (काम-भावनाओं) का मौजूद होना बहुत बड़े बिगाड़ों का सबब है और शरीअत इसे बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर सकती। नबी *(सल्ल०)* का फ़रमान है कि जिस आदमी ने किसी औरत के छिपे हिस्सों (जिस्म के ख़ास हिस्सों) पर नज़र डाली हो उसकी माँ और बेटी दोनों उसपर हराम हैं। और कहा कि ख़ुदा उस आदमी की सूरत देखना पसन्द नहीं करता जो एक ही वक़्त में माँ और बेटी दोनों के छिपे हिस्सों पर नज़र डाले। इन रिवायतों से शरीअत का मक़सद साफ़ वाज़ेह हो जाता है।

35. बेटी के हुक्म में पोती और नवासी भी शामिल हैं। अलबत्ता इस बात में इख़्तिलाफ़ है कि नाजाइज़ ताल्लुक़ के नतीजे में जो लड़की हुई हो वह भी हराम है या नहीं। इमाम अबू-हनीफ़ा, मालिक और अहमद-बिन हंबल *(रह०)* के निकट वह भी जाइज़ बेटी की तरह उन औरतों में शामिल है जिनसे निकाह हराम है, और इमाम शाफ़ई *(रह०)* के नज़दीक वह उन औरतों में शामिल नहीं है जिनसे निकाह हराम है। मगर हक़ीक़त में यह सोचना भी एक ऐसे-आदमी

عَمّٰتُكُمْ وَخٰلٰتُكُمْ وَبَنٰتُ الْاَخِ وَبَنٰتُ الْاُخْتِ وَ
اُمَّهٰتُكُمُ الّٰتِيْٓ اَرْضَعْنَكُمْ وَاَخَوٰتُكُمْ مِّنَ الرَّضَاعَةِ
وَاُمَّهٰتُ نِسَآئِكُمْ وَرَبَآئِبُكُمُ الّٰتِيْ فِيْ حُجُوْرِكُمْ

भतीजियाँ, भांजियाँ,[37] और तुम्हारी वे माएँ जिन्होंने तुमको दूध पिलाया हो, और तुम्हारी दूध-शरीक बहनें,[38] और तुम्हारी बीवियों की माएँ,[39] और तुम्हारी बीवियों की लड़कियाँ

(लड़की) पर भार है जो सही और भला ज़ौक़ रखता है, कि जिस लड़की के बारे में वह यह जानता हो कि वह उसी के नुत्फ़े (वीर्य) से पैदा हुई है, उसके साथ निकाह करना उसके लिए जाइज़ हो।

36. सगी बहन और माँ-शरीक बहन और बाप-शरीक बहन तीनों इस हुक्म में बराबर हैं।

37. इन सब रिश्तों में भी सगे और सौतेले के बीच कोई फ़र्क़ नहीं। बाप और माँ की बहन चाहे सगी हो या सौतेली या बाप शरीक, बहरहाल वह बेटे के लिए हराम है। इसी तरह भाई और बहन चाहे सगे हों या सौतेले या बाप शरीक, उनकी बेटियाँ एक आदमी के लिए अपनी बेटी की तरह हराम हैं।

38. इस बात पर मुस्लिम उम्मत का इत्तिफ़ाक़ है कि एक लड़के या लड़की ने जिस औरत का दूध पिया हो उसके लिए वह औरत माँ के हुक्म में और उसका शौहर बाप के हुक्म में है और तमाम वे रिश्ते जो सगी माँ और बाप के ताल्लुक़ से हराम होते हैं, रिज़ाई (दूध शरीक) माँ और बाप के ताल्लुक़ से भी हराम हो जाते हैं। यह हुक्म नबी *(सल्ल०)* के उस फ़रमान से लिया गया है कि 'दूध पीने (स्तनपान) से वही हराम होता है जो नसब (वंश) से हराम होता है।' (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम), अलबत्ता इस बात में इख़्तिलाफ़ है कि कितना दूध पीने में हराम होने का यह क़ानून लागू होता है। अबू-हनीफ़ा और मालिक *(रह०)* के नज़दीक जितनी मिक़दार से रोज़ेदार का रोज़ा टूट सकता है उतनी ही मिक़दार में अगर बच्चा किसी का दूध पी ले तो हराम होने का यह क़ानून लागू हो जाता है। मगर इमाम अहमद *(रह०)* के नज़दीक तीन बार पीने से और इमाम शाफ़ई *(रह०)* के नज़दीक पाँच बार पीने से हराम हाने का यह क़ानून लागू होता है। इसी के साथ इस बात में भी इख़्तिलाफ़ है कि किस उम्र में पीने से ये रिश्ते हराम होते हैं। इस बारे में फ़ुक़हा के बयान इस तरह हैं—

(1) यह क़ानून सिर्फ़ उस ज़माने में दूध पीने पर लागू होता है जबकि बच्चे का दूध छुड़ाया न जा चुका हो और सिर्फ़ औरत का दूध ही उसकी ग़िज़ा (खाना) हो। वरना दूध छूटने के बाद अगर किसी बच्चे ने किसी औरत का दूध पी लिया हो तो उसकी हैसियत ऐसी ही है जैसे उसने पानी पी लिया। यह राय उम्मे-सलमा और इब्ने-अब्बास *(रजि०)* की है। हज़रत अली *(रज़ि०)* से

مِّنۡ نِّسَآٮِٕكُمُ الّٰتِىۡ دَخَلۡتُمۡ بِهِنَّ فَاِنۡ لَّمۡ تَكُوۡنُوۡا دَخَلۡتُمۡ بِهِنَّ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ وَحَلَاۤٮِٕلُ اَبۡنَآٮِٕكُمُ

जिन्होंने तुम्हारी गोदों में परवरिश पाई है[40] – उन बीवियों की लड़कियाँ जिनसे तुम जिस्मानी ताल्लुक़ क़ायम कर चुके हो। वरना अगर (सिर्फ़ निकाह हुआ हो और) जिस्मानी ताल्लुक़ क़ायम न हुआ हो तो (उन्हें छोड़कर उनकी लड़कियों से निकाह कर लेने में) तुम्हारी कोई पकड़ नहीं है – और तुम्हारे उन बेटों की बीवियाँ जो तुम्हारे अपने

भी एक रिवायत इस मानी में आई है। ज़ुहरी, हसन बसरी, क़तादा, इकरिमा और औज़ाई की भी यही राय है।

(2) दो साल की उम्र के अन्दर अन्दर जो दूध पिया गया हो सिर्फ़ उसी से हराम होने का यह क़ानून लागू होगा। यह राय हज़रत उमर, इब्ने-मसऊद, अबू-हुरैरा और इब्ने-उमर *(रज़ि०)* की है और फ़ुक़हा में से इमाम शाफ़ई, इमाम अहमद, इमाम अबू-यूसुफ़, इमाम मुहम्मद और सुफ़यान सौरी ने इसे क़बूल किया है। इमाम अबू-हनीफ़ा से भी एक क़ौल इसी की ताईद में मिलता है। इमाम मालिक भी उम्र की इसी हद को मानते हैं, मगर वे कहते हैं कि दो साल से अगर महीना, दो महीना ज़्यादा उम्र भी हो तो उसमें दूध पीने का वही हुक्म है।

(3) इमाम अबू-हनीफ़ा और इमाम ज़ुफ़र का मशहूर क़ौल यह है कि दूध पीने की मुद्दत ढाई साल है और इसके अन्दर दूध पीने से रिश्ते हराम हो जाते हैं।

(4) चाहे किसी उम्र में दूध पिए, रिश्ते हराम होने का क़ानून लागू हो जाएगा। यानी इस मामले में असल लिहाज़ दूध का है, न कि उम्र का। पीनेवाला अगर बूढ़ा भी हो तो इसका वही हुक्म है जो दूध पीते बच्चे का है। यही राय हज़रत आइशा की है और हज़रत अली से भी एक सही रिवायत से इसी की ताईद होती है। फ़ुक़हा में से उरवह-बिन-ज़ुबैर, अता, लेस-बिन-सअद और इब्ने-हज़्म ने इसी क़ौल को अपनाया है।

39. इस बारे में इख़्तिलाफ़ है कि जिस औरत से सिर्फ़ निकाह हुआ हो उसकी माँ हराम है या नहीं। इमाम अबू-हनीफ़ा, मालिक, अहमद और शाफ़ई *(रह०)* इसको हराम मानते हैं और हज़रत अली *(रज़ि०)* की राय यह है कि जब तक किसी औरत से जिस्मानी ताल्लुक़ात न हुआ हो उसकी माँ हराम नहीं होती।

40. ऐसी लड़की से निकाह हराम होने के लिए यह शर्त नहीं है कि उसने सौतेले बाप के घर में परवरिश पाई हो। ये अलफ़ाज़ अल्लाह ने सिर्फ़ इस रिश्ते की नज़ाकत ज़ाहिर करने के लिए इस्तेमाल किए हैं। मुस्लिम उलमा का इस बात पर क़रीब-क़रीब इत्तिफ़ाक़ है कि सौतेली बेटी आदमी पर बहरहाल हराम है, चाहे उसने सौतेले बाप के घर में परवरिश पाई हो या न पाई हो।

الَّذِيْنَ مِنْ اَصْلَابِكُمْ ۙ وَاَنْ تَجْمَعُوْا بَيْنَ الْاُخْتَيْنِ
اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۙ ﴿۲۳﴾
وَّالْمُحْصَنٰتُ مِنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ۚ
كِتٰبَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ ۚ وَاُحِلَّ لَكُمْ مَّا وَرَآءَ ذٰلِكُمْ

नुत्फ़े (वीर्य) से हों।[41] और यह भी तुम पर हराम किया गया कि निकाह में दो बहनों को जमा करो।[42] मगर जो पहले हो चुका वह हो चुका, अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[43] (24) और वे औरतें भी तुमपर हराम हैं जो किसी दूसरे के निकाह में हों (मुहसनात)। अलबत्ता ऐसी औरतें इससे अलग हैं जो (जंग में) तुम्हारे हाथ आएँ।[44] यह अल्लाह का क़ानून है जिसकी पाबन्दी तुमपर लाज़िम कर दी गई है।

इनके अलावा जितनी औरतें हैं उन्हें अपने मालों के ज़रीए से हासिल करना तुम्हारे

41. यह पाबन्दी इस मक़सद से बढ़ाई गई है कि जिसे आदमी ने बेटा बना लिया हो उसकी बेवा (विधवा) या तलाक़शुदा औरत आदमी पर हराम नहीं है। हराम सिर्फ़ उस बेटे की बीवी है जो उसके अपने नुत्फ़े से हो। और बेटे ही की तरह पोते और नाती की बीवी भी दादा और नाना पर हराम है।
42. नबी *(सल्ल०)* की हिदायत है कि ख़ाला (मौसी) और भांजी और फूफी और भतीजी को भी एक साथ निकाह में रखना हराम है। इस मामले में यह उसूल समझ लेना चाहिए कि ऐसी दो औरतों को एक निकाह में रखना बहरहाल हराम है जिनमें से कोई एक अगर मर्द होती तो उसका निकाह दूसरी से हराम होता।
43. यानी जाहिलियत के ज़माने में जो ज़ुल्म तुम लोग करते रहे हो कि दो-दो बहनों से एक ही वक़्त में निकाह कर लेते थे इस पर पकड़ न होगी, बशर्ते कि अब इससे रुके रहो। (देखें हाशिया-32) इसी बुनियाद पर यह हुक्म है कि जिस आदमी ने कुफ़्र की हालत में दो बहनों को निकाह में रखा हो उसे इस्लाम क़बूल करने के बाद एक को रखना और एक को छोड़ना होगा।
44. यानी जो औरतें जंग में पकड़ी हुई आएँ और उनके ग़ैर-मुस्लिम शौहर दारुल-हरब (वह मुल्क जिससे लड़ाई चल रही हो) में मौजूद हों वे हराम नहीं हैं, क्योंकि दारुल-हरब से दारुल-इस्लाम में आने के बाद उनके निकाह टूट गए। ऐसी औरतों के साथ निकाह भी किया जा सकता है और जिसकी मिल्कियत में वे हों वह उनसे जिस्मानी ताल्लुक़ात भी बना सकता है। अलबत्ता फ़ुक़हा के बीच इस बात में इख़्तिलाफ़ है कि अगर मियाँ और बीवी दोनों एक साथ गिरफ़्तार हों तो उनका क्या हुक्म है। इमाम अबू-हनीफ़ा और उनके शागिर्द कहते हैं कि उनका निकाह बाक़ी

रहेगा और इमाम मालिक व शाफ़ई की राय यह है कि उनका निकाह भी बाक़ी न रहेगा।

लौंडियों से जिस्मानी ताल्लुक के मामले में बहुत-सी ग़लतफ़हमियाँ लोगों के मन में हैं, इसलिए नीचे लिखी बातों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए—

(1) जो औरतें जंग में गिरफ्तार हों उनको पकड़ते ही हर सिपाही उनके साथ ताल्लुक़ बना लेने का हक़दार नहीं है, बल्कि इस्लामी क़ानून यह है कि ऐसी औरतें हुकूमत के हवाले कर दी जाएँगी। हुकूमत को इख़्तियार है कि चाहे उनको रिहा कर दे, चाहे उनसे फ़िदया ले, चाहे उनका तबादला उन मुसलमान क़ैदियों से करे जो दुश्मन के हाथ में हों और चाहे तो उन्हें सिपाहियों में बाँट दे। एक सिपाही सिर्फ़ उस औरत ही से ताल्लुक़ बनाने का हक़दार है जो हुकूमत की तरफ़ से बाक़ायदा उसकी मिल्कियत में दी गई हो।

(2) जो औरत इस तरह किसी की मिल्कियत में दे दी जाए उसके साथ भी उस वक़्त तक ताल्लुक़ नहीं बनाया जा सकता जब तक कि उसे एक बार माहवारी न आ जाए और यह इत्मीनान न हो जाए कि वह गर्भवती (हामिला) नहीं है। इससे पहले ताल्लुक़ात बनाना हराम है और अगर वह हामिला हो तो बच्चा पैदा होने से पहले भी ताल्लुक़ बनाना नाजाइज़ है।

(3) जंग में पकड़ी हुई औरतों से जिस्मानी ताल्लुक़ात के मामले में यह शर्त नहीं है कि वे अहले-किताब ही में से हों। उनका मज़हब चाहे कोई हो बहरहाल जब वे तक़सीम कर दी जाएँगी तो जिनके हिस्से में वे आएँ वे उनसे जिस्मानी ताल्लुक़ात बना सकते हैं।

(4) जो औरत जिस आदमी के हिस्से में दी गई हो सिर्फ़ वही उसके साथ जिस्मानी ताल्लुक़ात बना सकता है। किसी दूसरे को उसे हाथ लगाने का हक़ नहीं है। उस औरत से जो औलाद होगी वह उसी आदमी की जाइज़ औलाद समझी जाएगी जिसकी मिल्कियत में वह औरत है। उस औलाद के क़ानूनी हक़ वही होंगे जो शरीअत में सगी औलाद के लिए मुक़र्रर हैं। औलाद हो जाने के बाद वह औरत बेची नहीं जा सकेगी और मालिक के मरते ही वह आप से आप आज़ाद हो जाएगी।

(5) जो औरत इस तरह किसी आदमी की मिल्कियत में आई हो उसे अगर उसका मालिक किसी दूसरे आदमी के निकाह में दे दे तो फिर मालिक को उससे दूसरी तामाम ख़िदमतें लेने का हक़ तो रहता है, लेकिन जिंसी ताल्लुक़ का हक़ बाक़ी नहीं रहता।

(6) जिस तरह शरीअत ने बीवियों की तादाद पर चार की पाबन्दी लगाई है उस तरह लौंडियों की तादाद पर नहीं लगाई। लेकिन इस मामले में कोई हद मुक़र्रर न करने से शरीअत का मक़सद यह नहीं था कि मालदार लोग अनगिनत लौंडियाँ ख़रीद-ख़रीद कर जमा कर लें और अपने घर को ऐयाशी का घर बना लें। बल्कि हक़ीक़त में इस मामले में तादाद तय न करने की वजह यह है कि उस समय जंगी हालात तय नहीं थे।

(7) मिल्कियत के तमाम दूसरे हक़ों की तरह वे मालिकाना हक़ भी मुन्तक़िल किए जा सकते हैं जो किसी आदमी को क़ानून के मुताबिक़ किसी जंगी क़ैदी पर हुकूमत ने दिए हों।

(8) हुकूमत की तरफ़ से मिल्कियत के हक़ों का बाक़ायदा दिया जाना वैसा ही एक क़ानूनी काम है जैसा निकाह एक क़ानूनी काम है। इसलिए कोई मुनासिब वजह नहीं कि जो आदमी निकाह में किसी तरह की कराहत महसूस नहीं करता वह ख़ाह-म-ख़ाह लौंडी से जिस्मानी ताल्लुक़ात में कराहत महसूस करे।

اَنْ تَبْتَغُوْا بِاَمْوَالِكُمْ مُّحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ ؕ
فَمَا اسْتَمْتَعْتُمْ بِهٖ مِنْهُنَّ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ
فَرِيْضَةً ؕ وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا تَرٰضَيْتُمْ بِهٖ
مِنْۢ بَعْدِ الْفَرِيْضَةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝٢٤
وَمَنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ مِنْكُمْ طَوْلًا اَنْ يَّنْكِحَ الْمُحْصَنٰتِ
الْمُؤْمِنٰتِ فَمِنْ مَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ مِّنْ فَتَيٰتِكُمُ
الْمُؤْمِنٰتِ ؕ وَاللّٰهُ اَعْلَمُ بِاِيْمَانِكُمْ ؕ بَعْضُكُمْ مِّنْۢ

लिए हलाल कर दिया गया है, शर्त यह है कि निकाह के घेरे में उनको महफ़ूज़ करो, न यह कि आज़ादाना तौर पर शहवतरानी (काम-तृप्ति) करने लगो। फिर मियाँ-बीवी की हैसियत से ज़िन्दगी का जो लुत्फ़ (आनन्द) तुम उनसे उसके बदले उनके महर फ़र्ज़ समझते हुए अदा करो। अलबत्ता महर तय हो जाने के बाद आपस की रज़ामन्दी से तुम्हारे बीच अगर कोई समझौता हो जाए तो उसमें कोई हरज नहीं, अल्लाह जाननेवाला और सूझ-बूझ रखनेवाला (तत्त्वदर्शी) है। (25) और तुममें से जो आदमी इतनी क़ुदरत न रखता हो कि ख़ानदानी मुसलमान औरतों (मुह्सनात) से निकाह कर सके, उसे चाहिए कि तुम्हारी उन लौंडियों में से किसी के साथ निकाह कर ले जो तुम्हारे क़ब्ज़े में हों और ईमानवाली हों। अल्लाह तुम्हारे ईमानों का हाल अच्छी तरह जानता है। तुम सब एक ही

(9) जंगी क़ैदियों में से किसी औरत को किसी आदमी की मिल्कियत में दे देने के बाद फिर हुकूमत उसे वापस लेने का हक़ नहीं रखती, बिलकुल उसी तरह जैसे किसी औरत का वली (सरपरस्त) उसको किसी के निकाह में दे चुकने के बाद फिर वापस लेने का हक़दार नहीं रहता।

(10) अगर कोई फ़ौजी कमाण्डर सिर्फ़ वक़्ती और आरज़ी (अस्थाई) तौर पर अपने सिपाहियों को क़ैदी औरतों से अपनी जिंसी प्यास बुझाने की इजाज़त दे दे और सिर्फ़ कुछ वक़्त के लिए उन्हें फ़ौज में बाँट दे तो यह इस्लामी क़ानून कि निगाह में बिलकुल नाजाइज़ हरकत है। इस हरकत में और ज़िना में कोई फ़र्क़ नहीं है। और ज़िना इस्लामी क़ानून में जुर्म है। इस मसले पर और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें हमारी किताब 'तफ़हीमात भाग-2' और 'रसाइल व मसाइल भाग-1'।

بَعۡضٍ ۚ فَانۡكِحُوۡهُنَّ بِاِذۡنِ اَهۡلِهِنَّ وَ اٰتُوۡهُنَّ
اُجُوۡرَهُنَّ بِالۡمَعۡرُوۡفِ مُحۡصَنٰتٍ غَيۡرَ مُسٰفِحٰتٍ
وَّلَا مُتَّخِذٰتِ اَخۡدَانٍ ۚ فَاِذَاۤ اُحۡصِنَّ فَاِنۡ اَتَيۡنَ
بِفَاحِشَةٍ فَعَلَيۡهِنَّ نِصۡفُ مَا عَلَى الۡمُحۡصَنٰتِ مِنَ
الۡعَذَابِ ؕ ذٰلِكَ لِمَنۡ خَشِىَ الۡعَنَتَ مِنۡكُمۡ ؕ وَاَنۡ

गरोह के लोग हो,[45] इसलिए उनके सरपरस्तों की इजाज़त से उनके साथ निकाह कर लो और भले तरीक़े से उनके मह्र अदा कर दो, ताकि वे निकाह के घेरे में महफ़ूज़ (मुह्सनात) होकर रहें, न आज़ादाना तौर पर शहवतरानी (काम-तृप्ति) करती फिरें और न चोरी-छिपे नाजाइज़ ताल्लुक़ बनाएँ। फिर जब वे निकाह के घेरे में महफ़ूज़ हो जाएँ और उसके बाद कोई बदचलनी कर बैठें तो उनपर उस सज़ा के मुक़ाबले आधी सज़ा है जो ख़ानदानी औरतों (मुह्सनात) के लिए मुक़र्रर है।[46] यह सहूलत[47] तुम में से उन लोगों के लिए पैदा की गई है जिनको शादी न करने से तक़वा और परहेज़गारी के क़ायम न रह

45. यानी रहन-सहन में लोगों के बीच मर्तबे का जो फ़र्क़ है वह सिर्फ़ एक एतिबारी (Relative) चीज़ (औपचारिकता) है। वरना असल में सब मुसलमान बराबर हैं और उनके दर्मियान फ़र्क़ करने की अगर हक़ीक़त में कोई चीज़ है तो वह ईमान है, जो सिर्फ़ ऊँचे घरानों ही का हिस्सा नहीं है। हो सकता है कि एक लौंडी ईमान और अख़लाक़ में एक ख़ानदानी औरत से बेहतर हो।

46. सरसरी निगाह में यहाँ एक पेचीदगी पैदा होती है जिससे ख़ारिजी गरोह और उन दूसरे लोगों ने फ़ायदा उठाया है जो रज्म (पत्थरों से मार-मारकर मार डालने के हुक्म) के इनकारी हैं। वे कहते हैं कि "अगर आज़ाद शादीशुदा औरत के लिए इस्लामी शरीअत में ज़िना की सज़ा रज्म है तो इसकी आधी सज़ा क्या हो सकती है, जो लौंडी को दी जाए? इसलिए यह आयत इस बात की खुली दलील है कि इस्लाम में रज्म की सज़ा है ही नहीं।" लेकिन उन लोगों ने क़ुरआन के लफ़्ज़ पर ग़ौर नहीं किया। इस रुकू में लफ़्ज़ मुह्सनात (महफ़ूज़ औरतें) दो अलग-अलग मानों में इस्तेमाल किया गया है। एक 'शादी-शुदा औरतें' जिनको शौहर की हिफ़ाज़त हासिल हो। दूसरे 'ख़ानदानी औरतें' जिनको ख़ानदान की हिफ़ाज़त हासिल हो, चाहे शादी-शुदा न हों। इस आयत में 'मुह्सनात' का लफ़्ज़ लौंडी के मुक़ाबले में ख़ानदानी औरतों के लिए दूसरे मानी में

ع تَصْبِرُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ يُرِيْدُ
اللّٰهُ لِيُبَيِّنَ لَكُمْ وَيَهْدِيَكُمْ سُنَنَ الَّذِيْنَ مِنْ

जाने का अन्देशा हो। लेकिन अगर तुम सब्र करो तो यह तुम्हारे लिए बेहतर है, और अल्लाह बख़्शनेवाला और रहम करनेवाला है।

(26) अल्लाह चाहता है कि तुमपर उन तरीक़ों को वाज़ेह करे और उन्हीं तरीक़ों पर तुम्हें चलाए जिनकी पैरवी तुमसे पहले गुज़रे हुए अच्छे लोग करते थे। वह अपनी रहमत

इस्तेमाल हुआ है, न कि पहले मानी में, जैसा कि आयत के मज़मून से साफ़ ज़ाहिर है। इसके बरख़िलाफ़ लौंडियों के लिए मुहसनात का लफ़्ज़ पहले मानी में इस्तेमाल हुआ है और साफ़ लफ़्ज़ों में कहा गया है कि जब उन्हें निकाह की हिफ़ाज़त हासिल हो जाए तब उनके लिए ज़िना करने पर वह सज़ा है जो यहाँ बयान हुई है। अब अगर गहरी निगाह से देखा जाए तो यह बात बिलकुल वाज़ेह हो जाती है कि ख़ानदानी औरत को दो तरह की हिफ़ाज़तें हासिल होती हैं। एक ख़ानदान की हिफ़ाज़त जिसकी बुनियाद पर वह शादी के बग़ैर भी 'मुहसना' (महफ़ूज़) होती है। दूसरी शौहर की हिफ़ाज़त, जिसकी वजह से उसके लिए ख़ानदान की हिफ़ाज़त पर एक और हिफ़ाज़त की बढ़ोतरी हो जाती है। इसके बरख़िलाफ़ लौंडी जब तक लौंडी है मुहसना नहीं है, क्योंकि उसको किसी ख़ानदान की हिफ़ाज़त हासिल नहीं है। अलबत्ता निकाह होने पर उसको सिर्फ़ शौहर की हिफ़ाज़त हासिल होती है और वह भी अधूरी, क्योंकि शौहर की हिफ़ाज़त में आने के बाद भी न तो वह उन लोगों की बन्दगी से आज़ाद होती है जिनकी मिल्कियत में वह थी, और न उसे समाज में वह मर्तबा हासिल होता है जो ख़ानदानी औरत को नसीब हुआ करता है। इसलिए उसे जो सज़ा दी जाएगी वह ग़ैर-शादी-शुदा ख़ानदानी औरतों की सज़ा से आधी होगी, न कि शादी-शुदा ख़ानदानी औरतों की सज़ा से। साथ ही यहीं से यह बात भी मालूम हो गई कि क़ुरआन की सूरा नूर की दूसरी आयत में ज़िना की जिस सज़ा का बयान है वह सिर्फ़ ग़ैर-शादी-शुदा ख़ानदानी औरतों के लिए है जिनके मुक़ाबले में यहाँ शादी-शुदा लौंडी की सज़ा आधी बयान की गई है। रहीं शादी-शुदा ख़ानदानी औरतें, तो वे ग़ैर-शादी-शुदा मुहसनात से ज़्यादा सख़्त सज़ा की हक़दार हैं, क्योंकि वे दोहरी हिफ़ाज़त को तोड़ती हैं। हालाँकि क़ुरआन उनके लिए रज्म की सज़ा नही बताता, लेकिन बहुत ही ख़ूबसूरत अन्दाज़ से उसकी तरफ़ इशारा करता है जो कम अक़्ल लोगों से छिपा रह जाए तो रह जाए लेकिन नबी के तेज़ ज़ेहन से छिपा नहीं रह सकता था।

47. यानी ख़ानदानी औरत से निकाह करने की ताक़त न हो तो किसी लौंडी से उसके मालिकों की इजाज़त लेकर निकाह कर लेने की सुहूलत ।

قَبْلِكُمْ وَيَتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۚ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٦﴾ وَ اللّٰهُ
يُرِيْدُ اَنْ يَّتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۗ وَيُرِيْدُ الَّذِيْنَ يَتَّبِعُوْنَ
الشَّهَوٰتِ اَنْ تَمِيْلُوْا مَيْلًا عَظِيْمًا ﴿٢٧﴾ يُرِيْدُ اللّٰهُ
اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ ۚ وَخُلِقَ الْاِنْسَانُ ضَعِيْفًا ﴿٢٨﴾

के साथ तुम्हारी तरफ़ पलटना चाहता है। सब कुछ जानता और गहरी समझ रखता है।[48]
(27) हाँ, अल्लाह तो तुम्हारी तरफ़ रहमत के साथ पलटना चाहता है, मगर जो लोग ख़ुद अपने मन की ख़ाहिशों के पीछे चल रहे हैं वे चाहते हैं कि तुम सीधे रास्ते से हट कर दूर निकल जाओ।[49]
(28) अल्लाह तुम पर से पाबन्दियों को हल्का करना चाहता है, क्योंकि इनसान कमज़ोर पैदा किया गया है।

48. सूरा के शुरू से यहाँ तक जो हिदायतें दी गई हैं और इस सूरा के उतरने से पहले सूरा-2, अल-बक़रा में रहन-सहन के मामलों और समाजी मसलों के बारे में जो हिदायतें दी जा चुकी थीं, उन सबकी तरफ़ कुल मिलाकर इशारा करते हुए कहा जा रहा है कि ये रहन-सहन, अख़लाक़ और तमद्दुन (संस्कृति) के वे क़ानून हैं जिन पर पुराने ज़माने से हर दौर के नबी और उनके नेक पैरो कार अमल करते चले आए हैं और यह अल्लाह की देन और मेहरबानी है कि वह तुमको जाहिलियत की हालत से निकाल कर नेक लोगों की ज़िन्दगी के तरीक़े की तरफ़ तुम्हारी रहनुमाई कर रहा है।

49. यह इशारा मुनाफ़िक़ों और पुराने ज़माने से चले आ रहे तरीक़ों पर चलने वाले जाहिलों और मदीना के बाहरी हिस्सों में बसे यहूदियों की तरफ़ है। मुनाफ़िक़ों और पुराने ज़माने से चले आ रहे तरीक़ों की पैरवी करने, वालों को तो वे सुधार बहुत ही नापसन्द थे जो समाज तमद्दुन और समाज, में सदियों के जमे और रचे-बसे तास्सुब (पक्षपात) और रस्म व रिवाज के ख़िलाफ़ किए जा रहे थे। मीरास में लड़कियों का हिस्सा, बेवा औरत का सुसराल की बन्दिशों से रिहाई पाना और इद्दत के बाद उसका किसी भी आदमी से निकाह के लिए आज़ाद हो जाना, सोतेली माँ से निकाह हराम होना, दो बहनों के एक साथ निकाह में जमा किए जाने को नाजाइज़ क़रार देना, मुँह बोले बेटे (लेपालक) को विरासत से महरूम करना और मुँह बोले बाप के लिए मुँहबोले बेटे की बेवा या तलाक़ दी हुई औरत से निकाह को जाइज़ ठहराना, ये और इस तरह के दूसरे सुधारों में से एक-एक चीज़ ऐसी थी जिस पर बड़े-बूढ़े और बाप-दादा से चली आ रही रस्मों के पुजारी चीख़-चीख़ उठते थे। मुद्दतों इन हुक्मों पर चर्चे होते रहते थे। शरारत पसन्द लोग इन बातों को लेकर नबी *(सल्ल०)* और आपके सुधार के ख़िलाफ़ लोगों को भड़काते फिरते थे।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ

(29) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, आपस में एक-दूसरे के माल ग़लत ढंग से न खाओ। लेन-देन आपस की रज़ामन्दी से होना चाहिए।[50] और अपने-आप को क़त्ल न

मिसाल के तौर पर, जो आदमी किसी ऐसे निकाह से पैदा हुआ था जिसे अब इस्लामी शरीअत हराम क़रार दे रही थी, उसको यह कह–कर भड़काया जाता था कि लीजिए, आज जो नए अहकाम वहाँ आए हैं उनके मुताबिक़ आपकी माँ और आपके बाप का ताल्लुक़ नाजाइज़ ठहरा दिया गया है। इस तरह ये नादान लोग उस इस्लाह के काम में रुकावटें डाल रहे थे जो उस वक़्त अल्लाह के हुक्मों के तहत अंजाम दिया जा रहा था।

दूसरी तरफ़ यहूदी थे, जिन्होंने सदियों बाल की खाल निकालते रहने से ख़ुदा की सच्ची शरीअत पर अपने ख़ुद के घड़े हुए हुक्मों और क़ानूनों का एक भारी ख़ोल चढ़ा रखा था। अनगिनत पाबन्दियाँ, बारीकियाँ और सख़्तियाँ थीं जो उन्होंने शरीअत में बढ़ा ली थीं। ज़्यादातर हलाल चीज़ें ऐसी थीं जिनको वे हराम कर बैठे थे। बहुत-सी अन्धविश्वास की बातें थीं जिनको उन्होंने अल्लाह के क़ानून में दाख़िल कर दिया था। अब यह बात उनके आलिमों और आम लोगों की ज़ेहनियत, उनकी पसन्द और ज़ौक़ के बिलकुल ख़िलाफ़ थी कि वे इस सीधी-सादी शरीअत की क़द्र पहचान सकते जो क़ुरआन पेश कर रहा था। वे क़ुरआन के हुक्मों को सुनकर बेताब हो-हो जाते थे। एक-एक चीज़ पर सौ-सौ एतिराज़ करते। उनकी माँग यह थी कि या तो क़ुरआन उनके आलिमों के ज़रीए से पैदा हुए तमाम तरीक़ों और उनके बुज़ुर्गों (पूर्वजों) के सारे अन्धविश्वासों और अनर्गल बातों को ख़ुदा की शरीअत क़रार दे, वरना यह हरगिज़ ख़ुदा की किताब नहीं है। मिसाल के तौर पर, यहूदियों के यहाँ यह दस्तूर था कि माहवारी के दिनों में औरत को बिलकुल गन्दा समझा जाता था। न उसका पकाया हुआ खाना खाते, न उसके हाथ का पानी पीते, न उसके साथ फ़र्श पर बैठते; बल्कि उसके हाथ से हाथ छू जाने को भी ना पसन्द और बुरा समझते थे। इन कुछ दिनों में औरत ख़ुद अपने घर में अछूत बनकर रह जाती थी। यही रिवाज यहूदियों के असर से मदीना के अनसार में भी चल पड़ा था। जब नबी *(सल्ल०)* मदीना तशरीफ़ लाए तो आपसे इसके बारे में सवाल किया गया। जवाब में सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-222 उतरी। नबी *(सल्ल०)* ने इस आयत के मुताबिक़ हुक्म दिया कि माहवारी के दिनों में सिर्फ़ जिस्मानी ताल्लुक़ात बनाना नाजाइज़ है। बाक़ी सारे ताल्लुक़ात औरतों के साथ उसी तरह रखे जाएँ जिस तरह दूसरे दिनों में होते हैं। इस पर यहूदियों में शोर मच गया। वे कहने लगे कि यह आदमी तो क़सम खाकर बैठा है कि जो-जो कुछ हमारे यहाँ हराम है उसे हलाल करके रहेगा और जिस-जिस चीज़ को हम नापाक कहते हैं उसे पाक ठहराएगा।

50. 'ग़लत ढंग' से मुराद वे तमाम तरीक़े हैं जो हक़ के ख़िलाफ़ हों और शरीअत और अख़लाक़ की नज़र से नाजाइज़ हों। 'लेन-देन' से मुराद यह है कि आपस में फ़ायदों और नफ़ों का

وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيْمًا ﴿٢٩﴾
وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ عُدْوَانًا وَّظُلْمًا فَسَوْفَ نُصْلِيْهِ
نَارًا ۭ وَكَانَ ذٰلِكَ عَلَى اللّٰهِ يَسِيْرًا ﴿٣٠﴾ اِنْ تَجْتَنِبُوْا
كَبَاۗىِٕرَ مَا تُنْهَوْنَ عَنْهُ نُكَفِّرْ عَنْكُمْ سَيِّاٰتِكُمْ وَنُدْخِلْكُمْ

करो।[51] यक़ीन मानो कि अल्लाह तुम्हारे ऊपर मेहरबान है।[52] (30) जो शख़्स ज़ुल्म और ज़्यादती के साथ ऐसा करेगा उसको हम ज़रूर आग में झोंकेंगे और यह अल्लाह के लिए कोई मुश्किल काम नहीं है। (31) अगर तुम उन बड़े-बड़े गुनाहों से बचते रहो जिनसे तुम्हें रोका जा रहा है तो तुम्हारी छोटी-मोटी बुराइयों को हम तुम्हारे हिसाब में से हटा

तबादला होना चाहिए जिस तरह तिजारत, कारोबार वग़ैरा में होता है कि एक आदमी दूसरे आदमी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए मेहनत करता है और वह उसका मुआवज़ा देता है। 'आपस की रज़ामन्दी' से मुराद यह है कि लेन-देन न तो किसी नाजाइज़ दबाव से हो और न छल-कपट से। रिश्वत और सूद (ब्याज) में बज़ाहिर रज़ामन्दी होती है मगर हक़ीक़त में वह रज़ामन्दी मजबूरी के तहत होती है और दबाव का नतीजा होती है। जुए में भी बज़ाहिर रज़ामन्दी होती है लेकिन हक़ीक़त में जुए में हिस्सा लेनेवाला हर आदमी उस ग़लत उम्मीद पर रज़ामन्द होता है कि जीत उसकी होगी। हारने के इरादे से कोई भी राज़ी नहीं होता। छल-कपट के कारोबार में भी बज़ाहिर रज़ामन्दी होती है, मगर इस ग़लतफ़हमी की बुनियाद पर होती है कि अन्दर छल-कपट नहीं है। अगर दूसरे फ़रीक़ को मालूम हो कि तुम इससे छल-कपट कर रहे हो तो वह कभी इस पर राज़ी न हो।

51. यह जुमला पिछले जुमले का ततिम्मा (पूरक) भी हो सकता है और ख़ुद अपने-आपमें एक मुकम्मल जुमला भी। अगर पिछले जुमले का पूरक समझा जाए तो इसका मतलब यह है कि दूसरों का माल नाजाइज़ तौर पर खाना ख़ुद अपने आपको हलाकत में डालना है। दुनिया में इससे समाज का निज़ाम ख़राब होता है और इसके बुरे नतीजों से हरामख़ोर आदमी ख़ुद भी नहीं बच सकता और आख़िरत में इसकी बदौलत आदमी सख़्त सज़ा का हक़दार बन जाता है। अगर इसे अपने-आप में एक मुकम्मल जुमला समझा जाए तो इसके दो मतलब हैं-- एक यह कि एक दूसरे को क़त्ल न करो। दूसरे यह कि ख़ुदकुशी न करो। अल्लाह ने अलफ़ाज़ ऐसे जामेअ (व्यापक) इस्तेमाल किए हैं और बात की तरतीब ऐसी रखी है कि इससे ये तीनों मतलब निकलते हैं और तीनों सही हैं।

52. यानी अल्लाह तुम्हारा भला चाहनेवाला है, तुम्हारी भलाई चाहता है और यह उसकी मेहरबानी ही है कि वह तुमको ऐसे कामों से मना कर रहा है जिनमें तुम्हारी अपनी बरबादी है।

مُّدۡخَلًا كَرِيۡمًا ۝ وَلَا تَتَمَنَّوۡا مَا فَضَّلَ اللّٰهُ بِهٖ
بَعۡضَكُمۡ عَلٰى بَعۡضٍ ؕ لِلرِّجَالِ نَصِيۡبٌ مِّمَّا

देंगे[53] और तुमको इज़्ज़त की जगह में दाख़िल करेंगे।

(32) और जो कुछ अल्लाह ने तुममें से किसी को दूसरों के मुक़ाबले में ज़्यादा दिया है उसकी तमन्ना न करो। जो कुछ मर्दों ने कमाया है उसके मुताबिक़ उनका हिस्सा है

---

53. यानी हम तंगदिल और तंगनज़र नहीं हैं कि छोटी-छोटी बातों पर पकड़कर अपने बन्दों को सज़ा दें। अगर तुम्हारा आमाल-नामा (कर्म-पत्र) बड़े गुनाहों से ख़ाली हो तो छोटी ग़लतियों को नज़र-अन्दाज़ कर दिया जाएगा और तुम पर जुर्म का कोई इलज़ाम लगाया ही न जाएगा। लेकिन अगर बड़े गुनाह और जुर्म करके आओगे तो फिर जो मुक़द्दमा तुम पर क़ायम किया जाएगा उसमें छोटी ग़लतियाँ भी पकड़ में आ जाएँगी।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि बड़े गुनाह और छोटे गुनाह में उसूली फ़र्क़ क्या है? जहाँ तक मैंने क़ुरआन और सुन्नत में ग़ौर किया है मुझे ऐसा मालूम होता (और अल्लाह बेहतर जानता) है कि तीन चीज़ें हैं जो किसी काम को बड़ा गुनाह बनाती हैं—

(1) किसी का हक़ मार लेना। चाहे वह ख़ुदा हो जिसका हक़ मारा गया है या माँ-बाप हों, या दूसरे इनसान या ख़ुद अपना नफ़्स। फिर जिसका हक़ जितना ज़्यादा है, उसके हक़ को मारना उतना ही ज़्यादा बड़ा गुनाह है। इसी बुनियाद पर गुनाह को ज़ुल्म भी कहा जाता है और इसी बुनियाद पर शिर्क को क़ुरआन में बड़ा ज़ुल्म कहा गया है।

(2) अल्लाह से निडर और बेख़ौफ़ होना और उसके मुक़ाबले में घमण्ड करना, जिसकी वजह से आदमी अल्लाह के करने न करने के हुक्म की परवाह न करे और नाफ़रमानी के इरादे से जान-बूझकर वह काम करे जिससे अल्लाह ने मना किया और जान-बूझ कर उन कामों को न करे जिनका उसने हुक्म दिया है। यह नाफ़रमानी जितनी ज़्यादा ढिटाई और जसारत (दुस्साहस) और ख़ुदा से बेख़ौफ़ होने की कैफ़ियत अपने अंदर लिए हुए होगी, उतना ही गुनाह भी सख़्त होगा। इसी मानी के लिहाज़ से गुनाह के लिए 'फ़िस्क़' और मासियत के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए गए हैं।

(3) उन बन्धनों को तोड़ना और उन ताल्लुक़ात को बिगाड़ना जिनके जोड़ने, मज़बूत बनाने और ठीक होने पर इनसानी ज़िन्दगी के अम्न का दारोमदार है, चाहे ये ताल्लुक़ बन्दे और ख़ुदा के बीच हों या बन्दे और बन्दे के बीच। फिर जो ताल्लुक़ जितना ज़्यादा अहम है और जिसके कटने से अम्न को जितना ज़्यादा नुक़सान पहुँचता है और जिसके मामले में अम्न की जितनी ज़्यादा उम्मीद की जाती है, उतनी ही उसको तोड़ने और काटने और ख़राब करने का गुनाह ज़्यादा बड़ा है। जैसे कि ज़िना और उसकी बहुत-सी शक्लों पर ग़ौर कीजिए। यह काम अपने आप में समाज और संस्कृति (तहज़ीब) के निज़ाम को ख़राब कर देनेवाला है। इसलिए

اكْتَسَبُوا ۖ وَلِلنِّسَاءِ نَصِيبٌ مِّمَّا اكْتَسَبْنَ ۚ وَسْئَلُوا اللَّهَ مِن فَضْلِهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمًا ﴿٣٢﴾

और जो कुछ औरतों ने कमाया है उसके मुताबिक़ उनका हिस्सा। हाँ, अल्लाह से उसके फ़ज़्ल (अनुग्रह) की दुआ माँगते रहो, यक़ीनन अल्लाह हर चीज़ का इल्म रखता है।[54]

अपने-आप में एक बड़ा गुनाह है, मगर इसकी अलग-अलग सूरतें एक दूसरे से गुनाह में ज़्यादा बढ़कर हैं। शादी-शुदा का ज़िना करना बिन-ब्याहे के मुक़ाबले में ज़्यादा बड़ा गुनाह है। शादी-शुदा औरत के साथ ज़िना करना ग़ैर-शादी-शुदा औरत से ज़िना के मुक़ाबले में ज़्यादा बड़ा गुनाह है। पड़ोसी के घरवालों से ज़िना करना ग़ैर-पड़ोसी से ज़िना करने के मुक़ाबले में ज़्यादा बुरा है। महरम औरतों; जैसे बहन, बेटी या माँ से ज़िना करना ग़ैर-औरत से करने के मुक़ाबले में ज़्यादा क़ाबिले-नफ़रत और बुरा है। मस्जिद में ज़िना करना किसी और जगह करने के मुक़ाबले में ज़्यादा संगीन जुर्म है। इन मिसालों में एक ही काम की अलग-अलग सूरतों के दर्मियान गुनाह होने की हैसियत से दर्जों का फ़र्क़ इन्हीं वजहों से है जो ऊपर बताई गई हैं। जहाँ अम्न क़ायम रहने की उम्मीद जितनी ज़्यादा है, जहाँ इनसानी राब्ते और रिश्ते का जितना ज़्यादा एहतिराम ज़रूरी है और जहाँ इस राब्ते और रिश्ते को काटना जितना ज़्यादा फ़साद, और बिगाड़ का सबब है वहाँ ज़िना करना उतना ही ज़्यादा बड़ा गुनाह है। इसी मानी के लिहाज़ से गुनाह के लिए 'फ़ुजूर' की इस्तिलाह (परिमाषा) इस्तेमाल की जाती है।

54. इस आयत में एक बड़ी अहम अख़लाक़ी हिदायत दी गई है, जिसे अगर ध्यान में रखा जाए तो सामाजिक ज़िन्दगी में इनसान को बड़ा अम्न नसीब हो जाए। अल्लाह ने सारे इनसानों को एक जैसा नहीं बनाया है, बल्कि उनके दर्मियान अनगिनत हैसियतों से फ़र्क़ रखे हैं। कोई ख़ूबसूरत है और कोई बदसूरत। किसी की आवाज़ में मिठास है और किसी की आवाज़ में कड़ुवाहट। कोई ताक़तवर है और कोई कमज़ोर। किसी का पूरा जिस्म सही-सालिम है और कोई पैदाइशी तौर पर जिस्मानी कमज़ोरी और ऐब लेकर आया है। किसी को जिस्मानी और ज़ेहनी ताक़तों में से कोई ताक़त ज़्यादा दी है और किसी को कोई दूसरी ताक़त। किसी को बेहतर हालात में पैदा किया है और किसी को बदतर हालात में। किसी को ज़्यादा ज़रीए और साधन दिए हैं और किसी को कम। इसी फ़र्क़ और इम्तियाज़ (विशिष्टता) पर इनसानी समाज और संस्कृति (तमद्दुन) की सारी रंगा-रंगी क़ायम है और यह ठीक हिकमत का तक़ाज़ा भी है। जहाँ इस फ़र्क़ को इसके फ़ितरी हदों से बढ़ाकर इनसान अपने बनावटी इम्तियाज़ों की इस पर बढ़ोतरी करता है, वहाँ एक तरह का बिगाड़ पैदा होता है और जहाँ सिरे से इस फ़र्क़ ही को मिटा देने के लिए फ़ितरत से जंग करने की कोशिश की जाती है वहाँ एक दूसरी तरह का बिगाड़ पैदा होता है। आदमी की यह सोच और ज़ेहनियत कि जिसे किसी हैसियत से अपने मुक़ाबले में बढ़ा हुआ देखे बेचैन हो जाए, यही सामाजिक ज़िन्दगी में हसद, जलन (द्वेष) दुश्मनी, और खींच-तान की जड़ है और इसका नतीजा यह होता है कि जो चीज़ उसे जाइज़ तरीक़ों से हासिल नहीं होती

وَلِكُلٍّ جَعَلْنَا مَوَالِيَ مِمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَالْاَقْرَبُوْنَ
وَالَّذِيْنَ عَقَدَتْ اَيْمَانُكُمْ فَاٰتُوْهُمْ نَصِيْبَهُمْ ؕ
اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدًا ۟ اَلرِّجَالُ
قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى
بَعْضٍ وَّبِمَاۤ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ؕ فَالصّٰلِحٰتُ

(33) और हमने हर उस तरके (छोड़े हुए माल) के हक़दार मुक़र्रर कर दिए हैं, जो माँ-बाप और क़रीबी रिश्तेदार छोड़ें। अब रहे वे लोग जिनसे तुम्हारे वादे और समझौते हों तो उनका हिस्सा उन्हें दो। यक़ीनन हर चीज़ अल्लाह की निगाह में है।[55]

(34) मर्द औरतों पर क़व्वाम (मामलों के ज़िम्मेदार) हैं,[56] इस बुनियाद पर अल्लाह ने उनमें से एक को दूसरे पर फ़ज़ीलत[57] दी है। और इस बुनियाद पर कि मर्द अपने माल

उसे फिर वह नाजाइज़ तदबीरों से हासिल करने पर उतर आता है। अल्लाह इस आयत में इसी ज़ेहनियत से बचने की हिदायत कर रहा है। उसके फ़रमान का मक़सद यह है कि जो नेमत उसने दूसरों को दी हो उसकी तमन्ना न करो; अलबत्ता अल्लाह से फ़ज़्ल और मेहरबानी की दुआ करो, वह जिस फ़ज़्ल और नेमत को अपने इल्म और हिकमत से तुम्हारे लिए मुनासिब समझेगा दे देगा। और यह जो कहा कि 'मर्दों ने जो कुछ कमाया है उसके मुताबिक़ उनका हिस्सा है और जो कुछ औरतों ने कमाया है उसके मुताबिक़ उनका हिस्सा', इसका मतलब जहाँ तक मैं समझ सका हूँ यह है कि मर्दों और औरतों में से जिसको जो कुछ अल्लाह ने दिया है उसको इस्तेमाल करके जो जितनी और जैसी बुराई या भलाई कमाएगा उसी के मुताबिक़, या दूसरे अलफ़ाज़ में उसी शक्ल में अल्लाह के यहाँ हिस्सा पाएगा।

55. अरब के लोगों का क़ायदा था कि जिन लोगों के बीच दोस्ती और भाईचारे के क़ौल व क़रार हो जाते थे वे एक दूसरे की मीरास के हक़दार बन जाते थे। इसी तरह जिसे बेटा बना लिया जाता था वह भी मुँह बोले बाप का वारिस क़रार पाता था। इस आयत में जाहिलियत के इस तरीक़े को रद्द करते हुए फ़रमाया गया है कि विरासत तो उसी क़ायदे के मुताबिक़ रिश्तेदारों में तक़सीम होनी चाहिए जो हमने तय कर दिया है। अलबत्ता जिन लोगों से तुम्हारे क़ौल व क़रार हों उनको अपनी ज़िन्दगी में तुम जो चाहो दे सकते हो।

56. अरबी ज़बान में 'क़व्वाम' या 'क़य्यिम' उस आदमी को कहते हैं जो किसी शख़्स, इदारे या निज़ाम के मामलों को ठीक-ठाक चलाने और उसकी हिफ़ाज़त और देखभाल करने और उसकी ज़रूरतें पूरी करने का ज़िम्मेदार हो।

57. यहाँ 'फ़ज़ीलत' बड़ाई, इज़्ज़त और बुज़ुर्गी के मानी में नही है। जैसा कि उर्दू-हिन्दी जाननेवाला

قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ ؕ وَالّٰتِیْ
تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِی
الْمَضَاجِعِ وَاضْرِبُوْهُنَّ ۚ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا
عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيًّا كَبِيْرًا ﴿۳۴﴾

ख़र्च करते हैं। इसलिए जो नेक और भली औरतें हैं वे फ़रमाँबरदार होती हैं और मर्दों के पीछे अल्लाह की हिफ़ाज़त और निगरानी में उनके हक़ों की हिफ़ाज़त करती हैं।[58] और जिन औरतों से तुम्हें सरकशी का डर हो उन्हें समझाओ, सोने की जगहों में उनसे अलग रहो और मारो,[59] फिर अगर वे तुम्हारी बात मानने लगें तो बिला वजह उन पर हाथ चलाने के बहाने तलाश न करो। यक़ीन रखो कि ऊपर अल्लाह मौजूद है जो बड़ा और

एक आम आदमी इस लफ़्ज़ का मतलब लेगा, बल्कि यहाँ यह लफ़्ज़ इस मानी में है कि मर्द और औरतों में से मर्द को अल्लाह ने फ़ितरी तौर पर कुछ ऐसी ख़ुसूसियतें और ताक़तें दी हैं जो औरत को नही दीं या अगर दी हैं तो मर्द से कम। इस बुनियाद पर ख़ानदानी निज़ाम में मर्द ही क़व्वाम (ज़िम्मेदार) होने की सलाहियत रखता है और औरत फ़ितरी तौर पर ऐसी बनाई गई है कि उसे ख़ानदानी ज़िन्दगी में मर्द की हिफ़ाज़त और देखभाल के तहत रहना चाहिए।

58. हदीस में आया है कि नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया, "बेहतरीन बीवी वह है कि जब तुम उसे देखो तो तुम्हारा जी ख़ुश हो जाए, जब तुम उसे किसी बात का हुक्म दो तो वह तुम्हारी इताअत करे और जब तुम घर में न हो तो वह तुम्हारे पीछे तुम्हारे माल की और अपने नफ़्स (इज़्ज़त व सतीत्त्व) की हिफ़ाज़त करे।" यह हदीस इस आयत की बेहतरीन तफ़सीर (व्याख्या) करती है। मगर यहाँ यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि औरत पर अपने शौहर की फ़रमाँबरदारी से बढ़कर अहम बात अपने ख़ालिक़ यानी अल्लाह की इताअत है। इसलिए अगर कोई शौहर ख़ुदा की नाफ़रमानी का हुक्म दे या ख़ुदा की तरफ़ से ठहराए हुए किसी फ़र्ज़ से रोकने की कोशिश करे तो उसकी बात मानने से इनकार कर देना औरत के लिए ज़रूरी है। इस सूरत में अगर वह उसका कहा मानेगी तो गुनाहगार होगी। इसके बरख़िलाफ़ अगर शौहर अपनी बीवी को नफ़्ल नमाज़ या नफ़्ल रोज़ा छोड़ने के लिए कहे तो उस पर लाज़िम है कि वह उसका कहा माने। उस सूरत में अगर वह नफ़्ल काम करेगी तो (ख़ुदा के यहाँ) वे क़बूल न होंगे।

59. इसका मतलब यह नहीं है कि तीनों काम एक ही वक़्त में कर डाले जाएँ; बल्कि मतलब यह है कि सरकशी की हालत में इन तीनों तदबीरों और उपायों की इजाज़त है। अब रहा इनको अमल में लाना तो बहरहाल इसमें इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि क़ुसूर के मुताबिक़

وَإِنْ خِفْتُمْ شِقَاقَ بَيْنِهِمَا فَابْعَثُوا حَكَمًا مِّنْ
أَهْلِهِ وَحَكَمًا مِّنْ أَهْلِهَا ۚ إِن يُرِيدَا إِصْلَاحًا
يُوَفِّقِ اللَّهُ بَيْنَهُمَا ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلِيمًا خَبِيرًا ﴿٣٥﴾

बालातर (सर्वोच्च) है। (35) और अगर तुम लोगों को कहीं मियाँ-बीवी के ताल्लुक़ात के बिगड़ जाने का डर हो तो एक फ़ैसला करनेवाला मर्द के रिश्तेदारों में से और एक औरत के रिश्तेदारों में से मुक़र्रर करो, वे दोनों[60] सुलह करना चाहेंगे तो अल्लाह उनके बीच मेल-मिलाप का रास्ता निकाल देगा। अल्लाह सब कुछ जानता है और ख़बर रखता है।[61]

सज़ा दी जाए। और जहाँ हल्की तदबीर से सुधार हो सकता हो वहाँ सख़्त तदबीर से काम नहीं लेना चाहिए। नबी *(सल्ल०)* ने बीवियों के मारने की जब कभी इजाज़त दी है न चाहते हुए दी है और फिर भी इसे नापसन्द ही किया है। फिर भी कुछ औरतें ऐसी होती हैं जो पिटे बग़ैर ठीक ही नहीं होतीं। ऐसी हालत में नबी *(सल्ल०)* ने हिदायत की है कि मुँह पर न मारा जाए, बे-रहमी से न मारा जाए और ऐसी चीज़ से न मारा जाए जो जिस्म पर निशान छोड़ जाए।

60. दोनों से मुराद पंच (मध्यस्थ) भी हैं और शौहर-बीवी भी। हर झगड़े में सुलह होना मुमकिन है बशर्ते कि दोनों फ़रीक़ भी सुलह चाहते हों और बीचवाले भी चाहते हों कि दोनों फ़रीक़ों में किसी तरह सुलह-सफ़ाई हो जाए।

61. इस आयत में हिदायत की गई है कि जहाँ मियाँ और बीवी में अनबन हो जाए वहाँ झगड़े से जुदाई तक नौबत पहुँचने या अदालत में मामला जाने से पहले घर के घर ही में इस्लाह की कोशिश कर लेनी चाहिए और इसका तरीक़ा यह है कि मियाँ और बीवी में से हर एक के ख़ानदान का एक-एक आदमी इस मक़सद के लिए मुक़र्रर किया जाए कि दोनों मिलकर इस बात की छान-बीन करें कि शौहर और बीवी में अनबन की वजहें क्या हैं। और फिर आपस में सर जोड़कर बैठें और सुलह की कोई सूरत निकालें।

इन पंचों को कौन मुक़र्रर करेगा? इस बात को अल्लाह ने खोला नहीं है, ताकि अगर मियाँ-बीवी ख़ुद चाहें तो अपने-अपने रिश्तेदारों में से ख़ुद ही एक-एक आदमी को अपने इख़्तिलाफ़ का फ़ैसला करने के लिए चुन लें, वरना दोनों ख़ानदानों के बड़े-बूढ़े दख़ल देकर पंच मुक़र्रर करें, और अगर मुक़द्दमा अदालत में पहुँच ही जाए तो अदालत ख़ुद कोई कार्रवाई करने से पहले ख़ानदानी पंच मुक़र्रर करके सुधार की कोशिश करे।

इस बात में उलमा के बीच इख़्तिलाफ़ है कि पंचों के इख़्तियारात (अधिकार) क्या हैं। एक गरोह कहता है कि ये पंच फ़ैसला करने का इख़्तियार नहीं रखते। अलबत्ता मामला हल करने की जो सूरत उनके नज़दीक मुनासिब हो उनके लिए सिफ़ारिश कर सकते हैं। मानना या न मानना मियाँ-बीवी के इख़्तियार में है। हाँ, अगर मियाँ-बीवी ने उनको तलाक़ या ख़ुला या किसी

وَاعْبُدُوا اللّٰهَ وَلَا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْـًٔا وَّ بِالْوَالِدَيْنِ
اِحْسَانًا وَّبِذِی الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ
وَ الْجَارِ ذِی الْقُرْبٰى وَالْجَارِ الْجُنُبِ وَالصَّاحِبِ
بِالْجَنْۢبِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ۙ وَمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ؕ

(36) और तुम सब अल्लाह की बन्दगी करो, उसके साथ किसी को साझी न बनाओ, माँ-बाप के साथ अच्छे बर्ताव करो, नातेदारों और यतीमों और मुहताजों के साथ अच्छा सुलूक करो और पड़ोसी रिश्तेदार से, अजनबी पड़ोसी से, पहलू के साथी[62] और मुसाफ़िर से, और उन लौंडी-गुलामों से जो तुम्हारे क़ब्ज़े में हों, एहसान का मामला रखो।

और बात का फ़ैसला कर देने के लिए अपना वकील बनाया हो तो ऐसी सूरत में उनका फ़ैसला मानना उनके लिए ज़रूरी होगा। यह हनफ़ी और शाफ़ई आलिमों का मसलक है। दूसरे गरोह के नज़दीक दोनों पंचों को मेल-मिलाप का फ़ैसला करने का हक़ है, मगर जुदाई का फ़ैसला नहीं कर सकते। यह हसन बसरी *(रह०)* और क़तादा और कुछ दूसरे फ़ुक़हा का बयान है। एक और गरोह इस बात का क़ायल है कि इन पंचों को मिलाने और जुदा कर देने के पूरे इख़्तियारात हासिल हैं। इब्ने-अब्बास, सईद-बिन-जुबैर, इबराहीम नख़ई, शअबी, मुहम्मद-बिन-सीरीन और कुछ दूसरे आलिमों ने इसी राय को अपनाया है।

हज़रत उस्मान और हज़रत अली *(रज़ि०)* के फ़ैसलों की जो नज़ीरें हम तक पहुँची हैं उनसे मालूम होता है कि ये दोनों बुज़ुर्ग पंच मुक़र्रर करते हुए अदालत की तरफ़ से उनको फ़ैसले के इख़्तियारात दे देते थे। चुनाँचे हज़रत अक़ील-बिन-अबी-तालिब और उनकी बीवी फ़ातिमा-बिन्ते-उत्बा-बिन-रबीआ का मुक़द्दमा जब हज़रत उस्मान *(रज़ि०)* की अदालत में पेश हुआ तो उन्होंने शौहर के ख़ानदान में से हज़रत इब्ने-अब्बास *(रज़ि०)* को और बीवी के ख़ानदान में से हज़रत मुआविया-बिन-अबी-सुफ़यान को पंच मुक़र्रर किया और उनसे कहा कि अगर आप दोनों की राय में इन दोनों के बीच जुदाई कर देना ही मुनासिब हो तो जुदाई कर दें। इसी तरह एक मुक़द्दमे में हज़रत अली *(रज़ि०)* ने पंच मुक़र्रर किए और उनको इख़्तियार दिया कि चाहें इनको मिला दें और चाहें अलग कर दें। इससे मालूम हुआ कि पंच अपने तौर पर तो फ़ैसले का इख़्तियार नहीं रखते, अलबत्ता अगर अदालत उनको मुक़र्रर करते वक़्त उन्हें इख़्तियार दे दे तो फिर उनका फ़ैसला एक अदालती फ़ैसले की तरह लागू होगा।

62. अस्ल अरबी में 'अस्साहिब-बिलजम्ब' कहा गया है, जिससे मुराद हर वक़्त साथ उठने-बैठनेवाला दोस्त भी है और ऐसा आदमी भी जिससे कहीं किसी वक़्त आदमी का साथ हो जाए। मिसाल के तौर पर आप बाज़ार में जा रहे हों और कोई आदमी आपके साथ रास्ता चल

إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُورًا ﴿٣٦﴾
الَّذِينَ يَبْخَلُونَ وَيَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبُخْلِ
وَيَكْتُمُونَ مَا آتَاهُمُ اللَّهُ مِنْ فَضْلِهِ ۗ وَأَعْتَدْنَا
لِلْكَافِرِينَ عَذَابًا مُهِينًا ﴿٣٧﴾ وَالَّذِينَ يُنْفِقُونَ
أَمْوَالَهُمْ رِئَاءَ النَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَلَا
بِالْيَوْمِ الْآخِرِ ۗ وَمَنْ يَكُنِ الشَّيْطَانُ لَهُ قَرِينًا

यक़ीन जानो अल्लाह किसी ऐसे शख़्स को पसन्द नहीं करता जो अपने घमंड में चूर हो और डींगें मारने वाला हो और अपनी बड़ाई पर फ़ख़्र करे। (37) और ऐसे लोग भी अल्लाह को पसन्द नहीं हैं जो कंजूसी करते हैं और दूसरों को भी कंजूसी पर उभारते हैं और जो कुछ अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से उन्हें दिया है उसे छिपाते हैं।[63] नेमत के ऐसे नाशुक्रों के लिए हमने रुसवा कर देनेवाला अज़ाब तैयार कर रखा है। (38) और वे लोग भी अल्लाह को नापसन्द हैं जो अपने माल सिर्फ़ लोगों को दिखाने के लिए ख़र्च करते हैं और हक़ीक़त में न अल्लाह पर ईमान रखते हैं, न आख़िरत के दिन पर। सच यह है कि शैतान जिसका साथी हुआ उसे बहुत ही बुरा साथ

रहा हो, या किसी दुकान पर आप सौदा ख़रीद रहे हों और कोई दूसरा ख़रीदार भी आपके पास बैठा हो या सफ़र के दौरान में कोई आदमी आपका हमसफ़र हो। यह वक़्ती साथी भी हर मुहज़्ज़ब और शरीफ़ इनसान पर एक हक़ डालता है जिसका तक़ाज़ा यह है कि वह जहाँ तक मुमकिन हो उसके साथ अच्छाई का बर्ताव करे और उसे तकलीफ़ देने से बचे।

63. अल्लाह की मेहरबानी को छिपाना यह है कि आदमी इस तरह रहे कि मानो अल्लाह ने उस पर मेहरबानी नहीं की है। मिसाल के तौर पर किसी को अल्लाह ने दौलत दी हो और वह अपनी हैसियत से गिर कर रहे। न अपने ऊपर और न अपने बीवी-बच्चों पर ख़र्च करे, न अल्लाह के बन्दों की मदद करे और न नेक कामों में हिस्सा ले। लोग देखें तो समझें कि बेचारा बड़ा ही फटे-हाल है। यह अस्ल में अल्लाह की सख़्त नाशुक्री है। हदीस में आया है कि नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि "अल्लाह जब किसी बन्दे को नेमत देता है तो वह पसन्द करता है कि उस नेमत का असर बन्दे पर ज़ाहिर हो।" यानी उसके खाने-पीने, रहने-सहने, कपड़ा और मकान और उसके नेक कामों में देने हर चीज़ से अल्लाह की दी हुई उस नेमत का इज़हार होता रहे।

فَسَآءَ قَرِيْنًا ﴿٣٨﴾ وَمَا ذَا عَلَيْهِمْ لَوْ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَ
الْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ اَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقَهُمُ اللّٰهُ ؕ وَكَانَ
اللّٰهُ بِهِمْ عَلِيْمًا ﴿٣٩﴾ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَظْلِمُ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ ۚ
وَاِنْ تَكُ حَسَنَةً يُّضٰعِفْهَا وَيُؤْتِ مِنْ لَّدُنْهُ
اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٤٠﴾ فَكَيْفَ اِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍۭ بِشَهِيْدٍ
وَّجِئْنَا بِكَ عَلٰى هٰۤؤُلَآءِ شَهِيْدًا ﴿٤١﴾ يَوْمَئِذٍ يَّوَدُّ
الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَعَصَوُا الرَّسُوْلَ لَوْ تُسَوّٰى بِهِمُ الْاَرْضُ ؕ

وقف النبي صلى الله عليه وسلم

मिला। (39) आख़िर इन लोगों पर क्या आफ़त आ जाती अगर ये अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते और जो कुछ अल्लाह ने दिया है उसमें से ख़र्च करते। अगर ये ऐसा करते तो अल्लाह से इनकी नेकी का हाल छिपा न रह जाता। (40) अल्लाह किसी पर ज़र्रा बराबर भी ज़ुल्म नहीं करता। अगर कोई एक नेकी करे तो अल्लाह उसे दुगुना कर देता है और फिर अपनी तरफ़ से बड़ा बदला देता है। (41) फिर सोचो कि उस वक़्त ये क्या करेंगे जब हम हर उम्मत में से एक गवाह लाएँगे और इन लोगों पर तुम्हें (यानी मुहम्मद सल्ल० को) गवाह की हैसियत से खड़ा करेंगे।[64] (42) उस वक़्त वे सब लोग जिन्होंने रसूल की बात न मानी और उसकी नाफ़रमानी करते रहे, तमन्ना करेंगे कि काश! ज़मीन फट जाए और वे उसमें समा

64. यानी हर दौर का पैग़म्बर अपने दौर के लोगों पर अल्लाह की अदालत में गवाही देगा कि ज़िन्दगी का वह सीधा रास्ता और फ़िक्र व अमल का वह सही तरीक़ा, जिसकी तालीम आपने मुझे दी थी उसे मैंने इन लोगों तक पहुँचा दिया था। फिर यही गवाही मुहम्मद *(सल्ल०)* अपने दौर के लोगों पर देंगे और क़ुरआन से मालूम होता है कि आप *(सल्ल०)* का दौर आप को नबी बनाए जाने के वक़्त से लेकर क़ियामत तक है। (देखें सूरा-3, आले-इमरान, हाशिया-69)

وَلَا يَكْتُمُوْنَ اللّٰهَ حَدِيْثًا ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَاَنْتُمْ سُكٰرٰى حَتّٰى تَعْلَمُوْا

जाएँ। वहाँ ये अपनी कोई बात अल्लाह से छिपा न सकेंगे।

(43) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, जब तुम नशे की हालत में हो तो नमाज़ के क़रीब[65] न जाओ। नमाज़ उस वक़्त पढ़नी चाहिए जब तुम जानो कि क्या कह रहे हो[66]

---

65. यह शराब के बारे में दूसरा हुक्म है। पहला हुक्म वह था जो सूरा-2, अल-बक़रा की आयत-219 में आ चुका है। उसमें सिर्फ़ यह ज़ाहिर करके छोड़ दिया गया था कि शराब बुरी चीज़ है, अल्लाह को पसन्द नहीं है। चुनाँचे मुसलमानों में से एक गरोह उसके बाद ही शराब से बचने लगा था। मगर बहुत-से लोग इसे पहले ही की तरह इस्तेमाल करते रहे थे, यहाँ तक कि कभी कभार नशे की हालत ही में नमाज़ पढ़ने खड़े हो जाते थे और कुछ का कुछ पढ़ जाते थे। शायद सन चार हिजरी के शुरू में यह दूसरा हुक्म आया और नशे में नमाज़ पढ़ने से रोक दिया गया। इसका असर यह हुआ कि लोगों ने अपने शराब पीने के वक़्त बदल दिए और ऐसे वक़्तों में शराब पीनी छोड़ दी जिनमें यह डर होता कि कहीं नशे ही की हालत में नमाज़ का वक़्त न आ जाए। इसके कुछ दिनों बाद शराब के बिलकुल ही हराम किए जाने का हुक्म आया जो सूरा-5, अल-माइदा की आयत-90 और 91 में है।

यहाँ यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि आयत में अरबी शब्द 'सुक्र' आया है जिसके मानी नशे के हैं। इसलिए यह हुक्म सिर्फ़ शराब के लिए ख़ास नहीं था बल्कि हर नशीली करनेवाली चीज़ के लिए आम था और अब भी इसका हुक्म बाक़ी है। हालाँकि नशीली चीज़ों का इस्तेमाल अपने आप में हराम है, लेकिन नशे की हालत में नमाज़ पढ़ना दोहरा और बहुत बड़ा गुनाह है।

66. इसी वजह से नबी *(सल्ल०)* ने हिदायत फ़रमाई है कि जब किसी आदमी पर नींद का ग़लबा हो रहा हो और वह नमाज़ पढ़ने में बार-बार ऊँघ जाता हो तो उसे नमाज़ छोड़कर सो जाना चाहिए। कुछ लोग इस आयत से यह नतीजा निकालते हैं कि जो आदमी नमाज़ में पढ़ी जाने वाली अरबी इबारतों का मतलब नहीं समझता उसकी नमाज़ नहीं होती। लेकिन यह उनकी नामुनासिब और ज़बरदस्ती की दलील तो है ही, ख़ुद क़ुरआन के अलफ़ाज़ भी इसका साथ नहीं देते। क़ुरआन में 'हत्ता तफ़क़हू' या 'हत्ता तफ़हमू मा तक़ूलून' (यहाँ तक कि तुम समझ लो कि क्या कह रहे हो) नहीं फ़रमाया है, बल्कि "हत्ता तअ-लमु मा तक़ूलून" (जब तुम जानो कि क्या कह रहे हो।) कहा है, यानी नमाज़ में आदमी को इतना होश रहना चाहिए कि वह क्या चीज़ अपनी ज़बान से अदा कर रहा है। ऐसा न हो कि वह खड़ा तो हो नमाज़ पढ़ने और शुरू कर दे कोई ग़ज़ल।

مَا تَقُوْلُوْنَ وَلَا جُنُبًا اِلَّا عَابِرِىْ سَبِيْلٍ حَتّٰى
تَغْتَسِلُوْا ۚ وَاِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ
اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ النِّسَآءَ فَلَمْ
تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا فَامْسَحُوْا

और इसी तरह नापाकी[67] की हालत में भी नमाज़ के क़रीब न जाओ जब तक कि ग़ुस्ल न कर लो, यह और बात है कि रास्ते से गुज़रते हो[68] और अगर कभी ऐसा हो कि तुम बीमार हो या सफ़र में हो, या तुममें से कोई शख़्स ज़रूरत पूरी (पाख़ाना-पेशाब) करके आए या तुमने औरतों को हाथ लगाया हो[69] और फिर पानी न मिले तो पाक मिट्टी से

67. असल अरबी में लफ़्ज़ 'जुनुबन' इस्तेमाल हुआ है और 'जुनुबन' से बना लफ़्ज़ 'जनाबत' है 'जनाबत' के मानी दूरी और परायापन है। इसी से लफ़्ज़ अजनबी निकला है। इस्लामी शरीअत की इस्तिलाह (परिभाषा) में 'जनाबत' से मुराद वह नापाकी (गन्दगी) है जो शहवानी ज़रूरत पूरी करने के बाद या (किसी और तरीक़े के नतीजे में या) ख़ाब में निकल जाने से होती है, क्योंकि शरीअत की नज़र में ऐसा आदमी पाकी से दूर और बेगाना होता है, इसी लिए ऐसी हालत को जनाबत कहा जाता है।

68. फ़ुक़हा और क़ुरआन के मुफ़स्सिरों में से एक गरोह ने इस आयत का मतलब यह समझा है कि जनाबत (नापाकी) की हालत में मस्जिद में नहीं जाना चाहिए, यह और बात है कि किसी मस्जिद से गुज़रना हो। इसी राय को माननेवालों में अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद, अनस-बिन-मालिक, हसन बसरी और इबराहीम नख़ई वग़ैरा हैं। दूसरा गरोह इससे सफ़र मुराद लेता है। यानी अगर आदमी सफ़र की हालत में हो और नापाक (जनाबत की हालत में) हो जाए तो तयम्मुम किया जा सकता है। रहा मस्जिद का मामला तो इस गरोह की राय में नापाक (जुनबी) आदमी के लिए वुज़ू करके मस्जिद में बैठना जाइज़ है। यह राय हज़रत अली, अब्ने-अब्बास, सईद-बिन-जुबैर और कुछ दूसरे लोगों ने अपनाई है। हालाँकि इस मामले में लगभग सभी का इत्तिफ़ाक़ है कि अगर आदमी सफ़र की हालत में हो और नापाक हो जाए और नहाना मुमकिन न हो तो तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ सकता है। लेकिन पहला गरोह इस मसले को हदीस से लेता है और दूसरा गरोह इस रिवायत की बुनियाद क़ुरआन की ऊपर लिखी इस आयत पर रखता है।

69. असल अरबी आयत में जुमला 'औलामस्तुमुन्निसा-अ' इस्तेमाल हुआ है इसका हिन्दी तर्जमा 'तुमने औरतों को हाथ लगाया हो' किया गया है। इस मामले में इख़्तिलाफ़ है कि 'लम्स' यानी

بِوُجُوهِكُمْ وَاَيْدِيكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا غَفُورًا ﴿٤٣﴾

काम लो और उससे अपने चेहरों और हाथों पर मसह कर लो (हाथ फेर लो)।[70] बेशक अल्लाह नर्मी से काम लेनेवाला और माफ़ करनेवाला है।

हाथ लगाने से क्या मुराद है। हज़रत अली, इब्ने-अब्बास, अबू-मूसा अशअरी, उबई-बिन-कअब, सईद-बिन-जुबैर, हसन बसरी और कई दूसरे इमामों की राय यह है कि इस से मुराद मुबाशरत (सहवास Sexual intercourse) है और यही राय इमाम अबू-हनीफ़ा और उनके साथियों और इमाम सुफ़यान सौरी की है। इसके बरख़िलाफ़ हज़रत अब्दुल्लाह-इब्ने-मसऊद, अब्दुल्लाह-इब्ने-उमर की राय है और कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि हज़रत उमर-इब्ने-ख़त्ताब की भी यही राय है कि इससे मुराद छूना या हाथ लगाना है और इसी राए को इमाम शाफ़ई *(रह०)* ने अपनाया है। कुछ इमामों ने बीच की राह भी इख़्तियार की है। जैसे, इमाम मालिक *(रह०)* की राय है कि अगर औरत या मर्द एक दूसरे को शहवानी जज़्बात (काम-वासना) के साथ हाथ लगाएँ तो उनका वुज़ू ख़त्म हो जाएगा और नमाज़ के लिए उन्हें नया वुज़ू करना होगा, लेकिन अगर शहवानी जज़्बात के बग़ैर एक का जिस्म दूसरे से छू जाए तो इसमें कोई हरज नहीं।

70. हुक्म की तफ़सीली सूरत यह है कि अगर आदमी बे-वुज़ू है या उसे ग़ुस्ल की ज़रूरत है और पानी नहीं मिलता तो तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ सकता है। अगर मरीज़ है और ग़ुस्ल या वुज़ू करने से उसको नुक़सान का डर है तो पानी मौजूद होने के बावजूद तयम्मुम की इजाज़त से फ़ायदा उठा सकता है।

तयम्मुम का मतलब इरादा करना है। मतलब यह है कि जब पानी न मिले या पानी हो और उसका इस्तेमाल मुमकिन न हो तो (पाकी हासिल करने के लिए) पाक मिट्टी का इरादा करो (यानी पाक मिट्टी से काम लो)।

तयम्मुम के तरीक़े के बारे में फ़ुक़हा के दर्मियान इख़्तिलाफ़ है। एक गरोह के नज़दीक इसका तरीक़ा यह है कि एक बार मिट्टी पर हाथ मारकर मुँह पर फेर लिया जाए, फिर दूसरी बार हाथ मारकर कुहनियों तक हाथों पर फेर लिया जाए। इमाम अबू-हनीफ़ा, इमाम शाफ़ई, इमाम मालिक और ज़्यादातर फ़ुक़हा इसी तरीक़े को मानते हैं और सहाबा *(रज़ि०)* और ताबिईन में से हज़रत अली, अब्दुल्लाह-बिन-उमर, हसन बसरी, शअबी और सालिम-बिन-अब्दुल्लाह वग़ैरा इसी तरीक़े के क़ायल थे। दूसरे गरोह के नज़दीक मिट्टी पर एक बार ही हाथ मारना काफ़ी है। वही हाथ मुँह पर भी फेर लिया जाए और उसी को कलाई तक हाथों पर भी फेर लिया जाए। कुहनियों तक मसह करने यानी हाथ फेरने की ज़रूरत नहीं है। इसी तरीक़े को अता और मकहूल और औज़ाई और अहमद-बिन-हंबल *(रह०)* मानते हैं और आम तौर पर अहले-हदीस हज़रात भी इसी तरीक़े को मानते हैं।

तयम्मुम के लिए ज़रूरी नहीं कि ज़मीन ही पर हाथ मारा जाए। इस मक़सद के लिए हर धूल से अटी चीज़ और हर चीज़ जिसमें ज़मीन के सूखे कण (अजज़ा) मौजूद हों काफ़ी है।

اَلَمۡ تَرَ اِلَى الَّذِيۡنَ اُوۡتُوۡا نَصِيۡبًا مِّنَ الۡكِتٰبِ
يَشۡتَرُوۡنَ الضَّلٰلَةَ وَيُرِيۡدُوۡنَ اَنۡ تَضِلُّوا السَّبِيۡلَ ۞
وَاللّٰهُ اَعۡلَمُ بِاَعۡدَآئِكُمۡ ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَلِيًّا ۙ وَّكَفٰى
بِاللّٰهِ نَصِيۡرًا ۞ مِنَ الَّذِيۡنَ هَادُوۡا يُحَرِّفُوۡنَ

(44) तुमने उन लोगों को भी देखा जिन्हें किताब के इल्म का कुछ हिस्सा दिया गया है?[71] वे ख़ुद गुमराही के ख़रीदार बने हुए हैं और चाहते हैं कि तुम भी गुमराह हो जाओ। (45) अल्लाह तुम्हारे दुश्मनों को ख़ूब जानता है और तुम्हारी हिमायत व मददगारी के लिए अल्लाह ही काफ़ी है। (46) जो लोग यहूदी बन गए हैं[72] उनमें कुछ

कुछ लोग एतिराज़ करते हैं कि इस तरह मिट्टी पर हाथ मारकर मुँह और हाथों पर फेर लेने से आख़िर पाकी किस तरह हासिल हो सकती है। लेकिन हक़ीक़त में यह आदमी के अन्दर पाकी का एहसास और नमाज़ का एहतिराम क़ायम रखने के लिए एक अहम नफ़सियाती (मनोवैज्ञानिक) तदबीर है। इससे फ़ायदा यह है कि आदमी चाहे कितनी ही मुद्दत तक पानी के इस्तेमाल पर क़ुदरत न रखता हो बहरहाल उसके अन्दर पाकी का एहसास बाक़ी रहेगा, पाकी के जो क़ानून शरीअत में मुक़र्रर कर दिए गए हैं उनकी पाबन्दी वह बराबर करता रहेगा और उसके मन से नमाज़ के क़ाबिल होने की हालत और नमाज़ के क़ाबिल न होने की हालत का फ़र्क़ कभी मिट न सकेगा।

71. अहले-किताब के आलिमों के बारे में क़ुरआन ने अकसर ये लफ़्ज़ इस्तेमाल किए हैं कि "इन्हें किताब के इल्म का कुछ हिस्सा दिया गया है।" इसकी वजह यह है कि एक तो उन्होंने अल्लाह की किताब का एक हिस्सा गुम कर दिया था। फिर जो कुछ अल्लाह की किताब में से उनके पास मौजूद था उसकी रूह और उसके मक़सद से भी वे बेगाना हो चुके थे। उनकी तमाम दिलचस्पियाँ लफ़्ज़ी बहसों और अहकाम की छोटी-छोटी बातों और अक़ीदों की फ़लसफ़ियाना (दार्शनिक) पेचीदगियों तक महदूद थीं। यही वजह थी कि वे दीन की हक़ीक़त से अनजान और दीनदारी के जौहर से ख़ाली थे। हालाँकि वे दीन के आलिम और मिल्लत के रहनुमा व पेशवा कहे जाते थे।

72. यह नहीं कहा कि 'यहूदी हैं' बल्कि यह कहा कि 'यहूदी बन गए हैं' क्योंकि शुरू में तो वे भी मुसलमान ही थे, जिस तरह हर नबी की उम्मत असल में मुसलमान होती है, मगर बाद में वे सिर्फ़ यहूदी बनकर रह गए।

الْكَلِمَ عَنْ مَّوَاضِعِهٖ وَيَقُوْلُوْنَ سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا
وَاسْمَعْ غَيْرَ مُسْمَعٍ وَّرَاعِنَا لَيًّا بِاَلْسِنَتِهِمْ وَطَعْنًا
فِي الدِّيْنِ ؕ وَلَوْ اَنَّهُمْ قَالُوْا سَمِعْنَا وَ اَطَعْنَا
وَاسْمَعْ وَانْظُرْنَا لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ وَاَقْوَمَ ۙ وَ

लोग हैं जो लफ़्ज़ों को उनकी जगह से फेर देते हैं[73] और दीने-हक़ के ख़िलाफ़ चोट करने के लिए अपनी ज़बानों को तोड़-मरोड़कर कहते हैं, 'समिअना व असैना'[74] (हमने सुना, लेकिन हम मानते नहीं) और 'इस्मअ ग़ैर-मुस्मइन'[75] (सुनिए, आप ऐसे नहीं कि कोई सुनाए) और 'राअिना'[76] (हमारी रिआयत करो), हालाँकि अगर वे कहते 'समिअना व अतअना' (हमने सुना और माना) और 'इस्मअ' (सुनिए) और 'उनज़ुरना' (हमारी तरफ़ ध्यान दें) तो यह उन्हीं के लिए बेहतर था और ज़्यादा सच्चाई का तरीक़ा था, मगर

73. इसके तीन मतलब हैं। एक यह कि अल्लाह की किताब के अलफ़ाज़ में फेर-बदल करते हैं। दूसरे यह कि अपनी तावीलों (मनमानी व्याख्या) से किताब की आयतों के मतलब कुछ से कुछ बना देते हैं। तीसरे यह कि ये लोग मुहम्मद *(सल्ल०)* और आपके माननेवालों की मजलिसों में आकर उनकी बातें सुनते हैं और वापस जाकर लोगों के सामने ग़लत तरीक़े से बयान करते हैं। बात कुछ कही जाती है और वे उसे अपनी शरारत से कुछ का कुछ बनाकर लोगों में मशहूर करते हैं, ताकि उन्हें बदनाम किया जाए और उनके बारे में ग़लतफ़हमियाँ फैलाकर लोगों को इस्लामी जमाअत की तरफ़ आने से रोका जाए।

74. यानी जब उन्हें ख़ुदा के अहकाम सुनाए जाते हैं तो ज़ोर से कहते हैं 'समिअना' (हमने सुन लिया) और धीरे से कहते हैं 'असैना' (हमने क़बूल नहीं किया)। या 'अतअना' (हमने क़बूल किया) को इस अन्दाज़ से ज़बान को लचका देकर अदा करते हैं कि 'असैना' (हमने क़बूल नहीं किया) बन जाता है।

75. यानी बातचीत के दौरान में जब वे कोई बात मुहम्मद *(सल्ल०)* से कहना चाहते हैं तो कहते हैं 'इस्मअ' (सुनिए) और फिर साथ ही 'ग़ै-र मुस्मइन' भी कहते हैं, जिसके दो मतलब हैं। इसका एक मतलब यह है कि आप ऐसे मुहतरम हैं कि आपको कोई बात मर्ज़ी के ख़िलाफ़ नहीं सुनाई जा सकती। दूसरा मतलब यह है कि तुम इस क़ाबिल नहीं हो कि तुम्हें कोई कुछ सुनाए। एक और मतलब यह है कि ख़ुदा करे तुम बहरे हो जाओ।

76. इसकी तशरीह (व्याख्या) के लिए देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-108।

لٰكِنْ لَّعَنَهُمُ اللّٰهُ بِكُفْرِهِمْ فَلَا يُؤْمِنُوْنَ اِلَّا قَلِيْلًا ۝٤٦
يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ اٰمِنُوْا بِمَا نَزَّلْنَا
مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ نَّطْمِسَ
وُجُوْهًا فَنَرُدَّهَا عَلٰۤى اَدْبَارِهَاۤ اَوْ نَلْعَنَهُمْ كَمَا
لَعَنَّاۤ اَصْحٰبَ السَّبْتِ ؕ وَكَانَ اَمْرُ اللّٰهِ مَفْعُوْلًا ۝٤٧
اِنَّ اللّٰهَ لَا يَغْفِرُ اَنْ يُّشْرَكَ بِهٖ وَيَغْفِرُ مَا دُوْنَ

उनपर तो उनकी बातिल-परस्ती (असत्यवादिता) की वजह से अल्लाह की फिटकार पड़ी हुई है, इसलिए वे कम ही ईमान लाते हैं।

(47) ऐ वे लोगो जिन्हें किताब दी गई थी, मान लो उस किताब को जो हमने अब उतारी है और जो उस किताब की तसदीक़ और ताईद करती है जो तुम्हारे पास पहले से मौजूद[77] थी। इस पर ईमान ले आओ इससे पहले कि हम चेहरे बिगाड़कर पीछे फेर दें या उनको उसी तरह फिटकारा हुआ कर दें जिस तरह सब्त (सनीचर) वालों के साथ हमने किया था,[78] और याद रखो कि अल्लाह का हुक्म लागू होकर रहता है। (48) अल्लाह बस शिर्क (साथी/बनाने) ही को माफ़ नहीं करता,[79] इसके सिवा दूसरे जितने गुनाह हैं, वह जिसके लिए चाहता है माफ़ कर देता है।[80] अल्लाह के साथ जिसने किसी और को

77. तशरीह के लिए देखें सूरा-3, आले-इमरान, हाशिया-2।
78. देखें सूरा-2, अल-बक़रा, टिप्पणी-82 और 83।
79. यह इसलिए कहा कि अहले-किताब हालाँकि नबियों और आसमानी किताबों की पैरवी के दावेदार थे मगर शिर्क में पड़ गए थे।
80. इसका मतलब यह नहीं है कि आदमी बस शिर्क न करे बाक़ी दूसरे गुनाह दिल खोलकर करता रहे; बल्कि असल में इसका मक़सद यह बात ज़ेहन में बिठाना है कि शिर्क, जिसको इन लोगों ने बहुत मामूली चीज़ समझ रखा था, तमाम गुनाहों से बड़ा गुनाह है। यहाँ तक कि और गुनाहों की माफ़ी तो मुमकिन है, मगर यह ऐसा गुनाह है कि माफ़ नहीं किया जा सकता। यहूदी आलिम शरीअत के छोटे-छोटे अहकाम का तो बड़ा ख़्याल रखते थे बल्कि उनका सारा वक़्त उन्हीं छोटी-छोटी बातों की नाप-तौल ही में गुज़रता था जो उनके फ़क़ीहों ने ज़बरदस्ती खोज-

ذٰلِكَ لِمَنْ يَّشَآءُ ۚ وَمَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَقَدِ افْتَرٰۤى
اِثْمًا عَظِيْمًا ۝٤٨ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ يُزَكُّوْنَ اَنْفُسَهُمْ ؕ
بَلِ اللّٰهُ يُزَكِّيْ مَنْ يَّشَآءُ وَلَا يُظْلَمُوْنَ فَتِيْلًا ۝٤٩
اُنْظُرْ كَيْفَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ ؕ وَكَفٰى
بِهٖۤ اِثْمًا مُّبِيْنًا ۝٥٠ ع اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ اُوْتُوْا
نَصِيْبًا مِّنَ الْكِتٰبِ يُؤْمِنُوْنَ بِالْجِبْتِ وَالطَّاغُوْتِ

साझी ठहराया उसने तो बहुत ही बड़ा झूठ रचा और बड़े सख़्त गुनाह की बात की।

(49) तुमने उन लोगों को भी देखा जो अपने नफ़्स की पाकीज़गी का बहुत दम भरते हैं? हालाँकि पाकीज़गी (पवित्रता) तो अल्लाह ही जिसे चाहता है अता करता है और (इन्हें जो पाकीज़गी नहीं मिलती तो हक़ीक़त में) इनपर ज़र्रा बराबर भी ज़ुल्म नहीं किया जाता। (50) देखो तो सही, ये अल्लाह पर भी झूठा इलज़ाम घड़ने से नहीं चूकते और इनके खुले गुनाहगार होने के लिए यही एक गुनाह काफ़ी है।

(51) क्या तुमने उन लोगों को नहीं देखा जिन्हें किताब के इल्म में से कुछ हिस्सा दिया गया है और उनका हाल यह है कि जिब्त[81] और ताग़ूत[82] को मानते हैं और (हक़

खोजकर निकाले थे, मगर शिर्क उनकी निगाह में ऐसा हल्का काम था कि न ख़ुद उससे बचने की फ़िक्र करते थे, न अपनी क़ौम को इन मुशरिकाना ख़्यालों और कामों से बचाने की कोशिश करते और न मुशरिकों की दोस्ती और हिमायत ही में उन्हें कोई हरज नज़र आता था।

81. अरबी लफ़्ज़ 'जिब्त' के असली मानी बेहक़ीक़त, बेअसूल और बेफ़ायदा चीज़ के हैं। इस्लाम की ज़बान में जादू, कहानत (ज्योतिष), फ़ालगीरी, टोने-टोटके, शगुन, मुहूर्त और तमाम दूसरे अन्धविश्वास की ख़याली बातों को जिब्त कहा गया है। चुनाँचे हदीस में आया है कि जानवरों की आवाज़ों से फ़ाल लेना, ज़मीन पर जानवरों के क़दमों के निशानों से शगुन निकालना और फ़ालगीरी के दूसरे तरीक़े सब जिब्त की क़िस्म ही के काम हैं। तो जिब्त का मतलब वही है जिसे हम उर्दू-हिन्दी में औहाम या अन्धविश्वास कहते हैं और जिसके लिए अंग्रेज़ी में Superstitions का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया जाता है।

82. तशरीह के लिए देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-286 और 288।

وَيَقُولُونَ لِلَّذِينَ كَفَرُوا هَٰؤُلَاءِ أَهْدَىٰ مِنَ
الَّذِينَ آمَنُوا سَبِيلًا ﴿٥١﴾ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ لَعَنَهُمُ
اللَّهُ ۖ وَمَن يَلْعَنِ اللَّهُ فَلَن تَجِدَ لَهُ نَصِيرًا ﴿٥٢﴾
أَمْ لَهُمْ نَصِيبٌ مِّنَ الْمُلْكِ فَإِذًا لَّا يُؤْتُونَ
النَّاسَ نَقِيرًا ﴿٥٣﴾ أَمْ يَحْسُدُونَ النَّاسَ عَلَىٰ
مَا آتَاهُمُ اللَّهُ مِن فَضْلِهِ ۖ فَقَدْ آتَيْنَا آلَ

का) इनकार करनेवालों के बारे में कहते हैं कि ईमान लानेवालों से तो यही ज़्यादा सही रास्ते पर हैं।[83] (52) ऐसे ही लोग हैं जिनपर अल्लाह ने लानत की है और जिसपर अल्लाह लानत कर दे फिर तुम उसका कोई मददगार नहीं पाओगे। (53) क्या हुकूमत में उनका कोई हिस्सा है? अगर ऐसा होता तो ये दूसरों को एक फूटी कौड़ी तक न देते।[84] (54) फिर क्या ये दूसरों से इसलिए जलन रखते हैं कि अल्लाह ने उन्हें अपने फ़ज़्ल से नवाज़ दिया है।[85] अगर यह बात है तो उन्हें मालूम हो कि हमने तो इबराहीम की

83. यहूदी आलिमों की हठधर्मी यहाँ तक पहुँच गई थी कि जो लोग मुहम्मद *(सल्ल०)* पर ईमान लाए थे उनको वे अरब के मुशरिकों के मुक़ाबले में ज़्यादा गुमराह बताते थे और कहते थे कि उनसे तो ये मुशरिक ही ज़्यादा सीधे रास्ते पर हैं। हालाँकि वे साफ़ तौर पर देख रहे थे कि एक तरफ़ तो ख़ालिस तौहीद (विशुद्ध एकेश्वरवाद) है, जिसमें शिर्क का निशान तक नहीं और दूसरी तरफ़ खुली बुतपरस्ती है जिसको पूरी बाइबिल में बुराई कहा गया है।

84. यानी क्या ख़ुदा की हुकूमत का कोई हिस्सा इनके क़ब्ज़े में है कि ये फ़ैसला करने चले हैं कि कौन सीधे रास्ते पर है और कौन नहीं? अगर ऐसा होता तो इनके हाथों दूसरों को एक फूटी कौड़ी भी न मिलती। क्योंकि इनके दिल तो इतने छोटे हैं कि ये हक़ को तसलीम तक नहीं कर सकते। दूसरा मतलब यह भी हो सकता है कि क्या इनके पास किसी देश की हुकूमत है कि उसमें दूसरे लोग हिस्सा बटाना चाहते हैं और ये उन्हें इसमें से कुछ नहीं देना चाहते? यहाँ तो सिर्फ़ हक़ को तसलीम करने का सवाल सामने है और इसमें भी ये कंजूसी से काम ले रहे हैं।

85. यानी ये अपनी नालायक़ी के बावजूद अल्लाह के जिस फ़ज़्ल और जिस इनाम की आस ख़ुद लगाए बैठे थे, उसे जब दूसरे लोगों को दे दिया गया और अरब के उम्मियों (अनपढ़ों) में एक

اِبْرٰهِيْمَ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَاٰتَيْنٰهُمْ مُّلْكًا عَظِيْمًا ۝٥٤
فَمِنْهُمْ مَّنْ اٰمَنَ بِهٖ وَمِنْهُمْ مَّنْ صَدَّ عَنْهُ ط
وَكَفٰى بِجَهَنَّمَ سَعِيْرًا ۝٥٥ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِنَا
سَوْفَ نُصْلِيْهِمْ نَارًا ط كُلَّمَا نَضِجَتْ جُلُوْدُهُمْ
بَدَّلْنٰهُمْ جُلُوْدًا غَيْرَهَا لِيَذُوْقُوا الْعَذَابَ ط اِنَّ

औलाद को किताब और हिकमत (सूझ-बूझ) दी और मुल्के-अज़ीम (महान राज्य) बख़्श दिया[86] (55) मगर उनमें से कोई इस पर ईमान लाया और कोई इससे मुँह मोड़ गया,[87] और मुँह मोड़नेवालों के लिए तो बस जहन्नम की भड़कती हुई आग ही काफ़ी है। (56) जिन लोगों ने हमारी आयतों को मानने से इनकार कर दिया है उन लोगों को हम यक़ीनन आग में झोंकेंगे और जब उनके बदन की खाल गल जाएगी तो उसकी जगह दूसरी खाल पैदा कर देंगे, ताकि वे ख़ूब अज़ाब का मज़ा चखें। अल्लाह बड़ी क़ुदरत

अज़ीमुश्शान नबी के आने से वह रूहानी (आध्यात्मिक) व अख़लाक़ी और ज़ेहनी व अमली ज़िन्दगी पैदा हो गई जिसका लाज़िमी नतीजा तरक़्क़ी और सरबुलन्दी है तो अब ये उस पर जल रहे हैं और ये बातें इसी जलन की वजह से उनके मुँह से निकल रही हैं।

86. 'मुल्के-अज़ीम' (महान राज्य) से मुराद दुनिया की इमामत व रहनुमाई और पूरी दुनिया की क़ौमों पर क़ाइदाना इक़्तिदार है जो अल्लाह की किताब का इल्म पाने और इस इल्म व हिकमत (तत्त्वदर्शिता) के मुताबिक़ अमल करने से लाज़िमी तौर पर हासिल होता है।

87. याद रहे कि यहाँ जवाब बनी-इसराईल की हसद और जलन से भरी हुई बातों का दिया जा रहा है। इस जवाब का मतलब यह है कि तुम लोग आख़िर जलते किस बात पर हो? तुम भी इबराहीम की औलाद हो और ये बनी-इसमाईल भी इबराहीम ही की औलाद हैं। इबराहीम से दुनिया की इमामत (नेतृत्व) का जो वादा हमने किया था वह इबराहीम की औलाद में से सिर्फ़ उन लोगों के लिए था जो हमारी भेजी हुई किताब और हिकमत (तत्त्वदर्शिता) की पैरवी करें। यह किताब और हिकमत पहले हमने तुम्हारे पास भेजी थी मगर तुम्हारी अपनी नालायक़ी थी कि तुम इससे मुँह मोड़ गए। अब वही चीज़ हमने बनी-इसमाईल को दी है और यह उनकी ख़ुशनसीबी है कि वे इस पर ईमान ले आए हैं।

اللّٰهَ كَانَ عَزِيْزًا حَكِيْمًا ﴿٥٦﴾ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا
الصّٰلِحٰتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا
الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ اَبَدًا ؕ لَهُمْ فِيْهَآ اَزْوَاجٌ
مُّطَهَّرَةٌ ۫ وَّنُدْخِلُهُمْ ظِلًّا ظَلِيْلًا ﴿٥٧﴾ اِنَّ اللّٰهَ
يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰٓى اَهْلِهَا ۙ وَاِذَا
حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ ؕ اِنَّ

रखता है और अपने फ़ैसलों को अमल में लाने की हिकमत ख़ूब जानता है। (57) और जिन लोगों ने हमारी आयतों को मान लिया और नेक अमल किए उनको हम ऐसे बाग़ों में दाख़िल करेंगे जिनके नीचे नहरें बहती होंगी, जहाँ वे हमेशा-हमेशा रहेंगे और उनको पाकीज़ा बीवियाँ मिलेंगी और उन्हें हम घनी छाओं में रखेंगे।

(58) मुसलमानो! अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि अमानतें अमानतवालों के सुपुर्द करो और जब लोगों के बीच फ़ैसला करो तो इनसाफ़ के साथ करो,[88] अल्लाह तुमको

88. यानी तुम उन बुराइयों से बचे रहना जिनमें बनी-इसराईल पड़ गए हैं। बनी-इसराईल की बुनियादी ग़लतियों में से एक यह थी कि उन्होंने अपने ज़वाल (पतन) के ज़माने में अमानतें, यानी ज़िम्मेदारी के मनसब और मज़हबी पेशवाई और क़ौमी सरदारी के मर्तबे (Position of Trust) ऐसे लोगों को देने शुरू कर दिए जो इसके लायक़ नहीं थे और नालायक़, ओछे, बदअख़लाक़, व बेईमान और बदकार थे। नतीजा यह हुआ कि बुरे लोगों की रहनुमाई में सारी क़ौम ख़राब होती चली गई। मुसलमानों को हिदायत की जा रही है कि तुम ऐसा न करना बल्कि अमानतें उन लोगों के सुपुर्द करना जो उनके लायक़ (योग्य) हों, यानी जिनमें अमानत का भार उठाने की सलाहियत हो। बनी-इसराईल की दूसरी बड़ी कमज़ोरी यह थी कि वे इनसाफ़ की रूह से ख़ाली हो गए थे। वे निजी और क़ौमी फ़ायदों के लिए बेझिझक ईमान निगल जाते थे। खुली हठधर्मी बरत जाते थे। इनसाफ़ के गले पर छुरी फेरने में उन्हें ज़रा भी झिझक नहीं होती थी। उनकी बेइनसाफ़ी का सबसे कड़ुवा तर्जुबा उस ज़माने में ख़ुद मुसलमानों को हो रहा था।

اللهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ بِهٖ ؕ اِنَّ اللهَ كَانَ سَمِيْعًا
بَصِيْرًا ۝۵۸ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَطِيْعُوا اللهَ وَ
اَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ وَ اُولِى الْاَمْرِ مِنْكُمْ ۚ فَاِنْ
تَنَازَعْتُمْ فِيْ شَيْءٍ فَرُدُّوْهُ اِلَى اللهِ وَ الرَّسُوْلِ

निहायत अच्छी नसीहत करता है और यक़ीनन अल्लाह सब कुछ सुनता और देखता है।

(59) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! बात मानो अल्लाह की और बात मानो रसूल की और उन लोगों की जो तुममें से हुक्म देने का अधिकार रखते हों। फिर अगर तुम्हारे बीच किसी मामले में झगड़ा हो जाए तो उसे अल्लाह और रसूल की तरफ़ फेर दो।[89] अगर

एक तरफ़ उनके सामने अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल०)* और उन पर ईमान लोनेवालों की पाकीज़ा ज़िन्दगियाँ थीं। दूसरी तरफ़ वे लोग थे जो बुतों को पूज रहे थे, बेटियों को ज़िन्दा गाड़ते थे, सौतेली माँओं तक से निकाह कर लेते थे और काबा के चारों तरफ़ बिलकुल नंगे होकर तवाफ़ करते थे। ये सिर्फ़ नाम के किताबवाले इनमें से दूसरे गरोह को पहले गरोह पर तरजीह (प्राथमिकता) देते थे और उनको यह कहते हुए ज़रा शर्म न आती थी कि पहले गरोह के मुक़ाबले में यह दूसरा गरोह ज़्यादा सही रास्ते पर है। अल्लाह उनकी इस बेइनसाफ़ी पर ख़बरदार करने के बाद अब मुसलमानों को हिदायत करता है कि तुम कहीं ऐसे बेइनसाफ़ न बन जाना। चाहे किसी से दोस्ती हो या दुश्मनी, बहरहाल बात जब कहो इनसाफ़ की कहो और फ़ैसला जब करो इनसाफ़ के साथ करो।

89. यह आयत इस्लाम के पूरे मज़हबी, समाजी, तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और सियासी निज़ाम की बुनियाद और इस्लामी हुकूमत के दस्तूर की सबसे पहली दफ़ा है। इसमें नीचे लिखे चार उसूल मुस्तक़िल तौर पर (स्थाई रूप से) बयान कर दिए गए हैं—

(1) इस्लामी निज़ाम में असूल इताअत अल्लाह की है। एक मुसलमान सबसे पहले अल्लाह का बन्दा है, बाक़ी जो कुछ भी है उसके बाद है। मुसलमान की इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) ज़िन्दगी और मुसलमानों के समाजी निज़ाम दोनों का मरकज़ और धुरी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी और वफ़ादारी है। दूसरी फ़रमाँबरदारियाँ और वफ़ादारियाँ सिर्फ़ इस सूरत में क़बूल की जाएँगी कि वे ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी और वफ़ादारी के ख़िलाफ़ न हों, बल्कि उसके तहत और उसकी फ़रमाँबरदारी के अन्दर रहते हुए हों। वरना फ़रमाँबरदारी का वह फन्दा तोड़कर फेंक दिया जाएगा जो इस असूली और बुनियादी फ़रमाँबरदारी के ख़िलाफ़ हो। यही बात है जिसे नबी

(सल्ल०) ने इस तरह बयान की है कि ख़ालिक़ (स्रष्टा) की नाफ़रमानी में किसी मख़लूक़ के लिए कोई इताअत नहीं है।

(2) इस्लामी निज़ाम की दूसरी बुनियाद रसूल की इताअत है। यह अपने-आप में कोई मुस्तक़िल (स्थायी) इताअत नहीं है बल्कि अल्लाह की इताअत की एक ही अमली सूरत है। रसूल की इताअत इसलिए ज़रूरी है कि वही एक भरोसेमन्द ज़रीआ है जिससे हम तक ख़ुदा के हुक्म और फ़रमान पहुँचते हैं। हम ख़ुदा की इताअत सिर्फ़ इसी तरीक़े से कर सकते है कि रसूल की इताअत करें। ख़ुदा की कोई फ़रमाँबरदारी सही मानों में उस वक़्त तक नही की जा सकती जब तक रसूल के ज़रीए से वह साबित न हो। और रसूल की पैरवी से मुँह मोड़ना ख़ुदा के ख़िलाफ़ बग़ावत है। इसी बात को यह हदीस वाज़ेह करती है। अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद *(सल्ल०)* ने कहा, "जिसने मेरी इताअत की उसने ख़ुदा की इताअत की और जिसने मेरी नाफ़रमानी की उसने ख़ुदा की नाफ़रमानी की।" और यही बात ख़ुद क़ुरआन में भी वाज़ेह तौर पर बयान की गई है जो आगे आ रही है।

(3) ऊपर बयान की गई दोनों इताअतों के बाद और उनके मातहत तीसरी इताअत जो इस्लामी निज़ाम में मुसलमानों पर वाजिब है वह उन 'ज़िम्मेदारों' की इताअत है जो ख़ुद मुसलमानों में से हों। 'उलुल-अम्र' के मानी में वे सब लोग शामिल हैं जो मुसलमानों के इज्तिमाई और समाजी मामलों के ज़िम्मेदार हों, चाहे वे ज़ेहनी और फ़िक्री रहनुमाई करनेवाले उलमा हों या सियासी रहनुमाई करनेवाले लीडर या मुल्की इन्तिज़ाम करनेवाले हाकिम या अदालती फ़ैसले करनेवाले जज या तमद्दुनी (संस्कृतिक) और समाजी मामलों में क़बीलों और बस्तियों और मुहल्लों की सरबराही करनेवाले बुज़ुर्ग और सरदार। मक़सद यह कि जो जिस हैसियत से भी मुसलमानों के मामलों का ज़िम्मेदार है इस बात का हक़दार है कि उसकी बात मानी जाए। उसकी मुख़ालफ़त और उससे झगड़कर मुसलमानों की इज्तिमाई ज़िन्दगी में ख़लल डालना ठीक नहीं है। शर्त यह है कि वह ख़ुद मुसलमानों के गरोह में से हो और ख़ुदा और रसूल का फ़रमाँबरदार हो। ये दोनों शर्तें इस इताअत के लिए लाज़िमी शर्तें हैं और ये न सिर्फ़ इस आयत में साफ़ तौर पर दर्ज हैं, बल्कि हदीस में भी नबी *(सल्ल०)* ने इनको पूरी तफ़सील के साथ वाज़ेह तौर पर बयान कर दिया है। मिसाल के तौर पर नीचे ये हदीसें देखें—

"मुसलमान को लाज़िम है कि अपने 'उलुल-अम्र' (ज़िम्मेदार) की बात सुने और माने, चाहे उसे पसन्द हो या नापसन्द, उस वक़्त तक जब तक कि उसे अल्लाह की नाफ़रमानी का हुक्म न दिया जाए और जब उसे अल्लाह की नाफ़रमानी का हुक्म दिया जाए, तो फिर उसे न कुछ सुनना चाहिए और न मानना चाहिए।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

"ख़ुदा और रसूल की नाफ़रमानी में कोई इताअत नहीं है। इताअत जो कुछ भी है 'मारूफ़' यानी भलाई के कामों में है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया : तुम पर ऐसे लोग भी हुकूमत करेंगे जिनकी कुछ बातों को तुम मारूफ़ यानी भली पाओगे और कुछ बातों को मुनकर यानी बुरी। तो जिसने उनकी बुरी बातों

पर नाराज़गी ज़ाहिर की वह अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो गया और जिसने उनको नापसन्द किया वह भी बच गया। मगर जो उनपर राज़ी हुआ और पैरवी करने लगा उसकी पकड़ होगी। सहाबा *(रज़ि०)* ने पूछा कि फिर जब ऐसे हाकिमों का दौर आए तो क्या हम उनसे जंग न करें? आप *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि नहीं, जब तक कि वे नमाज़ पढ़ते रहें। (हदीस : मुस्लिम)

यानी नमाज़ का छोड़ना वह अलामत होगी जिससे साफ़ तौर पर मालूम हो जाएगा कि वे अल्लाह और रसूल की इताअत से बाहर हो गए हैं और फिर उनके ख़िलाफ़ जिद्दो-जुहद करना सही होगा।

नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया : तुम्हारे बदतरीन सरदार (हाकिम) वे हैं जो तुम्हारे लिए नापसन्द हों और तुम उनके लिए नापसन्द हो। तुम उनपर लानत करो और वे तुमपर लानत करें। सहाबा *(रज़ि०)* ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! जब यह सूरत हो तो क्या हम उनके मुक़ाबले पर न उठें? नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि नहीं, जब तक वे तुम्हारे बीच नमाज़ क़ायम करते रहें। नहीं, जब तक वे तुम्हारे बीच नमाज़ क़ायम करते रहें। (हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस में ऊपरवाली शर्त को और ज़्यादा वाज़ेह कर दिया गया है। ऊपर की हदीस से गुमान हो सकता था कि अगर वे अपनी निजी ज़िन्दगी में नमाज़ के पाबन्द हों तो उनके ख़िलाफ़ बग़ावत नहीं की जा सकती। लेकिन यह हदीस बताती है कि नमाज़ पढ़ने से मुराद असल में मुसलमानों की जमाअती ज़िन्दगी में नमाज़ का निज़ाम क़ायम करना है। यानी सिर्फ़ यही काफ़ी नहीं है कि वे लोग ख़ुद नमाज़ के पाबन्द हों, बल्कि साथ ही यह भी ज़रूरी है कि उनके तहत हुकूमत का जो निज़ाम चल रहा हो वह कम से कम नमाज़ को क़ायम करने का इन्तिज़ाम करे। यह इस बात की पहचान होगी कि उनकी हुकूमत अपनी उसूली शक्ल के लिहाज़ से एक इस्लामी हुकूमत है। वरना अगर यह भी न हो तो फिर इसके मानी ये होंगे कि वह हुकूमत इस्लाम से फिर चुकी है और उसे उलट फेंकने की कोशिश करना मुसलमानों के लिए जाइज़ हो जाएगा। इसी बात को एक और रिवायत में इस तरह बयान किया गया है कि नबी *(सल्ल०)* ने हमसे और बातों के साथ-साथ इस बात का भी वादा लिया कि "हम अपने सरदारों और हाकिमों से झगड़ा नहीं करेंगे, सिवाय इसके कि हम उनके कामों में खुला-खुला कुफ़्र (ख़ुदा की नाफ़रमानी) देखें जिसकी मौजूदगी में उनके ख़िलाफ़ हमारे पास ख़ुदा के सामने पेश करने के लिए दलील मौजूद हो।" (हदीस : मुस्लिम, बुख़ारी)

(4) चौथी बात जो इस आयत में एक मुस्तक़िल (स्थायी) और क़तई उसूल के तौर पर तय कर दी गई है, यह है कि इस्लामी निज़ाम में ख़ुदा का हुक्म और रसूल का तरीक़ा बुनियादी क़ानून और आख़िरी सनद (Final Authority) की हैसियत रखता है। मुसलमानों के बीच या हुकूमत और जनता के बीच जिस मसले में भी इख़्तिलाफ़ होगा उसमें फ़ैसले के लिए क़ुरआन और सुन्नत की तरफ़ रुजू किया जाएगा और जो फ़ैसला वहाँ से हासिल होगा उसको सब तसलीम करेंगे। इस तरह ज़िन्दगी के तमाम मामलों में अल्लाह की किताब और अल्लाह के रसूल की सुन्नत को सनद (प्रमाण) तसलीम करना और इस बात को तसलीम करना कि सारे मामलों में

إِنْ كُنْتُمْ تُؤْمِنُونَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۚ ذٰلِكَ
خَيْرٌ وَّاَحْسَنُ تَاْوِيْلًا ﴿٥٩﴾ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ ع

तुम हक़ीक़त में अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हो। काम करने का यही एक सही तरीक़ा है और अंजाम के लिहाज़ से भी बेहतर है।[90]

उन्हीं की तरफ़ रुजू किया जाएगा और अल्लाह की किताब और अल्लाह के रसूल की सुन्नत को आख़िरी बात तसलीम करना इस्लामी निज़ाम की वह लाज़िमी ख़ुसूसियत है जो उसे ग़ैर-इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी से अलग करती है। जिस निज़ाम में यह चीज़ न पाई जाए वह यक़ीनी तौर पर एक ग़ैर-इस्लामी निज़ाम है।

इस मौक़े पर कुछ लोग यह शुब्हा (सन्देह) ज़ाहिर करते हैं कि ज़िन्दगी के तमाम मामलों में फ़ैसले के लिए अल्लाह की किताब और अल्लाह के रसूल *(सल्ल०)* की सुन्नत की तरफ़ कैसे रुजू किया जा सकता है? जबकि म्युनिसपेलिटी, रेलवे और डाक ख़ानों वग़ैरा के क़ानून-ज़ाब्ते और ऐसे ही बेशुमार मामलों के अहकाम वहाँ सिरे से मौजूद ही नहीं हैं। लेकिन हक़ीक़त में यह शुब्हा दीन के उसूल को न समझने से पैदा होता है। मुसलमान को जो चीज़ ग़ैर-मुस्लिम से अलग करती है वह यह है कि ग़ैर-मुस्लिम पूरे तौर पर आज़ादी का दावेदार है और मुसलमान असल में बन्दा होने के बाद सिर्फ़ उस दायरे में आज़ादी से फ़ायदा उठाता है जो उसके रब ने उसे दी है। ग़ैर-मुस्लिम अपने सारे मामलों का फ़ैसला ख़ुद अपने बनाए हुए उसूल, क़ानूनों और ज़ाब्तों के मुताबिक़ करता है और सिरे से किसी ख़ुदाई सनद का अपने आपको ज़रूरतमन्द समझता ही नहीं। इसके बरख़िलाफ़ मुसलमान अपने हर मामले में सबसे पहले ख़ुदा और उसके रसूल *(सल्ल०)* की तरफ़ रुजू करता है, फिर अगर वहाँ से कोई हुक्म मिले तो वह उसकी पैरवी करता है और अगर कोई हुक्म न मिले तो वह सिर्फ़ इसी सूरत में अमल में आज़ादी बरतता है और उसकी अमल की यह आज़ादी इस दलील की बुनियाद पर होती है कि इस मामले में शरीअत का कोई हुक्म न देना उसकी तरफ़ से अमल की आज़ादी दिए जाने की दलील है।

90. क़ुरआन मजीद चूँकि सिर्फ़ क़ानून की किताब ही नहीं है, बल्कि यह सिखाने, हिदायत देने और उपदेश व नसीहत की किताब है, इसलिए पहले जुमले में जो क़ानूनी उसूल बयान किए गए थे, अब इस दूसरे जुमले में उनकी हिकमत और मस्लिहत समझाई जा रही है। इसमें दो बातें बयान की गई हैं: एक यह कि ऊपर बयान किए गए चारों उसूल की पैरवी करना ईमान का लाज़मी तक़ाज़ा है। मुसलमान होने का दावा और इन उसूलों से मुँह मोड़ना, ये दोनों चीज़ें एक जगह जमा नहीं हो सकतीं। दूसरी यह कि इन उसूलों पर अपनी ज़िन्दगी के निज़ाम को तामीर करने ही में मुसलमानों की भलाई भी है। सिर्फ़ यही एक चीज़ उनको दुनिया में सीधे रास्ते पर क़ायम रख सकती है और इसी से उनकी आख़िरत भी सँवर सकती है। यह नसीहत ठीक उस तक़रीर

يَزْعُمُوْنَ اَنَّهُمْ اٰمَنُوْا بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمَآ اُنْزِلَ
مِنْ قَبْلِكَ يُرِيْدُوْنَ اَنْ يَّتَحَاكَمُوْٓا اِلَى الطَّاغُوْتِ
وَقَدْ اُمِرُوْٓا اَنْ يَّكْفُرُوْا بِهٖ ۭ وَيُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ
اَنْ يُّضِلَّهُمْ ضَلٰلًۢا بَعِيْدًا ۝ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ

(60) ऐ नबी! तुमने देखा नहीं उन लोगों को जो दावा तो करते हैं कि हम ईमान लाए हैं उस किताब पर जो तुम्हारी तरफ़ उतारी गई है और उन किताबों पर जो तुमसे पहले उतारी गई थीं। मगर चाहते यह हैं कि अपने मामलों का फ़ैसला कराने के लिए ताग़ूत की तरफ़ जाएँ, हालाँकि उन्हें ताग़ूत से इनकार करने का हुक्म दिया गया था[91]—शैतान उन्हें भटकाकर सीधे रास्ते से बहुत दूर ले जाना चाहता है। (61) और जब उनसे

के ख़ात्मे पर बयान की गई है जिसमें यहूदियों की अख़लाक़ी व दीनी हालत पर तब्सिरा किया जा रहा था। इस तरह एक निहायत लतीफ़ (सूक्ष्म) तरीक़े से मुसलमानों को ख़बरदार किया गया है कि तुमसे पिछली उम्मत दीन के इन बुनियादी उसूलों से मुँह मोड़कर जिस पस्ती में गिर चुकी है उससे सबक़ हासिल करो। जब कोई गरोह ख़ुदा की किताब और उसके रसूल की हिदायत को पीठ पीछे डाल देता है और ऐसे सरदारों और रहनुमाओं के पीछे लग जाता है जो ख़ुदा और रसूल के फ़रमाँबरदार न हों और अपने मज़हबी पेशवाओं और सियासी हाकिमों से ख़ुदा की किताब और रसूल की सुन्नत की सनद पूछे बग़ैर उनकी इताअत करने लगता है तो वह उन ख़राबियों में पड़ने से किसी तरह बच नहीं सकता जिनमें बनी-इसराईल पड़ गए थे।

91. यहाँ साफ़ तौर पर 'ताग़ूत' से मुराद वह हाकिम है जो अल्लाह के क़ानून के सिवा किसी दूसरे क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला करता हो और अदालत का वह निज़ाम है जो न तो अल्लाह के इक्तिदारे-आला (सम्प्रभुत्व) को तसलीम करता हो और न अल्लाह की किताब को आख़िरी सनद (Final Authority) मानता हो। इसलिए यह आयत इस मानी में बिलकुल साफ़ है कि जो अदालत 'ताग़ूत' की हैसियत रखती हो उसके पास अपने मामलों को फ़ैसले के लिए ले जाना ईमान के ख़िलाफ़ है और ख़ुदा और उसकी किताब पर ईमान लाने का लाज़िमी तक़ाज़ा यह है कि आदमी ऐसी अदालत को जाइज़ अदालत तसलीम करने से इनकार कर दे। क़ुरआन के मुताबिक़ अल्लाह पर ईमान और ताग़ूत से इनकार दोनों एक-दूसरे के लिए लाज़िमी हैं और ख़ुदा और ताग़ूत दोनों के आगे एक ही वक़्त में झुकना खुली मुनाफ़िक़त (कपटाचार) है।

تَعَالَوْا إِلَىٰ مَا أَنزَلَ اللَّهُ وَإِلَى الرَّسُولِ رَأَيْتَ
الْمُنَافِقِينَ يَصُدُّونَ عَنكَ صُدُودًا ﴿٦١﴾ فَكَيْفَ إِذَا
أَصَابَتْهُم مُّصِيبَةٌ بِمَا قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ثُمَّ
جَاءُوكَ يَحْلِفُونَ بِاللَّهِ إِنْ أَرَدْنَا إِلَّا إِحْسَانًا
وَتَوْفِيقًا ﴿٦٢﴾ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ يَعْلَمُ اللَّهُ مَا فِي قُلُوبِهِمْ
فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَعِظْهُمْ وَقُل لَّهُمْ فِي أَنفُسِهِمْ قَوْلًا
بَلِيغًا ﴿٦٣﴾ وَمَا أَرْسَلْنَا مِن رَّسُولٍ إِلَّا لِيُطَاعَ

कहा जाता है कि आओ उस चीज़ की तरफ़ जो अल्लाह ने उतारी है और आओ रसूल की तरफ़ तो इन मुनाफ़िक़ों को तुम देखते हो कि ये तुम्हारी तरफ़ आने से कतराते हैं।[92]
(62) फिर उस वक़्त क्या होता है जब इनके अपने हाथों की लाई हुई मुसीबत इन पर आ पड़ती है? उस वक़्त ये तुम्हारे पास क़समें खाते हुए आते हैं।[93] और कहते हैं कि ख़ुदा की क़सम, हम तो सिर्फ़ भलाई चाहते थे और हमारी नीयत तो यह थी कि दोनों गरोहों में किसी तरह मेल-मिलाप हो जाए– (63) अल्लाह जानता है जो कुछ इनके दिलों में है, इन्हें जाने दो, इन्हें समझाओ और ऐसी नसीहत करो जो इनके दिलों में उतर जाए।
(64) (इन्हें बताओ कि) हमने जो रसूल भी भेजा है इसी लिए भेजा है कि अल्लाह की

---

92. इससे मालूम होता है कि मुनाफ़िक़ों का आम रवैया था कि जिस मुक़द्दमे में उन्हें उम्मीद होती थी कि फ़ैसला उनके हक़ में होगा उसको तो नबी *(सल्ल०)* के पास ले आते थे, मगर जिस मुक़द्दमे में डर होता था कि फ़ैसला उनके ख़िलाफ़ होगा उसको आप *(सल्ल०)* के पास लाने से इनकार कर देते थे। यही हाल अब भी बहुत-से मुनाफ़िक़ों का है कि अगर शरीअत का फ़ैसला उनके हक़ में हो तो सर आँखों पर, वरना हर उस क़ानून, हर उस रस्म व रिवाज और हर उस अदालत के दामन में जाकर पनाह लेंगे जिससे उन्हें अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ फ़ैसला हासिल होने की उम्मीद हो।

93. शायद इससे मुराद यह है कि जब उनकी इस मुनाफ़िक़ाना हरकत का मुसलमानों को इल्म हो जाता है और उन्हें डर होता है कि अब पूछ-गच्छ होगी और सज़ा मिलेगी उस वक़्त क़समें खा-खाकर अपने ईमान का यक़ीन दिलाने लगते हैं।

بِاِذْنِ اللّٰهِ ؕ وَلَوْ اَنَّهُمْ اِذْ ظَّلَمُوْٓا اَنْفُسَهُمْ جَآءُوْكَ
فَاسْتَغْفَرُوا اللّٰهَ وَاسْتَغْفَرَ لَهُمُ الرَّسُوْلُ لَوَجَدُوا
اللّٰهَ تَوَّابًا رَّحِيْمًا ۝٦٤ فَلَا وَ رَبِّكَ لَا يُؤْمِنُوْنَ
حَتّٰى يُحَكِّمُوْكَ فِيْمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوْا فِيْٓ
اَنْفُسِهِمْ حَرَجًا مِّمَّا قَضَيْتَ وَ يُسَلِّمُوْا تَسْلِيْمًا ۝٦٥ وَلَوْ

इजाज़त से उसकी फ़रमाँबरदारी की जाए।[94] अगर इन्होंने यह तरीक़ा अपनाया होता कि जब ये अपने ऊपर ज़ुल्म कर बैठे थे तो तुम्हारे पास आ जाते और अल्लाह से माफ़ी माँगते और रसूल भी इनके लिए माफ़ी की दरख़ास्त करता तो यक़ीनन अल्लाह को बख़्शनेवाला और रहम करनेवाला पाते। (65) नहीं, ऐ नबी! तुम्हारे रब की क़सम, ये कभी ईमानवाले नहीं हो सकते जब तक कि अपने आपस के इख़्तिलाफ़ों (विवादों) में ये तुमको फ़ैसला करनेवाला न मान लें। फिर जो कुछ तुम फ़ैसला करो उस पर अपने दिलों में भी कोई तंगी न महसूस करें, बल्कि पूरी तरह मान लें।[95] (66) अगर हमने इन्हें हुक्म

94. यानी ख़ुदा की तरफ़ से रसूल इसलिए नहीं आता है कि बस उसकी रिसालत (पैग़म्बरी) पर ईमान ले आओ और फिर इताअत जिसकी चाहो करते रहो, बल्कि रसूल के आने का मक़सद ही यह होता है कि ज़िन्दगी का जो क़ानून वह लेकर आया है, तमाम क़ानूनों को छोड़कर सिर्फ़ उसी की पैरवी की जाए और ख़ुदा की तरफ़ से जो अहकाम और हिदायतें वह देता है, तमाम अहकाम और हिदायतों को छोड़कर सिर्फ़ उन्हीं पर अमल किया जाए। अगर किसी ने यही न किया तो फिर उसका सिर्फ़ रसूल को रसूल मान लेना कोई मतलब नहीं रखता।

95. इस आयत का हुक्म सिर्फ़ नबी *(सल्ल०)* की ज़िन्दगी तक महदूद नहीं है, बल्कि क़ियामत तक के लिए है। जो कुछ अल्लाह की तरफ़ से नबी *(सल्ल०)* लाए हैं और जिस तरीक़े पर अल्लाह की हिदायत व रहनुमाई के तहत आप *(सल्ल०)* ने अमल किया है वह हमेशा-हमेशा के लिए मुसलमानों के दर्मियान फ़ैसलाकुन सनद है। और इस सनद को मानने या न मानने ही पर आदमी के ईमानवाला होने और ईमानवाला न होने का फ़ैसला है। हदीस में इसी बात को नबी *(सल्ल०)* ने इस तरह कहा है कि "तुममें से कोई आदमी ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक कि उसके दिल की ख़ाहिश उस तरीक़े की पाबन्द न हो जाए जिसे मैं लेकर आया हूँ।"

أَنَّا كَتَبْنَا عَلَيْهِمْ أَنِ اقْتُلُوٓا أَنفُسَكُمْ أَوِ اخْرُجُوا
مِن دِيَٰرِكُم مَّا فَعَلُوهُ إِلَّا قَلِيلٌ مِّنْهُمْ ۖ وَلَوْ
أَنَّهُمْ فَعَلُوا مَا يُوعَظُونَ بِهِۦ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ وَأَشَدَّ
تَثْبِيتًا ﴿٦٦﴾ وَإِذًا لَّءَاتَيْنَٰهُم مِّن لَّدُنَّآ أَجْرًا عَظِيمًا ﴿٦٧﴾
وَلَهَدَيْنَٰهُمْ صِرَٰطًا مُّسْتَقِيمًا ﴿٦٨﴾ وَمَن يُطِعِ اللَّهَ

दिया होता कि अपने आपको हलाक कर दो या अपने घरों से निकल जाओ तो इनमें से थोड़े ही आदमी इस पर अमल करते।[96] हालाँकि जो नसीहत इन्हें की जाती है अगर ये इसपर अमल करते तो ये इनके लिए ज़्यादा अच्छाई और ज़्यादा जमाव की वजह बनता।[97] (67) और जब ये ऐसा करते तो हम इन्हें अपनी तरफ़ से बहुत बड़ा बदला देते (68) और इन्हें सीधा रास्ता दिखा देते।[98] (69) जो अल्लाह और रसूल की इताअत

---

96. यानी जब उनका हाल यह है कि शरीअत की पाबन्दी करने में ज़रा-सा नुक़सान या थोड़ी-सी तकलीफ़ भी ये बर्दाश्त नहीं कर सकते तो इनसे किसी बड़ी क़ुरबानी की हरगिज़ उम्मीद नहीं की जा सकती। अगर जान देने या फिर घर-बार छोड़ने की माँग इनसे की जाए तो ये फ़ौरन भाग खड़े होंगे और ईमान और इताअत के बजाय कुफ़्र और नाफ़रमानी की राह लेंगे।

97. यानी अगर ये लोग शक और शुब्हा और तरद्दुद को छोड़कर यकसूई के साथ रसूल की इताअत और पैरवी पर जम जाते और डाँवाडोल न रहते तो इनकी ज़िन्दगी डाँवाडोल होने से महफ़ूज़ हो जाती। इनके ख़यालात, अख़लाक़ और मामले सबके सब एक मुस्तक़िल और पायदार बुनियाद पर क़ायम हो जाते और ये उन बरकतों से मालामाल होते फ़ायदों और जो एक सीधे रास्ते पर मज़बूती क़दम जमाकर चलने से ही हासिल हुआ करती हैं। जो आदमी शक-शुब्हा और तरद्दुद की हालत में पड़ा हो, कभी इस रास्ते पर चले और कभी उस रास्ते पर और इत्मीनान किसी रास्ते के भी सही होने पर उसे हासिल न हो उसकी सारी ज़िन्दगी पानी पर बनी लकीरों की तरह बसर होती है और एक बेफ़ाइदा कोशिश बनकर रह जाती है।

98. यानी जब वे शक छोड़कर ईमान और यक़ीन के साथ रसूल की पैरवी का फ़ैसला कर लेते तो अल्लाह की मेहरबानी से उनके सामने कोशिश और अमल का सीधा रास्ता बिलकुल रौशन हो जाता और उन्हें साफ़ नज़र आ जाता कि वे अपनी ताक़तों और मेहनतों को किस राह में ख़र्च करें जिससे उनका हर क़दम अपनी उस हक़ीक़ी मंज़िल की तरफ़ उठे जो उसका मक़सद हो।

وَ الرَّسُوْلَ فَاُولٰٓئِكَ مَعَ الَّذِيْنَ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ
مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَ الصِّدِّيْقِيْنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيْنَ ۚ
وَحَسُنَ اُولٰٓئِكَ رَفِيْقًا ﴿٦٩﴾ ذٰلِكَ الْفَضْلُ مِنَ اللّٰهِ ؕ

करेगा वह उन लोगों के साथ होगा जिनपर अल्लाह ने इनाम किया है, यानी नबी और सच्चे लोग और शहीद और अच्छे लोग।[99] कैसे अच्छे हैं ये साथी जो किसी को मिलें।[100] (70) यह हक़ीक़ी मेहरबानी है जो अल्लाह की तरफ़ से मिलती है और हक़ीक़त जानने

99. असल अरबी में लफ़्ज़ 'सिद्दीक़' इस्तेमाल हुआ है जिससे मुराद वह आदमी है जो बहुत ही सच्चा हो, जिसके अन्दर सच्चाई 'पसन्दी' और हक़परस्ती कमाल दर्जे पर हो, जो अपने मामलों और बर्ताव में हमेशा सीधा और साफ़ तरीक़ा अपनाए। जब साथ दे तो हक़ और इनसाफ़ ही का साथ दे और सच्चे दिल से दे, और जिस चीज़ को हक़ के ख़िलाफ़ पाए उसके मुक़ाबले में डटकर खड़ा हो जाए और ज़रा कमज़ोरी न दिखाए। जिसकी सीरत और किरदार ऐसा साफ़-सुथरा और बेग़रज़ हो कि अपने और ग़ैर किसी को भी उससे ख़ालिस सच्चाई और हक़ के सिवा किसी दूसरे रवैये का अन्देशा न हो।

यहाँ असल अरबी में एक और लफ़्ज़ 'शहीद' इस्तेमाल हुआ है, जिसके मानी गवाह के हैं। इससे मुराद वह आदमी है जो अपने ईमान की सच्चाई पर अपनी ज़िन्दगी के पूरे रवैये और अमल से गवाही दे। अल्लाह की राह में लड़कर जान देनेवाले को भी शहीद इसी वजह से कहते हैं कि वह जान देकर साबित कर देता है कि वह जिस चीज़ पर ईमान लाया था उसे वाक़ई में सच्चे दिल से हक़ समझता था और उस चीज़ से उसे इतनी मुहब्बत होती थी कि उसके लिए जान क़ुरबान करने में भी उसे कोई झिझक न हुई। ऐसे सच्चे लोगों को भी शहीद कहा जाता है जो इतने ज़्यादा भरोसेमन्द हों कि जिस चीज़ पर वे गवाही दें उसका सही और हक़ होना बे-झिझक तसलीम कर लिया जाए।

यहाँ एक और अरबी लफ़्ज़ 'सालेह' इस्तेमाल हुआ है। इससे मुराद वह आदमी है जो अपने ख़यालात और अक़ीदों में, अपनी नीयत और इरादों में और अपनी बातों और कामों में सीधे रास्ते पर क़ायम हो और कुल मिलाकर अपनी ज़िन्दगी में नेक रवैया रखता हो।

100. यानी वह इनसान ख़ुशक़िस्मत है जिसे ऐसे लोग दुनिया में साथ के लिए मिल जाएँ और जिसका अंजाम आख़िरत में भी ऐसे ही लोगों के साथ हो। किसी आदमी के एहसास मुर्दा हो जाएँ तो बात दूसरी है, वरना हक़ीक़त में बुरे चाल-चलन और बुरे किरदारवाले लोगों के साथ ज़िन्दगी बसर करना दुनिया ही में एक दर्दनाक अज़ाब है, यहाँ तक कि आख़िरत में भी आदमी उन्हीं के साथ उस अंजाम से दो-चार हो जो उनके लिए मुक़द्दर है। इसी लिए अल्लाह के नेक बन्दों की हमेशा यही तमन्ना रही है कि उनको नेक लोगों की सोसाइटी नसीब हो और मरकर भी वे नेक लोगों के साथ रहें।

وَكَفٰى بِاللّٰهِ عَلِيْمًا ﴿٧٠﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا خُذُوْا ع
حِذْرَكُمْ فَانْفِرُوْا ثُبَاتٍ اَوِ انْفِرُوْا جَمِيْعًا ﴿٧١﴾ وَاِنَّ
مِنْكُمْ لَمَنْ لَّيُبَطِّئَنَّ ۚ فَاِنْ اَصَابَتْكُمْ مُّصِيْبَةٌ قَالَ
قَدْ اَنْعَمَ اللّٰهُ عَلَيَّ اِذْ لَمْ اَكُنْ مَّعَهُمْ شَهِيْدًا ﴿٧٢﴾
وَلَئِنْ اَصَابَكُمْ فَضْلٌ مِّنَ اللّٰهِ لَيَقُوْلَنَّ كَاَنْ لَّمْ
تَكُنْ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهٗ مَوَدَّةٌ يّٰلَيْتَنِيْ كُنْتُ مَعَهُمْ

के लिए बस अल्लाह ही का इल्म काफ़ी है।

(71) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, मुक़ाबले के लिए हर वक़्त तैयार रहो।[101] फिर जैसा मौक़ा हो अलग-अलग टुकड़ियों की शक्ल में निकलो या इकट्ठे होकर। (72) हाँ, तुममें कोई-कोई आदमी ऐसा भी है जो लड़ाई से जी चुराता है।[102] अगर तुमपर कोई मुसीबत आए तो कहता है अल्लाह ने मुझ पर बड़ा फ़ज़्ल किया कि मैं इन लोगों के साथ न गया, (73) और अगर अल्लाह की तरफ़ से तुम पर फ़ज़्ल होता तो कहता है— और इस तरह कहता है कि मानो तुम्हारे और इसके बीच मुहब्बत का तो कोई रिश्ता था ही

---

101. वाज़ेह रहे कि यह तक़रीर उस ज़माने में उतरी हुई थी जब उहुद की लड़ाई में हार की वजह से मदीना के आस-पास के क़बीलों की हिम्मतें बढ़ गई थीं और मुसलमान हर तरफ़ से ख़तरों में घिर गए थे। आए दिन ख़बरें आती रहती थीं कि फ़ुलाँ क़बीले के तेवर बिगड़ रहे हैं, फ़ुलाँ क़बीला दुश्मनी पर आमादा है, फ़ुलाँ जगह पर हमले की तैयारियाँ हो रही हैं। मुसलमानों के साथ एक के बाद एक ग़द्दारियाँ की जा रही थीं। उनके मुबल्लिग़ों (प्रचारकों) को धोखे से बुलाया जाता था और क़त्ल कर दिया जाता था। मदीना की हदों से बाहर उनके लिए जान और माल की सलामती बाक़ी न रही थी। इन हालात में मुसलमानों की तरफ़ से एक ज़बरदस्त जिद्दोजुहद और सख़्त मेहनत की ज़रूरत थी, ताकि इन ख़तरों की भीड़ से इस्लाम की यह तहरीक (आन्दोलन) मिट न जाए।

102. इस आयत का एक मतलब यह भी है कि ख़ुद तो जी चुराता ही है, दूसरों की भी हिम्मतें पस्त करता है और उनको जिहाद से रोकने के लिए ऐसी बातें करता है कि वे भी उसी की तरह बैठ रहें।

فَافُوْزَ فَوْزًا عَظِيْمًا ﴿٧٣﴾ فَلْيُقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
الَّذِيْنَ يَشْرُوْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا بِالْاٰخِرَةِ ؕ وَمَنْ
يُّقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَيُقْتَلْ اَوْ يَغْلِبْ فَسَوْفَ
نُؤْتِيْهِ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٧٤﴾ وَمَا لَكُمْ لَا تُقَاتِلُوْنَ فِيْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ وَالْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَآءِ
وَالْوِلْدَانِ الَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اَخْرِجْنَا مِنْ
هٰذِهِ الْقَرْيَةِ الظَّالِمِ اَهْلُهَا ۚ وَاجْعَلْ لَّنَا مِنْ
لَّدُنْكَ وَلِيًّا ۚۙ وَّاجْعَلْ لَّنَا مِنْ لَّدُنْكَ نَصِيْرًا ﴿٧٥﴾

नहीं– कि काश! मैं भी इनके साथ होता तो बड़ा काम बन जाता। (74) (ऐसे लोगों को मालूम हो कि) अल्लाह की राह में लड़ना चाहिए उन लोगों को जो आख़िरत के बदले दुनिया की ज़िन्दगी को बेच दें,[103] फिर जो अल्लाह की राह में लड़ेगा और मारा जाएगा या ग़ालिब रहेगा उसे ज़रूर हम बड़ा बदला देंगे। (75) आख़िर क्या वजह है कि तुम अल्लाह की राह में उन बेबस मर्दों, औरतों और बच्चों की ख़ातिर न लड़ो जो कमज़ोर पाकर दबा लिए गए हैं और फ़रियाद कर रहे हैं कि ऐ हमारे रब! हमको इस बस्ती से निकाल जिसके बाशिन्दे ज़ालिम हैं, और अपनी तरफ़ से हमारा कोई हिमायती और

103. यानी अल्लाह की राह में लड़ना दुनिया चाहनेवाले लोगों का काम है ही नहीं। यह तो ऐसे लोगों का काम है जिनके सामने सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी हो। जो अल्लाह और आख़िरत पर पूरा भरोसा रखते हों, और दुनिया में अपनी कामयाबी और ख़ुशहाली के सारे इमकानात (सम्भावनाएँ), उम्मीदें और अपने हर क़िस्म के दुनियवी फ़ायदों को इस उम्मीद पर क़ुरबान करने के लिए तैयार हो जाएँ कि उनका रब उनसे राज़ी होगा और इस दुनिया में नहीं तो आख़िरत में बहरहाल उनकी क़ुरबानियाँ बरबाद नहीं होंगी। रहे वे लोग जिनकी निगाह में असूल अहमियत अपने दुनियवी फ़ायदे ही की हो, तो हक़ीक़त में यह रास्ता उनके लिए नहीं है।

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا
يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ الطَّاغُوْتِ فَقَاتِلُوْٓا اَوْلِيَآءَ
الشَّيْطٰنِ ۚ اِنَّ كَيْدَ الشَّيْطٰنِ كَانَ ضَعِيْفًا ﴿٧٦﴾ اَلَمْ تَرَ ع
اِلَى الَّذِيْنَ قِيْلَ لَهُمْ كُفُّوْٓا اَيْدِيَكُمْ وَ اَقِيْمُوا
الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ ۚ فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ
الْقِتَالُ اِذَا فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ يَخْشَوْنَ النَّاسَ كَخَشْيَةِ

मददगार पैदा कर दे।[104] (76) जिन लोगों ने ईमान का रास्ता अपनाया है वे अल्लाह की राह में लड़ते हैं और जिन्होंने इनकार (कुफ़्र) का रास्ता अपनाया है वे ताग़ूत की राह में लड़ते हैं।[105] तो शैतान के साथियों से लड़ो और यक़ीन जानो कि शैतान की चालें हक़ीक़त में बहुत ही कमज़ोर[106] हैं।

(77) तुमने उन लोगों को भी देखा जिनसे कहा गया था कि अपने हाथ रोके रखो और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो? अब जो उन्हें लड़ाई का हुक्म दिया गया तो उनमें से एक गरोह का हाल यह है कि लोगों से ऐसा डर रहे हैं जैसा ख़ुदा से डरना

104. यहाँ इशारा उन मज़लूम बच्चों, औरतों और मर्दों की तरफ़ है जो मक्का में और अरब के दूसरे क़बीलों में इस्लाम क़बूल कर चुके थे मगर न हिजरत करने की ताक़त रखते थे और न अपने आप को ज़ुल्म से बचा सकते थे। इन बेचारों पर तरह-तरह के ज़ुल्म ढाए जा रहे थे। वे लोग दुआएँ माँगते थे कि कोई उन्हें इस ज़ुल्म से बचाए।

105. यह अल्लाह का दो टूक फ़ैसला है। अल्लाह की राह में इस मक़सद के लिए लड़ना कि ज़मीन पर अल्लाह का दीन क़ायम हो, यह ईमानवालों का काम है और जो वाक़ई ईमानवाला है वह इस काम से कभी न रुकेगा और ताग़ूत की राह में इस मक़सद के लिए लड़ना कि ख़ुदा की ज़मीन पर ख़ुदा के बाग़ियों का राज हो, यह कुफ़्र करनेवालों का काम है और कोई ईमान रखनेवाला आदमी यह काम नहीं कर सकता।

106. यानी ज़ाहिर में शैतान और उसके साथी बड़ी तैयारियों से उठते हैं और बड़ी ज़बरदस्त चालें चलते हैं, लेकिन ईमानवालों को न उनकी तैयारियों से डरना चाहिए और न उनकी चालों से। आख़िरकार उनका अंजाम नाकामी है।

اللهِ اَوْ اَشَدَّ خَشْيَةً ۚ وَقَالُوْا رَبَّنَا لِمَ كَتَبْتَ
عَلَيْنَا الْقِتَالَ ۚ لَوْلَآ اَخَّرْتَنَآ اِلٰٓى اَجَلٍ قَرِيْبٍ ؕ قُلْ
مَتَاعُ الدُّنْيَا قَلِيْلٌ ۚ وَالْاٰخِرَةُ خَيْرٌ لِّمَنِ اتَّقٰى ۫

चाहिए या कुछ इससे भी बढ़कर।[107] कहते हैं कि ऐ हमारे रब! यह हमपर लड़ाई का हुक्म क्यों लिख दिया? क्यों न हमें अभी कुछ और मुहलत दी? इनसे कहो दुनिया की ज़िन्दगी का सरमाया थोड़ा है और आख़िरत ख़ुदा से डरनेवाले एक इनसान के लिए

107. इस आयत के तीन मतलब हैं और तीनों अपनी-अपनी जगह सही हैं—

एक मतलब यह है कि पहले ये लोग ख़ुद जंग के लिए बेताब थे। बार-बार कहते थे कि साहब, हमपर ज़ुल्म किया जा रहा है, हमें सताया जाता है, मारा जाता है, गालियाँ दी जाती हैं, आख़िर हम कब तक सब्र करें, हमें मुक़ाबले की इजाज़त दी जाए। उस वक़्त इनसे कहा जाता था कि सब्र करो और नमाज़ और ज़कात से भी अपने नफ़्स की इस्लाह करते रहो, तो यह सब्र और बर्दाश्त का हुक्म इनको बुरा लगता था। मगर अब जो लड़ाई का हुक्म दे दिया गया तो उन्हीं (जंग का) तक़ाज़ा करनेवालों में से एक गरोह दुश्मनों की भीड़ और जंग के ख़तरों को देख-देखकर सहमा जा रहा है।

दूसरा मतलब यह है कि जब तक मुतालबा नमाज़ और ज़कात और ऐसे ही बिना किसी जोखिम के कामों का था और जानें लड़ाने का कोई सवाल बीच में न आया तो ये लोग पक्के दीनदार थे, मगर अब जो हक़ की ख़ातिर जान को जोखिम में डालने का काम शुरू हुआ तो उनपर कपकपी तारी होने लगी।

तीसरा मतलब यह है कि पहले तो लूट-खसोट और ख़ाहिशों से भरी लड़ाइयों के लिए उनकी तलवार हर वक़्त म्यान से निकल पड़ती थी और रात-दिन का काम ही लड़ना और मुक़ाबला था। उस वक़्त इन्हें ख़ून-ख़राबे से हाथ रोकने और नमाज़ और ज़कात से नफ़्स की इस्लाह करने के लिए कहा गया था। अब जो ख़ुदा के लिए तलवार उठाने का हुक्म दिया गया तो वे लोग जो नफ़्स की ख़ातिर लड़ने में शेर-दिल थे, ख़ुदा की ख़ातिर लड़ने में बुज़दिल बने जाते हैं। तलवार वाला वह हाथ जो नफ़्स और शैतान की राह में बड़ी तेज़ी दिखाता था अब ख़ुदा की राह में ठण्डा हुआ जाता है।

ये तीनों मतलब अलग-अलग तरह के लोगों पर चस्पाँ होते हैं और आयत के अलफ़ाज़ ऐसे जामेअ (सारगर्भित) हैं कि तीनों मतलब यकसाँ तौर पर लिए जा सकते हैं।

وَلَا تُظْلَمُوْنَ فَتِيْلًا ﴿٧٧﴾ اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يُدْرِكْكُّمُ
الْمَوْتُ وَلَوْ كُنْتُمْ فِيْ بُرُوْجٍ مُّشَيَّدَةٍ ؕ وَاِنْ تُصِبْهُمْ
حَسَنَةٌ يَّقُوْلُوْا هٰذِهٖ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ ۚ وَاِنْ تُصِبْهُمْ
سَيِّئَةٌ يَّقُوْلُوْا هٰذِهٖ مِنْ عِنْدِكَ ؕ قُلْ كُلٌّ مِّنْ عِنْدِ
اللّٰهِ ؕ فَمَالِ هٰٓؤُلَآءِ الْقَوْمِ لَا يَكَادُوْنَ يَفْقَهُوْنَ
حَدِيْثًا ﴿٧٨﴾ مَآ اَصَابَكَ مِنْ حَسَنَةٍ فَمِنَ اللّٰهِ ز وَمَآ
اَصَابَكَ مِنْ سَيِّئَةٍ فَمِنْ نَّفْسِكَ ؕ وَ اَرْسَلْنٰكَ

ज़्यादा बेहतर है और तुमपर ज़ुल्म एक ज़र्रा बराबर भी न किया जाएगा।[108] (78) रही मौत, तो जहाँ भी तुम हो वह हर हाल में तुम्हें आकर रहेगी, चाहे तुम कैसी ही मज़बूत इमारतों में हो।

अगर इन्हें कोई फ़ायदा पहुँचता है तो कहते हैं कि यह अल्लाह की तरफ़ से है और अगर कोई नुक़सान पहुँचता है तो कहते हैं कि (ऐ नबी) यह सब तुम्हारी वजह से है।[109] कहो, सब कुछ अल्लाह ही की तरफ़ से है। आख़िर इन लोगों को क्या हो गया है, कोई बात इनकी समझ में नहीं आती।

(79) ऐ इनसान! तुझे जो भलाई भी हासिल होती है अल्लाह की मेहरबानी से होती है, और जो मुसीबत तुझ पर आती है वह तेरी अपनी कमाई और करतूत की वजह से है।

108. यानी अगर तुम ख़ुदा के दीन की ख़िदमत करो और उसकी राह में जान लड़ाओ तो यह मुमकिन नहीं है कि ख़ुदा के यहाँ तुम्हारा इनाम बरबाद हो जाए।

109. यानी जब फ़तह, कामयाबी और सरबुलन्दी नसीब होती है तो उसे अल्लाह का फ़ज़्ल क़रार देते हैं और भूल जाते हैं कि अल्लाह ने इन पर यह फ़ज़्ल नबी ही के ज़रीए से किया है। मगर जब ख़ुद अपनी ग़लतियों और कमज़ोरियों की वजह से कहीं हार का सामना करना पड़ता है और बढ़ते हुए क़दम पीछे पड़ने लगते हैं तो सारा इल्ज़ाम नबी के सर थोपते हैं और ख़ुद ज़िम्मेदारी से बरी होना चाहते हैं।

لِلنَّاسِ رَسُوۡلًا ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ شَهِيۡدًا ۝٧٩ مَنۡ يُّطِعِ
الرَّسُوۡلَ فَقَدۡ اَطَاعَ اللّٰهَ ۚ وَمَنۡ تَوَلّٰى فَمَاۤ اَرۡسَلۡنٰكَ
عَلَيۡهِمۡ حَفِيۡظًا ۝٨٠ وَيَقُوۡلُوۡنَ طَاعَةٌ ۫ فَاِذَا بَرَزُوۡا مِنۡ
عِنۡدِكَ بَيَّتَ طَآئِفَةٌ مِّنۡهُمۡ غَيۡرَ الَّذِىۡ تَقُوۡلُ ؕ
وَاللّٰهُ يَكۡتُبُ مَا يُبَيِّتُوۡنَ ۚ فَاَعۡرِضۡ عَنۡهُمۡ وَ تَوَكَّلۡ
عَلَى اللّٰهِ ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيۡلًا ۝٨١ اَفَلَا يَتَدَبَّرُوۡنَ

ऐ नबी! हमने तुमको लोगों के लिए रसूल बनाकर भेजा है और इसपर ख़ुदा की गवाही काफ़ी है। (80) जिसने रसूल की फ़रमाँबरदारी की उसने असल में ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी की। और जो मुँह मोड़ गया तो बहरहाल हमने तुम्हें इन लोगों पर चौकीदार बनाकर तो नहीं भेजा है।[110]

(81) वे मुँह पर कहते हैं कि हम फ़रमाँबरदार हैं। मगर जब तुम्हारे पास से निकलते हैं तो इनमें से एक गरोह रातों को जमा होकर तुम्हारी बातों के ख़िलाफ़ मशविरे करता है। अल्लाह इनकी ये सारी कानाफूसियाँ लिख रहा है। तुम उनकी परवाह न करो और अल्लाह पर भरोसा रखो। वही भरोसे के लिए काफ़ी है। (82) क्या ये लोग क़ुरआन पर

---

110. यानी अपने अमल के ये ख़ुद ज़िम्मेदार हैं। उनके कामों की पूछ-गछ तुम से न होगी। तुम्हारे सुपुर्द जो काम किया गया है वह तो सिर्फ़ यह है कि अल्लाह के अहकाम और हिदायतें इन तक पहुँचा दो। यह काम तुमने अच्छी तरह अंजाम दे दिया। अब यह तुम्हारा काम नहीं है कि हाथ पकड़कर इन्हें ज़बरदस्ती सीधे रास्ते पर चलाओ। अगर ये उस हिदायत की पैरवी न करें जो तुम्हारे ज़रीए से पहुँच रही है तो इसकी कोई ज़िम्मेदारी तुमपर नहीं है। तुमसे यह नहीं पूछा जाएगा कि ये लोग क्यों नाफ़रमानी करते थे।

الْقُرْاٰنَ ؕ وَلَوْ كَانَ مِنْ عِنْدِ غَيْرِ اللّٰهِ لَوَجَدُوْا فِيْهِ
اخْتِلَافًا كَثِيْرًا ﴿۸۲﴾ وَاِذَا جَآءَهُمْ اَمْرٌ مِّنَ الْاَمْنِ
اَوِ الْخَوْفِ اَذَاعُوْا بِهٖ ؕ وَلَوْ رَدُّوْهُ اِلَى الرَّسُوْلِ وَ
اِلٰٓى اُولِى الْاَمْرِ مِنْهُمْ لَعَلِمَهُ الَّذِيْنَ يَسْتَنْۢبِطُوْنَهٗ
مِنْهُمْ ؕ وَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهٗ لَاتَّبَعْتُمُ

ग़ौर नहीं करते? अगर यह अल्लाह के सिवा किसी और की तरफ़ से होता तो इसमें बहुत कुछ बे-मेल बयान पाया जाता।[111]

(83) ये लोग जहाँ कोई इत्मीनान दिलानेवाली या ख़ौफ़नाक ख़बर सुन पाते हैं उसे लेकर फैला देते हैं। हालाँकि अगर ये उसे रसूल और अपनी जमाअत के ज़िम्मेदार लोगों तक पहुँचाएँ तो वह बात ऐसे लोगों की जानकारी में आ जाए जो इनके बीच इस बात की सलाहियत रखते हैं कि इससे सही नतीजा निकाल सकें।[112] तुम लोगों पर अल्लाह की मेहरबानी और रहमत न होती तो (तुम्हारी कमज़ोरियाँ ऐसी थीं कि) कुछ गिने-चुने

111. मुनाफ़िक़ और कमज़ोर ईमान के लोगों को जिस रवैये पर ऊपर की आयतों में ख़बरदार किया गया है उसकी बड़ी और असूली वजह यह थी कि उन्हें क़ुरआन के अल्लाह की किताब होने में शक था। उन्हें यक़ीन न आता था कि रसूल पर वाक़ई वह्य उतरती है और ये जो कुछ हिदायतें आ रही हैं सीधे तौर पर ख़ुदा ही के पास से आ रही हैं। इसी लिए उनके मुनाफ़िक़ाना रवैये पर मलामत करने के बाद अब फ़रमाया जा रहा है कि ये लोग क़ुरआन पर ग़ौर ही नहीं करते वरना यह कलाम तो ख़ुद गवाही दे रहा है कि यह ख़ुदा के सिवा किसी दूसरे का कलाम हो ही नहीं सकता। कोई इनसान इस बात पर क़ुदरत नहीं रखता है कि सालों-साल तक वह अलग-अलग हालतों में, अलग-अलग मौक़ों पर, अलग-अलग मज़मूनों पर तक़रीरें करता रहे और शुरू से आख़िर तक उसकी सारी तक़रीरें ऐसी हमवार, एक रंग और आपस में तालमेल रखनेवाला ऐसा मजमूआ (संग्रह) बन जाएँ जिसका कोई हिस्सा दूसरे हिस्से से टकराता न हो, जिसमें राय की तब्दीली का कहीं निशान तक न मिले, जिसमें बात करनेवाले के मन की अलग-अलग कैफ़ियतें अपने अलग-अलग रंग न दिखाएँ और जिसपर कभी नज़रसानी तक की ज़रूरत न पेश आए।

112. वह चूँकि हंगामे का मौक़ा था, इसलिए हर तरफ़ अफ़वाहें उड़ रही थीं। कभी ख़तरे की

الشَّيْطٰنَ اِلَّا قَلِيْلًا ﴿٨٣﴾ فَقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ لَا
تُكَلَّفُ اِلَّا نَفْسَكَ وَحَرِّضِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۚ عَسَى اللّٰهُ
اَنْ يَّكُفَّ بَاْسَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ۭ وَاللّٰهُ اَشَدُّ بَاْسًا وَّ
اَشَدُّ تَنْكِيْلًا ﴿٨٤﴾ مَنْ يَّشْفَعْ شَفَاعَةً حَسَنَةً يَّكُنْ لَّهٗ
نَصِيْبٌ مِّنْهَا ۚ وَمَنْ يَّشْفَعْ شَفَاعَةً سَيِّئَةً يَّكُنْ
لَّهٗ كِفْلٌ مِّنْهَا ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ مُّقِيْتًا ﴿٨٥﴾

थोड़े-से लोगों के सिवा तुम सब शैतान के पीछे लग गए होते।

(84) तो ऐ नबी, तुम अल्लाह की राह में लड़ो, तुम अपने आप के सिवा किसी और के लिए ज़िम्मेदार नहीं हो। अलबत्ता ईमानवालों को लड़ने के लिए उकसाओ, नामुमकिन नहीं कि अल्लाह इनकार करनेवालों का ज़ोर तोड़ दे। अल्लाह का ज़ोर सबसे ज़्यादा ज़बरदस्त और उसकी सज़ा सबसे ज़्यादा सख़्त है। (85) जो भलाई की सिफ़ारिश करेगा वह उसमें से हिस्सा पाएगा और जो बुराई की सिफ़ारिश करेगा वह उसमें से हिस्सा पाएगा।[113] और अल्लाह हर चीज़ पर नज़र रखनेवाला है।

बेबुनियाद बढ़ा-चढ़ाकर ख़बरें आतीं और उनसे यकायक मदीना और उसके आस-पास के इलाक़ों में परेशानी फैल जाती। कभी कोई चालाक दुश्मन किसी वाक़ई ख़तरे को छिपाने के लिए इत्मीनान बख़्श ख़बरें भेज देता और लोग उन्हें सुनकर ग़फ़लत में पड़ जाते। इन अफ़वाहों में वे लोग बड़ी दिलचस्पी लेते थे जो सिर्फ़ हंगामा पसन्द थे, जिनके लिए इस्लाम और जाहिलियत का यह मोर्चा कोई संजीदा मामला न था, जिन्हें कुछ ख़बर न थी कि इस तरह की ग़ैर-ज़िम्मेदाराना अफ़वाहें फैलाने के नतीजे कितनी दूर तक असर डालते हैं। उनके कान में जहाँ कोई भनक पड़ जाती उसे लेकर जगह-जगह फूँकते फिरते थे। उन्हीं लोगों को इस आयत में फिटकार लगाई गई है और उन्हें सख़्ती के साथ ख़बरदार किया गया है कि अफ़वाहें फैलाने से बचे रहें और हर ख़बर जो उनको पहुँचे उसे ज़िम्मेदार लोगों तक पहुँचाकर ख़ामोश हो जाएँ।

113. यानी यह कि अपनी-अपनी पसन्द और अपना-अपना नसीब है कि कोई ख़ुदा की राह में कोशिश करने और हक़ को सरबुलन्द करने के लिए लोगों को उभारे और उसका बदला पाए और कोई ख़ुदा के बन्दों को ग़लतफ़हमियों में डालने और उनकी हिम्मतें पस्त करने और उन्हें अल्लाह का बोलबाला करने की कोशिश और जिद्दो-जुह्द से दूर रखने में अपनी ताक़त लगा दे

وَاِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا بِاَحْسَنَ مِنْهَآ اَوْ رُدُّوْهَا ۭ
اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ حَسِيْبًا ۝٨٦ اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ
اِلَّا هُوَ ۭ لَيَجْمَعَنَّكُمْ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ لَا رَيْبَ فِيْهِ ۭ
وَمَنْ اَصْدَقُ مِنَ اللّٰهِ حَدِيْثًا ۝٨٧ۧ فَمَا لَكُمْ فِي

(86) और जब कोई एहतिराम के साथ तुम्हें सलाम करे तो उसको उससे ज़्यादा अच्छे तरीक़े से जवाब दो या कम से कम उसी तरह।[114] अल्लाह हर चीज़ का हिसाब लेनेवाला है। (87) अल्लाह वह है जिसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं है। वह तुम सबको उस क़ियामत के दिन जमा करेगा जिसके आने में कोई शक नहीं और अल्लाह की बात से बढ़कर सच्ची बात और किसकी हो सकती है।[115]

और उसकी सज़ा का हक़दार बने।

114. उस वक़्त मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों के ताल्लुक़ात बहुत कशीदा (तनावपूर्ण) हो रहे थे, और जैसा कि ताल्लुक़ात की कशीदगी में हुआ करता है, इस बात का डर था कि कहीं मुसलमान दूसरे लोगों के साथ बदअख़लाक़ी से न पेश आने लगें। इसलिए उन्हें हिदायत की गई कि जो तुम्हारे साथ अच्छाई और इज़्ज़त का बर्ताव करे उसके साथ तुम भी वैसे ही, बल्कि उससे ज़्यादा इज़्ज़त से पेश आओ। अख़लाक़ का जवाब अख़लाक़ ही है। बल्कि तुम्हारा मक़ाम यह है कि दूसरों से बढ़कर बाअख़लाक़ बनो। दावत देने और तबलीग़ करनेवाले एक गरोह के लिए, जो दुनिया को सीधे रास्ते पर लाने और हक़ के रास्ते की तरफ़ बुलाने के लिए उठा हो, मिज़ाज में सख़्ती, कड़वे और तीखे अंदाज़ में बात करना मुनासिब नहीं है। इससे मन को सुकून तो मिल जाता है, मगर उस मक़सद को उल्टा नुक़सान पहुँचता है जिसके लिए वह उठा था।

115. यानी कुफ़्र और शिर्क में मुब्तला लोग ख़ुदा का इनकार करनेवाले नास्तिक और बेदीन लोग जो कुछ कर रहे हैं उससे ख़ुदा की ख़ुदाई का कुछ नहीं बिगड़ता उसका एक ख़ुदा होना और ऐसा ख़ुदा होना, जो सारी ताक़तों का आज़ाद तौर पर मालिक है एक ऐसी सच्चाई है जो किसी के बदलने से बदल नहीं सकती। फिर एक दिन वह सब इनसानों को जमा करके हर एक को उसके अमल का नतीजा दिखाएगा। उसकी ताक़त और क़ुदरत के दायरे से बचकर कोई भाग नहीं सकता। इसलिए ख़ुदा हरगिज़ इस बात का ज़रूरतमन्द नहीं है कि उसकी तरफ़ से कोई उसके बाग़ियों पर जले दिल का बुख़ार निकालता फिरे और बदअख़लाक़ी और कड़वी बातों को दिल के ज़ख़्म का मरहम बनाए।

यह तो इस आयत का ताल्लुक़ ऊपर की आयत से है। लेकिन इसी आयत पर इस बात का पूरा सिलसिला ख़त्म भी हो गया है, जो पिछले दो-तीन रुकूओं से चला आ रहा है। इस पहलू से

الْمُنٰفِقِيْنَ فِئَتَيْنِ وَ اللّٰهُ اَرْكَسَهُمْ بِمَا كَسَبُوْا ؕ
اَتُرِيْدُوْنَ اَنْ تَهْدُوْا مَنْ اَضَلَّ اللّٰهُ ؕ وَمَنْ يُّضْلِلِ

(88) फिर यह तुम्हें क्या हो गया है कि मुनाफ़िक़ों के बारे में तुम्हारे बीच दो राएँ पाई जाती हैं[116] हालाँकि जो बुराइयाँ उन्होंने कमाई हैं उनकी वजह से अल्लाह उन्हें उल्टा फेर चुका है।[117] क्या तुम चाहते हो कि जिसे अल्लाह ने सीधे रास्ते पर नहीं लगाया, उसे तुम रास्ते से लगा दो? हालाँकि जिसको अल्लाह ने रास्ते से भटका दिया उसके लिए तुम

आयत का मतलब यह है कि दुनिया की ज़िन्दगी में जो आदमी जिस तरीक़े पर चाहे चलता रहे और जिस राह में अपनी कोशिशें और मेहनतें लगाना चाहता है लगाता रहे, आख़िरकार सबको एक दिन उस ख़ुदा के सामने हाज़िर होना है जिसके सिवा कोई ख़ुदा नहीं है; फिर हर एक अपनी कोशिश और अमल के नतीजे देख लेगा।

116. यहाँ बात उन मुनाफ़िक़ मुसलमानों के मसले के बारे में की गई है जो मक्का में और अरब के दूसरे हिस्सों में इस्लाम तो क़बूल कर चुके थे, मगर हिजरत करके दारुल-इस्लाम की तरफ़ चले जाने के बजाय बदस्तूर अपनी ग़ैर-मुस्लिम क़ौम के साथ रहते-बसते थे और थोड़ा या बहुत उन तमाम कार्रवाइयों में अमली तौर पर हिस्सा लेते थे जो उनकी क़ौम इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ करती थी। मुसलमानों के लिए यह मसला सख़्त पेचीदा था कि उनके साथ आख़िर क्या मामला किया जाए। कुछ लोग कहते थे कि कुछ भी हो, आख़िर ये हैं तो मुसलमान ही। कलिमा पढ़ते हैं, नमाज़ पढ़ते हैं, रोज़े रखते हैं, क़ुरआन की तिलावत करते हैं। इनके साथ ग़ैर-मुस्लिम का-सा मामला कैसे किया जा सकता है। अल्लाह ने इस रुकू (आयत-88 से 91) में इसी इख़्तिलाफ़ का फ़ैसला किया है।

इस मौक़े पर एक बात को साफ़ तौर पर समझ लेना ज़रूरी है, वरना डर है कि न सिर्फ़ इस जगह को, बल्कि क़ुरआन मजीद की उन तमाम जगहों को समझने में आदमी ठोकर खाएगा जहाँ हिजरत न करनेवाले मुसलमानों को मुनाफ़िक़ों में गिना गया है। हक़ीक़त यह है कि जब नबी *(सल्ल०)* ने मदीना की तरफ़ हिजरत की और एक छोटा-सा इलाक़ा अरब की सरज़मीन में ऐसा हासिल हो गया जहाँ एक ईमानवाले के लिए अपने दीन और ईमान के तक़ाज़ों को पूरा करना मुमकिन था, तो आम हुक्म दे दिया गया कि जहाँ-जहाँ, जिस-जिस इलाक़े और जिस-जिस क़बीले में ईमानवाले लोग कुफ़्र करनेवालों से दबे हुए हैं और इस्लामी ज़िन्दगी बसर करने की आज़ादी नहीं रखते, वहाँ से वे हिजरत करें और मदीना के दारुल-इस्लाम में आ जाएँ। उस वक़्त जो लोग हिजरत करने की ताक़त रखते थे और फिर सिर्फ़ इसलिए उठकर न आए कि उन्हें अपने घर-बार, रिश्ते-नाते के लोग और अपने फ़ायदे इस्लाम के मुक़ाबले में ज़्यादा प्यारे थे, उन सबको मुनाफ़िक़ ठहराया गया। और जो लोग हक़ीक़त में बिलकुल मजबूर थे उनको कमज़ोर लोगों में शुमार किया। जैसा कि आगे रुकू 14 (आयत, 97-100) में आ रहा है।

اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ سَبِيْلًا ۝٨٨ وَدُّوْا لَوْ تَكْفُرُوْنَ
كَمَا كَفَرُوْا فَتَكُوْنُوْنَ سَوَآءً فَلَا تَتَّخِذُوْا مِنْهُمْ
اَوْلِيَآءَ حَتّٰى يُهَاجِرُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۭ فَاِنْ تَوَلَّوْا
فَخُذُوْهُمْ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ وَجَدْتُّمُوْهُمْ ۠ وَلَا

कोई रास्ता नहीं पा सकते। (89) वे तो यह चाहते हैं कि जिस तरह वे ख़ुद कुफ़्र में पड़े हुए हैं उसी तरह तुम भी कुफ़्र में पड़ जाओ, ताकि तुम और वे सब बराबर हो जाएँ। तो उनमें से किसी को अपना दोस्त न बनाओ जब तक कि वे अल्लाह की राह में घर-बार छोड़ कर न आ जाएँ और अगर वे घर-बार छोड़ने (हिजरत) से रुके रहें तो जहाँ पाओ

अब यह ज़ाहिर है कि दारुल-कुफ़्र के रहनेवाले किसी मुसलमान को सिर्फ़ हिजरत न करने पर मुनाफ़िक़ इस सूरत में कहा जा सकता है जबकि दारुल-इस्लाम की तरफ़ से ऐसे तमाम मुसलमानों को या तो आम दावत हो या कम से कम उसने उनके लिए अपने दरवाज़े खुले रखे हों। इसमें कोई शक नहीं कि इस सूरत में वे सब मुसलमान मुनाफ़िक़ ठहरेंगे जो दारुल-कुफ़्र को दारुल-इस्लाम बनाने की कोशिश भी न कर रहे हों और ताक़त रखने के बावजूद हिजरत भी न करें। लेकिन अगर दारुल-इस्लाम की तरफ़ से न तो आम दावत ही हो और न उसने अपने दरवाज़े ही हिजरत करनेवालों के लिए खुले रखे हों तो इस सूरत में सिर्फ़ हिजरत न करना किसी आदमी को मुनाफ़िक़ न बना देगा, बल्कि वह मुनाफ़िक़ सिर्फ़ उस वक़्त कहलाएगा जबकि हक़ीक़त में कोई मुनाफ़िक़ाना काम करे।

117. यानी जिस दो रंगी और मसलिहत परस्ती और आख़िरत पर दुनिया को तरजीह (प्राथमिकता) देने का जो काम इन्होंने किया है उसकी वजह से अल्लाह ने इन्हें उसी तरफ़ फेर दिया है जिस तरफ़ से आए थे। इन्होंने कुफ़्र से निकलकर इस्लाम की तरफ़ क़दम तो ज़रूर बढ़ाए थे, लेकिन इस सरहद में आने और ठहरने के लिए यकसू हो जाने की ज़रूरत थी, हर उस फ़ायदे को क़ुरबान कर देने की ज़रूरत थी जो इस्लाम और ईमान के फ़ायदे से टकराता हो और आख़िरत पर ऐसे यक़ीन की ज़रूरत थी जिसकी बुनियाद पर आदमी इत्मीनान के साथ अपनी दुनिया को क़ुरबान कर सकता हो। यह उनको गवारा न हुआ इसलिए जिधर से आए थे उल्टे पाँव उधर ही को वापस चले गए। अब उनके मामले में इख़्तिलाफ़ का कौन-सा मौक़ा बाक़ी है।

تَتَّخِذُوا مِنْهُمْ وَلِيًّا وَّلَا نَصِيرًا ﴿٨٩﴾ إِلَّا الَّذِينَ
يَصِلُونَ إِلَىٰ قَوْمٍ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيثَاقٌ أَوْ جَاءُوكُمْ
حَصِرَتْ صُدُورُهُمْ أَن يُقَاتِلُوكُمْ أَوْ يُقَاتِلُوا
قَوْمَهُمْ ۚ وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ لَسَلَّطَهُمْ عَلَيْكُمْ فَلَقَاتَلُوكُمْ ۚ
فَإِنِ اعْتَزَلُوكُمْ فَلَمْ يُقَاتِلُوكُمْ وَأَلْقَوْا إِلَيْكُمُ
السَّلَمَ فَمَا جَعَلَ اللَّهُ لَكُمْ عَلَيْهِمْ سَبِيلًا ﴿٩٠﴾
سَتَجِدُونَ آخَرِينَ يُرِيدُونَ أَن يَأْمَنُوكُمْ وَ

उन्हें पकड़ो और क़त्ल करो[118] और उनमें से किसी को अपना दोस्त और मददगार न बनाओ। (90) अलबत्ता वे मुनाफ़िक़ इस हुक्म से अलग हैं जो किसी ऐसी क़ौम से जा मिलें जिसके साथ तुम्हारा समझौता है।[119] इसी तरह उन मुनाफ़िक़ों का मामला भी इससे अलग है जो तुम्हारे पास आते हैं और लड़ाई से उनका मन दुखी हो चुका है। न तुमसे लड़ना चाहते हैं, न अपनी क़ौम से। अल्लाह चाहता तो उनको तुम पर मुसल्लत कर देता और वे भी तुमसे लड़ते। तो अगर वे तुमसे किनारा खींच लें और लड़ने से रुके रहें और तुम्हारी तरफ़ सुलह का हाथ बढ़ाएँ तो अल्लाह ने तुम्हारे लिए उनपर हाथ बढ़ाने की कोई राह नहीं रखी है। (91) एक और तरह के मुनाफ़िक़ तुम्हें ऐसे मिलेंगे जो चाहते हैं कि

118. यह हुक्म उन मुनाफ़िक़ मुसलमानों के बारे में है जो जंग कर रही इस्लाम मुख़ालिफ़ क़ौम से ताल्लुक़ रखते हों और इस्लामी हुकूमत के ख़िलाफ़ दुश्मनाना कार्रवाइयों में अमली तौर पर हिस्सा लें।

119. मुनाफ़िक़ों को इस हुक्म से अलग नही किया गया है कि 'उन्हें दोस्त और मददगार न बनाया जाए, बल्कि इस से अलग रखा गया है कि 'उन्हें पकड़ा और मारा जाए।' मतलब यह है कि अगर ये मुनाफ़िक़, जिनका क़त्ल किया जाना वाजिब है, किसी ऐसी इस्लाम-मुख़ालिफ़ क़ौम की हदों में जाकर पनाह लें जिसके साथ इस्लामी हुकूमत का समझौता हो चुका हो, तो उसके इलाक़े में उनका पीछा नहीं किया जाएगा और न यही जाइज़ होगा कि दारुल-इस्लाम का कोई

يَأْمَنُوْا قَوْمَهُمْ ۗ كُلَّمَا رُدُّوْٓا اِلَى الْفِتْنَةِ اُرْكِسُوْا
فِيْهَا ۚ فَاِنْ لَّمْ يَعْتَزِلُوْكُمْ وَيُلْقُوْٓا اِلَيْكُمُ السَّلَمَ
وَيَكُفُّوْٓا اَيْدِيَهُمْ فَخُذُوْهُمْ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ
ثَقِفْتُمُوْهُمْ ۗ وَاُولٰٓئِكُمْ جَعَلْنَا لَكُمْ عَلَيْهِمْ سُلْطٰنًا
مُّبِيْنًا ﴿٩١﴾ وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ اَنْ يَّقْتُلَ مُؤْمِنًا اِلَّا
خَطَـًٔا ۚ وَمَنْ قَتَلَ مُؤْمِنًا خَطَـًٔا فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ

तुमसे भी अमन में रहें और अपनी क़ौम से भी। मगर जब कभी फ़ितने का मौक़ा पाएँगे, उसमें कूद पड़ेंगे। ऐसे लोग अगर तुम्हारे मुक़ाबले से रुके न रहें और सुलह व सलामती तुम्हारे सामने न रखें और अपने हाथ न रोकें तो जहाँ वे मिलें उन्हें पकड़ो और मारो, उनपर हाथ उठाने के लिए हमने तुम्हें खुली सनद दे दी है।

(92) किसी ईमानवाले का यह काम नहीं है कि दूसरे ईमानवाले को क़त्ल करे यह और बात है कि उससे चूक हो जाए।[120] और जो आदमी किसी ईमानवाले को ग़लती से क़त्ल कर दे तो उसके गुनाह का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) यह है कि एक ईमानवाले आदमी

मुसलमान ग़ैर-जानिबदार मुल्क में किसी क़त्ल के लायक़ मुनाफ़िक़ को पाए और उसे मार डाले। एहतिराम असल में मुनाफ़िक़ के ख़ून का नहीं, बल्कि समझौते का है।

120. यहाँ उन मुनाफ़िक़ मुसलमानों का ज़िक्र नहीं है जिनके क़त्ल की ऊपर इजाज़त दी गई है, बल्कि उन मुसलमानों का ज़िक्र है जो या तो दारुल-इस्लाम के रहनेवाले हों या अगर दारुल-हरब या दारुल-कुफ़्र में भी हों तो इस्लाम-दुश्मनों की कार्रवाइयों में उनके शरीक होने का कोई सुबूत न हो। उस वक़्त बहुत-से लोग ऐसे भी थे जो इस्लाम क़बूल करने के बाद अपनी वाक़ई मजबूरियों की वजह से इस्लाम-दुश्मन क़बीलों के दर्मियान ठहरे हुए थे। और ज़्यादातर ऐसे वाक़िए पेश आ जाते थे कि मुसलमान किसी दुश्मन क़बीले पर हमला करते और वहाँ अनजाने में कोई मुसलमान उनके हाथ से मारा जाता था। इसलिए अल्लाह ने यहाँ उस सूरत का हुक्म बयान किया है जबकि ग़लती से कोई मुसलमान किसी मुसलमान के हाथ से मारा जाए।

مُّؤْمِنَةٍ وَّدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖٓ اِلَّآ اَنْ
يَّصَّدَّقُوْا ۚ فَاِنْ كَانَ مِنْ قَوْمٍ عَدُوٍّ لَّكُمْ وَهُوَ
مُؤْمِنٌ فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ۚ وَاِنْ كَانَ
مِنْ قَوْمٍ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ فَدِيَةٌ
مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖ وَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ۚ

को गुलामी से आज़ाद करे[121] और जो आदमी क़त्ल हुआ है उसके वारिसों को इसका ख़ूँबहा (हत्या-दण्ड)[122] दे यह और बात है कि वे ख़ूँबहा माफ़ कर दें। लेकिन अगर वह मुसलमान (क़त्ल होनेवाला) किसी ऐसी क़ौम से था जिससे तुम्हारी दुश्मनी हो तो इसका कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) एक ईमानवाले ग़ुलाम को आज़ाद करना है। और अगर वह किसी ऐसी ग़ैर-मुस्लिम क़ौम का आदमी था जिससे तुम्हारा समझौता हो तो उसके वारिसों को ख़ूँबहा दिया जाएगा और एक ईमानवाले ग़ुलाम को आज़ाद करना होगा।[123] फिर जो

121. चूँकि मक़्तूल (क़त्ल किया गया आदमी) ईमानवाला था, इसलिए उसके क़त्ल का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) एक ईमानवाले ग़ुलाम को आज़ाद कराना क़रार दिया गया।

122. नबी *(सल्ल०)* ने ख़ूँबहा (हत्या-दण्ड) की तादाद सौ ऊँट या दो सौ गायें (या भैंसें) या दो हज़ार बकरियाँ तय की हैं। अगर दूसरी किसी शक्ल में कोई आदमी ख़ूँबहा देना चाहे तो उसकी तादाद इन्हीं चीज़ों की बाज़ारी क़ीमत के लिहाज़ से तय की जाएगी। मिसाल के तौर पर नबी *(सल्ल०)* के ज़माने में नक़द ख़ूँबहा देनेवालों के लिए आठ सौ दीनार या आठ हज़ार दिरहम तय किए थे। जब हज़रत उमर *(रज़ि०)* की हुकूमत का ज़माना आया तो उन्होंने कहा कि ऊँटों की क़ीमत अब चढ़ गई है, इसलिए अब सोने के सिक्के में एक हज़ार दीनार या चाँदी के सिक्के में 12 हज़ार दिरहम ख़ूँबहा दिलवाया जाएगा। मगर वाज़ेह रहे कि ख़ूँबहा की यह तादाद जो तय की गई है उस सूरत की नहीं है जबकि जान-बूझकर क़त्ल किया गया हो, बल्कि ग़लती से क़त्ल हो जाने की सूरत के लिए है।

123. इस आयत से जो हुक्म सामने आते हैं उनका ख़ुलासा यह है—

अगर मक़्तूल (मृतक) दारुल-इस्लाम का बाशिन्दा हो तो उसके क़ातिल को ख़ूँबहा भी देना

فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ شَهْرَيْنِ مُتَتَابِعَيْنِ تَوْبَةً
مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝ وَمَنْ
يَّقْتُلْ مُؤْمِنًا مُّتَعَمِّدًا فَجَزَآؤُهٗ جَهَنَّمُ خٰلِدًا
فِيْهَا وَغَضِبَ اللّٰهُ عَلَيْهِ وَلَعَنَهٗ وَاَعَدَّ لَهٗ عَذَابًا
عَظِيْمًا ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا ضَرَبْتُمْ

ग़ुलाम न पाए वह लगातार दो महीने के रोज़े रखे।[124] यह इस गुनाह पर अल्लाह से तौबा करने का तरीक़ा है[125] और अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और गहरी समझ वाला है। (93) रहा वह आदमी जो किसी ईमानवाले को जान-बूझ कर क़त्ल करे तो उसकी सज़ा जहन्नम है जिसमें वह हमेशा रहेगा। उसपर अल्लाह का ग़ज़ब और उसकी लानत है और अल्लाह ने उसके लिए सख़्त अज़ाब तैयार कर रखा है।

(94) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! जब तुम अल्लाह की राह में लड़ने के लिए

होगा और ख़ुदा से अपने क़ुसूर की माफ़ी माँगने के लिए एक ग़ुलाम भी आज़ाद करना होगा।

अगर वह दारुल-हरब का बाशिन्दा हो तो क़ातिल को सिर्फ़ ग़ुलाम आज़ाद करना होगा। उसका ख़ूँबहा (हत्या-दण्ड) कुछ नहीं है।

अगर वह किसी ऐसे दारुल-कुफ़्र का बाशिन्दा हो जिससे इस्लामी हुकूमत का समझौता हो तो क़ातिल को एक ग़ुलाम आज़ाद करना होगा और उसके अलावा ख़ूँबहा भी देना होगा। लेकिन ख़ूँबहा की मिक़दार वही होगी जितनी उस क़ौम, जिसके साथ समझौता हुआ है, के किसी ग़ैर-मुस्लिम आदमी को क़त्ल कर देने की सूरत में समझौते के मुताबिक़ दी जानी चाहिए।

124. यानी रोज़े लगातार रखे जाएँ, बीच में एक रोज़ा भी छूटने न पाए। अगर कोई आदमी शरई मजबूरी के बग़ैर एक रोज़ा भी बीच में छोड़ दे तो नए सिरे से सारे रोज़ों का सिलसिला शुरू करना पड़ेगा।

125. यानी यह 'जुर्माना' नहीं, बल्कि 'तौबा' और 'कफ़्फ़ारा' है। जुर्माने में शर्मिन्दगी की कोई नीयत और रूह नहीं होती, बल्कि आम तौर से वह सख़्त नागवारी के साथ मजबूरी की हालत में दिया जाता है और बेज़ारी और कड़ुवाहट अपने पीछे छोड़ जाता है। इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह चाहता है कि जिस बन्दे से ग़लती हुई है वह इबादत, नेकी के कामों और अच्छे काम और लोगों का हक़ अदा करके उसका असर अपनी रूह पर से धो दे और शर्मिन्दगी और इस ग़लती पर

فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَتَبَيَّنُوْا وَلَا تَقُوْلُوْا لِمَنْ اَلْقٰۤى
اِلَيْكُمُ السَّلٰمَ لَسْتَ مُؤْمِنًا ۚ تَبْتَغُوْنَ عَرَضَ
الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۫ فَعِنْدَ اللّٰهِ مَغَانِمُ كَثِيْرَةٌ ؕ كَذٰلِكَ
كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلُ فَمَنَّ اللّٰهُ عَلَيْكُمْ فَتَبَيَّنُوْا ؕ اِنَّ

निकलो तो दोस्त और दुश्मन में फ़र्क़ करो और जो तुम्हें सलाम करे उसे फ़ौरन न कह दो कि तुम ईमान नहीं रखते।[126] अगर तुम दुनियवी फ़ायदा चाहते हो तो अल्लाह के पास तुम्हारे लिए बहुत-से माल हैं। आख़िर इसी हालत में तुम ख़ुद भी तो इससे पहले रह

अफ़सोस करते हुए अल्लाह की तरफ़ रुजू करे ताकि न सिर्फ़ यह गुनाह माफ़ हो बल्कि आगे के लिए उसका नफ़्स (मन) ऐसी ग़लतियों को दोहराने से भी महफ़ूज़ रहे। कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) के मानी हैं 'छिपानेवाली चीज़'। किसी भलाई के काम को गुनाह का क़फ़्फ़ारा ठहराने का मतलब यह है कि यह नेकी उस गुनाह पर छा जाती है और उसे ढाँक लेती है जैसे किसी दीवार पर दाग़ लग गया हो और इस पर सफ़ेदी फेरकर दाग़ का असर मिटा दिया जाए।

126. इस्लाम के शुरुआती ज़माने में 'अस्सलामु-अलैकुम' का लफ्ज़ मुसलमानों के लिए पहचान और अलामत की हैसियत रखता था और एक मुसलमान दूसरे मुसलमान को देख कर ये लफ्ज़ इस मानी में इस्तेमाल करता था कि मैं तुम्हारे ही गरोह का आदमी हूँ, दोस्त और ख़ैरख़ाह हूँ, मेरे पास तुम्हारे लिए सलामती और आफ़ियत के सिवा कुछ नहीं है, इसलिए न तुम मुझसे दुश्मनी करो और न मेरी तरफ़ से दुश्मनी और नुक़सान का अन्देशा रखो। जिस तरह फ़ौज में एक लफ्ज़ पहचान (Pass word) के तौर पर मुक़र्रर किया जाता है और रात के वक़्त एक फ़ौज के आदमी एक दूसरे के पास से गुज़रते हुए उसे इस मक़सद के लिए इस्तेमाल करते हैं कि दुश्मन फ़ौज के आदमियों से अलग हों, इसी तरह सलाम का लफ्ज़ भी मुसलमानों में पहचान के तौर पर मुक़र्रर किया गया था। ख़ास तौर से उस ज़माने में इस पहचान की अहमियत इस वजह से और भी ज़्यादा थी कि उस वक़्त अरब के नए मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों के दर्मियान लिबास, ज़बान, और किसी दूसरी चीज़ में कोई नुमायाँ फ़र्क़ नहीं था; जिसकी वजह से एक मुसलमान सरसरी नज़र में दूसरे मुसलमान को पहचान नहीं पाता।

लेकिन लड़ाइयों के मौक़े पर एक पेचीदगी यह सामने आती थी कि मुसलमान जब किसी दुश्मन गरोह पर हमला करते और वहाँ कोई मुसलमान इस लपेट में आ जाता तो वह हमला करनेवाले मुसलमानों को यह बताने के लिए कि वह भी उनका दीनी भाई है ''अस्सलामु-अलैकुम' या 'ला-इला-ह इल्लल्लाह' पुकारता था, मगर मुसलमानों को इस पर यह शक होता था कि यह कोई इस्लाम-दुश्मन है जो सिर्फ़ अपनी जान बचाने के लिए बहाना कर रहा है, इसलिए

اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ﴿٩٤﴾ لَا يَسْتَوِى
الْقٰعِدُوْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ غَيْرُ اُولِى الضَّرَرِ وَ
الْمُجٰهِدُوْنَ فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ بِاَمْوَالِهِمْ وَ اَنْفُسِهِمْ
فَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ بِاَمْوَالِهِمْ وَ اَنْفُسِهِمْ

चुके हो। फिर अल्लाह ने तुमपर एहसान किया,[127] तो जाँच-परख से काम लो जो कुछ तुम करते हो अल्लाह को उसकी ख़बर है।

(95) मुसलमानों में से वे लोग जो किसी मजबूरी के बग़ैर घर बैठे रहते हैं और वे जो अल्लाह की राह में जान और माल से जान-तोड़ कोशिश करते हैं, दोनों की हैसियत बराबर नहीं है। अल्लाह ने बैठनेवालों के मुक़ाबले जान-माल से जिहाद करनेवालों का

कभी-कभी वह उसे क़त्ल कर बैठते थे और उसकी चीज़ें ग़नीमत के माल के तौर पर ले लेते थे। नबी *(सल्ल०)* ने ऐसे हर मौक़े पर निहायत सख़्ती के साथ ख़बरदार किया। मगर इस तरह के वाक़िए बराबर पेश आते रहे। आख़िरकार अल्लाह ने क़ुरआन में इस पेचीदा मसले को हल कर दिया। आयत का मक़सद यह है कि जो आदमी अपने आपको मुसलमान की हैसियत से पेश कर रहा है उसके बारे में तुम्हें सरसरी तौर पर यह फ़ैसला कर देने का हक़ नहीं है कि वह सिर्फ़ जान बचाने के लिए झूठ बोल रहा है। हो सकता है कि वह सच्चा हो और हो सकता है कि झूठा हो। हक़ीक़त तो छान-बीन से ही मालूम हो सकती है। छान-बीन के बग़ैर छोड़ देने में अगर यह बात मुमकिन है कि एक दुश्मन झूठ बोलकर जान बचा ले जाए तो क़त्ल कर देने में भी मुमकिन है कि एक ईमानवाला बे-गुनाह तुम्हारे हाथ से मारा जाए। और बहरहाल तुम्हारा एक दुश्मन को छोड़ देने में ग़लती करना उससे कई गुना ज़्यादा बेहतर है कि तुम एक ईमानवाले को क़त्ल करने की ग़लती करो।

127. यानी एक वक़्त तुम पर भी ऐसा गुज़र चुका है कि तुम इनफ़िरादी तौर से अलग-अलग काफ़िर क़बीलों में बिखरे हुए थे, अपने इस्लाम को ज़ुल्मो-सितम के डर से छिपाने पर मजबूर थे और तुम्हारे पास ईमान के ज़बानी इक़रार के सिवा अपने ईमान का कोई सुबूत मौजूद न था। अब यह अल्लाह का एहसान है कि उसने तुमको इज्तिमाई ज़िन्दगी दी और तुम इस क़ाबिल हुए कि काफ़िरों के मुक़ाबिले में इस्लाम का झण्डा बुलन्द करने उठे हो। इस एहसान का यह कोई सही शुक्रिया नहीं है कि जो मुसलमान अभी पहली हालत में पड़े हुए हैं उनके साथ तुम नरमी और रिआयत से काम न लो।

عَلَى الْقٰعِدِيْنَ دَرَجَةً ۭ وَكُلًّا وَّعَدَ اللّٰهُ

الْحُسْنٰى ۭ وَفَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ عَلَى الْقٰعِدِيْنَ

اَجْرًا عَظِيْمًا ۝٩٥ دَرَجٰتٍ مِّنْهُ وَمَغْفِرَةً وَّرَحْمَةً ۭ

ع وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝٩٦ اِنَّ الَّذِيْنَ تَوَفّٰىھُمُ

الْمَلٰۗىِٕكَةُ ظَالِمِيْٓ اَنْفُسِهِمْ قَالُوْا فِيْمَ كُنْتُمْ ۭ

दर्जा बड़ा रखा है। हालाँकि हरेक के लिए अल्लाह ने भलाई ही का वादा फ़रमाया है, मगर उसके यहाँ जान-तोड़ कोशिश करनेवालों की ख़िदमतों का बदला बैठे रहनेवालों से बहुत ज़्यादा है।[128] (96) उनके लिए अल्लाह की तरफ़ से बड़े दर्जे हैं और मग़फ़िरत और रहमत है और अल्लाह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(97) जो लोग अपने आप पर ज़ुल्म कर रहे थे[129] उनकी रूहें जब फ़रिश्तों ने क़ब्ज़

---

128. यहाँ उन बैठनेवालों का ज़िक्र नहीं है जिनको जिहाद पर जाने का हुक्म दिया जाए और वे बहाने करके बैठे रहें या आम एलान हो और जिहाद फ़र्ज़े-ऐन (यानी सबके लिए ज़रूरी) हो जाए, फिर भी वे जंग पर जाने से जी चुराएँ, बल्कि यहाँ ज़िक्र उन बैठनेवालों का है जो जिहाद के फ़र्ज़े-किफ़ाया (यानी जिस में सिर्फ़ कुछ लोगों का शरीक होना) की सूरत में मैदाने-जंग की तरफ़ जाने के बजाय दूसरे कामों में लगे रहें। पहली दो सूरतों में जिहाद के लिए न निकलनेवाला सिर्फ़ मुनाफ़िक़ ही हो सकता है और उसके लिए अल्लाह की तरफ़ से किसी भलाई का वादा नहीं है सिवाय इसके कि वह किसी हक़ीक़ी मजबूरी का शिकार हो। इसके बरख़िलाफ़ यह आख़िरी सूरत ऐसी है जिसमें इस्लामी जमाअत की पूरी फ़ौजी ताक़त की ज़रूरत नहीं होती, बल्कि सिर्फ़ उसके एक हिस्से की ज़रूरत होती है। इस सूरत में अगर हाकिम की तरफ़ से अपील की जाए कि कौन हैं सर की बाज़ी लगाने वाले जो फ़ुलाँ मुहिम के लिए अपने आप को पेश करते हैं, तो जो लोग इस पुकार को ख़ुशी के साथ क़बूल करने के लिए उठ खड़े हों वे बेहतर हैं उन लोगों के मुक़ाबले में, जो दूसरे कामों में लगे रहें, चाहे वे दूसरे काम भी अपने-आप में फ़ायदेमन्द ही हों।

129. मुराद वे लोग हैं जो इस्लाम क़बूल करने के बाद भी अभी तक बिना किसी मजबूरी और बिना किसी ज़रूरी वजह के अपनी ग़ैर-मुस्लिम क़ौम के दर्मियान रह रहे थे और आधे मुसलमान और आधे ग़ैर-मुस्लिम की ज़िन्दगी जीने पर राज़ी थे। जब कि एक दारुल-इस्लाम (इस्लामी राज्य) क़ायम हो चुका था, जिसकी तरफ़ हिजरत करके अपने दीन और अक़ीदे के मुताबिक़ पूरी

قَالُوْا كُنَّا مُسْتَضْعَفِيْنَ فِي الْاَرْضِ ؕ قَالُوْٓا اَلَمْ
تَكُنْ اَرْضُ اللّٰهِ وَاسِعَةً فَتُهَاجِرُوْا فِيْهَا ؕ
فَاُولٰٓئِكَ مَاْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ ؕ وَسَآءَتْ مَصِيْرًا ﴿۹۷﴾
اِلَّا الْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَ النِّسَآءِ وَ
الْوِلْدَانِ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ حِيْلَةً وَّلَا يَهْتَدُوْنَ
سَبِيْلًا ﴿۹۸﴾ فَاُولٰٓئِكَ عَسَى اللّٰهُ اَنْ يَّعْفُوَ عَنْهُمْ ؕ
وَكَانَ اللّٰهُ عَفُوًّا غَفُوْرًا ﴿۹۹﴾ وَمَنْ يُّهَاجِرْ فِيْ

कीं तो उनसे पूछा कि ये तुम किस हाल में थे? उन्होंने जवाब दिया कि हम ज़मीन में कमज़ोर और मजबूर थे। फ़रिश्तों ने कहा, "क्या ख़ुदा की ज़मीन कुशादा न थी कि तुम उसमें घर-बार छोडकर कहीं चले जाते?"[130] ये वे लोग हैं जिनका ठिकाना जहन्नम है और वह बड़ा ही बुरा ठिकाना है। (98) हाँ, जो मर्द, औरतें और बच्चे वाक़ई बेबस हैं और निकलने का कोई रास्ता और ज़रीआ नहीं पाते, (99) बहुत मुमकिन है कि अल्लाह उन्हें माफ़ कर दे। अल्लाह बड़ा माफ़ करनेवाला और दरगुज़र करनेवाला है। (100) जो

इस्लामी ज़िन्दगी बसर करना उनके लिए मुमकिन हो गया था। यही उनका अपने आप पर ज़ुल्म था; क्योंकि उनको पूरी इस्लामी ज़िन्दगी के मुक़ाबले में उस आधे कुफ़्र और आधे इस्लाम पर जिस चीज़ ने मुत्मइन कर रखा था वह कोई वाक़ई में मजबूरी नहीं थी, बल्कि सिर्फ़ अपने मन के ऐश और आराम और अपने ख़ानदान, अपनी जायदाद और मिल्कियत और अपने दुनियवी फ़ायदों की मुहब्बत थी जिसे उन्होंने अपने दीन पर तरजीह दी। (तशरीह के लिए देखें इसी सूरा का हाशिया-116)

130. यानी जब एक जगह ख़ुदा के बाग़ियों का ग़लबा था और ख़ुदा के दीन के क़ानून पर अमल करना मुमकिन न था, तो वहाँ रहना क्या ज़रूरी था? क्यों न उस जगह को छोड़कर किसी ऐसी सरज़मीन की तरफ़ चले गए, जहाँ अल्लाह के क़ानून की पैरवी मुमकिन होती?

سَبِيْلِ اللّٰهِ يَجِدْ فِي الْاَرْضِ مُرٰغَمًا كَثِيْرًا
وَّسَعَةً ؕ وَمَنْ يَّخْرُجْ مِنْۢ بَيْتِهٖ مُهَاجِرًا اِلَى
اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ثُمَّ يُدْرِكْهُ الْمَوْتُ فَقَدْ وَقَعَ
اَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿١٠٠﴾

कोई अल्लाह की राह में हिजरत करेगा वह ज़मीन में पनाह लेने के लिए बहुत जगह और गुज़र-बसर के लिए बड़ी गुंजाइश पाएगा और जो अपने घर से सब कुछ छोड़कर अल्लाह और रसूल की तरफ़ हिजरत के लिए निकले, फिर रास्ते ही में उसे मौत आ जाए उसका बदला अल्लाह के ज़िम्मे वाजिब हो गया, अल्लाह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहमवाला है।[131]

131. यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिए कि जो आदमी अल्लाह के दीन पर ईमान लाया हो उसके लिए ग़ैर-इस्लामी निज़ाम के तहत ज़िन्दगी बसर करना सिर्फ़ दो ही सूरतों में जाइज़ हो सकता है। एक यह कि वह इस्लाम को इस सरज़मीन में ग़ालिब करने और कुफ़्र के निज़ाम को इस्लामी निज़ाम में बदलने की कोशिश और जिद्दोजुहद करता रहे, जिस तरह नबी और उनके शुरू के पैरोकार (अनुयायी) करते रहे हैं। दूसरे यह कि वह हक़ीक़त में वहाँ से निकलने की कोई राह न पाता हो और सख़्त नफ़रत और बेदिली के साथ वहाँ मजबूरी की हालत में ठहरा हुआ हो। इन दो सूरतों के सिवाय हर सूरत में दारुल-कुफ़्र में ठहरे रहना अपने-आप में एक गुनाह है और इस गुनाह के लिए यह वजह कोई बहुत वज़नी वजह नहीं है कि हम दुनिया में कोई ऐसा दारुल-इस्लाम पाते ही नहीं हैं, जहाँ हम हिजरत करके जा सकें। अगर कोई दारुल-इस्लाम मौजूद नहीं है, तो क्या ख़ुदा की ज़मीन में कोई पहाड़ या कोई जंगल भी ऐसा नहीं है जहाँ आदमी पेड़ों के पत्ते खाकर और बकरियों का दूध पीकर गुज़र कर सकता हो और कुफ़्र के अहकाम की इताअत से बचा रहे?

कुछ लोगों को एक हदीस से ग़लतफ़हमी हुई है जिसमें कहा गया है कि 'मक्का फ़तह होने के बाद अब हिजरत नहीं है।' हालाँकि असल में इस हदीस में कोई ऐसा हुक्म नहीं दिया गया है कि जो हमेशा लागू रहेगा, बल्कि सिर्फ़ उस वक़्त के हालात में अरबवालों से ऐसा कहा गया था। जब तक अरब का ज़्यादातर हिस्सा दारुल-कुफ़्र और दारुल-हरब था और सिर्फ़ मदीना और उसके आस-पास के इलाक़ों में इस्लामी अहकाम लागू हो रहे थे, मुसलमानों के लिए ताकीदी हुक्म था कि हर तरफ़ से सिमटकर दारुल-इस्लाम में आ जाएँ। मगर जब फ़तह मक्का के बाद अरब में कुफ़्र का ज़ोर टूट गया और क़रीब-क़रीब पूरा मुल्क इस्लाम के तहत आ गया तो नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि अब हिजरत की ज़रूरत बाक़ी नहीं रही है। इससे यह मुराद हरगिज़

وَاِذَا ضَرَبۡتُمۡ فِى الۡاَرۡضِ فَلَيۡسَ عَلَيۡكُمۡ جُنَاحٌ
اَنۡ تَقۡصُرُوۡا مِنَ الصَّلٰوةِ ‌ۖ اِنۡ خِفۡتُمۡ اَنۡ يَّفۡتِنَكُمُ

(101) और जब तुम लोग सफ़र के लिए निकलो तो इसमें कोई हरज नहीं अगर नमाज़ को मुख़्तसर कर दो।[132] (ख़ास तौर से) जबकि तुम्हें डर हो कि कुफ़्र

नहीं था कि तमाम दुनिया के मुसलमानों के लिए तमाम हालात में क़ियामत तक के लिए हिजरत का फ़र्ज़ होना ख़त्म कर दिया गया।

132. उस वक़्त के सफ़र में जबकि अम्न और सुकून के हालात हों नमाज़ को मुख़्तसर करना (क़स्र) यह है कि जिन वक़्तों की नमाज़ में चार रकअतें फ़र्ज़ हैं उनमें दो रकअतें पढ़ी जाएँ और अगर जंग की हालत हो तो उसमें क़स्र की कोई हद तय नहीं है। जंगी हालात जिस तरह भी इजाज़त दें, नमाज़ पढ़ी जाए। जमाअत का मौक़ा हो तो जमाअत से पढ़ो वरना अकेले-अकेले करके ही सही। क़िबले की तरफ़ रुख़ नहीं कर सकते हो तो जिधर रुख़ हो, सवारी पर बैठे हुए और चलते हुए भी पढ़ सकते हो। रुकू और सजदा मुमकिन न हो तो इशारे ही से सही। ज़रूरत पड़े तो नमाज़ ही की हालत में चल भी सकते हो। कपड़ों को ख़ून लगा हुआ हो तब भी कोई हरज नहीं। इन सब आसानियों के बावजूद अगर ऐसी ख़तरनाक हालत हो कि किसी तरह नमाज़ न पढ़ी जा सके तो मजबूरन आगे के लिए टाल दिया जाए, जैसा कि ख़न्दक़ की लड़ाई के मौक़े पर हुआ।

इस बात में उलमा की राएँ अलग-अलग हैं कि सफ़र में सिर्फ़ फ़र्ज़ पढ़े जाएँ या सुन्नतें भी। नबी *(सल्ल०)* के अमल से जो कुछ साबित है वह यह है कि आप *(सल्ल०)* सफ़र में फ़ज्र की सुन्नतों और इशा के वित्र को तो पाबन्दी से पढ़ते थे मगर बाक़ी वक़्तों में सिर्फ़ फ़र्ज़ पढ़ते थे, आप *(सल्ल०)* ने सुन्नतें पाबन्दी से पढ़ी हों यह साबित नहीं है। अलबत्ता नफ़्ल नमाज़ों का जब मौक़ा मिलता था पढ़ लिया करते थे, यहाँ तक कि सवारी पर बैठे हुए भी पढ़ते रहते थे। इसी वजह से हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि०)* ने लोगों को सफ़र में फ़ज्र के सिवा दूसरे वक़्तों की सुन्नतें पढ़ने से मना किया है। मगर बहुत-से आलिम सुन्नतों को छोड़ देने और पढ़ने दोनों को जाइज़ क़रार देते हैं, और उसे बन्दे के इख़्तियार पर छोड़ देते हैं। हनफ़ी उलमा ने जो रास्ता इख़्तियार किया है वह यह है कि मुसाफ़िर जब रास्ता तय कर रहा हो तो सुन्नतें न पढ़ना बेहतर है और जब किसी मक़ाम पर ठहरे और इत्मीनान हासिल हो तो पढ़ना बेहतर है।

जिस सफ़र में क़स्र किया जा सकता है उसके लिए कुछ इमामों (उलमा) ने यह शर्त लगाई है कि वह सफ़र अल्लाह के रास्ते में होना चाहिए, जैसे जिहाद, हज, उमरा और इल्म हासिल करना वग़ैरा। इब्ने-उमर, इब्ने-मसऊद *(रज़ि०)* और अता का यही फ़तवा है। इमाम शाफ़ई *(रह०)* और इमाम अहमद कहते हैं कि सफ़र किसी ऐसे मक़सद के लिए होना चाहिए जो शरीअत में जाइज़ हो, हराम और नाजाइज़ मक़सद के लिए जो सफ़र किया जाए उसमें क़स्र की इजाज़त से

फ़ायदा उठाने का किसी को हक़ नहीं है। हनफ़ी उलमा कहते हैं कि क़सर हर सफ़र में किया जा सकता है, रही यह बात कि सफ़र किस तरह का है तो वह अपने आप में इनाम या सज़ा का हक़दार हो सकता है, मगर क़सर की इजाज़त पर उसका कोई असर नहीं पड़ता।

ऊपर आयत के तर्जमे में 'हरज नहीं' आया है जिसका मतलब कुछ इमामों (आलिमों) ने यह समझा है कि सफ़र में क़सर करना ज़रूरी नहीं है बल्कि सिर्फ़ इसकी इजाज़त है। आदमी चाहे तो इससे फ़ायदा उठाए वरना पूरी नमाज़ पढ़े। यही राय इमाम शाफ़ई *(रह०)* ने इख़्तियार की है। हालाँकि वे क़सर करने को बेहतर कहते हैं और क़सर न करने के बारे में कहते हैं कि वह बेहतर चीज़ का छोड़ देना है। इमाम अहमद *(रह०)* के नज़दीक क़सर करना वाजिब तो नहीं है मगर न करना मकरूह नापसन्दीदा है। इमाम अबू-हनीफ़ा *(रह०)* के नज़दीक क़सर करना वाजिब है और यही राय एक रिवायत में इमाम मालिक *(रह०)* से बयान की गई है। हदीस से साबित है कि नबी *(सल्ल०)* ने हमेशा सफ़र में क़सर किया है और किसी भरोसेमन्द रिवायत में यह बात नहीं बयान हुई है कि आप *(सल्ल०)* ने कभी सफ़र में चार रकअतें पढ़ी हों। इब्ने-उमर फ़रमाते हैं कि मैं नबी *(सल्ल०)* और अबू-बकर और उमर और उस्मान *(रज़ि०)* के साथ सफ़रों में रहा हूँ और कभी नहीं देखा कि उन्होंने क़सर न किया हो। इसी की ताईद में इब्ने-अब्बास और दूसरे बहुत-से सहाबा से भी मुस्तनद रिवायतें बयान हुई हैं। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* ने जब हज के मौक़े पर मिना में चार रकअतें पढ़ाईं तो सहाबा ने इस पर एतिराज़ किया और हज़रत उस्मान ने यह जवाब देकर लोगों को मुत्मइन किया कि मैंने मक्का में शादी कर ली है, और चूँकि नबी *(सल्ल०)* से मैंने सुना है कि जो आदमी किसी शहर में शादी कर ले तो वह मानो उस शहर का बाशिन्दा है। इसलिए मैंने यहाँ क़सर नहीं किया। इन बहुत-सी रिवायतों के ख़िलाफ़ दो रिवायतें हज़रत आइशा *(रज़ि०)* से बयान हुई हैं, जिनसे मालूम होता है कि क़सर करना और पूरी नमाज़ पढ़ना दोनों ठीक हैं, लेकिन ये रिवायतें सनद के लिहाज़ से कमज़ोर होने के अलावा ख़ुद हज़रत आइशा *(रज़ि०)* ही के साबित-शुदा मसलक के ख़िलाफ़ है। अलबत्ता यह सही है कि एक हालत ऐसी भी होती है जिसमें आदमी सफ़र और क़ियाम दोनों के बीच होता है जिसमें एक ही वक़्ती (अस्थायी) क़ियामगाह पर मौक़े के लिहाज़ से कभी क़सर कर सकते हैं और भी पूरी नमाज़ पढ़ सकते हैं। और शायद हज़रत आइशा *(रज़ि०)* ने इसी हालत के बारे में फ़रमाया होगा कि नबी *(सल्ल०)* ने सफ़र में क़सर भी किया है और पूरी भी पढ़ी है। रहे क़ुरआन के ये अलफ़ाज़ कि 'हरज नहीं, अगर मुख़्तसर (क़सर) करो' तो इनकी नज़ीर सूरा-2, अल-बक़रा के रुकू 19 (आयत-153 से 163) में गुज़र चुकी है, जहाँ सफ़ा और मरवा के बीच सई के बारे में भी यही अलफ़ाज़ कहे गए हैं, हालाँकि यह सई हज के अरकान में से है और वाजिब है। असल में दोनों जगह यह कहने का मक़सद लोगों के इस अन्देशे को दूर करना है कि ऐसा करने से कहीं कोई गुनाह तो लाज़िम नहीं आएगा या सवाब में कमी तो नहीं होगी।

इस बात में भी इख़्तिलाफ़ पाया जाता है कि कितने दूर सफ़र पर क़सर किया जा सकता है। ज़ाहिरिया के नज़दीक हर सफ़र में क़सर किया जा सकता है, चाहे कम हो या ज़्यादा। इमाम मालिक के नज़दीक 48 मील या एक दिन-रात से कम के सफ़र में क़सर नहीं है। यही राय

الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ۭ اِنَّ الْكٰفِرِيْنَ كَانُوْا لَكُمْ عَدُوًّا

करनेवाले लोग (दुश्मन) तुम्हें सताएँगे[133], क्योंकि वे खुल्लम-खुल्ला तुम्हारी दुश्मनी

इमाम अहमद *(रह०)* की है। इब्ने-अब्बास का भी यही मानना है और इमाम शाफ़ई *(रह०)* से भी एक बयान इसकी ताईद में है। हज़रत अनस 15 मील के सफ़र में क़स्र करना जाइज़ समझते हैं। इमाम औज़ाई और इमाम ज़ुहरी, हज़रत उमर *(रज़ि०)* की इस राय को लेते हैं कि एक दिन का सफ़र क़स्र के लिए काफ़ी है। हसन बसरी *(रह०)* दो दिन और इमाम अबू-यूसुफ़ दो दिन से ज़्यादा की दूरी के सफ़र में क़स्र को जाइज़ समझते हैं। इमाम अबू-हनीफ़ा के नज़दीक जिस सफ़र में पैदल या ऊँट की सवारी से तीन दिन लगते हों (यानी लगभग 18 फ़रसंग या 54 मील) उसमें क़स्र किया जा सकता है। यही राय इब्ने-उमर, इब्ने-मसऊद और हज़रत उसमान *(रज़ि०)* की है।

सफ़र में क़ियाम के दौरान कितने दिन तक क़स्र किया जा सकता है, बहुत-से इमामों (आलिमों) के दर्मियान इस में भी इख़्तिलाफ़ पाया जाता है। इमाम अहमद *(रह०)* के नज़दीक जहाँ आदमी ने चार दिन ठहरने का इरादा कर लिया हो वहाँ पूरी नमाज़ पढ़नी होगी। इमाम मालिक और इमाम शाफ़ई *(रह०)* के नज़दीक जहाँ चार दिन से ज़्यादा ठहरने का इरादा हो वहाँ क़स्र जाइज़ नहीं। इमाम औज़ाई *(रह०)* 13 दिन और इमाम अबू-हनीफ़ा *(रह०)* 15 दिन या उससे ज़्यादा ठहरने की नीयत पर पूरी नमाज़ अदा करने का हुक्म देते हैं। नबी *(सल्ल०)* से इस सिलसिले में कोई वाज़ेह हुक्म बयान नहीं हुआ है। और अगर किसी जगह आदमी मजबूरी में रुका हुआ हो और हर वक़्त यह ख़याल हो कि मजबूरी दूर होते ही वतन वापस हो जाएगा तो सभी आलिमों का इत्तिफ़ाक़ है कि ऐसी जगह मुद्दत को मुतैयन (तय) किए बग़ैर क़स्र किया जाता रहेगा। सहाबा *(रज़ि०)* से बहुत-सी मिसालें मिलती हैं कि उन्होंने ऐसे हालात में दो-दो साल लगातार क़स्र किया है। इमाम अहमद बिन-हंबल *(रह०)* इसी को सामने रख कर क़ैदी को भी उसके पूरे क़ैद के ज़माने में क़स्र की इजाज़त देते हैं।

133. ज़ाहिरी और ख़ारिजी फ़िरक़ों ने इस बात का यह मतलब लिया है कि नमाज़ का मुख़्तसर करना (क़स्र) सिर्फ़ लड़ाई की हालत के लिए है और अम्न की हालत के सफ़र में क़स्र करना क़ुरआन के ख़िलाफ़ है। लेकिन हदीस में मुस्तनद रिवायत से साबित है कि हज़रत उमर *(रज़ि०)* ने जब यही शुब्हा नबी *(सल्ल०)* के सामने पेश किया तो नबी *(सल्ल०)* ने फ़रमाया, "यह क़स्र की इजाज़त एक इनआम है जो अल्लाह ने तुम्हें दिया है, इसलिए उसके इनाम को क़बूल करो।" (हदीस : मुस्लिम, अबू-दाऊद, मुस्नद अहमद) यह बात बहुत सारी रवायतों से साबित है कि नबी *(सल्ल०)* ने अम्न और ख़ौफ़ दोनों हालतों के सफ़र में क़स्र किया है। इब्ने-अब्बास बयान करते हैं कि "नबी *(सल्ल०)* मदीना से मक्का गए और उस वक़्त रब्बुल-आलमीन के सिवा किसी का ख़ौफ़ न था, मगर आप *(सल्ल०)* ने (चार के बजाय) दो रकअतें पढ़ीं।" (हदीसः नसई) इसी वजह से मैंने तर्जमा में 'ख़ास तौर पर' के अलफ़ाज़ क़ौसैन (कोष्ठक) में बढ़ा दिए हैं।

مُّبِينًا ۝ وَاِذَا كُنْتَ فِيْهِمْ فَاَقَمْتَ لَهُمُ الصَّلٰوةَ
فَلْتَقُمْ طَآئِفَةٌ مِّنْهُمْ مَّعَكَ وَلْيَاْخُذُوْٓا اَسْلِحَتَهُمْ
فَاِذَا سَجَدُوْا فَلْيَكُوْنُوْا مِنْ وَّرَآئِكُمْ ۖ وَلْتَاْتِ
طَآئِفَةٌ اُخْرٰى لَمْ يُصَلُّوْا فَلْيُصَلُّوْا مَعَكَ

पर तुले हुए हैं।

(102) और ऐ नबी! जब तुम मुसलमानों के बीच हो और (लड़ाई की हालत में) उन्हें नमाज़ पढ़ाने खड़े[134] हो तो चाहिए कि उनमें [135] से एक गरोह तुम्हारे साथ खड़ा हो और अपने हथियार लिए रहे, फिर जब वह सजदा कर ले तो पीछे चला जाए और दूसरा गरोह जिसने अभी नमाज़ नहीं पढ़ी है आकर तुम्हारे साथ पढ़े और वह भी चौकन्ना रहे

134. इमाम अबू-यूसुफ़ और हसन-बिन-ज़ियाद ने इन अलफ़ाज़ से यह गुमान किया है कि ख़ौफ़ की हालत की नमाज़ सिर्फ़ नबी *(सल्ल०)* के ज़माने के लिए ख़ास थी। लेकिन क़ुरआन में इसकी बहुत-सी मिसालें मौजूद हैं कि नबी *(सल्ल०)* को मुख़ातब करके एक हुक्म दिया गया है और वही हुक्म आप *(सल्ल०)* के बाद आपके जानशीनों के लिए भी है। इसलिए ख़ौफ़ की हालत की नमाज़ को नबी *(सल्ल०)* के साथ ख़ास करने की कोई वजह नहीं। फिर बहुत-से बड़े सहाबा से साबित है कि उन्होंने नबी *(सल्ल०)* के बाद भी ख़ौफ़ की हालत की नमाज़ पढ़ी है और इस सिलसिले में किसी सहाबी का इख़्तिलाफ़ बयान नहीं हुआ है।

135. ख़ौफ़ की नमाज़ का यह हुक्म उस सूरत के लिए है जबकि दुश्मन के हमले का ख़तरा तो हो, मगर अमली तौर पर लड़ाई छिड़ी हुई न हो। रही यह सूरत कि अमली तौर पर लड़ाई हो रही हो तो उस सूरत में हनफ़ी आलिमों के नज़दीक नमाज़ उस वक़्त न पढकर बाद में पढ़ी जाएगी। इमाम मालिक *(रह०)* और इमाम सौरी *(रह०)* के नज़दीक अगर रुकू और सजदे करना मुमकिन न हो तो इशारों से पढ़ ली जाए। इमाम शाफ़ई *(रह०)* के नज़दीक नमाज़ ही की हालत में थोड़ी झड़प भी की जा सकती है। नबी *(सल्ल०)* के अमल से साबित है कि आप *(सल्ल०)* ने ख़न्दक़ की जंग के मौक़े पर चार नमाज़ें नहीं पढ़ीं और फिर मौक़ा पाकर तरतीब के साथ इन्हें अदा किया, हालाँकि ख़न्दक़ की लड़ाई से पहले ख़ौफ़ की हालत में नमाज़ का हुक्म आ चुका था।

وَلْيَاْخُذُوْا حِذْرَهُمْ وَاَسْلِحَتَهُمْ ۚ وَدَّ الَّذِيْنَ
كَفَرُوْا لَوْ تَغْفُلُوْنَ عَنْ اَسْلِحَتِكُمْ وَ اَمْتِعَتِكُمْ
فَيَمِيْلُوْنَ عَلَيْكُمْ مَّيْلَةً وَّاحِدَةً ۗ وَلَا جُنَاحَ
عَلَيْكُمْ اِنْ كَانَ بِكُمْ اَذًى مِّنْ مَّطَرٍ اَوْ كُنْتُمْ
مَّرْضٰٓى اَنْ تَضَعُوْٓا اَسْلِحَتَكُمْ ۚ وَخُذُوْا حِذْرَكُمْ ۭ
اِنَّ اللّٰهَ اَعَدَّ لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ۝١٠٢ فَاِذَا

और अपने हथियार लिए रहे,[136] क्योंकि काफ़िर (दुश्मन) इस ताक में हैं कि तुम अपने हथियारों और अपने सामान की तरफ़ से ज़रा ग़ाफ़िल हो तो वे तुम पर एक साथ टूट पड़ें। अलबत्ता अगर तुम बारिश की वजह से तकलीफ़ महसूस करो या बीमार हो तो हथियार रख देने में कोई हरज नहीं। मगर फिर भी चौकन्ने रहो। यक़ीन रखो कि अल्लाह

136. ख़ौफ़ की हालत में नमाज़ कैसे पढ़ी जाए इस बात का दारोमदार बड़ी हद तक जंगी हालत पर है। नबी *(सल्ल०)* ने अलग-अलग हालतों में अलग-अलग तरीक़ों से नमाज़ पढ़ाई है और वक़्त के इमाम को यह इख़्तियार है कि इन तरीक़ों में से जिस तरीक़े की इजाज़त जंगी सूरते-हाल दे उसी को अपनाए।

एक तरीक़ा यह है कि फ़ौज का एक हिस्सा इमाम के साथ नमाज़ पढ़े और दूसरा हिस्सा दुश्मन के मुक़ाबले पर रहे। फिर जब एक रकअत पूरी हो जाए तो पहला हिस्सा सलाम फेरकर चला जाए और दूसरा हिस्सा आकर दूसरी रकअत इमाम के साथ पूरी करे। इस तरह इमाम की दो रकअतें होंगी और फ़ौज की एक-एक रकअत।

दूसरा तरीक़ा यह है कि एक हिस्सा इमाम के साथ एक रकअत पढ़कर चला जाए, फिर दूसरा हिस्सा आकर एक रकअत इमाम के पीछे पढ़े, फिर दोनों हिस्से बारी-बारी से आकर अपनी छूटी हुई एक-एक रकअत ख़ुद से पढ़ लें। इस तरह दोनों हिस्सों की एक-एक रकअत इमाम के पीछे अदा होगी और एक रकअत अलग अपने तौर पर।

तीसरा तरीक़ा यह है कि इमाम के पीछे फ़ौज का एक हिस्सा दो रकअतें अदा करे और तशह्हुद के बाद सलाम फेरकर चला जाए। फिर दूसरा हिस्सा तीसरी रकअत में आकर शरीक हो और इमाम के साथ सलाम फेरे। इस तरह इमाम की चार और फ़ौज की दो-दो रकअतें होंगी।

चौथा तरीक़ा यह है कि फ़ौज का एक हिस्सा इमाम के साथ एक रकअत पढ़े और जब इमाम दूसरी रकअत के लिए खड़ा हो तो मुक़्तदी (इमाम के पीछे नमाज़ पढ़नेवाले) अपने तौर पर एक

قَضَيْتُمُ الصَّلٰوةَ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ قِيٰمًا وَّ قُعُوْدًا وَّ
عَلٰى جُنُوْبِكُمْ ۚ فَاِذَا اطْمَاْنَنْتُمْ فَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ ۚ
اِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ كِتٰبًا مَّوْقُوْتًا ۝١٠٣
وَلَا تَهِنُوْا فِي ابْتِغَآءِ الْقَوْمِ ۭ اِنْ تَكُوْنُوْا تَاْلَمُوْنَ

ने काफ़िरों के लिए रुसवा कर देनेवाला अज़ाब तैयार कर रखा है।[137] (103) फिर जब नमाज़ से फ़ारिग़ हो जाओ तो खड़े और बैठे और लेटे हर हाल में अल्लाह को याद करते रहो। और जब इत्मीनान हासिल हो जाए तो पूरी नमाज़ पढ़ो। नमाज़ हक़ीक़त में ऐसा फ़र्ज़ है जो वक़्त की पाबन्दी के साथ ईमानवालों पर लाज़िम किया गया है।

(104) इस गरोह[138] का पीछा करने में कमज़ोरी न दिखाओ। अगर तुम तकलीफ़

रकअत तशह्हुद के साथ पढ़कर सलाम फेर दें। फिर दूसरा हिस्सा आकर इस हाल में इमाम के पीछे खड़ा हो कि अभी इमाम दूसरी ही रकअत में हो और ये लोग बाक़ी नमाज़ इमाम के साथ अदा करने के बाद एक रकअत ख़ुद पढ़ लें। इस सूरत में इमाम को दूसरी रकअत में लम्बा क़ियाम करना होगा।

पहली सूरत को इब्ने-अब्बास, जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह और मुजाहिद *(रज़ि०)* ने रिवायत किया है। दूसरे तरीक़े को अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद *(रज़ि०)* ने रिवायत किया है और हनफ़ी उलमा इसी तरीक़े को तरजीह देते हैं। तीसरे तरीक़े को हसन बसरी *(रह०)* ने अबू-बकरह से रिवायत किया है। और चौथे तरीक़े को इमाम शाफ़ई *(रह०)* और इमाम मालिक *(रह०)* ने थोड़े से फ़र्क़ के साथ तरजीह दी है और इसको उन्होंने सुहैल-बिन-अबी-हसमा की रिवायत से लिया है।

इनके अलावा ख़ौफ़ की हालत में नमाज़ के और भी तरीक़े हैं जिनकी तफ़सीली जानकारी इस्लामी फ़िक़ह् की उन किताबों में मिल सकती है जिनमें इस बारे में तफ़सील से बात की गई है।

137. यानी यह एहतियात जिसका हुक्म तुम्हें दिया जा रहा है, सिर्फ़ दुनियवी तदबीरों के लिहाज़ से है, वरना असल में हार और जीत का दारोमदार तुम्हारी तदबीरों और उपाय पर नहीं, बल्कि अल्लाह के फ़ैसलों पर है। इसलिए इन एहतियाती तदबीरों पर अमल करते हुए तुम्हें इस बात का यक़ीन रखना चाहिए कि जो लोग अल्लाह के नूर को अपनी फूँकों से बुझाने की कोशिश कर रहे हैं, अल्लाह उन्हें रुसवा करेगा।

138. यानी इस्लाम-दुश्मनों का गरोह जो उस वक़्त इस्लाम की दावत और इस्लामी निज़ाम को क़ायम करने की राह में रुकावट बनकर खड़ा हुआ था।

فَاِنَّهُمْ يَاْلَمُوْنَ كَمَا تَاْلَمُوْنَ ۚ وَتَرْجُوْنَ مِنَ اللّٰهِ
مَا لَا يَرْجُوْنَ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿١٠٤﴾ اِنَّآ
اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ لِتَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ
بِمَآ اَرٰىكَ اللّٰهُ ؕ وَلَا تَكُنْ لِّلْخَآئِنِيْنَ خَصِيْمًا ﴿١٠٥﴾

उठा रहे हो तो तुम्हारी तरह वे भी तकलीफ़ उठा रहे हैं। और तुम अल्लाह से उस चीज़ के उम्मीदवार हो जिसके वे उम्मीदवार नहीं हैं।[139] अल्लाह सब कुछ जानता है और वह हिकमतवाला व गहरी सोचवाला है।

(105) ऐ नबी![140] हमने यह किताब हक़ के साथ तुम्हारी तरफ़ उतारी है, ताकि जो सीधा रास्ता अल्लाह ने तुम्हें दिखाया है उसके मुताबिक़ लोगों के बीच फ़ैसला करो। तुम बददियानत (विश्वासघाती) लोगों की तरफ़ से झगड़नेवाले न बनो,

139. यानी ताज्जुब की बात है, अगर ईमानवाले हक़ की ख़ातिर उतनी तकलीफ़ें भी बर्दाश्त न करें जितनी इस्लाम-दुश्मन लोग बातिल और झूठ की ख़ातिर बर्दाश्त कर रहे हैं, हालाँकि उनके सामने सिर्फ़ दुनिया और उसके नापायदार फ़ायदे हैं और इसके बरख़िलाफ़ ईमानवाले लोग आसमानों और ज़मीन के मालिक की ख़ुशनूदी, उसके क़रीब होने और उसके हमेशा के इनामों के उम्मीदवार हैं।

140. इस रुकू और इसके बाद वाले रुकू (आयत-105 से 113 तक) में एक अहम मामले में बात की गई है जो उसी ज़माने में पेश आया था। क़िस्सा यह है कि अनसार के क़बीले बनी-ज़फ़र में एक आदमी तअमा या बशीर-बिन-उबैरिक़ था। उसने एक अनसारी की ज़िरह (कवच) चुरा ली और जब उसकी छान-बीन शुरू हुई तो चोरी का माल एक यहूदी के यहाँ रख दिया। ज़िरह के मालिक ने नबी *(सल्ल०)* के सामने मसला रखा और तअमा पर अपना शुब्हा ज़ाहिर किया। मगर तअमा और उसके भाई-बन्धुओं और उसके क़बीले बनी-ज़फ़र के बहुत-से लोगों ने आपस में साँठ-गाँठ करके उस यहूदी पर इलज़ाम थोप दिया। यहूदी से पूछा गया तो उसने कहा कि मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं। लेकिन ये लोग तअमा की हिमायत में ज़ोर-शोर से वकालत करते रहे और कहा कि यह शरारती यहूदी, जो हक़ का इनकार और अल्लाह के रसूल का इनकार करनेवाला है, इसकी बात का क्या भरोसा, बात हमारी तसलीम की जानी चाहिए, क्योंकि हम मुसलमान हैं। क़रीब था कि नबी *(सल्ल०)* इस मुक़द्दमे की ज़ाहिरी रिपोर्ट से मुतास्सिर होकर उस यहूदी के ख़िलाफ़ फ़ैसला कर देते और मुक़द्दमा करनेवाले ज़िरह के मालिक को भी बनी-उबैरिक़ पर इलज़ाम लगाने पर ख़बरदार करते। इतने में वह्य आई और मामले

وَّاسْتَغْفِرِ اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۚ﴿۱۰۶﴾
وَلَا تُجَادِلْ عَنِ الَّذِيْنَ يَخْتَانُوْنَ اَنْفُسَهُمْ ؕ اِنَّ
اللّٰهَ لَا يُحِبُّ مَنْ كَانَ خَوَّانًا اَثِيْمًا ۚ﴿۱۰۷﴾ يَّسْتَخْفُوْنَ

(106) और अल्लाह से माफ़ी की दरख़ास्त करो, वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहमवाला है। (107) जो लोग ख़ुद अपने आपसे ख़ियानत करते है[141] तुम उनकी हिमायत न करो। अल्लाह को ऐसा आदमी पसन्द नहीं है जो ख़ियानत करनेवाला और गुनाह करनेवाला

की सारी हक़ीक़त खोल दी गई।

हालाँकि एक क़ाज़ी (जज) की हैसियत से नबी *(सल्ल०)* का रिपोर्ट के मुताबिक़ फ़ैसला कर देना अपने-आप में आप *(सल्ल०)* के लिए कोई गुनाह न होता। और ऐसी सूरतें क़ाज़ियों और जजों को पेश आती हैं कि उनके सामने ग़लत रिपोर्ट पेश करके हक़ीक़त के ख़िलाफ़ फ़ैसले हासिल कर लिए जाते हैं। लेकिन उस वक़्त जबकि इस्लाम और कुफ़्र के बीच एक ज़बरदस्त कश-म-कश जारी थी अगर नबी *(सल्ल०)* मुक़द्दमे की रिपोर्ट के मुताबिक़ यहूदी के ख़िलाफ़ फ़ैसला कर देते तो इस्लाम के मुख़ालिफ़ों को आपके ख़िलाफ़ और पूरी इस्लामी जमाअत और ख़ुद इस्लाम की दावत के ख़िलाफ़ एक ज़बरदस्त अख़लाक़ी हथियार मिल जाता। वे यह कहते फिरते कि अजी, यहाँ हक़ और इनसाफ़ का क्या सवाल है, यहाँ तो वही जत्थेबन्दियाँ और असबियत (पक्षपात) काम कर रही है जिसके ख़िलाफ़ तबलीग़ की जाती है। इसी ख़तरे से बचाने के लिए अल्लाह ने ख़ास तौर पर इस मुक़द्दमे में दख़ल दिया।

इन आयतों में एक तरफ़ उन मुसलमानों को सख़्ती के साथ मलामत की गई है जिन्होंने सिर्फ़ ख़ानदान और क़बीले की असबियत (पक्षपात) में मुजरिमों की हिमायत की थी। दूसरी तरफ़ आम मुसलमानों को यह सबक़ दिया गया है कि इनसाफ़ के मामले में किसी तास्सुब (पक्षपात) का दख़ल नहीं होना चाहिए। यह हरगिज़ दयानतदारी नहीं है कि अपने गरोह का आदमी अगर ग़लती पर हो तो उसकी बेजा हिमायत की जाए और दूसरे गरोह का आदमी अगर हक़ पर हो तो उसके साथ बे-इनसाफ़ी की जाए।

141. जो आदमी दूसरे के साथ ख़ियानत करता है वह अस्ल में सबसे पहले ख़ुद अपने आपके साथ ख़ियानत करता है; क्योंकि दिल और दिमाग़ की जो क़ुव्वतें उसके पास अमानत के तौर पर हैं उनका बेजा इस्तेमाल करके वह उन्हें मजबूर करता है कि ख़ियानत (भ्रष्टाचार) में उसका साथ दें। और अपने ज़मीर (अन्तःकरण) को, जिसे अल्लाह ने उसके अख़लाक़ का मुहाफ़िज़ बनाया था, इस हद तक दबा देता है कि वह इस ख़ियानत के काम में रुकावट बनने के क़ाबिल नहीं रहता। जब इनसान अपने अन्दर इस ज़ालिमाना हरकत को मुकम्मल कर लेता है तब कहीं बाहर उससे ख़ियानत और गुनाह के काम होते हैं।

مِنَ النَّاسِ وَلَا يَسْتَخْفُونَ مِنَ اللّٰهِ وَهُوَ مَعَهُمْ
إِذْ يُبَيِّتُوْنَ مَا لَا يَرْضٰى مِنَ الْقَوْلِ ۭ وَكَانَ
اللّٰهُ بِمَا يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطًا ۝١٠٨ هٰٓاَنْتُمْ هٰٓؤُلَآءِ جٰدَلْتُمْ
عَنْهُمْ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۣ فَمَنْ يُّجَادِلُ اللّٰهَ
عَنْهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ اَمْ مَّنْ يَّكُوْنُ عَلَيْهِمْ وَكِيْلًا ۝١٠٩
وَمَنْ يَّعْمَلْ سُوْۗءًا اَوْ يَظْلِمْ نَفْسَهٗ ثُمَّ يَسْتَغْفِرِ
اللّٰهَ يَجِدِ اللّٰهَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝١١٠ وَمَنْ يَّكْسِبْ
اِثْمًا فَاِنَّمَا يَكْسِبُهٗ عَلٰي نَفْسِهٖ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ
عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝١١١ وَمَنْ يَّكْسِبْ خَطِيْۗــــَٔــةً اَوْ اِثْمًا ثُمَّ

हो। (108) ये लोग इनसानों से अपनी करतूतों को छिपा सकते हैं मगर ख़ुदा से नहीं छिपा सकते। वह तो उस वक़्त भी उनके साथ होता है जब ये रातों को छिपकर उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ मशविरे करते हैं। इनके सारे कामों को अल्लाह अपने दायरे में लिए हुए है। (109) हाँ, तुम लोगों ने इन मुजरिमों की तरफ़ से दुनिया की ज़िन्दगी में तो झगड़ा कर लिया, मगर क़ियामत के दिन इनके लिए अल्लाह से कौन झगड़ा करेगा? आख़िर वहाँ कौन इनका वकील होगा? (110) अगर कोई आदमी बुरा काम कर बैठे या ख़ुद अपने पर ज़ुल्म कर जाए और उसके बाद अल्लाह से माफ़ी की दरख़ास्त करे तो अल्लाह को माफ़ करनेवाला और रहमवाला पाएगा। (111) मगर जो बुराई कमा ले तो उसकी यह कमाई उसी के लिए वबाल होगी, अल्लाह को सब बातों की ख़बर है और वह गहरी समझवाला और सब कुछ जाननेवाला है। (112) फिर जिसने कोई ख़ता या गुनाह

ع يَرْمِ بِهٖ بَرِيْٓــًٔا فَقَدِ احْتَمَلَ بُهْتَانًا وَّاِثْمًا مُّبِيْنًا ﴿١١٢﴾
وَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ وَرَحْمَتُهٗ لَهَمَّتْ
طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ اَنْ يُّضِلُّوْكَ ؕ وَمَا يُضِلُّوْنَ اِلَّاۤ
اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَضُرُّوْنَكَ مِنْ شَيْءٍ ؕ وَاَنْزَلَ اللّٰهُ
عَلَيْكَ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَكَ مَا لَمْ تَكُنْ
تَعْلَمُ ؕ وَكَانَ فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ عَظِيْمًا ﴿١١٣﴾ لَا خَيْرَ
فِيْ كَثِيْرٍ مِّنْ نَّجْوٰىهُمْ اِلَّا مَنْ اَمَرَ بِصَدَقَةٍ اَوْ

करके उसका इलज़ाम किसी बे-गुनाह पर थोप दिया उसने तो बड़े बोहतान और खुले गुनाह का बोझ समेट लिया।

(113) ऐ नबी! अगर अल्लाह का फ़ज़्ल (अनुग्रह) तुम पर न होता और उसकी रहमत तुम्हारे साथ न होती तो इनमें से एक गरोह ने तो तुम्हें ग़लतफ़हमी में डाल देने का फ़ैसला कर ही लिया था, हालाँकि हक़ीक़त में वे ख़ुद अपने सिवा किसी को ग़लतफ़हमी में नहीं डाल रहे थे और तुम्हारा कोई नुक़सान नहीं कर सकते थे।[142] अल्लाह ने तुम पर किताब और हिकमत (तत्त्वदर्शिता) उतारी है और तुमको वह कुछ बताया है जो तुम्हें मालूम नहीं था, और उसका फ़ज़्ल तुम पर बहुत है।

(114) लोगों की ख़ुफ़िया कानाफूसियों में ज़्यादातर कोई भलाई नहीं होती। हाँ, अगर

142. यानी अगर वे ग़लत रूदाद पेश करके तुम्हें ग़लतफ़हमी में डालने में कामयाब हो भी जाते और अपने हक़ में इनसाफ़ के ख़िलाफ़ फ़ैसला हासिल कर लेते तो नुक़सान उन्हीं का था, तुम्हारा कुछ भी न बिगड़ता; क्योंकि ख़ुदा के नज़दीक मुजरिम वे होते, न कि तुम। जो आदमी हाकिम को धोखा देकर अपने हक़ में ग़लत फ़ैसला हासिल करता है, वह असूल में ख़ुद अपने आपको इस ग़लतफ़हमी में डालता है कि इन तदबीरों से हक़ उसके साथ हो गया, हालाँकि हक़ीक़त में अल्लाह के नज़दीक हक़ जिसका है, उसी का रहता है और धोखा खाए हुए हाकिम के फ़ैसले से हक़ीक़त पर कोई असर नहीं पड़ता। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-197)

مَعْرُوْفٍ اَوْ اِصْلَاحٍۭ بَيْنَ النَّاسِ ؕ وَمَنْ يَّفْعَلْ
ذٰلِكَ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيْهِ اَجْرًا
عَظِيْمًا ﴿۱۱۴﴾ وَمَنْ يُّشَاقِقِ الرَّسُوْلَ مِنْۢ بَعْدِ مَا
تَبَيَّنَ لَهُ الْهُدٰى وَيَتَّبِعْ غَيْرَ سَبِيْلِ الْمُؤْمِنِيْنَ
نُوَلِّهٖ مَا تَوَلّٰى وَنُصْلِهٖ جَهَنَّمَ ؕ وَسَآءَتْ مَصِيْرًا ﴿۱۱۵﴾ ع
اِنَّ اللّٰهَ لَا يَغْفِرُ اَنْ يُّشْرَكَ بِهٖ وَيَغْفِرُ مَا دُوْنَ
ذٰلِكَ لِمَنْ يَّشَآءُ ؕ وَمَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَقَدْ ضَلَّ

कोई छिपे तौर पर सदक़ा या किसी भले काम के लिए उकसाए या लोगों के मामलों में सुधार के लिए किसी से कुछ कहे तो अलबत्ता यह भली बात है और जो कोई अल्लाह की ख़ुशी चाहने के लिए ऐसा करेगा उसे हम बड़ा बदला देंगे। (115) मगर जो आदमी रसूल की दुश्मनी पर उतर आए और ईमानवालों के रवैये के सिवा किसी और राह पर चले, जबकि उस पर सीधा रास्ता वाज़ेह हो चुका हो, तो उसको हम उसी तरफ़ चलाएँगे जिधर वह ख़ुद फिर गया[143] और उसे जहन्नम में झोंकेंगे जो सबसे बुरा ठिकाना है।

(116) अल्लाह के यहाँ[144] बस शिर्क ही की माफ़ी नहीं है, इसके सिवा और सब कुछ माफ़ हो सकता है जिसे वह माफ़ करना चाहे। जिसने अल्लाह के साथ किसी को

143. ऊपर बयान किए गए मुक़द्दिमे में जब अल्लाह की वह्य की बुनियाद पर नबी *(सल्ल०)* ने उस मुसलमान के ख़िलाफ़ और उस बे-गुनाह यहूदी के हक़ में फ़ैसला दे दिया तो इस मुनाफ़िक़ पर जाहिलियत का इतना बड़ा दौरा पड़ा कि वह मदीना से निकलकर इस्लाम और नबी *(सल्ल०)* के दुश्मनों के पास मक्का चला गया और खुल्लम-खुल्ला दुश्मनी पर उतर आया। इस आयत में उसकी इसी हरकत की तरफ़ इशारा है।

144. इस आयत और इससे आगे की कुछ आयतों में ऊपर कही गई बात को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है कि अपनी जाहिलियत के तैश में आकर यह आदमी जिस रास्ते की तरफ़ गया है वह कैसा रास्ता है और नेक लोगों के गरोह से अलग होकर जिन लोगों का साथ इसने पकड़ा है वे कैसे लोग हैं।

ضَلٰلًا بَعِيْدًا ﴿١١٦﴾ اِنْ يَّدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِهٖۤ اِلَّاۤ اِنٰثًا ۚ
وَاِنْ يَّدْعُوْنَ اِلَّا شَيْطٰنًا مَّرِيْدًا ﴿١١٧﴾ لَّعَنَهُ اللّٰهُ ۘ وقف لازم
وَقَالَ لَاَتَّخِذَنَّ مِنْ عِبَادِكَ نَصِيْبًا مَّفْرُوْضًا ﴿١١٨﴾ ۙ
وَّلَاُضِلَّنَّهُمْ وَلَاُمَنِّيَنَّهُمْ وَلَاٰمُرَنَّهُمْ فَلَيُبَتِّكُنَّ
اٰذَانَ الْاَنْعَامِ وَلَاٰمُرَنَّهُمْ فَلَيُغَيِّرُنَّ خَلْقَ اللّٰهِ ؕ

शरीक ठहराया वह तो गुमराही में बहुत दूर निकल गया। (117) वे अल्लाह को छोड़कर देवियों को माबूद बनाते हैं। वे उस बाग़ी शैतान को माबूद बनाते हैं[145] (118) जिस पर अल्लाह ने लानत की है। (वह उस शैतान का कहा मान रहे हैं) जिसने अल्लाह से कहा था कि "मैं तेरे बन्दों से एक मुक़र्रर हिस्सा ले कर रहूँगा,[146] (119) मैं उन्हें बहकाऊँगा; मैं उन्हें आरज़ुओं में उलझाउँगा; मैं उन्हें हुक्म दूँगा और वे मेरे हुक्म से जानवरों के कान फाड़ेंगे[147] और मैं उन्हें हुक्म दूँगा और वे मेरे हुक्म से ख़ुदा की साख़्त (संरचना) में

---

145. शैतान को इस मानी में तो कोई भी माबूद (उपास्य) नहीं बनाता कि उसके आगे पूजा और इबादत की रस्में अदा करता हो और उसको ख़ुदा का दर्जा देता हो। अलबत्ता उसे माबूद बनाने की सूरत यह है कि आदमी अपने मन की बागें शैतान के हाथ में दे देता है और जिधर-जिधर वह चलाता है उधर चलता है, मानो कि यह उसका बन्दा है और वह इसका ख़ुदा। इससे मालूम हुआ कि किसी की बातों पर बिना सोचे-समझे चलने और अन्धी पैरवी करने का नाम भी 'इबादत' है और जो आदमी इस तरह की इताअत करता है वह अस्ल में उसकी इबादत करता है, जिसे अल्लाह को छोड़ कर उसने अपना रब और हाकिम बनाया हो।

146. यानी उनके वक़्तों में, उनकी मेहनतों और कोशिशों में, उनकी ताक़तों और क़ाबिलियतों में, उनके माल और उनकी औलाद में अपना हिस्सा लगाऊँगा और उनको धोखा देकर ऐसा परचाऊँगा कि वे उन सारी चीज़ों का एक बड़ा हिस्सा मेरी राह में लगाएँगे।

147. इस आयत में अरब के लोगों के अन्धविश्वासों में से एक की तरफ़ इशारा है। उनके यहाँ क़ायदा यह था कि जब ऊँटनी पाँच या दस बच्चे जन लेती तो उसके कान फाड़कर उसे अपने देवता के नाम पर छोड़ देते और उससे काम लेना हराम समझते थे। इसी तरह जिस ऊँट के वीर्य (नुत्फ़े) से दस बच्चे हो जाते उसे भी देवता के नाम पर दान कर दिया जाता था और कान चीरना इस बात की निशानी कि यह दान किया हुआ जानवर है।

وَمَنْ يَّتَّخِذِ الشَّيْطٰنَ وَلِيًّا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ فَقَدْ
خَسِرَ خُسْرَانًا مُّبِيْنًا ﴿١١٩﴾ يَعِدُهُمْ وَيُمَنِّيْهِمْ ۚ وَمَا
يَعِدُهُمُ الشَّيْطٰنُ اِلَّا غُرُوْرًا ﴿١٢٠﴾ اُولٰٓئِكَ مَاْوٰىهُمْ

फेर-बदल करेंगे।"[148] उस शैतान को जिसने अल्लाह के बदले अपना दोस्त और सरपरस्त बना लिया वह खुले घाटे में पड़ गया। (120) वह इन लोगों से वादे करता है और इन्हें उम्मीदें दिलाता है,[149] मगर शैतान के सारे वादे धोखे के सिवा और कुछ नहीं हैं। (121) इन

148. ख़ुदा की साख़्त (संरचना) में बदलाव करने का मतलब चीज़ों की पैदाइशी बनावट में तबदीली करना नहीं है। अगर इसका यह मतलब लिया जाए तब तो पूरी इनसानी तहज़ीब (सभ्यता) ही शैतान के अपहरण (इग़वा) का नतीजा समझ जाएगी। इसलिए कि तहज़ीब (संस्कृति) तो नाम ही उन इस्तेमालों (प्रयोगों) का है जो इनसान ख़ुदा की बनाई हुई चीज़ों में करता है। अस्ल में इस जगह जिस तबदीली को शैतानी काम कहा गया है वह यह है कि इनसान किसी चीज़ से वह काम ले जिसके लिए ख़ुदा ने उसे पैदा नहीं किया है और किसी चीज़ से वह काम न ले जिसके लिए ख़ुदा ने उसे पैदा किया है। दूसरे अलफ़ाज़ में वे तमाम काम जो इनसान अपनी और चीज़ों की फ़ितरत के ख़िलाफ़ करता है और वे तमाम सूरतें जो वह फ़ितरत के मक़सद से बचने के लिए इख़्तियार करता है इस आयत के मुताबिक़ शैतान की गुमराही में डालनेवाली उकसाहटों का नतीजा हैं। मिसाल के तौर पर हज़रत लूत *(अलैहि०)* की क़ौम की बदकारी मर्दों का मर्दों के साथ जिस्मानी ताल्लुक़ात बनाना, बर्थ-कंट्रोल, रहबानियत (संन्यास), ब्रह्मचर्य, मर्दों और औरतों को बाँझ बनाना यानी नसबन्दी, मर्दों को हिजड़ा करना, औरतों को उन कामों से हटाना जो फ़ितरत ने उनके सुपुर्द किए हैं और उन्हें तमद्दुन (संस्कृति) के उन मैदानों में घसीट लाना जिनके लिए मर्द पैदा किए गए हैं। ये और इस तरह के दूसरे बहुत से काम जो शैतान के चेले दुनिया में कर रहे हैं, अस्ल में यह मानी रखते हैं कि ये लोग कायनात के पैदा करनेवाले ख़ुदा के ठहराए हुए क़ानूनों को ग़लत समझते हैं और उनको सुधारना चाहते हैं।

149. शैतान का सारा कारोबार ही वादों और उम्मीदों के बल पर चलता है। वह इनसान को निजी तौर पर या इज्तिमाई तौर पर जब किसी ग़लत रास्ते की तरफ़ ले जाना चाहता है तो उसके आगे एक हरा-भरा बाग़ पेश कर देता है। किसी को इनफ़िरादी लुत्फ़ और लज़्ज़त और कामयाबियों की उम्मीद, किसी को क़ौमी सरबुलन्दियों की उम्मीद, किसी को इनसानी नस्ल की कामयाबी का यक़ीन, किसी को सच्चाई तक पहुँच जाने का इत्मीनान। किसी को यह भरोसा कि न ख़ुदा है, न आख़िरत, बस मरकर मिट्टी हो जाना है, किसी को यह तसल्ली कि आख़िरत है भी तो वहाँ की पकड़ से फ़ुलाँ की मेहरबानी और फ़ुलाँ की वजह से बच निकलोगे। ग़रज़ जो जिस वादे और जिस उम्मीद से धोखा खा सकता है उसके सामने वही पेश करता है और फाँस लेता है।

جَهَنَّمُ ۡ وَلَا يَجِدُوْنَ عَنْهَا مَحِيْصًا ﴿١٢١﴾ وَالَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ سَنُدْخِلُهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِيْ
مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ اَبَدًا ؕ وَعْدَ اللّٰهِ
حَقًّا ؕ وَمَنْ اَصْدَقُ مِنَ اللّٰهِ قِيْلًا ﴿١٢٢﴾ لَيْسَ
بِاَمَانِيِّكُمْ وَلَآ اَمَانِيِّ اَهْلِ الْكِتٰبِ ؕ مَنْ يَّعْمَلْ
سُوْٓءًا يُّجْزَ بِهٖ ۙ وَلَا يَجِدْ لَهٗ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيًّا
وَّلَا نَصِيْرًا ﴿١٢٣﴾ وَمَنْ يَّعْمَلْ مِنَ الصّٰلِحٰتِ مِنْ ذَكَرٍ
اَوْ اُنْثٰى وَهُوَ مُؤْمِنٌ فَاُولٰٓئِكَ يَدْخُلُوْنَ الْجَنَّةَ
وَلَا يُظْلَمُوْنَ نَقِيْرًا ﴿١٢٤﴾ وَمَنْ اَحْسَنُ دِيْنًا مِّمَّنْ
اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ وَّاتَّبَعَ مِلَّةَ

लोगों का ठिकाना जहन्नम है जिससे छुटकारे की कोई सूरत ये न पाएँगे। (122) रहे वे लोग जो ईमान ले आएँ और अच्छे काम करें, तो उन्हें हम ऐसे बाग़ों में दाख़िल करेंगे जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और वे वहाँ हमेशा-हमेशा रहेंगे। यह अल्लाह का सच्चा वादा है और अल्लाह से बढ़कर कौन अपनी बात में सच्चा होगा।

(123) अंजाम न तुम्हारी आरज़ुओं पर निर्भर करता है और न किताबवालों की आरज़ुओं पर। जो भी बुराई करेगा उसका फल पाएगा और अल्लाह के मुक़ाबले में अपने लिए कोई हिमायती और मददगार न पा सकेगा। (124) और जो अच्छा काम करेगा, शर्त यह है कि हो वह ईमानवाला, तो ऐसे ही लोग जन्नत में दाख़िल होंगे और उनका ज़र्रा बराबर भी हक़ न मारा जाएगा। (125) उस आदमी से बेहतर ज़िन्दगी का तरीक़ा और किसका हो सकता है जिसने अल्लाह के आगे फ़रमाँबरदारी के साथ सिर झुका दिया

إِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا ۗ وَاتَّخَذَ اللّٰهُ إِبْرٰهِيْمَ خَلِيْلًا ﴿١٢٥﴾
وَلِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْأَرْضِ ۗ وَكَانَ
اللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ مُّحِيْطًا ﴿١٢٦﴾ وَيَسْتَفْتُوْنَكَ فِي
النِّسَآءِ ۗ قُلِ اللّٰهُ يُفْتِيْكُمْ فِيْهِنَّ ۙ وَمَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ
فِي الْكِتٰبِ فِيْ يَتٰمَى النِّسَآءِ الّٰتِيْ لَا تُؤْتُوْنَهُنَّ

और अच्छे से अच्छा रवैया अपनाया और यकसू (एकाग्र) होकर इबराहीम के तरीक़े की पैरवी की, उस इबराहीम के तरीक़े की जिसे अल्लाह ने अपना दोस्त बना लिया था। (126) आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है अल्लाह का है[150] और अल्लाह हर चीज़ को अपने घेरों में लिए हुए है।[151]

(127) लोग तुमसे औरतों के मामले में फ़तवा (धर्मादेश) पूछते हैं।[152] कहो अल्लाह तुम्हें उनके मामले में हुक्म देता है, और साथ ही वे हिदायतें और हुक्म भी याद दिलाता है जो पहले से तुमको इस किताब में सुनाए जा रहे हैं।[153] यानी वे हिदायतें जो उन

150. यानी अल्लाह के आगे सर झुका देना और सरकशी व मनमानी को छोड़ देना इसलिए बेहतरीन तरीक़ा है कि यह हक़ीक़त के ठीक मुताबिक़ है। जब अल्लाह ज़मीन और आसमान का और उन सारी चीज़ों का मालिक है जो ज़मीन और आसमान में हैं तो इनसान के लिए सही रवैया यही है कि उसकी बन्दगी और इताअत पर राज़ी जो जाए और सरकशी छोड़ दे।

151. यानी अगर इनसान अल्लाह की फ़रमाँबरदारी न करे और सरकशी से न रुके तो वह अल्लाह की पकड़ से बचकर कहीं भाग नहीं सकता, अल्लाह की क़ुदरत उसको हर तरफ़ से घेरे हुए है।

152. इस बात को वाज़ेह नहीं किया गया है कि औरतों के मामले में लोग क्या पूछते थे। लेकिन आगे चलकर (आयत-128-130 तक में) जो फ़तवा दिया गया है उससे सवाल किस तरह का था, यह बात वाज़ेह हो जाती है।

153. यह असल सवाल का जवाब नहीं है, बल्कि लोगों के सवाल की तरफ़ तवज्जोह करने से पहले अल्लाह ने उन अहकाम की पाबन्दी पर फिर एक बार ज़ोर दिया है जो इसी सूरा के शुरू में यतीम लड़कियों के बारे में ख़ास तौर से और यतीम बच्चों के बारे में आम तौर से बयान किए थे। इससे मालूम होता है कि अल्लाह की निगाह में यतीमों के हक़ों की अहमियत कितनी ज़्यादा है। शुरू के दो रुकूओं (आयत-1-14) में उनके हक़ों को महफ़ूज़ रखने की ताकीद बड़ी सख़्ती

مَا كُتِبَ لَهُنَّ وَ تَرْغَبُوْنَ اَنْ تَنْكِحُوْهُنَّ وَ
الْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الْوِلْدَانِ وَاَنْ تَقُوْمُوْا لِلْيَتٰمٰى
بِالْقِسْطِ ۭ وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ
بِهٖ عَلِيْمًا ۝١٢٧ وَاِنِ امْرَاَةٌ خَافَتْ مِنْ بَعْلِهَا

यतीम लड़कियों के बारे में हैं जिनके हक़ तुम अदा नहीं करते[154] और जिनके निकाह करने से तुम रुके रहते हो (या लालच की वजह से तुम ख़ुद उनसे निकाह कर लेना चाहते हो[155]) और वे हिदायतें भी जो उन बच्चों के बारे में हैं जो बेचारे कोई ज़ोर नहीं रखते।[156] अल्लाह तुम्हें हिदायत करता है कि यतीमों के साथ इनसाफ़ पर क़ायम रहो और जो भलाई तुम करोगे वह अल्लाह के इल्म से छिपी न रह जाएगी।

(128) अगर[157] किसी औरत को अपने शौहर से बदसुलूकी या बे रुख़ी का ख़तरा

के साथ की जा चुकी थी। मगर इस पर बस नहीं किया गया। अब जो समाजी मसलों की बातचीत छिड़ी तो इससे पहले कि लोगों के सवाल का जवाब दिया जाता, यतीमों के फ़ायदों और हितों की बात ख़ुद ही छेड़ दी गई।

154. इशारा है उस आयत की तरफ़ जिसमें कहा गया है कि "अगर यतीमों के साथ बेइनसाफ़ी करने से डरते हो तो जो औरतें तुमको पसन्द आएँ......" (देखें इसी सूरा की आयत-3)

155. असल अरबी के जुमले 'तरग़बू-न अन तनकिहूहुन्न' का एक मतलब यह भी हो सकता है कि "तुम इनसे निकाह करने की चाहत रखते हो।" और यह भी हो सकता है कि "तुम इनसे निकाह करना पसन्द नहीं करते।" हज़रत आइशा *(रज़ि०)* इसका मतलब बयान करते हुए कहती हैं कि जिन लोगों की सरपरस्ती में ऐसी यतीम लड़कियाँ होती थीं जिनके पास माँ-बाप की छोड़ी हुई कुछ दौलत होती थी वे उन लड़कियों के साथ कई तरीक़ों से ज़ुल्म करते थे। अगर लड़की मालदार होने के साथ ख़ूबसूरत भी होती तो ये लोग चाहते थे कि ख़ुद उससे निकाह कर लें और महर और गुज़ारा-भत्ता अदा किए बग़ैर उसके माल और उसकी ख़ूबसूरती दोनों से फ़ायदा उठाएँ। और अगर वह बदसूरत होती तो ये लोग न उससे ख़ुद निकाह करते थे और न किसी दूसरे से उसका निकाह होने देते थे, ताकि उसका कोई ऐसा सरधरा पैदा न हो जाए जो कल उसके हक़ की माँग करनेवाला हो।

156. इशारा है उन अहकाम की तरफ़ जो इसी सूरा के पहले और दूसरे रुकू (आयत-1-14) में यतीमों के हक़ों के बारे में बयान हुए हैं।

157. यहाँ से असल सवाल का जवाब शुरू होता है। इस जवाब को समझने के लिए ज़रूरी है कि

نُشُوْزًا اَوْ اِعْرَاضًا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يُّصْلِحَا
بَيْنَهُمَا صُلْحًا ۭ وَالصُّلْحُ خَيْرٌ ۭ وَاُحْضِرَتِ الْاَنْفُسُ
الشُّحَّ ۭ وَاِنْ تُحْسِنُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا
تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ۝۱۲۸ وَلَنْ تَسْتَطِيْعُوْٓا اَنْ تَعْدِلُوْا بَيْنَ

हो तो कोई हरज नहीं कि शौहर और बीवी (कुछ हक़ों की कमी-बेशी पर) आपस में समझौता कर लें। समझौता हर हाल में अच्छा है।[158] मन (नफ़्स) तंगदिली की तरफ़ जल्द ही झुक जाते हैं।[159] लेकिन अगर तुम लोग एहसान से पेश आओ और ख़ुदा से डरो तो यक़ीन रखो कि अल्लाह तुम्हारे इस रवैये से बे ख़बर न होगा।[160] (129) बीवियों

पहले सवाल को अच्छी तरह ज़ेहन में बिठा लिया जाए। जाहिलियत के ज़माने में एक आदमी अनगिनत निकाह करने के लिए आज़ाद था और इन बहुत-सी बीवियों के लिए कुछ भी हक़ मुक़र्रर न थे। इस सूरा निसा की शुरू की आयतें जब उतरीं हुई तो इस आज़ादी पर दो तरह की पाबन्दियाँ लागू हो गई। एक यह की बीवियों की तादाद ज़्यादा से ज़्यादा चार तक महदूद कर दी गई। दूसरे यह कि एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने के लिए इनसाफ़ (यानी बराबरी के बर्ताव) की शर्त रखी गई। अब यह सवाल पैदा हुआ कि अगर किसी आदमी की बीवी बाँझ है, या मुस्तक़िल मरीज़ है, जिस्मानी ताल्लुक़ात के लायक़ नहीं रही है और शौहर दूसरी बीवी कर लाता है तो क्या वह मजबूर है कि दोनों के साथ बराबर लगाव रखे? बराबर मुहब्बत रखे? जिस्मानी ताल्लुक़ रखने में भी बराबरी बरते? और अगर वह ऐसा न करे तो क्या इनसाफ़ की शर्त का तक़ाज़ा यह है कि वह दूसरी शादी करने के लिए पहली बीवी को छोड़ दे? फिर यह भी कि अगर पहली बीवी ख़ुद अलग न होना चाहे तो क्या मियाँ-बीवी में इस तरह का मामला हो सकता है कि जिस बीवी से लगाव न रह गया हो वह अपने कुछ हक़ों से ख़ुद हाथ खींचकर अपने शौहर को तलाक़ देने से रुक जाने पर तैयार कर ले? क्या ऐसा करना इनसाफ़ की शर्त के ख़िलाफ़ तो न होगा? ये सवाल हैं जिनका जवाब इन आयतों में दिया गया है।

158. यानी तलाक़ और जुदाई से बेहतर है कि इस तरह आपसी समझौता करके एक औरत उसी शौहर के साथ रहे जिसके साथ वह उम्र का एक हिस्सा गुज़ार चुकी है।

159. औरत की तरफ़ से तंगदिली यह है कि वह अपने अन्दर शौहर से लगाव न होने की वजहों को ख़ुद महसूस करती हो और फिर भी वह सुलूक चाहे जो एक पसन्दीदा बीवी के साथ ही बरता जा सकता है। मर्द की तरफ़ से तंगदिली यह है कि जो औरत दिल से उतर जाने पर भी उसके साथ ही रहना चाहती हो उसको वह हद से ज़्यादा दबाने की कोशिश करे और उसके हक़ नाक़ाबिले-बर्दाश्त हद तक घटा देना चाहे।

160. यहाँ फिर अल्लाह ने मर्द ही के जज़्बा-ए-फ़ैयाज़ी (उदार-भावना) से अपील की है जिस तरह

النِّسَاۗءِ وَلَوْ حَرَصْتُمْ فَلَا تَمِيْلُوْا كُلَّ الْمَيْلِ فَتَذَرُوْهَا كَالْمُعَلَّقَةِ ۭ وَاِنْ تُصْلِحُوْا وَتَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ

के बीच पूरा-पूरा इनसाफ़ करना तुम्हारे बस में नहीं है। तुम चाहो भी तो तुम्हें इसकी क़ुदरत नहीं है। तो (अल्लाह के क़ानून के मक़सद को पूरा करने के लिए यह काफ़ी है कि) एक बीवी की तरफ़ इस तरह न झुक जाओ कि दूसरी को अधर में लटकता छोड़ दो।[161] अगर तुम अपना रवैया ठीक रखो और अल्लाह से डरते रहो तो अल्लाह माफ़

आम तौर से ऐसे मामलों में उसका क़ायदा है। उसने मर्द को इस बात पर उभारा है कि वह लगाव न होने के बावजूद उस औरत के साथ एहसान से पेश आए जो बरसों उसकी ज़िन्दगी की साथी रही है और उस ख़ुदा से डरे जो अगर किसी इनसान की कमियों की वजह से अपना ध्यान उससे फेर ले और उसके नसीब में कमी करने पर उतर आए, तो फिर उसका दुनिया में कहीं ठिकाना न रहे।

161. मतलब यह है कि आदमी तमाम हालतों में तमाम हैसियतों से दो या ज़्यादा बीवियों के बीच बराबरी नहीं बरत सकता। एक ख़ूबसूरत है और दूसरी बदसूरत, एक जवान है और दूसरी बूढ़ी, एक मुस्तक़िल मरीज़ है दूसरी तन्दुरुस्त, एक बदमिज़ाज है और दूसरी हँसमुख और इसी तरह के दूसरे फ़र्क़ भी मुमकिन हैं जिनकी वजह से एक बीवी की तरफ़ फ़ितरी तौर पर आदमी का लगाव कम हो और दूसरी की तरफ़ ज़्यादा हो सकता है। ऐसी हालतों में क़ानून यह माँग नहीं करता कि मुहब्बत और लगाव और जिस्मानी ताल्लुक़ में ज़रूर ही दोनों के बीच बराबरी रखी जाए, बल्कि सिर्फ़ यह माँग करता है कि जब तुम लगाव न होने के बावजूद एक औरत को तलाक़ नहीं देते और उसको अपनी ख़ाहिश या ख़ुद उसकी ख़ाहिश की वजह से बीवी बनाए रखते हो तो उससे कम से कम इस हद तक ताल्लुक़ ज़रूर रखो कि वह अमली तौर पर बे-शौहर होकर न रह जाए। ऐसे हालात में एक बीवी के मुक़ाबले में दूसरी की तरफ़ झुकाव ज़्यादा होना तो फ़ितरी बात है, लेकिन ऐसा भी न होना चाहिए कि दूसरी यों अधर में लटक जाए मानो कि उसका कोई शौहर ही नहीं है।

इस आयत से कुछ लोगों ने यह नतीजा निकाला है कि क़ुरआन एक तरफ़ इनसाफ़ की शर्त के साथ कई बीवियाँ रखने की इजाज़त देता है और दूसरी तरफ़ इनसाफ़ को नामुमकिन कहकर इस इजाज़त को अमली तौर पर रद्द कर देता है। लेकिन हक़ीक़त में ऐसा नतीजा निकालने के लिए इस आयत में कोई गुंजाइश नहीं है। अगर सिर्फ़ इतना ही कहने पर बस किया गया होता कि "तुम औरतों के बीच इनसाफ़ नहीं कर सकते।" तो यह नतीजा निकाला जा सकता था, मगर इसके बाद ही जो यह कहा गया कि "इसलिए एक बीवी की तरफ़ बिलकुल न झुक पड़ो।" इस जुमले ने कोई मौक़ा उस मतलब के लिए बाक़ी नहीं छोड़ा जो मसीही यूरोप की पैरवी करनेवाले लोग इससे निकालना चाहते हैं।

كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿١٢٩﴾ وَاِنْ يَّتَفَرَّقَا يُغْنِ اللّٰهُ كُلًّا
مِّنْ سَعَتِهٖ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ وَاسِعًا حَكِيْمًا ﴿١٣٠﴾ وَ لِلّٰهِ مَا
فِى السَّمٰوٰتِ وَمَا فِى الْاَرْضِ ؕ وَلَقَدْ وَصَّيْنَا الَّذِيْنَ
اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَاِيَّاكُمْ اَنِ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ
وَاِنْ تَكْفُرُوْا فَاِنَّ لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَمَا فِى الْاَرْضِ ؕ
وَكَانَ اللّٰهُ غَنِيًّا حَمِيْدًا ﴿١٣١﴾ وَلِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ
وَمَا فِى الْاَرْضِ ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ﴿١٣٢﴾ اِنْ يَّشَاْ
يُذْهِبْكُمْ اَيُّهَا النَّاسُ وَيَاْتِ بِاٰخَرِيْنَ ؕ وَكَانَ

करनेवाला और रहम करनेवाला है।[162] (130) लेकिन अगर शौहर-बीवी एक दूसरे से अलग ही हो जाएँ तो अल्लाह अपनी समाई से हर एक को दूसरे की मुहताजी से बेपरवाह कर देगा। अल्लाह बड़ी समाईवाला है और वह सब कुछ देखनेवाला और गहरी समझवाला है। (131) आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है सब अल्लाह ही का है। तुमसे पहले जिनको हमने किताब दी थी उन्हें भी यही हिदायत की थी और अब तुमको भी यही हिदायत करते हैं कि ख़ुदा से डरते हुए काम करो। लेकिन अगर तुम नहीं मानते तो न मानो; आसमानों और ज़मीन की सारी चीज़ों का मालिक अल्लाह ही है और वह बेनियाज़ है, हर तारीफ़ का हक़दार। (132) हाँ, अल्लाह ही मालिक है उन सब चीजों का जो आसमानों में हैं और जो ज़मीन में हैं और काम बनाने के लिए बस वही काफ़ी है। (133) अगर वह चाहे तो तुम लोगों को हटाकर तुम्हारी जगह दूसरों को ले आए, और

---

162. यानी अगर, जहाँ तक मुमकिन हो, तुम जान-बूझकर ज़ुल्म न करो और इनसाफ़ ही से काम लेने की कोशिश करते रहो तो फ़ितरी मजबूरियों की वजह से जो थोड़ी-बहुत कमियाँ तुमसे इनसाफ़ के मामले में होंगी उन्हें अल्लाह माफ़ कर देगा।

اللّٰهُ عَلٰى ذٰلِكَ قَدِيْرًا ۝١٣٣ مَنْ كَانَ يُرِيْدُ ثَوَابَ
الدُّنْيَا فَعِنْدَ اللّٰهِ ثَوَابُ الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۭ وَكَانَ
اللّٰهُ سَمِيْعًا بَصِيْرًا ۝١٣٤ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُوْنُوْا

वह इस पर पूरी क़ुदरत रखता है। (134) जो आदमी सिर्फ़ दुनिया का सवाब (भलाई) ही चाहता हो उसे मालूम होना चाहिए कि अल्लाह के पास दुनिया का सवाब (भलाई) भी है और आख़िरत का सवाब (भलाई) भी और अल्लाह सुनता और देखता है।[163]

(135) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, इनसाफ़ के अलमबरदार[164] और अल्लाह के लिए

163. आम तौर से क़ानूनी हिदायतें बयान करने के बाद और ख़ास तौर से तमद्दुन और रहन-सहन के उन पहलुओं के सुधार पर ज़ोर देने के बाद, जिनमें इनसान ज़्यादातर ज़ुल्म करता रहा है, अल्लाह इस तरह के कुछ असरदार जुमलों में एक छोटी-सी नसीहत ज़रूर करता है और उससे मक़सद यह होता है कि दिलों को उन हिदायतों की पाबन्दी पर आमादा किया जाए। ऊपर चूँकि औरतों और यतीम बच्चों के साथ इनसाफ़ और अच्छे सुलूक की हिदायत की गई है इसलिए उसके बाद ज़रूरी समझा गया कि कुछ बातें ईमानवालों के ज़ेहन में बिठा दी जाएँ—

एक यह कि तुम कभी इस भुलावे में न रहना कि किसी की क़िस्मत का बनाना और बिगाड़ना तुम्हारे हाथ में है। अगर तुम उससे हाथ खींच लोगे तो उसका कोई ठिकाना न रहेगा। नहीं, तुम्हारी और उसकी सबकी क़िस्मतों का मालिक अल्लाह है और अल्लाह के पास अपने किसी बन्दे या बन्दी की मदद का एक तुम ही अकेला ज़रीआ नहीं हो। ज़मीन और आसमान के उस मालिक के ज़रीए बेहद फैले हुए हैं और वह अपने ज़रीओं से काम लेने की हिकमत भी रखता है।

दूसरे यह कि तुम्हें और तुम्हारी तरह पिछली तमाम उम्मतों को हमेशा यही हिदायत की जाती रही है कि ख़ुदा से डरते हुए काम करो। इस हिदायत की पैरवी में तुम्हारी अपनी कामयाबी है, ख़ुदा का कोई फ़ायदा नहीं। अगर तुम उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करोगे तो पिछली तमाम उम्मतों ने नाफ़रमानियाँ करके ख़ुदा का क्या बिगाड़ लिया है जो तुम बिगाड़ सकोगे। कायनात के उस बादशाह को न पहले किसी की परवाह थी, न अब तुम्हारी परवाह है। उसके हुक्म से पीठ फेरोगे तो वह तुमको हटाकर किसी दूसरी क़ौम को सरबुलन्द कर देगा और तुम्हारे हट जाने से उसकी सल्तनत की रौनक़ में कोई फ़र्क़ न आएगा।

तीसरे यह कि ख़ुदा के पास दुनिया के फ़ायदे भी हैं और आख़िरत के फ़ायदे भी, आरज़ी (अस्थायी) और वक़्ती फ़ायदे भी हैं, पायदार और हमेशा रहनेवाले भी। अब यह तुम्हारे अपने ज़र्फ़ (अंतःकरण) और हिम्मत की बात है कि तुम उससे किस तरह के फ़ायदे चाहते हो अगर तुम सिर्फ़ दुनिया के कुछ दिनों के फ़ायदों ही पर रीझते हो और उनकी ख़ातिर हमेशा की

قَوّٰمِيْنَ بِالْقِسْطِ شُهَدَآءَ لِلّٰهِ وَلَوْ عَلٰٓى اَنْفُسِكُمْ
اَوِ الْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ ۚ اِنْ يَّكُنْ غَنِيًّا اَوْ فَقِيْرًا
فَاللّٰهُ اَوْلٰى بِهِمَا ۗ فَلَا تَتَّبِعُوا الْهَوٰٓى اَنْ تَعْدِلُوْا ۚ

गवाह बनो,[165] भले ही तुम्हारे इनसाफ़ और तुम्हारी गवाही की ज़द (मार) ख़ुद तुम्हारी अपनी ज़ात पर या तुम्हारे माँ-बाप और रिश्तेदारों पर ही क्यों न पड़ती हो। मामले से ताल्लुक़ रखनेवाला फ़रीक़ (पक्ष) चाहे मालदार हो या ग़रीब अल्लाह तुमसे ज़्यादा उनका भला चाहनेवाला है। तो अपने मन की ख़ाहिश की पैरवी में इनसाफ़ से न हटो। और

ज़िन्दगी के फ़ायदों को क़ुरबान कर देने के लिए तैयार हो तो ख़ुदा यही कुछ तुम को यहीं और अभी दे देगा, मगर फिर आख़िरत के हमेशा के फ़ायदों में तुम्हारा कोई हिस्सा न रहेगा। दरिया तो तुम्हारी खेती को हमेशा सींचने के लिए तैयार है, मगर यह तुम्हारे अपने दिल की तंगी और हौसले की पस्ती है कि सिर्फ़ एक फ़सल की सिंचाई को हमेशा के सूखे (अकाल) की क़ीमत पर ख़रीदते हो। कुछ सोच में कुशादगी हो तो इताअत और बन्दगी का वह रास्ता इख़्तियार करो जिससे दुनिया और आख़िरत दोनों के फ़ायदे तुम्हारे हिस्से में आएँ।

आख़िर में कहा गया कि अल्लाह सुनता और देखता है। इसका मतलब यह है कि अल्लाह अन्धा और बहरा नहीं है कि किसी बेख़बर बादशाह की तरह अन्धा-धुन्ध काम करे और अपनी अता और बख़्शिश में भले और बुरे के दर्मियान कोई फ़र्क़ न करे। वह पूरी बाख़बरी के साथ अपनी इस कायनात पर हुकूमत कर रहा है। हर एक के ज़र्फ़ और मिजाज़ और हौसले पर उसकी निगाह है। हरेक की सिफ़तों (गुणों) को वह जानता है। उसे ख़ूब मालूम है कि तुम में से कौन किस रास्ते में अपनी मेहनतें और कोशिशें लगा रहा है। तुम उसकी नाफ़रमानी का रास्ता इख़्तियार करके उन बख़्शिशों की उम्मीद नहीं कर सकते जो उसने सिर्फ़ फ़रमाँबरदारों ही के लिए ख़ास की हैं।

164. यह कहने पर बस नहीं किया कि इनसाफ़ की रविश पर चलो, बल्कि यह कहा कि इनसाफ़ के अलमबरदार बनो। तुम्हारा काम सिर्फ़ इनसाफ़ करना ही नहीं है बल्कि इनसाफ़ का झण्डा लेकर उठना है। तुम्हें इस बात पर कमर कस लेनी चाहिए कि ज़ुल्म मिटे और उसकी जगह इनसाफ़ और सीधे रास्ते पर क़ायम हो। इनसाफ़ को अपने क़ायम रहने के लिए जिस सहारे की ज़रूरत है, ईमानवाला होने की हैसियत से तुम्हारा मक़ाम यह है कि वह सहारा तुम बनो।

165. यानी तुम्हारी गवाही सिर्फ़ ख़ुदा के लिए होनी चाहिए, किसी की रिआयत और किसी की तरफ़दारी उसमें न हो, कोई निजी फ़ायदा या ख़ुदा के सिवा किसी की ख़ुशी तुम्हारे सामने न हो।

وَاِنْ تَلْوٗۤا اَوْ تُعْرِضُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ
خَبِيْرًا ﴿١٣٥﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَ
رَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْ نَزَّلَ عَلٰى رَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ
الَّذِيْۤ اَنْزَلَ مِنْ قَبْلُ ؕ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ
وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ فَقَدْ ضَلَّ ضَلٰلًاۢ

अगर तुमने लगी-लिपटी बात कही या सच्चाई से पहलू बचाया तो जान रखो कि जो कुछ तुम करते हो अल्लाह को उसकी ख़बर है।

(136) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, ईमान लाओ[166] अल्लाह पर और उसके रसूल पर और उस किताब पर जो अल्लाह ने अपने रसूल पर उतारी है और हर उस किताब पर जो इससे पहले वह उतार चुका है। जिसने अल्लाह और उसके फ़रिश्तों और उसकी किताबों और उसके रसूलों और आख़िरत के दिन से कुफ़्र (इनकार) किया[167] वह गुमराही

166. ईमान लानेवालों से कहना कि ईमान लाओ, बज़ाहिर अजीब मालूम होता है। लेकिन असल में यहाँ लफ़्ज़ ईमान दो अलग मानी में इस्तेमाल हुआ है। ईमान लाने का एक मतलब यह है कि आदमी इनकार के बजाय इक़रार की राह अपनाए, न माननेवालों से अलग होकर माननेवालों में शामिल हो जाए। इसका दूसरा मतलब यह है कि आदमी जिस चीज़ को माने उसे सच्चे दिल से माने। पूरी संजीदगी और ख़ुलूस (सच्चाई) के साथ माने। अपनी सोच को, अपने ज़ौक़ (रुचि) को, अपनी पसन्द को, अपने रवैये और चलन को, अपनी दोस्ती और दुश्मनी को, और अपनी कोशिशों और जिद्दोजुहद के मक़सद को बिलकुल अक़ीदे के मुताबिक़ बना ले जिस पर वह ईमान लाया है। इस आयत में बात उन तमाम मुसलमानों से कही गई है जो पहले मतलब के लिहाज़ से 'माननेवालों' में गिने जाते हैं। और उनसे माँग यह की गई है कि दूसरे मतलब के लिहाज़ से सच्चे ईमानवाले बनें।

167. कुफ़्र करने के भी दो मतलब हैं। एक यह कि आदमी साफ़-साफ़ इनकार कर दे। दूसरे यह कि ज़बान से तो माने मगर दिल से न माने या अपने रवैये से साबित कर दे कि वह जिस चीज़ को मानने का दावा कर रहा है हक़ीक़त में उसे नहीं मानता। यहाँ कुफ़्र से ये दोनों मानी मुराद हैं और आयत का मक़सद लोगों को इस बात पर ख़बरदार करना है कि इस्लाम के इन बुनियादी अक़ीदों के साथ कुफ़्र की इन दोनों क़िस्मों में से जिस क़िस्म का बर्ताव भी आदमी करेगा, उसका नतीजा हक़ से दूरी और बातिल के रास्तों में भटकने और नाकाम होने के सिवा कुछ न होगा।

بَعِيْدًا ﴿١٣٦﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ثُمَّ كَفَرُوْا ثُمَّ اٰمَنُوْا ثُمَّ
كَفَرُوْا ثُمَّ ازْدَادُوْا كُفْرًا لَّمْ يَكُنِ اللّٰهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ
وَلَا لِيَهْدِيَهُمْ سَبِيْلًا ﴿١٣٧﴾ بَشِّرِ الْمُنٰفِقِيْنَ بِاَنَّ لَهُمْ
عَذَابًا اَلِيْمًا ﴿١٣٨﴾ الَّذِيْنَ يَتَّخِذُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ
مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ اَيَبْتَغُوْنَ عِنْدَهُمُ الْعِزَّةَ

में भटककर बहुत दूर निकल गया। (137) रहे वे लोग जो ईमान लाए, फिर इनकार किया, फिर ईमान लाए, फिर इनकार किया, फिर अपने इनकार में बढ़ते चले गए[168] तो अल्लाह हरगिज़ उनको माफ़ न करेगा और न कभी उनको सीधा रास्ता दिखाएगा। (138, 139) और जो मुनाफ़िक़ ईमानवालों को छोड़कर कुफ़्र करनेवालों को अपना साथी बनाते हैं उन्हें यह ख़ुशख़बरी सुना दो कि उनके लिए दर्दनाक सज़ा तैयार है। क्या ये लोग इज़्ज़त की चाह में उनके पास जाते हैं?[169] हालाँकि इज़्ज़त तो सारी की सारी

---

168. इससे मुराद वे लोग हैं जिनके लिए दीन सिर्फ़ एक ग़ैर-संजीदा तफ़रीह (मनोरंजन) और खेल है। एक खिलौना है जिससे वे अपने ख़यालों या अपनी ख़ाहिशों के मुताबिक़ खेलते रहते हैं। जब दिमाग़ में एक लहर उठी, मुसलमान हो गए और जब दूसरी लहर उठी, इनकारी (ग़ैर-मुस्लिम) बन गए, या जब फ़ायदा मुसलमान बन जाने में नज़र आया, मुसलमान बन गए और जब फ़ायदे के बुत ने दूसरी तरफ़ जलवा दिखाया तो उसकी पूजा करने के लिए बेझिझक उसी तरफ़ चले गए। ऐसे लोगों के लिए अल्लाह के पास न मग़फ़िरत (मोक्ष) है, न हिदायत। और यह जो कहा कि "फिर अपने इनकार में बढ़ते चले गए" तो इसका मतलब यह है कि एक आदमी सिर्फ़ इनकारी (ग़ैर-मुस्लिम) बन जाने ही पर बस न करे, बल्कि उसके बाद दूसरे लोगों को भी इस्लाम से फेरने की कोशिश करे। इस्लाम के ख़िलाफ़ ख़ुफ़िया साज़िशें और एलानिया तदबीरें शुरू कर दे और अपनी ताक़त इसी भाग-दौड़ और जिद्दोजुह्द में लगाने लगे कि कुफ़्र का बोल बाला हो और उसके मुक़ाबले में अल्लाह के दीन का झण्डा झुक जाए। यह इनकार में तरक़्क़ी और एक जुर्म पर बार-बार किए गए जुर्मों की बढ़ोत्तरी है, जिसका वबाल भी सिर्फ़ इनकार से लाज़िमी तौर पर ज़्यादा होना चाहिए।

169. 'इज़्ज़त' का मतलब अरबी ज़बान में उर्दू और हिन्दी के मुक़ाबले ज़्यादा वसीअ (व्यापक) है। उर्दू और हिन्दी में इज़्ज़त सिर्फ़ एहतिराम, क़द्र करना और बुलन्द दर्जा देने के मानी में इस्तेमाल

فَاِنَّ الْعِزَّةَ لِلّٰهِ جَمِيْعًا ﴿١٣٩﴾ وَقَدْ نَزَّلَ عَلَيْكُمْ فِي
الْكِتٰبِ اَنْ اِذَا سَمِعْتُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ يُكْفَرُ بِهَا وَ
يُسْتَهْزَاُ بِهَا فَلَا تَقْعُدُوْا مَعَهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِيْ
حَدِيْثٍ غَيْرِهٖٓ ۖ اِنَّكُمْ اِذًا مِّثْلُهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ جَامِعُ
الْمُنٰفِقِيْنَ وَالْكٰفِرِيْنَ فِيْ جَهَنَّمَ جَمِيْعًا ﴿١٤٠﴾ ۙ الَّذِيْنَ
يَتَرَبَّصُوْنَ بِكُمْ ۚ فَاِنْ كَانَ لَكُمْ فَتْحٌ مِّنَ اللّٰهِ قَالُوْٓا
اَلَمْ نَكُنْ مَّعَكُمْ ۖ وَاِنْ كَانَ لِلْكٰفِرِيْنَ نَصِيْبٌ ۙ قَالُوْٓا

अल्लाह ही के लिए है। (140) अल्लाह इस किताब में तुमको पहले ही हुक्म दे चुका है कि जहाँ तुम सुनो कि अल्लाह की आयतों के ख़िलाफ़ कुफ़्र बका जा रहा है और उनका मज़ाक़ उड़ाया जा रहा है वहाँ न बैठो, जब तक कि लोग किसी दूसरी बात में न लग जाएँ। अब अगर तुम ऐसा करते हो तो तुम भी उन्हीं की तरह हो।[170] यक़ीन जानो कि अल्लाह मुनाफ़िक़ों और हक़ का इनकार करनेवालों को जहन्नम में एक जगह जमा करनेवाला है। (141) ये मुनाफ़िक़ तुम्हारे मामले में इन्तिज़ार कर रहे हैं (कि ऊँट किस करवट बैठता है) अगर अल्लाह की तरफ़ से फ़तूह तुम्हारी हुई तो आकर कहेंगे कि क्या हम तुम्हारे साथ न थे? अगर इनकार करनेवालों (दुश्मनों) का पल्ला भारी रहा तो उनसे कहेंगे कि क्या हम तुम्हारे ख़िलाफ़ लड़ने की क़ुदरत न रखते थे और फिर भी हमने

होता है। मगर अरबी में इज़्ज़त का मतलब यह है कि किसी आदमी को ऐसी बुलन्द और महफ़ूज़ हैसियत हासिल हो जाए कि कोई उसका कुछ बिगाड़ न सके। दूसरे अलफ़ाज़ में इज़्ज़त ऐसे एहतिराम (प्रतिष्ठा) को कहते हैं जिसको कोई नुक़सान न पहुँचाई जा सके।

170. यानी अगर एक आदमी इस्लाम का दावा रखने के बावजूद इनकारियों की उन बैठकों में शरीक होता है जहाँ अल्लाह की आयतों के ख़िलाफ़ कुफ़्र (कुधर्म) बका जाता है और ठण्डे दिल से उन लोगों को ख़ुदा और रसूल का मज़ाक़ उड़ाते हुए सुनता है तो इसमें और उन इनकारियों में कोई फ़र्क़ बाक़ी नहीं रहता। (जिस हुक्म का इस आयत में ज़िक्र किया गया है वह सूरा अनआम की आयत-68 में बयान हुआ है।)

أَلَمْ نَسْتَحْوِذْ عَلَيْكُمْ وَنَمْنَعْكُم مِّنَ الْمُؤْمِنِينَ ۚ فَاللَّهُ
يَحْكُمُ بَيْنَكُمْ يَوْمَ الْقِيَامَةِ ۗ وَلَن يَجْعَلَ اللَّهُ لِلْكَافِرِينَ
عَلَى الْمُؤْمِنِينَ سَبِيلًا ﴿١٤١﴾ إِنَّ الْمُنَافِقِينَ يُخَادِعُونَ
اللَّهَ وَهُوَ خَادِعُهُمْ وَإِذَا قَامُوا إِلَى الصَّلَاةِ قَامُوا
كُسَالَىٰ يُرَاءُونَ النَّاسَ وَلَا يَذْكُرُونَ اللَّهَ إِلَّا

तुमको मुसलमानों से बचाया?[171] बस अल्लाह ही तुम्हारे और उनके मामले का फ़ैसला क़ियामत के दिन करेगा और (इस फ़ैसले में) अल्लाह ने इनकार करनेवालों के लिए मुसलमानों पर ग़ालिब आने की हरगिज़ कोई राह नहीं रखी है।

(142) ये मुनाफ़िक़ अल्लाह के साथ धोखेबाज़ी कर रहे हैं; हालाँकि हक़ीक़त में अल्लाह ही ने उन्हें धोखे में डाल रखा है। जब ये नमाज़ के लिए उठते हैं तो कसमसाते हुए सिर्फ़ लोगों को दिखाने के लिए उठते हैं और अल्लाह को याद थोड़े ही करते हैं।[172]

171. हर ज़माने के मुनाफ़िक़ों की यही ख़ासियत है। मुसलमान होने की हैसियत से जो फ़ायदे हासिल किए जा सकते हैं उनको ये अपने ज़बानी इक़रार और इस्लाम के दायरे में बराए-नाम शामिल होने के ज़रीए से हासिल करते हैं और जो फ़ायदे ग़ैर-मुस्लिम होने की हैसियत से हासिल होने मुमकिन हैं उनकी ख़ातिर ये ग़ैर-मुस्लिमों से जाकर मिलते हैं और हर तरीक़े से उनको यक़ीन दिलाते हैं कि हम कोई "मुतास्सिब (पक्षपात) करनेवाले मुसलमान" नहीं हैं, नाम का ताल्लुक़ मुसलमानों से ज़रूर है मगर हमारी दिलचस्पियाँ और वफ़ादारियाँ तुम्हारे साथ हैं, सोच, तहज़ीब और ज़ौक के लिहाज़ से हर तरह का मेल तुम्हारे साथ है और कुफ़्र और इस्लाम की कश-म-कश में हमारा वज़न जब पड़ेगा तुम्हारे ही पलड़े में पड़ेगा।

172. नबी *(सल्ल०)* के ज़माने में कोई आदमी मुसलमानों की जमाअत में गिना ही नहीं जा सकता था जब तक कि वह नमाज़ का पाबन्द न हो। जिस तरह तमाम दुनियवी जमाअतें और इदारे अपनी मीटिंगों और इज्तिमाओं में किसी मेम्बर के, बग़ैर किसी मजबूरी के, शरीक न होने को समझती हैं कि उसकी दिलचस्पी नहीं रही और लगातार कुछ इज्तिमाओं और मीटिंगों में ग़ैर-हाज़िर रहने पर उसे मेम्बरी से निकाल देतती हैं, इसी तरह इस्लामी जमाअत के किसी मेम्बर का जमाअत के साथ नमाज़ न पढ़ना उस ज़माने में इस बात की खुली दलील समझी जाती थी कि वह आदमी इस्लाम से कोई दिलचस्पी नहीं रखता। और अगर वह लगातार कुछ बार जमाअत से ग़ैर-हाज़िर रहता तो यह समझ लिया जाता था कि वह मुसलमान नहीं है। इस वजह से पक्के से

قَلِيْلًا ﴿١٤٢﴾ مُّذَبْذَبِيْنَ بَيْنَ ذٰلِكَ ۖ لَآ اِلٰى هٰٓؤُلَآءِ
وَلَآ اِلٰى هٰٓؤُلَآءِ ؕ وَمَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ
سَبِيْلًا ﴿١٤٣﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوا

(143) कुफ़्र और ईमान के बीच डाँवाडोल हैं; न पूरे इस तरफ़ हैं, न पूरे उस तरफ़। जिसे अल्लाह ने भटका दिया हो, उसके लिए तुम कोई रास्ता नहीं पा सकते।[173]

(144) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, ईमानवालों को छोड़कर कुफ़्र करनेवालों को

पक्के मुनाफ़िक़ों को भी उस ज़माने में पाँचों वक़्त मस्जिद की हाज़िरी ज़रूर देनी पड़ती थी; क्योंकि इसके बग़ैर वे मुसलमानों की जमाअत में गिने ही नहीं जा सकते थे। अलबत्ता जो चीज़ उनको सच्चे ईमानवालों से अलग करती थी वह यह थी कि सच्चे ईमानवाले ज़ौक़ और शौक़ से आते थे, वक़्त से पहले मस्जिदों में पहुँच जाते थे, नमाज़ से फ़ारिग़ होकर भी मस्जिदों में ठहरे रहते थे और उनकी एक-एक हरकत से ज़ाहिर होता था कि नमाज़ से उनको सच्ची दिलचस्पी है। इसके ख़िलाफ़ अज़ान की आवाज़ सुनते ही मुनाफ़िक़ की जान पर बन जाती थी। दिल पर जब्र करके उठता था। उसके आने का अन्दाज़ साफ़ तौर पर बताता था कि आ नहीं रहा है, बल्कि अपने आपको खींचकर ला रहा है। जमाअत ख़त्म होते ही इस तरह भागता था मानो किसी क़ैदी को रिहाई मिली है और उसकी तमाम हरकतों और कामों से ज़ाहिर होता था कि यह आदमी ख़ुदा के ज़िक्र से कोई लगाव नहीं रखता।

173. यानी जिसने ख़ुदा के कलाम और उसके रसूल की सीरत से सीधा रास्ता न पाया हो, जिसको सच्चाई से हटा हुआ और बातिल-परस्ती की तरफ़ झुका हुआ देखकर ख़ुदा ने भी उसी तरफ़ फेर दिया हो जिस तरफ़ वह ख़ुद फिरना चाहता था, और जिसकी गुमराही चाहने की वजह से ख़ुदा ने उसपर हिदायत के दरवाज़े बन्द और सिर्फ़ गुमराही ही के रास्ते खोल दिए हों, ऐसे आदमी को सीधा रास्ता दिखाना हक़ीक़त में किसी इनसान के बस का काम नहीं है। इस मामले को रोज़ी की मिसाल से समझिए। यह एक हक़ीक़त है कि रोज़ी के तमाम ख़ज़ाने अल्लाह के क़ब्ज़े में हैं। जिस इनसान को जो कुछ भी मिलता है अल्लाह ही के यहाँ से मिलता है। मगर अल्लाह हर आदमी को रोज़ी उस रास्ते से देता है जिस रास्ते से वह ख़ुद माँगता हो। अगर कोई आदमी अपनी रोज़ी हलाल रास्ते से माँगे और उसी के लिए कोशिश भी करे तो अल्लाह उसके लिए हलाल रास्तों को खोल देता है और जितनी उसकी नीयत सच्ची होती है उसी हिसाब से हराम के रास्ते उसके लिए बन्द कर देता है। इसके ख़िलाफ़ जो आदमी हराम खाने पर तुला हुआ होता है और उसी के लिए भाग-दौड़ करता है उसको ख़ुदा की इजाज़त से हराम ही की रोटी मिलती है और फिर यह किसी के बस की बात नहीं कि उसके नसीब में हलाल रोज़ी लिख दे। बिलकुल इसी तरह यह भी हक़ीक़त है कि दुनिया में सोच और अमल के सारे रास्ते अल्लाह के इख़्तियार में हैं। कोई आदमी किसी रास्ते पर भी अल्लाह की इजाज़त और उसकी ताक़त के बग़ैर नहीं चल सकता। रही यह बात कि किस इनसान को किस रास्ते पर चलने की इजाज़त

الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ اَتُرِيْدُوْنَ
اَنْ تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ عَلَيْكُمْ سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ﴿۱۴۴﴾ اِنَّ
الْمُنٰفِقِيْنَ فِي الدَّرْكِ الْاَسْفَلِ مِنَ النَّارِ ۚ وَلَنْ
تَجِدَ لَهُمْ نَصِيْرًا ﴿۱۴۵﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا وَاَصْلَحُوْا
وَاعْتَصَمُوْا بِاللّٰهِ وَاَخْلَصُوْا دِيْنَهُمْ لِلّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ
مَعَ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ وَسَوْفَ يُؤْتِ اللّٰهُ الْمُؤْمِنِيْنَ

अपना साथी न बनाओ। क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह को अपने ख़िलाफ़ खुली हुज्जत (ठोस दलील) दे दो? (145) यक़ीन जानो कि मुनाफ़िक़ जहन्नम के सबसे निचले तबक़े में जाएँगे और तुम किसी को उनका मददगार न पाओगे। (146) अलबत्ता जो उनमें से तौबा कर लें और अपने रवैये का सुधार कर लें और अल्लाह का दामन थाम लें और अपने दीन को अल्लाह के लिए ख़ालिस कर दें,[174] ऐसे लोग ईमानवालों के साथ हैं और

मिलती है और किस रास्ते पर चलने की वजहें उसके लिए तैयार की जाती हैं तो इसका दारोमदार सरासर आदमी की अपनी चाहत और कोशिश पर है। अगर वह ख़ुदा से लगाव रखता है, सच्चाई की चाहत रखता है और ख़ालिस नीयत से ख़ुदा के रास्ते पर चलने की कोशिश करता है तो अल्लाह उसी की इजाज़त और उसी की तौफ़ीक़ उसे देता है और उसी राह पर चलने के असबाब उसके लिए जुटा देता है। इसके बरख़िलाफ़ जो आदमी ख़ुद गुमराही को पसन्द करता है और ग़लत रास्तों ही पर चलने की कोशिश करता है अल्लाह की तरफ़ से उसके लिए हिदायत के दरवाज़े बन्द हो जाते हैं और वही रास्ते उसके लिए खोल दिए जाते हैं जिनको उसने आप आपने लिए चुना है। ऐसे आदमी को ग़लत सोचने, ग़लत काम करने और ग़लत रास्तों में अपनी ताक़तें लगाने से बचा लेना किसी के इख़्तियार में नहीं है। अपने नसीब का सीधा रास्ता जिसने ख़ुद खोद डाला और जिससे अल्लाह ने उसको महरूम कर दिया, उसके लिए यह गुम हुई नेमत किसी के ढूँढे नहीं मिल सकती।

174. अपने दीन को अल्लाह के लिए ख़ालिस कर देने का मतलब यह है कि आदमी की वफ़ादारियाँ अल्लाह के सिवा किसी और से जुड़ी हुई न हों, अपनी सारी दिलचस्पियों और मुहब्बतों और अक़ीदतों को वह अल्लाह के आगे पेश कर दे, किसी चीज़ के साथ भी दिल का ऐसा लगाव बाक़ी न रहे कि अल्लाह की रज़ा और ख़ुशी के लिए उसे क़ुरबान न किया जा सकता हो।

أَجْرًا عَظِيمًا ۝١٤٦ مَا يَفْعَلُ اللَّهُ بِعَذَابِكُمْ إِنْ شَكَرْتُمْ وَآمَنْتُمْ ۚ وَكَانَ اللَّهُ شَاكِرًا عَلِيمًا ۝١٤٧

अल्लाह ईमानवालों को ज़रूर बड़ा बदला देगा। (147) आख़िर अल्लाह को क्या पड़ी है कि तुम्हें ख़ाह-म-ख़ाह सज़ा दे अगर तुम शुक्रगुज़ार बन्दे बने रहो[175] और ईमान की रविश पर चलो। अल्लाह बड़ा क़द्रदान है।[176] और सबके हाल को जानता है।

175. शुक्र के असल मानी नेमत के तसलीम करने या एहसानमन्दी के हैं। आयत का मतलब यह है कि अगर तुम अल्लाह के साथ नाशुक्री और नमकहरामी का रवैया न अपनाओ, बल्कि सही तौर पर उसके शुक्रगुज़ारी (एहसानमन्द) बनकर रहो तो कोई वजह नहीं कि अल्लाह बिला वजह तुम्हें सज़ा दे।

एक एहसान करनेवाले के मुक़ाबले में सही एहसानमन्दी का रवैया यही हो सकता है कि आदमी दिल से उसके एहसान को तसलीम करे, ज़बान से उसका इक़रार करे और अमल से एहसानमन्दी का सुबूत दे। इन्हीं तीन चीज़ों के मजमूए का नाम शुक्र है। और इस शुक्र का तक़ाज़ा यह है कि सबसे पहले आदमी एहसान की निस्बत उसी की तरफ़ करे जिसने असल में एहसान किया है, किसी दूसरे को एहसान के शुक्रिए और नेमत को तसलीम करने में उसका हिस्सेदार न बनाए। दूसरी बात यह कि आदमी का दिल अपने मुहसिन के लिए मुहब्बत और वफ़ादारी के जज़्बे से भरा हुआ हो और उसके मुख़ालिफ़ों से मुहब्बत और ख़ुलूस और वफ़ादारी का ज़र्रा बराबर ताल्लुक़ भी न रखे। तीसरी बात यह है कि वह अपने मुहसिन का फ़रमाँबरदार हो और उसकी दी हुई नेमतों को उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ इस्तेमाल न करे।

176. असल अरबी में 'शाकिर' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जिसका तर्जमा हमने 'क़द्रदान' किया है। शुक्र जब अल्लाह की तरफ़ से बन्दे की जानिब हो तो इसके मानी 'बन्दे की ख़िदमतों का एतिराफ़' या क़द्रदानी के होंगे, और जब बन्दे की तरफ़ से अल्लाह के लिए हो तो इसको उसकी नेमतों के तसलीम करने या एहसानमन्दी के मानी में लिया जाएगा। अल्लाह की तरफ़ से बन्दों का शुक्रिया अदा किए जाने का मतलब यह है कि अल्लाह नाक़द्री करनेवाला नहीं है, जितनी और जैसी ख़िदमतें भी बन्दे उसकी राह में करें अल्लाह के यहाँ उनकी क़द्र की जाती है। किसी की ख़िदमतें बदले और इनाम से महरूम नही रहतीं, बल्कि वह बहुत ही फ़ैयाज़ी (उदारता) के साथ हर आदमी को उसकी ख़िदमत से ज़्यादा बदला और इनाम देता है। बन्दों का हाल तो यह है कि जो कुछ आदमी ने किया उसकी क़द्र कम करते हैं और जो कुछ न किया उसपर पकड़ करने में बड़ी सख़्ती दिखाते हैं। लेकिन अल्लाह का हाल यह है कि जो कुछ आदमी ने नहीं किया है उस पर हिसाब लेने में वह बहुत नरमी और अनदेखी से काम लेता है, और जो कुछ किया है उसकी क़द्र उसके मर्तबे से बढ़कर करता है।

لَا يُحِبُّ اللّٰهُ الْجَهْرَ بِالسُّوْٓءِ مِنَ الْقَوْلِ اِلَّا مَنْ
ظُلِمَ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ سَمِيْعًا عَلِيْمًا ﴿١٤٨﴾ اِنْ تُبْدُوْا خَيْرًا
اَوْ تُخْفُوْهُ اَوْ تَعْفُوْا عَنْ سُوْٓءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا
قَدِيْرًا ﴿١٤٩﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَ رُسُلِهٖ وَ

---

(148) अल्लाह इसको पसन्द नहीं करता कि आदमी बुरे लफ़्ज़ों के लिए ही ज़बान खोले। यह और बात है कि किसी पर ज़ुल्म किया गया हो, और अल्लाह सब कुछ सुनने और जाननेवाला है। (149) (अगर तुमपर ज़ुल्म हुआ है तो हालाँकि तुम्हें हक़ है कि बुराई बयान करो) लेकिन अगर तुम खुले और छिपे में भलाई ही किए जाओ, या कम से कम बुराई को माफ़ कर दो तो अल्लाह की सिफ़त भी यही है कि वह बड़ा माफ़ करनेवाला है। हालाँकि सज़ा देने पर पूरी की पूरी क़ुदरत उसे हासिल है।[177]

(150) जो लोग अल्लाह और उसके रसूलों का इनकार करते हैं और चाहते हैं कि

---

177. इस आयत में मुसलमानों को एक निहायत बुलन्द दर्जे की अख़लाक़ी तालीम दी गई है। मुनाफ़िक़ और यहूदी और बुत-परस्त सबके सब उस वक़्त हर मुमकिन तरीक़े से इस्लाम की राह में रोड़े अटकाने और उसकी पैरवी क़बूल करनेवालों को सताने और परेशान करने पर तुले हुए थे। कोई बुरी से बुरी चाल ऐसी न थी जो वे इस नई तहरीक के ख़िलाफ़ इस्तेमाल न कर रहे हों। इस पर मुसलमानों के अन्दर नफ़रत और ग़ुस्से के जज़बात का पैदा होना एक फ़ितरी बात थी। अल्लाह ने उनके दिलों में इस तरह के जज़बात का तूफ़ान उठते देखकर कहा कि बुरी बात कहने पर ज़बान खोलना तुम्हारे ख़ुदा के नज़दीक कोई पसन्दीदा काम नहीं है। इसमें शक नहीं कि तुमपर ज़ुल्म किया गया है और अगर जिसपर ज़ुल्म किया गया है वह ज़ुल्म करनेवाले के ख़िलाफ़ बुरी बात कहने के लिए ज़बान खोले तो उसे इसका हक़ है। लेकिन फिर भी बेहतर यही है कि ख़ुफ़िया और एलानिया हर हाल में भलाई किए जाओ और बुराइयों को माफ़ करो। क्योंकि तुमको अपने अख़लाक़ में ख़ुदा के अख़लाक़ से ज़्यादा से ज़्यादा क़रीब होना है। जिस ख़ुदा के तुम क़रीब होना चाहते हो उसकी शान यह है कि वह बहुत ही सहन करनेवाला है। सख़्त से सख़्त मुजरिमों तक को रोज़ी देता है और बड़ी से बड़ी ग़लतियों पर भी पकड़ नहीं करता, बल्कि माफ़ किए चला जाता है। इसलिए उससे ज़्यादा क़रीब होने के लिए तुम भी बुलन्द हौसलेवाले और ख़ूब कुशादा दिल बनो।

يُرِيْدُوْنَ اَنْ يُّفَرِّقُوْا بَيْنَ اللّٰهِ وَرُسُلِهٖ وَيَقُوْلُوْنَ
نُؤْمِنُ بِبَعْضٍ وَّنَكْفُرُ بِبَعْضٍ ۙ وَّيُرِيْدُوْنَ اَنْ
يَّتَّخِذُوْا بَيْنَ ذٰلِكَ سَبِيْلًا ۙ ﴿۱۵۰﴾ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْكٰفِرُوْنَ
حَقًّا ۚ وَاَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ﴿۱۵۱﴾ وَالَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَرُسُلِهٖ وَلَمْ يُفَرِّقُوْا بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ
اُولٰٓئِكَ سَوْفَ يُؤْتِيْهِمْ اُجُوْرَهُمْ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ

अल्लाह और उसके रसूलों के बीच फ़र्क़ करें और कहते हैं कि हम किसी को मानेंगे और किसी को न मानेंगे और कुफ़्र और ईमान के बीच में एक राह निकालना चाहते हैं, (151) वे सब पक्के इनकारी[178] हैं और ऐसे इनकारियों के लिए हमने वह सज़ा तैयार कर रखी है जो उन्हें रुसवा और बेइज़्ज़त कर देनेवाली होगी— (152) इसके बरख़िलाफ़ जो लोग अल्लाह और उसके तमाम रसूलों को मानें और उनके बीच फ़र्क़ न करें उनको हम ज़रूर उनके बदले देंगे,[179] और अल्लाह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम

178. यानी इनकारी होने में वे लोग जो न ख़ुदा को मानते हैं, न उसके रसूलों को और वे लोग जो ख़ुदा को मानते हैं मगर रसूलों को नहीं मानते और वे लोग जो किसी रसूल को मानते हैं और किसी को नहीं मानते, सब बराबर हैं। इनमें से किसी के इनकारी होने में ज़र्रा बराबर शक की गुंजाइश नहीं।

179. यानी जो लोग ख़ुदा को अपना अकेला माबूद और मालिक तसलीम करें और उसके भेजे हुए तमाम रसूलों की पैरवी क़बूल करें, सिर्फ़ वही अपने आमाल (कर्मों) पर इनाम पाने के हक़दार हैं और वे लोग जिस दर्जे का नेक काम करेंगे उसी दर्जे का बदला पाएँगे। रहे वे लोग जिन्होंने इस बात को तसलीम नहीं किया कि ख़ुदा के साथ उसके इलाह और रब होने में कोई शरीक नहीं है, जिन्होंने ख़ुदाई और सिर्फ़ उसी के पालनहार होने को तस्लीम नहीं किया, या ख़ुदा के नुमाइन्दों (नबियों और रसूलों) में से कुछ को क़बूल किया और कुछ को रद्द करने का बाग़ियाना रवैया अपनाया तो उनके लिए किसी अमल पर किसी इनाम का सवाल सिरे से पैदा ही नहीं होता, क्योंकि ऐसे लोगों का कोई अमल ख़ुदा की निगाह में क़ानूनी अमल नहीं है।

غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿١٥٢﴾ يَسْـَٔلُكَ اَهْلُ الْكِتٰبِ اَنْ تُنَزِّلَ
عَلَيْهِمْ كِتٰبًا مِّنَ السَّمَآءِ فَقَدْ سَاَلُوْا مُوْسٰۤى اَكْبَرَ
مِنْ ذٰلِكَ فَقَالُوْۤا اَرِنَا اللّٰهَ جَهْرَةً فَاَخَذَتْهُمُ
الصّٰعِقَةُ بِظُلْمِهِمْ ۚ ثُمَّ اتَّخَذُوا الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِ
مَا جَآءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ فَعَفَوْنَا عَنْ ذٰلِكَ ۚ وَاٰتَيْنَا

करनेवाला है।[180]

(153) (ए नबी!) ये किताबवाले अगर आज तुमसे माँग कर रहे हैं कि तुम आसमान से कोई लिखा उन पर नाज़िल कराओ[181] तो इससे बढ़-चढ़कर मुजरिमाना माँगें ये पहले मूसा से कर चुके हैं। उससे तो इन्होंने कहा था कि हमें ख़ुदा को खुल्लम-खुल्ला दिखा दो और इसी सरकशी की वजह से अचानक इनपर बिजली टूट पड़ी थी।[182] फिर इन्होंने बछड़े को अपना माबूद बना लिया, हालाँकि ये खुली-खुली निशानियाँ देख चुके थे।[183]

180. यानी जो लोग अल्लाह और उसके रसूलों पर ईमान लाएँगे उनका हिसाब लेने में अल्लाह सख़्ती से काम नहीं लेगा, बल्कि उनके साथ बहुत नर्मी और माफ़ी से काम लेगा।

181. मदीना के यहूदी नबी *(सल्ल०)* से जो अजीब-अजीब मुतालबे करते थे उनमें से एक मुतालबा यह भी था कि हम आपको उस वक़्त तक ख़ुदा का पैग़म्बर न तसलीम करेंगे, जब तक कि हमारी आँखों के सामने एक लिखी-लिखाई किताब आसमान से न उतरे या हम में से एक-एक आदमी के नाम ऊपर से इस मज़मून (विषय) की तहरीर न आ जाए कि ये मुहम्मद हमारे रसूल हैं, इनपर ईमान लाओ।

182. यहाँ मक़सद किसी वाक़िए की तफ़सील बयान करना नहीं है, बल्कि यहूदियों के जुर्मों और अपराधों की एक मुख़्तसर सी लिस्ट पेश करना है। इसके लिए उनके क़ौमी इतिहास के कुछ नुमायाँ और चुने हुए वाक़िआत की तरफ़ सरसरी इशारे किए गए हैं। इस आयत में जिस वाक़िए का ज़िक्र है वह सूरा-2 अल-बक़रा, आयत-55 में भी गुज़र चुका है। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-71)

183. खुली-खुली निशानियों से मुराद वे निशानियाँ हैं जो हज़रत मूसा *(अलैहि०)* के रसूल बनाए जाने के बाद से लेकर फ़िरऔन के डूबने और बनी-इसराईल के मिस्र से निकलने तक लगातार उन लोगों की नज़र में आ चुकी थीं। ज़ाहिर है कि मिस्र की सल्तनत की अज़ीमुश्शान ताक़त के

مُوْسٰى سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ﴿١٥٣﴾ وَرَفَعْنَا فَوْقَهُمُ الطُّوْرَ
بِمِيْثَاقِهِمْ وَقُلْنَا لَهُمُ ادْخُلُوا الْبَابَ سُجَّدًا وَّقُلْنَا
لَهُمْ لَا تَعْدُوْا فِي السَّبْتِ وَاَخَذْنَا مِنْهُمْ مِّيْثَاقًا
غَلِيْظًا ﴿١٥٤﴾ فَبِمَا نَقْضِهِمْ مِّيْثَاقَهُمْ وَكُفْرِهِمْ بِاٰيٰتِ
اللّٰهِ وَقَتْلِهِمُ الْاَنْۢبِيَآءَ بِغَيْرِ حَقٍّ وَّقَوْلِهِمْ قُلُوْبُنَا

इस पर भी हमने इन्हें माफ़ किया। हमने मूसा को साफ़-साफ़ फ़रमान दिया था और
(154) इन लोगों पर तूर (पहाड़) को उठाकर इनसे (उस हुक्म पर चलने का) पक्का
वादा लिया था।[184] हमने इनको हुक्म दिया कि दरवाज़े में सजदा करते हुए दाख़िल हों[185]
हमने इनसे कहा कि सब्त (शनिवार) का क़ानून न तोड़ो और इस पर इनसे पक्का वादा
लिया।[186] (155) आख़िरकार इनके वादा तोड़ने की वजह से और इस वजह से कि
इन्होंने अल्लाह की आयतों को झुठलाया और बहुत-से पैग़म्बरों को नाहक़ क़त्ल किया

पंजों से जिसने बनी-इसराईल को छुड़ाया था वह कोई गाय का बच्चा न था, बल्कि सारे जहानों का रब अल्लाह था। मगर यह उस क़ौम की बातिलपरस्ती का कमाल था कि ख़ुदा की क़ुदरत और उसके फ़ज़्ल की निहायत रौशन निशानियों का तजुर्बा करने और उन्हें देखने के बाद भी जब झुकी तो अपने एहसान करनेवाले ख़ुदा के आगे नहीं, बल्कि एक बछड़े की बनावटी मूर्ति ही के आगे झुकी।

184. साफ़-साफ़ फ़रमान से मुराद वे एहकाम और हिदायतें हैं जो हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* को तख़्तियों पर लिख कर दी गई थीं। सूरा-7, अल-आराफ़ के रुकू-17 (आयत 143 से आगे) में इसका बयान ज़्यादा तफ़सील के साथ आएगा। और अहद से मुराद वह मीसाक़ (वचन) है जो तूर पहाड़ के दामन में बनी-इसराईल के नुमाइन्दों से लिया गया था। सूरा-2 अल-बक़रा आयत-63 में इसका बयान गुज़र चुका है और सूरा-7 आराफ़ आयत-171 में फिर उसकी तरफ़ इशारा आएगा।

185. देखें सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-58 और 59, हाशिया-75।

186. देखें सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-65, हाशिया-82 और 83।

غُلْفٌ ۭ بَلْ طَبَعَ اللّٰهُ عَلَيْهَا بِكُفْرِهِمْ فَلَا يُؤْمِنُوْنَ
اِلَّا قَلِيْلًا ۝۱۵۵ وَّبِكُفْرِهِمْ وَقَوْلِهِمْ عَلٰي مَرْيَمَ
بُهْتَانًا عَظِيْمًا ۝۱۵۶ وَّقَوْلِهِمْ اِنَّا قَتَلْنَا الْمَسِيْحَ

और यहाँ तक कहा कि हमारे दिल ग़िलाफ़ों में महफ़ूज़ हैं[187]— हालाँकि[188] हक़ीक़त में इनकी बातिलपरस्ती की वजह से अल्लाह ने इनके दिलों पर ठप्पा लगा दिया है और इसी वजह से ये बहुत कम ईमान लाते हैं (156) — फिर[189] अपने कुफ़्र और इनकार में ये इतने बढ़े कि मरयम पर सख़्त बुहतान लगाया,[190] (157) और ख़ुद कहा कि हमने मसीह,

187. यहूदियों की इस बात की तरफ़ सूरा-2, अल-बक़रा की आयत-88 में भी इशारा किया गया है। हक़ीक़त में ये लोग तमाम बातिलपरस्त जाहिलों की तरह इस बात पर फ़ख़्र करते थे कि जो ख़यालात और तास्सुबात (पूर्वाग्रह) और रस्मो-रिवाज हमने अपने बाप-दादा से पाए हैं उनपर हमारा अक़ीदा इतना पुख़्ता है कि किसी तरह हम उनसे नहीं हटाए जा सकते। जब कभी ख़ुदा की तरफ़ से पैग़म्बरों ने आकर इनको समझाने की कोशिश की, इन्होंने उनको यही जवाब दिया कि तुम चाहे कोई दलील और कोई आयत ले आओ हम तुम्हारी किसी बात का असर न लेंगे, जो कुछ मानते और करते चले आए हैं वही मानते रहेंगे और वही किए चले जाएँगे। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-94)

188. यह बीच में आया हुआ वह जुमला है जिसमें पहले से चल रही बात से हटकर एक दूसरी बात कही गई है।

189. यह जुमला तक़रीर के अस्ल सिलसिले से ताल्लुक़ रखता है।

190. हज़रत ईसा *(अलैहि०)* की पैदाइश के मामले में यहूदी क़ौम के अन्दर हक़ीक़त में ज़र्रा बराबर भी शक व शुब्हा न था, बल्कि जिस दिन वे पैदा हुए थे उसी दिन अल्लाह ने पूरी क़ौम को इस बात पर गवाह बना दिया था कि यह एक ग़ैर-मामूली शख़्सियत का बच्चा है जिसकी पैदाइश मोजिज़ों का नतीजा है न कि किसी अख़लाक़ी जुर्म का। जब बनी-इसराईल के एक सबसे ज़्यादा शरीफ़ और मशहूर व नामवर मज़हबी घराने की बिन-ब्याही लड़की गोद में बच्चा लिए हुए आई और क़ौम के बड़े और छोटे सैकड़ों-हज़ारों की तादाद में उसके घर पर भीड़ की शक्ल में आ गए तो इस लड़की ने उनके सवालों का जवाब देने के बजाय ख़ामोशी के साथ उस नवजात बच्चे की तरफ़ इशारा कर दिया कि यह तुम्हें जवाब देगा। मजमे ने हैरत से कहा कि इस बच्चे से हम क्या पूछें जो पालने में लेटा हुआ है। मगर अचानक वह बच्चा बोल उठा और उसने निहायत साफ़, वाज़ेह, उम्दा ज़बान में मजमे को ख़िताब करके कहा कि "मैं अल्लाह का बन्दा हूँ, अल्लाह ने मुझे किताब दी है और नबी बनाया है।" (देखें सूरा-मरयम रुकू-2

عِيۡسَى ابۡنَ مَرۡيَمَ رَسُوۡلَ اللّٰهِ ۚ وَمَا قَتَلُوۡهُ وَمَا

मरयम के बेटे ईसा, अल्लाह के रसूल, का क़त्ल कर दिया है[191]— हालाँकि[192] सही बात

आयत-30) इस तरह अल्लाह ने उस शुब्हे की हमेशा के लिए जड़ काट दी थी जो मसीह की पैदाइश के बारे में पैदा हो सकता था। यही वजह है कि हज़रत ईसा *(अलैहि०)* के जवानी के पहुँचने तक कभी किसी ने न हज़रत मरयम पर ज़िना (बदकारी) का इलज़ाम लगाया, न हज़रत ईसा को नाजाइज़ पैदाइश का ताना दिया। लेकिन जब तीस बरस की उम्र को पहुँचकर हज़रत ईसा ने अपने नुबूवत के काम की शुरुआत की और जब आपने यहूदियों को उनके बुरे कामों पर मलामत करनी शुरू की, उनके आलिमों और फ़क़ीहों को उनके दिखावटी कामों पर टोका, उनके आम और ख़ास सब लोगों को उस अख़लाक़ी गिरावट पर ख़बरदार किया जिनका वे शिकार हो गए थे और ख़तरे से भरे उस रास्ते की तरफ़ अपनी क़ौम को दावत दी जिसमें ख़ुदा के दीन को अमली तौर पर क़ायम करने के लिए हर तरह की क़ुरबानियाँ बरदाश्त करनी पड़ती थीं और हर मोर्चे पर शैतानी ताक़तों से लड़ाई का सामना था, तो ये बेख़ौफ़ मुजरिम सच्चाई की आवाज़ को दबाने के लिए हर नापाक से नापाक हथियार इस्तेमाल करने पर उतर आए। उस वक़्त इन्होंने वह बात कही जो तीस साल तक न कही थी कि मरयम *(अलैहि०)* (अल्लाह पनाह में रखे) ज़ानिया (बदकार) हैं और मरयम के बेटे ईसा वलदुद्दुज़िना (यानी बदकार के नतीजे में पैदाशुदा औलाद) हैं। हालाँकि ये ज़ालिम लोग पूरे यक़ीन के साथ जानते थे कि ये दोनों माँ-बेटे इस गन्दगी से बिलकुल पाक हैं। इसी लिए हक़ीक़त में इनका यह बुहतान किसी हक़ीक़ी शुब्हे का नतीजा नहीं था, जो वाक़ई में इनके दिलों में मौजूद होता, बल्कि ख़ालिस बुहतान था जो उन्होंने जान-बूझकर सिर्फ़ हक़ की मुख़ालिफ़त के लिए घड़ा था। इसी वजह से अल्लाह ने इसे ज़ुल्म और झूठ के बजाय कुफ़्र (अधर्म) कहा है, क्योंकि इस इलज़ाम से इनका असल मक़सद ख़ुदा के दीन का रास्ता रोकना था, न कि एक बे-गुनाह औरत पर इलज़ाम लगाना।

191. यानी उनकी मुजरिमाना जुर्रत इतनी बढ़ी हुई थी कि रसूल को रसूल जानते थे और उसके बाद भी उसके क़त्ल की कोशिश की और फ़ख़्र से कहा कि हमने अल्लाह के रसूल को क़त्ल किया है। ऊपर हमने पालने के वाक़िए का जो हवाला दिया है उस पर ग़ौर करने से यह बात साफ़ हो जाती है कि यहूदियों के लिए मसीह *(अलैहि०)* की नुबूवत में शक करने की कोई गुंजाइश बाक़ी नहीं थी। फिर जो रौशन निशानियाँ उन्होंने हज़रत मसीह *(अलैहि०)* से देखीं (जिनका बयान सूरा-3 आले-इमान के रुकू-5 की आयत-49 में गुज़र चुका है।) उनके बाद तो इस मामले में बिलकुल ही शक और शुब्हा बाक़ी न रहा था कि हज़रत मसीह पैग़म्बर हैं। इसलिए हक़ीक़त यह है कि उन्होंने जो कुछ आपके साथ किया वह किसी ग़लतफ़हमी की वजह से न था, बल्कि वे ख़ूब जानते थे कि हम यह जुर्म उस आदमी के साथ कर रहे हैं जो अल्लाह की तरफ़ से पैग़म्बर बनकर आया है।

ज़ाहिर में यह बात बड़ी अजीब मालूम होती है कि कोई क़ौम किसी आदमी को नबी जानते और मानते हुए उसे क़त्ल कर दे। मगर सच तो यह है कि बिगड़ी हुई क़ौमों के अन्दाज़ और

صَلَبُوْهُ وَلٰكِنْ شُبِّهَ لَهُمْ ؕ وَاِنَّ الَّذِيْنَ اخْتَلَفُوْا فِيْهِ لَفِيْ شَكٍّ مِّنْهُ ؕ مَا لَهُمْ بِهٖ مِنْ عِلْمٍ اِلَّا

यह है कि उन्होंने न उसको क़त्ल किया, न सूली पर चढ़ाया, बल्कि मामला उनके लिए मुश्तबह (सन्दिग्ध) कर दिया गया।[193] और जिन लोगों ने इसके बारे में इख़्तिलाफ़ किया है वे भी हक़ीक़त में शक में पड़े हुए हैं। उनके पास इस मामले में कोई इल्म नहीं है,

तौर-तरीक़े होते ही कुछ अजीब हैं। वे अपने दर्मियान किसी ऐसे आदमी को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं होतीं जो उनकी बुराइयों पर उन्हें टोके और नाजाइज़ कामों से उन्हें रोके। ऐसे लोग, चाहे वे नबी ही क्यों न हों, हमेशा बदकिरदार क़ौमों में क़ैद और क़त्ल की सज़ाएँ पाते ही रहे हैं। तलमूद में लिखा है कि बख़्त नस्सर ने जब बैतुल-मक़्दिस को फ़तूह किया तो वह हैकले-सुलैमानी में दाख़िल हुआ और उसकी सैर करने लगा। ठीक क़ुरबानगाह के सामने एक जगह दीवार पर उसे एक तीर का निशान नज़र आया। उसने यहूदियों से पूछा, यह कैसा निशान है? उन्होंने जवाब दिया, "यहाँ ज़करीया नबी को हमने क़त्ल किया था। वह हमारी बुराइयों पर हमें मलामत करता था। आख़िर जब हम उसकी मलामतों से तंग आ गए तो हमने उसे मार डाला।" बाइबल में यर्मियाह नबी के बारे में लिखा है कि जब बनी-इसराईल की बद-अख़लाक़ियाँ हद से गुज़र गईं और हज़रत यर्मियाह ने उनको ख़बरदार किया कि इन कामों के बदले में ख़ुदा तुमको दूसरी क़ौमों से पामाल करा देगा तो उन पर इलज़ाम लगाया गया कि यह आदमी कस्दियों (कल्दानियों) से मिला हुआ है और क़ौम का ग़द्दार है। इस इलज़ाम में उनको जेल भेज दिया गया। ख़ुद हज़रत मसीह *(अलैहि०)* के सलीब के वाक़िए से दो ढाई साल पहले ही हज़रत यहया का मामला पेश आ चुका था। यहूदी आम तौर से उनको नबी जानते थे और कम से कम यह तो मानते ही थे कि वे उनकी क़ौम के सबसे भले लोगों में से हैं। मगर जब उन्होंने हीरोदेस (यहूदी रियासत के हाकिम) के दरबार में बुराइयों पर टोका-टोकी की तो उसे बर्दाश्त नहीं किया गया। पहले जेल भेजे गए और फिर मुल्क के हाकिम की महबूबा के मुतालबे पर उनका सर कटवा दिया गया। यहूदियों के इस रिकॉर्ड को देखते हुए यह कोई हैरत की बात नहीं है कि इन्होंने अपने घमंड में मसीह *(अलैहि०)* को सूली पर चढ़ाने के बाद सीने पर हाथ मारकर कहा हो, "हमने अल्लाह के रसूल को क़त्ल किया है।"

192. यह भी बीच में आया हुआ वह जुमला है जिसमें ऊपर से चली आ रही बात से हटकर एक दूसरी बात कही गई ।

193. यह आयत वाज़ेह करती है कि हज़रत मसीह *(अलैहि०)* सूली पर चढ़ाए जाने से पहले उठा लिए गए थे और ईसाइयों और यहूदियों, दोनों का यह ख़याल कि मसीह ने सलीब पर जान दी, सिर्फ़ ग़लतफ़हमी की वजह से है। क़ुरआन और बाइबल के बयानों को एक दूसरे से मिलाकर पढ़ने से हम यह समझते हैं कि शायद पीलातुस की अदालत में तो पेशी हज़रत मसीह ही की

اِتِّبَاعَ الظَّنِّ ۚ وَمَا قَتَلُوْهُ يَقِيْنًا ۙ﴿١٥٧﴾ بَلْ رَّفَعَهُ اللّٰهُ
اِلَيْهِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ عَزِيْزًا حَكِيْمًا ﴿١٥٨﴾ وَاِنْ مِّنْ اَهْلِ

सिर्फ़ अटकल पर चलते रहे हैं।[194] उन्होंने मसीह को यक़ीनन क़त्ल नहीं किया, (158) बल्कि अल्लाह ने उसको अपनी तरफ़ उठा लिया,[195] अल्लाह ज़बरदस्त ताक़त रखनेवाला और हिकमतवाला है। (159) और किताबवालों में से कोई ऐसा न होगा जो उसकी मौत

हुई थी, मगर जब वह मौत की सज़ा का फ़ैसला सुना चुका और जब यहूदियों ने मसीह जैसे पाक दिल इनसान के मुक़ाबले में एक डाकू की जान को ज़्यादा क़ीमती ठहराकर अपनी हक़-दुश्मनी और बातिलपसन्दी पर आख़िरी मुहर भी लगा दी, तब अल्लाह ने किसी वक़्त हज़रत ईसा को उठा लिया। बाद में यहूदियों ने जिस आदमी को सूली पर चढ़ाया वह हज़रत मसीह *(अलैहि०)* की पाक ज़ात न थी, बल्कि कोई और आदमी था जिसको मालूम नहीं किस वजह से इन लोगों ने मरयम का बेटा ईसा समझ लिया। फिर भी इनका जुर्म इससे कम नहीं होता, क्योंकि जिसको इन्होंने काँटों का ताज पहनाया, जिसके मुँह पर थूका और जिसे ज़िल्लत और रुसवाई के साथ सूली पर चढ़ाया उसको वे मरयम का बेटा ईसा समझ रहे थे। अब यह मालूम करने का हमारे पास कोई ज़रीआ नहीं है कि मामला किस तरह उनके लिए मुश्तबह (सन्दिग्ध) हो गया। चूँकि इस बारे में मालूमात का कोई यक़ीनी ज़रीआ नहीं है, इसलिए सिर्फ़ अन्दाज़े, गुमान और अफ़वाहों की बुनियाद पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह शुब्हा किस तरह का था जिसकी वजह से यहूदी यह समझे कि उन्होंने मरयम के बेटे ईसा *(अलैहि०)* को सूली दी है। हालाँकि मरयम के बेटे ईसा उनके हाथ से निकल चुके थे।

194. इख़्तिलाफ़ करनेवालों से मुराद ईसाई हैं। उनमें मसीह *(अलैहि०)* को सूली दिए जाने पर कोई एक बयान नही है जिसपर सब एक राय हों, बल्कि बीसियों बयान हैं और ये बहुत-से बयान होना ख़ुद इस बात की दलील है कि असल हक़ीक़त इनके लिए भी मुश्तबह (सन्दिग्ध) ही रही। इनमें से कोई कहता है कि सूली पर जो आदमी चढ़ाया गया वह मसीह न था, बल्कि मसीह की शक्ल में कोई और था जिसे यहूदी और रूमी सिपाही रुसवाई के साथ सूली दे रहे थे और मसीह वहीं किसी जगह खड़ा उनकी बेवक़ूफ़ी पर हँस रहा था। कोई कहता है कि सूली पर चढ़ाया तो मसीह ही को गया था मगर उनकी मौत सूली पर नहीं हुई, बल्कि उतारे जाने के बाद उनमें जान थी। कोई कहता कि उनकी मौत सूली पर हुई और फिर वे जी उठे और कुछ कम या ज़्यादा दस बार अपने बहुत-से हवारियों (साथियों) से मिले और बातें कीं। कोई कहता है कि मसीह के इनसानी जिस्म पर तो सूली से मौत आ गई और वह दफ़न हुआ, मगर अल्लाह की रूह जो उसमें थी वह उठा ली गई। और कोई कहता है कि मरने के बाद मसीह *(अलैहि०)* जिस्म के साथ ज़िन्दा हुए और जिस्म के साथ उठाए गए। ज़ाहिर है कि अगर इन लोगों के पास हक़ीक़त का इल्म होता तो इतनी बहुत-सी बातें इनमें मशहूर न होतीं।

195. यह इस मामले की असल हक़ीक़त है जो अल्लाह ने बताई है। इसमें वाज़ेह तौर पर जो बात बताई गई है वह सिर्फ़ यह है कि हज़रत मसीह *(अलैहि०)* को क़त्ल करने में यहूदी कामयाब

नहीं हुए और यह कि अल्लाह ने उनको अपनी तरफ़ उठा लिया। अब रहा यह सवाल कि उठा लेने की कैफ़ियत क्या थी तो उसके बारे में कोई तफ़सील क़ुरआन में नहीं बताई गई। क़ुरआन न इसको वाज़ेह करता है कि अल्लाह उनको जिस्म और रूह के साथ ज़मीन से उठाकर आसमानों पर कहीं ले गया, और न यह ही साफ़ कहता है कि उन्होंने ज़मीन पर अपनी फ़ितरी मौत पाई और सिर्फ़ उनकी रूह उठाई गई। इसलिए क़ुरआन की बुनियाद पर न तो इनमें से किसी एक पहलू का साफ़ तौर पर इनकार किया जा सकता है और न इक़रार। लेकिन क़ुरआन के अन्दाज़े-बयान पर ग़ौर करने से यह बात बिलकुल नुमायाँ तौर पर महसूस होती है कि उठाए जाने की शक्ल और कैफ़ियत चाहे कुछ भी हो, बहरहाल मसीह *(अलैहि०)* के साथ अल्लाह ने कोई ऐसा मामला ज़रूर किया है जो ग़ैर-मामूली क़िस्म का है। इस ग़ैर-मामूलीपन का इज़हार तीन चीज़ों से होता है–

एक यह कि ईसाइयों में मसीह *(अलैहि०)* के जिस्म और रूह समेत उठाए जाने का अक़ीदा पहले से मौजूद था और उन वजहों में से था जिनकी बुनियाद पर एक बहुत बड़ा गरोह मसीह के ख़ुदा होने को मानने लगा है। लेकिन इसके बावजूद क़ुरआन ने न सिर्फ़ यह कि बात को साफ़ तौर पर रद्द नहीं किया, बल्कि ठीक वही 'रफ़अ' यानी उठाए जाने (Ascension) का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया, जो ईसाई इस वाक़िए के लिए इस्तेमाल करते हैं। किताबे-मुबीन (वाज़ेह किताब) की शान से यह बात मेल नहीं खाती है कि किसी ख़याल को रद्द करना चाहती हो और फिर ऐसी ज़बान इस्तेमाल करे जो इस ख़याल को और ताक़त पहुँचानेवाली हो।

दूसरी यह कि अगर मसीह *(अलैहि०)* का उठाया जाना वैसा ही उठाया जाना होता जैसा कि हर मरनेवाला दुनिया से उठाया जाता है, या अगर इस उठाए जाने से मुराद सिर्फ़ दर्जों और मर्तबों की बुलन्दी होती जैसे हज़रत इदरीस के बारे में कहा गया है 'रफ़अनाहु मकानन अलीया' (उसे हमने बुलन्द मक़ाम पर उठाया था।) तो इस बात को बयान करने का अन्दाज़ यह न होता जो हम यहाँ देख रहे हैं। इसको बयान करने के लिए ज़्यादा मुनासिब अलफ़ाज़ ये हो सकते थे कि "यक़ीनन इन्होंने मसीह को क़त्ल नहीं किया, बल्कि अल्लाह ने उसको ज़िन्दा बचा लिया और फिर फ़ितरी मौत दी। यहूदियों ने उसको रुसवा करना चाहा था, मगर अल्लाह ने उसको बुलन्द दर्जा दिया।"

तीसरी यह कि अगर यह उठाया जाना, मामूली क़िस्म का उठाया जाना होता जैसे हम मुहावरे में किसी मरनेवाले को कहते हैं कि उसे अल्लाह ने उठा लिया तो इसको बयान करने के बाद यह जुमला बिलकुल नामुनासिब था कि "अल्लाह ज़बरदस्त ताक़त रखनेवाला और हिकमतवाला है।" यह तो सिर्फ़ किसी ऐसे वाक़िए के बाद ही सही और मुनासिब हो सकता है जिसमें अल्लाह की ज़बरदस्त ताक़त और उसकी हिकमत ग़ैर-मामूली शक्ल में ज़ाहिर हुई हो।

इसके जवाब में क़ुरआन से अगर कोई दलील पेश की जा सकती है तो वह ज़्यादा से ज़्यादा सिर्फ़ यह है कि सूरा-3, आले-इमारान, आयत-55 में अल्लाह ने 'मुतवफ़्फ़ीक' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है जिसका मतलब 'तुझे वापस ले लूँगा' है। लेकिन जैसा कि वहाँ हम हाशिया-51 में बता चुके हैं कि यह लफ़्ज़ फ़ितरी मौत के मानी में वाज़ेह नहीं है, बल्कि रूह का क़ब्ज़ करना और जिस्म और रूह के क़ब्ज़ करते हैं दोनों मानी हों सकते हैं, इसलिए यह उन

الْكِتٰبِ اِلَّا لَيُؤْمِنَنَّ بِهٖ قَبْلَ مَوْتِهٖ ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ

से पहले उस पर ईमान न ले आएगा[196] और क़ियामत के दिन वह उस पर गवाही

मुमकिन पहलुओं को ख़त्म कर देने के लिए काफ़ी नहीं है जो हमने ऊपर बयान किए हैं। कुछ लोग, जो इस बात पर पूरा ज़ोर देते हैं कि मसीह *(अलैहि०)* की फ़ितरी मौत हुई है, सवाल करते हैं कि अरबी लफ़्ज़ 'तवफ़्फ़ी' रूह और जिस्म दोनों के क़ब्ज़ होने पर इस्तेमाल होने की कोई और मिसाल भी है? लेकिन जबकि रूह और जिस्म के क़ब्ज़ होने का वाक़िआ इनसानी इतिहास में पेश ही एक बार आया हो तो इस मानी पर इस लफ़्ज़ के इस्तेमाल होने की मिसाल पूछना सिर्फ़ एक बेमानी सी बात है। देखना यह चाहिए कि असल लुग़त (शब्दकोश) में इस इस्तेमाल की गुंजाइश है या नहीं। अगर है तो मानना पड़ेगा कि क़ुरआन ने जिस्म के उठाए जाने के अक़ीदे को साफ़ तौर से रद्द करने के बजाय यह लफ़्ज़ इस्तेमाल करके उन मुमकिन पहलुओं में एक और पहलू का इज़ाफ़ा कर दिया है, जिनसे इस अक़ीदे को उलटी मदद मिलती है। वरना कोई वजह न थी कि वह मौत के वाज़ेह लफ़्ज़ को छोड़ कर दोमाने रखनेवाला वफ़ात का लफ़्ज़ ऐसे मौक़े पर इस्तेमाल करता जहाँ जिस्म को उठाए जाने का अक़ीदा पहले से मौजूद था और एक ग़लत अक़ीदे, यानी मसीह के ख़ुदा होने का सबब बन रहा था। फिर जिस्म को उठाए जाने के इस अक़ीदे को और ज़्यादा ताक़त उन बहुत-सी हदीसों से पहुँचती है जो क़ियामत से पहले हज़रत ईसा-इब्ने-मरयम *(अलैहि०)* के दोबारा दुनिया में आने और दज्जाल से जंग करने के बारे में बताती हैं (तफ़सीर सूरा-33, अल-अहज़ाब के आख़िर में हमने उन हदीसों को दर्ज कर दिया है)। उन हदीसों से हज़रत ईसा का दोबारा आना तो यक़ीनी तौर पर साबित होता है। अब यह हर आदमी ख़ुद देख सकता है कि उनका मरने के बाद दोबारा दुनिया में आना गुमान के ज़्यादा क़रीब है या ज़िन्दा कहीं ख़ुदा की कायनात में मौजूद होना और फिर वापस आना?

196. इस जुमले के दो मतलब बयान किए गए हैं और अलफ़ाज़ में दोनों यकसाँ तौर पर पाए जाते हैं। एक मतलब वह है जो ऊपर तर्जमे में हमने दर्ज किया है। दूसरा मतलब यह है कि "किताबवालों में से कोई ऐसा नहीं जो अपनी मौत से पहले मसीह पर ईमान न ले आए।" किताबवालों से मुराद यहूदी हैं और हो सकता है ईसाई भी हों। पहले मानी के लिहाज़ से मतलब यह होगा कि मसीह की फ़ितरी मौत जब आएगी उस वक़्त जितने किताबवाले मौजूद होंगे वे सब उनपर (यानी उनकी रिसालत और पैग़म्बरी पर) ईमान ला चुके होंगे। दूसरे मानी के लिहाज़ से मतलब यह होगा कि तमाम किताबवालों पर मरने से ठीक पहले मसीह की रिसालत की हक़ीक़त खुल जाती है और वे मसीह पर ईमान ले आते हैं, मगर यह उस वक़्त होता है जबकि ईमान लाना फ़ायदेमन्द नहीं हो सकता। दोनों मानी कई सहाबा, ताबिईन और क़ुरआन की तफ़सीर करनेवाले बड़े आलिमों ने बयान किए हैं और सही बात सिर्फ़ अल्लाह ही के इल्म में है।

يَكُوْنُ عَلَيْهِمْ شَهِيْدًا ۝ فَبِظُلْمٍ مِّنَ الَّذِيْنَ هَادُوْا
حَرَّمْنَا عَلَيْهِمْ طَيِّبٰتٍ اُحِلَّتْ لَهُمْ وَبِصَدِّهِمْ عَنْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ كَثِيْرًا ۝ وَّاَخْذِهِمُ الرِّبٰوا وَقَدْ نُهُوْا

देगा।[197]– (160, 161) मतलब यह[198] कि इन यहूदी बन जानेवालों के इसी ज़ालिमाना रवैये की वजह से और इस वजह से कि ये बहुत ज़्यादा अल्लाह के रास्ते से रोकते हैं,[199] और सूद (ब्याज) लेते हैं जिससे इन्हें मना किया गया था,[200] और लोगों के माल

197. यानी यहूदियों और ईसाइयों ने मसीह *(अलैहि०)* के साथ और उस पैग़ाम के साथ जो मसीह *(अलैहि०)* लाए थे, जो मामला किया है उसपर वे ख़ुदा की अदालत में गवाही देंगे। इस गवाही की कुछ तफ़सील आगे सूरा-5, अल-माइदा की आख़िरी आयतों में आनेवाली है।

198. ऊपर से चली आ रही बात से हटकर बीच में लाई हुई बात ख़त्म होने के बाद यहाँ से तक़रीर का फिर वही सिलसिला शुरू होता है जो ऊपर से चला आ रहा था।

199. यानी सिर्फ़ इसी पर बस नहीं करते कि ख़ुद अल्लाह के रास्ते से फिरे हुए हैं, बल्कि ज़्यादा बेख़ौफ़ मुजरिम बन चुके हैं कि दुनिया में ख़ुदा के बन्दों को गुमराह करने के लिए जो तहरीक भी उठती है, ज़्यादातर उसके पीछे यहूदी दिमाग़ और यहूदी सरमाया ही काम करता नज़र आता है और सच्चे रास्ते की तरफ़ बुलाने के लिए जो तहरीक भी शुरू होती है ज़्यादातर उसके मुक़ाबले में यहूदी ही सबसे बढ़कर रुकावट बनते हैं। जबकि हाल यह है कि ये कमबख़्त अल्लाह की किताब रखनेवाले और नबियों के वारिस हैं। इनका सबसे ताज़ा जुर्म वे कम्यूनिस्ट (साम्यवादी) तहरीक है जिसे यहूदी दिमाग़ ने घड़ा और यहूदी रहनुमाई ही ने परवान चढ़ाया है। सिर्फ़ नाम के इन अहले-किताब के नसीब में यह जुर्म भी लिखा हुआ था कि दुनिया के इतिहास में पहली बार जो निज़ामे-ज़िन्दगी और निज़ामे-हुकूमत ख़ुदा के खुले इनकार पर, ख़ुदा से खुल्लम-खुल्ला दुश्मनी पर और ख़ुदापरस्ती को मिटा देने के खुल्लम-खुल्ला एलान और मज़बूत इरादे पर तामीर किया गया उसके ईजाद करनेवाले, उसको घड़नेवाले, उसकी बुनियाद डालनेवाले और उसके कर्ताधर्ता हज़रत मूसा के नामलेवा हों। कम्यूनिज़्म (साम्यवाद) के बाद नए दौर में गुमराही का दूसरा बड़ा सुतून फ़रायड का फ़लसफ़ा है और मज़े की बात यह है कि वह भी बनी-इसराईल ही का एक आदमी है।

200. तौरात (बाइबल) में साफ़ तौर पर यह हुक्म मौजूद है कि–

"अगर तू मेरी जनता में से किसी मुहताज को जो तेरे पास रहता हो, क़र्ज़ दे तो उससे महाजन (क़र्ज़ देनेवाले) की तरह सुलूक न करना और न उससे सूद (ब्याज़) लेना। अगर तू किसी वक़्त अपने पड़ोसी के कपड़े गिरवी रख भी ले तो सूरज के डूबने तक उसको वापस कर

عَنْهُ وَاَكْلِهِمْ اَمْوَالَ النَّاسِ بِالْبَاطِلِ ۭ وَاَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ مِنْهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ﴿١٦١﴾ لٰكِنِ الرّٰسِخُوْنَ

नाजाइज़ तरीक़ों से खाते हैं, हमने बहुत-सी वे अच्छी पाक चीज़ें इनपर हराम कर दीं जो पहले इनके लिए हलाल थीं,[201] और जो लोग इनमें से इनकार करनेवाले हैं उनके लिए हमने दर्दनाक अज़ाब तैयार कर रखा है।[202] (162) मगर इनमें जो लोग पुख़्ता इल्म

देना, क्योंकि सिर्फ़ वही एक उसका ओढ़ना है, उसके जिस्म का वही लिबास है, फिर वह क्या ओढ़कर सोएगा। इसलिए जब वह फ़रियाद करेगा तो मैं उसकी सुनूँगा, क्योंकि मैं मेहरबान हूँ।" (निर्गमन-22:25 से 27)

इसके अलावा और भी कई जगहों पर तौरात में सूद (ब्याज़) को हराम किए जाने का हुक्म बयान हुआ है। लेकिन इसके बावजूद उसी तौरात के माननेवाले यहूदी आज दुनिया के सबसे बड़े सूद खानेवाले हैं और अपनी तंगदिली और संगदिली के लिए मिसाल बन चुके हैं।

201. शायद यह उसी बात की तरफ़ इशारा है जो आगे सूरा-6, अनआम आयत-146 में आनेवाली है। यानी यह कि बनी-इसराईल पर तमाम वे जानवर हराम कर दिए गए जिनके नाख़ुन होते हैं और उनपर गाय और बकरी की चरबी भी हराम कर दी गई। इसके अलावा मुमकिन है कि इशारा उन दूसरी पाबन्दियों और सख़्तियों की तरफ़ भी हो जो यहूदी फ़िक़्ह (शरीअत) में पाई जाती हैं। किसी गरोह के लिए ज़िन्दगी के दायरे को तंग कर दिया जाना हक़ीक़त में एक तरह की सज़ा ही है। (और ज़्यादा जानकारी के लिए देखें सूरा-6, अनआम, आयत-46, हाशिया-122)

202. यानी उस क़ौम के जो लोग ईमान और इताअत से फिरे हुए और बग़ावत व इनकार की रविश पर क़ायम हैं उनके लिए ख़ुदा की तरफ़ से दर्दनाक सज़ा तैयार है। दुनिया में भी और आख़िरत में भी। दुनिया में जो इबरतनाक सज़ा उनको मिली और मिल रही है वह कभी किसी दूसरी क़ौम को नहीं मिली। दो हज़ार साल हो चुके हैं कि ज़मीन पर कहीं उनको इज़्ज़त का ठिकाना नहीं मिला। दुनिया में तितर-बितर कर दिए गए हैं और हर जगह ग़रीबुल-वतन (बाहरी) हैं। कोई दौर ऐसा नहीं गुज़रता जिसमें वे दुनिया के किसी न किसी हिस्से में रुसवाई के साथ पामाल न किए जाते हों और अपनी दौलतमन्दी के बावजूद कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ इन्हें इज़्ज़त की निगाह से देखा जाता हो। फिर ग़ज़ब यह है कि क़ौमें पैदा होती और मिटती हैं, मगर इस क़ौम को मौत भी नहीं आती। इसको दुनिया में 'ला यमूतु फ़ीहा वला यह्या' (उसमें न मरेंगे न ज़िन्दा रहेंगे) की सज़ा दी गई है, ताकि क़ियामत तक दुनिया की क़ौमों के लिए इबरत की एक ज़िन्दा मिसाल बनी रहे और अपने हालात से यह सबक़ देती रहे कि ख़ुदा की किताब बग़ल में रखकर ख़ुदा के मुक़ाबले में बाग़ी बनने की जुर्अतें करने का यही अंजाम होता है। रही आख़िरत तो अगर अल्लाह ने चाहा वहाँ का अज़ाब उससे भी ज़्यादा दर्दनाक होगा। (इस मौक़े पर जो शुब्हा फ़लस्तीन की इसराईली रियासत के क़ायम होने की वजह से पैदा होता है

فِى الْعِلْمِ مِنْهُمْ وَالْمُؤْمِنُوْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ
اِلَيْكَ وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ وَالْمُقِيْمِيْنَ الصَّلٰوةَ
وَالْمُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَالْمُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ
الْاٰخِرِ ؕ اُولٰٓئِكَ سَنُؤْتِيْهِمْ اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿١٦٢﴾ اِنَّآ اَوْحَيْنَآ ع
اِلَيْكَ كَمَآ اَوْحَيْنَآ اِلٰى نُوْحٍ وَّالنَّبِيّٖنَ مِنْۢ بَعْدِهٖ ۚ
وَاَوْحَيْنَآ اِلٰٓى اِبْرٰهِيْمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ

रखनेवाले हैं और ईमानदार हैं वे सब उस तालीम पर ईमान लाते हैं जो तुम्हारी तरफ़ नाज़िल की गई है और जो तुमसे पहले नाज़िल की गई थी।[203] इस तरह के ईमान लानेवाले और नमाज़ और ज़कात की पाबन्दी करनेवाले और अल्लाह और आख़िरत के दिन पर सच्चा ईमान रखनेवाले लोगों को हम ज़रूर ही बड़ा बदला देंगे।

(163) ऐ नबी! हमने तुम्हारी तरफ़ उसी तरह वह्य भेजी है जिस तरह नूह और उसके बाद के पैग़म्बरों की तरफ़ भेजी थी।[204] हमने इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़, याक़ूब

उसे दूर करने के लिए देखें सूरा-3, आले-इमरान की आयत-112।)

203. यानी उनमें से जो लोग आसमानी किताबों की सच्ची तालीमात के जानकार हैं और हर क़िस्म के तास्सुब (पूर्वाग्रह), जाहिलाना ज़िद, बाप-दादा की अन्धी पैरवी और अपने मन की ग़ुलामी से आज़ाद होकर उस हक़ बात को सच्चे दिल से मानते हैं जिसका सुबूत आसमानी किताबों से मिलता है, उनकी रविश काफ़िर और ज़ालिम यहूदियों की आम रविश से बिलकुल अलग है। उनको एक ही नज़र में महसूस हो जाता है कि जिस दीन की तालीम पिछले नबियों ने दी थी उसी की तालीम क़ुरआन दे रहा है, इसलिए वे बेलाग हक़परस्ती के साथ दोनों पर ईमान ले आते हैं।

204. इसका मक़सद यह बताना है कि मुहम्मद *(सल्ल०)* कोई अनोखी चीज़ लेकर नहीं आए हैं, जो पहले न आई हो। इनका यह दावा नहीं है कि मैं दुनिया में पहली मर्तबा एक नई चीज़ पेश कर रहा हूँ, बल्कि असल में उनको भी इल्म के उसी एक चश्मे से हिदायत मिली है जिससे तमाम पिछले नबियों को हिदायत मिलती रही है और वे भी उसी एक सच्चाई और हक़ीक़त को पेश कर रहे हैं जिसे दुनिया के अलग-अलग बहुत से कोनों में पैदा होनेवाले पैग़म्बर हमेशा से पेश

وَالْاَسْبَاطِ وَعِيْسٰى وَاَيُّوْبَ وَيُوْنُسَ وَهٰرُوْنَ
وَسُلَيْمٰنَ ۚ وَاٰتَيْنَا دَاوٗدَ زَبُوْرًا ﴿١٦٣﴾ وَرُسُلًا قَدْ

और औलादे-याक़ूब, ईसा, अय्यूब, यूनुस, हारून और सुलैमान की तरफ़ वह्य भेजी। हमने दाऊद को ज़बूर दी।[205] (164) हमने उन रसूलों पर भी वह्य भेजी जिनकी चर्चा हम

करते चले आए हैं।

वह्य का मतलब है इशारा करना, दिल में कोई बात डालना, ख़ुफ़िया तरीक़े से कोई बात कहना, पैग़ाम भेजना।

205. मौजूदा बाइबल में ज़बूर (भजन संहिता) के नाम से जो किताब पाई जाती है वह सारी की सारी हज़रत दाऊद *(अलैहि०)* की ज़बूर नही हैं। इसमें बहुत-से गीत दूसरे लोगों के भी भर दिए गए हैं और उनको अपने-अपने लेखकों से जोड़ दिया गया है। अलबत्ता जिन गीतों पर वाज़ेह कर दिया गया है कि वे हज़रत दाऊद *(अलैहि०)* के हैं उनके अन्दर हक़ीक़त में अल्लाह के कलाम की रौशनी महसूस होती है। इसी तरह बाइबिल में सुलैमान *(अलैहि०)* के 'नीति वचन' के नाम से जो किताब मौजूद है उसमें भी बहुत कुछ मिलावट पाई जाती है और उसके आख़िर के दो अध्याय (बाब) तो साफ़ तौर पर बाद में जोड़े हुए लगते हैं, मगर इसके बावजूद इन 'नीति वचन' का बड़ा हिस्सा सही और हक़ मालूम होता है। इन दो किताबों के साथ एक और किताब हज़रत अय्यूब *(अलैहि०)* के नाम से भी बाइबल में दर्ज है। लेकिन हिकमत और तत्त्वदर्शिता के बहुत-से हीरे अपने अन्दर रखने के बावजूद उसे पढ़ते हुए यह यक़ीन नहीं आता कि वाक़ई हज़रत अय्यूब से इस किताब को जोड़ना सही है। इसलिए कि क़ुरआन में और ख़ुद इस किताब के शुरू में हज़रत अय्यूब *(अलैहि०)* के जिस बड़े सब्र की तारीफ़ की गई है इसके बिलकुल बरख़िलाफ़ वह पूरी किताब हमें यह बताती है कि हज़रत अय्यूब *(अलैहि०)* अपनी मुसीबत के ज़माने में अल्लाह के ख़िलाफ़ सरापा शिकायत बने हुए थे, यहाँ तक कि उनके साथी उन्हें इस बात पर मुत्मइन करने की कोशिश करते थे कि ख़ुदा ज़ालिम नहीं है, मगर वह किसी तरह मानकर न देते थे।

इन किताबों के अलावा बाइबल में बनी-इसराईल के नबियों की 17 किताबें और भी दर्ज हैं जिनका ज़्यादातर हिस्सा सही मालूम होता है। ख़ास तौर से यशायाह, यर्मियाह, यहेजकेल, आमूस और कुछ दूसरी किताबों में तो बहुत-सी जगहें ऐसी आती हैं जिन्हें पढ़कर आदमी की रूह झूमने लगती है। इनमें आसमानी कलाम होने की शान साफ़ तौर पर महसूस होती है। इनकी अख़लाक़ी तालीम, उनका शिर्क के ख़िलाफ़ जिहाद, उनकी तौहीद के हक़ में ज़ोरदार दलीलें, और उनकी बनी-इसराईल के अख़लाक़ी गिरवावट पर सख़्त तनक़ीद और मलामतें पढ़ते वक़्त आदमी यह महसूस किए बग़ैर नहीं रह सकता कि इंजीलों में हज़रत मसीह की तक़रीरें और क़ुरआन मजीद और ये किताबें एक ही सरचश्मे से निकली हुई धारे हैं।

قَصَصْنٰهُمْ عَلَيْكَ مِنْ قَبْلُ وَرُسُلًا لَّمْ نَقْصُصْهُمْ
عَلَيْكَ ۭ وَكَلَّمَ اللّٰهُ مُوْسٰى تَكْلِيْمًا ۝۱۶۴ رُسُلًا
مُّبَشِّرِيْنَ وَمُنْذِرِيْنَ لِئَلَّا يَكُوْنَ لِلنَّاسِ عَلَى اللّٰهِ
حُجَّةٌ ۢ بَعْدَ الرُّسُلِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ عَزِيْزًا حَكِيْمًا ۝۱۶۵
لٰكِنِ اللّٰهُ يَشْهَدُ بِمَآ اَنْزَلَ اِلَيْكَ اَنْزَلَهٗ بِعِلْمِهٖ ۚ

इससे पहले तुमसे कर चुके हैं और उन रसूलों पर भी जिनकी चर्चा तुमसे नहीं की। हमने मूसा से इस तरह बातचीत की जिस तरह बातचीत की जाती है।[206] (165) ये सारे रसूल ख़ुशख़बरी देनेवाले और डरानेवाले बनाकर भेजे गए थे[207] ताकि उनको (नबी बनाकर) भेजे जाने के बाद लोगों के पास अल्लाह के मुक़ाबले में कोई हुज्जत (ठोस दलील) न रहे[208] और अल्लाह हर हाल में ग़ालिब रहनेवाला और हिकमतवाला और गहरी समझवाला है। (166) (लोग नहीं मानते तो न मानें) मगर अल्लाह गवाही देता है कि जो

206. दूसरे नबियों पर तो वह्य इस तरह आती थी कि एक आवाज़ आ रही है या फ़रिश्ता पैग़ाम सुना रहा है और वे सुन रहे हैं। लेकिन मूसा *(अलैहि०)* के साथ यह ख़ास मामला बरता गया कि अल्लाह ने ख़ुद उनसे बातचीत की। बन्दे और ख़ुदा के बीच इस तरह बातें होती थीं जैसे दो आदमी आपस में बात करते हैं। मिसाल के लिए उस बातचीत का हवाला काफ़ी है जो सूरा-20, ताहा, आयत 11-14, में दर्ज की गई है। बाइबल में भी हज़रत मूसा *(अलैहि०)* की ख़ुसूसियत का बयान इसी तरह किया गया है। चुनाँचे लिखा है कि "जैसे कोई आदमी अपने दोस्त से बात करता है वैसे ही ख़ुदा आमने-सामने होकर मूसा से बातें करता था।" (निर्गमन-33:11)

207. यानी इन सबका एक ही काम था और वह यह कि जो लोग ख़ुदा की भेजी हुई तालीम पर ईमान लाएँ और अपने रवैये को उसके मुताबिक़ ठीक कर लें उन्हें कामयाबी और ख़ुशक़िस्मती की ख़ुशख़बरी सुना दें और जो सोच और अमल के ग़लत रास्तों पर चलते रहें उनको इस ग़लत रवैये के बुरे अंजाम से आगाह कर दें।

208. यानी इन तमाम पैग़म्बरों के भेजने की एक ही ग़रज़ और मक़सद था और वह यह था कि अल्लाह तमाम इनसानों पर हुज्जत पूरी करना चाहता था ताकि आख़िरी अदालत के मौक़े पर कोई गुमराह मुजरिम उसके सामने यह बहाना न बना सके कि हम जानते न थे और आपने हमें हक़ीक़त से आगाह करने का कोई इन्तिज़ाम नहीं किया था। इसी मक़सद के लिए ख़ुदा ने दुनिया के अलग-अलग कोनों और इलाक़ों में पैग़म्बर भेजे और किताबें उतारीं। इन पैग़म्बरों ने

وَالْمَلٰٓئِكَةُ يَشْهَدُوْنَ ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ شَهِيْدًا ﴿١٦٦﴾
اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَصَدُّوْا عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ قَدْ
ضَلُّوْا ضَلٰلًا بَعِيْدًا ﴿١٦٧﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَظَلَمُوْا
لَمْ يَكُنِ اللّٰهُ لِيَغْفِرَ لَهُمْ وَلَا لِيَهْدِيَهُمْ طَرِيْقًا ﴿١٦٨﴾
اِلَّا طَرِيْقَ جَهَنَّمَ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ اَبَدًا ؕ وَكَانَ
ذٰلِكَ عَلَى اللّٰهِ يَسِيْرًا ﴿١٦٩﴾ يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ قَدْ
جَآءَكُمُ الرَّسُوْلُ بِالْحَقِّ مِنْ رَّبِّكُمْ فَاٰمِنُوْا خَيْرًا
لَّكُمْ ؕ وَاِنْ تَكْفُرُوْا فَاِنَّ لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَ

कुछ उसने तुम पर उतारा है अपने इल्म से उतारा है, और इस पर फ़रिश्ते भी गवाह हैं, हालाँकि अल्लाह का गवाह होना बिलकुल काफ़ी है। (167) जो लोग इसको मानने से ख़ुद इनकार करते हैं और दूसरों को अल्लाह के रास्ते से रोकते हैं वे यक़ीनन गुमराही में हक़ से बहुत दूर निकल गए हैं। (168, 169) इस तरह जिन लोगों ने इनकार और बग़ावत का तरीक़ा अपनाया और ज़ुल्म व सितम पर उतर आए अल्लाह उनको हरगिज़ माफ़ न करेगा। और उन्हें कोई रास्ता जहन्नम के रास्ते के सिवा न दिखाएगा जिसमें वे हमेशा रहेंगे। अल्लाह के लिए यह कोई मुश्किल काम नहीं है।

(170) लोगो, यह रसूल तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से हक़ लेकर आ गया है। ईमान ले आओ, तुम्हारे ही लिए बेहतर है, और अगर इनकार करते हो तो जान लो कि

इनसानों की बड़ी तादाद तक हक़ीक़त का इल्म पहुँचा दिया और अपने पीछे किताबें छोड़ गए जिनमें से कोई न कोई किताब इनसानों की रहनुमाई के लिए हर ज़माने में मौजूद रही है। अब अगर कोई आदमी गुमराह होता हैं तो उसका इलज़ाम ख़ुदा पर और उसके पैग़म्बरों पर नहीं आता, बल्कि या तो ख़ुद उस आदमी पर आता है कि उस तक पैग़ाम पहुँचा और उसने क़बूल नहीं किया या उन लोगों पर आता है जिनको सीधा रास्ता मालूम था और उन्होंने ख़ुदा के बन्दों को गुमराही है पड़ा देखा तो उन्हें आगाह न किया।

الْاَرْضِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿۱۷۰﴾ يٰۤاَهْلَ
الْكِتٰبِ لَا تَغْلُوْا فِیْ دِيْنِكُمْ وَلَا تَقُوْلُوْا عَلَى اللّٰهِ
اِلَّا الْحَقَّ ؕ اِنَّمَا الْمَسِيْحُ عِيْسَى ابْنُ مَرْيَمَ رَسُوْلُ اللّٰهِ

आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है सब अल्लाह का है[209] और अल्लाह जाननेवाला भी है और गहरी समझवाला भी। [210]

(171) ऐ किताबवालो, अपने दीन में हद से आगे न बढ़ो[211] और अल्लाह से जोड़कर हक़ के सिवा कोई बात न कहो, मसीह मरयम का बेटा ईसा इसके सिवा कुछ न था कि अल्लाह का एक रसूल था और एक फ़रमान[212] था, जो अल्लाह ने

---

209. यानी ज़मीन और आसमान के मालिक की नाफ़रमानी करके तुम उसका कोई नुक़सान नहीं कर सकते, नुक़सान जो कुछ होगा तुम्हारा अपना होगा।

210. यानी तुम्हारा ख़ुदा न तो बे-ख़बर है कि उसकी सल्तनत में रहते हुए तुम शरारतें करो और उसे मालूम न हो और न वह नादान है कि उसे अपनी हिदायतों के ख़िलाफ़ काम करनेवालों से निपटने का तरीक़ा न आता हो।

211. यहाँ किताबवालों से मुराद ईसाई हैं और हद से आगे बढ़नेवाले के मानी हैं किसी चीज़ की ताईद और हिमायत में हद से गुज़र जाना। यहूदियों का जुर्म यह था कि वे मसीह के इनकार और मुख़ालिफ़त में हद से गुज़र गए और ईसाइयों का जुर्म यह है कि वे मसीह की अक़ीदत और मुहब्बत में हद से गुज़र गए।

212. असल अरबी में लफ़्ज़ 'कलिमा' इस्तेमाल हुआ है। मरयम की तरफ़ कलिमा भेजने का मतलब यह है कि अल्लाह ने हज़रत मरयम *(अलैहि०)* के रहम (गर्भाशय) पर यह फ़रमान उतारा कि किसी मर्द के वीर्य (नुत्फ़े) से सैराब (सिंचित) हुए बग़ैर हमल ठहरा ले। ईसाइयों को शुरू में मसीह *(अलैहि०)* के बग़ैर बाप के पैदा होने का यही राज़ बताया गया था। मगर उन्होंने यूनानी फ़लसफ़े से गुमराह होकर पहले लफ़्ज़ कलिमे को 'कलाम' (वाक्य) या 'बोल' (Logos) का हममानी समझ लिया। फिर इस कलाम और बोल से अल्लाह के ज़ाती कलाम की सिफ़त ले ली। फिर यह गुमान क़ायम किया कि अल्लाह की इस ज़ाती सिफ़त ने मरयम *(अलैहि.)* के पेट में दाख़िल होकर वह जिस्मानी सूरत इख़्तियार की जो मसीह की शक्ल में ज़ाहिर हुई। इस तरह ईसाइयों में मसीह *(अलैहि.)* के ख़ुदा होने का ग़लत अक़ीदा पैदा हुआ और इस ग़लत तसव्वुर ने जड़ पकड़ ली कि ख़ुदा ने ख़ुद अपने आपको या अपनी अज़ली (अनादिकालिक) सिफ़तों में से बोल और कलाम की सिफ़त को मसीह की शक्ल में ज़ाहिर किया है।

وَكَلِمَتُهٗ ۚ اَلْقٰهَاۤ اِلٰى مَرْيَمَ وَرُوْحٌ مِّنْهُ ۫ فَاٰمِنُوْا بِاللّٰهِ
وَرُسُلِهٖ ۚ وَلَا تَقُوْلُوْا ثَلٰثَةٌ ؕ اِنْتَهُوْا خَيْرًا لَّكُمْ ؕ اِنَّمَا

मरयम की तरफ़ भेजा और एक रूह थी अल्लाह की तरफ़ से[213] (जिसने मरयम के पेट में बच्चे की शक्ल इख़्तियार की) तो तुम अल्लाह और उसके रसूलों पर ईमान[214] लाओ और न कहो कि 'तीन' हैं।[215] बाज़ आ जाओ, यह तुम्हारे ही लिए बेहतर है।

---

213. यहाँ ख़ुद मसीह को 'ख़ुदा की तरफ़ से एक रूह' कहा गया है और सूरा-2, अल-बक़रा में इस बात को यूँ अदा किया गया है कि 'हमने पाक रूह से मसीह की मदद की'। दोनों इबारतों का मतलब यह है कि अल्लाह ने मसीह *(अलैहि॰)* को वह पाकीज़ा रूह अता की थी, जिसे बुराई छूकर भी नहीं गुज़री थी। सरासर हक़ और सच्चाई थी और मुकम्मल तौर पर अख़लाक़ी फ़ज़ीलत थी। यही तारीफ़ मसीह *(अलैहि॰)* की ईसाइयों को बताई गई थी। मगर वे इसमें भी हद से बढ़ गए और 'अल्लाह की तरफ़ से एक रूह' को ठीक अल्लाह की रूह बना डाला और रूहुल-क़ुदुस (Holy Ghost) का मतलब यह लिया कि वह अल्लाह की अपनी पाकीज़ा रूह थी जो मसीह के अन्दर दाख़िल हो गई थी। इस तरह अल्लाह और मसीह के साथ एक तीसरा ख़ुदा रूहुल-क़ुदुस (पवित्रात्मा) को बना डाला गया। यह ईसाइयों का दूसरा बड़ा ग़ुलू (हद से बढ़ना) था जिसकी वजह से वे गुमराही में पड़ गए। मज़े की बात यह है कि आज भी इंजील मत्ती में यह जुमला मौजूद है कि 'फ़रिश्ते ने उसे (यानी यूसुफ़ नज्जार को) ख़ाब में दिखाई देकर कहा कि ऐ यूसुफ़-इब्ने-दाऊद! अपनी बीवी मरयम को अपने हाँ ले आने से न डर, क्योंकि जो उसके पेट में है वह रूहुल-क़ुदुस की क़ुदरत से है।' (अध्याय-1, आयत-20)

214. यानी अल्लाह को अपना अकेला इलाह मानो और तमाम रसूलों की रिसालत (पैग़म्बरी) तसलीम करो जिनमें से एक रसूल मसीह भी हैं। यही मसीह *(अलैहि॰)* की असली तालीम थी और यही बात हक़ है जिसे मसीह के एक सच्चे पैरोकार को मानना चाहिए।

215. यानी तीन ख़ुदाओं के अक़ीदे को छोड़ दो, चाहे वह किसी शक्ल में तुम्हारे अन्दर पाया जाता हो। हक़ीक़त यह है कि ईसाई एक ही वक़्त में तौहीद को भी मानते हैं और तीन ख़ुदाओं के अक़ीदे (Trinity) को भी। मसीह *(अलैहि॰)* की वाज़ेह बातें जो इंजीलों में मिलती हैं उनकी वजह से कोई ईसाई इससे इनकार नहीं कर सकता कि ख़ुदा बस एक ही ख़ुदा है और उसके सिवा कोई दूसरा ख़ुदा नहीं है। उनके लिए यह माने बिना चारा नहीं है कि तौहीद असल दीन है। मगर वह जो एक ग़लतफ़हमी शुरू में उनको हो गई थी कि अल्लाह का कलाम मसीह की शक्ल में ज़ाहिर हुआ और अल्लाह की रूह उसमें दाख़िल हुई, इसकी वजह से उन्होंने मसीह और रूहुल-क़ुदुस की ख़ुदाई को भी ख़ुदा की ख़ुदाई के साथ मानना ख़ाह-म-ख़ाह अपने ऊपर लाज़िम कर लिया। इस ज़बरदस्ती के लाज़िम करने से उनके लिए यह मसला एक न सुलझनेवाली पहेली बन गया कि तौहीद के अक़ीदे के बावजूद तीन ख़ुदाओं के अक़ीदे (त्रिवाद)

اللّٰهُ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۭ سُبْحٰنَهٗٓ اَنْ يَّكُوْنَ لَهٗ وَلَدٌ ۘ لَهٗ مَا

अल्लाह तो बस एक ही ख़ुदा है। वह पाक है इससे कि कोई उसका बेटा हो।[216]

को और तीन ख़ुदाओं के अक़ीदे के बावजूद तौहीद के अक़ीदे को किस तरह निबाहें। तक़रीबन 1800 बरस से मसीही आलिम ख़ुद की पैदा की हुई मुश्किल को हल करने में सर खपा रहे हैं। बीसियों फ़िरक़े इसी की मुख़्तलिफ़ ताबीरों पर बने हैं। इसी पर एक गरोह ने दूसरे को बेदीन क़रार दिया है। इसी के झगड़ों में कलीसा पर कलीसा अलग होते चले गए। इसी पर उनके सारे इल्मे-कलाम (धार्मिक तर्क-वितर्क) का ज़ोर लगा है। हालाँकि यह मुश्किल न ख़ुदा ने पैदा की थी, न उसके भेजे हुए मसीह ने, और न इस मुश्किल का कोई हल मुमकिन है कि ख़ुदा तीन भी माने जाएँ और फिर तौहीद (एकेश्वरवाद) भी बरक़रार रहे। इस मुश्किल को सिर्फ़ उनके गुलू (यानी हद से आगे बढ़ने के रवैये) ने पैदा किया है और इसका बस यही एक हल है कि वे हद से अगे बढ़ना छोड़ दें, मसीह और रूहुल-क़ुदुस की ख़ुदाई का ख़याल छोड़ दें, सिर्फ़ अल्लाह को एक ख़ुदा और इलाह तसलीम कर लें और मसीह को सिर्फ़ उसका पैग़म्बर क़रार दें, न कि किसी तौर पर ख़ुदाई में शरीक।

216. यह ईसाइयों के चौथे गुलू (अतिशयोक्ति) का रद्द है। बाइबल के नए नियम की रिवायतें अगर सही भी हों तो उनसे (ख़ास तौर से पहली तीन इंजीलों से) ज़्यादा से ज़्यादा बस इतना ही साबित होता है कि मसीह *(अलैहि॰)* ने ख़ुदा और बन्दों के ताल्लुक़ को बाप और औलाद के ताल्लुक़ से तशबीह (उपमा) दी थी और 'बाप' का लफ़्ज़ ख़ुदा के लिए वे सिर्फ़ मजाज़ और इस्तिआरे (लक्षण और रूपक) के तौर पर इस्तेमाल करते थे। यह अकेले मसीह की ही ख़ुसूसियत नहीं है, पुराने ज़माने से बनी-इसराईल ख़ुदा के लिए बाप का लफ़्ज़ बोलते चले आ रहे थे और उसकी बहुत-सी मिसालें बाइबल के पुराने नियम में मौजूद हैं। मसीह ने यह लफ़्ज़ अपनी क़ौम के मुहावरे के मुताबिक़ ही इस्तेमाल किया था और वे ख़ुदा को सिर्फ़ अपना ही नहीं, बल्कि सब इनसानों का बाप कहते थे। लेकिन ईसाइयों ने यहाँ फिर गुलू से काम लिया और मसीह को ख़ुदा का इकलौता बेटा क़रार दिया। इनका अजीबो-ग़रीब नज़रिया इस बारे में यह है कि चूँकि मसीह ख़ुदा का दूसरा रूप है और उसके कलिमे और उसकी रूह का जिस्मानी ज़हूर है इसलिए वह ख़ुदा का इकलौता बेटा है और ख़ुदा ने अपने इकलौते को ज़मीन पर इसलिए भेजा कि इनसानों के गुनाह अपने सर लेकर सलीब पर चढ़ जाए और अपने ख़ून से इनसान के गुनाह का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा करे। हालाँकि इसका कोई सुबूत ख़ुद मसीह *(अलैहि०)* के किसी बयान से वे नहीं दे सकते। यह अक़ीदा उनका अपना घड़ा हुआ और उस गुलू (अत्युक्ति) का नतीजा है जिसमें वे अपने पैग़म्बर की अज़ीमुश्शान शख़्सियत से मुतास्सिर होकर गिरफ़्तार हो गए थे।

अल्लाह ने यहाँ कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) के अक़ीदो को रद्द नहीं किया है, क्योंकि ईसाइयों के यहाँ यह कोई मुस्तक़िल (स्थाई) अक़ीदा नहीं है। बल्कि मसीह को ख़ुदा का बेटा क़रार देने का नतीजा और इस सवाल का सूफ़ी मत से मिलता-जुलता और एक फ़ल्सफ़ियाना जवाब है कि

فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَكَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ﴿١٧١﴾
لَنْ يَّسْتَنْكِفَ الْمَسِيْحُ اَنْ يَّكُوْنَ عَبْدًا لِّلّٰهِ وَلَا
الْمَلٰٓئِكَةُ الْمُقَرَّبُوْنَ ؕ وَمَنْ يَّسْتَنْكِفْ عَنْ
عِبَادَتِهٖ وَيَسْتَكْبِرْ فَسَيَحْشُرُهُمْ اِلَيْهِ جَمِيْعًا ﴿١٧٢﴾
فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ فَيُوَفِّيْهِمْ
اُجُوْرَهُمْ وَيَزِيْدُهُمْ مِّنْ فَضْلِهٖ ۚ وَاَمَّا الَّذِيْنَ اسْتَنْكَفُوْا
وَاسْتَكْبَرُوْا فَيُعَذِّبُهُمْ عَذَابًا اَلِيْمًا ۙ وَّلَا يَجِدُوْنَ

ज़मीन और आसमानों की सारी चीज़ों का वही मालिक [217] है और उनकी ज़रूरतों को पूरी करने और उनकी ख़बर रखने के लिए बस वही काफ़ी है।[218]

(172-173) मसीह ने कभी इस बात को अपने लिए बुरा नहीं समझा कि वह अल्लाह का एक बन्दा हो, और न (अल्लाह के) क़रीबी फ़रिश्ते इसको अपने लिए बुरा समझते हैं। अगर कोई अल्लाह की बन्दगी को अपने लिए बुरा समझता है और घमण्ड करता है तो एक वक़्त आएगा जब अल्लाह सब को घेर कर अपने सामने हाज़िर करेगा। उस वक़्त वे लोग जिन्होंने ईमान लाकर अच्छे काम किए हैं अपने बदले पूरे-पूरे पाएँगे और अल्लाह अपनी मेहरबानी से उनको और ज़्यादा बदला देगा और जिन लोगों ने बन्दगी को अपने लिए बुरा समझा और घमण्ड किया है उनको अल्लाह दर्दनाक सज़ा

जब मसीह ख़ुदा का इकलौता था तो वह सलीब पर चढ़कर लानत की मौत क्यों मरा? इसलिए इस अक़ीदे का रद्द आप से आप हो जाता है, अगर मसीह के अल्लाह का बेटा होने की तरदीद (खण्डन) कर दी जाए और इस ग़लतफ़हमी को दूर कर दिया जाए कि मसीह *(अलैहि॰)* सूली पर चढ़ाए गए थे।

217. यानी ज़मीन और आसमान में मौजूद सारी चीज़ों में से किसी के साथ भी ख़ुदा का रिश्ता बाप और बेटे का नहीं है, बल्कि सिर्फ़ मालिक और मिलकियत का रिश्ता है।

218. यानी ख़ुदा अपनी ख़ुदाई का इन्तिज़ाम करने के लिए ख़ुद काफ़ी है। उसको किसी से मदद लेने की ज़रूरत नहीं कि किसी को अपना बेटा बनाए।

لَهُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيًّا وَّلَا نَصِيْرًا ﴿۱۷۳﴾ يٰٓاَيُّهَا
النَّاسُ قَدْ جَآءَكُمْ بُرْهَانٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَاَنْزَلْنَآ
اِلَيْكُمْ نُوْرًا مُّبِيْنًا ﴿۱۷۴﴾ فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَاعْتَصَمُوْا
بِهٖ فَسَيُدْخِلُهُمْ فِيْ رَحْمَةٍ مِّنْهُ وَفَضْلٍ ۙ وَّيَهْدِيْهِمْ
اِلَيْهِ صِرَاطًا مُّسْتَقِيْمًا ﴿۱۷۵﴾ يَسْتَفْتُوْنَكَ ۭ قُلِ اللّٰهُ
يُفْتِيْكُمْ فِي الْكَلٰلَةِ ۭ اِنِ امْرُؤٌا هَلَكَ لَيْسَ لَهٗ

देगा और अल्लाह के सिवा जिन-जिनकी सरपरस्ती और मदद पर वे भरोसा रखते हैं उनमें से किसी को भी वे वहाँ न पाएँगे।

(174) लोगो! तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारे पास खुली दलील आ गई है। और हमने तुम्हारी तरफ़ ऐसी रौशनी भेज दी है जो तुम्हें साफ़-साफ़ रास्ता दिखानेवाली है। (175) अब जो लोग अल्लाह की बात मान लेंगे और उसकी पनाह ढूँढेंगे उनको अल्लाह अपनी रहमत और अपने फ़ज़्ल व करम के दामन में ले लेगा और अपनी तरफ़ आने का सीधा रास्ता उनको दिखा देगा।

(176) ऐ नबी! लोग[219] तुम से कलाला[220] के बारे में पूछते हैं (यानी उनके बारे में

219. यह आयत इस सूरा के उतरने से बहुत बाद में उतरी है। कुछ रिवायतों से तो यहाँ तक मालूम होता है कि यह क़ुरआन की सबसे आख़िरी आयत है। यह बयान अगर सही न भी हो तब भी कम से कम इतना तो साबित है कि यह आयत सन नौ हिजरी में उतरी। और सूरा-4 निसा इससे बहुत पहले एक मुकम्मल सूरा की हैसियत से पढ़ी जा रही थी। इसी वजह से इस आयत को उन आयतों के सिलसिले में शामिल नहीं किया गया जो मीरास के अहकाम के बारे में सूरा के शुरू में बयान हुई हैं, बल्कि इसे ज़मीमे (परिशिष्ट) के तौर पर आख़िर में लगा दिया गया।

220. कलाला के मानी में भी राएँ अलग-अलग हैं। कुछ की राय में कलाला वह आदमी है जो बे-औलाद भी हो और जिसके बाप और दादा भी ज़िन्दा न हों। और कुछ के निकट सिर्फ़ बे-औलाद मरनेवाले को कलाला कहा जाता है। हज़रत उमर *(रज़ि.)* आख़िर वक़्त तक इस मामले में कोई एक राय न बना सके। लेकिन आम फ़ुक़हा ने हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि०)* की इस

وَلَدٌ وَّلَهٗۤ اُخْتٌ فَلَهَا نِصْفُ مَا تَرَكَ ۚ وَهُوَ يَرِثُهَاۤ
اِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّهَا وَلَدٌ ۚ فَاِنْ كَانَتَا اثْنَتَيْنِ فَلَهُمَا
الثُّلُثٰنِ مِمَّا تَرَكَ ۚ وَاِنْ كَانُوْۤا اِخْوَةً رِّجَالًا وَّنِسَآءً
فَلِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ الْاُنْثَيَيْنِ ۚ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ
اَنْ تَضِلُّوْا ۚ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِيْمٌ ﴿۱۷۶﴾ ع

हुक्म मालूम करना चाहते हैं जिनके ज़ाहिर में वारिस न हों)। कहो अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है। अगर कोई आदमी बे-औलाद मर जाए और उसकी एक बहन[221] हो तो वह उसके तरके (छोड़े हुए माल) में से आधा पाएगी, और अगर बहन बेऔलाद मरे तो भाई उसका वारिस होगा।[222] अगर मरनेवाले की वारिस दो बहनें हों तो वे तरके में से दो तिहाई की हक़दार होंगी[223] और अगर कई भाई-बहनें हों तो औरतों का इकहरा और मर्दों का दोहरा हिस्सा होगा। अल्लाह तुम्हारे लिए हुक्मों को वाज़ेह करता है, ताकि तुम भटकते न फिरो और अल्लाह को हर चीज़ का इल्म है।

राय को तसलीम कर लिया है कि कलाला सिर्फ़ पहली सूरत के मानी में ही है और ख़ुद क़ुरआन से भी इसकी ताईद होती है, क्योंकि यहाँ कलाला की बहन को छोड़े हुए माल यानी तरके के आधे हिस्से का वारिस बताया गया है। हालाँकि अगर कलाला का बाप ज़िन्दा हो तो बहन को सिरे से कोई हिस्सा पहुँचता ही नहीं।

221. यहाँ उन भाई-बहनों की मीरास का बयान हो रहा है जिनके माँ-बाप वही हों जो मैयत के हों या सिर्फ़ बाप मैयत का और उनका एक हो। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने एक बार एक ख़ुतबे में इस मानी को वाज़ेह किया था और सहाबा में से किसी ने इससे इख़्तिलाफ़ नहीं किया। इस वजह से इस मसले में सभी एक राय हैं।

222. यानी भाई उसके पूरे माल का वारिस होगा, अगर कोई और हक़दार न हो। और अगर कोई और हक़दार मौजूद हो, जैसे शौहर, तो उसका हिस्सा अदा करने के बाक़ी तमाम छोड़ा हुआ माल भाई को मिलेगा।

223. यही हुक्म दो से ज़्यादा बहनों का भी है।

☆☆☆

5. अल-माइदा

परिचय

नाम

इस सूरा का नाम पन्द्रहवें रुकू की आयत-112 'हल-यस्ततीअु रब्बु-क अँय्युनज़्ज़ि-ल अलैना माइदतम-मिन-स्समाइ' के लफ़्ज़ 'माइदा' से लिया गया है। क़ुरआन की ज़्यादातर सूरतों के नामों की तरह इस नाम को भी सूरा के मज़मून (विषय) से कोई ख़ास ताल्लुक़ नहीं है। सिर्फ़ दूसरी सूरतों से अलग करने के लिए इसे पहचान के तौर पर लिया गया है।

उतरने का ज़माना

सूरा के मज़मूनों से ज़ाहिर होता है और रिवायतों से इसकी तस्दीक़ भी होती है कि यह हुदैबिया के समझौते के बाद सन-6 हिजरी के आख़िर में या सन 7 हिजरी के शुरू में उतरी है। अरबी महीना ज़ी-क़अदा, सन 6 हिजरी का वाक़िआ है कि नबी *(सल्ल०)* चौदह सौ मुसलमानों के साथ उमरा करने के लिए मक्का तशरीफ़ ले गए। मगर क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों ने दुश्मनी के जोश में अरब की निहायत पुरानी मज़हबी रिवायतों के ख़िलाफ़ आपको उमरा न करने दिया और बड़ी कहा-सुनी और कश-म-कश के बाद यह बात क़बूल की कि अगले साल आप ज़ियारत के लिए आ सकते हैं। इस मौक़े पर ज़रूरत पेश आई कि मुसलमानों को एक तरफ़ तो काबे की ज़ियारत के लिए सफ़र के आदाब बताए जाएँ, ताकि अगले साल उमरे का सफ़र पूरी इस्लामी शान के साथ हो सके और दूसरी तरफ़ उन्हें ताकीद की जाए कि हक़ का इनकार और मुख़ालिफ़त करनेवालों ने उनको उमरे से रोककर जो ज़्यादती की है, उसके जवाब में वे ख़ुद कोई नामुनासिब ज़्यादती न करें। इसलिए कि बहुत-से इस्लाम-दुश्मन क़बीलों के हज का रास्ता उन इलाक़ों से होकर गुज़रता था जो मुसलमानों के क़ब्ज़े में थे और मुसलमानों के लिए यह मुमकिन था कि जिस तरह उन्हें काबा की ज़ियारत से रोका गया है उसी तरह वे भी उन्हें रोक दें। यही वजह है उस तमहीदी तक़रीर की जिससे इस सूरा की शुरुआत हुई है। आगे चलकर तेरहवें रुकू में फिर इसी मसले को छेड़ा गया है जो इस बात का सुबूत है कि पहले रुकू से चौदहवें रुकू तक तक़रीर का एक ही सिलसिला चल रहा है। इसके अलावा दूसरे जो मज़मून इस सूरा में हमको मिलते हैं, वे भी सबके सब उसी दौर के मालूम होते हैं।

बयान के सिलसिले के लगातार चलते रहने से ज़्यादा गुमान इसी बात का होता है कि यह पूरी सूरा एक ही ख़ुतबे पर मुश्तमिल है जो पूरे का पूरा एक ही वक़्त में उतरा होगा। हो सकता है कि अलग-अलग तौर पर इसकी कुछ आयतें बाद में उतरी हों और मज़मून से मेल खाने की वजह से उनको इस सूरा में अलग-अलग जगहों पर टाँक दिया गया हो। लेकिन बयान के सिलसिले में कहीं कोई मामूली ख़ालीपन भी महसूस नहीं होता, जिससे यह समझा जा सके कि यह सूरा दो या तीन ख़ुतबों का मजमूआ है।

शाने-नुज़ूल (अवतरण की पृष्ठभूमि)

सूरा-3 आले-इमरान और सूरा-4 निसा के उतरने के ज़माने से इस सूरा के उतरने तक पहुँचते-पहुँचते हालात में बहुत बड़ी तब्दीली आ चुकी थी। या तो वह वक़्त था कि जंगे-उहुद के सदमे ने मुसलमानों के लिए मदीना के क़रीबी माहौल को भी ख़तरों से भर दिया था। या अब यह वक़्त आ गया कि अरब में इस्लाम एक ऐसी ताक़त नज़र आने लगा था जिसको हराया नहीं जा सकता था और इस्लामी रियासत एक तरफ़ नज्द तक, दूसरी तरफ़ शाम की हदों तक, तीसरी तरफ़ लाल सागर के तट तक और चौथी तरफ़ मक्का के क़रीब तक फैल गई। उहुद में जो ज़ख़्म मुसलमानों ने खाया था वह उनकी हिम्मतें तोड़ने के बजाय उनके हौसले के लिए एक और ताज़ियाना (तंबीह और चेतावनी) साबित हुआ। वे ज़ख़्मी शेर की तरह बिफर कर उठे और तीन साल की मुद्दत में उन्होंने नक़्शा बदलकर रख दिया। उनकी लगातार जिद्दोजुह्द और सरफ़रोशियों (जान की बाज़ी लगा देने) का नतीजा यह था कि मदीना के चारों तरफ़ डेढ़-डेढ़, दो-दो सौ मील तक तमाम मुख़ालिफ़ क़बीलों का ज़ोर टूट गया। मदीना पर जो यहूदी ख़तरा हर वक़्त मंडलाता रहता था उसको हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया गया और हिजाज़ में दूसरी जगहों पर भी जहाँ-जहाँ यहूदी आबाद थे, सब मदीना की हुकूमत को लगान देने लगे। इस्लाम को दबाने के लिए क़ुरैश ने आख़िरी कोशिश ख़न्दक़ की जंग के मौक़े पर की और इसमें वे सख़्त नाकाम हुए। इसके बाद अरब के लोगों को इस बात में कोई शक न रहा कि इस्लाम की यह तहरीक (आन्दोलन) अब किसी के मिटाए नहीं मिट सकती। अब इस्लाम सिर्फ़ एक अक़ीदा और मसलक (पंथ) ही न था जिसकी हुक्मरानी सिर्फ़ दिलों और दिमाग़ों तक महदूद हो, बल्कि वह एक रियासत भी था जिसकी हुक्मरानी अमली तौर पर अपनी हदों में रहनेवाले तमाम लोगों की ज़िन्दगी पर फैली हुई थी। अब मुसलमान उस ताक़त के मालिक हो चुके थे कि जिस मसलक पर वे ईमान लाए थे, बे-रोक-टोक उसके मुताबिक़ ज़िन्दगी बसर कर सकें और उसके सिवा किसी दूसरे अक़ीदे

और मसलक या क़ानून को अपनी ज़िन्दगी के दायरे में दख़लअन्दाज़ न होने दें।

फिर इन कुछ सालों में इस्लामी उसूलों और नज़रियों के मुताबिक़ मुसलमानों की अपनी एक बाक़ायदा अलग तहज़ीब बन चुकी थी जो ज़िन्दगी के तमाम मामलों में दूसरों से अलग अपनी एक नुमायाँ शान रखती थी। अख़लाक़ (नैतिक आचरण), मआशरत (सामाजिकता), तमद्दुन (संस्कृति), हर चीज़ में अब मुसलमान ग़ैर-मुस्लिमों से बिलकुल अलग थे। उन तमाम जगहों में जो मुसलमानों के कब्ज़े में थीं, मस्जिदों और जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने का निज़ाम क़ायम हो चुका था। हर बस्ती और हर क़बीले में इमाम मुक़र्रर थे। इस्लाम के दीवानी और फ़ौजदारी क़ानून बड़ी हद तक तफ़सील के साथ बन चुके थे और अपनी अदालतों के ज़रीए से लागू किए जा रहे थे। लेन-देन और ख़रीदने-बेचने के पुराने मामले बन्द और इस्लाहशुदा नए तरीक़े लागू हो चुके थे। विरासत का मुस्तक़िल ज़ाब्ता बन गया था। निकाह और तलाक़ के क़ानून, शरई परदे और इस्तीज़ान (किसी काम को करने या न करने के लिए इजाज़त लेने) के हुक्म और ज़िना (व्यभिचार) व क़ज़फ़ (ज़िना का झूठा इलज़ाम लगाने) की सज़ाएँ जारी होने से मुसलमानों की समाजी ज़िन्दगी एक ख़ास साँचे में ढल गई थी। मुसलमानों के उठने-बैठने बोल-चाल, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने और रहने-सहने के तरीक़े तक अपनी एक मुस्तक़िल शक्ल इख़्तियार कर चुके थे। इस्लामी ज़िन्दगी की ऐसी मुकम्मल सूरत बन जाने के बाद ग़ैर-मुस्लिम दुनिया इस तरफ़ से बिलकुल मायूस हो चुकी थी कि ये लोग, जिनका अपना एक अलग तमद्दुन (सभ्यता एवं संस्कृति) बन चुका है, फिर कभी उनमें आ मिलेंगे।

हुदैबिया के समझौते से पहले तक मुसलमानों के रास्ते में एक बड़ी रुकावट यह थी कि वे क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों के साथ एक मुसलसल कश-म-कश में उलझे हुए थे और उन्हें अपने पैग़ाम और दावत का दायरा फैलाने की मुहलत न मिलती थी। इस रुकावट को हुदैबिया की ज़ाहिरी हार और हक़ीक़ी फ़तूह ने दूर कर दिया। इससे उनको न सिर्फ़ यह कि अपनी रियासत की हदों में अमन नसीब हुआ, बल्कि इतनी मुहलत भी मिल गई कि आस-पास के इलाक़ों में इस्लाम के पैग़ाम को लेकर फैल जाएँ। चुनाँचे इसकी शरुआत नबी *(सल्ल०)* ने ईरान, रूम, मिस्र और अरब के बादशाहों और सरदारों को ख़त लिखकर की और इसके साथ ही क़बीलों और क़ौमों में मुसलमानों के दावत देनेवाले (आह्वाहक) ख़ुदा के बन्दों को उसके दीन की तरफ़ बुलाने के लिए फैल गए।

मबाहिस (वार्ताएँ)

ये हालात थे जब सूरा-4 माइदा उतरी। इस सूरा में नीचे दिए जा रहे तीन बड़े-बड़े मज़मून बयान हुए हैं —

(1) मुसलमानों की मज़हबी, तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और सियासी ज़िन्दगी के बारे में और ज़्यादा अहकाम और हिदायतें

इस सिलसिले में हज के सफ़र के आदाब तय किए गए। अल्लाह की निशानियों के एहतिराम और काबा की जियारत के लिए आनेवाले लोगों से छेड़-छाड़ न करने का हुक्म दिया गया। खाने-पीने की चीज़ों में हराम और हलाल की साफ़ और वाज़ेह हदें क़ायम की गईं और जाहिलियत के दौर की अपनी गढ़ी हुई बन्दिशों और पाबन्दियों को तोड़ दिया गया। अहले-किताब के साथ खाने-पीने और उनकी औरतों से निकाह करने की इजाज़त दी गई, वुज़ू और ग़ुस्ल और तयम्मुम के क़ायदे मुक़र्रर किए गए, बग़ावत और फ़साद और चोरी की सज़ाएँ तय की गईं, शराब और जुए को बिलकुल हराम कर दिया गया, क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) तय किया गया और गवाही के क़ानून में और कुछ दफ़ाएँ (धाराएँ) बढ़ाई गईं।

(2) मुसलमानों को नसीहत

अब चूँकि मुसलमान एक हाकिम गरोह बन चुके थे, उनके हाथों में ताक़त थी, जिसका नशा क़ौमों के लिए ज़्यादातर गुमराही का सबब बनता रहा है। मज़लूमी का दौर ख़त्म होने पर था और इससे ज़्यादा सख़्त आज़माइश के दौर में वे क़दम रख रहे थे। इसलिए उनको ख़िताब करते हुए बार-बार नसीहत की गई कि इनसाफ़ पर क़ायम रहें। अपने से पहले के अहले-किताब की रविश से बचें, अल्लाह की इताअत और फ़रमाँबरदारी और उसके अहकाम की पैरवी का जो अहद (वादा) उन्होंने किया है उस पर मज़बूती से जमे रहें और यहूदियों और ईसाइयों की तरह अहद को तोड़कर उस अंजाम से दो-चार न हों जिससे वे दो-चार हुए। अपने सभी मामलों के फ़ैसलों में अल्लाह की किताब के पाबन्द रहें, और मुनाफ़िक़ों की-सी रविश से बचें।

(3) यहूदियों और ईसाइयों को नसीहत

यहूदियों का ज़ोर अब टूट चुका था और उत्तरी अरब की लगभग सभी यहूदी बस्तियाँ मुसलमानों के तहत आ गई थीं। इस मौक़े पर उनको एक बार फिर उनके ग़लत रवैये पर ख़बरदार किया गया है और उन्हें सीधे रास्ते पर आने की दावत दी गई है। फिर चूँकि हुदैबिया के समझौते की वजह से अरब और आस-पास के देशों की क़ौमों में इस्लाम की दावत और पैग़ाम को फैलाने का मौक़ा निकल आया था, इसलिए ईसाइयों को भी तफ़्सील के साथ ख़िताब करते हुए उनके अक़ीदों की ग़लतियाँ बताई गई हैं और उन्हें मुहम्मद *(सल्ल०)* पर ईमान लाने की दावत दी गई है। पड़ोसी देशों में से जो क़ौमें मूर्तिपूजक या मजूस (अग्निपूजक) थीं उनको सीधे तौर पर ख़िताब नहीं किया गया, क्योंकि उनकी हिदायत के लिए वे बातें काफ़ी थीं जो, उनके ही रास्ते पर चलनेवाले अरब के मुशरिकों को ख़िताब करते हुए मक्का में उतर चुकी थीं।

(آیاتہا ۱۲۰) (۵) سُوْرَةُ الْمَآئِدَةِ مَدَنِيَّةٌ (۱۱۲) (رکوعاتہا ۱۶)

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَوْفُوْا بِالْعُقُوْدِ ۗ اُحِلَّتْ لَكُمْ
بَهِيْمَةُ الْاَنْعَامِ اِلَّا مَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ غَيْرَ مُحِلِّي

5. अल-माइदा

(मदीना में उतरी, आयतें 120)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! बन्दिशों की पूरी पाबन्दी करो।[1] तुम्हारे लिए मवेशी की क़िस्म के सब जानवर हलाल किए गए,[2] सिवाय उनके जो आगे चलकर तुमको बताए जाएँगे। लेकिन इहराम की हालत में शिकार को अपने लिए हलाल न कर

1. यानी उन बन्दिशों और शर्तों की पाबन्दी करो जो इस सूरा में तुम पर लगाई जा रही हैं, और जो आम तौर से ख़ुदा की शरीअत में तुम पर लगाई गई हैं। इस छोटे-से शुरुआती जुमले के बाद ही उन बन्दिशों और शर्तों का बयान शुरू हो जाता है जिनकी पाबन्दी का हुक्म दिया गया है।
2. असुल अरबी में "अनआम" (मवेशी) का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। यह लफ़्ज़ ऊँट, गाय, भेड़ और बकरी के लिए बोला जाता है और "बहीमा" का लफ़्ज़ हर चरनेवाले चौपाए के लिए बोला गया है। अगर अल्लाह ने यह फ़रमाया होता कि अनआम तुम्हारे लिए हलाल किए गए तो इससे सिर्फ़ वही चार जानवर हलाल होते जिन्हें अरबी में अनआम कहते हैं। लेकिन हुक्म इन लफ़्ज़ों में दिया गया है कि "मवेशी की क़िस्म के चरनेवाले चौपाए तुम पर हलाल किए गए।" इससे हुक्म में बड़ी वुसअत और फैलाव पैदा हो जाता है और वे सब चरनेवाले जानवर इसके दायरे में आ जाते हैं जो मवेशी की क़िस्म के हों। यानी जो कुचलियाँ (नुकीले दाँत) न रखते हों। गोश्त के बजाय पेड़-पौधे, घास-फूँस खाते हों और दूसरी हैवानी ख़ुसूसियतों में अरब के मवेशियों से मिलते-जुलते हों। साथ ही इससे इशारों में यह बात भी सामने आती है कि वे चौपाए जो मवेशियों के बरख़िलाफ़ कुचलियाँ रखते हों और दूसरे जानवरों को मारकर खाते हों हलाल नहीं हैं। इसी इशारे को नबी *(सल्ल०)* ने वाज़ेह करके हदीस में साफ़ हुक्म दे दिया कि दरिन्दे (हिंसक पशु) हराम हैं। इसी तरह नबी *(सल्ल०)* ने उन परिन्दों को भी हराम ठहराया जिनके पंजे होते हैं और जो दूसरे जानवरों का शिकार करके खाते हैं या मुरदार खाते हैं। इब्ने-

الصَّيْدِ وَاَنْتُمْ حُرُمٌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَحْكُمُ مَا يُرِيْدُ ۝
يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تُحِلُّوْا شَعَآئِرَ اللّٰهِ وَ لَا

लो।[3] बेशक अल्लाह जो चाहता है हुक्म देता है।[4]

(2) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, ख़ुदापरस्ती की निशानियों को बे-हुर्मत (अनादर) न

अब्बास की रिवायत है कि नबी *(सल्ल०)* ने हर दाँतवाले दरिन्दे का गोश्त खाने से मना किया है और हर ऐसे परिन्दे का गोश्त खाने से मना किया है जिसके शिकार करनेवाले पंजे हों जिनसे वह शिकार करता हो। दूसरे बहुत-से सहाबा से भी इसकी ताईद में रिवायतें बयान हुई हैं।

3. 'इहराम' उस फ़क़ीराना लिबास को कहते हैं जो काबा की ज़ियारत के लिए पहना जाता है। काबा के आस-पास कई-कई मंज़िल के फ़ासले पर एक हद मुक़र्रर कर दी गई है जिससे आगे बढ़ने की किसी ज़ियारत करनेवाले को इजाज़त नहीं है जब तक कि वह अपना आम लिबास उतारकर इहराम का लिबास न पहन ले। इहराम में सिर्फ़ एक तहमद होता है और एक चादर, जो ऊपर से ओढ़ी जाती है। इसे इहराम इसलिए कहते हैं कि इसे बाँधने के बाद आदमी पर बहुत-सी वे चीज़ें हराम हो जाती हैं जो आम हालतों में हलाल हैं। जैसे हजामत, ख़ुशबू का इस्तेमाल, हर क़िस्म का बनाव-सिंगार और शहवत पूरी करना (वासना-पूर्ति) वग़ैरा। इन्हीं पाबन्दियों में से एक यह भी है कि किसी जानदार को हलाक न किया जाए, न शिकार किया जाए और न किसी को शिकार का पता दिया जाए।

4. यानी अल्लाह सारे इख़्तियारात रखनेवाला हाकिम है, उसे पूरा इख़्तियार है कि जो चाहे हुक्म दे। बन्दों को उसके अहकाम (आदेशों) में चूँ-चरा करने का कोई हक़ नहीं। हालाँकि उसके सभी अहकाम हिकमत (तत्त्वदर्शिता) और मसलिहत की बुनियाद पर होते हैं, लेकिन एक मुस्लिम बन्दा उसके हुक्म की इताअत इस हैसियत से नहीं करता कि वह उसे मुनासिब पाता है या मसलिहत पर मबनी (आधारित) समझता है, बल्कि सिर्फ़ इस बुनियाद पर करता है कि यह मालिक का हुक्म है। जो चीज़ उसने हराम कर दी है वह सिर्फ़ इसलिए हराम है कि उसने हराम की है और इसी तरह जो उसने हलाल कर दी है वह भी किसी दूसरी बुनियाद पर नहीं बल्कि सिर्फ़ इस बुनियाद पर हलाल है कि जो ख़ुदा उन सारी चीज़ों का मालिक है, वह अपने ग़ुलामों को उस चीज़ के इस्तेमाल की इजाज़त देता है। इसलिए क़ुरआन पूरे ज़ोर के साथ यह उसूल क़ायम करता है कि चीज़ों को हराम और हलाल होने के लिए मालिक की मनाही (निषेध) व इजाज़त के सिवा किसी और बुनियाद की बिलकुल ज़रूरत नहीं और इसी तरह बन्दे के लिए किसी काम के जाइज़ होने या न होने का दारोमदार भी इसके सिवा और किसी चीज़ पर नहीं कि ख़ुदा जिसको जाइज़ रखे वह जाइज़ है और जिसे नाजाइज़ क़रार दे वह नाजाइज़।

الشَّهْرَ الْحَرَامَ وَلَا الْهَدْيَ وَلَا الْقَلَآئِدَ وَلَآ
آٰمِّيْنَ الْبَيْتَ الْحَرَامَ يَبْتَغُوْنَ فَضْلًا مِّنْ رَّبِّهِمْ

करो।[5]—न हराम (प्रतिष्ठित) महीनों में से किसी को हलाल कर लो, न क़ुरबानी के जानवरों पर हाथ डालो, न उन जानवरों पर हाथ डालो जिनकी गरदनों में अल्लाह की

5. अस्ल अरबी में लफ़्ज़ ''शआइर'' इस्तेमाल हुआ है, जो शिआर की जमा (बहुवचन) है। हर वह चीज़ जो किसी मसलक या अक़ीदे या सोचने और अमल करने के रवैये या किसी निज़ाम की नुमाइन्दगी करती हो वह निशानी यानी उसका शिआर कहलाएगी; क्योंकि वह उसके लिए पहचान या निशानी का काम देती है। सरकारी झण्डे, फ़ौज और पुलिस वग़ैरा के यूनिफ़ॉर्म, सिक्के, नोट और स्टाम्प हुकूमतों की पहचान हैं और वे अपने मातहतों से, बल्कि जिन-जिन पर उनका ज़ोर चले, सबसे उनकी इज़्ज़त और एहतिराम की माँग करती हैं। गिरजा और क़ुरबानगाह और सलीब ईसाइयत के शआइर (निशानियां) हैं। चोटी और ज़न्नार (जनेऊ) और मन्दिर ब्रह्मणियत के शआइर हैं। केश, कड़ा और कृपाण वग़ैरा सिख धर्म के शआइर हैं। हथौड़ा और दराँती कम्यूनिज़्म (साम्यवाद) का शिआर हैं। स्वास्तिक आर्य नस्लपरस्ती का शिआर है। ये सब मसलक और मज़हब (पंथ) अपने-अपने पैरुओं से अपने इन शआइर की इज़्ज़त और एहतिराम की माँग करते हैं। अगर कोई आदमी किसी निज़ाम के शआइर में से किसी शिआर की तौहीन करता है तो यह इस बात की निशानी है कि वह अस्ल में उस निज़ाम के ख़िलाफ़ दुश्मनी रखता है और अगर वह तौहीन करनेवाला ख़ुद उसी निज़ाम से ताल्लुक़ रखता हो तो उसका यह काम अपने निज़ाम से फिरने और बग़ावत करने जैसा है।

'अल्लाह के शआइर' यानी अल्लाह की निशानियों से मुराद वे तमाम अलामतें या निशानियाँ हैं जो शिर्क और कुफ़्र और दहरियत (नास्तिकता) के मुक़ाबले में ख़ालिस ख़ुदापरस्ती के तरीक़े की नुमाइन्दगी करती हों। ऐसी आलामतें जहाँ जिस मसलक और जिस निज़ाम में भी पाई जाएँ मुसलमानों को उनकी इज़्ज़त और एहतिराम का हुक्म दिया गया है। शर्त यह है कि उनका नफ़सियाती पसमंज़र (मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि) ख़ालिस ख़ुदा परस्ताना हो, किसी मुशरिकाना या काफ़िराना विचार की मिलावट से उन्हें नापाक न कर दिया गया हो। कोई आदमी चाहे वह ग़ैर-मुस्लिम ही क्यों न हो, अगर अपने अक़ीदे और अमल में एक ख़ुदा की बन्दगी और इबादत का कोई हिस्सा रखता है तो उस हिस्से की हद तक मुसलमान उसका साथ देंगे और उन निशानियों की भी पूरी इज़्ज़त और एहतिराम करेंगे जो उसके मज़हब में ख़ालिस ख़ुदापरस्ती की अलामत हों। इस चीज़ में हमारे और उसके बीच कोई झगड़ा नहीं, बल्कि मेल है। झगड़ा अगर है तो इस बात में नहीं कि वह ख़ुदा की बन्दगी क्यों करता है, बल्कि इस बात में है कि वह ख़ुदा की बन्दगी के साथ दूसरी बन्दगियों की मिलावट क्यों करता है।

याद रखना चाहिए कि अल्लाह के शआइर की इज़्ज़त और एहतिराम का यह हुक्म उस ज़माने

وَرِضْوَانًا ؕ وَإِذَا حَلَلْتُمْ فَاصْطَادُوْا ؕ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ

شَنَاٰنُ قَوْمٍ اَنْ صَدُّوْكُمْ عَنِ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ اَنْ

تَعْتَدُوْا ۘ وَتَعَاوَنُوْا عَلَى الْبِرِّ وَالتَّقْوٰى ۖ وَلَا تَعَاوَنُوْا

नज़्र की निशानी के तौर पर पट्टे पड़े हुए हों, न उन लोगों को छेड़ो जो अपने रब के फ़ज़्ल और उसकी ख़ुशनूदी की तलाश में मुहतरम घर (काबा) की तरफ़ जा रहे हों।[6] हाँ, जब इहराम की हालत ख़त्म हो जाए तो शिकार तुम कर सकते हो।[7] – और देखो एक गरोह ने जो तुम्हारे लिए मस्जिदे-हराम (काबा) का रास्ता बन्द कर दिया है तो इस पर तुम्हारा ग़ुस्सा तुम्हें इतना मुश्तइल (उत्तेजित) न कर दे कि तुम भी उनके मुक़ाबले में

में दिया गया था जबकि मुसलमानों और अरब के मुशरिक (बहुदेववादियों) के बीच जंग छिड़ी हुई थी। मक्का पर मुशरिकों का क़ब्ज़ा था। अरब के हर हिस्से से मुशरिक क़बीलों के लोग हज और ज़ियारत के लिए काबा की तरफ़ जाते थे और बहुत-से क़बीलों के रास्ते मुसलमानों के निशाने पर थे। उस वक़्त हुक्म दिया गया कि ये लोग मुशरिक ही सही तुम्हारे और उनके दर्मियान जंग ही सही, मगर जब ये ख़ुदा के घर की तरफ़ जाते हैं तो उन्हें न छेड़ो, हज के महीनों में उन पर हमला न करो। ख़ुदा के दरबार में नज़्र करने के लिए जो जानवर ये लिए जा रहे हों उन पर हाथ न डालो, क्योंकि उनके बिगड़े हुए मज़हब में ख़ुदापरस्ती का जितना हिस्सा बाक़ी है वह अपने आपमें इज़्ज़त और एहतिराम का हक़दार है, न कि बे इज़्ज़नी और बे एहतिरामी का।

6. 'अल्लाह के शआइर' (अल्लाह की निशानियों) के एहतिराम का आम हुक्म देने के बाद कुछ निशानियों का नाम लेकर उनके एहतिराम का ख़ास तौर पर हुक्म दिया गया; क्योंकि उस वक़्त जंगी हालात की वजह से यह अन्देशा पैदा हो गया था कि जंग के जोश में कहीं मुसलमानों के हाथों उनकी तौहीन न हो जाए। इन कुछ निशानियों का नाम ले-लेकर बयान करने से मक़सद यह नहीं है कि सिर्फ़ यही एहतिराम के लायक़ हैं।

7. इहराम भी अल्लाह की निशानी (शआइर) में से है। और इसकी पाबन्दियों में से किसी पाबन्दी को तोड़ना उसकी बेहुरमती (अनादर) करना है। इसलिए अल्लाह के शआइर ही के सिलसिले में उसका ज़िक्र भी कर दिया गया कि जब तक तुम इहराम बाँधे हुए हो, शिकार करना ख़ुदापरस्ती के शआइर में से एक शिआर की तौहीन करना है। अलबत्ता जब शरई क़ायदे के मुताबिक़ इहराम की हद ख़त्म हो जाए तो शिकार करने की इजाज़त है।

عَلَى الْاِثْمِ وَالْعُدْوَانِ ۖ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ
الْعِقَابِ ۝۲ حُرِّمَتْ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةُ وَالدَّمُ وَلَحْمُ
الْخِنْزِيْرِ وَمَاۤ اُهِلَّ لِغَيْرِ اللّٰهِ بِهٖ وَالْمُنْخَنِقَةُ
وَالْمَوْقُوْذَةُ وَالْمُتَرَدِّيَةُ وَالنَّطِيْحَةُ وَمَاۤ اَكَلَ
السَّبُعُ اِلَّا مَا ذَكَّيْتُمْ ۫ وَمَا ذُبِحَ عَلَى النُّصُبِ وَ

बे-जा ज़्यादतियाँ करने लगो।[8] नहीं, जो काम नेकी और ख़ुदातरसी के हैं उनमें सबकी मदद करो और जो गुनाह और ज़्यादती के काम हैं उनमें किसी की मदद न करो। अल्लाह से डरो, उसकी सज़ा बहुत सख़्त है।

(3) तुम पर हराम किया गया मुरदार[9], ख़ून, सूअर का गोश्त, वह जानवर जो ख़ुदा के सिवा किसी और के नाम पर ज़ब्ह किया गया हो[10], वह जो गला घुटकर या चोट खाकर या बुलन्दी से गिरकर या टक्कर खाकर मरा हो या जिसे किसी दरिन्दे ने फाड़ा हो।—सिवाय उसके जिसे तुमने ज़िन्दा पाकर ज़ब्ह कर लिया[11]—और वह जो किसी

8. चूँकि इस्लाम-दुश्मन ग़ैर-मुस्लिमों ने उस वक़्त मुसलमानों को काबा की ज़ियारत से रोक दिया था और अरब के पुराने दस्तूर के ख़िलाफ़ हज तक से मुसलमान महरूम कर दिए गए थे, इसलिए मुसलमानों में यह ख़याल पैदा हुआ कि जिन ग़ैर-मुस्लिम क़बीलों के रास्ते इस्लामी इलाक़ों के क़रीब से गुज़रते हैं, उनको हम भी हज से रोक दें और हज के ज़माने में उनके क़ाफ़िलों पर छापे मारने शुरू कर दें। मगर अल्लाह ने यह आयत उतारकर उन्हें इस इरादे से रोक दिया।

9. यानी वह जानवर जो अपनी फ़ितरी मौत मर गया हो।

10. यानी जिसको ज़ब्ह करते वक़्त ख़ुदा के सिवा किसी और का नाम लिया गया हो, या जिसको ज़ब्ह करने से पहले यह नीयत की गई हो कि यह फ़ुलाँ बुज़ुर्ग या फ़ुलाँ देवी-देवता की नज़्र (भेंट) है। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा का हाशिया-171)

11. यानी जो जानवर ऊपर बयान किए गए हादसों में से किसी हादसे का शिकार हो जाने के बावजूद मरा न हो, बल्कि ज़िन्दगी के कुछ आसार उस में पाए जाते हों, उसको अगर ज़ब्ह कर लिया जाए तो उसे खाया जा सकता है। इससे यह भी मालूम हुआ कि हलाल जानवर का गोश्त सिर्फ़ ज़ब्ह करने से हलाल होता है, कोई दूसरा तरीक़ा उसको हलाक करने का सही नहीं है। ये

اَنْ تَسْتَقْسِمُوْا بِالْاَزْلَامِ ۭ ذٰلِكُمْ فِسْقٌ ۭ اَلْيَوْمَ يَىِٕسَ

आस्ताने (थान) पर[12] ज़ब्ह किया गया हो।[13] साथ ही यह भी तुम्हारे लिए हराम है कि पाँसों के ज़रीए से अपनी क़िस्मत मालूम करो।[14] ये सब काम नाफ़रमानी के हैं। आज

'ज़ब्ह' और 'ज़कात' इस्लाम के इस्तिलाही (पारिभाषिक) लफ़्ज़ हैं। इनसे मुराद हलक़ का इतना हिस्सा काट देना है जिससे जिस्म का ख़ून अच्छी तरह निकल जाए। झटका करने या गला घोंटने या किसी और तरीक़े से जानवर को हलाक करने का नुक़सान यह होता है कि ख़ून का ज़्यादातर हिस्सा जिस्म के अन्दर ही रुका रह जाता है और वह जगह-जगह जमकर गोश्त के साथ चिमट जाता है। इसके बरख़िलाफ़ ज़ब्ह करने की सूरत में दिमाग़ के साथ जिस्म का ताल्लुक़ देर तक बाक़ी रहता है, जिसकी वजह से नस-नस का ख़ून खिंचकर बाहर आ जाता है और इस तरह पूरे जिस्म का गोश्त ख़ून से साफ़ हो जाता है। ख़ून के बारे में अभी ऊपर ही यह बात गुज़र चुकी है कि वह हराम है। इसलिए गोश्त के पाक और हलाल होने के लिए ज़रूरी है कि ख़ून उससे अलग हो जाए।

12. असूल अरबी में लफ़्ज़ 'नुसुब' इस्तेमाल हुआ है। इससे मुराद वे सब जगहें हैं जिनको अल्लाह के सिवा किसी और को नज़्र और नियाज़ चढ़ाने के लिए लोगों ने ख़ास कर रखा हो, चाहे वहाँ कोई पत्थर या लकड़ी की मूर्ति हो या न हो। हमारी ज़बान में उसका हममानी लफ़्ज़ आस्ताना या थान है जो किसी बुज़ुर्ग या देवता से, या किसी ख़ास मुशरिकाना अक़ीदे से जुड़ा हुआ हो।

13. यहाँ यह बात ख़ूब अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि खाने-पीने की चीज़ों में हराम और हलाल की जो क़ैदें ओर शर्तें शरीअ़त की तरफ़ से लगाई जाती हैं, उनकी असूल बुनियाद उन चीज़ों के तिब्बी फ़ायदे (चिकित्सीय लाभ) या नुक़सानों पर नहीं होते, बल्कि उनके अख़लाक़ी फ़ायदे और नुक़सान होते हैं। जहाँ तक फ़ितरी मामलों का ताल्लुक़ है अल्लाह ने उनको इनसान की अपनी कोशिश, जुस्तजू और जाँच-पड़ताल पर छोड़ दिया है। यह मालूम करना इनसान का अपना काम है कि माद्दी चीज़ों में से कौन-सी चीज़ें उसके जिस्म को अच्छी ग़िज़ा पहुँचानेवाली हैं और कौन-सी चीज़ें सेहत के लिए नुक़सानदेह हैं। शरीअत इन मामलों में उसकी रहनुमाई की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेती। अगर यह काम उसने अपने ज़िम्मे लिया होता तो सबसे पहले संखिया को हराम किया होता। लेकिन आप देखते ही हैं कि क़ुरआन और हदीस में उसका या उन दूसरी चीज़ों (Composits) का, जो इनसान के लिए सख़्त ख़तरनाक हैं सिरे से कोई ज़िक्र ही नहीं है। शरीअ़त खाने के मामले में जिस चीज़ पर रौशनी डालती है वह असूल में उसका यह पहलू है कि किस ग़िज़ा का इनसान के अख़लाक़ पर क्या असर होता है और कौन-सी ग़िज़ाएँ मन की पाकी के लिहाज़ से कैसी हैं और ग़िज़ा हासिल करने के तरीक़ों में से कौन-से तरीक़े अक़ीदे और नज़रिए के लिहाज़ से सही या ग़लत हैं। चूँकि इसकी तहक़ीक़ करना इनसान के बस में नहीं है और इसको मालूम करने के ज़रीए इनसान को हासिल ही नहीं हैं और इसी बुनियाद पर इनसान ने ज़्यादातर इन मामलों में ग़लतियाँ की हैं, इसलिए शरीअत सिर्फ़ इन्हीं

मामलों में, उसकी रहनुमाई करती है। जिन चीज़ों को उसने हराम किया है उन्हें इस वजह से हराम किया है कि या तो अख़लाक़ (नैतिक आचरण) पर उनका बुरा असर पड़ता है या वे पाकी के ख़िलाफ़ हैं। या उनका ताल्लुक़ किसी ग़लत अक़ीदे से है। इसके बरख़िलाफ़ जिन चीज़ों को उसने हलाल किया है उनके हलाल होने की वजह यह है कि वे उन बुराइयों में से कोई बुराई अपने अन्दर नहीं रखतीं।

सवाल किया जा सकता है कि ख़ुदा ने हमको इन चीज़ों के हराम होने की वजहें क्यों नहीं समझाईं, ताकि हमें उनके बारे में जानकारी हासिल होती। इसका जवाब यह है कि उसकी वजहों को समझना हमारे लिए मुमकिन नहीं है। मिसाल के तौर पर यह बात कि ख़ून, या सूअर के गोश्त या मुरदार के खाने से हमारी अख़लाक़ी सिफ़तों (नैतिक गुणों) में क्या ख़राबियाँ पैदा होती हैं, कितनी और किस तरह होती हैं, उसकी खोज हम किसी तरह नहीं कर सकते, क्योंकि अख़लाक़ को नापने और तौलने के ज़रीए हमें हासिल नहीं हैं। मान लीजिए कि अगर उनके बुरे असर को बयान कर भी दिया जाता तो शुब्हा करनेवाला लगभग उसी मक़ाम पर होता जिस पर वह अब है, क्योंकि वह इस बयान के सही होने या ग़लत होने को कैसे जाँचता? इसलिए अल्लाह ने हराम और हलाल की हदों की पाबन्दी का दारोमदार ईमान पर रख दिया है। जिस आदमी को इस बात पर इतमीनान हो जाए कि किताब, अल्लाह की किताब है और रसूल अल्लाह का रसूल है और अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और हिकमतवाला है। वह उसकी मुक़र्रर की हुई हदों की पाबन्दी करेगा, चाहे उनकी मसलिहत (निहित उद्देश्य) उसकी समझ में आए या न आए। और जिस आदमी को बुनियादी अक़ीदे पर ही इतमीनान न हो उसके लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं कि जिन चीज़ों की ख़राबियाँ इनसान के इल्म के दायरे में आ गई हैं सिर्फ़ उन्हीं से परहेज़ करे और जिनकी ख़राबियाँ इनसान के इल्म में नहीं आ सकी हैं उनके नुक़सानों का वह शिकार बनता रहे।

14. इस आयत में जिस चीज़ को हराम किया गया है उसकी तीन बड़ी क़िस्में दुनिया में पाई जाती हैं और आयत का हुक्म इन तीनों पर लागू होता है।

(i) **मुशरिकाना फ़ाल-गीरी**— जिसमें किसी देवी या देवता से क़िस्मत का फ़ैसला मालूम किया जाता है या ग़ैब की ख़बर मालूम की जाती है या आपसी झगड़ों का निपटारा किया जाता है। मक्का के मुशरिकों ने इस मक़सद के लिए काबा के अन्दर हुबल देवता के बुत को ख़ास कर रखा था। उसके थान में सात तीर रखे हुए थे, जिन पर बहुत-से अलग-अलग अलफ़ाज़ और जुमले खुदे हुए थे। किसी काम के करने या न करने का सवाल हो, या खोई हुई चीज़ का पता पूछना हो, या ख़ून के मुक़द्दमे का फ़ैसला कराना हो, ग़रज़ कि कोई काम भी हो उसके लिए हुबल के पाँसेदार (साहिबुल-क़िदाह) के पास पहुँच जाते, उसका नज़राना पेश करते और हुबल से दुआ माँगते कि हमारे इस मामले का फ़ैसला कर दे। फिर पाँसेदार इन तीरों के ज़रीए से फ़ाल निकालता और जो तीर भी फ़ाल में निकल आता उस पर लिखे हुए लफ़्ज़ को हुबल का फ़ैसला समझा जाता था।

(ii) **अन्धविश्वास पर क़ायम फ़ालगीरी**— जिसमें ज़िन्दगी के मामलों का फ़ैसला अक़्ल और फ़िक्र से करने के बजाय किसी वहमी और ख़याली चीज़ या किसी इत्तिफ़ाक़ी चीज़ के ज़रीए से

الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ دِيْنِكُمْ فَلَا تَخْشَوْهُمْ وَاخْشَوْنِ ۭ
اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِيْنَكُمْ وَاَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ

कुफ़्र को तुम्हारे दीन की तरफ़ से पूरी मायूसी हो चुकी है। इसलिए तुम उनसे न डरो, बल्कि मुझसे डरो।[15] आज मैंने तुम्हारे दीन (जीवन-विधान) को तुम्हारे लिए मुकम्मल कर

किया जाता है। या क़िस्मत का हाल ऐसे ज़रीओं से मालूम करने की कोशिश की जाती है जिनका ग़ैब के इल्म का वसीला होना किसी इल्मी तरीक़े से साबित नहीं है। रमल, नुजूम, जुफ़र, मुख़्तलिफ़ क़िस्म के शगुन और नक्षत्र और फ़ालगीरी के अनगिनत तरीक़े इसमें दाख़िल हैं।

(iii) जुए की क़िस्म के वे सारे खेल और काम जिनमें चीज़ों के बँटवारे का दारोमदार हुक़ूक़ और ख़िदमतों और अक़्ली फ़ैसलों पर होने के बजाय सिर्फ़ किसी इत्तिफ़ाक़ी बात पर हो। मिसाल के तौर पर यह कि लॉटरी में इत्तिफ़ाक़ से फ़ुलाँ आदमी का नाम निकल आया है। इसलिए हज़ारों आदमियों की जेब से निकला हुआ रुपया उस एक आदमी की जेब में चला जाए। या यह कि इल्मी हैसियत से तो एक पहेली के बहुत-से हल सही हैं मगर इनाम वह आदमी पाएगा जिसका हल किसी मुनासिब कोशिश की बुनियाद पर नहीं, बल्कि सिर्फ़ इत्तिफ़ाक़ से उस हल के मुताबिक़ निकल आया हो जो पहेली पूछनेवाले के सन्दूक़ में बन्द है।

इन तीन क़िस्मों को हराम कर देने के बाद सिर्फ़ पर्ची डालने की वह सादा सूरत इस्लाम में जाइज़ रखी गई है जिसमें दो बराबर के जाइज़ कामों या दो बराबर के हुक़ूक़ के बीच फ़ैसला करना हो। जैसे एक चीज़ पर दो आदमियों का हक़ हर हैसियत से बिलकुल बराबर है और फ़ैसला करनेवाले के लिए उनमें से किसी को तरजीह देने की कोई मुनासिब वजह मौजूद नहीं है और ख़ुद उन दोनों में से भी कोई अपना हक़ ख़ुद छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। इस सूरत में उनकी रज़ामन्दी से पर्ची डालने के फ़ैसले की बुनियाद बनाया जा सकता है। या मिसाल के तौर पर दो काम समान रूप से ठीक हैं और अक़्ली हैसियत से आदमी उन दोनों के बीच डावाँडोल हो गया है कि उनमें से किसको इख़्तियार करे। इस सूरत में ज़रूरत हो तो पर्ची डाली जा सकती है। नबी *(सल्ल०)* आम तौर पर ऐसे मौक़ों पर यह तरीक़ा अपनाते थे, जबकि दो बराबर के हक़दारों के बीच एक को तरजीह देने की ज़रूरत पेश आ जाती थी और आपको अन्देशा होता था कि अगर आप ख़ुद एक को तरजीह देंगे तो दूसरे को रंज होगा।

15. 'आज' से मुराद कोई ख़ास दिन और तारीख़ नहीं है, बल्कि वह दौर या ज़माना मुराद है जिसमें ये आयतें उतरी थीं। हमारी ज़बान में भी आज का लफ़्ज़ मौजूदा ज़माने के लिए आम तौर पर बोला जाता है।

"कुफ़्र करनेवालों को तुम्हारे दीन की तरफ़ से मायूसी हो चुकी है" यानी अब तुम्हारा दीन एक मुस्तक़िल निज़ाम (व्यवस्था) बन चुका है और ख़ुद अपनी हाकिमाना ताक़त के साथ लागू और

نِعۡمَتِىۡ وَرَضِيۡتُ لَكُمُ الۡاِسۡلَامَ دِيۡنًا ؕ فَمَنِ اضۡطُرَّ
فِىۡ مَخۡمَصَةٍ غَيۡرَ مُتَجَانِفٍ لِّاِثۡمٍ ۙ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ

दिया है और अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दी है और तुम्हारे लिए इस्लाम को तुम्हारे दीन (धर्म) की हैसियत से क़बूल कर लिया है। (इसलिए हराम और हलाल की जो क़ैदें तुमपर लगाई गई हैं, उनकी पाबन्दी करो।)[16] अलबत्ता जो आदमी भूख से मजबूर होकर उनमें से कोई चीज़ खा ले, बग़ैर इसके कि गुनाह की तरफ़ इसका मैलान (झुकाव) हो तो

क़ायम है। ये इस्लाम-दुश्मन और कुफ़्र करनेवाले जो अब तक इस निज़ाम के क़ायम होने में रुकावट और रोड़ा बनते रहे हैं, अब इस तरफ़ से मायूस हो चुके हैं कि वे इसे मिटा सकेंगे और तुम्हें फिर पिछली जाहिलियत की तरफ़ वापस ले जा सकेंगे। "इसलिए तुम इनसे न डरो, बल्कि मुझसे डरो।" यानी इस दीन के अहकाम और इसकी हिदायतों पर अमल करने में अब किसी बेदीन (अधर्मी) ताक़त के ग़लबे, क़हर, दख़लअन्दाज़ी, रुकावट का ख़तरा तुम्हारे लिए बाक़ी नहीं रहा है। इनसानों के ख़ौफ़ की अब कोई वजह नहीं रही। अब तुम्हें ख़ुदा से डरना चाहिए कि उसके अहकाम को पूरा करने में अगर कोई कोताही तुमने की तो तुम्हारे पास कोई ऐसा बहाना न होगा कि जिसकी बुनियाद पर तुम्हारे साथ कुछ भी नरमी की जाए। अब अल्लाह के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी का मतलब यह नहीं होगा कि तुम दूसरों के असर से मजबूर हो, बल्कि इसका साफ़ मतलब यह होगा कि तुम ख़ुदा की इताअत (फ़रमाँबरदारी) करना नहीं चाहते।

16. दीन को मुकम्मल कर देने से मुराद उसको फ़िक्र और अमल का एक मुस्तक़िल निज़ाम और तहज़ीब व तमद्दुन का एक ऐसा मुकम्मल निज़ाम बना देना है जिसमें ज़िन्दगी के सभी मसलों का जवाब उसूली तौर पर या तफ़सील के साथ मौजूद हो और हिदायत और रहनुमाई हासिल करने के लिए किसी हाल में उससे बाहर जाने की ज़रूरत पेश न आए। नेमत पूरी करने से मुराद हिदायत की नेमत को पूरा कर देना है। और इस्लाम को दीन की हैसियत से क़बूल कर लेने का मतलब यह है कि तुमने मेरी इताअत व बन्दगी इख़्तियार करने का जो इक़रार किया था, उसको चूँकि तुम अपनी कोशिश और अमल से सच्चा और मुख़लिसाना इक़रार साबित कर चुके हो, इसलिए मैंने इसे क़बूलियत का दर्जा दे दिया है और तुम्हें अमली तौर पर इस हालत तक पहुँचा दिया है कि अब हक़ीक़त में मेरे सिवा किसी की इताअत व बन्दगी का पट्टा तुम्हारी गर्दनों में बाक़ी नहीं रहा। अब जिस तरह अक़ीदे में तुम मेरे फ़रमाँबरदार हो उसी तरह अमली ज़िन्दगी में भी मेरे सिवा किसी और के फ़रमाँबरदार बनकर रहने के लिए तुम पर कोई मजबूरी नहीं रह गई है। इन एहसानों का ज़िक्र करने के बाद अल्लाह ख़ामोशी इख़्तियार करता है, मगर बयान के अन्दाज़ (वर्णन-शैली) से ख़ुद ही यह बात निकल आती है कि जब ये एहसान मैंने तुम पर किए हैं तो उनका तक़ाज़ा यह है कि अब मेरे क़ानून की हदों पर क़ायम रहने में तुम्हारी तरफ़ से भी कोई कोताही न हो।

رَّحِيْمٌ ۝ يَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَآ اُحِلَّ لَهُمْ ۭ قُلْ اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ ۙ وَمَا عَلَّمْتُمْ مِّنَ الْجَوَارِحِ مُكَلِّبِيْنَ تُعَلِّمُوْنَهُنَّ مِمَّا عَلَّمَكُمُ اللّٰهُ ۡ فَكُلُوْا مِمَّآ اَمْسَكْنَ عَلَيْكُمْ وَاذْكُرُوا

बेशक अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।[17]

(4) लोग पूछते हैं कि उनके लिए क्या हलाल किया गया है। कहोः तुम्हारे लिए सारी पाक चीज़ें हलाल कर दी गई हैं।[18] और जिन शिकारी जानवरों को तुमने सधाया हो—जिनको ख़ुदा के दिए हुए इल्म की बिना पर तुम शिकार की ट्रेनिंग दिया करते हो

भरोसेमन्द रिवायतों से मालूम होता है कि यह आयत नबी *(सल्ल०)* के आख़िरी हज (हिज्जतुल-वदाअ) के मौक़े पर सन् 10 हिजरी में उतरी थी। लेकिन बात के जिस सिलसिले में यह आई है वह सुलह-हुदैबिया से मिला हुआ ज़माना (सन् 6 हिजरी) है और इबारत के मौक़ा-महल में दोनों जुमले कुछ ऐसे मिले हुए नज़र आते हैं कि यह गुमान नहीं किया जा सकता कि शुरू में बात का यह सिलसिला इन जुमलों के बग़ैर उतरा था और बाद में जब ये जुमले उतरे तो इन्हें यहाँ लाकर जोड़ दिया गया। मेरा गुमान यह है और जानता अल्लाह ही है कि शुरू में यह आयत इसी कलाम के इसी मौक़ा-महल में उतरी थी इसलिए इसकी असूल अहमियत को लोग न समझ सके। बाद में जब पूरा अरब इस्लाम के तहत आ गया और इस्लाम की ताक़त अपने शबाब पर पहुँच गई तो अल्लाह ने दोबारा ये जुमले अपने नबी पर उतारे और उनके एलान का हुक्म दिया।

17. देखें सूरा-2, अल-बक़रा हाशिया-172।

18. इस जवाब में एक लतीफ़ (सूक्ष्म) नुक्ता छिपा हुआ है। मज़हबी सोच के लोग ज़्यादातर इस ज़ेहनियत के शिकार होते रहे हैं कि दुनिया की हर चीज़ को हराम समझते हैं जब तक कि साफ़ तौर पर किसी चीज़ को हलाल न ठहरा दिया जाए। इस ज़ेहनियत की वजह से लोगों पर अन्धविश्वास और क़ानूनियत का ग़लबा हो जाता है। वे ज़िन्दगी के हर मामले में हलाल चीज़ों और जाइज़ कामों की लिस्ट माँगते हैं और हर काम और हर चीज़ को इस शुब्हे की नज़र से देखने लगते हैं कि कहीं वह मना तो नहीं। यहाँ क़ुरआन इसी ज़ेहनियत की इस्लाह करता है। पूछनेवालों का मक़सद यह था कि इन्हें तमाम हलाल चीज़ों की तफ़सील बताई जाए, ताकि उनके सिवा हर चीज़ को वे हराम समझें। जवाब में क़ुरआन ने हराम चीज़ों की तफ़सील बताई और उसके बाद यह आम हिदायत देकर छोड़ दिया कि सारी पाक चीज़ें हलाल हैं। इस तरह पुराना मज़हबी नज़रिया बिलकुल उलट गया। पुराना नज़रिया यह था कि सब कुछ हराम है सिवाय उसके जिसे हलाल ठहराया जाए। क़ुरआन ने इसके बरख़िलाफ़ यह उसूल तय किया कि सब कुछ हलाल है सिवाय उसके जिसके हराम होने को वाज़ेह तौर पर बता दिया जाए। यह

اسْمَ اللّٰهِ عَلَيْهِ ۖ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ۚ إِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝

— वह जिस जानवर को तुम्हारे लिए पकड़ रखें उसको भी तुम खा सकते हो,[19] अलबत्ता उस पर अल्लाह का नाम ले लो[20] और अल्लाह का क़ानून तोड़ने से डरो, अल्लाह को हिसाब लेते कुछ देर नहीं लगती।

एक बहुत बड़ी इस्लाह थी जिसने इनसानी ज़िन्दगी को बन्दिशों से आज़ाद करके दुनिया की कुशादगियों का दरवाज़ा उसके लिए खोल दिया। पहले हलाल होने के एक छोटे-से दायरे के सिवा सारी दुनिया उसके लिए हराम थी। अब हराम के एक छोटे-से दायरे को छोड़कर सारी दुनिया उसके लिए हलाल हो गई।

हलाल के लिए 'पाक' की क़ैद इसलिए लगाई कि नापाक चीज़ों को इस जाइज़ होने की दलील से हलाल ठहराने की कोशिश न की जाए। अब रहा यह सवाल कि चीज़ों के 'पाक' होने को किस तरह तय किया जाएगा? तो इसका जवाब यह है कि जो चीज़ें शरीअत के उसूल में से किसी असूल के तहत नापाक क़रार पाएँ या जिन चीज़ों से एक अच्छे ज़ौक़ का इनसान नफ़रत करे या जिन्हें मुहज़्ज़ब (सभ्य) इनसान ने आम तौर पर पाकी के अपने फ़ितरी अहसास के ख़िलाफ़ पाया हो उनके सिवा सब कुछ पाक है।

19. शिकारी जानवरों से मुराद कुत्ते, चीते, बाज़, शिकरे और तमाम वे दरिन्दे (हिंसक पशु) और परिन्दे (पक्षी) हैं जिनसे इनसान शिकार की ख़िदमत लेता है। सधाए हुए जानवर की ख़ुसूसियत यह होती है कि वह जिसका शिकार करता है उसे आम दरिन्दों की तरह फाड़ नहीं खाता, बल्कि अपने मालिक के लिए पकड़ रखता है। इसी वजह से आम दरिन्दों का फाड़ा हुआ जानवर हराम है और सधाए हुए दरिन्दों का शिकार हलाल।

इस मसले में फ़ुक़हा (इस्लाम के धर्मशास्त्रियों) के बीच कुछ इख़्तिलाफ़ है। एक गरोह कहता है कि अगर शिकारी जानवर ने, चाहे वह दरिन्दा हो या परिन्दा, शिकार में से कुछ खा लिया, तो वह हराम होगा। क्योंकि उसका खा लेना यह मतलब रखता है कि उसने शिकार को मालिक के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए पकड़ा। यही मसलक (मत) इमाम शाफ़ई (रह॰) का है। दूसरा गरोह कहता है कि अगर उसने शिकार में से कुछ खा लिया हो तब भी वह हराम नहीं होता, यहाँ तक कि अगर एक तिहाई हिस्सा भी वह खा ले तो बाक़ी दो तिहाई हलाल है और इस मामले में दरिन्दे और परिन्दे के बीच कुछ फ़र्क़ नहीं। यह मसलक इमाम मालिक का है। तीसरा गरोह कहता है कि शिकारी दरिन्दे ने अगर शिकार में से खा लिया हो तो वह हराम होगा, लेकिन अगर शिकारी परिन्दे ने खाया हो तो हराम न होगा, क्योंकि शिकारी दरिन्दे को ऐसी तालीम दी जा सकती है कि वह शिकार को मालिक के लिए पकड़े रखे और उसमें से कुछ न खाए, लेकिन तजुर्बे से साबित है कि शिकारी परिन्दा ऐसी तालीम क़बूल नही करता। यह मसलक इमाम अबू-हनीफ़ा और उनके साथियों का है। इसके बरख़िलाफ़ हज़रत अली *(रज़ि॰)* कहते हैं कि शिकारी परिन्दे का शिकार सिरे से जाइज़ ही नहीं है, क्योंकि उसे तालीम से यह बात नहीं सिखाई जा सकती कि शिकार को ख़ुद न खाए बल्कि मालिक के लिए पकड़ रखे।

اَلْيَوْمَ اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ ؕ وَطَعَامُ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ حِلٌّ لَّكُمْ ۪ وَطَعَامُكُمْ حِلٌّ لَّهُمْ ۫ وَالْمُحْصَنٰتُ

(5) आज तुम्हारे लिए सारी पाक चीज़ें हलाल कर दी गई हैं। अहले-किताब का खाना तुम्हारे लिए हलाल है और तुम्हारा खाना उनके लिए।[21] और महफ़ूज़ औरतें भी

20. यानी शिकारी जानवर को शिकार पर छोड़ते वक़्त 'बिस्मिल्लाह' कहो। हदीस में आता है कि हज़रत अदी-बिन-हातिम ने नबी *(सल्ल०)* से पूछा कि क्या मैं कुत्ते के ज़रीए से शिकार कर सकता हूँ? आप *(सल्ल०)* ने फ़रमाया कि "अगर उसको छोड़ते वक़्त तुमने अल्लाह का नाम लिया हो तो खाओ वरना नहीं, और अगर उसने शिकार में से कुछ खा लिया हो तो न खाओ, क्योंकि उसने शिकार को असल में अपने लिए पकड़ा है।" फिर उन्होंने पूछा कि अगर मैं शिकार पर अपना कुत्ता छोड़ दूँ और बाद में देखूँ कि कोई दूसरा कुत्ता वहाँ मौजूद है? आप *(सल्ल०)* ने जवाब दिया कि "उस शिकार को न खाओ। इसलिए कि तुमने ख़ुदा का नाम अपने कुत्ते पर लिया था, न कि दूसरे कुत्ते पर।"

इस आयत से यह मसला मालूम हुआ कि शिकारी जानवर को शिकार पर छोड़ते हुए ख़ुदा का नाम लेना ज़रूरी है। इसके बाद अगर शिकार ज़िन्दा मिले तो फिर अल्लाह का नाम लेकर उसे ज़ब्ह कर लेना चाहिए और अगर ज़िन्दा न मिले तो उसके बग़ैर ही वह हलाल होगा, क्योंकि शुरू में शिकारी जानवर को उस पर छोड़ते वक़्त अल्लाह का नाम लिया जा चुका था। यही हुक्म तीर का भी है।

21. अहले-किताब के खाने में उनका ज़बीहा (ज़ब्ह किया हुआ जानवर) भी शामिल है। हमारे लिए उनका और उनके लिए हमारा खाना हलाल होने का मतलब यह है कि हमारे और उनके बीच खाने-पीने में कोई रुकावट और कोई छूत-छात नहीं है। हम उनके साथ खा सकते हैं और वे हमारे साथ। लेकिन यह आम इजाज़त देने से पहले इस जुमले को दोहरा दिया गया है कि "तुम्हारे लिए पाक चीज़ें हलाल कर दी गई हैं।" इससे मालूम हुआ कि अहले-किताब अगर पाकी और तहारत के उन क़ानूनों की पाबन्दी न करें जो शरीअत की नज़र में ज़रूरी हैं या अगर उनके खाने में हराम चीज़ें शामिल हों तो उससे बचना चाहिए। जैसे अगर वे ख़ुदा का नाम लिए बिना किसी जानवर को ज़ब्ह करें या उसपर ख़ुदा के सिवा किसी और का नाम लें तो उसे खाना हमारे लिए जाइज़ नहीं। इसी तरह अगर उनके दस्तरख़ान पर शराब या सूअर या कोई और हराम चीज़ हो तो हम उनके साथ शरीक नहीं हो सकते।

अहले-किताब के सिवा दूसरे ग़ैर-मुस्लिमों के मामले में भी यही हुक्म है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि ज़बीहा (ज़ब्ह किया हुआ जानवर) सिर्फ़ अहले-किताब ही का जाइज़ है, जबकि उन्होंने ख़ुदा का नाम उस पर लिया हो। रहे अहले-किताब के सिवा दूसरे ग़ैर-मुस्लिम, तो उनके हलाक किए हुए जानवर के गोश्त को हम नहीं खा सकते।

مِنَ الْمُؤْمِنٰتِ وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ اِذَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ وَلَا مُتَّخِذِيْٓ اَخْدَانٍ ۭ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ حَبِطَ عَمَلُهٗ ۡ وَهُوَ فِي الْاٰخِرَةِ مِنَ

तुम्हारे लिए हलाल हैं, चाहे वे ईमानवालों के गरोह से हों या उन क़ौमों में से जिनको तुम से पहले किताब दी गई थी।[22] शर्त यह है कि तुम उनके महर अदा करके निकाह में उनके मुहाफ़िज़ बनो, न यह कि आज़ाद शहवतरानी (काम-तृप्ति) करने लगो या चोरी छिपे आशनाइयाँ करो। और जिस किसी ने ईमान की रविश पर चलने से इनकार किया तो उसकी ज़िन्दगी का सारा किया-धरा बर्बाद हो जाएगा और वह आख़िरत में

22. इससे मुराद यहूदी और ईसाई हैं। निकाह की इजाज़त सिर्फ़ उन्हीं की औरतों से दी गई है और इसके साथ शर्त यह लगा दी गई है कि वे मुहसनात (महफ़ूज़ औरतें) हों। इस हुक्म की तफ़सील और तशरीह में फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) में इख़्तिलाफ़ हुआ है। इब्ने-अब्बास *(रज़ि.)* का ख़याल है कि यहाँ अहले-किताब से मुराद वे अहले-किताब हैं जो इस्लामी हुकूमत की रिआया (जनता) हों। रहे 'दारुल-हरब' और 'दारुल-कुफ़्र' के यहूदी और ईसाई तो उनकी औरतों से निकाह करना ठीक नहीं है। हनफ़ी उलमा इससे थोड़ा इख़्तिलाफ़ करते हैं। उनके नज़दीक दूसरे देशों की अहले-किताब औरतों से निकाह करना हराम तो नहीं है मगर मकरूह (नापसन्दीदा) ज़रूर है। इसके *बरख़िलाफ़* सईद-बिन-मुसैयिब *(रह.)* और हसन बसरी *(रह.)* इस बात को मानते हैं कि आयत अपने हुक्म में आम है। इसलिए ज़िम्मी और ग़ैर-ज़िम्मी में फ़र्क़ करने की ज़रूरत नहीं। फिर मुहसनात के मफ़हूम (मतलब) में भी फ़ुक़हा के बीच इख़्तिलाफ़ है। हज़रत उमर *(रज़ि.)* के नज़दीक इससे मुराद पाकदामन बाइस्मत औरतें हैं और इस बुनियाद पर वे अहले-किताब की आज़ाद मनिश औरतों को इस इजाज़त से ख़ारिज क़रार देते हैं। यही राय हसन, शअबी और इबराहीम नख़ई *(रह.)* की है। और हनफ़ी उलमा ने भी इसी को पसन्द किया है। इसके बरख़िलाफ़ इमाम शाफ़ई की राय यह है कि यहाँ यह लफ़्ज़ लौंडियों के मुक़ाबले में इस्तेमाल हुआ है, यानी इससे मुराद अहले-किताब की वे औरतें हैं जो लौंडियाँ न हों।

ع الْخٰسِرِيْنَ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا قُمْتُمْ اِلَى
الصَّلٰوةِ فَاغْسِلُوْا وُجُوْهَكُمْ وَاَيْدِيَكُمْ اِلَى الْمَرَافِقِ
وَامْسَحُوْا بِرُءُوْسِكُمْ وَاَرْجُلَكُمْ اِلَى الْكَعْبَيْنِ ؕ وَاِنْ
كُنْتُمْ جُنُبًا فَاطَّهَّرُوْا ؕ وَاِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى
سَفَرٍ اَوْ جَآءَ اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ
النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا طَيِّبًا

दीवालिया होगा।[23]

(6) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, जब तुम नमाज़ के लिए उठो तो चाहिए कि अपने मुँह और हाथ कुहनियों तक धो लो, सरों पर हाथ फेर लो और पाँव टख़नों तक धो लिया करो।[24] अगर नापाकी की हालत में हो तो नहाकर पाक हो जाओ।[25] अगर बीमार हो या सफ़र की हालत में हो या तुममें से कोई आदमी ज़रूरत पूरी (पाख़ाना-पेशाब) करके आए या तुमने औरतों को हाथ लगाया हो और पानी न मिले, तो पाक मिट्टी से

23. अहले-किताब की औरतों से निकाह की इजाज़त देने के बाद यह जुमला इसलिए ख़बरदार करने के लिए कहा गया है कि जो आदमी इस इजाज़त से फ़ायदा उठाए वह अपने ईमान और अख़लाक़ की तरफ़ से होशियार रहे। कहीं ऐसा न हो कि ग़ैर-मुस्लिम बीवी के इश्क़ में पड़कर या उसके अक़ीदों और अमल से मुतास्सिर होकर वह अपने ईमान से हाथ धो बैठे या अख़लाक़ और समाज में ऐसी रविश पर चल पड़े जो ईमान के ख़िलाफ़ हो।

24. नबी *(सल्ल०)* ने इस हुक्म की जो तशरीह की है उससे मालूम होता है कि मुँह धोने में कुल्ली करना और नाक साफ़ करना भी शामिल है, इसके बिना मुँह का ग़ुस्ल पूरा नहीं होता। और कान चूँकि सर का एक हिस्सा हैं इसलिए सर के मसह में कानों के अन्दर और बाहर के हिस्सों का मसह भी शामिल है। साथ ही साथ वुज़ू शुरू करने से पहले हाथ धो लेने चाहिएँ ताकि जिन हाथों से आदमी वुज़ू कर रहा हो वे ख़ुद पहले पाक हो जाएँ।

25. जनाबत (नापाकी) चाहे मुबाशरत (सम्भोग) से हुई हो या ख़ाब में मनी (वीर्य) के निकल जाने की वजह से। दोनों सूरतों में ग़ुस्ल वाजिब है। इस हालत में ग़ुस्ल के बिना नमाज़ पढ़ना या क़ुरआन को हाथ लगाना जाइज़ नहीं है। (और ज़्यादा तफ़सील के लिए देखें सूरा-4, अन-निसा, हाशिया-67 से 69)

فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَاَيْدِيْكُمْ مِّنْهُ ؕ مَا يُرِيْدُ اللّٰهُ
لِيَجْعَلَ عَلَيْكُمْ مِّنْ حَرَجٍ وَّلٰكِنْ يُّرِيْدُ لِيُطَهِّرَكُمْ
وَلِيُتِمَّ نِعْمَتَهٗ عَلَيْكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝ وَاذْكُرُوْا
نِعْمَةَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَمِيْثَاقَهُ الَّذِيْ وَاثَقَكُمْ بِهٖٓ ۙ
اِذْ قُلْتُمْ سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ز وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ الصُّدُوْرِ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ لِلّٰهِ شُهَدَآءَ بِالْقِسْطِ ز وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ

काम लो। बस उस पर हाथ मारकर अपने मुँह और हाथों पर फेर लिया करो।[26] अल्लाह तुम पर ज़िन्दगी को तंग नहीं करना चाहता, मगर वह चाहता है कि तुम्हें पाक करे और अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दे।[27] शायद कि तुम शुक्रगुज़ार बनो।

(7) अल्लाह ने तुमको जो नेमत दी है[28] उसका ख़याल रखो और उस पुख़्ता अहदो-पैमान (वचन एवं प्रतिज्ञा) को न भूलो जो उसने तुमसे लिया है, यानी तुम्हारा यह कहना कि "हमने सुना और फ़रमाँबरदारी क़बूल की।" अल्लाह से डरो, अल्लाह दिलों के राज़ तक जानता है। (8) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह के लिए सच्चाई पर क़ायम रहनेवाले *और इनसाफ़* की गवाही देनेवाले बनो।[29] किसी गरोह की दुश्मनी तुमको

26. तशरीह के लिए देखें सूरा-4, अन-निसा, हाशिया-69 और 70।
27. जिस तरह मन की पाकीज़गी एक नेमत है इसी तरह जिस्म की पाकीज़गी भी एक नेमत है। इनसान पर अल्लाह की नेमत उसी वक़्त पूरी हो सकती है जबकि मन और जिस्म दोनों की सफ़ाई और पाकीज़गी के लिए पूरी हिदायत उसे मिल जाए।
28. यानी यह नेमत कि ज़िन्दगी के सीधे रास्ते को तुम्हारे लिए रौशन कर दिया और दुनिया की हिदायत और रहनुमाई के मंसब पर तुम्हें बिठाया है।
29. देखें सूरा-4, अन-निसा, हाशिया-164 और 165।

شَنَاٰنُ قَوۡمٍ عَلٰۤى اَلَّا تَعۡدِلُوۡا ؕ اِعۡدِلُوۡا ۟ هُوَ اَقۡرَبُ
لِلتَّقۡوٰى ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيۡرٌۢ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ ﴿۸﴾
وَعَدَ اللّٰهُ الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ ۙ لَهُمۡ
مَّغۡفِرَةٌ وَّاَجۡرٌ عَظِيۡمٌ ﴿۹﴾ وَالَّذِيۡنَ كَفَرُوۡا وَكَذَّبُوۡا
بِاٰيٰتِنَاۤ اُولٰۤـئِكَ اَصۡحٰبُ الۡجَحِيۡمِ ﴿۱۰﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ
اٰمَنُوا اذۡكُرُوۡا نِعۡمَتَ اللّٰهِ عَلَيۡكُمۡ اِذۡ هَمَّ قَوۡمٌ
اَنۡ يَّبۡسُطُوۡۤا اِلَيۡكُمۡ اَيۡدِيَهُمۡ فَكَفَّ اَيۡدِيَهُمۡ عَنۡكُمۡ ۚ

इतना मुश्तइल (उत्तेजित) न कर दे कि इनसाफ़ से फिर जाओ। इनसाफ़ करो यह ख़ुदातरसी से ज़्यादा मेल रखता है। अल्लाह से डरकर काम करते रहो, जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उससे पूरी तरह बा-ख़बर है। (9) जो लोग ईमान लाएँ और नेक अमल करें अल्लाह ने उनसे वादा किया है कि उनकी ख़ताओं को माफ़ कर दिया जाएगा और उन्हें बड़ा बदला मिलेगा। (10) रहे वे लोग जो कुफ़्र (इनकार) करें और अल्लाह की आयतों को झुठलाएँ तो वे दोज़ख़ में जानेवाले हैं।

(11) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह के उस एहसान को याद करो जो उसने (अभी हाल में) तुम पर किया है, जबकि एक गरोह ने तुम पर हाथ डालने का इरादा कर लिया था, मगर अल्लाह ने उनके हाथ तुम पर उठने से रोक दिए।[30] अल्लाह से डरकर

30. इशारा है उस वाक़िए (घटना) की तरफ़ जिसे हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास ने रिवायत किया है कि यहूदियों में से एक गरोह ने नबी *(सल्ल०)* और आपके ख़ास-ख़ास सहाबा को खाने की दावत पर बुलाया था और ख़ुफ़िया तौर पर यह साज़िश की थी कि अचानक उन पर टूट पड़ेंगे और इस तरह इस्लाम की जान निकाल देंगे। लेकिन ठीक वक़्त पर अल्लाह की मेहरबानी से नबी *(सल्ल०)* को इस साज़िश का हाल मालूम हो गया और आप दावत पर नहीं गए। चूँकि यहाँ से ख़िताब का रुख़ बनी-इसराईल की तरफ़ फिर रहा है इसलिए तमहीद (भूमिका) के तौर पर इस वाक़िए का ज़िक्र किया गया है।

وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ وَعَلَى اللّٰهِ فَلْيَتَوَكَّلِ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝۱۱ ع
وَلَقَدْ اَخَذَ اللّٰهُ مِيْثَاقَ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ ۚ وَ بَعَثْنَا
مِنْهُمُ اثْنَيْ عَشَرَ نَقِيْبًا ؕ وَقَالَ اللّٰهُ اِنِّيْ مَعَكُمْ ؕ
لَئِنْ اَقَمْتُمُ الصَّلٰوةَ وَ اٰتَيْتُمُ الزَّكٰوةَ وَ اٰمَنْتُمْ
بِرُسُلِيْ وَعَزَّرْتُمُوْهُمْ وَ اَقْرَضْتُمُ اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا

काम करते रहो। ईमान रखनेवालों को अल्लाह ही पर भरोसा करना चाहिए।

(12) अल्लाह ने बनी-इसराईल से पुख़्ता अहद (दृढ़ वचन) लिया था और उनमें बारह नक़ीब[31] मुक़र्रर किए थे और उनसे कहा था कि "मैं तुम्हारे साथ हूँ, अगर तुमने नमाज़ क़ायम रखी और ज़कात दी और मेरे रसूलों को माना और उनकी मदद की[32] और अपने

यहाँ से जो तक़रीर शुरू हो रही है उसके दो मक़सद हैं। पहला मक़सद यह कि मुसलमानों को उस रविश पर चलने से रोका जाए जिस पर उनसे पहले के अहले-किताब चल रहे थे। इसलिए उन्हें बताया जा रहा है कि जिस तरह आज तुमसे अहद (वचन) लिया गया है उसी तरह कल यही अहद बनी-इसराईल से और मसीह *(अलै०)* की उम्मत से भी लिया जा चुका है। फिर कहीं ऐसा न हो कि जिस तरह वे अपने अहद को तोड़कर गुमराहियों में पड़ गए उसी तरह तुम भी उसे तोड़ दो और गुमराह हो जाओ। दूसरा मक़सद यह है कि यहूदी और ईसाई दोनों को उनकी ग़लतियों पर ख़बरदार किया जाए और उन्हें सच्चे दीन की तरफ़ दावत दी जाए।

31. 'नक़ीब' के मानी निगरानी और छान-बीन करनेवाले के हैं। बनी-इसराईल के बारह क़बीले थे और अल्लाह ने उनमें से हर क़बीले पर एक-एक नक़ीब ख़ुद उसी क़बीले से मुक़र्रर करने का हुक्म दिया था ताकि वह उनके हालात पर नज़र रखे और उन्हें बे-दीनी और बदअख़लाक़ी से बचाने की कोशिश करता रहे। बाइबल की किताब गिनती में बारह 'सरदारों' का ज़िक्र मौजूद है, मगर उनकी वह हैसियत जो यहाँ लफ़्ज़ 'नक़ीब' से क़ुरआन में बयान की गई है, बाइबल के बयान से ज़ाहिर नहीं होती। बाइबल उन्हें सिर्फ़ रईसों और सरदारों की हैसियत से पेश करती है और क़ुरआन उनकी हैसियत अख़लाक़ी और दीनी काम की निगरानी करनेवालों की ठहराता है।

32. यानी जो रसूल भी मेरी तरफ़ से आएँ उनकी दावत पर अगर तुम लब्बैक कहते और उनकी मदद करते रहे।

لَاُكَفِّرَنَّ عَنۡكُمۡ سَيِّاٰتِكُمۡ وَلَاُدۡخِلَنَّكُمۡ جَنّٰتٍ
تَجۡرِىۡ مِنۡ تَحۡتِهَا الۡاَنۡهٰرُ‌ۚ فَمَنۡ كَفَرَ بَعۡدَ ذٰ لِكَ
مِنۡكُمۡ فَقَدۡ ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِيۡلِ ﴿۱۲﴾ فَبِمَا نَقۡضِهِمۡ
مِّيۡثَاقَهُمۡ لَعَنّٰهُمۡ وَجَعَلۡنَا قُلُوۡبَهُمۡ قٰسِيَةً‌ ۚ

ख़ुदा को अच्छा क़र्ज़ देते रहे[33] तो यक़ीन रखो कि मैं तुम्हारी बुराइयाँ तुम से मिटा दूँगा[34] और तुमको ऐसे बाग़ों में दाख़िल करूँगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी, मगर इसके बाद जिसने तुममें से कुफ़्र की रविश (अधर्म की नीति) इख़्तियार की तो हक़ीक़त में वह सीधे रास्ते[35] से भटक गया।" (13) फिर यह उनका अपने अहद (वचन) को तोड़ डालना था, जिसकी वजह से हमने उनको अपनी रहमत से दूर फेंक दिया और उनके दिल सख़्त कर

33. यानी ख़ुदा की राह में अपना माल ख़र्च करते रहे। चूँकि अल्लाह उस एक-एक पैसे को, जो इनसान उसकी राह में ख़र्च करे, कई गुने ज़्यादा इनाम के साथ वापस करने का वादा करता है। इसलिए क़ुरआन में जगह-जगह अल्लाह के रास्ते में माल ख़र्च करने को 'क़र्ज़' का नाम दिया गया है। शर्त यह है कि वह 'अच्छा क़र्ज़' हो, यानी जाइज़ ज़रीओं से कमाई हुई दौलत ख़र्च की जाए, ख़ुदा के क़ानून के मुताबिक़ ख़र्च की जाए और ख़ुलूस व अच्छी नीयत के साथ ख़र्च की जाए।

34. किसी से उसकी बुराइयाँ मिटा देने के दो मतलब हैं : एक यह कि सीधे रास्ते को अपनाने और ख़ुदा की हिदायत के मुताबिक़ फ़िक्रो-अमल के सही तरीक़े पर चलने का लाज़िमी नतीजा यह होगा कि इनसान का नफ़्स (मन) बहुत-सी बुराइयों से और उसकी ज़िन्दगी का ढंग बहुत-सी ख़राबियों से पाक होता चला जाएगा। दूसरे यह कि इस इस्लाह और सुधार के बावजूद अगर कोई आदमी कुल मिलाकर कमाल के दर्जे को न पहुँच सके और कुछ न कुछ बुराइयाँ उसके अन्दर बाक़ी रह जाएँ तो अल्लाह अपने फ़ज़्ल और मेहरबानी से उनपर पकड़ नहीं करेगा और उनको उसके हिसाब से निकाल देगा, क्योंकि जिसने बुनियादी हिदायतें और बुनियादी सुधार को क़बूल कर लिया हो, उसकी छोटी-छोटी और मामूली बुराइयों का हिसाब लेने में अल्लाह सख़्तगीर नहीं है।

35. यानी उसने 'सवाउस्सबील' (सीधे रास्ते) को पाकर फिर खो दिया और वह तबाही के रास्तों में भटक निकला। 'सवाउस्सबील' का तर्जमा तवस्सुत और एतिदाल की शाहेराह (बीच का राजमार्ग) किया जा सकता है, लेकिन इससे पूरा मतलब अदा नहीं होता। इसी लिए हमने तर्जमा में असूल लफ़्ज़ ही को ज्यों का त्यों ले लिया है।

इस लफ़्ज़ के मतलब को समझने के लिए पहले यह बात ज़ेहन में बिठा लेनी चाहिए कि इनसान अपने आप अपनी ज़ात में एक छोटी दुनिया है जिसके अन्दर अनगिनत बहुत-सी ताक़तें हैं, काबिलियतें हैं, ख़ाहिशें हैं, जज़्बात और रुझान हैं, नफ़्स (मन) और जिस्म की बहुत-सी माँगें हैं, रूह और तबीअत के बहुत-से तक़ाज़े हैं। फिर इन लोगों के मिलने से जो सामाजिक ज़िन्दगी बनती है वह भी बे हद व हिसाब पेचीदा ताल्लुक़ात से मिलकर बनी होती हैं और तहज़ीब व तमद्दुन (सभ्यता और संस्कृति) की तरक़्क़ी के साथ-साथ उसकी पेचीदगियाँ बढ़ती चली जाती हैं। फिर दुनिया में ज़िन्दगी का जो सामान इनसान के चारों तरफ़ फैला हुआ है उससे काम लेने और उसको इनसानी समाज में इस्तेमाल करने का सवाल भी इंफ़िरादी और इज्तिमाई हैसियत से मसाइल की बहुत-सी छोटी-बड़ी शाख़ें पैदा करता है।
इनसान अपनी कमज़ोरी की वजह से ज़िन्दगी की इस पूरी मुद्दत पर एक ही वक़्त में एक मुतवाज़िन (सन्तुलित) नज़र नहीं डाल सकता। इस वजह से इनसान अपने लिए ख़ुद ज़िन्दगी का कोई ऐसा रास्ता भी नहीं बना सकता जिसमें उसकी सारी क़ुव्वतों के साथ इनसाफ़ हो, उसकी सभी ख़ाहिशों का ठीक-ठीक हक़ अदा हो जाए, उसके सारे जज़बात और रुझानों में एक तवाज़ुन (सन्तुलन) क़ायम रहे, उसके सब अन्दरूनी और बेरूनी (बाह्य) तक़ाज़े तनासुब (समानुपात) के साथ पूरे हों, उसकी इज्तिमाई ज़िन्दगी के तमाम मसलों की मुनासिब रिआयत का ख़याल रखा जाए और उन सबका एक हमवार और मुनासिब हल निकल आए, और माद्दी चीज़ों को भी शख़्सी और सामाजिक ज़िन्दगी में इनसाफ़ और हक़ की पहचान के साथ इस्तेमाल किया जाता रहे। जब इनसान ख़ुद अपना रहनुमा और अपना क़ानून बनानेवाला बनता है तो हक़ीक़त के बहुत-से पहलुओं में से कोई एक पहलू, ज़िन्दगी की ज़रूरतों में से कोई एक ज़रूरत, हल किए जानेवाले मसलों में से कोई एक मसला उसके दिमाग़ पर इस तरह मुसल्लत हो जाता है कि दूसरे पहलुओं और ज़रूरतों और मसलों के साथ वह जाने-अनजाने बे-इनसाफ़ी करने लगता है। और उसकी इस राय के ज़बरदस्ती लागू किए जाने का नतीजा यह होता है कि ज़िन्दगी का तवाज़ुन (सन्तुलन) बिगड़ जाता है और वह बे-एतिदाली (असन्तुलन) की किसी एक इन्तिहा की तरफ़ टेढ़ा चलने लगता है। फिर जब यह टेढ़ी चाल अपनी आख़िरी हदों पर पहुँचते-पहुँचते इनसान के लिए बरदाश्त से बाहर हो जाती है तो वे पहलू और वे ज़रूरतें और वे मसले जिनके साथ बे-इनसाफ़ी हुई थी बग़ावत शुरू कर देते हैं, और ज़ोर लगाना शुरू करते हैं कि उनके साथ इनसाफ़ हो। मगर इनसाफ़ फिर भी नहीं होता। क्योंकि फिर वही अमल सामने आता है कि उनमें से कोई एक, जो पहले ना-इनसाफ़ी की वजह से सबसे ज़्यादा दबाया गया था, इनसानी दिमाग़ पर हावी हो जाता है और उसे अपने ख़ास तक़ाज़ों के मुताबिक़ एक ख़ास रुख़ पर बहा ले जाता है, जिसमें फिर दूसरे पहलुओं और ज़रूरतों और मामलों के साथ बे-इनसाफ़ी होने लगती है। इस तरह इनसानी ज़िन्दगी को कभी सीधा चलना नसीब नहीं होता। हमेशा वह हिचकोले ही खाती रहती है और तबाही के एक किनारे से दूसरे किनारे की तरफ़ लुढ़कती चली जाती है। वे रास्ते जो ख़ुद इनसान ने अपनी ज़िन्दगी के लिए बनाए हैं, ख़ते-मुनहनी (वक्र-रेखा) की शक्ल में मौजूद हैं, ग़लत सम्त से चलते हैं और ग़लत सम्त पर ख़त्म होकर फिर किसी दूसरी ग़लत सम्त की तरफ़ मुड़ जाते हैं।

इन बहुत-से टेढ़े और ग़लत रास्तों के बीच एक ऐसा रास्ता जो बिलकुल बीच में हो, जिसमें इनसान की सभी ताक़तों और ख़ाहिशों के साथ, उसके तमाम जज़्बात और रुझानों के साथ, उसकी रूह और जिस्म की तमाम माँगों और तक़ाज़ों के साथ और उसकी ज़िन्दगी के तमाम मसलों के साथ पूरा-पूरा इनसाफ़ किया गया हो, जिसके अन्दर कोई टेढ़, कोई कजी, किसी पहलू की बे-जा रिआयत और किसी दूसरे पहलू के साथ ज़ुल्म और बे-इनसाफ़ी न हो। इनसानी ज़िन्दगी की सही तरक़्क़ी और उसकी कामयाबी और बा-मुरादी के लिए सख़्त ज़रूरी है। इनसान की असूल फ़ितरत ही उस रास्ते की माँग करती है और मुख़्तलिफ़ टेढ़े रास्तों से बार-बार उसके बग़ावत करने की असूल वजह यही है कि वह उस सीधे शाहेराह (राजमार्ग) को ढूँढ़ती है। मगर इनसान ख़ुद उस शाहेराह को मालूम करने की क़ुदरत नहीं रखता है। उसकी तरफ़ सिर्फ़ ख़ुदा रहनुमाई कर सकता है और ख़ुदा ने अपने रसूल इसी लिए भेजे हैं कि वे उस सीधे रास्ते की तरफ़ इनसान की रहनुमाई करें।

क़ुरआन इसी रास्ते को 'सवाउस्सबील' और सीधा रास्ता कहता है। यह शाहेराह (राजमार्ग) दुनिया की इस ज़िन्दगी से लेकर आख़िरत की दूसरी ज़िन्दगी तक अनगिनत टेढ़े रास्तों के बीच से सीधी गुज़रती चली जाती है। जो उस पर चला, वह यहाँ सीधे रास्ते पर चलनेवाला और आख़िरत में कामयाब और बा-मुराद है। और जिसने इस रास्ते को गुम कर दिया, वह यहाँ ग़लत है, ग़लत चलनेवाला और ग़लत करनेवाला है, और आख़िरत में उसे दोज़ख़ में जाना है। क्योंकि ज़िन्दगी के तमाम टेढ़े रास्ते दोज़ख़ ही की तरफ़ जाते हैं।

मौजूदा ज़माने के कुछ नादान फ़लसफ़ियों ने यह देखकर कि इनसानी ज़िन्दगी एक इन्तिहा (अति) से दूसरी इन्तिहा की तरफ़ धक्के खाती चली जा रही है, यह ग़लत नतीजा निकाल लिया है कि 'जदली अमल' (Dialectical Process) इनसानी ज़िन्दगी के बढ़ने और तरक्की करने का फ़ितरी तरीक़ा है। वह अपनी बेवक़ूफ़ी से यह समझ बैठे कि इनसान की तरक़्क़ी का रास्ता यही है कि पहले एक इन्तिहा पसन्दाना (अतिवादी) दावा (Thesis) उसे एक रुख़ पर बहा ले जाए, फिर उसके जवाब में दूसरा वैसा ही इन्तिहा पसन्दाना (अतिवादी) दावा (Antitheses) उसे दूसरी इन्तिहा की तरफ़ खींचे और फिर दोनों के मिलने (Synthesis) से ज़िन्दगी की तरक़्क़ी और पलने-बढ़ने का रास्ता बने। हालाँकि असूल में यह तरक़्क़ी (पलने-बढ़ने) का रास्ता नहीं है, बल्कि बदनसीबी के धक्के हैं जो इनसानी ज़िन्दगी की सही तरक़्क़ी में बार-बार रुकावट बन रहे हैं। हर इन्तिहा पसन्दाना दावा ज़िन्दगी को उसके किसी एक पहलू की तरफ़ मोड़ता है और उसे खींचे लिए चला जाता है। यहाँ तक कि जब वह सवाउस्सबील से बहुत दूर जा पड़ती है तो ख़ुद ज़िन्दगी ही की कुछ दूसरी हक़ीक़तें, जिनके साथ बे-इनसाफ़ी हो रही थी उसके ख़िलाफ़ बग़ावत शुरू कर देती हैं और यह बग़ावत एक जवाबी दावे की शक्ल इख़्तियार करके उसे मुख़ालिफ़ रुख़ में खींचना शुरू करती है। ज्यों-ज्यों सवाउस्सबील क़रीब आती है उन बाहम टकरानेवाले दावों के बीच समझौता होने लगता है और उनके मिलाप से वे चीज़ें वुजूद में आती हैं जो इनसानी ज़िन्दगी में फ़ायदेमन्द हैं। लेकिन जब वहाँ न सवाउस्सबील के निशान दिखानेवाली रौशनी मौजूद होती है और न इस पर मज़बूती से जमे रहनेवाला ईमान, तो वह जवाबी दावा ज़िन्दगी को उस मकाम पर ठहरने नहीं देता बल्कि अपने ज़ोर में उसे दूसरी तरफ़ इन्तिहा तक

يُحَرِّفُوْنَ الْكَلِمَ عَنْ مَّوَاضِعِهٖ ۙ وَ نَسُوْا حَظًّا مِّمَّا
ذُكِّرُوْا بِهٖ ۚ وَلَا تَزَالُ تَطَّلِعُ عَلٰى خَآئِنَةٍ مِّنْهُمْ
اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْهُمْ فَاعْفُ عَنْهُمْ وَاصْفَحْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۱۳﴾ وَمِنَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّا نَصٰرٰٓى
اَخَذْنَا مِيْثَاقَهُمْ فَنَسُوْا حَظًّا مِّمَّا ذُكِّرُوْا بِهٖ ۪ فَاَغْرَيْنَا

दिए। अब उनका हाल यह है कि लफ़्ज़ों का उलट-फेर करके बात को कहीं से कहीं ले जाते हैं, जो तालीम उन्हें दी गई थी उसका बड़ा हिस्सा भूल चुके हैं, और आए दिन तुम्हें उनकी किसी न किसी ख़ियानत का पता चलता रहता है। उनमें से बहुत कम लोग इस बुराई से बचे हुए हैं। (तो जब ये इस हाल को पहुँच चुके हैं तो जो शरारतें भी ये करें उनकी तो उनसे उम्मीद ही की जानी चाहिए।) इसलिए उन्हें माफ़ करो और उनकी हरकतों को अनदेखा करते रहो, अल्लाह उन लोगों को पसन्द करता है जो एहसान का रवैया अपनाते हैं।

(14) इसी तरह हमने उन लोगों से भी पुख़्ता अहद लिया था, जिन्होंने कहा था कि हम 'नसारा' हैं,[36] मगर उनको भी जो सबक़ याद कराया गया था उसका एक बड़ा

खींचता चला जाता है, यहाँ तक कि फिर ज़िन्दगी की कुछ दूसरी हक़ीक़तों का इनकार शुरू हो जाता है। और नतीजे में एक दूसरी बग़ावत उठ खड़ी होती है। अगर उन कम नज़र फ़लसफ़ियों तक क़ुरआन की रौशनी पहुँच गई होती और उन्होंने सवाउस्सबील को देख लिया होता तो उन्हें मालूम हो जाता कि इनसान के लिए तरक़्क़ी का सही रास्ता यही 'सवाउस्सबील' है, न कि ख़ते-मुनहनी (वक्र रेखा) पर एक इन्तिहा से दूसरी इन्तिहा की तरफ़ धक्के खाते फिरना।

36. लोगों का यह ख़याल ग़लत है कि 'नसारा' का लफ़्ज़ 'नासिरा' से लिया गया है, जो मसीह *(अलै०)* का वतन था। असल में यह लफ़्ज़ 'नुसरत' से लिया गया है और इसकी बुनियाद वह क़ौल है जिसमें मसीह (अलैहि०) के सवाल, "मन अनसारी इलल्लाह" (ख़ुदा के रास्ते में कौन लोग मेरे मददगार हैं?) के जवाब में हवारियों ने कहा था कि "नहनु अनसारुल्लाह" (हम अल्लाह के काम में मददगार हैं)। ईसाई लेखकों को आम तौर से सिर्फ़ ज़ाहिरी मुशाबिहत (अनुरूपता) देखकर यह ग़लत-फ़हमी हुई कि ईसाइयत के शुरू के इतिहास में नासरिया

(Nazarenes) के नाम से जो एक फ़िरक़ा (गरोह) पाया जाता था और जिन्हें नफ़रत के साथ नासरी और ऐबूनी कहा जाता था, इन्हीं के नाम को क़ुरआन ने तमाम ईसाइयों के लिए इस्तेमाल किया है। लेकिन यहाँ क़ुरआन साफ़ कह रहा है कि उन्होंने ख़ुद कहा था कि हम 'नसारा' हैं और यह कि ईसाइयों ने अपना नाम कभी नासरी नहीं रखा।

इस सिलसिले में यह बात क़ाबिले-ज़िक्र है कि हज़रत ईसा *(अलै.)* ने अपने माननेवालों का नाम कभी 'ईसाई' या 'मसीही' नहीं रखा था, क्योंकि वे अपने नाम से किसी नए मज़हब की बुनियाद डालने नहीं आए थे। उनकी दावत उसी दीन को ताज़ा करने की तरफ़ थी, जिसे हज़रत मूसा *(अलै.)* और उनसे पहले और बाद के नबी *(अलै.)* लेकर आए थे। इसलिए उन्होंने आम बनी-इसराईल और मूसा *(अलै.)* की शरीअत पर चलनेवालों से अलग न कोई जमाअत बनाई और न अलग से कोई नाम रखा। उनके शुरू के पैरोकार ख़ुद भी न अपने आपको इसराईली मिल्लत से अलग समझते थे, न एक अलग गरोह बनकर रहे, और न उन्होंने अपने लिए कोई अलग ख़ास नाम और निशान अपनाया था। वे आम यहूदियों के साथ बैतुल-मक़दिस ही के हैकल में इबादत करने के लिए जाते थे और अपने आप को मूसवी शरीअत ही पर अमल करने का पाबन्द समझते थे। (देखें कर्मियों 1:3, 14:40, 1:15, 21:5)

आगे चलकर जुदाई का अमल दो तरफ़ से शुरू हुआ। एक तरफ़ हज़रत ईसा के पैरवी करनेवालों में से पोलूस (सेंट पॉल) ने शरीअत की पाबन्दी ख़त्म करके यह एलान कर दिया कि बस मसीह पर ईमान ले आना नजात के लिए काफ़ी है। और दूसरी तरफ़ यहूदी आलिमों ने मसीह की पैरवी करनेवालों को एक गुमराह फ़िरक़ा ठहराकर बनी-इसराईल के आम लोगों से काट दिया। लेकिन इस जुदाई के बावजूद शुरू में इस नए फ़िरक़े का कोई ख़ास नाम न था। ख़ुद मसीह के माननेवाले अपने लिए कभी 'शागिर्द' का लफ़्ज़ इस्तेमाल करते थे और कभी अपने साथियों का ज़िक्र 'भाइयों' (इख़वान) 'ईमानदारों' (मोमिनीन) जो 'ईमान लाए' (अल-लज़ी-न आमनू) और 'मुक़द्दसों' के अलफ़ाज़ से करते थे। (कर्मियों-2:44, 4:32, 9:26, 11:29, 13:52, 15:1 और 23; रोमियों 15:25; कुलस्सियों 1:2) इसके बरख़िलाफ़ यहूदी उन लोगों को कभी गलीली कहते थे और कभी 'नासिरियों का बिदअती फ़िरक़ा' कहकर पुकारते थे। (कर्मियों 24:5 और लूक़ा 13:2) यह नाम धरने की कोशिश उन्होंने तंज़ (कटाक्ष) करने के लिए इस बुनियाद पर की थी कि हज़रत ईसा *(अलै.)* का वतन नासिरा था और वे फ़िलस्तीन के ज़िला गलील में था। लेकिन ये तंज़िया (कटाक्ष के) लफ़्ज़ इस हद तक राइज न हो सके कि मसीह के माननेवालों के लिए नाम की हैसियत इख़्तियार कर जाते।

इस गरोह का मौजूदा नाम मसीही (CHRISTIAN) पहली बार सन 43 या 44 ई. में अंताकिया के मुशरिक बाशिन्दों ने रखा था, जबकि सेंट पॉल और बरनाबास ने वहाँ पहुँचकर अपने मज़हब की आम तबलीग़ शुरू की (कर्मियों 11:26)। यह नाम भी असल में हँसी और मज़ाक़ उड़ाने के तौर पर मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से रखा गया था, और मसीह के माननेवाले उसे ख़ुद अपने नाम के तौर पर क़बूल करने के लिए तैयार न थे। लेकिन जब उनके दुश्मनों ने उनको इसी नाम से पुकारना शुरू कर दिया तो उनके लीडरों ने कहा कि अगर तुम्हें मसीह की तरफ़ निस्बत देकर 'मसीही' कहा जाता है तो तुम्हें इस पर शर्माने की क्या ज़रूरत है

بَيْنَهُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَآءَ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ ۭ وَسَوْفَ
يُنَبِّئُهُمُ اللّٰهُ بِمَا كَانُوْا يَصْنَعُوْنَ ۝ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ
قَدْ جَآءَكُمْ رَسُوْلُنَا يُبَيِّنُ لَكُمْ كَثِيْرًا مِّمَّا كُنْتُمْ
تُخْفُوْنَ مِنَ الْكِتٰبِ وَيَعْفُوْا عَنْ كَثِيْرٍ ۭ قَدْ جَآءَكُمْ
مِّنَ اللّٰهِ نُوْرٌ وَّكِتٰبٌ مُّبِيْنٌ ۝ يَّهْدِيْ بِهِ اللّٰهُ

हिस्सा उन्होंने भुला दिया। आख़िरकार हमने उनके बीच क़ियामत तक के लिए दुश्मनी और आपस के हसद और बैर का बीज बो दिया और ज़रूर एक वक़्त आएगा जब अल्लाह उन्हें बताएगा कि वे दुनिया में क्या बनाते रहे हैं।

(15-16) ऐ किताबवालो, हमारा रसूल तुम्हारे पास आ गया है जो ख़ुदाई किताब की बहुत-सी उन बातों को तुम्हारे सामने खोल रहा है जिन पर तुम परदा डाला करते थे, और बहुत-सी बातों से अनदेखा भी कर जाता है।[37] तुम्हारे पास अल्लाह की तरफ़ से रौशनी आ गई है और हक़ को दिखानेवाली एक ऐसी किताब जिसके ज़रीए से अल्लाह

(1 पितरस 4:16)। इस तरह धीरे-धीरे ये लोग ख़ुद भी अपने आपको उसी नाम से जोड़ने लगे, जिससे उनके दुश्मनों ने हँसी-मज़ाक़ उड़ाने के लिए उन्हें पुकारा था, यहाँ तक कि आख़िरकार उनके अन्दर से यह एहसास ही ख़त्म हो गया कि यह अस्ल में एक बुरा नाम था जो उन्हें दिया गया था।

क़ुरआन ने इसी लिए मसीह के माननेवालों को मसीही या ईसाई के नाम से याद नहीं किया है, बल्कि उन्हें याद दिलाया है कि तुम अस्ल में उन लोगों के नामलेवा हो जिन्हें मरयम के बेटे ईसा ने पुकारा था कि 'मन अनसारी इलल्लाह' (कौन है जो अल्लाह की राह में मेरी मदद करे?) और उन्होंने जवाब दिया था कि 'नहनु अनसारुल्लाह' (हम अल्लाह की राह में मददगार हैं।) इसलिए तुम अपनी शुरुआती और बुनियादी हक़ीक़त के एतिबार से नसारा या अनसार हो। लेकिन आज ईसाई मिशनरी इस याददिहानी पर क़ुरआन का शुक्रिया अदा करने के बजाय उल्टी शिकायत कर रही है कि क़ुरआन ने उनको मसीही कहने के बजाय उनका नाम 'नसारा' क्यों रखा?

37. यानी तुम्हारी कुछ चोरियाँ और ख़ियानतें खोल देता है जिनका खोलना दीने-हक़ (सत्य-धर्म) को क़ायम करने के लिए ज़रूरी है, और कुछ को अनदेखा कर जाता है जिनको खोलने की कोई हक़ीक़ी ज़रूरत नहीं है।

مَنِ اتَّبَعَ رِضْوَانَهٗ سُبُلَ السَّلٰمِ وَ يُخْرِجُهُمْ
مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ بِاِذْنِهٖ وَيَهْدِيْهِمْ اِلٰى
صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿١٦﴾ لَقَدْ كَفَرَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ
اللّٰهَ هُوَ الْمَسِيْحُ ابْنُ مَرْيَمَ ؕ قُلْ فَمَنْ يَّمْلِكُ
مِنَ اللّٰهِ شَيْـًٔا اِنْ اَرَادَ اَنْ يُّهْلِكَ الْمَسِيْحَ ابْنَ

उन लोगों को जो उसकी ख़ुशी चाहते हैं, सलामती (शान्ति) के तरीक़े बताता है[38] और अपने हुक्म से उनको अँधेरों से निकालकर उजाले की तरफ़ लाता है और सीधे रास्ते की तरफ़ उनकी रहनुमाई करता है।

(17) यक़ीनन कुफ़्र किया उन लोगों ने जिन्होंने कहा कि मरयम का बेटा मसीह ही खुदा है।[39] ऐ नबी, इनसे कहो कि अगर ख़ुदा मरयम के बेटे मसीह को और उसकी माँ

---

38. 'सलामती' से मुराद ग़लत देखने, ग़लत सोचने और ग़लत करने से बचना और उसके नतीजों से महफ़ूज़ रहना है। जो आदमी अल्लाह की किताब और उसके रसूल की ज़िन्दगी से रौशनी हासिल करता है उसे फ़िक्रो-अमल (विचार एवं कर्म) के हर चौराहे पर यह मालूम हो जाता है कि वह किस तरह उन ग़लतियों से महफ़ूज़ रहे।

39. ईसाइयों ने शुरू में मसीह की शख़्सियत को इनसानियत और ख़ुदा का मुरक्कब (समिश्रण) क़रार देकर जो ग़लती की थी, उसका नतीजा यह हुआ कि उनके लिए मसीह की हक़ीक़त एक पहेली बनकर रह गई, जिसे उनके आलिमों ने लफ़्ज़ों के खेल और गुमान की मदद से हल करने की जितनी कोशिशें कीं उतने ही ज़्यादा उलझते चले गए। उनमें से जिसके ज़ेहन पर इस मुरक्कब शख़्सियत के इनसानी हिस्सों ने ग़लबा किया उसने मसीह के अल्लाह के बेटे होने और तीन मुस्तक़िल ख़ुदाओं में से एक होने पर ज़ोर दिया। और जिसके ज़ेहन पर ख़ुदाई हिस्से का असर ज़्यादा ग़ालिब हुआ उसने मसीह को अल्लाह का जिस्मानी ज़ुहूर क़रार देकर ऐन अल्लाह बना दिया और अल्लाह होने की हैसियत ही से मसीह की इबादत की। उनके दर्मियान बीच की राह जिन्होंने निकालनी चाही उन्होंने सारा ज़ोर ऐसे लफ़्ज़ी मतलब निकालने पर लगा दिया जिनसे मसीह को इनसान भी कहा जाता रहे और उसके साथ ख़ुदा भी समझा जा सके। ख़ुदा और मसीह अलग-अलग भी हों और फिर एक भी रहें। (देखें सूरा-4 निसा, हाशिया-212, 213 और 215)

مَرْيَمَ وَاُمَّهٗ وَمَنْ فِی الْاَرْضِ جَمِیْعًا ؕ وَ لِلّٰهِ
مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَا بَیْنَهُمَا ؕ یَخْلُقُ
مَا یَشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰی كُلِّ شَیْءٍ قَدِیْرٌ ۝۱۷ وَقَالَتِ
الْیَهُوْدُ وَالنَّصٰرٰی نَحْنُ اَبْنٰٓؤُا اللّٰهِ وَاَحِبَّآؤُهٗ ؕ قُلْ
فَلِمَ یُعَذِّبُكُمْ بِذُنُوْبِكُمْ ؕ بَلْ اَنْتُمْ بَشَرٌ مِّمَّنْ
خَلَقَ ؕ یَغْفِرُ لِمَنْ یَّشَآءُ وَیُعَذِّبُ مَنْ یَّشَآءُ ؕ وَ

और तमाम ज़मीनवालों को हलाक कर देना चाहे तो किस की मजाल है कि उसको इस इरादे से रोक सके? अल्लाह तो ज़मीन और आसमानों का और उन सब चीज़ों का मालिक है जो ज़मीन और आसमानों के बीच पाई जाती हैं, जो कुछ चाहता है पैदा करता है[40] और उसे हर चीज़ पर क़ुदरत हासिल है।

(18) यहूद और नसारा (यहूदी और ईसाई) कहते हैं कि हम अल्लाह के बेटे और उसके चहेते हैं। इनसे पूछो : फिर वह तुम्हारे गुनाहों पर तुम्हें सज़ा क्यों देता है? हक़ीक़त में तुम भी वैसे ही इनसान हो जैसे और इनसान ख़ुदा ने पैदा किए हैं। वह जिसे चाहता

---

40. इस जुमले में एक लतीफ़ (सूक्ष्म) इशारा इस तरफ़ है कि सिर्फ़ मसीह की ऐजाज़ी (चामत्कारिक) पैदाइश और उनके अख़लाक़ी कमालात और महसूस मोजिज़ों को देखकर जो लोग इस धोखे में पड़ गए कि मसीह ही ख़ुदा है, वे असल में बहुत ही नादान हैं। मसीह तो अल्लाह की तख़लीक़ के अनगिनत अजाइब (अदभुत संरचनाओं) में से सिर्फ़ एक नमूना हैं जिसे देखकर उन कमज़ोर निगाहोंवाले लोगों की निगाहें चौंधियाँ गईं। अगर इन लोगों की निगाह कुछ दूर तक देखती तो इन्हें नज़र आता कि अल्लाह ने अपनी तख़लीक़ के इससे भी ज़्यादा हैरतअंगेज़ नमूने पेश किए हैं और उसकी क़ुदरत किसी हद के अन्दर महदूद (सीमित) नहीं है। तो यह बड़ी नासमझी है कि मख़लूक़ के कमालों को देखकर उसी पर ख़ालिक़ (स्रष्टा) होने का गुमान कर लिया जाए। समझदार वे हैं जो मख़लूक़ के कमालों में ख़ालिक़ की अज़ीमुश्शान क़ुदरत के निशानों को देखते हैं और इनसे ईमान का नूर हासिल करते हैं।

لِلّٰهِ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَمَا بَيْنَهُمَا ؕ وَاِلَيْهِ
الْمَصِيْرُ ﴿۱۸﴾ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ قَدْ جَآءَكُمْ رَسُوْلُنَا
يُبَيِّنُ لَكُمْ عَلٰى فَتْرَةٍ مِّنَ الرُّسُلِ اَنْ تَقُوْلُوْا مَا
جَآءَنَا مِنْۢ بَشِيْرٍ وَّلَا نَذِيْرٍ ؗ فَقَدْ جَآءَكُمْ بَشِيْرٌ
وَّنَذِيْرٌ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِيْرٌ ﴿۱۹﴾ وَاِذْ قَالَ ع
مُوْسٰى لِقَوْمِهٖ يٰقَوْمِ اذْكُرُوْا نِعْمَةَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ

है माफ़ करता है और जिसे चाहता है सज़ा देता है, ज़मीन और आसमान और उनमें मौजूद सारी चीज़ें उसकी मिलकियत हैं और उसी की तरफ़ सबको जाना है।

(19) ऐ किताबवालो, हमारा यह रसूल ऐसे वक़्त तुम्हारे पास आया है और दीन की वाज़ेह तालीम तुम्हें दे रहा है, जबकि रसूलों के आने का सिलसिला एक मुद्दत से बन्द था, ताकि तुम यह न कह सको कि हमारे पास कोई ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला नहीं आया। तो देखो, अब वह ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला आ गया ---- और अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।[41]

(20) याद करो जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा था कि "ऐ मेरी क़ौम के लोगो, अल्लाह की उस नेमत को याद करो जो उसने तुम्हें दी थी। उसने तुममें नबी पैदा किए,

---

41. इस मौक़े पर यह जो बात कही गई है वह अपने अन्दर बड़े और असरदार मानी रखती हैं और यह निहायत लतीफ़ (सूक्ष्म) है। इसका मतलब यह भी है कि जो ख़ुदा पहले ख़ुशख़बरी देनेवाले और डरानेवाले भेजने पर क़ुदरत रखता था। उसी ने मुहम्मद *(सल्ल०)* को इस ख़िदमत पर लगाया है और वह ऐसा करने पर क़ुदरत रखता था। दूसरा मतलब यह है कि अगर तुमने इस ख़ुशख़बरी देनेवाले और डरानेवाले की बात न मानी तो याद रखो कि अल्लाह क़ुदरत रखनेवाला और तवाना (ताक़तवर) है। हर सज़ा जो वह तुम्हें देना चाहे बिना किसी की रुकावट के दे सकता है।

إِذْ جَعَلَ فِيكُمْ أَنْبِيَاءَ وَجَعَلَكُمْ مُلُوكًا ۖ وَآتَاكُمْ
مَا لَمْ يُؤْتِ أَحَدًا مِنَ الْعَالَمِينَ ۝٢٠ يَا قَوْمِ ادْخُلُوا
الْأَرْضَ الْمُقَدَّسَةَ الَّتِي كَتَبَ اللَّهُ لَكُمْ وَلَا
تَرْتَدُّوا عَلَىٰ أَدْبَارِكُمْ فَتَنْقَلِبُوا خَاسِرِينَ ۝٢١ قَالُوا
يَا مُوسَىٰ إِنَّ فِيهَا قَوْمًا جَبَّارِينَ وَإِنَّا لَنْ نَدْخُلَهَا

तुमको हाकिम बनाया और तुमको वह कुछ दिया जो दुनिया में किसी को न दिया था।[42]
(21) ऐ मेरी क़ौम के लोगो, उस मुक़द्दस सरज़मीन (पावन धरती) में दाख़िल हो जाओ
जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दी है।[43] पीछे न हटो, वरना नाकाम और नामुराद
पलटोगे।"[44] (22) उन्होंने जवाब दिया, "ऐ मूसा, वहाँ तो बड़े ज़बरदस्त लोग रहते हैं,

---

42. यह इशारा है बनी-इसराईल की उस पिछली अज़मत और बड़ाई की तरफ़ जो हज़रत मूसा से बहुत पहले किसी ज़माने में उनको हासिल थी। एक तरफ़ हज़रत इबराहीम *(अलै०)*, हज़रत इसहाक़ *(अलै०)*, हज़रत याक़ूब *(अलै०)* और हज़रत यूसुफ़ *(अलै०)* जैसे बड़े और अज़ीमुश्शान पैग़म्बर उनकी क़ौम में पैदा हुए। और दूसरी तरफ़ हज़रत यूसुफ़ *(अलै०)* के ज़माने में और उनके बाद मिस्र में उनको बड़ा इक़्तिदार नसीब हुआ। एक लम्बी मुद्दत तक वही उस ज़माने की मुहज़्ज़ब (सुसभ्य) दुनिया के सबसे बड़े हाकिम थे और उन्हीं का सिक्का मिस्र और उसके आस-पास के इलाक़े में चलता था। आम तौर से लोग बनी-इसराईल के तरक़्क़ी और ग़लबे का इतिहास हज़रत मूसा *(अलै०)* से शुरू करते हैं, लेकिन क़ुरआन इस जगह पर वाज़ेह करता है कि बनी-इसराईल की तरक़्क़ी और ग़लबे का असल ज़माना हज़रत मूसा से पहले गुज़र चुका था, जिसे ख़ुद हज़रत मूसा *(अलै०)* अपनी क़ौम के सामने उसके शानदार माज़ी (अतीत) की हैसियत से पेश करते थे।

43. इससे मुराद फ़लस्तीन की सरज़मीन है जो हज़रत इबराहीम *(अलै०)*, इसहाक़ *(अलै०)* और याक़ूब *(अलै०)* की क़ियामगाह रह चुकी थी। बनी-इसराईल जब मिस्र से निकल आए तो इसी सरज़मीन को अल्लाह ने उनके लिए नामज़द किया और हुक्म दिया कि जाकर उसे फ़तह कर लो।

44. हज़रत मूसा *(अलै०)* की यह तक़रीर उस मौक़े की है जबकि मिस्र से निकलने के क़रीब दो साल के बाद वे अपनी क़ौम को लिए हुए फ़ारान के जंगल में पड़ाव डाले हुए थे। यह जंगल जज़ीरा नुमाए-सीना (सीना प्रायद्वीप) में अरब की उत्तरी और फ़लस्तीन की दक्षिणी सरहद से मिला हुआ है।

حَتّٰى يَخْرُجُوْا مِنْهَا ۚ فَاِنْ يَّخْرُجُوْا مِنْهَا فَاِنَّا
دٰخِلُوْنَ ۝٢٢ قَالَ رَجُلٰنِ مِنَ الَّذِيْنَ يَخَافُوْنَ اَنْعَمَ
اللّٰهُ عَلَيْهِمَا ادْخُلُوْا عَلَيْهِمُ الْبَابَ ۚ فَاِذَا دَخَلْتُمُوْهُ
فَاِنَّكُمْ غٰلِبُوْنَ ۚ وَعَلَى اللّٰهِ فَتَوَكَّلُوْٓا اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِيْنَ ۝٢٣ قَالُوْا يٰمُوْسٰٓى اِنَّا لَنْ نَّدْخُلَهَآ اَبَدًا
مَّا دَامُوْا فِيْهَا فَاذْهَبْ اَنْتَ وَرَبُّكَ فَقَاتِلَآ اِنَّا
هٰهُنَا قٰعِدُوْنَ ۝٢٤ قَالَ رَبِّ اِنِّيْ لَآ اَمْلِكُ اِلَّا
نَفْسِيْ وَاَخِيْ فَافْرُقْ بَيْنَنَا وَبَيْنَ الْقَوْمِ الْفٰسِقِيْنَ ۝٢٥

हम वहाँ हरगिज़ न जाएँगे, जब तक वे वहाँ से निकल न जाएँ। हाँ, अगर वे निकल गए तो हम दाख़िल होने के लिए तैयार हैं।'' (23) उन डरनेवालों में दो लोग ऐसे भी थे[45] जिनको अल्लाह ने अपनी नेमत से नवाज़ा था। उन्होंने कहा कि ''इन जब्र करनेवालों (दमनकारियों) के मुक़ाबले में दरवाज़े के अन्दर घुस जाओ, जब तुम अन्दर पहुँच जाओगे तो तुम ही ग़ालिब रहोगे, अल्लाह पर भरोसा रखो, अगर तुम ईमानवाले हो।'' (24) लेकिन उन्होंने फिर यही कहा कि ''ऐ मूसा हम तो वहाँ कभी न जाएँगे जब तक कि वे वहाँ मौजूद हैं। बस तुम और तुम्हारा रब, दोनों जाओ और लड़ो, हम यहाँ बैठे हैं।'' (25) इस पर मूसा ने कहा, ''ऐ मेरे रब, मेरे इख़्तियार में कोई नहीं, मगर मेरी अपनी ज़ात या मेरा भाई। तो तू हमें इन नाफ़रमान लोगों से अलग कर दे।''

---

45. आयत के (जुमले के) दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि जो लोग जब्बारों (दमनकारियों) से डर रहे थे, उनके दर्मियान से दो आदमी बोल उठे। दूसरा यह कि जो लोग ख़ुदा से डरनेवाले थे उनमें से दो आदमियों ने यह बात कही।

قَالَ فَإِنَّهَا مُحَرَّمَةٌ عَلَيْهِمْ أَرْبَعِينَ سَنَةً ۚ
يَتِيهُونَ فِي الْأَرْضِ ۚ فَلَا تَأْسَ عَلَى الْقَوْمِ
الْفَاسِقِينَ ﴿٢٦﴾ وَاتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَأَ ابْنَيْ آدَمَ بِالْحَقِّ

(26) अल्लाह ने जवाब दिया, "अच्छा तो वह मुल्क चालीस साल तक इन पर हराम है। ये ज़मीन में मारे-मारे फिरेंगे।[46] इन नाफ़रमानों की हालत पर हरगिज़ तरस न खाओ।"[47]

(27) और ज़रा इन्हें आदम के दो बेटों का क़िस्सा भी ठीक-ठीक (बेघटाए-बढ़ाए)

46. इस क़िस्से की तफ़सील बाइबल की किताब गिनती, व्यवस्थाविवरण और यशायाह में मिलेगी। ख़ुलासा इसका यह है कि हज़रत मूसा *(अलै.)* ने फ़ारान जंगल से बनी-इसराईल के 12 सरदारों को फ़लस्तीन का दौरा करने के लिए भेजा, ताकि वहाँ के हालात मालूम करके आएँ। ये लोग चालीस दिन दौरा करके वहाँ से वापस आए और उन्होंने क़ौम के आम मजमे (सभा) में बयान किया कि "हक़ीक़त में वहाँ दूध और शहद की नहरें बहती हैं। लेकिन जो लोग वहाँ बसे हुए हैं वे ज़ोरावर (प्रबल एवं विशालकाय) हैं....... हम इस लायक़ नहीं हैं कि उन लोगों पर हमला करें..... वहाँ जितने आदमी हमने देखे वे सब बड़े डील-डोलवाले हैं और हमने वहाँ बनी-उनाक़ को भी देखा जो जब्बार (दमनकारी) हैं और जब्बारों की नस्ल से हैं, और हम तो अपनी ही निगाह में ऐसे थे जैसे टिड्डे होते हैं और ऐसे ही उनकी निगाह में थे।" यह बयान सुनकर सारी भीड़ चीख़ उठी कि "ऐ काश! हम मिस्र ही में मर जाते! या काश! इस बयाबान ही में मरते! ख़ुदावन्द, क्यों हमको उस मुल्क में ले जाकर तलवार से क़त्ल कराना चाहता है? फिर तो हमारी बीवियाँ और बाल-बच्चे लूट का माल ठहरेंगे। क्या हमारे लिए बेहतर न होगा कि हम मिस्र को वापस चले जाएँ।" फिर वे आपस में कहने लगे कि आओ हम किसी को अपना सरदार बना लें और मिस्र को लौट चलें। इस पर उन बारह सरदारों में से जो फ़लस्तीन के दौरे पर भेजे गए थे, दो सरदार, यूशअ और कालिब उठे और उन्होंने इस बुज़दिली पर क़ौम को मलामत की। कालिब ने कहा, "चलो हम एकदम जाकर उस देश पर क़ब्ज़ा कर लें, क्योंकि हम इस क़ाबिल हैं कि इस पर हुकूमत करें।" फिर दोनों ने एक ज़बान होकर कहा, "अगर ख़ुदा हमसे राज़ी रहे तो वह हमको उस मुल्क तक पहुँचाएगा...... बस इतना हो कि तुम ख़ुदावन्द से बग़ावत न करो और न इस मुल्क के लोगों से डरो........ और हमारे साथ ख़ुदावन्द है। सो उनका डर न रखो।" मगर क़ौम ने उसका जवाब यह दिया कि "उन्हें संगसार (पत्थर मार-मारकर हलाक) कर दो।" आख़िरकार अल्लाह का ग़ज़ब भड़का और उसने फ़ैसला किया कि अच्छा अब यूशअ और कालिब के सिवा उस क़ौम के बालिग़ मर्दों में से कोई भी उस सरज़मीन में दाख़िल न होने पाएगा। यह क़ौम चालीस सालों तक बेघर दर-दर भटकती फिरेगी। यहाँ तक कि जब उनमें से

إِذْ قَرَّبَا قُرْبَانًا فَتُقُبِّلَ مِنْ أَحَدِهِمَا وَلَمْ يُتَقَبَّلْ
مِنَ الْآخَرِ قَالَ لَأَقْتُلَنَّكَ ۖ قَالَ إِنَّمَا يَتَقَبَّلُ
اللَّهُ مِنَ الْمُتَّقِينَ ﴿٢٧﴾ لَئِن بَسَطتَ إِلَيَّ يَدَكَ
لِتَقْتُلَنِي مَا أَنَا بِبَاسِطٍ يَدِيَ إِلَيْكَ لِأَقْتُلَكَ ۖ

सुना दो। जब उन दोनों ने क़ुरबानी की तो उनमें से एक की क़ुरबानी क़बूल की गई और दूसरे की न की गई। उसने कहा, "मैं तुझे मार डालूँगा।" उसने जवाब दिया, "अल्लाह तो परहेज़गारों ही की नज़्रें क़बूल करता है।[48] (28) अगर तू मुझे क़त्ल करने के लिए हाथ उठाएगा तो मैं तुझे क़त्ल करने के लिए हाथ न उठाऊँगा।[49]

---

20 साल से ऊपर की उम्र तक के सब मर्द मर जाएँगे और नई नस्ल जवान होकर उठेगी तब उन्हें फ़लस्तीन फ़तह करने का मौक़ा दिया जाएगा। चुनाँचे अल्लाह के इस फ़ैसले के मुताबिक़ बनी-इसराईल को फ़ारान जंगल से पूर्वी जार्डन तक पहुँचते-पहुँचते पूरे 38 साल लग गए। इस दौरान में वे सब लोग मर-खप गए जो जवानी की उम्र में मिस्र से निकले थे। पूर्वी जार्डन फ़तह करने के बाद हज़रत मूसा *(अलै०)* का भी इन्तिक़ाल हो गया। उसके बाद हज़रत यूशअ-बिन-नून की ख़िलाफ़त (शासन) के दौर में बनी-इसराईल इस क़ाबिल हुए कि वे फ़लस्तीन फ़तह कर सकें।

47. बयान के सिलसिले पर ग़ौर करने से यहाँ इस वाक़िए का हवाला देने का मक़सद साफ़-साफ़ समझ में आ जाता है। क़िस्से के अन्दाज़ में असल में बनी-इसराईल को यह जताना मक़सद है कि मूसा के ज़माने में नाफ़रमानी, मुँह मोड़कर और पस्तहिम्मती से काम लेकर जो सज़ा तुमने पाई थी, अब उससे बहुत ज़्यादा सख़्त सज़ा मुहम्मद *(सल्ल०)* के मुक़ाबले में बाग़ियाना रवैया अपनाकर पाओगे।

48. यानी तेरी क़ुरबानी अगर क़बूल नहीं हुई तो यह मेरे किसी क़सूर की वजह से नहीं है, बल्कि उस वजह से है कि तुझ में तक़वा (ख़ुदा का डर और परहेज़गारी) नहीं है। इसलिए मेरी जान लेने के बजाय तुझको अपने अन्दर तक़वा (ख़ुदा का डर और परहेज़गारी) पैदा करने की फ़िक्र करनी चाहिए।

49. इसका यह मतलब नहीं है कि अगर तू मुझे क़त्ल करने के लिए आएगा तो मैं हाथ बाँधकर तेरे सामने क़त्ल होने के लिए बैठ जाऊँगा और बचाव नहीं करूँगा, बल्कि इसका मतलब यह है कि तू मेरे क़त्ल के लिए आमादा होता है तो हो, मैं तेरे क़त्ल के लिए आमादा नहीं हूँगा। तू मेरे क़त्ल की तदबीर में लगना चाहे है तो तुझे इख़्तियार है, लेकिन मैं यह जानने के बाद भी

إِنِّيٓ أَخَافُ ٱللَّهَ رَبَّ ٱلْعَٰلَمِينَ ۝٢٨ إِنِّيٓ أُرِيدُ
أَن تَبُوٓأَ بِإِثْمِى وَإِثْمِكَ فَتَكُونَ مِنْ أَصْحَٰبِ
ٱلنَّارِ ۚ وَذَٰلِكَ جَزَٰٓؤُا۟ ٱلظَّٰلِمِينَ ۝٢٩ فَطَوَّعَتْ لَهُۥ
نَفْسُهُۥ قَتْلَ أَخِيهِ فَقَتَلَهُۥ فَأَصْبَحَ مِنَ ٱلْخَٰسِرِينَ ۝٣٠
فَبَعَثَ ٱللَّهُ غُرَابًا يَبْحَثُ فِى ٱلْأَرْضِ لِيُرِيَهُۥ
كَيْفَ يُوَٰرِى سَوْءَةَ أَخِيهِ ۚ قَالَ يَٰوَيْلَتَىٰٓ أَعَجَزْتُ
أَنْ أَكُونَ مِثْلَ هَٰذَا ٱلْغُرَابِ فَأُوَٰرِىَ سَوْءَةَ

मैं अल्लाह से जो सारे जहान का रब है, डरता हूँ। (29) मैं चाहता हूँ कि मेरा और अपना गुनाह तू ही समेट ले[50] और दोज़ख़ी बनकर रहे। ज़ालिमों के ज़ुल्म का यही ठीक बदला है।" (30) आख़िरकार उसके नफ़्स (मन) ने अपने भाई का क़त्ल उसके लिए आसान कर दिया और वह उसे मारकर उन लोगों में शामिल हो गया जो नुक़सान उठानेवाले हैं। (31) फिर अल्लाह ने एक कौआ भेजा, जो ज़मीन खोदने लगा ताकि उसे बताए कि अपने भाई की लाश कैसे छिपाए। यह देखकर वह बोला, "अफ़सोस मुझ पर! मैं इस कौए जैसा भी न हो सका कि अपने भाई की लाश छिपाने की तदबीर निकाल

कि तू मेरे क़त्ल की तैयारियाँ कर रहा है, यह कोशिश न करूँगा कि पहले मैं ही तुझे मार डालूँ। यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिए कि किसी आदमी का अपने आपको ख़ुद क़ातिल के आगे पेश कर देना और ज़ालिमाना हमले से बचाव न करना कोई नेकी नहीं है। अलबत्ता नेकी यह है कि अगर कोई आदमी मेरे क़त्ल पर आमादा हो और मैं जानता हूँ कि वह मेरी घात में लगा हुआ है, तब भी मैं उसके क़त्ल की फ़िक्र न करूँ और उसी बात को तरजीह (प्राथमिकता) दूँ कि ज़ालिमाना क़दम उसकी तरफ़ से उठाया जाए, न कि मेरी तरफ़ से। यही मतलब था इस बात का जो आदम (अलै.) के उस नेक बेटे ने कही।

50. यानी बजाय इसके कि एक-दूसरे के क़त्ल की कोशिश में हम दोनों गुनाहगार हों, मैं इसको ज़्यादा बेहतर समझता हूँ कि दोनों का गुनाह अकेले तेरे ही हिस्से में आ जाए। तेरे अपने क़ातिलाना क़दम उठाने का गुनाह भी और उस नुक़सान का गुनाह भी जो अपनी जान बचाने की कोशिश करते हुए मेरे हाथ से तुझे पहुँच जाए।

أَخِيْ ۚ فَأَصْبَحَ مِنَ النّٰدِمِيْنَ ۝٣١ مِنْ أَجْلِ ذٰلِكَ ۚ كَتَبْنَا عَلٰى بَنِيْٓ إِسْرَآءِيْلَ أَنَّهٗ مَنْ قَتَلَ نَفْسًا

लेता।''[51] इसके बाद वह अपने किए पर बहुत पछताया।[52]

(32) इसी वजह से बनी-इसराईल पर हमने यह फ़रमान लिख दिया था[53] कि ''जिसने किसी इनसान को ख़ून के बदले या ज़मीन में फ़साद फैलाने के सिवा किसी और

---

51. इस तरह अल्लाह ने एक कौए के ज़रीए से आदम के उस ग़लतकार बेटे को उसकी जहालत और नादानी पर ख़बरदार किया और जब एक बार उसको अपने मन की तरफ़ तवज्जोह करने का मौक़ा मिल गया तो उसकी शर्मिन्दगी सिर्फ़ इसी बात तक महदूद न रही कि वह लाश छिपाने की तदबीर निकालने में कौए से पीछे क्यों रह गया, बल्कि उसको यह भी एहसास होने लगा कि उसने अपने भाई को क़त्ल करके कितनी बड़ी जिहालत का सुबूत दिया है। बाद का जुमला कि वह अपने किए पर पछताया, इसी मतलब की दलील बनता है।

52. यहाँ इस वाक़िए को बयान करने का मक़सद यहूदियों को उनकी उस साज़िश पर लतीफ़ (सूक्ष्म) तरीक़े से मलामत करना है जो उन्होंने नबी *(सल्ल०)* और आपके जलीलुल-क़द्र (महान) सहाबियों को क़त्ल करने के लिए की थी। (देखें इसी सूरा का हाशिया-30) ये दोनों वाक़िआत कितने मिलते-जुलते हैं यह बात बिलकुल वाज़ेह है। यह बात कि अल्लाह ने अरब के जलीलुल-क़द्र (महान) उम्मियों को अपने पैग़ाम के लिए चुन लिया और उन पुराने अहले-किताब को रद्द कर दिया, सरासर इस बुनियाद पर थी कि एक तरफ़ तक़वा (ईशपरायणता) था और दूसरी तरफ़ तक़वा नहीं था। लेकिन बजाय इसके कि वे लोग जिन्हें रद्द किया गया था, इस बात पर ग़ौर करते कि उन्हें किस वजह से नज़र-अन्दाज़ कर दिया गया और उस ग़लती को दूर करने के लिए आमादा होते जिसकी वजह से वे रद्द किए गए थे। उन पर ठीक उसी जाहिलियत का दौरा पड़ गया जिसमें आदम *(अलै०)* का वह ग़लतकार बेटा गिरफ़्तार था, और उसी की तरह वे उन लोगों के क़त्ल पर आमादा हो गए जिन्हें ख़ुदा ने अपने पैग़ाम के लिए चुन लिया था। हालाँकि ज़ाहिर था कि ऐसी जाहिलाना हरकतों से वे ख़ुदा के महबूब नहीं हो सकते थे, बल्कि ये करतूत उन्हें और ज़्यादा मरदूद (तिरस्कृत) बना देनेवाले थे।

53. यानी चूँकि बनी-इसराईल के अन्दर उन्हीं सिफ़ात के आसार पाए जाते थे जिनका इज़हार आदम के उस ज़ालिम बेटे ने किया था, इसलिए अल्लाह ने उनको किसी इनसान के क़त्ल से बाज़ रहने की सख़्त ताकीद की थी और अपने फ़रमान में ये बातें लिखी थीं। अफ़सोस है कि आज जो बाइबल पाई जाती है वह ख़ुदा के फ़रमान के इन क़ीमती अलफ़ाज़ से ख़ाली है। अलबत्ता तलमूद में यह मज़मून (विषय) इस तरह बयान हुआ है, ''जिसने इसराईल की एक जान को हलाक किया, अल्लाह की किताब की नज़र में उसने मानो सारी दुनिया को हलाक किया और जिसने इसराईल की एक जान को महफ़ूज़ रखा, अल्लाह की किताब के नज़दीक

بِغَيْرِ نَفْسٍ اَوْ فَسَادٍ فِي الْاَرْضِ فَكَاَنَّمَا قَتَلَ
النَّاسَ جَمِيْعًا ۭ وَمَنْ اَحْيَاهَا فَكَاَنَّمَآ اَحْيَا
النَّاسَ جَمِيْعًا ۭ وَلَقَدْ جَاۗءَتْهُمْ رُسُلُنَا بِالْبَيِّنٰتِ ۡ
ثُمَّ اِنَّ كَثِيْرًا مِّنْهُمْ بَعْدَ ذٰلِكَ فِي الْاَرْضِ
لَمُسْرِفُوْنَ ۝ اِنَّمَا جَزٰۗؤُا الَّذِيْنَ يُحَارِبُوْنَ اللّٰهَ
وَرَسُوْلَهٗ وَيَسْعَوْنَ فِي الْاَرْضِ فَسَادًا اَنْ يُّقَتَّلُوْٓا

वजह से क़त्ल किया, उसने मानो तमाम इनसानों को क़त्ल कर दिया और जिसने किसी की जान बचाई उसने मानो तमाम इनसानों को ज़िन्दगी बख़्श दी।''[54] मगर उनका हाल यह है कि हमारे रसूल एक के बाद एक उनके पास खुली-खुली हिदायतें लेकर आए, फिर भी उनमें से बहुत-से लोग ज़मीन में ज़्यादतियाँ करनेवाले हैं।

(33) जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और ज़मीन में इसलिए भाग-

---

मानो उसने सारी दुनिया की हिफ़ाज़त की।'' इसी तरह तलमूद में यह भी बयान हुआ है कि क़त्ल के मुक़द्दमों में बनी-इसराईल के क़ाज़ी (जज) गवाहों को ख़िताब करके कहा करते थे कि ''जो आदमी एक इनसान की जान हलाक करता है, वह ऐसी पूछगछ के लायक़ है कि मानो उसने दुनिया भर के इनसानों को क़त्ल किया है।''

54. मतलब यह है कि दुनिया में इनसानी ज़िन्दगी के बाक़ी रहने का दारोमदार इस बात पर है कि हर इनसान के दिल में दूसरे इनसानों की जान का एहतिराम मौजूद हो और हर एक दूसरे की ज़िन्दगी को बाक़ी रखने और उसकी हिफ़ाज़त करने में मददगार बनने का जज़्बा (भावना) रखता हो। जो आदमी नाहक़ किसी की जान लेता है वह सिर्फ़ एक ही आदमी पर ज़ुल्म नहीं करता बल्कि यह भी साबित करता है कि उसका दिल इनसान की ज़िन्दगी के एहतिराम से और लोगों की हमदर्दी के जज़्बे से ख़ाली है; इसलिए वह पूरी इनसानियत का दुश्मन है, क्योंकि उसके अन्दर वह सिफ़त पाई जाती है जो अगर तमाम इनसानों में पाई जाए तो पूरी इनसानियत का ख़ात्मा हो जाए। इसके बरख़िलाफ़ जो आदमी इनसान की ज़िन्दगी के बाक़ी रखने में मदद करता है वह असल में इनसानियत का हिमायती है, क्योंकि उसमें वह सिफ़त पाई जाती है जिस पर इनसानियत के बाक़ी रहने का दारोमदार है।

أَوْ يُصَلَّبُوٓا أَوْ تُقَطَّعَ أَيْدِيهِمْ وَأَرْجُلُهُم مِّنْ
خِلَٰفٍ أَوْ يُنفَوْا مِنَ ٱلْأَرْضِ ۚ ذَٰلِكَ لَهُمْ
خِزْىٌ فِى ٱلدُّنْيَا ۖ وَلَهُمْ فِى ٱلْءَاخِرَةِ عَذَابٌ
عَظِيمٌ ﴿٣٣﴾ إِلَّا ٱلَّذِينَ تَابُوا۟ مِن قَبْلِ أَن تَقْدِرُوا۟

दौड़ करते-फिरते हैं कि फ़साद फैलाएँ[55] उनकी सज़ा यह है कि क़त्ल किए जाएँ या सूली पर चढ़ाए जाएँ या उनके हाथ और पाँव मुख़ालिफ़ सम्तों से काट डाले जाएँ या वे वतन से निकाल दिए जाएँ।[56] यह ज़िल्लत और रुसवाई तो उनके लिए दुनिया में है और आख़िरत में उनके लिए इससे बड़ी सज़ा है। (34) मगर जो लोग तौबा कर लें, इससे

55. ज़मीन से मुराद यहाँ वह मुल्क या वह इलाक़ा है जिसमें अमून और इन्तिज़ाम क़ायम करने की ज़िम्मेदारी इस्लामी हुकूमत ने ले रखी हो। और ख़ुदा और रसूल से लड़ने का मतलब उस सालेह निज़ाम (कल्याणकारी व्यवस्था) के ख़िलाफ़ जंग करना है जो इस्लाम की हुकूमत ने मुल्क में क़ायम कर रखा हो। अल्लाह की मर्ज़ी यह है और इसी के लिए उसने अपना रसूल भेजा था कि ज़मीन में एक ऐसा सालेह निज़ाम क़ायम हो जो इनसान और हैवान और पेड़ और हर उस चीज़ को जो ज़मीन पर है, अमून बख़्शे; जिसके तहत इनसानियत अपनी फ़ितरत के उस कमाल तक पहुँच सके जो उसका मक़सद है। जिसके तहत ज़मीन के वसाइल (संसाधन) इस तरह इस्तेमाल किए जाएँ कि वे इनसान की तरक़्क़ी में मददगार हों, न कि उसकी तबाही और बरबादी में। ऐसा निज़ाम जब किसी सरज़मीन पर क़ायम हो जाए तो उसको ख़राब करने की कोशिश करना असल में ख़ुदा और उसके रसूल के ख़िलाफ़ जंग करना है, चाहे यह कोशिश छोटे पैमाने पर क़त्ल व ख़ून-ख़राबा और रहज़नी और डकैती की हद तक हो या बड़े पैमाने पर एक सालेह निज़ाम को उलटने और उसकी जगह कोई बुराइयों और फ़सादवाला निज़ाम क़ायम कर देने के लिए, असल में वह ख़ुदा और उसके ख़िलाफ़ जंग है। यह ऐसा ही है जैसे ताज़ीराते-हिन्द (भारतीय दण्ड-संहिता) में हर उस आदमी को, जो भारत की अंग्रेज़ी हुकूमत का तख़्ता उलटने की कोशिश करे, "बादशाह के ख़िलाफ़ लड़ाई" (Waging war against the King) का मुजरिम क़रार दिया गया। चाहे उसकी कार्रवाई मुल्क के किसी दूर-दराज़ इलाक़े में एक मामूली सिपाही के ख़िलाफ़ ही क्यों न हो और बादशाह उसकी पहुँच से कितना ही दूर हो।

56. ये मुख़्तलिफ़ सज़ाएँ मुख़्तसर तौर पर बयान कर दी गई हैं, ताकि क़ाज़ी (जज) या उस वक़्त का हाकिम अपनी तहक़ीक़ और सूझ-बूझ से हर मुजरिम को उसके जुर्म की नौइयत (प्रकार) के मुताबिक़ सज़ा दे। असल मक़सद यह ज़ाहिर करना है कि किसी आदमी का इस्लामी हुकूमत के

عَلَيْهِمْ ۚ فَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٣٤﴾ يٰٓاَيُّهَا
الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَابْتَغُوْٓا اِلَيْهِ الْوَسِيْلَةَ
وَجَاهِدُوْا فِيْ سَبِيْلِهٖ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿٣٥﴾ اِنَّ
الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَوْ اَنَّ لَهُمْ مَّا فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا

पहले कि तुम उन पर क़ाबू पाओ—तुम्हें मालूम होना चाहिए कि अल्लाह माफ़ करनेवाला और रहम फ़रमानेवाला है।[57]

(35) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह से डरो और उसके क़रीब होने का ज़रीआ तलाश करो[58] और उसकी राह में जिद्दोजुहद करो[59], शायद कि तुम्हें कामयाबी नसीब हो जाए। (36) ख़ूब जान लो कि जिन लोगों ने कुफ़्र (इनकार) का रवैया अपनाया है अगर

अन्दर रहते हुए इस्लामी निज़ाम को उलटने की कोशिश करना बदतरीन जुर्म है और उसे इन सख़्त सज़ाओं में से कोई सज़ा दी जा सकती है।

57. यानी अगर वे फ़साद की कोशिशों से रुक गए हों, सालेह और अच्छे निज़ाम को दरहम-बरहम करने या उलटने की कोशिश छोड़ चुके हों और उनका बाद का रवैया यह साबित कर रहा हो कि वे अम्नपसन्द, क़ानून की पाबन्दी करनेवाले और नेक चलन इनसान बन चुके हैं और इसके बाद उनके पिछले जुर्मों का पता चले तो उन सज़ाओं में से कोई सज़ा उनको न दी जाएगी जो ऊपर बयान हुई हैं। अलबत्ता आदमियों के हक़ों और अधिकारों पर अगर कोई दस्तदराज़ी उन्होंने की थी तो उसकी ज़िम्मेदारी उन पर से ख़त्म न होगी। जैसे अगर किसी इनसान को उन्होंने क़त्ल किया था या किसी का माल लिया था या कोई और जुर्म इनसानी जान और माल के ख़िलाफ़ किया था तो उसी जुर्म के बारे में फ़ौजदारी मुक़द्दमा उनपर क़ायम किया जाएगा, लेकिन बग़ावत और ग़द्दारी और ख़ुदा और रसूल के ख़िलाफ़ जंग का कोई मुक़द्दमा न चलाया जाएगा।

58. यानी हर उस ज़रीए के तालिब और खोजी रहो जिससे तुम अल्लाह का तक़र्रुब (सामीप्य) हासिल कर सको और उसकी रिज़ा (प्रसन्नता) को पहुँच सको।

59. मूल अरबी में लफ़्ज़ 'जाहिदू' इस्तेमाल किया गया है जिसका मतलब सिर्फ़ 'जिद्दोजुहद' से पूरी तरह वाज़ेह नहीं होता। अरबी में 'मुजाहिदे' का लफ़्ज़ मुक़ाबले का तक़ाज़ा करता है और इसका सही मतलब यह है कि जो ताक़तें अल्लाह की राह में रुकावट हैं, जो तुमको ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ चलने से रोकती और उसकी राह से हटाने की कोशिश करती हैं, जो तुमको पूरी तरह

وَّمِثۡلَهٗ مَعَهٗ لِيَفۡتَدُوۡا بِهٖ مِنۡ عَذَابِ يَوۡمِ الۡقِيٰمَةِ
مَا تُقُبِّلَ مِنۡهُمۡ‌ۚ وَلَهُمۡ عَذَابٌ اَلِيۡمٌ ۝٣٧ يُرِيۡدُوۡنَ
اَنۡ يَّخۡرُجُوۡا مِنَ النَّارِ وَمَا هُمۡ بِخٰرِجِيۡنَ مِنۡهَا‌ۖ
وَلَهُمۡ عَذَابٌ مُّقِيۡمٌ ۝٣٨ وَالسَّارِقُ وَالسَّارِقَةُ

उनके क़ब्ज़े में सारी ज़मीन की दौलत हो और उतनी ही और उसके साथ, और वे चाहें कि उसे फ़िदये (बदले) में देकर क़ियामत के दिन के अज़ाब से बच जाएँ, तब भी वह उनसे क़बूल न की जाएगी और उन्हें दर्दनाक सज़ा मिलकर रहेगी। (37) वे चाहेंगे कि दोज़ख़ की आग से निकल भागें, मगर निकल न सकेंगे और उन्हें क़ायम (स्थिर) रहनेवाला अज़ाब दिया जाएगा।

ख़ुदा का बन्दा बनकर नहीं रहने देतीं और तुम्हें अपना या किसी ग़ैरुल्लाह का बन्दा बनने पर मजबूर करती हैं, उनके ख़िलाफ़ अपनी तमाम मुमकिन ताक़तों से कश-म-कश और जिद्दोजुहद करो। इसी जिद्दोजुहद पर तुम्हारी कामयाबी का और ख़ुदा से तुम्हारे क़रीब होने का दारोमदार है।

इस तरह यह आयत एक मोमिन बन्दे को हर मोर्चे पर चौमुखी लड़ाई लड़ने की हिदायत करती है। एक तरफ़ लानतज़दा इबलीस और उसका शैतानी लश्कर है। दूसरी तरफ़ आदमी का अपना मन और उसकी सरकश ख़ाहिशें हैं। तीसरी तरफ़ ख़ुदा से फिरे हुए बहुत-से इनसान हैं जिनके साथ आदमी हर तरह के समाजी, तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और मआशी (आर्थिक) ताल्लुक़ात में बँधा हुआ है। चौथी तरफ़ वे ग़लत मज़हबी, तमद्दुनी और सियासी निज़ाम हैं जो ख़ुदा से बग़ावत पर क़ायम हुए हैं और हक़ की बन्दगी के बजाय बातिल की बन्दगी पर इनसान को मजबूर करते हैं। इन सबकी चालें अलग-अलग हैं मगर सबकी एक ही कोशिश है कि आदमी को ख़ुदा के बजाय अपना फ़रमाँबरदार बनाएँ। इसके बरख़िलाफ़ आदमी की तरक़्क़ी का और ख़ुदा के क़रीब होने के मक़ाम तक उसके उरूज (उत्थान) का दारोमदार पूरे तौर पर इस बात पर है कि वह सरासर अल्लाह का फ़रमाँबरदार और बातिन से लेकर ज़ाहिर तक ख़ालिस तौर पर अल्लाह का बन्दा बन जाए। इसलिए अपने मक़सद तक उसका पहुँचना इसके बिना मुमकिन नहीं है कि वह इन तमाम रोक और रुकावट बननेवाली ताक़तों के ख़िलाफ़ एक साथ जंग करे, हर वक़्त हर हाल में उनसे कश-म-कश करता रहे और उन सारी रुकावटों को रौंदता हुआ ख़ुदा की राह में बढ़ता चला जाए।

فَاقْطَعُوْٓا اَيْدِيَهُمَا جَزَآءًۢ بِمَا كَسَبَا نَكَالًا مِّنَ
اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝٣٨ فَمَنْ تَابَ مِنْۢ بَعْدِ
ظُلْمِهٖ وَاَصْلَحَ فَاِنَّ اللّٰهَ يَتُوْبُ عَلَيْهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ

(38) और चोर, चाहे औरत हो या मर्द, दोनों के हाथ काट दो[60] यह उनकी कमाई का बदला है और अल्लाह की तरफ़ से इबरतनाक (शिक्षाप्रद) सज़ा। अल्लाह की क़ुदरत सब पर ग़ालिब है और वह सब कुछ जानता और सुननेवाला है। (39) फिर जो ज़ुल्म करने के बाद तौबा करे और अपना सुधार कर ले तो अल्लाह की नज़रे-इनायत

60. दोनों हाथ नहीं, बल्कि एक हाथ। और उम्मत का इस पर भी इत्तिफ़ाक़ है कि पहली चोरी पर दायाँ हाथ काटा जाएगा।

नबी *(सल्ल०)* ने बताया है कि ख़ियानत करनेवाले पर हाथ काटने की सज़ा लागू नहीं होगी, इससे मालूम हुआ कि चोरी में ख़ियानत वग़ैरा शामिल नहीं हैं, बल्कि चोरी यह है कि आदमी किसी के माल को उसकी हिफ़ाज़त से निकालकर अपने क़ब्ज़े में ले ले।

फिर नबी *(सल्ल०)* ने यह हिदायत भी की है कि एक ढाल की क़ीमत से कम की चोरी में हाथ न काटा जाए। एक ढाल की क़ीमत नबी *(सल्ल०)* के ज़माने में अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* की रिवायत के मुताबिक़ दस दिरहम, हज़रत इब्ने-उमर की रिवायत के मुताबिक़ तीन दिरहम, अनस-बिन-मालिक *(रज़ि.)* की रिवायत के मुताबिक़ पाँच दिरहम और हज़रत आइशा *(रज़ि.)* की रिवायत के मुताबिक़ एक चौथाई दीनार होती थी। इसी इख़्तिलाफ़ की बुनियाद पर फ़ुक़हा (इस्लामी धर्मशास्त्रियों) के बीच चोरी के निसाब (कम-से-कम निर्धारित मात्रा) में इख़्तिलाफ़ हुआ है। इमाम अबू-हनीफ़ा के नज़दीक चोरी का निसाब दस दिरहम है और इमाम मालिक, शाफ़ई और अहमद-बिन-हम्बल (रह॰) के नज़दीक चौथाई दीनार है। (उस ज़माने के दिरहम में तीन माशा $1^1/_5$ रत्ती चाँदी होती थी। और एक चौथाई दीनार 3 दिरहम के बराबर था।)

फिर बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जिनकी चोरी में हाथ काटने की सज़ा न दी जाएगी। मिसाल के तौर पर नबी *(सल्ल०)* की हिदायत है कि फल और तरकारी की चोरी में हाथ न काटा जाएगा। और खाने की चोरी में हाथ काटने की सज़ा नहीं है। और हज़रत आइशा *(रज़ि.)* की हदीस है कि 'मामूली चीज़ों की चोरी में नबी *(सल्ल०)* के ज़माने में हाथ नहीं काटा जाता था।' हज़रत अली *(रज़ि०)* और हज़रत उसमान *(रज़ि.)* का फ़ैसला है और सहाबा *(रज़ि.)* में से किसी ने इससे इख़्तिलाफ़ नहीं किया है कि 'परिन्दे की चोरी में हाथ काटने की सज़ा नहीं है।' हज़रत उमर और हज़रत अली *(रज़ि.)* ने भी बैतुल-माल से चोरी करनेवाले का हाथ भी नहीं काटा और इस मामले में भी सहाबा *(रज़ि.)* में से किसी का इख़्तिलाफ़ नहीं मिलता है। इन बातों की बुनियाद पर बहुत-से इमामों और फ़ुक़हा ने बहुत-सी चीज़ों को हाथ काटने के हुक्म से अलग रखा है।

غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ لَهٗ مُلْكُ
السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ يُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ وَيَغْفِرُ
لِمَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ ۝ يٰۤاَيُّهَا

(कृपादृष्टि) फिर उस पर माइल (उन्मुख) हो जाएगी।[61] अल्लाह बहुत माफ़ करनेवाला और रहम फ़रमानेवाला है। (40) क्या तुम जानते नहीं हो कि अल्लाह ज़मीन और आसमानों की सल्तनत का मालिक है? जिसे चाहे सज़ा दे और जिसे चाहे माफ़ कर दे, वह हर चीज़ का इख़्तियार रखता है।

इमाम अबू-हनीफ़ा के नज़दीक तरकारियाँ, फल, गोश्त, पका हुआ खाना, ग़ल्ला जिसका अभी खलिहान न किया गया हो, खेल और गाने-बजाने के औज़ार वे चीज़ें हैं जिनकी चोरी में हाथ काटने की सज़ा नहीं है। और जंगल में चरते हुए जानवरों की चोरी और बैतुल-माल की चोरी में भी वे हाथ काटने की सज़ा के कायल नहीं हैं। इसी तरह दूसरे इमामों ने भी कुछ चीज़ों को इस हुक्म से अलग रखा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इन चोरियों पर सिरे से कोई सज़ा ही न दी जाएगी, बल्कि मतलब यह है कि इन जुर्मों में हाथ न काटा जाएगा।

61 इसका यह मतलब नहीं कि उसका हाथ न काटा जाए, बल्कि मतलब यह है कि हाथ कटने के बाद जो आदमी तौबा कर ले और अपने नफ़्स (मन) को चोरी से पाक करके अल्लाह का नेक बन्दा बन जाए वह अल्लाह के ग़ज़ब से बच जाएगा और अल्लाह उसके दामन से उस दाग़ को धो देगा। लेकिन अगर किसी ने हाथ कटवाने के बाद भी अपने आपको बद-नीयती से पाक न किया और वही गन्दे जज़बात अपने अन्दर पाले रखे, जिनकी वजह से उसने चोरी की और उसका हाथ काटा गया, तो इसके मानी ये हैं कि हाथ तो उसके बदन से जुदा हो गया, मगर चोरी उसके दिल में बदस्तूर मौजूद रही। इस वजह से वह ख़ुदा के ग़ज़ब का उसी तरह हक़दार रहेगा जिस तरह हाथ कटने से पहले था। इसी लिए क़ुरआन मजीद चोर को हिदायत करता है कि वह अल्लाह से माफ़ी माँगे और अपने नफ़्स (मन) की इस्लाह करे, क्योंकि हाथ काटना तो समाजी इन्तिज़ाम के लिए है। इस सज़ा से नफ़्स पाक नहीं हो सकता। नफ़्स की पाकी सिर्फ़ तौबा और अल्लाह की तरफ़ पलटने से हासिल होती है। नबी *(सल्ल०)* के बारे में हदीसों में बयान हुआ है कि एक चोर का हाथ जब आप *(सल्ल०)* के हुक्म के मुताबिक़ काटा जा चुका तो आप ने उसे अपने पास बुलाया और उससे कहा, "कह, मैं ख़ुदा से माफ़ी चाहता हूँ और उससे तौबा करता हूँ।" उसने आपकी नसीहत के मुताबिक़ ये अलफ़ाज़ कहे। फिर आप *(सल्ल०)* ने उसके हक़ में दुआ की कि "ऐ अल्लाह! इसे माफ़ कर दे।"

الرَّسُوْلُ لَا يَحْزُنْكَ الَّذِيْنَ يُسَارِعُوْنَ فِي الْكُفْرِ
مِنَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اٰمَنَّا بِاَفْوَاهِهِمْ وَلَمْ تُؤْمِنْ
قُلُوْبُهُمْ ۚ وَمِنَ الَّذِيْنَ هَادُوْا ۚ سَمّٰعُوْنَ
لِلْكَذِبِ سَمّٰعُوْنَ لِقَوْمٍ اٰخَرِيْنَ ۙ لَمْ يَأْتُوْكَ ۖ

(41) ऐ पैग़म्बर, तुम्हारे लिए दुख का सबब न हों वे लोग जो कुफ़्र (इनकार) की राह में बड़ी तेज़ रफ़्तारी दिखा रहे हैं[62] चाहे वे उनमें से हों जो मुँह से कहते हैं कि हम ईमान लाए, मगर दिल उनके ईमान नहीं लाए। या उनमें से हों जो यहूदी बन गए हैं, जिनका हाल यह है कि झूठ के लिए कान लगाते[63] हैं और दूसरे लोगों की ख़ातिर, जो

62. यानी जिनकी ज़ेहनी और दिमाग़ी सलाहियतें और सरगर्मियाँ सारी की सारी इस कोशिश में लग रही हैं कि जाहिलियत की जो हालत पहले से चली आ रही है वही बरक़रार रहे और इस्लाम का यह पैग़ाम जिसका मक़सद समाज को सुधारना है उस बिगाड़ को ठीक करने में कामयाब न होने पाए। ये लोग तमाम अख़लाक़ी पाबन्दियों से आज़ाद होकर नबी *(सल्ल०)* के ख़िलाफ़ हर क़िस्म की घटिया से घटिया चालें चल रहे थे। जान-बूझकर हक़ निगल रहे थे। निहायत बे-बाकी और और जसारत (दुस्साहस) के साथ झूठ, फ़रेब, दग़ा और मक्कारी के हथियारों से उस पाक इनसान के काम को शिकस्त देने की कोशिश कर रहे थे जो पूरी बेग़र्ज़ी के साथ सरासर ख़ैरख़ाही की बुनियाद पर आम इनसानों की और ख़ुद उनकी कामयाबी और तरक़्क़ी के लिए रात-दिन मेहनत कर रहा था। उनकी इन हरकतों को देख-देखकर नबी *(सल्ल०)* का दिल कुढ़ता था और उनका यह कुढ़ना बिलकुल फ़ितरी बात थी। जब किसी पाकीज़ा इनसान को अख़लाक़ से गिरे हुए लोगों से वास्ता पड़ता है और वह सिर्फ़ अपनी जिहालत और ख़ुदगर्ज़ी और तंगनज़री की बुनियाद पर उसकी उन कोशिशों को जो उनकी भलाई के लिए ही की जा रही हैं, रोकने के लिए घटिया दर्जे की चालबाज़ियों से काम लेते हैं तो फ़ितरी तौर पर उसका दिल दुखता ही है। तो अल्लाह के फ़रमान का मंशा और मक़सद यह नहीं है कि इन हरकतों पर जो फ़ितरी रंज आपको होता है वह नहीं होना चाहिए, बल्कि मंशा असूल में यह है कि इससे आप हिम्मत न हारें, दिल छोटा न करें बल्कि सब्र के साथ अल्लाह के बन्दों के सुधार के लिए काम किए चले जाएँ। रहे ये लोग, तो जिस क़िस्म के घटिया और गिरे हुए अख़लाक़ उन्होंने अपने अन्दर पाले हैं उनकी वजह से उनसे ठीक इसी रवैये की उम्मीद है, कोई चीज़ इनकी इस रविश में ऐसी नहीं है जो उम्मीद के ख़िलाफ़ हो।

63. इसके दो मतलब हैं—
एक यह कि ये लोग चूँकि ख़ाहिशों के बन्दे बन गए हैं, इसलिए सच्चाई से इन्हें कोई दिलचस्पी

يُحَرِّفُوْنَ الْكَلِمَ مِنْۢ بَعْدِ مَوَاضِعِهٖ ۚ يَقُوْلُوْنَ
اِنْ اُوْتِيْتُمْ هٰذَا فَخُذُوْهُ وَاِنْ لَّمْ تُؤْتَوْهُ
فَاحْذَرُوْا ۭ وَمَنْ يُّرِدِ اللّٰهُ فِتْنَتَهٗ فَلَنْ تَمْلِكَ
لَهٗ مِنَ اللّٰهِ شَيْـًٔا ۭ اُولٰۗىِٕكَ الَّذِيْنَ لَمْ يُرِدِ

तुम्हारे पास कभी नहीं आए, सुन-गुन लेते फिरते हैं।[64] अल्लाह की किताब के लफ़्ज़ों को उनका सही मौक़ा मुतैयन (निश्चित अर्थ) होने के बावजूद असल मानी से फेरते हैं।[65] और लोगों से कहते हैं कि अगर तुम्हें यह हुक्म दिया जाए तो मानो, नहीं तो न मानो।[66] जिसे अल्लाह ही ने फ़ितने में डालने का इरादा कर लिया हो उसको अल्लाह की पकड़ से बचाने के लिए तुम कुछ नहीं कर सकते।[67] ये वे लोग हैं जिनके दिलों को अल्लाह ने

नहीं है। झूठ ही इन्हें पसन्द आता है और इसी को ये जी लगाकर सुनते हैं, क्योंकि इनके नफ़्स की प्यास उसी से बुझती है।

दूसरा मतलब यह है कि नबी *(सल्ल०)* और मुसलमानों की मजलिसों में ये झूठ की ग़र्ज़ से आकर बैठते हैं, ताकि यहाँ जो कुछ देखें और जो बातें सुनें उनको उल्टे मतलब पहनाकर या उनके साथ अपनी तरफ़ से ग़लत बातें मिलाकर नबी *(सल्ल०)* और मुसलमानों को बदनाम करने के लिए लोगों में फैलाएँ।

64. इसके भी दो मतलब हैं। एक यह कि जासूस बनकर आते हैं और नबी *(सल्ल०)* और मुसलमानों की मजलिसों में इसलिए गश्त लगाते फिरते हैं कि कोई राज़ की बात क़ान में पड़े तो उसे आपके दुश्मनों तक पहुँचाएँ। दूसरा मतलब यह है कि झूठे इलज़ाम लगाने और झूठ फैलाने के लिए बातें इकट्ठा करते फिरते हैं, ताकि उन लोगों में बदगुमानियाँ और ग़लतफ़हमियाँ फैलाएँ जिनको नबी *(सल्ल०)* और मुसलमानों से सीधे तौर पर ताल्लुक़ पैदा करने का मौक़ा नहीं मिला है।

65. यानी तौरात के जो अहकाम (आदेश) उनकी ख़ाहिशों के मुताबिक़ नहीं हैं, उनके अन्दर जान-बूझकर फेर-बदल करते हैं और अलफ़ाज़ के मानी को बदलकर मनमाने अहकाम उनसे निकालते हैं।

66. यानी जाहिल लोगों से कहते हैं कि जो हुक्म हम बता रहे हैं, अगर मुहम्मद *(सल्ल०)* भी यही हुक्म तुम्हें बताएँ तो उसे क़बूल करना, वरना रद्द कर देना।

67. अल्लाह की तरफ़ से किसी के फ़ितने में डाले जाने का मतलब यह है कि जिस आदमी के अन्दर अल्लाह किसी तरह के बुरे रुझान पलते-बढ़ते देखता है उसके सामने एक के बाद एक

اللّٰهُ اَنْ يُّطَهِّرَ قُلُوْبَهُمْ ؕ لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ ۚۖ
وَّلَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿٤١﴾ سَمّٰعُوْنَ
لِلْكَذِبِ اَكّٰلُوْنَ لِلسُّحْتِ ؕ فَاِنْ جَآءُوْكَ فَاحْكُمْ
بَيْنَهُمْ اَوْ اَعْرِضْ عَنْهُمْ ۚ وَاِنْ تُعْرِضْ عَنْهُمْ
فَلَنْ يَّضُرُّوْكَ شَيْـًٔا ؕ وَاِنْ حَكَمْتَ فَاحْكُمْ بَيْنَهُمْ

पाक करना न चाहा[68] उनके लिए दुनिया में रुसवाई है और आख़िरत में सख़्त सज़ा।

(42) ये झूठ सुननेवाले और हराम के माल खानेवाले हैं[69], इसलिए अगर ये तुम्हारे पास (अपने मुक़द्दमे लेकर) आएँ तो तुम्हें इख़्तियार दिया जाता है कि चाहो उनका फ़ैसला करो, वरना इनकार कर दो। इनकार कर दो तो ये तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। और फ़ैसला करो तो फिर ठीक-ठीक इनसाफ़ के साथ करो कि अल्लाह

ऐसे मौक़े लाता है जिनमें उसकी सख़्त आज़माइश होती है, अगर वह आदमी अभी बुराई की तरफ़ पूरी तरह नहीं झुका है तो इन आज़माइशों से संभल जाता है और उसके अन्दर बुराई का मुक़ाबला करने के लिए नेकी (भलाई) की जो ताक़तें मौजूद होती हैं, वे उभर आती हैं। लेकिन अगर वह बुराई की तरफ़ पूरी तरह झुक चुका होता है और उसकी नेकी उसकी बदी (बुराई) से अन्दर ही अन्दर हार मान चुकी होती है तो हर ऐसी आज़माइश के मौक़े पर वह और ज़्यादा बुराई के फन्दे में फँसता चला जाता है। यही अल्लाह का वह फ़ितना है जिससे किसी बिगड़ते हुए इनसान को बचा लेना उसके किसी ख़ैरख़ाह के बस में नहीं होता। और इस फ़ितने में सिर्फ़ लोग ही नहीं डाले जाते, बल्कि क़ौमें भी डाली जाती हैं।

68. इसलिए कि उन्होंने ख़ुद पाक होना न चाहा। जो ख़ुद पाकीज़गी का ख़ाहिशमन्द होता है और उसके लिए कोशिश करता है, उसे पाकीज़गी से महरूम करना अल्लाह का दस्तूर नहीं है। अल्लाह पाक करना उसी को नहीं चाहता जो ख़ुद पाक होना नहीं चाहता।

69. यहाँ ख़ास तौर पर उनके मुफ़्तियों और क़ाज़ियों (न्यायाधीशों) की तरफ़ इशारा है जो झूठी गवाहियाँ लेकर और झूठी रिपोर्टें सुनकर उन लोगों के हक़ में इनसाफ़ के ख़िलाफ़ फ़ैसले किया करते थे जिनसे उन्हें रिश्वत पहुँच जाती थी या जिनके साथ उनके नाजाइज़ फ़ायदे जुड़े हुए होते थे।

بِالْقِسْطِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِيْنَ ﴿۴۲﴾ وَ كَيْفَ
يُحَكِّمُوْنَكَ وَعِنْدَهُمُ التَّوْرٰىةُ فِيْهَا حُكْمُ اللّٰهِ

इनसाफ़ करनेवालों को पसन्द करता है।[70]—(43) और ये तुम्हें कैसे फ़ैसला करनेवाला बनाते हैं जबकि इनके पास तौरात मौजूद है जिसमें अल्लाह का हुक्म लिखा हुआ है और

70. यहूदी उस वक़्त तक इस्लामी हुकूमत की बाक़ायदा रिआया (नागरिक) नहीं बने थे, बल्कि इस्लामी हुकूमत के साथ उनके ताल्लुक़ात की बुनियाद समझौतों पर थी। उन समझौतों के मुताबिक़ यहूदियों को अपने अन्दरूनी मामलों में आज़ादी हासिल थी और उनके मुक़द्दमों के फ़ैसले उन्हीं के क़ानूनों के मुताबिक़ उनके अपने जज करते थे। नबी *(सल्ल०)* के पास या आपके तय किए हुए क़ाज़ियों (न्यायधीशों) के पास अपने मुक़द्दमे लाने के लिए क़ानून के मुताबिक़ वे मजबूर न थे। लेकिन ये लोग जिन मामलों में ख़ुद अपने मज़हबी क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला करना न चाहते थे उनका फ़ैसला कराने के लिए नबी *(सल्ल०)* के पास इस उम्मीद पर आ जाते थे कि शायद आपकी शरीअत में उनके लिए कोई दूसरा हुक्म हो और इस तरह वे अपने मज़हबी क़ानून की पैरवी से बच जाएँ।

यहाँ ख़ास तौर पर जिस मुक़द्दमे की तरफ़ इशारा है, वह यह था कि ख़ैबर के इज़्ज़तदार यहूदी ख़ानदानों में से एक औरत और एक मर्द के बीच नाजाइज़ ताल्लुक़ पाया गया। तौरात के मुताबिक़ उनकी सज़ा रज्म थी, यानी यह कि दोनों को संगसार (पत्थर मार-मारकर हलाक) किया जाए। (देखें व्यवस्था 22 : 23-24) लेकिन यहूदी इस सज़ा को लागू करना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने आपस में मशविरा किया कि इस मुक़द्दमे में मुहम्मद *(सल्ल०)* को पंच बनाया जाए। अगर वे रज्म के सिवा कोई और हुक्म दें तो क़बूल कर लिया जाए और रज्म ही का हुक्म दें तो न क़बूल किया जाए। चुनाँचे मुक़द्दमा नबी *(सल्ल०)* के सामने लाया गया। नबी *(सल्ल०)* ने रज्म का हुक्म दिया। उन्होंने इस हुक्म को मानने से इनकार किया। इस पर आपने पूछा : तुम्हारे मज़हब में इसकी क्या सज़ा है? उन्होंने कहा कि कोड़े मारना और मुँह काला करके गधे पर सवार करना। आप *(सल्ल०)* ने उनके आलिमों को क़सम देकर उनसे पूछा : क्या तौरात में शादी-शुदा ज़ानी और ज़ानिया की यही सज़ा है? उन्होंने फिर वही झूठा जवाब दिया। लेकिन उनमें से एक आदमी इब्ने-सूरया, जो ख़ुद यहूदियों के बयान के मुताबिक़ अपने ज़माने में तौरात का सबसे बड़ा आलिम था, ख़ामोश रहा। आप *(सल्ल०)* ने उससे मुख़ातब होकर कहा कि मैं तुझे उस ख़ुदा की क़सम देकर पूछता हूँ, जिसने तुम लोगों को फ़िरऔन से बचाया और तूर पहाड़ पर तुम्हें शरीअत दी, क्या हक़ीक़त में तौरात में ज़िना की यही सज़ा लिखी है? उसने जवाब दिया कि "अगर आप मुझे ऐसी भारी क़सम न देते तो मैं न बताता। सच बात यह है कि ज़िना की सज़ा तो रज्म ही है, मगर हमारे यहाँ जब यह बुराई बहुत फ़ैल गई तो हमारे हाकिमों ने यह तरीक़ा अपनाया कि बड़े लोग ज़िना करते तो उन्हें छोड़ दिया जाता और छोटे

ثُمَّ يَتَوَلَّوْنَ مِنْ بَعْدِ ذٰلِكَ ۚ وَمَآ أُولٰٓئِكَ بِالْمُؤْمِنِينَ ﴿٤٣﴾ ع ٩
إِنَّآ أَنزَلْنَا التَّوْرٰىةَ فِيهَا هُدًى وَنُورٌ ۚ يَحْكُمُ
بِهَا النَّبِيُّونَ الَّذِينَ أَسْلَمُوا لِلَّذِينَ هَادُوا
وَالرَّبّٰنِيُّونَ وَالْأَحْبَارُ بِمَا اسْتُحْفِظُوا مِنْ كِتٰبِ

फिर ये उससे मुँह मोड़ रहे हैं?[71] असल बात यह है कि ये लोग ईमान ही नहीं रखते।

(44) हमने तौरात उतारी जिसमें हिदायत और रौशनी थी। सारे नबी, जो मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) थे, उसी के मुताबिक़ इन यहूदी बन जानेवालों[72] के मामलों का फ़ैसला करते थे और इसी तरह रब्बानी और अहबार[73] भी (इसी पर फ़ैसले की बुनियाद रखते

लोगों से यही हरकत होती तो उन्हें रजम की सज़ा दी जाती। फिर जब इससे लोगों में नाराज़गी पैदा होने लगी तो हमने तौरात के क़ानून को बदलकर यह क़ायदा बना लिया कि ज़ानी और ज़ानिया को कोड़े लगाए जाएँ और उन्हें मुँह काला करके गधे पर उल्टे मुँह सवार किया जाए।'' उसके बाद यहूदियों के लिए कुछ बोलने की गुंजाइश न रही और नबी *(सल्ल०)* के हुक्म से ज़ानी और ज़ानिया को संगसार कर दिया गया।

71. इस आयत में अल्लाह ने इन लोगों की बददियानती को बिलकुल बेनकाब कर दिया है। ये 'मज़हबी' लोग जिन्होंने पूरे अरब पर अपनी दीनदारी और अपनी किताब के इल्म का सिक्का जमा रखा था, उनकी हालत यह थी कि जिस किताब को ख़ुद अल्लाह की किताब मानते थे और जिस पर ईमान रखने के दावेदार थे उसके हुक्म को छोड़कर नबी *(सल्ल०)* के पास अपना मुक़द्दमा लाए थे जिनके पैग़म्बर होने से उनको बड़ी सख़्ती से इनकार था। इससे यह राज़ बिलकुल खुल गया कि ये किसी चीज़ पर भी सच्चाई के साथ ईमान नहीं रखते, असल में इनका ईमान अपने नफ़्स और उसकी ख़ाहिशों पर है जिसे अल्लाह की किताब मानते हैं, उससे सिर्फ़ इसलिए मुँह मोड़ते हैं कि उसका हुक्म उनके नफ़्स को नागवार है और जिसे नुबूवत का (अल्लाह पनाह में रखे) झूठा दावेदार कहते हैं, उसके पास सिर्फ़ इस उम्मीद पर जाते हैं कि शायद वहाँ से कोई ऐसा फ़ैसला हासिल हो जाए जो उनकी मर्ज़ी के मुताबिक़ हो।

72. यहाँ इस हक़ीक़त पर भी ख़बरदार कर दिया कि नबी सबके सब 'मुस्लिम'(फ़रमाँबरदार) थे। इसके बरख़िलाफ़ ये यहूदी 'इस्लाम'(ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी) से हटकर और गरोहबन्दी में पड़कर सिर्फ़ 'यहूदी' बनकर रह गए थे।

73. रब्बानी से मुराद यहाँ उनके आलिम हैं और अहबार से मुराद उनके फ़ुक़हा (धर्मशास्त्री) हैं।

اللّٰهِ وَكَانُوْا عَلَيْهِ شُهَدَآءَ ۚ فَلَا تَخْشَوُا النَّاسَ
وَاخْشَوْنِ وَلَا تَشْتَرُوْا بِاٰيٰتِيْ ثَمَنًا قَلِيْلًا ۭ
وَمَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ
الْكٰفِرُوْنَ ۝ وَكَتَبْنَا عَلَيْهِمْ فِيْهَآ اَنَّ النَّفْسَ
بِالنَّفْسِ ۙ وَالْعَيْنَ بِالْعَيْنِ وَالْاَنْفَ بِالْاَنْفِ
وَالْاُذُنَ بِالْاُذُنِ وَالسِّنَّ بِالسِّنِّ ۙ وَالْجُرُوْحَ
قِصَاصٌ ۭ فَمَنْ تَصَدَّقَ بِهٖ فَهُوَ كَفَّارَةٌ لَّهٗ ۭ
وَمَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ

थे), क्योंकि उन्हें अल्लाह की किताब की हिफ़ाज़त का ज़िम्मेदार बनाया गया था और वे इस पर गवाह थे। तो (ऐ यहूदियों के गरोह) तुम लोगों से न डरो, बल्कि मुझसे डरो और मेरी आयतों को ज़रा-ज़रा से मुआवज़े लेकर बेचना छोड़ दो। जो लोग अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करें वही काफ़िर (इनकारी) हैं।

(45) तौरात में हमने यहूदियों पर यह हुक्म लिख दिया था कि जान के बदले जान, आँख के बदले आँख, नाक के बदले नाक, कान के बदले कान, दाँत के बदले दाँत और तमाम ज़ख़्मों के लिए बराबर का बदला।[74] फिर जो क़िसास का सदक़ा कर दे तो वह उसके लिए कफ़्फ़ारा है[75] और जो लोग अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला

74. मुक़ाबले (तुलना) के लिए देखें तौरात की किताब निर्गमन अध्याय-21 आयत-23 से 25।

75. यानी जो आदमी सदक़े की नीयत से क़िसास माफ़ कर दे उसके हक़ में यह नेकी उसके बहुत-से गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) हो जाएगी। इसी मानी में नबी *(सल्ल०)* का यह फ़रमान है कि ''जिस किसी के जिस्म में कोई ज़ख़्म लगाया गया और उसने माफ़ कर दिया तो जिस दर्जे की यह माफ़ी होगी उसी के हिसाब से उसके गुनाह माफ़ कर दिए जाएँगे।''

الظّٰلِمُوْنَ ۝٤٥ وَقَفَّيْنَا عَلٰٓى اٰثَارِهِمْ بِعِيْسَى ابْنِ
مَرْيَمَ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ التَّوْرٰىةِ ۪
وَاٰتَيْنٰهُ الْاِنْجِيْلَ فِيْهِ هُدًى وَّنُوْرٌ ۙ وَّمُصَدِّقًا
لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ التَّوْرٰىةِ وَهُدًى وَّمَوْعِظَةً
لِّلْمُتَّقِيْنَ ۝٤٦ؕ وَلْيَحْكُمْ اَهْلُ الْاِنْجِيْلِ بِمَآ اَنْزَلَ
اللّٰهُ فِيْهِ ؕ وَمَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ

न करें वही ज़ालिम हैं।

(46) फिर हमने इन पैग़म्बरों के बाद मरयम के बेटे ईसा को भेजा। तौरात में से जो कुछ उसके सामने मौजूद था वह उसकी तसदीक़ (पुष्टि) करनेवाला था। और हमने उसको इंजील दी जिसमें रहनुमाई और रौशनी थी और वह भी तौरात में से जो कुछ उस वक़्त मौजूद था उसकी तसदीक़ (पुष्टि) करनेवाली थी।[76] और अल्लाह से डरनेवाले लोगों के लिए सरासर हिदायत और नसीहत थी। (47) हमारा हुक्म था कि इंजीलवाले उस क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला करें जो अल्लाह ने उसमें उतारा है और जो लोग अल्लाह के

76. यानी मसीह *(अलै.)* कोई नया मज़हब लेकर नहीं आए थे बल्कि वही एक दीन (धर्म), जो पिछले सारे नबियों का दीन (धर्म) था, मसीह का दीन भी था और उसी की तरफ़ वे दावत देते थे। तौरात की असूल तालीमात (शिक्षाओं) में से जो कुछ उनके ज़माने में महफ़ूज़ था उसको मसीह ख़ुद भी मानते थे और इंजील भी उसकी तसदीक़ करती थी। (देखें मत्ती अध्याय-5 आयत 17, 18)। क़ुरआन इस हक़ीक़त को बार-बार दोहराता है कि ख़ुदा की तरफ़ से जितने नबी दुनिया के किसी कोने में आए हैं उनमें से कोई भी पिछले नबियों को रद्द करने के लिए और उनके कामों को मिटाकर अपना नया मज़हब चलाने के लिए नहीं आया था बल्कि हर नबी अपने पिछले नबियों की तसदीक़ (पुष्टि) करता था और उसी काम को आगे बढ़ाने के लिए आता था जिसे अगलों ने एक पाक विरासत की हैसियत से छोड़ा था। इसी तरह अल्लाह ने अपनी कोई किताब अपनी ही पिछली किताबों को रद्द करने के लिए कभी नहीं भेजी बल्कि उसकी हर किताब पहले आई हुई किताबों की ताईद और तसदीक़ में थी।

هُمُ الْفٰسِقُوْنَ ۝ وَاَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ

उतारे हुए क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करें वही फ़ासिक़ हैं।[77]

(48) फिर ऐ नबी, हमने तुम्हारी तरफ़ यह किताब भेजी जो हक़ लेकर आई है और

77. यहाँ अल्लाह ने उन लोगों के हक़ में, जो ख़ुदा के नाज़िल किए हुए क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करें, तीन हुक्म दिए हैं। एक यह कि वे कुफ़्र करनेवाले हैं, दूसरे यह कि वे ज़ालिम हैं, तीसरे यह कि वे फ़ासिक़ और नाफ़रमान हैं। इसका साफ़ मतलब यह है कि जो इनसान ख़ुदा के हुक्म और उसके उतारे हुए क़ानून को छोड़कर अपने या दूसरे इनसानों के बनाए हुए क़ानूनों पर फ़ैसला करता है, वह असल में तीन बड़े जुर्म करता है। एक तो यह कि उसका यह काम अल्लाह के हुक्म के इनकार के बराबर है और यह कुफ़्र (अधर्म) है। दूसरा यह कि उसका यह काम अद्ल और इनसाफ़ के ख़िलाफ़ है, क्योंकि ठीक-ठीक इनसाफ़ के मुताबिक़ जो हुक्म हो सकता था वह तो ख़ुदा ने दे दिया था, इसलिए जब ख़ुदा के हुक्म से हटकर उसने फ़ैसला किया तो ज़ुल्म किया। तीसरे यह कि बन्दा होने के बावजूद जब उसने अपने मालिक के क़ानून से मुँह फेरकर अपना या किसी दूसरे का क़ानून लागू किया तो असल में बन्दगी और इताअत के दायरे से बाहर क़दम निकाला और यही फ़िस्क़ (नाफ़रमानी) है। यह कुफ़्र, ज़ुल्म, और फ़िस्क़ अपनी नौईयत के पहलू से लाज़िमी तौर पर 'अल्लाह के हुक्म से फिर जाने' की ठीक हक़ीक़त में दाख़िल है। यह मुमकिन ही नहीं है कि जहाँ वह फिरना मौजूद हो वहाँ ये तीनों चीज़ें मौजूद न हों। अलबत्ता जिस तरह अल्लाह के हुक्म से फिरने के दर्जों में फ़र्क़ है उसी तरह इन तीनों चीज़ों के दर्जों में भी फ़र्क़ है। जो आदमी अल्लाह के हुक्म के ख़िलाफ़ इस बुनियाद पर फ़ैसला करता है कि वह अल्लाह के हुक्म को ग़लत और अपने या किसी दूसरे इनसान के हुक्म को सही समझता है वह मुकम्मल इनकारी और ज़ालिम और फ़ासिक़ (नाफ़रमान) है। और जो अक़ीदे के तौर पर अल्लाह के हुक्म को सही और हक़ समझता है मगर अमल में उसके ख़िलाफ़ फ़ैसला करता है वह हालाँकि मिल्लत से ख़ारिज तो नहीं है मगर अपने ईमान में कुफ़्र, ज़ुल्म और फ़िस्क़ की मिलावट कर रहा है। इसी तरह वह तमाम मामलों में काफ़िर, ज़ालिम, फ़ासिक़ है। और जो कुछ मामलों में फ़रमाँबरदार और कुछ मामलों में अल्लाह के हुक्मों से फिरा हुआ है तो उसकी ज़िन्दगी में ईमान और इस्लाम और कुफ़्र और ज़ुल्म और फ़िस्क़ की मिलावट ठीक-ठीक उसी हिसाब के साथ है जिस हिसाब से उसने इताअत और नाफ़रमानी को मिला रखा है। क़ुरआन के कुछ मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) ने इन आयतों को अहले-किताब के साथ ख़ास कर देने की कोशिश की है, मगर अल्लाह के कलाम के अलफ़ाज़ में इस मतलब के लिए कोई गुंजाइश मौजूद नहीं। इस बात का बेहतरीन जवाब वह है जो हज़रत हुज़ैफ़ा *(रज़ि०)* ने दिया है। उनसे किसी ने कहा कि ये तीनों आयतें तो बनी-इसराईल के हक़ में हैं। कहनेवाले का मतलब यह था कि यहूदियों में से जिसने ख़ुदा के उतारे हुए हुक्म के ख़िलाफ़ फ़ैसला किया हो वही कुफ़्र (अधर्म) करनेवाला, वही ज़ुल्म करनेवाला और वही फ़ासिक़ (नाफ़रमान) है। इस पर हज़रत

مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ الْكِتٰبِ وَ
مُهَيْمِنًا عَلَيْهِ فَاحْكُمْ بَيْنَهُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ
وَلَا تَتَّبِعْ اَهْوَآءَهُمْ عَمَّا جَآءَكَ مِنَ الْحَقِّ ۭ لِكُلٍّ

अल-किताब में से जो कुछ इसके आगे मौजूद है उसकी तसदीक़ करनेवाली[78] और उसकी हिफ़ाज़त करनेवाली और निगराँ है।[79] इसलिए तुम ख़ुदा के उतारे हुए क़ानून के मुताबिक़ लोगों के मामलों का फ़ैसला करो और जो हक़ तुम्हारे पास आया है उससे मुँह मोड़कर

हुज़ैफ़ा ने कहा कि "कितने अच्छे भाई हैं तुम्हारे लिए ये बनी-इसराईल कि कड़ुवा-कड़ुआ सब उनके लिए है और मीठा-मीठा सब तुम्हारे लिए। हरगिज़ नहीं! ख़ुदा की क़सम, तुम उन्हीं के तरीक़े पर क़दम-ब-क़दम चलोगे।"

78. यहाँ एक अहम हक़ीक़त की तरफ़ इशारा किया गया है। हालाँकि इस बात को यूँ भी कहा जा सकता था कि 'पिछली किताबों' में से जो कुछ अपनी असली और सही सूरत पर बाक़ी हैं, क़ुरआन उसकी तसदीक़ करता है, लेकिन अल्लाह ने पिछली किताबों के बजाय अल-किताब (मूल किताब) का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया। इससे यह राज़ खुलता है कि क़ुरआन और तमाम वे किताबें जो अलग-अलग ज़मानों और अलग-अलग ज़बानों में अल्लाह की तरफ़ से उतरीं, सबकी सब असल में एक ही किताब हैं। एक ही उनका लिखनेवाला है, एक ही उनका मंशा और मक़सद है, एक ही उनकी तालीम है, और एक ही इल्म है जो उनके ज़रीए से तमाम इनसानों को दिया गया। फ़र्क़ अगर है तो इबारतों का है जो एक ही मक़सद के लिए अलग-अलग मुख़ातबों (श्रोताओं) के लिहाज़ से अलग-अलग तरीक़ों से इख़्तियार की गईं। तो हक़ीक़त सिर्फ़ इतनी ही नहीं है कि ये किताबें एक-दूसरे की मुख़ालिफ़ नहीं; बल्कि ताईद करनेवाली हैं। रद्द करनेवाली नहीं, बल्कि तसदीक़ करनेवाली हैं। बल्कि असल हक़ीक़त इससे कुछ बढ़कर है और वह यह है कि ये सब एक ही 'अल-किताब' के मुख़्तलिफ़ एडिशन (संस्करण) हैं।

79. मूल अरबी में लफ़्ज़ 'मुहैमिन' इस्तेमाल हुआ है। अरबी में हैम-न, युहैमिनु, हैम-न-तन (माद्दे या धातु से बननेवाले लफ़्ज़ों) का मतलब हिफ़ाज़त, निगरानी, गवाही, अमानत, ताईद और हिमायत है। अरबी में *हैम-न-र्रजुलु-शैइ-य* का मतलब है कि आदमी ने फ़ुलाँ चीज़ की हिफ़ाज़त और निगहबानी की, और *हैम-न-त्ताइरु अला फ़राख़िही* का मतलब है कि परिन्दे ने अपने चूज़े को अपने परों में लेकर महफ़ूज़ कर दिया। हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने एक बार लोगों से कहा कि *इन्नी दाइन फ़-है-मनू* यानी मैं दुआ करता हूँ तुम ताईद में आमीन कहो। इसी से लफ़्ज़ हमयान है जिसे उर्दू में हिमयानी कहते हैं, यानी वह थैली जिसमें आदमी अपना माल रखकर महफ़ूज़ करता है। इसलिए क़ुरआन को 'अल-किताब' पर मुहैमिन कहने का मतलब यह है कि उसने

جَعَلْنَا مِنْكُمْ شِرْعَةً وَّمِنْهَاجًا ۗ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ
لَجَعَلَكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّلٰكِنْ لِّيَبْلُوَكُمْ فِيْ مَآ
اٰتٰكُمْ فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرٰتِ ۗ اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ جَمِيْعًا
فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ۝٤٨ وَاَنِ احْكُمْ

उनकी ख़ाहिशों की पैरवी न करो।— हमने[80] तुम (इनसानों) में से हर एक के लिए एक शरीअत और अमल का एक रास्ता मुक़र्रर किया। हालाँकि अगर तुम्हारा ख़ुदा चाहता तो तुम सबको एक उम्मत भी बना सकता था। लेकिन उसने यह इसलिए किया कि जो कुछ उसने तुम लोगों को दिया है उसमें तुम्हारी आज़माइश करे। इसलिए भलाइयों में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की कोशिश करो। आख़िरकार तुम सबको ख़ुदा की तरफ़ पलटकर जाना है। फिर वह तुम्हें असल हक़ीक़त बता देगा जिसमें तुम इख़्तिलाफ़ करते रहे हो[81]।

उन तमाम सच्ची और बरहक़ तालीमात को, जो पिछली आसमानी किताबों में दी गई थीं अपने अन्दर लेकर महफ़ूज़ कर दिया है। वह उन पर निगहबान है इस मानी में कि अब उनकी सच्ची और बरहक़ तालीमात का कोई हिस्सा बरबाद न होने पाएगा। वह उनकी ताईद करनेवाला है इस मानी में कि इन किताबों के अन्दर ख़ुदा का कलाम जिस हद तक मौजूद है क़ुरआन से इसकी तसदीक़ होती है। वह उनपर गवाह है इस मानी में कि उन किताबों के अन्दर ख़ुदा के कलाम और लोगों के कलाम की जो मिलावट हो गई है क़ुरआन की गवाही से उसको फिर छाँटा जा सकता है। जो कुछ इनमें क़ुरआन के मुताबिक़ है वह ख़ुदा का कलाम है और जो क़ुरआन के ख़िलाफ़ है वह लोगों का कलाम है।

80. यहाँ ऊपर से चली आ रही बात के सिलसिले से हटकर एक दूसरी बात कही जा रही है, जिसका मक़सद एक सवाल को वाज़ेह करना है जो ऊपर की तक़रीर के सिलसिले को सुनते हुए आदमी के ज़ेहन में उलझन पैदा कर सकता है। सवाल यह है कि जब तमाम नबी और तमाम किताबों का दीन (धर्म) एक है और ये सब एक दूसरे की तसदीक़ और ताईद करते हुए आए हैं तो शरीअत की तफ़सीलात में उनके बीच फ़र्क़ क्यों है? क्या बात है कि इबादत की सूरतों में, हराम और हलाल की बन्दिशों में और समाजी और तमद्दुनी क़ानूनों को फैलाने और तरक़्क़ी देने में मुख़्तलिफ़ नबियों और आसमानी किताबों की शरीअतों के बीच थोड़ा-बहुत इख़्तिलाफ़ पाया जाता है?

81. यह ऊपर किए गए सवाल का पूरा जवाब है। इस जवाब की तफ़सील यह है —

بَيْنَهُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ وَلَا تَتَّبِعْ اَهْوَآءَهُمْ

(49) – तो[82] ऐ नबी, तुम अल्लाह के उतारे हुए क़ानून के मुताबिक़ इन लोगों के

(i) सिर्फ़ शरीअतों के इख़्तिलाफ़ को इस बात की दलील ठहराना ग़लत है कि ये शरीअतें मुख़्तलिफ़ माख़ज़ (ज़रीओं) से ली गई हैं और मुख़्तलिफ़ सरचश्मों (स्रोतों) से निकली हुई हैं। असल में वह अल्लाह ही है जिसने मुख़्तलिफ़ क़ौमों के लिए मुख़्तलिफ़ ज़मानों और मुख़्तलिफ़ हालात में मुख़्तलिफ़ ज़ाब्ते और क़ानून बनाए।
(ii) बेशक यह मुमकिन था कि शुरू ही से तमाम इनसानों के लिए एक ज़ाब्ता और क़ानून मुक़र्रर करके सबको एक उम्मत बना दिया जाता। लेकिन वह फ़र्क़ जो अल्लाह ने मुख़्तलिफ़ नबियों की शरीअतों के बीच रखा उसके अन्दर दूसरी बहुत-सी मसलिहतों के साथ एक बड़ी मसलिहत यह भी थी कि अल्लाह इस तरीक़े से लोगों की आज़माइश करना चाहता था, जो लोग असल दीन और उसकी रूह और हक़ीक़त को समझते हैं, और दीन में इन ज़ाब्तों और क़ानूनों की असल हैसियत को जानते हैं, और किसी तास्सुब (पूर्वाग्रह) में नहीं पड़े हैं, वे हक़ को जिस सूरत में भी वह आएगा, पहचान लेंगे और क़बूल कर लेंगे। उनको अल्लाह के भेजे हुए पिछले अहकाम (आदेशों) की जगह बाद के अहकाम तसलीम करने में कोई हिचकिचाहट न होगी। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग दीन की रूह से बेगाना हैं और क़ानूनों और ज़ाब्तों, उनकी तफ़सीलों ही को असल दीन समझ बैठे हैं और जिन्होंने ख़ुदा की तरफ़ से आई हुई चीज़ों पर ख़ुद अपने हाशिए चढ़ाकर उन पर जुमूद और तास्सुब (पक्षपात) इख़्तियार कर लिया है वे हर उस हिदायत को रद्द करते चले जाएँगे जो बाद में ख़ुदा की तरफ़ से आए। इन दोनों क़िस्म के आदमियों को एक-दूसरे से छाँटकर अलग करने के लिए यह आज़माइश ज़रूरी थी, इसलिए अल्लाह ने शरीअतों में इख़्तिलाफ़ रखा।
(iii) तमाम शरीअतों से असल मक़सद नेकियों और भलाइयों को पाना है और वे इसी तरह हासिल हो सकती हैं कि जिस वक़्त जो ख़ुदा का हुक्म हो उसकी पैरवी की जाए। इसलिए जो लोग असल मक़सद पर निगाह रखते हैं उनके लिए शरीअतों के इख़्तिलाफ़ और तौर-तरीक़ों के फ़र्क़ पर झगड़ा करने के बजाय सही रवैया यह है कि मक़सद की तरफ़ उस राह से आगे बढ़ें जिसको अल्लाह की मंज़ूरी हासिल हो।
(iv) जो इख़्तिलाफ़ इनसानों ने अपने जुमूद, तास्सुब, हठधर्मी और ज़ेहन की उपज से ख़ुद पैदा कर लिए हैं उनका आख़िरी फ़ैसला न मुनाज़िरे की मजलिस (शास्त्रार्थ की सभा) में हो सकता है, न जंग के मैदान में। आख़िरी फ़ैसला अल्लाह ख़ुद करेगा जबकि हक़ीक़त खोल कर रख दी जाएगी और लोगों पर खुल जाएगा कि जिन झगड़ों में वे उम्रें खपाकर दुनिया से आए हैं, उनकी तह में 'हक़' (सत्य) का जौहर कितना था और बातिल (असत्य) की मिलावट कितनी।
82. यहाँ से तक़रीर का फिर वही सिलसिला चल पड़ता है जो ऊपर से चला आ रहा था।

وَاحْذَرْهُمْ اَنْ يَّفْتِنُوْكَ عَنْ بَعْضِ مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ
اِلَيْكَ ؕ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَاعْلَمْ اَنَّمَا يُرِيْدُ اللّٰهُ
اَنْ يُّصِيْبَهُمْ بِبَعْضِ ذُنُوْبِهِمْ ؕ وَ اِنَّ كَثِيْرًا مِّنَ
النَّاسِ لَفٰسِقُوْنَ ﴿٤٩﴾ اَفَحُكْمَ الْجَاهِلِيَّةِ يَبْغُوْنَ ؕ
وَمَنْ اَحْسَنُ مِنَ اللّٰهِ حُكْمًا لِّقَوْمٍ يُّوْقِنُوْنَ ﴿٥٠﴾ ع

मामलों का फ़ैसला करो और इनकी ख़ाहिशों की पैरवी न करो। होशयार रहो कि ये लोग तुमको फ़ितने में डालकर उस हिदायत से ज़र्रा बराबर हटाने न पाएँ जो ख़ुदा ने तुम्हारी तरफ़ उतारी है। फिर अगर ये इससे मुँह मोड़ें तो जान लो कि अल्लाह ने इनके कुछ गुनाहों के बदले में इनको मुसीबत में डालने का इरादा ही कर लिया है और यह हक़ीक़त है कि इन लोगों में से अकसर लोग फ़ासिक़ (नाफ़रमान) हैं। (50) (अगर ये ख़ुदा के क़ानून से मुँह मोड़ते हैं) तो क्या फिर जाहिलियत[83] का फ़ैसला चाहते हैं? हालाँकि जो लोग अल्लाह पर यक़ीन रखते हैं उनके नज़दीक अल्लाह से बेहतर फ़ैसला करनेवाला कोई नहीं है।

83. जाहिलियत का लफ़्ज़ इस्लाम के मुक़ाबले में इस्तेमाल किया जाता है। इस्लाम का तरीक़ा सरासर इल्म है, क्योंकि इसकी तरफ़ ख़ुदा ने रहनुमाई की है जो तमाम हक़ीक़तों का इल्म रखता है। और इसके बरख़िलाफ़ हर वह तरीक़ा जो इस्लाम से मुख़्तलिफ़ है जाहिलियत का तरीक़ा है। इस्लाम से पहले के अरब के ज़माने को जाहिलियत का दौर इसी मानी में कहा गया है कि उस ज़माने में इल्म के बिना सिर्फ़ वहम या क़ियास और गुमान या ख़ाहिशों की बुनियाद पर इनसानों ने अपने लिए ज़िन्दगी के तरीक़े तय कर लिए थे। यह रवैया जहाँ जिस दौर में भी इनसान इख़्तियार करें उसे बहरहाल जाहिलियत ही का रवैया कहा जाएगा। मदरसों और यूनिवर्सिटियों में जो कुछ पढ़ाया जाता है वह सिर्फ़ एक जुज़वी (आंशिक) इल्म है। और किसी मानी में भी इनसान की रहनुमाई के लिए काफ़ी नहीं है। इसलिए ख़ुदा के दिए हुए इल्म से बेनियाज़ और बेपरवाह होकर ज़िन्दगी का जो निज़ाम इस जुज़वी इल्म (आंशिक ज्ञान) के साथ गुमानों, अटकलों और ख़ाहिशों की मिलावट करके बना लिए गए हैं वे भी उसी तरह 'जाहिलियत' की तारीफ़ (परिभाषा) में आते हैं जिस तरह पुराने ज़माने के जाहिली तरीक़े इस तारीफ़ में आते थे।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوا الْيَهُوْدَ وَ النَّصٰرٰٓى
اَوْلِيَآءَ ۘ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ؕ وَمَنْ يَّتَوَلَّهُمْ
مِّنْكُمْ فَاِنَّهٗ مِنْهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ
الظّٰلِمِيْنَ ۝٥١ فَتَرَى الَّذِيْنَ فِىْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ
يُّسَارِعُوْنَ فِيْهِمْ يَقُوْلُوْنَ نَخْشٰٓى اَنْ تُصِيْبَنَا
دَآئِرَةٌ ؕ فَعَسَى اللّٰهُ اَنْ يَّاْتِىَ بِالْفَتْحِ اَوْ اَمْرٍ

(51) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, यहूदियों और ईसाइयों को अपना साथी और राज़दार न बनाओ, ये आपस ही में एक-दूसरे के दोस्त (राज़दार) हैं। और अगर तुम में से कोई उनको अपना दोस्त (राज़दार) बनाता है तो उसकी गिनती भी फिर उन्हीं में है। यक़ीनन अल्लाह ज़ालिमों को अपनी रहनुमाई से महरूम कर देता है।

(52) तुम देखते हो कि जिनके दिलों में निफ़ाक़ (कपटाचार) की बीमारी है वे उन्हीं में दौड़-धूप करते फिरते हैं। कहते हैं, "हमें डर लगता है कि कहीं हम किसी मुसीबत के चक्कर में न फँस जाएँ।"[84] मगर यह दूर नहीं कि अल्लाह जब तुम्हें फ़ैसलाकुन फ़तह

84. उस वक़्त तक अरब में कुफ़्र और इस्लाम की कश-म-कश का फ़ैसला नहीं हुआ था। हालाँकि इस्लाम अपने पैरवी करनेवालों की सरफ़रोशियों की वजह से एक ताक़त बन चुका था, लेकिन मुक़ाबिल की ताक़तें भी ज़बरदस्त थीं। इस्लाम की फ़तह का जितना इमकान था वैसा ही कुफ़्र की फ़तह का भी था। इसलिए मुसलमानों में जो लोग मुनाफ़िक़ थे वे इस्लामी जमाअत में रहते हुए यहूदियों और ईसाइयों के साथ भी मेल-जोल रखना चाहते थे, ताकि यह कश-म-कश अगर इस्लाम की हार पर ख़त्म हो तो उनके लिए कोई न कोई पनाह लेने की जगह बाक़ी रहे। इसके अलावा उस वक़्त अरब में ईसाइयों और यहूदियों की माली ताक़त सबसे ज़्यादा थी। साहूकारा ज़्यादातर उन्हीं के हाथ में था। अरब के बेहतरीन हरे-भरे ख़ित्ते (भूभाग) उनके क़ब्ज़े में थे। उनकी सूदख़ोरी का जाल हर तरफ़ फैला हुआ था। इसलिए माली वजहों से भी ये मुनाफ़िक़ लोग उनके साथ अपने पिछले ताल्लुक़ बनाए रखने के ख़ाहिशमन्द थे। उनका गुमान था कि अगर इस्लाम और कुफ़्र की इस कश-म-कश में पूरी तरह लगकर हमने उन सब क़ौमों से अपने ताल्लुक़ काट लिए जिनके साथ इस्लाम की इस वक़्त कश-म-कश चल रही है, तो यह काम सियासी और माली दोनों हैसियतों से हमारे लिए ख़तरनाक होगा।

مِّنْ عِنْدِهٖ فَيُصْبِحُوْا عَلٰى مَآ اَسَرُّوْا فِيْٓ اَنْفُسِهِمْ
نٰدِمِيْنَ ۝٥٢ وَيَقُوْلُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَهٰٓؤُلَآءِ
الَّذِيْنَ اَقْسَمُوْا بِاللّٰهِ جَهْدَ اَيْمَانِهِمْ ۙ اِنَّهُمْ
لَمَعَكُمْ ۭ حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فَاَصْبَحُوْا خٰسِرِيْنَ ۝٥٣
يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَنْ يَّرْتَدَّ مِنْكُمْ عَنْ دِيْنِهٖ
فَسَوْفَ يَاْتِي اللّٰهُ بِقَوْمٍ يُّحِبُّهُمْ وَيُحِبُّوْنَهٗٓ ۙ
اَذِلَّةٍ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ اَعِزَّةٍ عَلَى الْكٰفِرِيْنَ ۡ

देगा या अपनी तरफ़ से कोई और बात ज़ाहिर करेगा[85] तो ये लोग अपने इस निफ़ाक़ (कपटाचार) पर, जिसे ये दिलों में छिपाए हुए हैं शर्मिन्दा होंगे। (53) और उस वक़्त ईमानवाले कहेंगे कि, "क्या ये वही लोग हैं जो अल्लाह के नाम से कड़ी-कड़ी क़समें खाकर यक़ीन दिलाते थे कि हम तुम्हारे साथ हैं?"— इनके सब आमाल बरबाद हो गए और आख़िरकार ये नाकाम और नामुराद होकर रहे।[86]

(54) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अगर तुम में से कोई अपने दीन से फिरता है (तो फिर जाए), अल्लाह और बहुत-से लोग ऐसे पैदा कर देगा जो अल्लाह को महबूब होंगे और अल्लाह उनको महबूब होगा, जो ईमानवालों पर नर्म और कुफ़्र करनेवालों पर सख़्त

---

85. यानी फ़ैसलकुन फ़तूह से कमतर दर्जे की कोई ऐसी चीज़ जिससे आम तौर पर लोगों को यह यक़ीन हो जाए कि हार-जीत का आख़िरी फ़ैसला इस्लाम ही के हक़ में होगा।

86. यानी जो कुछ उन्होंने इस्लाम की पैरवी में किया, नमाज़ें पढ़ीं, रोज़े रखे, ज़कात दी, जिहाद में शामिल हुए, इस्लाम के क़ानूनों की इताअत की, ये सब कुछ इस वजह से बरबाद हो गया कि उनके दिलों में इस्लाम के लिए ख़ुलूस न था और वे सबसे कटकर सिर्फ़ एक ख़ुदा के होकर न रह गए थे, बल्कि अपनी दुनिया की ख़ातिर उन्होंने अपने आप को ख़ुदा और उसके बाग़ियों के बीच आधा-आधा बाँट रखा था।

يُجَاهِدُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا يَخَافُوْنَ
لَوْمَةَ لَآئِمٍ ۭ ذٰلِكَ فَضْلُ اللّٰهِ يُؤْتِيْهِ مَنْ
يَّشَآءُ ۭ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۝ اِنَّمَا وَلِيُّكُمُ اللّٰهُ
وَرَسُوْلُهٗ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوا الَّذِيْنَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ

होंगे।[87] जो अल्लाह की राह में जिद्दोजुह्द करेंगे और किसी मलामत करनेवाले की मलामत से न डरेंगे।[88] यह अल्लाह का फ़ज़्ल है जिसे चाहता है देता है। अल्लाह वसीअ़ ज़रीओं (व्यापक संसाधनों) का मालिक है और सब कुछ जानता है।

(55) तुम्हारे दोस्त और राज़दार तो हक़ीक़त में सिर्फ़ अल्लाह और अल्लाह का रसूल और वे ईमानवाले हैं जो नमाज़ क़ायम करते हैं, ज़कात देते हैं और अल्लाह के आगे

---

87. 'मोमिनों पर नरम' होने का मतलब यह है कि एक आदमी ईमानवालों के मुक़ाबले में अपनी ताक़त कभी इस्तेमाल न करे। उसकी अक़्लमन्दी और ज़ेहानत, उसकी होशियारी, उसकी क़ाबिलियत, उसकी पहुँच और असर, उसका माल, उसकी जिस्मानी ताक़त, कोई चीज़ भी मुसलमानों को दबाने और सताने और नुक़सान पहुँचाने के लिए न हो। मुसलमान अपने दर्मियान उसको हमेशा एक नर्मख़ू, रहमदिल, हमदर्द और बुर्दबार (सहनशील) इनसान ही पाएँ। 'कुफ़्र करनेवालों पर सख़्त' होने का मतलब यह है कि एक मोमिन आदमी अपने ईमान की मज़बूती, दीनदारी के ख़ुलूस, उसूल की मज़बूती, सीरत की ताक़त और ईमान की फ़िरासत (विवेक) की वजह से इस्लाम के मुख़ालिफ़ों के मुक़ाबले में पत्थर की चट्टान के जैसे हो कि किसी तरह अपनी जगह से हटाया न जा सके। वह उसे कभी मोम की नाक और नर्म चारा न पाएँ। उन्हें जब भी उससे वास्ता पड़े तो उन पर यह साबित हो जाए कि यह अल्लाह का बन्दा मर सकता है मगर किसी क़ीमत पर बिक नहीं सकता और किसी दबाव से दब नहीं सकता।

88. यानी अल्लाह के दीन की पैरवी करने में, उसके अहकाम (आदेशों) पर अमल करने में और इस दीन (धर्म) के मुताबिक़ जो कुछ हक़ है उसे हक़ और जो कुछ बातिल है उसे बातिल कहने में उन्हें कोई झिझक न होगी। किसी की मुख़ालिफ़त, किसी के ताने और मज़ाक़, किसी के एतिराज़ और किसी की फब्तियों और आवाज़ों की वे परवा न करेंगे। अगर आम लोगों की राय इस्लाम के मुख़ालिफ़ हो और इस्लाम के तरीक़े पर चलने के मानी अपने आपको दुनिया भर में नक्कू बना लेने के हों तब भी वे उसी राह पर चलेंगे जिसे वे सच्चे दिल से हक़ जानते हैं।

وَيُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَهُمْ رٰكِعُوْنَ ۝٥٥ وَمَنْ يَّتَوَلَّ
اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فَاِنَّ حِزْبَ
اللّٰهِ هُمُ الْغٰلِبُوْنَ ۝٥٦ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ع
لَا تَتَّخِذُوا الَّذِيْنَ اتَّخَذُوْا دِيْنَكُمْ هُزُوًا وَّ
لَعِبًا مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ
وَالْكُفَّارَ اَوْلِيَآءَ ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِيْنَ ۝٥٧ وَاِذَا نَادَيْتُمْ اِلَى الصَّلٰوةِ اتَّخَذُوْهَا
هُزُوًا وَّلَعِبًا ۭ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَوْمٌ لَّا يَعْقِلُوْنَ ۝٥٨

झुकनेवाले हैं। (56) और जो अल्लाह और उसके रसूल और ईमानवालों को अपना दोस्त बना ले उसे मालूम हो कि अल्लाह की जमाअत ही ग़ालिब रहनेवाली है।

(57) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, तुमसे पहले के अहले-किताब में से जिन लोगों ने तुम्हारे दीन को मज़ाक़ और तफ़रीह का सामान बना लिया है, उन्हें और (हक़ के) दूसरे इनकारियों को अपना दोस्त और साथी न बनाओ। अल्लाह से डरो अगर तुम ईमानवाले हो। (58) जब तुम नमाज़ के लिए पुकारते हो तो वे उसका मज़ाक़ उड़ाते और उससे खेलते हैं।[89] इसकी वजह यह है कि वे अक़्ल नहीं रखते।[90]

---

89. यानी अज़ान की आवाज़ सुनकर उसकी नक़लें उतारते हैं, मज़ाक़ उड़ाने के लिए उसके अलफ़ाज़ बदलते और तोड़-मरोड़ देते हैं और उस पर आवाज़ें कसते हैं।

90. यानी उनकी ये हरकतें सिर्फ़ बे-अक़्ली का नतीजा हैं। अगर वे जाहिलियत और नादानी में पड़े न होते तो मुसलमानों से मज़हबी इख़्तिलाफ़ रखने के बावजूद ऐसी गिरी हुई हरकतें उनसे न होतीं। आख़िर कौन अक़्लमन्द आदमी यह पसन्द कर सकता है कि जब कोई गरोह अल्लाह की इबादत के लिए बुलाए तो उसका मज़ाक़ उड़ाया जाए।

قُلْ يٰۤاَهْلَ الْكِتٰبِ هَلْ تَنْقِمُوْنَ مِنَّاۤ اِلَّاۤ
اَنْ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَمَاۤ اُنْزِلَ اِلَيْنَا وَمَاۤ اُنْزِلَ
مِنْ قَبْلُ ۙ وَاَنَّ اَكْثَرَكُمْ فٰسِقُوْنَ ۝٥٩ قُلْ هَلْ
اُنَبِّئُكُمْ بِشَرٍّ مِّنْ ذٰلِكَ مَثُوْبَةً عِنْدَ اللّٰهِ ؕ
مَنْ لَّعَنَهُ اللّٰهُ وَغَضِبَ عَلَيْهِ وَجَعَلَ مِنْهُمُ
الْقِرَدَةَ وَالْخَنَازِيْرَ وَعَبَدَ الطَّاغُوْتَ ؕ اُولٰٓئِكَ
شَرٌّ مَّكَانًا وَّاَضَلُّ عَنْ سَوَآءِ السَّبِيْلِ ۝٦٠

(59) इनसे कहो, "ऐ किताबवालो, तुम जिस बात पर हम से बिगड़े हो, वह इसके सिवा और क्या है कि हम अल्लाह पर और दीन की उस तालीम पर ईमान ले आए हैं जो हमारी तरफ़ उतरी है और हमसे पहले भी उतरी थी। और तुम में से ज़्यादातर लोग फ़ासिक़ (नाफ़रमान) हैं।" (60) फिर कहो, "क्या मैं उन लोगों की निशानदेही करूँ जिनका अंजाम ख़ुदा के यहाँ फ़ासिक़ों (नाफ़रमानों) के अंजाम से भी बुरा है? वे जिनपर ख़ुदा ने लानत की, जिन पर उसका ग़ज़ब टूटा, जिनमें से बन्दर और सूअर बनाए गए, जिन्होंने ताग़ूत की बन्दगी की, उनका दर्जा और भी ज़्यादा बुरा है और वे 'सवाउस्सबील' (सीधे रास्ते) से बहुत ज़्यादा भटके हुए हैं।"[91]

91. लतीफ़ (सूक्ष्म) इशारा है ख़ुद यहूदियों की तरफ़, जिनका अपना इतिहास यह कह रहा है कि बार-बार वे ख़ुदा के ग़ज़ब और उसकी लानत में गिरफ़्तार हुए। सब्त का क़ानून तोड़ने पर उनकी क़ौम के बहुत-से लोगों की सूरतें बिगड़ गईं। यहाँ तक कि वे गिरावट की उस हद को पहुँचे कि ताग़ूत की बन्दगी तक उन्हें करनी पड़ी। तो कहने का मतलब यह है कि आख़िर तुम्हारी बेहयाई और मुजरिमाना बेबाक़ी की कोई हद भी है कि ख़ुद फ़िस्क़ व फ़ुजूर (नाफ़रमानी और बदकारी) और इन्तिहाई अख़लाक़ी गिरावट में पड़े हो और अगर कोई दूसरा गरोह ख़ुदा पर ईमान लाकर सच्ची दीनदारी का तरीक़ा अपनाता है तो उसके पीछे हाथ धोकर पड़ जाते हो।

وَإِذَا جَاءُوكُمْ قَالُوا آمَنَّا وَقَد دَّخَلُوا بِالْكُفْرِ
وَهُمْ قَدْ خَرَجُوا بِهِ ۚ وَاللَّهُ أَعْلَمُ بِمَا كَانُوا
يَكْتُمُونَ ﴿٦١﴾ وَتَرَىٰ كَثِيرًا مِّنْهُمْ يُسَارِعُونَ فِي الْإِثْمِ
وَالْعُدْوَانِ وَأَكْلِهِمُ السُّحْتَ ۚ لَبِئْسَ مَا كَانُوا
يَعْمَلُونَ ﴿٦٢﴾ لَوْلَا يَنْهَاهُمُ الرَّبَّانِيُّونَ وَالْأَحْبَارُ
عَن قَوْلِهِمُ الْإِثْمَ وَأَكْلِهِمُ السُّحْتَ ۚ لَبِئْسَ مَا
كَانُوا يَصْنَعُونَ ﴿٦٣﴾ وَقَالَتِ الْيَهُودُ يَدُ اللَّهِ مَغْلُولَةٌ ۚ
غُلَّتْ أَيْدِيهِمْ وَلُعِنُوا بِمَا قَالُوا ۘ بَلْ يَدَاهُ مَبْسُوطَتَانِ

(61) जब ये तुम लोगों के पास आते हैं तो कहते हैं कि हम ईमान लाए, हालाँकि कुफ़्र लिए हुए आए थे और कुफ़्र ही लिए हुए वापस गए और अल्लाह ख़ूब जानता है जो कुछ ये दिलों में छिपाए हुए हैं। (62) तुम देखते हो कि इनमें से ज़्यादातर लोग गुनाह और ज़ुल्म व ज़्यादती के कामों में दौड़-धूप करते फिरते हैं और हराम के माल खाते हैं। बहुत बुरी हरकतें हैं जो ये कर रहे हैं। (63) क्यों इनके आलिम और मशाइख़ (मज़हबी पेशवा) उन्हें गुनाह पर ज़बान खोलने और हराम खाने से नहीं रोकते? यक़ीनन ज़िन्दगी का बहुत ही बुरा कारनामा है जो वे तैयार कर रहे हैं।

(64) यहूदी कहते हैं, अल्लाह के हाथ बँधे हुए हैं[92]— बाँधे गए इनके हाथ,[93] और

92. अरबी मुहावरे के मुताबिक़ किसी के हाथ बँधे हुए होने का मतलब यह है कि वह कंजूस है। देने और ख़ैरात करने से उसका हाथ रुका हुआ है। तो यहूदियों की इस बात का मतलब यह नहीं है कि हक़ीक़त में अल्लाह के हाथ बँधे हुए हैं, बल्कि मतलब यह है कि अल्लाह कंजूस है। चूँकि सदियों से यहूदी क़ौम ज़िल्लत और रुसवाई की हालत में पड़ी हुई थी और उसकी पिछली बड़ाई और अज़मत सिर्फ़ एक पुरानी कहानी बनकर रह गई थी, जिसके फिर से वापस आने का

يُنْفِقُ كَيْفَ يَشَآءُ ؕ وَلَيَزِيْدَنَّ كَثِيْرًا مِّنْهُمْ مَّا
اُنْزِلَ اِلَيْكَ مِنْ رَّبِّكَ طُغْيَانًا وَّكُفْرًا ؕ وَاَلْقَيْنَا
بَيْنَهُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَآءَ اِلٰى يَوْمِ الْقِيٰمَةِ ؕ

लानत पड़ी इन पर उस बकवास की बदौलत जो ये करते हैं[94]— अल्लाह के हाथ तो खुले हैं, जिस तरह चाहता है ख़र्च करता है।

हक़ीक़त यह है कि जो कलाम तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमपर उतरा है वह इनमें से ज़्यादातर लोगों की सरकशी और बातिल परस्ती में उल्टे इज़ाफ़े का सबब बन गया है,[95] और (इसके बदले में) हमने उनके बीच क़ियामत तक के लिए अदावत और दुश्मनी डाल

कोई इमकान उन्हें नज़र नहीं आता था। इसलिए आम तौर से अपनी क़ौमी मुसीबतों पर मातम करते हुए उस क़ौम के नादान लोग यह बेहूदा जुमला कहा करते थे कि (अल्लाह पनाह में रखे) ख़ुदा तो कंजूस हो गया है, उसके ख़ज़ाने का मुँह बन्द है, हमें देने के लिए अब उसके पास आफ़तों और मुसीबतों के सिवा और कुछ नहीं रहा। यह बात कुछ यहूदियों तक ही महदूद नहीं, दूसरी क़ौमों के जाहिल लोगों का भी यही हाल है कि जब उनपर कोई सख़्त वक़्त आता है तो ख़ुदा की तरफ़ पलटने के बजाय वे जल-जलकर इस तरह की गुस्ताख़ी की बातें किया करते हैं।

93. यानी कंजूसी में ये ख़ुद पड़े हुए हैं। दुनिया में अपनी कंजूसी और अपनी तंगदिली के लिए कहावत बन चुके हैं।

94. यानी इस तरह की गुस्ताख़ियाँ और ताने भरी बातें करके ये चाहे कि ख़ुदा इन पर मेहरबान हो जाए और इनायतों की बारिश करने लगे तो यह किसी तरह मुमकिन नहीं, बल्कि इन बातों का उल्टा नतीजा यह है कि ये लोग ख़ुदा की नज़रे-इनायत (कृपादृष्टि) से और भी ज़्यादा महरूम और उसकी रहमत से और ज़्यादा दूर होते जाते हैं।

95. यानी बजाय इसके कि इस कलाम को सुनकर वे कोई फ़ायदेमन्द सबक़ लेते, अपनी ग़लतियों और ग़लतकारियों पर ख़बरदार होकर उनके नुक़सान को पूरा करते, और अपनी गिरी हुई हालत की वजह मालूम करके सुधार की तरफ़ तवज्जोह करते, उन पर इसका उल्टा असर यह हुआ है कि ज़िद में आकर उन्होंने हक़ और सच्चाई की मुख़ालिफ़त शुरू कर दी है। नेकी और सुधार के भूले हुए सबक़ को सुनकर ख़ुद सीधे रास्ते पर आना तो दूर की बात उनकी उल्टी कोशिश यह है कि जो आवाज़ इस सबक़ को याद दिला रही है उसे दबा दें, ताकि कोई दूसरा भी उसे न सुनने पाए।

كُلَّمَآ اَوۡقَدُوۡا نَارًا لِّلۡحَرۡبِ اَطۡفَاَهَا اللّٰهُ ۙ وَيَسۡعَوۡنَ
فِى الۡاَرۡضِ فَسَادًا ؕ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الۡمُفۡسِدِيۡنَ ۝٦٤
وَلَوۡ اَنَّ اَهۡلَ الۡكِتٰبِ اٰمَنُوۡا وَاتَّقَوۡا لَكَفَّرۡنَا عَنۡهُمۡ
سَيِّاٰتِهِمۡ وَلَاَدۡخَلۡنٰهُمۡ جَنّٰتِ النَّعِيۡمِ ۝٦٥ وَلَوۡ اَنَّهُمۡ
اَقَامُوا التَّوۡرٰٮةَ وَالۡاِنۡجِيۡلَ وَمَاۤ اُنۡزِلَ اِلَيۡهِمۡ
مِّنۡ رَّبِّهِمۡ لَاَكَلُوۡا مِنۡ فَوۡقِهِمۡ وَمِنۡ تَحۡتِ اَرۡجُلِهِمۡ‌ؕ
مِنۡهُمۡ اُمَّةٌ مُّقۡتَصِدَةٌ ؕ وَكَثِيۡرٌ مِّنۡهُمۡ سَآءَ مَا

दी है। जब कभी ये जंग की आग भड़काते हैं अल्लाह उसको ठण्डा कर देता है। ये ज़मीन में बिगाड़ फैलाने की कोशिश कर रहे हैं, मगर अल्लाह फ़साद पैदा करनेवालों को हरगिज़ पसन्द नहीं करता।

(65) अगर (इस सरकशी के बजाय) ये अहले-किताब ईमान ले आते और ख़ुदातरसी की रविश इख़्तियार करते तो हम इनकी बुराइयाँ इनसे दूर कर देते और इनको नेमत भरी जन्नतों में पहुँचाते। (66) काश! इन्होंने तौरात और इंजील और उन दूसरी किताबों को क़ायम किया होता जो इनके रब की तरफ़ से इनके पास भेजी गई थीं। ऐसा करते तो इनके लिए ऊपर से रोज़ी बरसती और नीचे से उबलती।[96] हालाँकि इनमें कुछ लोग सीधे

96. बाइबल की किताब लैव्यव्यवस्था के अध्याय-26 और व्यवस्थाविवरण के अध्याय-28 में हज़रत मूसा *(अलै.)* की एक तक़रीर बयान की गई है जिसमें उन्होंने बनी-इसराईल को बड़ी तफ़सील के साथ बताया है कि अगर तुम अल्लाह के हुक्मों की ठीक-ठीक पैरवी करोगे तो किस-किस तरह अल्लाह की रहमतों और बरकतों से नवाज़े जाओगे, और अगर अल्लाह की किताब को पीठ पीछे डालकर नाफ़रमानियाँ करोगे तो किस तरह बलाएँ और मुसीबतें और तबाहियाँ हर तरफ़ से तुम पर टूट पड़ेंगी। हज़रत मूसा की वह तक़रीर क़ुरआन के इस छोटे-से जुमले की बेहतरीन तफ़सीर है।

ع ١٠ يَعْمَلُوْنَ ۞ يَاَيُّهَا الرَّسُوْلُ بَلِّغْ مَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ
مِنْ رَّبِّكَ ۭ وَاِنْ لَّمْ تَفْعَلْ فَمَا بَلَّغْتَ رِسَالَتَهٗ ۭ
وَاللّٰهُ يَعْصِمُكَ مِنَ النَّاسِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا يَهْدِي
الْقَوْمَ الْكٰفِرِيْنَ ۞ قُلْ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ لَسْتُمْ عَلٰى
شَيْءٍ حَتّٰى تُقِيْمُوا التَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ وَمَآ اُنْزِلَ
اِلَيْكُمْ مِّنْ رَّبِّكُمْ ۭ وَلَيَزِيْدَنَّ كَثِيْرًا مِّنْهُمْ مَّآ اُنْزِلَ

रास्ते पर चलनेवाले भी हैं, लेकिन इनमें से ज़्यादातर लोग बद-अमल हैं।

(67) ऐ पैग़म्बर, जो कुछ तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम पर उतारा गया है वह लोगों तक पहुँचा दो। अगर तुमने ऐसा नहीं किया तो उसकी पैग़म्बरी का हक़ अदा नहीं किया। अल्लाह तुमको लोगों की बुराई से बचानेवाला है। यक़ीन रखो कि वह हक़ का इनकार करनेवालों को (तुम्हारे मुक़ाबले में) कामयाबी का रास्ता हरगिज़ न दिखाएगा। (68) साफ़ कह दो कि "ऐ अहले-किताब! तुम हरगिज़ किसी अस्ल पर नहीं हो जब तक कि तौरात और इंजील और उन दूसरी किताबों को क़ायम न करो जो तुम्हारे रब की तरफ़ से उतारी गई हैं।"[97] ज़रूर है कि यह फ़रमान जो तुम पर उतारा गया है इनमें से

97. तौरात और इंजील को क़ायम करने से मुराद सच्चाई और ईमानदारी के साथ उनकी पैरवी करना और उन्हें अपनी ज़िन्दगी का दस्तूर बनाना है। इस मौक़े पर यह बात अच्छी तरह ज़ेहन में बिठा लेनी चाहिए कि बाइबल की मुक़द्दस किताबों के मजमूए में एक तरह की बातें तो वे हैं जो यहूदी और ईसाई मुसन्निफ़ों (लेखकों) ने अपने तौर पर लिखी हैं। और दूसरी तरह की बातें वे हैं जो अल्लाह के फ़रमान या हज़रत मूसा, ईसा *(अलै.)* और दूसरे पैग़म्बरों की बातें होने की हैसियत से लिखी हुई हैं और जिनमें इस बात की तशरीह (व्याख्या) है कि अल्लाह ने ऐसा फ़रमाया या फ़ुलाँ नबी ने ऐसा कहा। उनमें से पहले क़िस्म की बातों को अलग करके अगर कोई आदमी सिर्फ़ दूसरी तरह की बातों का जाइज़ा ले तो आसानी से यह देख सकता है कि उनकी तालीम और क़ुरआन की तालीम में कोई नुमायाँ फ़र्क़ नहीं है। हालाँकि तर्जमा करनेवालों और घटाने-बढ़ानेवालों और मतलब और मानी बतानेवालों की दख़लअंदाज़ी (हस्तक्षेप) से और कुछ जगह ज़बानी रिवायत करनेवालों की ग़लती से ये दूसरी तरह की बातें भी पूरी तरह महफ़ूज़

إِلَيْكَ مِنْ رَّبِّكَ طُغْيَانًا وَّكُفْرًا ۚ فَلَا تَأْسَ
عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ۝٦٨ إِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ
الَّذِيْنَ هَادُوْا وَالصّٰبِئُوْنَ وَالنَّصٰرٰى مَنْ اٰمَنَ
بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا فَلَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝٦٩ لَقَدْ اَخَذْنَا
مِيْثَاقَ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ وَاَرْسَلْنَآ اِلَيْهِمْ رُسُلًا ۭ

ज़्यादातर की सरकशी और इनकार को और ज़्यादा बढ़ा देगा।[98] मगर इनकार करनेवालों के हाल पर कुछ अफ़सोस न करो। (69) (यक़ीन जानो कि यहाँ ठेकेदारी किसी की भी नहीं है) मुसलमान हों या यहूदी, साबी हों या ईसाई, जो भी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान लाएगा और नेक अमल करेगा बेशक उसके लिए न किसी ख़ौफ़ का मक़ाम है, न रंज का।[99]

(70, 71) हमने बनी-इसराईल से पुख़्ता अहद लिया और उनकी तरफ़ बहुत-से रसूल

नहीं रही हैं। लेकिन इसके बावजूद कोई आदमी यह महसूस किए बग़ैर नहीं रह सकता कि उनमें ठीक उसी ख़ालिस (विशुद्ध) तौहीद यानी ऐकेश्वरवाद की दावत दी गई है जिसकी तरफ़ क़ुरआन बुला रहा है, वही अक़ीदे पेश किए गए हैं जो क़ुरआन पेश करता है और ज़िन्दगी के उसी तरीक़े की तरफ़ रहनुमाई की गई है जिसकी हिदायत क़ुरआन देता है। इसलिए हक़ीक़त यह है कि अगर यहूदी और ईसाई उसी तालीम पर क़ायम रहते जो इन किताबों में ख़ुदा और पैग़म्बरों की तरफ़ से है तो यक़ीनन नबी *(सल्ल०)* के दुनिया में नबी बनाकर भेजे जाने के वक़्त वे एक हक़परस्त और सीधे रास्ते पर चलनेवाले गरोह पाए जाते और उन्हें क़ुरआन के अन्दर वही रौशनी नज़र आती जो पिछली किताबों में पाई जाती थी। इस सूरत में उनके लिए नबी *(सल्ल०)* की पैरवी इख़्तियार करने में मज़हब की तब्दीली का सिरे से कोई सवाल पैदा ही न होता, बल्कि वे उसी रास्ते पर चलते हुए, जिस पर वे पहले से चले आ रहे थे, नबी *(सल्ल०)* की पैरवी करने वाले बनकर आगे चल सकते थे।

98. यानी यह बात सुनकर ठण्डे दिल से ग़ौर करने और हक़ीक़त को समझने के बजाय वे ज़िद में आकर और ज़्यादा सख़्त मुख़ालिफ़त शुरू कर देंगे।

99. देखें सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-62, हाशिया-80।

كُلَّمَا جَآءَهُمْ رَسُوْلٌۢ بِمَا لَا تَهْوٰٓى اَنْفُسُهُمْ ۙ
فَرِيْقًا كَذَّبُوْا وَ فَرِيْقًا يَّقْتُلُوْنَ ﴿٧٠﴾ وَحَسِبُوْٓا اَلَّا
تَكُوْنَ فِتْنَةٌ فَعَمُوْا وَ صَمُّوْا ثُمَّ تَابَ اللّٰهُ
عَلَيْهِمْ ثُمَّ عَمُوْا وَصَمُّوْا كَثِيْرٌ مِّنْهُمْ ؕ وَ اللّٰهُ
بَصِيْرٌۢ بِمَا يَعْمَلُوْنَ ﴿٧١﴾ لَقَدْ كَفَرَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا
اِنَّ اللّٰهَ هُوَ الْمَسِيْحُ ابْنُ مَرْيَمَ ؕ وَقَالَ الْمَسِيْحُ
يٰبَنِىْٓ اِسْرَآءِيْلَ اعْبُدُوا اللّٰهَ رَبِّىْ وَ رَبَّكُمْ ؕ
اِنَّهٗ مَنْ يُّشْرِكْ بِاللّٰهِ فَقَدْ حَرَّمَ اللّٰهُ عَلَيْهِ
الْجَنَّةَ وَمَاْوٰىهُ النَّارُ ؕ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ﴿٧٢﴾

भेजे, मगर जब कभी उनके पास कोई रसूल उनके मन की ख़ाहिशों के ख़िलाफ़ कुछ लेकर आया तो किसी को उन्होंने झुठलाया और किसी को क़त्ल कर दिया और अपने नज़दीक यह समझे कि कोई फ़ितना पैदा न होगा। इसलिए अन्धे और बहरे बन गए। फिर अल्लाह ने उन्हें माफ़ किया तो उनमें से ज़्यादातर लोग और ज़्यादा अन्धे और बहरे बनते चले गए। अल्लाह उनकी ये सब हरकतें देखता रहा है।

(72) यक़ीनन कुफ़्र (इनकार) किया उन लोगों ने जिन्होंने कहा कि अल्लाह मरयम का बेटा मसीह ही है। हालाँकि मसीह ने कहा था कि "ऐ बनी-इसराईल, अल्लाह की बन्दगी करो जो मेरा रब भी है और तुम्हारा रब भी।" जिसने अल्लाह के साथ किसी को शरीक ठहराया उस पर अल्लाह ने जन्नत हराम कर दी और उसका ठिकाना जहन्नम है और ऐसे ज़ालिमों का कोई मददगार नहीं।

لَقَدْ كَفَرَ الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّ اللّٰهَ ثَالِثُ
ثَلٰثَةٍ ۘ وَمَا مِنْ اِلٰهٍ اِلَّآ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ؕ وَاِنْ
لَّمْ يَنْتَهُوْا عَمَّا يَقُوْلُوْنَ لَيَمَسَّنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا
مِنْهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝٧٣ اَفَلَا يَتُوْبُوْنَ اِلَى
اللّٰهِ وَيَسْتَغْفِرُوْنَهٗ ؕ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٧٤
مَا الْمَسِيْحُ ابْنُ مَرْيَمَ اِلَّا رَسُوْلٌ ۚ قَدْ خَلَتْ
مِنْ قَبْلِهِ الرُّسُلُ ؕ وَاُمُّهٗ صِدِّيْقَةٌ ؕ كَانَا
يَاْكُلٰنِ الطَّعَامَ ؕ اُنْظُرْ كَيْفَ نُبَيِّنُ لَهُمُ الْاٰيٰتِ
ثُمَّ انْظُرْ اَنّٰى يُؤْفَكُوْنَ ۝٧٥ قُلْ اَتَعْبُدُوْنَ

---

(73) यक़ीनन कुफ़्र किया उन लोगों ने जिन्होंने कहा कि अल्लाह तीन में का एक है, हालाँकि एक ख़ुदा के सिवा कोई ख़ुदा नहीं है। अगर ये लोग अपनी इन बातों से बाज़ न आएँ तो इनमें से जिस-जिस ने कुफ़्र किया है उसको दर्दनाक सज़ा दी जाएगी। (74) फिर क्या ये अल्लाह से तौबा न करेंगे और उससे माफ़ी न माँगेंगे? अल्लाह बहुत माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।

(75) मरयम का बेटा मसीह इसके सिवा कुछ नहीं कि बस एक रसूल था, उससे पहले और भी बहुत-से रसूल गुज़र चुके थे, उसकी माँ एक हक़परस्त (सत्यवती) औरत थी और वे दोनों खाना खाते थे। देखो, हम किस तरह उनके सामने हक़ीक़त की निशानियाँ वाज़ेह करते हैं, फिर देखो ये किधर उल्टे फिरे जाते हैं।[100]

---

100. इन कुछ ही लफ़्ज़ों में ईसाइयों के इस अक़ीदे का कि मसीह *(अलै.)* ख़ुदा हैं, साफ़ तौर पर रद्द किया गया है और उससे ज़्यादा सफ़ाई मुमकिन नहीं है। मसीह *(अलै.)* के बारे में अगर कोई यह मालूम करना चाहे कि हक़ीक़त में वह क्या था तो इन अलामतों से बग़ैर किसी शुब्हे

مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ مَا لَا يَمْلِكُ لَكُمْ ضَرًّا وَّلَا نَفْعًا ؕ
وَاللّٰهُ هُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ۝٧٦ قُلْ يٰۤاَهْلَ
الْكِتٰبِ لَا تَغْلُوْا فِيْ دِيْنِكُمْ غَيْرَ الْحَقِّ وَلَا
تَتَّبِعُوْۤا اَهْوَآءَ قَوْمٍ قَدْ ضَلُّوْا مِنْ قَبْلُ وَ
اَضَلُّوْا كَثِيْرًا وَّضَلُّوْا عَنْ سَوَآءِ السَّبِيْلِ ۝٧٧ ع

(76) इनसे कहो : क्या तुम अल्लाह को छोड़कर उसकी परस्तिश करते हो जो न तुम्हारे लिए नुक़सान का इख़्तियार रखता है और न फ़ायदे का? हालाँकि सबकी सुननेवाला और सब कुछ जाननेवाला तो अल्लाह ही है। (77) कहो : ऐ अहले-किताब, अपने दीन (धर्म) में नाहक़ हद से आगे न बढ़ो और उन लोगों के ख़यालों की पैरवी न करो जो तुमसे पहले ख़ुद गुमराह हुए और बहुतों को गुमराह किया और 'सवाउस्सबील' (सीधे रास्ते) से भटक गए।[101]

के मालूम कर सकता है कि वह सिर्फ़ एक इनसान था। ज़ाहिर है कि जो एक औरत के पेट से पैदा हुआ, जिसका शजरा-ए-नसब (वंशावली) तक मौजूद है, जो इनसानी जिस्म रखता था, जो उन सभी हदों से महदूद और उन तमाम पाबन्दियों में जकड़ा हुआ और उन सभी सिफ़तों को रखता था जो इनसान के लिए ख़ास हैं। जो सोता था, खाता था, गर्मी और सर्दी महसूस करता था, यहाँ तक कि जिसे शैतान के ज़रीए से आज़माइश में भी डाला गया, उसके बारे में कौन अक़्लमन्द इनसान यह सोच सकता है कि वह ख़ुद ख़ुदा है या ख़ुदाई में ख़ुदा का शरीक और साझीदार है। लेकिन यह इनसानी ज़ेहन की गुमराही का एक अजीब करिश्मा है कि ईसाई ख़ुद अपनी मज़हबी किताबों में मसीह की ज़िन्दगी को साफ़ तौर पर एक इनसानी ज़िन्दगी पाते हैं और फिर भी उसे ख़ुदा की सिफ़त रखनेवाला समझने और कहने पर ज़िद किए चले जाते हैं। हक़ीक़त यह है कि ये लोग उस तारीख़ी (ऐतिहासिक) मसीह के क़ायल ही नहीं हैं जो वाक़िआत की दुनिया में ज़ाहिर हुआ था, बल्कि उन्होंने ख़ुद अपनी अटकल और गुमान से एक ख़याली मसीह घड़कर उसे ख़ुदा बना लिया है।

101. इशारा है उनकी गुमराह क़ौमों की तरफ़ जिनसे ईसाइयों ने ग़लत अक़ीदे और बातिल तरीक़े सीखे हैं। ख़ास तौर से यूनान के फ़लसफ़ियों की तरफ़, जिनके ख़यालों से असर लेकर ईसाई उस सीधे रास्ते से हट गए जिसकी तरफ़ शुरू में उनकी रहनुमाई की गई थी। मसीह के शुरू के

पैरवी करनेवाले जो अक़ीदे रखते थे वे बड़ी हद तक उस हक़ीक़त के मुताबिक़ थे जिसको उन्होंने ख़ुद अपनी आँखों से देखा था और जिसकी तालीम उनके हिदायत करनेवाले और रहनुमा ने उनको दी थी। मगर बाद के ईसाइयों ने एक तरफ़ मसीह की अक़ीदत और एहतिराम में हद से आगे बढ़कर और दूसरी तरफ़ पड़ोसी क़ौमों के अन्धविश्वासों और फ़लसफ़ों से मुतास्सिर होकर, अपने अक़ीदों के बढ़ा-चढ़ाकर फ़लसफ़ियाना मतलब और मानी निकालने शुरू कर दिए और एक बिलकुल ही नया मज़हब तैयार कर लिया जिसको मसीह की असल तालीमात से दूर का वास्ता भी न रहा। इस बारे में ख़ुद एक मसीही दीनियात के आलिम (रिवरेंड चार्ल्स एण्डरसन स्कॉट) का बयान पढ़ने के क़ाबिल है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के चौदहवें एडिशन में 'यसूअ मसीह' (Jesus Christ) के उनवान पर उसने जो मज़मून लिखा है उसमें वह कहता है-

''पहली तीन इंजीलों (मत्ती, मरक़ुस और लूक़ा) में कोई चीज़ ऐसी नहीं है जिससे यह गुमान किया जा सकता हो कि इन इंजीलों के लिखनेवाले यीशू को इनसान के सिवा कुछ और समझते थे। उनकी निगाह में वह एक इनसान था, ऐसा इनसान जो ख़ास तौर पर ख़ुदा की रूह से फ़ैज़याब (लाभान्वित) हुआ था और ख़ुदा के साथ एक ऐसा कभी न टूटनेवाला ताल्लुक़ रखता था जिसकी वजह से अगर उसको ख़ुदा का बेटा कहा जाए तो बिलकुल ठीक है। ख़ुद मत्ती उसका ज़िक्र बढ़ई के बेटे की हैसियत से करता है और एक जगह बयान करता है कि पतरस ने उसको 'मसीह' तस्लीम करने के बाद 'अलग एक तरफ़ ले जाकर उसे मलामत (भर्त्सना) की' (मत्ती-16, 22)। लूक़ा में हम देखते हैं कि सलीब के वाक़िए के बाद यीशू के दो शागिर्द अमाऊस की तरफ़ जाते हुए उसका ज़िक्र इस हैसियत से करते हैं कि 'वह ख़ुदा और सारी उम्मत के नज़दीक काम और कलाम में क़ुदरतवाला नबी था' (लूक़ा 24, 19)। यह बात ख़ास तौर पर तवज्जोह देने की है कि हालाँकि मरक़ुस के मज़मून से पहले मसीहियों में यसूअ के लिए लफ़्ज़ 'ख़ुदावन्द' का इस्तेमाल आम तौर पर चल पड़ा था, लेकिन न मरक़ुस की इंजील में यीशू को कहीं इस लफ़्ज़ से याद किया गया है और न मत्ती की इंजील में। इसके बरख़िलाफ़ दोनों किताबों में यह लफ़्ज़ अल्लाह के लिए बहुत इस्तेमाल किया गया है। यीशू के आज़माइश में पड़ने का ज़िक्र तीनों इंजीलें पूरे ज़ोर के साथ करती हैं, जैसा कि इस वाक़िए की शान के मुताबिक़ है। मगर मरक़ुस की फ़िदयेवाली इबारत (मरक़ुस 10, 45) और आख़िरी फ़सह के मौक़े पर कुछ अलफ़ाज़ को अलग करके इन किताबों में कहीं उस वाक़िए को वे मानी नहीं पहनाए गए हैं जो बाद में पहनाए गए। यहाँ तक कि इस बात की तरफ़ कहीं इशारा तक नहीं किया गया कि यीशू की मौत का इनसान के गुनाह और उसके कफ़्फ़ारे यानी प्रायश्चित से कोई ताल्लुक़ था।''

आगे चलकर वह फिर लिखता है–

''यह बात कि यीशू ख़ुद अपने आपको एक नबी की हैसियत से पेश करता था इंजीलों की कई इबारतों से ज़ाहिर होता है। जैसे यह कि 'मुझे आज और कल और परसों अपनी राह पर चलना ज़रूर है, क्योंकि मुमकिन नहीं कि नबी यरूशलम से बाहर हलाक हो।' (लूक़ा 13,23)। वह अकसर अपना ज़िक्र इब्ने-आदम (आदम का बेटा) के नाम से करता है।.... यीशू कहीं अपने आपको 'इब्नुल्लाह' यानी अल्लाह का बेटा नहीं कहता। उसके दूसरे हम-अस्र (समकालीन) जब

उसके बारे में ये अलफ़ाज़ इस्तेमाल करते हैं तो शायद उसका मतलब भी इसके सिवा कुछ नहीं होता कि वह उसको ख़ुदा का ममसूह (मसह किया हुआ) समझते हैं। अलबत्ता वह अपने आपको ख़ालिस और आज़ाद तौर पर बेटे के लफ़्ज़ से बयान करता है.... इसके साथ यह भी कि वह ख़ुदा के साथ अपने ताल्लुक़ को बयान करने के लिए भी 'बाप' का लफ़्ज़ इसी इतलाक़ी (संज्ञात्मक) शान में इस्तेमाल करता है..... इस ताल्लुक़ के बारे में वह अपने आपको अकेला नहीं समझता था, बल्कि शुरू के दौर में दूसरे इनसानों को भी ख़ुदा के साथ इस ख़ास गहरे ताल्लुक़ में अपना साथी समझता था। अलबत्ता बाद के तजुर्बे और इनसानी तबीअतों के गहरे मुताले ने उसे यह समझने पर मजबूर कर दिया कि इस मामले में वह अकेला है।"

फिर यही लेखक लिखता है—

"पुन्तिकुस्त त्योहार के मौक़े पर पतरस के ये अलफ़ाज़ कि 'एक इनसान जो ख़ुदा की तरफ़ से था' यीशू को इस हैसियत में पेश करते हैं जिसमें उसके हम-अस्र (समकालीन) इसको जानते और समझते थे।......इंजीलों से हमको मालूम होता है कि यीशू बचपन से जवानी तक बिलकुल फ़ितरी तौर पर जिस्मानी और ज़ेहनी नशो-नुमा (विकास) के मरहलों से गुज़रा। उसको भूख-प्यास लगती थी, वह थकता और सोता था, वह हैरत में पड़ सकता था, और हालात को जानने का मुहताज था, उसने दुख उठाया और मरा। उसने सिर्फ़ यही नहीं कि सब कुछ सुनने और सब कुछ देखनेवाला होने का दावा नहीं किया बल्कि साफ़ तौर पर इससे इनकार किया है.... हक़ीक़त में उसके हाज़िर और नाज़िर होने का अगर दावा किया जाए तो यह उस पूरे तसव्वुर के बिलकुल ख़िलाफ़ होगा जो हमें इंजीलों से हासिल होता है, बल्कि इस दावे के साथ आज़माइश के वाक़िए को और गित्समनी और खोपड़ी के मक़ाम पर जो वारदात गुज़री उनमें से किसी को भी इसकी मुताबक़त नहीं दी जा सकती, जब तक कि उन वाक़िओं को बिलकुल ग़ैर-हक़ीक़ी क़रार न दे दिया जाए, यह मानना पड़ेगा कि मसीह जब इन सारे हालात से गुज़रा तो वह इनसानी इल्म की आम महदूदियत अपने साथ लिए हुए था और इस महदूदियत में अगर कोई बचा हुआ था तो वह सिर्फ़ उसी हद तक जिस हद तक पैग़म्बराना निगाह और ख़ुदा के यक़ीनी शुहूद की बुनियाद पर हो सकता है। फिर मसीह को क़ादिरे-मुतलक़ (सर्वशक्तिमान) समझने की गुंजाइश तो इंजीलों में और भी कम है। कहीं इस बात का इशारा तक नहीं मिलता कि वे ख़ुदा से बेनियाज़ होकर ख़ुद मुख़्तार तौर पर काम करता था। इसके बरख़िलाफ़ वह बार-बार दुआ माँगने की आदत से और इस तरह के अलफ़ाज़ से कि 'यह चीज़ दुआ के सिवा किसी और ज़रीए से नहीं टल सकती।" इस बात का साफ़ इक़रार करता है कि उसकी ज़ात का दारोमदार बिलकुल ख़ुदा पर है। असल में यह बात उन इंजीलों की ऐतिहासिक हैसियत से भरोसेमन्द होने की एक अहम गवाही है कि हालाँकि उनकी तसनीफ़ और तरतीब उस ज़माने से पहले मुकम्मल न हुई थी जबकि मसीही कलीसा ने मसीह को ख़ुदा समझना शुरू कर दिया था, फिर भी इन दस्तावेज़ों में एक तरफ़ मसीह के हक़ीक़त में इनसान होने की गवाही महफ़ूज़ है और दूसरी तरफ़ उनके अन्दर कोई गवाही इस बात की मौजूद नहीं है कि मसीह अपने आपको ख़ुदा समझता था।"

इसके बाद यह मुसन्निफ़ (लेखक) फिर लिखता है—

"वह सेंट पॉल था जिसने एलान किया कि, उठाए जाने के वाक़िए के वक़्त इसी उठाए जाने के काम के ज़रीए से यीशू पूरे इख़्तियारात के साथ 'इब्नुल्लाह' अल्लाह के बेटे के मरतबे पर एलानिया फ़ाइज़ किया गया..... यह इब्नुल्लाह का लफ़्ज़ यक़ीनी तौर पर ज़ाती इब्नियत (बेटा होने) की तरफ़ एक इशारा अपने अन्दर रखता है जिसे पॉल ने दूसरी जगह यीशू को 'ख़ुदा का अपना बेटा' कह कर साफ़ कर दिया है। इस बात का फ़ैसला अब नहीं किया जा सकता कि क्या वह शुरू के ईसाइयों का गरोह था या पॉल जिसने मसीह के लिए 'ख़ुदावन्द' का ख़िताब असल मज़हबी मानी में इस्तेमाल किया। शायद यह काम पहले ज़िक्र किए गए गरोह का ही हो। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि वह पॉल था जिसने इस ख़िताब को पूरे मानी में बोलना शुरू किया, फिर अपने मक़सद को इस तरह और भी ज़्यादा वाज़ेह कर दिया कि 'ख़ुदावन्द यीशू मसीह' की तरफ़ बहुत-से वे तसव्वुर और इस्तलाही अलफ़ाज़ मुन्तक़िल कर दिए जो पुरानी मुक़द्दस (पवित्र) किताबों में ख़ुदावन्द यहोवा (अल्लाह) के लिए ख़ास थे। इसके साथ ही उसने मसीह को ख़ुदा की दानिश और ख़ुदा की अज़मत (महानता) के बराबर ठहराया और उसे ख़ालिस और आज़ाद मानी में ख़ुदा का बेटा ठहराया। फिर भी बहुत-सी हैसियतों और पहलुओं से मसीह को ख़ुदा के बराबर कर देने के बावजूद पॉल उसको क़तई तौर पर ख़ुदा कहने से बाज़ रहा।"

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के एक दूसरे मज़मून 'मसीहियत' (Christianity) में रेवरेण्ड जॉर्ज विलयम नॉक्स मसीही कलीसा के बुनियादी अक़ीदे पर बहस करते हुए लिखता है—

"तस्लीस के अक़ीदे (त्रिएकेश्वरवाद) का फ़िक्री (वैचारिक) साँचा यूनानी है और यहूदी तालीमात इसमें ढाली गई हैं। इस लिहाज़ से यह हमारे लिए एक अजीब क़िस्म का मुरक्कब (सम्मिश्रण) है, मज़हबी ख़यालात बाइबल के और ढले हुए एक अजनबी फ़लसफ़े की सूरतों में।

बाप, बेटा और रूहुल-क़ुदुस की इस्तिलाहें यहूदी ज़रीओं की जुटाई हुई हैं। आख़िरी इस्तिलाह हालाँकि ख़ुद यीशू ने शायद ही कभी इस्तेमाल की थी, और पॉल ने भी जो इसको इस्तेमाल किया उसका मतलब बिलकुल ग़ैर-वाज़ेह था। फिर भी यहूदी लिट्रेचर (साहित्य) में यह लफ़्ज़ शख़्सियत इख़्तियार करने के क़रीब पहुँच चुका था। इसलिए इस अक़ीदे का मसौदा (मवाद और मैटर) यहूदी है (हालाँकि इस मुरक्कब में शामिल होने से पहले वे भी यूनानी असरात से मग़लूब (पराभूत) हो चुका था) और मसला ख़ालिस यूनानी। असल सवाल जिस पर यह अक़ीदा बना, वह न कोई अख़लाक़ी सवाल था न मज़हबी, बल्कि वह सरासर एक फ़लसफ़ियाना सवाल था, यानी यह कि इन तीनों अक़ानीम (बाप, बेटा और रूह) के दर्मियान ताल्लुक़ की हक़ीक़त क्या है? कलीसा (चर्च) ने इसका जो जवाब दिया वह उस अक़ीदे में दर्ज है जो नीक़िया की कौंसिल में मुक़र्रर किया गया था, और उसे देखने से साफ़ मालूम होता है कि वह अपनी तमाम ख़ासियतों और विशेषताओं में बिलकुल यूनानी फ़िक्र का नमूना है।

इसी सिलसिले में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के एक और मज़मून 'कलीसा का इतिहास' (Church History) भी पढ़ने लायक़ हैं—

"तीसरी सदी ईसवी के ख़त्म होने से पहले मसीह को आम तौर पर 'कलाम' का जिस्मानी ज़ुहूर तो मान लिया गया था। लेकिन फिर भी बहुत-से ईसाई ऐसे थे जो मसीह के ख़ुदा होने के

क़ाइल नहीं थे। चौथी सदी में इस मसले पर सख़्त बहसें छिड़ी हुई थीं, जिनसे कलीसा (चर्च) की बुनियादें हिल गई थीं। आख़िरकार 325 ई॰ में नीक़िया की कौंसिल ने मसीह की ख़ुदाई को बाक़ायदा सरकारी तौर पर असल मसीही अक़ीदा क़रार दिया और ख़ास अलफ़ाज़ में उसे मुरत्तब (संकलित) कर दिया। हालाँकि इसके बाद भी कुछ मुद्दत तक झगड़ा चलता रहा, लेकिन आख़िरी फ़तह नीक़िया ही के फ़ैसले की हुई जिसे पूरब और पश्चिम में इस हैसियत से तस्लीम कर लिया गया कि सही अक़ीदे के ईसाइयों का ईमान इसी पर होना चाहिए। बेटे के ख़ुदा होने के साथ रूह के ख़ुदा होने को भी तस्लीम किया गया और उसे 'इस्तिबाग़' (बपतिस्मा देते समय पढ़े जानेवाले) कलिमे और उस वक़्त के शआइर (धार्मिक प्रतीकों) में बाप और बेटे के साथ जगह दी गई। इस तरह नीक़िया में मसीह का जो तसव्वुर क़ायम किया गया उसका नतीजा यह हुआ कि त्रिएकेश्वरवाद (Trinity) का अक़ीदा असल मसीही मज़हब का एक कभी न अलग होनेवाला हिस्सा क़रार पाया।

फिर इस दावे पर कि 'बेटे की उलूहियत (ईश्वरत्व) मसीह की शक्ल में सामने आई थी' एक दूसरा मसला पैदा हुआ जिस पर चौथी सदी में और उसके बाद भी मुद्दतों तक बहस और मुनाज़िरों का सिलसिला जारी रहा। मसला यह था कि मसीह की शख़्सियत में ख़ुदाई और इनसानियत के दर्मियान क्या ताल्लुक़ है? सन 451 ई॰ में कॉल्सडेन की कौंसिल ने इसका यह फ़ैसला किया कि मसीह की ज़ात में दो मुकम्मल तबीअतें जमा हैं, एक इलाही तबीअत, दूसरी इनसानी तबीअत और दोनों एक जगह जमा हो जाने के बाद भी अपनी बिलकुल अलग ख़ासियतों को बिना किसी फेर-बदल के बरक़रार रखे हुए हैं। तीसरी कौंसिल में, जो सन 680 ई॰ में क़ुस्तुनतुनिया के मक़ाम पर हुई, इतनी बात और बढ़ा दी गई कि ये दोनों तबीअतें अपनी अलग-अलग मशीयतें (इच्छाएँ) भी रखती हैं। यानी मसीह एक ही वक़्त में दो अलग-अलग मर्ज़ियों के मालिक है........इसी दौरान में पश्चिमी कलीसा ने गुनाह और फ़ज़्ल के मसले पर भी ख़ास तवज्जोह की और इस सवाल पर मुद्दतों बहस चलती रही कि नजात (मुक्ति) के मामले में ख़ुदा का काम क्या है? और बन्दे का काम क्या? आख़िरकार सन् 529 ई॰ में ओरेंज की दूसरी कौंसिल में यह नज़रिया इख़्तियार किया गया कि आदम के उतरने की वजह से हर इनसान इस हालत में गिरफ़्तार है कि वह नजात की तरफ़ कोई क़दम नहीं बढ़ा सकता, जब तक कि वह ख़ुदा के उस फ़ज़्ल से जो बपतिस्मा में दिया जाता है, नई ज़िन्दगी न हासिल कर ले। और यह नई ज़िन्दगी शुरू करने के बाद भी उसे ख़ैर और भलाई की उस हालत में बाक़ी रहना और आगे बढ़ना नसीब नहीं हो सकता, जब तक वह ख़ुदा की मेहरबानी हमेशा उसकी मददगार न रहे। और ख़ुदा की मेहरबानी की यह हमेशा की मदद उसे सिर्फ़ कैथोलिक कलीसा ही के ज़रीए से हासिल रह सकती है।''

मसीही आलिमों के इन बयानों से यह बात बिलकुल वाज़ेह हो जाती है कि शुरू में जिस चीज़ ने मसीहियों को गुमराह किया, वह अक़ीदा और मुहब्बत में हद से बढ़ जाना था। इसी हद से बढ़ने की वजह से मसीह *(अलै.)* के लिए ख़ुदावन्द और ख़ुदा के बेटे के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए गए, ख़ुदा की सिफ़तें उनसे जोड़ दी गईं, और कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) का अक़ीदा ईजाद किया गया, हालाँकि हज़रत मसीह की तालीमात में इन बातों के लिए बिलकुल कोई गुंजाइश

لُعِنَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ عَلٰى لِسَانِ
دَاوٗدَ وَعِيْسَى ابْنِ مَرْيَمَ ۭ ذٰلِكَ بِمَا عَصَوْا وَّكَانُوْا
يَعْتَدُوْنَ ۝ كَانُوْا لَا يَتَنَاهَوْنَ عَنْ مُّنْكَرٍ
فَعَلُوْهُ ۭ لَبِئْسَ مَا كَانُوْا يَفْعَلُوْنَ ۝ تَرٰى كَثِيْرًا
مِّنْهُمْ يَتَوَلَّوْنَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ۭ لَبِئْسَ مَا قَدَّمَتْ

(78, 79) बनी-इसराईल में से जिन लोगों ने कुफ़्र की राह इख़्तियार की उन पर दाऊद और मरयम के बेटे ईसा की ज़बान से लानत की गई, क्योंकि वे सरकश हो गए थे और ज़्यादतियाँ करने लगे थे, उन्होंने एक-दूसरे को बुरे कामों के करने से रोकना छोड़ दिया था।[102] बुरा रवैया था जो उन्होंने इख़्तियार किया। (80) आज तुम उनमें ज़्यादातर ऐसे लोग देखते हो जो (ईमानवालों के मुक़ाबले में) कुफ़्र करनेवालों की हिमायत करते

मौजूद नहीं थी। फिर जब फ़लसफ़े और (दर्शन) की हवा मसीहियों को लगी तो बजाय इसके कि ये लोग इस शुरुआती गुमराही को समझकर इससे बचने की कोशिश करते, उन्होंने अपने पिछले पेशवाओं की ग़लतियों को निबाहने के लिए उनके हक़ में दलीलें देनी शुरू कर दीं और मसीह की अस्ल तालीमात की तरफ़ रुजू किए बिना सिर्फ़ मन्तिक़ और फ़लसफ़े (तर्क और दर्शन) की मदद से अक़ीदे पर अक़ीदे गढ़ते चले गए। यही वह गुमराही है जिस पर क़ुरआन ने इन आयतों में मसीहियों को ख़बरदार किया है।

102. हर क़ौम का बिगाड़ शुरुआत में कुछ लोगों से शुरू होता है। अगर क़ौम का इज्तिमाई ज़मीर (सामूहिक चेतना) ज़िन्दा होता है तो आम लोगों की राय उन बिगड़े हुए लोगों को दबाए रखती है और क़ौम कुल मिलाकर बिगड़ने नहीं पाती। लेकिन अगर क़ौम उन लोगों के मामले में सुस्ती और कोताही शुरू कर देती है और ग़लत काम करनेवालों को मलामत करने के बजाय उन्हें समाज में ग़लत कामों के करने के लिए आज़ाद छोड़ देती है तो फिर धीरे-धीरे वही ख़राबी जो पहले कुछ लोगों तक महदूद थी, पूरी क़ौम में फैल कर रहती है। यही चीज़ थी जो आख़िरकार बनी-इसराईल के बिगाड़ की वजह बनी।

हज़रत दाऊद और हज़रत ईसा *(अलै०)* की ज़बान से जो लानत बनी-इसराईल पर की गई उसके लिए देखें बाइबल की किताब भजन संहिता 10 और 50 और मत्ती 23।

لَهُمْ اَنْفُسُهُمْ اَنْ سَخِطَ اللّٰهُ عَلَيْهِمْ وَفِي الْعَذَابِ
هُمْ خٰلِدُوْنَ ۝٨٠ وَلَوْ كَانُوْا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالنَّبِيِّ
وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِ مَا اتَّخَذُوْهُمْ اَوْلِيَآءَ وَلٰكِنَّ
كَثِيْرًا مِّنْهُمْ فٰسِقُوْنَ ۝٨١ لَتَجِدَنَّ اَشَدَّ النَّاسِ
عَدَاوَةً لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوا الْيَهُوْدَ وَالَّذِيْنَ اَشْرَكُوْا ۚ
وَلَتَجِدَنَّ اَقْرَبَهُمْ مَّوَدَّةً لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوا
الَّذِيْنَ قَالُوْٓا اِنَّا نَصٰرٰى ۭ ذٰلِكَ بِاَنَّ مِنْهُمْ

और उनका साथ देते हैं। यक़ीनन बहुत बुरा अंजाम है जिसकी तैयारी उनके मन ने उनके लिए की है। अल्लाह उनपर ग़ज़बनाक हो गया है और वे हमेशा रहनेवाले अज़ाब में पड़नेवाले हैं। (81) अगर हक़ीक़त में ये लोग अल्लाह और पैग़म्बर और उस चीज़ के माननेवाले होते जो पैग़म्बर पर उतरी थी तो कभी (ईमानवालों के मुक़ाबले में) कुफ़्र करनेवालों को अपना साथी न बनाते।[103] मगर इनमें से तो ज़्यादातर लोग ख़ुदा की इताअत से निकल चुके हैं।

(82) तुम ईमानवालों की दुश्मनी में सबसे ज़्यादा सख़्त यहूदियों और मुशरिकों को पाओगे और ईमान लानेवालों के लिए दोस्ती में ज़्यादा क़रीब उन लोगों को पाओगे जिन्होंने कहा था कि हम नसारा (ईसाई) हैं। यह इस वजह से कि उनमें इबादतगुज़ार

103. मतलब यह है कि जो लोग ख़ुदा और नबी और किताब के माननेवाले होते हैं उन्हें फ़ितरी तौर पर मुशरिकों के मुक़ाबले में उन लोगों के साथ ज़्यादा हमदर्दी होती है जो मज़हब में चाहे उनसे इख़्तिलाफ़ ही रखते हों, मगर बहरहाल उन्हीं की तरह ख़ुदा और वह्य व रिसालत के सिलसिले को मानते हों। लेकिन ये यहूदी अजीब तरह के अहले-किताब हैं कि तौहीद और शिर्क की जंग में खुल्लम-खुल्ला मुशरिकों का साथ दे रहे हैं। नबी को मानने और नबी के इनकार की लड़ाई में खुल्लम-खुल्ला उनकी हमदर्दियाँ नुबुव्वत का इनकार करनेवालों के साथ हैं, और फिर भी वे बिना किसी शर्म व हया के यह दावा रखते हैं कि हम ख़ुदा और पैग़म्बरों और किताबों के माननेवाले हैं।

قِسِّيْسِيْنَ وَ رُهْبَانًا وَّ اَنَّهُمْ لَا يَسْتَكْبِرُوْنَ ﴿۸۲﴾
وَاِذَا سَمِعُوْا مَآ اُنْزِلَ اِلَى الرَّسُوْلِ تَرٰٓى اَعْيُنَهُمْ
تَفِيْضُ مِنَ الدَّمْعِ مِمَّا عَرَفُوْا مِنَ الْحَقِّ ۚ يَقُوْلُوْنَ
رَبَّنَآ اٰمَنَّا فَاكْتُبْنَا مَعَ الشّٰهِدِيْنَ ﴿۸۳﴾ وَمَا لَنَا
لَا نُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَمَا جَآءَنَا مِنَ الْحَقِّ ۙ وَنَطْمَعُ اَنْ
يُّدْخِلَنَا رَبُّنَا مَعَ الْقَوْمِ الصّٰلِحِيْنَ ﴿۸۴﴾ فَاَثَابَهُمُ
اللّٰهُ بِمَا قَالُوْا جَنّٰتٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ
خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۭ وَذٰلِكَ جَزَآءُ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۸۵﴾ وَالَّذِيْنَ
كَفَرُوْا وَكَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَآ اُولٰۗىِٕكَ اَصْحٰبُ الْجَحِيْمِ ﴿۸۶﴾ ع

(۷) الْجُزْءُ السَّابِعُ

आलिम और दुनिया को छोड़ चुके (संसार त्यागी) फ़क़ीर पाए जाते हैं और उनके मन में घमण्ड नहीं है। (83) जब वे इस कलाम को सुनते हैं जो रसूल पर उतरा है तो तुम देखते हो कि हक़ को पहचानने की वजह से उनकी आँखें आँसुओं से भीग जाती हैं। वे बोल उठते हैं कि "परवरदिगार, हम ईमान लाए। हमारा नाम गवाही देनेवालों में लिख ले।" (84) और वे कहते हैं कि "आख़िर क्यों न हम अल्लाह पर ईमान लाएँ और जो हक़ हमारे पास आया है उसे क्यों न मान लें, जबकि हम इस बात की ख़ाहिश रखते हैं कि हमारा रब हमें नेक और भले लोगों में शामिल करे?" (85) उनकी इस बात की वजह से अल्लाह ने उनको ऐसी जन्नतें दीं जिनके नीचे नहरें बहती हैं और वे उनमें हमेशा रहेंगे। यह बदला है नेक रवैया इख़्तियार करनेवालों के लिए। (86) रहे वे लोग जिन्होंने हमारी आयतों को मानने से इनकार किया और उन्हें झुठलाया, तो वे जहन्नम के हक़दार हैं।

يَاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا لَا تُحَرِّمُوۡا طَيِّبٰتِ مَاۤ اَحَلَّ اللّٰهُ لَـكُمۡ وَلَا تَعۡتَدُوۡا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الۡمُعۡتَدِيۡنَ ۝ وَكُلُوۡا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ حَلٰلًا طَيِّبًا ۖ

(87) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, जो पाक चीज़ें अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल की हैं उन्हें हराम न कर लो[104] और हद से आगे न बढ़ो[105] अल्लाह को ज़्यादती करनेवाले सख़्त नापसन्द हैं। (88) जो कुछ हलाल और पाक रोज़ी अल्लाह ने तुमको दी है उसे

104. इस आयत में दो बातें कही गई हैं। एक यह कि किसी चीज़ को हलाल और हराम के ठहरानेवाले ख़ुदमुख़्तार न बन जाओ। हलाल वही है जो अल्लाह ने हलाल किया और हराम वही है जो अल्लाह ने हराम किया। अपने इख़्तियार से किसी हलाल को हराम करोगे, तो अल्लाह के क़ानून के बजाय नफ़्स के क़ानून की पैरवी करनेवाले ठहरोगे दूसरी बात यह कि ईसाई राहिबों, हिन्दू जोगियों, बौद्ध मज़हब के भिक्षुओं और पूरब के सूफ़ियों की तरह रहबानियत (संन्यास) और लज़्ज़तों से परहेज़ का तरीक़ा न अपनाओ। मज़हबी ज़ेहनियत के नेक मिज़ाज लोगों में हमेशा से यह मैलान पाया जाता रहा है कि नफ़्स और जिस्म के हुक़ूक़ अदा करने को वे रूहानी तरक़्क़ी में रुकावट समझते हैं और यह गुमान करते हैं कि अपने आपको तकलीफ़ में डालना, अपने नफ़्स को दुनिया की लज़्ज़तों से महरूम करना, और दुनिया के सामाने-ज़िन्दगी से ताल्लुक़ तोड़ना, अपने-आप में एक नेकी है और ख़ुदा की ख़ुशी इसके बग़ैर हासिल नहीं हो सकती। सहाबा (मुहम्मद *(सल्ल०)* के साथियों) में भी कुछ लोग ऐसे थे जिनके अन्दर यह ज़ेहनियत पाई जाती थी। चुनाँचे एक बार नबी *(सल्ल०)* को मालूम हुआ कि कुछ सहाबियों ने अहद किया है कि हमेशा दिन में रोज़ा रखेंगे, रातों को बिस्तर पर न सोएँगे बल्कि जाग-जाग कर इबादत करते रहेंगे, गोश्त और चिकनाई इस्तेमाल न करेंगे, औरतों से वास्ता न रखेंगे। इस पर नबी *(सल्ल०)* ने एक तक़रीर की और उसमें कहा कि “मुझे ऐसी बातों का हुक्म नहीं दिया गया है। तुम्हारे नफ़्स के भी तुम पर हुक़ूक़ हैं। रोज़ा भी रखो और खाओ-पियो भी। रातों को इबादत भी करो और सोओ भी। मुझे देखो, मैं सोता भी हूँ और इबादत भी करता हूँ। रोज़े रखता भी हूँ और नहीं भी रखता। गोश्त भी खाता हूँ और घी भी। इसलिए जो मेरे तरीक़े को पसन्द नहीं करता वह मुझ से नहीं है।” फिर फ़रमाया, “यह लोगों को क्या हो गया है कि उन्होंने औरतों को और अच्छे खाने को और ख़ुशबू और नींद और दुनिया की लज़्ज़तों को अपने ऊपर हराम कर लिया है? मैंने तो तुम्हें यह तालीम नहीं दी है कि तुम राहिब और पादरी बन जाओ। मेरे दीन में न औरतों और गोश्त से परहेज़ है और न लोगों से कटकर तन्हाई इख़्तियार करना और अकेले में बैठ रहना है। नफ़्स (इन्द्रियों) पर क़ाबू करने के लिए मेरे यहाँ रोज़ा है, रहबानियत (संन्यास) के सारे फ़ायदे यहाँ जिहाद से हासिल होते हैं। अल्लाह की बन्दगी करो, उसके साथ किसी को

وَّاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِیْۤ اَنْتُمْ بِهٖ مُؤْمِنُوْنَ ﴿۸۸﴾ لَا یُؤَاخِذُكُمُ
اللّٰهُ بِاللَّغْوِ فِیْۤ اَیْمَانِكُمْ وَ لٰكِنْ یُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا
عَقَّدْتُّمُ الْاَیْمَانَ ۚ فَكَفَّارَتُهٗۤ اِطْعَامُ عَشَرَةِ
مَسٰكِیْنَ مِنْ اَوْسَطِ مَا تُطْعِمُوْنَ اَهْلِیْكُمْ اَوْ كِسْوَتُهُمْ

खाओ, पियो और उस ख़ुदा की नाफ़रमानी से बचते रहो जिस पर तुम ईमान लाए हो।

(89) तुम लोग जो बेकार की क़समें खा लेते हो उन पर अल्लाह पकड़ नहीं करता, मगर जो क़समें तुम जान-बूझकर खाते हो उन पर वह ज़रूर तुम्हारी पकड़ करेगा। (ऐसी क़सम तोड़ने का) कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) यह है कि दस मिस्कीनों (मुहताजों) को वह दरम्यानी दर्जे का खाना खिलाओ जो तुम अपने बाल-बच्चों को खिलाते हो, या उन्हें

शरीक न करो, हज और उमरा करो, नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो और रमज़ान के रोज़े रखो। तुमसे पहले जो लोग हलाक हुए वे इसलिए हलाक हुए कि उन्होंने अपने ऊपर सख़्ती की, और जब उन्होंने ख़ुद अपने ऊपर सख़्ती की तो अल्लाह ने भी उनपर सख़्ती की। ये उन्हीं की छोड़ी हुई बातें हैं जो तुमको गिरजों और ख़ानक़ाहों में नज़र आती हैं।'' इसी सिलसिले में कुछ रिवायतों से यहाँ तक मालूम होता है कि एक सहाबी के बारे में नबी *(सल्ल०)* ने सुना कि वे एक मुद्दत से अपनी बीवी के पास नहीं गए हैं और रात-दिन इबादत में लगे रहते हैं तो आपने बुलाकर उनको हुक्म दिया कि अभी अपनी बीवी के पास जाओ। उन्होंने कहा कि मैं रोज़े से हूँ। आप *(सल्ल०)* ने फ़रमाया रोज़ा तोड़ दो और जाओ। हज़रत उमर *(रज़ि०)* के ज़माने में एक ख़ातून ने शिकायत की कि मेरे शौहर दिन भर रोज़ा रखते हैं और रात भर इबादत करते हैं और मुझसे कोई ताल्लुक़ नहीं रखते। हज़रत उमर *(रज़ि०)* ने मशहूर ताबई बुज़ुर्ग, कअब-बिन-सौरल अज़दी को उनके मुक़द्दमे की सुनवाई के लिए मुक़र्रर किया और उन्होंने फ़ैसला दिया कि इस औरत के शौहर को तीन रातों के लिए इख़्तियार है कि जितनी चाहें इबादत करें मगर चौथी रात लाज़िमी तौर पर उनकी बीवी का हक़ है।

105. ''हद से आगे न बढ़ो'' इस जुमले के अन्दर बड़े गहरे और वसीअ़ मानी और मतलब हैं। हलाल को हराम करना और ख़ुदा की ठहराई हुई पाक चीज़ों से इस तरह परहेज़ करना कि मानो वे नापाक हैं, यह अपने आप में एक ज़्यादती है। फिर पाक चीज़ों के इस्तेमाल में फ़िज़ूलख़र्ची करना भी ज़्यादती है। फिर हलाल की हद से बाहर क़दम निकाल कर हराम की हदों में दाख़िल होना भी ज़्यादती है। अल्लाह को ये तीनों बातें नापसन्द हैं।

اَوْ تَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ ؕ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ ؕ
ذٰلِكَ كَفَّارَةُ اَيْمَانِكُمْ اِذَا حَلَفْتُمْ ؕ وَاحْفَظُوْٓا
اَيْمَانَكُمْ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ
تَشْكُرُوْنَ ۝٨٩ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّمَا الْخَمْرُ
وَالْمَيْسِرُ وَالْاَنْصَابُ وَالْاَزْلَامُ رِجْسٌ مِّنْ عَمَلِ
الشَّيْطٰنِ فَاجْتَنِبُوْهُ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ۝٩٠ اِنَّمَا يُرِيْدُ

कपड़े पहनाओ, या एक ग़ुलाम आज़ाद करो और जो इसकी ताक़त न रखता हो वह तीन दिन के रोज़े रखे। यह तुम्हारी क़समों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) है जबकि तुम क़सम खाकर तोड़ दो।[106] अपनी क़समों की हिफ़ाज़त किया करो।[107] इस तरह अल्लाह अपने अहकाम (आदेश) तुम्हारे लिए वाज़ेह करता है, शायद कि तुम शुक्र अदा करो।

(90) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, यह शराब और जुआ और ये आस्ताने और पाँसे,[108] ये सब गन्दे शैतानी काम हैं, इनसे परहेज़ करो, उम्मीद है कि तुम्हें कामयाबी

---

106. चूँकि कुछ लोगों ने हलाल चीज़ों को अपने ऊपर हराम कर लेने की क़सम खा रखी थी, इसलिए अल्लाह ने इसी सिलसिले में क़सम का हुक्म भी बयान फ़रमा दिया कि अगर किसी आदमी की ज़बान से बे-इरादा क़सम का लफ़्ज़ निकल गया है तो उसकी पाबन्दी करने की वैसे ही ज़रूरत नहीं, क्योंकि ऐसी क़सम पर कोई पकड़ नहीं है और अगर जान-बूझकर किसी ने क़सम खाई है तो वह उसे तोड़ दे और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा कर दे, क्योंकि जिसने किसी गुनाह की क़सम खाई हो उसे अपनी क़सम पर क़ायम न रहना चाहिए। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-243 और 244, कफ़्फ़ारे की तशरीह के लिए देखें सूरा-4, अन-निसा, हाशिया-125)

107. क़सम की हिफ़ाज़त के कई मतलब हैं : एक यह कि क़सम सही बातों के सिलसिले में खाई जाए, फ़िज़ूल बातों और गुनाह के कामों में क़सम न खाई जाए। दूसरे यह कि जब किसी बात पर आदमी क़सम खाए तो उसे याद रखे। ऐसा न हो कि अपनी ग़फ़लत और लापरवाही की वजह से वह उसे भूल जाए और फिर उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करे। तीसरे यह कि जब किसी सही मामले में इरादे के साथ क़सम खाई जाए तो उसे पूरा किया जाए और अगर उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी हो जाए तो उसका कफ़्फ़ारा अदा किया जाए।

108. आस्तानों और पाँसों का मतलब जानने के लिए देखें इसी सूरा का हाशिया-12 और 14। इसी

الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَآءَ فِي
الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ وَيَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَعَنِ

नसीब होगी।[109] (91) शैतान तो यह चाहता है कि शराब और जुए के ज़रीए से तुम्हारे बीच दुश्मनी और बुग़्ज़ (ईर्ष्या) डाल दे और तुम्हें ख़ुदा की याद से और नमाज़ से रोक

सिलसिले में जुए का मतलब भी हाशिया-14 में मिल जाएगा। हालाँकि पाँसे (अज़लाम) अपनी नौईयत के एतिबार से मैसिर (जुए) की ही एक शक्ल है। लेकिन इन दोनों के बीच फ़र्क़ यह है कि अरबी ज़बान में अज़लाम (पाँसे), फ़ालगीरी और क़ुरआअन्दाज़ी (पर्ची डालने) की उस शक्ल को कहते हैं जिसमे मुशरिकाना अक़ीदे और अन्धविश्वास पाए जाते हैं। और मैसिर उन खेलों और कामों को कहते हैं जिनमें इत्तिफ़ाक़ी बातों को कमाई और क़िस्मत आज़माने और माल और चीज़ों को तक़सीम करने का ज़रीआ बनाया जाता है।

109. इस आयत में चार चीज़ें क़तई तौर पर हराम की गई हैं। एक शराब, दूसरे जुआ, तीसरे वे मक़ामात जो ख़ुदा के सिवा किसी दूसरे की इबादत करने या ख़ुदा के सिवा किसी और के नाम पर क़ुरबानी और नज़्रो-नियाज़ चढ़ाने के लिए ख़ास किए गए हों, चौथे पाँसे। बाद में बयान की गई तीनों चीज़ों के बारे में ज़रूरी बातें पहले बयान की जा चुकी हैं। शराब के बारे में अहकाम की तफ़सील नीचे दी जा रही है–

शराब को हराम करने के सिलसिले में इससे पहले दो हुक्म आ चुके थे, जो सूरा-2 अल-बक़रा की आयत-219 और सूरा-4 अन-निसा की आयत-43 में गुज़र चुके हैं। अब इस आख़िरी हुक्म के आने से पहले नबी *(सल्ल०)* ने एक ख़ुतबे में लोगों को ख़बरदार किया कि अल्लाह को शराब सख़्त नापसन्द है। नामुमकिन नहीं कि इसके बिलकुल हराम होने का हुक्म आ जाए, इसलिए जिन-जिन लोगों के पास शराब मौजूद हो वे उसे बेच दें। इसके कुछ दिनों के बाद यह आयत नाज़िल हुई और आप *(सल्ल०)* ने एलान कराया कि अब जिनके पास शराब है वे न उसे पी सकते हैं, न बेच सकते हैं, बल्कि वे उसे नाली में बहा दें। चुनाँचे उसी वक़्त मदीना की गलियों में शराब बहा दी गई। कुछ लोगों ने पूछा : हम यहूदियों को तोहफ़े में क्यों न दे दें? नबी *(सल्ल०)* ने कहा, "जिसने यह चीज़ हराम की है उसने इसे तोहफ़े में देने से भी मना कर दिया है।" कुछ लोगों ने पूछा कि हम शराब को सिरके में क्यों न तब्दील कर दें? आप *(सल्ल०)* ने इससे भी मना कर दिया और हुक्म दिया कि "नहीं, इसे बहा दो।" एक साहब ने पूछा कि दवा के तौर पर इस्तेमाल की तो इजाज़त है? नबी *(सल्ल०)* ने कहा, "नहीं, वह दवा नहीं है, बल्कि बीमारी है।" एक और साहब ने मालूम किया कि ऐ अल्लाह के रसूल, हम एक ऐसे इलाक़े के रहनेवाले हैं जो बहुत ही ज़्यादा ठण्डा है और हमें मेहनत भी बहुत करनी पड़ती है। हम लोग शराब से थकावट दूर करते हैं और इसी से सर्दी का मुक़ाबला करते हैं। नबी *(सल्ल०)* ने पूछा जो चीज़ तुम पीते हो वह नशा करती है? उन्होंने कहा कि हाँ। नबी *(सल्ल०)* ने कहा तो फिर इससे परहेज़ करो। उन्होंने फिर कहा कि हमारे इलाक़े के लोग तो नहीं मानेंगे।

नबी *(सल्ल०)* ने कहा, "अगर वे न मानें तो उनसे जंग करो।" इब्ने-उमर *(रज़ि०)* की रिवायत है कि नबी *(सल्ल०)* ने कहा–

"अल्लाह ने लानत फ़रमाई है शराब पर और उसके पीनेवाले पर और पिलानेवाले पर और बेचनेवाले पर और ख़रीदनेवाले पर और निचोड़ने और तैयार करनेवाले पर और निचुड़वाने यानी तैयार करानेवाले पर और ढोकर ले जानेवाले पर और उस आदमी पर जिसके लिए वह ढोकर ले जाई गई हो।"

एक और हदीस में है कि नबी *(सल्ल०)* ने उस दस्तरख़ान पर खाना खाने से मना फ़रमाया है जिस पर शराब पी जा रही हो। शुरू में आप *(सल्ल०)* ने उन बरतनों तक के इस्तेमाल को मना कर दिया था जिनमें शराब बनाई और पी जाती थी। बाद में जब शराब के हराम होने का हुक्म पूरी तरह लागू हो गया तब आप *(सल्ल०)* ने बरतनों के इस्तेमाल न करने पर से यह पाबन्दी उठा दी।

मूल अरबी में लफ़्ज़ 'ख़म्र' इस्तेमाल हुआ है। 'ख़म्र' का लफ़्ज़ अरब में अंगूर की शराब के लिए इस्तेमाल होता था, और मजाज़न (लाक्षणिक तौर पर) गेहूँ, जौ, किशमिश, खजूर और शहद की शराबों के लिए भी यह लफ़्ज़ बोलते थे। मगर नबी *(सल्ल०)* ने हराम होने के इस हुक्म को तमाम उन चीज़ों पर आम क़रार दिया जो नशा पैदा करनेवाली हैं। चुनाँचे हदीस में नबी *(सल्ल०)* के ये वाज़ेह फ़रमान हमें मिलते हैं कि "हर नशा पैदा करनेवाली चीज़ ख़म्र है। और हर नशा पैदा करनेवाली चीज़ हराम है।" "पीने की हर वह चीज़ जो नशा पैदा करे, हराम है।" "और मैं नशा पैदा करनेवाली हर चीज़ से मना करता हूँ।" हज़रत उमर *(रज़ि०)* ने जुमा के ख़ुत्बे में शराब की यह पहचान बयान की थी कि "ख़म्र से मुराद हर वह चीज़ है जो अक़्ल को ढाँक ले।"

इसके अलावा नबी *(सल्ल०)* ने यह उसूल भी बयान किया कि "जिस चीज़ की ज़्यादा मिक़दार (मात्रा) नशा पैदा करे उसकी थोड़ी मिक़दार भी हराम है।" और "जिस चीज़ का एक पूरा क़राबा (बर्तन) नशा पैदा करता हो उसका एक चुल्लू पीना भी हराम है।"

नबी *(सल्ल०)* के ज़माने में शराब पीनेवाले के लिए कोई ख़ास सज़ा मुक़र्रर नहीं थी। जो आदमी इस जुर्म में गिरफ़्तार होकर आता था, उसे जूते, लात, मुक्के, बल दी हुई चादरों के सोंटे और खजूर के संटे मारे जाते थे। ज़्यादा से ज़्यादा 40 ज़र्बें (चोटें) आप *(सल्ल०)* के ज़माने में इस जुर्म पर लगाई गई हैं। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के ज़माने में 40 कोड़े मारे जाते थे। हज़रत उमर *(रज़ि.)* के ज़माने में भी शुरू में 40 कोड़ों ही की सज़ा रही। फिर जब उन्होंने देखा कि लोग इस जुर्म से बाज़ नहीं आते तो उन्होंने सहाबा के मशविरे से 80 कोड़े सज़ा तय कर दी। इसी सज़ा को इमाम मालिक *(रह.)* और इमाम अबू-हनीफ़ा *(रह.)* और एक रिवायत के मुताबिक़ इमाम शाफ़ई *(रह.)* भी, शराब की हद (सज़ा) क़रार देते हैं। मगर इमाम अहमद-बिन-हम्बल और एक दूसरी रिवायत के मुताबिक़ इमाम शाफ़ई *(रह.)* 40 कोड़ों के क़ाइल हैं, और हज़रत अली *(रज़ि.)* ने भी इसी को पसन्द फ़रमाया है।

शरीअत के मुताबिक़ यह बात इस्लामी हुकूमत की ज़िम्मेदारियों में शामिल है कि वह शराब की बन्दिश के इस हुक्म को ताक़त के साथ लागू करे। हज़रत उमर *(रज़ि)* के ज़माने में

الصَّلٰوةِ ۚ فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ ﴿٩١﴾ وَ اَطِيْعُوا اللّٰهَ
وَ اَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ وَ احْذَرُوْا ۚ فَاِنْ تَوَلَّيْتُمْ
فَاعْلَمُوْٓا اَنَّمَا عَلٰى رَسُوْلِنَا الْبَلٰغُ الْمُبِيْنُ ﴿٩٢﴾ لَيْسَ
عَلَى الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ جُنَاحٌ فِيْمَا
طَعِمُوْٓا اِذَا مَا اتَّقَوْا وَّ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ
ثُمَّ اتَّقَوْا وَّ اٰمَنُوْا ثُمَّ اتَّقَوْا وَّ اَحْسَنُوْا ۗ وَ اللّٰهُ
يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿٩٣﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَيَبْلُوَنَّكُمُ ع
اللّٰهُ بِشَيْءٍ مِّنَ الصَّيْدِ تَنَالُهٗۤ اَيْدِيْكُمْ وَرِمَاحُكُمْ

दे। फिर क्या तुम इन चीज़ों से बाज़ रहोगे? (92) अल्लाह और उसके रसूल की बात मानो और बाज़ आ जाओ, लेकिन अगर तुमने हुक्म नहीं माना तो जान लो कि हमारे रसूल पर बस साफ़-साफ़ हुक्म पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी थी।

(93) जो लोग ईमान ले आए और नेक अमल करने लगे उन्होंने पहले जो कुछ खाया-पिया था उस पर कोई पकड़ न होगी। बशर्ते कि वे आगे उन चीज़ों से बचे रहें जो हराम की गई हैं और ईमान पर जमे रहें और अच्छे काम करें। फिर जिस-जिस चीज़ से रोका जाए उससे रुकें और जो अल्लाह का हुक्म हो उसे मानें, फिर अल्लाह से डरते हुए नेक रवैया अपनाएँ। अल्लाह नेक किरदार लोगों को पसन्द करता है।

(94) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह तुम्हें उस शिकार के ज़रीए से सख़्त आज़माइश में डालेगा जो बिलकुल तुम्हारे हाथों और भालों के निशाने पर होगा, यह

बनी-सक़ीफ़ के रुवेशिद नाम के एक आदमी की दुकान इस बुनियाद पर जलवा दी गई कि वह खुफ़िया तौर पर शराब बेचता था। एक दूसरे मौक़े पर एक पूरा गाँव हज़रत उमर *(रज़ि.)* के हुक्म से इस गुनाह पर जला डाला गया कि वहाँ चोरी-छिपे शराब के निचोड़ने और बेचने का कारोबार हो रहा था।

لِيَعْلَمَ اللّٰهُ مَنْ يَّخَافُهٗ بِالْغَيْبِ ۚ فَمَنِ اعْتَدٰى بَعْدَ
ذٰلِكَ فَلَهٗ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۝ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْتُلُوا
الصَّيْدَ وَاَنْتُمْ حُرُمٌ ۗ وَمَنْ قَتَلَهٗ مِنْكُمْ مُّتَعَمِّدًا
فَجَزَآءٌ مِّثْلُ مَا قَتَلَ مِنَ النَّعَمِ يَحْكُمُ بِهٖ ذَوَا عَدْلٍ
مِّنْكُمْ هَدْيًا بٰلِغَ الْكَعْبَةِ اَوْ كَفَّارَةٌ طَعَامُ مَسٰكِيْنَ
اَوْ عَدْلُ ذٰلِكَ صِيَامًا لِّيَذُوْقَ وَبَالَ اَمْرِهٖ ۗ عَفَا

देखने के लिए कि तुम में से कौन उससे बिन-देखे डरता है, फिर जिसने इस डरावे के बाद अल्लाह की मुक़र्रर की हुई हद को पार किया उसके लिए दर्दनाक सज़ा है। (95) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, इहराम की हालत में शिकार न मारो,[110] और अगर तुममें से कोई जान-बूझ कर ऐसा कर गुज़रे तो जो जानवर उसने मारा हो उसी के बराबर एक जानवर उसे मवेशियों में से नज़्र देना होगा जिसका फ़ैसला तुममें से दो इनसाफ़-पसन्द आदमी करेंगे, और यह नज़राना काबा पहुँचाया जाएगा, या नहीं तो इस गुनाह के कफ़्फ़ारे में कुछ मिसकीनों को खाना खिलाना होगा। या उसके बराबर रोज़े रखने होंगे,[111] ताकि वह अपने किए का मज़ा चखे। पहले जो कुछ हो चुका उसे अल्लाह ने

110. शिकार चाहे आदमी ख़ुद करे, या किसी दूसरे को शिकार में किसी तौर पर मदद दे, दोनों बातें इहराम की हालत में मना हैं। इसी के साथ अगर मोहरिम (इहराम बाँधनेवाले) के लिए शिकार किया गया हो तब भी उसका खाना मोहरिम के लिए जाइज़ नहीं है। अलबत्ता अगर किसी आदमी ने अपने लिए ख़ुद शिकार किया हो और फिर वह उसमें से मोहरिम को भी तोहफ़े में कुछ दे दे तो उसके खाने में कोई हरज नहीं है। इस आम हुक्म में मूज़ी (तकलीफ़ पहुँचानेवाले) जानवर नहीं आते। साँप, बिच्छू, पागल कुत्ता और ऐसे दूसरे जानवर जो इनसान को नुक़सान पहुँचानेवाले हैं इहराम की हालत में मारे जा सकते हैं।

111. इन बातों का फ़ैसला भी दो इनसाफ़पसन्द आदमी ही करेंगे कि किस जानवर के मारने पर आदमी कितने मुहताजों को खाना खिलाए, या कितने रोज़े रखे।

اللهُ عَمَّا سَلَفَ ۚ وَمَنْ عَادَ فَيَنْتَقِمُ اللهُ مِنْهُ ۚ وَ
اللهُ عَزِيزٌ ذُو انْتِقَامٍ ﴿٩٥﴾ أُحِلَّ لَكُمْ صَيْدُ الْبَحْرِ
وَطَعَامُهُ مَتَاعًا لَّكُمْ وَلِلسَّيَّارَةِ ۚ وَحُرِّمَ عَلَيْكُمْ
صَيْدُ الْبَرِّ مَا دُمْتُمْ حُرُمًا ۗ وَاتَّقُوا اللهَ الَّذِي
إِلَيْهِ تُحْشَرُونَ ﴿٩٦﴾ جَعَلَ اللهُ الْكَعْبَةَ الْبَيْتَ
الْحَرَامَ قِيَامًا لِّلنَّاسِ وَالشَّهْرَ الْحَرَامَ وَالْهَدْيَ
وَالْقَلَائِدَ ۚ ذَٰلِكَ لِتَعْلَمُوا أَنَّ اللهَ يَعْلَمُ مَا فِي

माफ़ कर दिया, लेकिन अब अगर किसी ने इस हरकत को दोहराया तो उससे अल्लाह बदला लेगा, अल्लाह सब पर ग़ालिब है और बदला लेने की ताक़त रखता है।

(96) तुम्हारे लिए समन्दर का शिकार और उसका खाना हलाल कर दिया गया[112] जहाँ तुम ठहरो वहाँ भी उसे खा सकते हो और क़ाफ़िले के लिए ज़ादे-राह (सफ़र का सामान) भी बना सकते हो। अलबत्ता ख़ुश्की का शिकार जब तक तुम इहराम की हालत में हो, तुम पर हराम किया गया है। तो बचो उस ख़ुदा की नाफ़रमानी से जिसकी पेशी में तुम सबको घेरकर हाज़िर किया जाएगा।

(97) अल्लाह ने मुहतरम घर काबा को लोगों के लिए (इज्तिमाई ज़िन्दगी के) क़ियाम का ज़रीआ बनाया और हराम महीनों और क़ुरबानी के जानवरों और क़लादों को भी (इस काम में मददगार बना दिया)[113] ताकि तुम्हें मालूम हो जाए कि अल्लाह

112. चूँकि समन्दर के सफ़र में कभी-कभी रास्ते का सामान ख़त्म हो जाता है और खाना जुटाने का इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं रहता कि पानी के जानवरों का शिकार किया जाए, इसलिए समुद्री शिकार हलाल कर दिया गया।

113. अरब में काबा की हैसियत सिर्फ़ एक पाक और मुक़द्दस इबादतगाह ही की न थी, बल्कि अपनी मरकज़ियत (केन्द्रीयता) और अपने तक़द्दुस (पावनता) की वजह से वही पूरे मुल्क के मआशी व तमद्दुनी (सांस्कृतिक) ज़िन्दगी का सहारा बना हुआ था। हज और उमरे के लिए सारा

السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ وَاَنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَيْءٍ
عَلِيْمٌ ﴿٩٧﴾ اِعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ وَاَنَّ
اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٩٨﴾ مَا عَلَى الرَّسُوْلِ اِلَّا الْبَلٰغُ ؕ وَ

आसमानों और ज़मीन की सब हालतों से बाख़बर है। और उसे हर चीज़ का इल्म है।[114]
(98) ख़बरदार हो जाओ, अल्लाह सज़ा देने में भी सख़्त है और इसके साथ बहुत माफ़ करनेवाला और रहम भी करनेवाला है।
(99) रसूल पर तो सिर्फ़ पैग़ाम पहुँचा देने की

मुल्क उसकी तरफ़ खिंच कर आता था और लोगों के इस तरह जमा होने से इंतिशार (बिखराव) के मारे हुए अरबों में एकता और एकजुटता का एक रिश्ता पैदा होता, मुख़्तलिफ़ इलाक़ों और क़बीलों के लोग आपसी तमद्दुनी राबते (सांस्कृतिक सम्बन्ध) क़ायम करते, शायरी के मुक़ाबलों से उनकी ज़बान और अदब (साहित्य) को तरक़्क़ी नसीब होती, और तिजारती लेन-देन से सारे मुल्क की माली ज़रूरतें पूरी होतीं। मोहतरम महीनों की बदौलत अरबों को साल का पूरा एक तिहाई ज़माना अमन का नसीब हो जाता था। बस यही ज़माना ऐसा था जिसमें उनके क़ाफ़िले मुल्क के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आसानी के साथ आते-जाते थे। क़ुरबानी के जानवरों और क़लादों (गले के पट्टे) की मौजूदगी से भी इस चलत-फिरत में बड़ी मदद मिलती थी, क्योंकि नज़्र की निशानी के तौर पर जिन जानवरों की गरदनों में पट्टे पड़े होते उन्हें देखकर अरबों की गरदनें एहतिराम से झुक जातीं और लूट-मार करनेवाले किसी क़बीले को उन पर हाथ डालने की हिम्मत न होती।

114. यानी अगर तुम इस इन्तिज़ाम पर ग़ौर करो तो तुम्हें ख़ुद अपने मुल्क की समाजी और मआशी (आर्थिक) ज़िन्दगी ही में इस बात की एक खुली गवाही मिल जाए कि अल्लाह अपनी मख़लूक़ की मसलिहतों और उनकी ज़रूरतों का कैसा मुकम्मल और गहरा इल्म रखता है और अपने एक-एक हुक्म के ज़रीए से इनसानी ज़िन्दगी के कितने-कितने पहलुओं को फ़ायदा पहुँचा देता है। बदअमूनी (अशान्ति) के ये सैकड़ों साल जो मुहम्मद *(सल्ल०)* के आने से पहले गुज़रे हैं, उनमें तुम लोग ख़ुद अपने फ़ायदों से अनजान थे और अपने आपको तबाह करने पर तुले हुए थे, मगर अल्लाह तुम्हारी ज़रूरतों को जानता था और उसने सिर्फ़ एक काबा की मरकज़ियत (केन्द्रीयता) क़ायम करके तुम्हारे लिए वह इन्तिज़ाम कर दिया था जिसकी बदौलत तुम्हारी क़ौमी ज़िन्दगी बरक़रार रह सकी। दूसरी अनगिनत बातों को छोड़कर अगर सिर्फ़ इसी एक बात पर ध्यान दो तो तुम्हें यक़ीन हासिल हो जाए कि अल्लाह ने जो अहकाम (आदेश) तुम्हें दिए हैं उनकी पाबन्दी में तुम्हारी अपनी भलाई है और उनमें तुम्हारे लिए ऐसी-ऐसी भलाई और फ़ायदे छिपे हैं जिनको न तुम ख़ुद समझ सकते हो और न अपनी तदबीरों से पूरा कर सकते हो।

اللّٰهُ يَعْلَمُ مَا تُبْدُوْنَ وَمَا تَكْتُمُوْنَ ﴿٩٩﴾ قُلْ لَّا يَسْتَوِي
الْخَبِيْثُ وَالطَّيِّبُ وَلَوْ اَعْجَبَكَ كَثْرَةُ الْخَبِيْثِ ۚ فَاتَّقُوا
اللّٰهَ يٰۤاُولِي الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿١٠٠﴾ يٰۤاَيُّهَا ع
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَسْـَٔلُوْا عَنْ اَشْيَآءَ اِنْ تُبْدَ لَكُمْ
تَسُؤْكُمْ ۚ وَاِنْ تَسْـَٔلُوْا عَنْهَا حِيْنَ يُنَزَّلُ الْقُرْاٰنُ

ज़िम्मेदारी है। आगे तुम्हारे खुले और छिपे सब हालात का जाननेवाला अल्लाह है। (100) ऐ पैग़म्बर, इनसे कह दो कि पाक और नापाक बहरहाल बराबर नहीं हैं, चाहे नापाक की बहुतायत तुम्हें कितनी ही लुभानेवाली हो।[115] तो ऐ लोगो जो अक़्ल रखते हो, अल्लाह की नाफ़रमानी से बचते रहो, उम्मीद है कि तुम्हें कामयाबी नसीब होगी।

(101) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, ऐसी बातें न पूछा करो जो तुम पर ज़ाहिर कर दी जाएँ तो तुम्हें नागवार हों।[116] लेकिन अगर तुम उन्हें ऐसे वक़्त पूछोगे जब कि

115. यह आयत क़द्र और क़ीमत (मूल्यांकन) का एक दूसरा ही पैमाना पेश करती है जो ज़ाहिर को देखनेवाले इनसान के पैमाने से बिलकुल मुख़्तलिफ़ है। ज़ाहिर को देखनेवाले इनसान की नज़र में 5 रुपये के मुक़ाबले में 100 रुपये यक़ीनी तौर पर ज़्यादा क़ीमती हैं, क्योंकि ये 5 हैं और वे 100, लेकिन यह आयत कहती है कि 100 रुपये अगर ख़ुदा की नाफ़रमानी करके हासिल किए गए हों तो वे नापाक हैं और 5 रुपये अगर ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी करते हुए कमाए गए हैं तो वे पाक हैं और नापाक चाहे मिक़दार में कितना ही ज़्यादा क्यों न हो बहरहाल वह पाक के बराबर किसी तरह नहीं हो सकता। गन्दगी के एक ढेर से इत्र की एक बूँद ज़्यादा क़ीमत रखती है। पेशाब से भरी हुई एक नाँद के मुक़ाबले में पाक पानी का एक चुल्लू ज़्यादा वज़नी है। इसलिए एक सच्चे अक़्लमन्द इनसान को लाज़िमी तौर पर हलाल ही से काम चलाना चाहिए, चाहे वह ज़ाहिर में कितना ही मामूली और थोड़ा हो और हराम की तरफ़ किसी हाल में भी हाथ नहीं बढ़ाना चाहिए, चाहे वह देखने में कितना ही ज़्यादा और शानदार हो।

116. नबी *(सल्ल०)* से कुछ लोग अजीब-अजीब क़िस्म के बेहूदा सवाल किया करते थे, जिनकी न दीन के किसी मामले में ज़रूरत होती थी और न दुनिया ही के किसी मामले में। मिसाल के तौर पर एक मौक़े पर एक साहब भरे मजमे में नबी *(सल्ल०)* से पूछ बैठे कि "मेरा असली बाप कौन है?" इसी तरह कुछ लोग शरीअत के हुक्मों में ग़ैर-ज़रूरी पूछ-गच्छ किया करते थे, और

تُبۡدَ لَكُمۡ ؕ عَفَا اللّٰهُ عَنۡهَا ؕ وَاللّٰهُ غَفُوۡرٌ حَلِيۡمٌ ﴿١٠١﴾

क़ुरआन उतर रहा हो तो वे तुम पर खोल दी जाएँगी। अब तक जो कुछ तुमने किया उसे अल्लाह ने माफ़ कर दिया, वह माफ़ करनेवाला और बुर्दबार (सहनशील) है।

ख़ाह-म-ख़ाह पूछ-पूछ कर ऐसी चीज़ों को तय कराना चाहते थे, जिन्हें शरीअत के बनानेवाले ने मसलिहत के तहत तय नहीं किया है। जैसे क़ुरआन में मुख़्तसर तौर पर यह हुक्म दिया गया था कि हज तुम पर फ़र्ज़ किया गया है। एक साहब ने हुक्म सुनते ही नबी *(सल्ल०)* से पूछा कि "क्या हर साल फ़र्ज़ किया गया है?" आप *(सल्ल०)* ने कुछ जवाब नहीं दिया। उन्होंने फिर पूछा। आप *(सल्ल०)* फिर ख़ामोश रहे। तीसरी बार पूछने पर आप *(सल्ल०)* ने फ़रमाया, "तुम पर अफ़सोस है! अगर मेरी ज़बान से हाँ निकल जाए तो हज हर साल फ़र्ज़ क़रार पा जाए। फिर तुम ही लोग उसकी पैरवी न कर सकोगे और नाफ़रमानी करने लगोगे।" ऐसे ही बे-मतलब और ग़ैर-ज़रूरी सवालों से इस आयत में मना किया गया है।

नबी *(सल्ल०)* ख़ुद भी लोगों को बहुत ज़्यादा सवाल से और ख़ाह-म-ख़ाह हर बात की खोज लगाने से मना करते थे। चुनाँचे हदीस में है कि "मुसलमानों के हक़ में सबसे बड़ा मुजरिम वह आदमी है जिसने किसी ऐसी चीज़ के बारे में सवाल किया जो लोगों पर हराम न की गई थी और फिर सिर्फ़ उसके सवाल करने की बदौलत वह चीज़ हराम कर दी गई।" एक दूसरी हदीस में है कि "अल्लाह ने कुछ तुम पर फ़र्ज़ किए हैं, इन्हें बर्बाद न करो। कुछ चीज़ों को हराम किया है उनके पास न फटको। कुछ हदें मुक़र्रर की हैं, उनसे आगे न बढ़ो और कुछ चीज़ों के बारे में ख़ामोशी इख़्तियार की है बग़ैर इसके कि अल्लाह को भूल हुई हो, इसलिए उनकी खोज न लगाओ।" इन दोनों हदीसों में एक अहम हक़ीक़त पर ख़बरदार किया गया है। जिन मामलों को शरीअत के बनानेवाले ने मुख़्तसर तौर पर बयान किया है और उनकी तफ़सील नहीं बताई, या जो हुक्म मुख़्तसर तौर पर दिए हैं और तादाद या मिक़दार या दूसरी बातें तयशुदा सूरत में नहीं बताई हैं, उनको मुख़्तसर तौर पर बयान करने और उनकी तफ़सील न बयान करने की वजह यह नहीं है कि शरीअत के बनानेवाले से भूल हो गई, तफ़सील बतानी चाहिए थी लेकिन नहीं बताई, बल्कि इसकी अस्ल वजह यह है कि शरीअत का बनानेवाला इन बातों की तफ़सील को महदूद नहीं करना चाहता और अहकाम में लोगों के लिए गुंजाइश रखना चाहता है। अब जो आदमी ख़ाह-म-ख़ाह सवाल पर सवाल निकालकर तफ़सील और बंदिशों को बढ़ाने की कोशिश करता है, और अगर शरीअत भेजनेवाले के कलाम से ये चीज़ें किसी तरह नहीं निकलतीं तो गुमान और अटकल से, खोज-कुरेद से किसी न किसी तरह मुख़्तसर को तफ़सीली बनाकर, जिसमें कोई पाबन्दी और क़ैद नहीं, उसमें पाबन्दी और क़ैद लगाकर, ग़ैर-तयशुदा को तयशुदा बनाकर ही छोड़ता है, वह हक़ीक़त में मुसलमानों को बड़े ख़तरे में डालता है। इसलिए फ़ितरत से परे मामलों में जितनी तफ़सीलें ज़्यादा होंगी, ईमान लानेवाले के लिए उतने ही ज़्यादा उलझन के मौक़े बढ़ेंगे और अहकाम में जितनी पाबन्दियाँ ज़्यादा होंगी पैरवी करनेवाले के लिए हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी करने के इमकान भी उतने ही ज़्यादा होंगे।

قَدْ سَاَلَهَا قَوْمٌ مِّنْ قَبْلِكُمْ ثُمَّ اَصْبَحُوْا بِهَا
كٰفِرِيْنَ ۝١٠٢ مَا جَعَلَ اللّٰهُ مِنْۢ بَحِيْرَةٍ وَّلَا سَآئِبَةٍ
وَّلَا وَصِيْلَةٍ وَّلَا حَامٍ ۙ وَّلٰكِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا
يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ ۭ وَاَكْثَرُهُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ ۝١٠٣

(102) तुमसे पहले एक गरोह ने इसी तरह के सवाल किए थे, फिर वे लोग उन्हीं बातों की वजह से कुफ़्र (अधर्म) में पड़ गए।[117]

(103) अल्लाह ने न कोई बहीरा मुक़र्रर किया है, न सायबा और न वसीला और न हाम[118] मगर कुफ़्र करनेवाले ये लोग अल्लाह पर झूठा बोहतान लगाते हैं और उनमें से अकसर बे-अक़्ल हैं (कि ऐसे अन्धविश्वासों और वहमों को मान रहे हैं।)

117. यानी पहले इन्होंने ख़ुद ही अक़ीदों और अहकाम में बाल की खाल निकालीं और एक-एक चीज़ के बारे में सवाल कर-करके तफ़सीलों और पाबन्दियों का एक जाल अपने लिए तैयार कराया, फिर ख़ुद ही उसमें उलझकर अक़ीदे की गुमराहियों और अमली नाफ़रमानियों में पड़ गए। इस गरोह से मुराद यहूदी हैं जिनके नक़्शे-क़दम पर चलने में, क़ुरआन और नबी *(सल्ल०)* के ख़बरदार करने के बावजूद मुसलमानों ने कोई कसर उठा नहीं रखी है।

118. जिस तरह हमारे देश में गाय, बैल और बकरे ख़ुदा के नाम पर या किसी बुत या क़ब्र या देवता या पीर के नाम पर छोड़ दिए जाते हैं और उनसे कोई ख़िदमत लेना या उन्हें ज़ब्ह करना या किसी तौर पर उनसे फ़ायदा उठाना हराम समझा जाता है, उसी तरह जाहिलियत के ज़माने में अरब के लोग भी मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से जानवरों को सवाब (पुण्य) समझकर छोड़ दिया करते थे और उन तरीक़ों से छोड़े हुए जानवरों के अलग-अलग नाम रखते थे।

'बहीरा' उस ऊँटनी को कहते थे जो पाँच बार बच्चे जन चुकी हो और आख़िरी बार उसके यहाँ नर बच्चा हुआ हो। उसका कान चीर कर उसे आज़ाद छोड़ दिया जाता था। फिर न कोई उस पर सवार होता, न उसका दूध पिया जाता, न उसे ज़ब्ह किया जाता, न उसका ऊन उतारा जाता। उसे हक़ था कि जिस खेत और जिस चरागाह में चाहे चरे और जिस घाट से चाहे पानी पिए।

'साइबा' उस ऊँट या ऊँटनी को कहते थे जिसे किसी मन्नत के पूरा होने या किसी बीमारी से शिफ़ा पाने या किसी ख़तरे से बच जाने पर शुकराने के तौर पर सवाब (पुण्य) के तौर पर छोड़ दिया गया हो। इसी के साथ जिस ऊँटनी ने दस बार बच्चे दिए हों और हर बार मादा ही जनी हो उसे भी आज़ाद छोड़ दिया जाता था।

وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ تَعَالَوْا إِلَىٰ مَا أَنزَلَ اللَّهُ وَإِلَى
الرَّسُولِ قَالُوا حَسْبُنَا مَا وَجَدْنَا عَلَيْهِ آبَاءَنَا ۚ
أَوَلَوْ كَانَ آبَاؤُهُمْ لَا يَعْلَمُونَ شَيْئًا وَلَا يَهْتَدُونَ ﴿١٠٤﴾
يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا عَلَيْكُمْ أَنفُسَكُمْ ۖ لَا يَضُرُّكُم
مَّن ضَلَّ إِذَا اهْتَدَيْتُمْ ۚ إِلَى اللَّهِ مَرْجِعُكُمْ جَمِيعًا

(104) और जब उनसे कहा जाता है कि आओ उस क़ानून की तरफ़ जो अल्लाह ने उतारा है और आओ पैग़म्बर की तरफ़ तो वे जवाब देते हैं कि हमारे लिए तो बस वही तरीक़ा काफ़ी है जिस पर हमने अपने बाप-दादा को पाया है। क्या ये बाप-दादा ही की पैरवी किए चले जाएँगे, चाहे वे कुछ न जानते हों और सही रास्ते की उन्हें ख़बर ही न हो?

(105) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अपनी फ़िक्र करो। किसी दूसरे की गुमराही से तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता, अगर तुम ख़ुद सीधे रास्ते पर हो।[119] अल्लाह की तरफ़ तुम

'वसीला' अगर बकरी का पहला बच्चा नर होता तो वह ख़ुदाओं के नाम पर ज़ब्ह कर दिया जाता और अगर वह पहली बार मादा जनती तो उसे अपने लिए रख लिया जाता था। लेकिन अगर नर और मादा एक साथ पैदा होते तो नर को ज़ब्ह करने के बजाय यूँ ही ख़ुदाओं के नाम पर छोड़ दिया जाता था और उसका नाम वसीला था।

'हाम' अगर किसी ऊँट का पोता सवारी देने के क़ाबिल हो जाता तो उस बूढ़े ऊँट को आज़ाद छोड़ दिया जाता था। इसी तरह अगर किसी ऊँट के नुत्फ़े (वीर्य) से दस बच्चे पैदा हो जाते तो उसे भी आज़ादी मिल जाती।

119. यानी बजाय इसके कि आदमी हर वक़्त यह देखता रहे कि फ़ुलाँ क्या कर रहा है और फ़ुलाँ के अक़ीदे में क्या ख़राबी है और फ़ुलाँ के अमल में क्या बुराई है; उसे यह देखना चाहिए कि वह ख़ुद क्या कर रहा है। उसे फ़िक्र अपने ख़यालों की, अपने अख़लाक़ और आमाल की होनी चाहिए कि वे कहीं ख़राब न हों। आदमी ख़ुद अल्लाह के बताए हुए रास्तों पर चल रहा है, ख़ुदा और बन्दों के जो हक़ उसके ऊपर आते हैं, उन्हें अदा कर रहा है, सीधे रास्ते पर चलने और सच्चाई अपनाने के तक़ाज़ों को पूरा कर रहा है, जिनमें लाज़िमी तौर पर भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना भी शामिल है, तो यक़ीनन किसी आदमी की गुमराही व टेढ़ उसके लिए

فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ۞ يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
شَهَادَةُ بَيْنِكُمْ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ حِيْنَ
الْوَصِيَّةِ اثْنٰنِ ذَوَا عَدْلٍ مِّنْكُمْ اَوْ اٰخَرٰنِ مِنْ غَيْرِكُمْ
اِنْ اَنْتُمْ ضَرَبْتُمْ فِي الْاَرْضِ فَاَصَابَتْكُمْ مُّصِيْبَةُ
الْمَوْتِ ط تَحْبِسُوْنَهُمَا مِنْ بَعْدِ الصَّلٰوةِ فَيُقْسِمٰنِ بِاللّٰهِ

सबको पलटकर जाना है, फिर वह तुम्हें बता देगा कि तुम क्या करते रहे हो।

(106) ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, जब तुममें से किसी की मौत का वक़्त आ जाए और वह वसीयत कर रहा हो तो उसके लिए गवाही का तरीक़ा यह है कि तुम्हारी जमाअत में से दो इनसाफ़पसन्द आदमी[120] गवाह बनाए जाएँ, या अगर तुम सफ़र की हालत में हो और वहाँ मौत की मुसीबत पेश आ जाए तो ग़ैर-मुस्लिमों ही में से दो गवाह ले लिए जाएँ।[121] फिर अगर कोई शक पड़ जाए तो नमाज़ के बाद दोनों गवाहों को

नुक़सान देनेवाली नहीं हो सकती।

इस आयत का यह मंशा हरगिज़ नहीं है कि आदमी बस अपनी नजात की फ़िक्र करे, दूसरों के सुधार की फ़िक्र न करे। हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि॰)* इस ग़लतफ़हमी को दूर करते हुए अपने एक ख़ुतबे में कहते हैं,"लोगो, तुम इस आयत को पढ़ते हो और इसका ग़लत मतलब लेते हो। मैंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल॰)* को यह फ़रमाते सुना है कि जब लोगों का हाल यह हो जाए कि वे बुराई को देखें और उसे बदलने की कोशिश न करें, ज़ालिम को ज़ुल्म करते हुए पाएँ और उसका हाथ न पकड़ें, तो कुछ दूर नहीं कि अल्लाह अपने अज़ाब में सबको लपेट ले। ख़ुदा की क़सम, तुमको लाज़िम है कि भलाई का हुक्म दो और बुराई से रोको, वरना अल्लाह तुम पर ऐसे लोगों को मुसल्लत कर देगा जो तुम में सबसे बदतर होंगे और वे तुम को सख़्त तकलीफ़ें पहुँचाएँगे, फिर तुम्हारे नेक लोग ख़ुदा से दुआएँ माँगेंगे, मगर वे क़बूल न होंगी।"

120. यानी दीनदार, सच्चा और भरोसेमन्द मुसलमान।

121. इससे मालूम हुआ कि मुसलमानों के मामलों में ग़ैर-मुस्लिम को गवाह बनाना सिर्फ़ उस हालत में दुरुस्त है जबकि कोई मुसलमान गवाह बनने के लिए न मिल सके।

إِنِ ارْتَبْتُمْ لَا نَشْتَرِي بِهِ ثَمَنًا وَّلَوْ كَانَ ذَا قُرْبَىٰ ۙ وَلَا
نَكْتُمُ شَهَادَةَ اللَّهِ إِنَّا إِذًا لَّمِنَ الْآثِمِينَ ﴿١٠٦﴾ فَإِنْ عُثِرَ
عَلَىٰ أَنَّهُمَا اسْتَحَقَّا إِثْمًا فَآخَرَانِ يَقُومَانِ مَقَامَهُمَا
مِنَ الَّذِينَ اسْتَحَقَّ عَلَيْهِمُ الْأَوْلَيَانِ فَيُقْسِمَانِ بِاللَّهِ
لَشَهَادَتُنَا أَحَقُّ مِن شَهَادَتِهِمَا وَمَا اعْتَدَيْنَا إِنَّا
إِذًا لَّمِنَ الظَّالِمِينَ ﴿١٠٧﴾ ذَٰلِكَ أَدْنَىٰ أَن يَأْتُوا بِالشَّهَادَةِ
عَلَىٰ وَجْهِهَا أَوْ يَخَافُوا أَن تُرَدَّ أَيْمَانٌ بَعْدَ أَيْمَانِهِمْ ۗ
وَاتَّقُوا اللَّهَ وَاسْمَعُوا ۗ وَاللَّهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ

(मस्जिद में) रोक लिया जाए और वे ख़ुदा की क़सम खाकर कहें कि "हम किसी ज़ाती (निजी) फ़ायदे के बदले गवाही बेचनेवाले नहीं हैं। और चाहे कोई हमारा रिश्तेदार ही क्यों न हो (हम उसकी रिआयत करनेवाले नहीं) और न ख़ुदा वास्ते की गवाही को हम छिपानेवाले हैं, अगर हमने ऐसा किया तो गुनाहगारों में गिने जाएँगे।" (107) लेकिन अगर पता चल जाए कि इन दोनों ने अपने आपको गुनाह में डाल लिया है तो फिर उनकी जगह दो और आदमी, जो उनके मुक़ाबले में गवाही देने के लिए ज़्यादा क़ाबिल हों उन लोगों में से खड़े हों जिनका हक़ मारा गया है। और वे ख़ुदा की क़सम खाकर कहें कि "हमारी गवाही उनकी गवाही से ज़्यादा सही है और हमने अपनी गवाही में कोई ज़्यादती नहीं की है, अगर हम ऐसा करें तो ज़ालिमों में से होंगे।" (108) इस तरीक़े से ज़्यादा उम्मीद की जा सकती है कि लोग ठीक-ठीक गवाही देंगे, या कम से कम इस बात ही का ख़ौफ़ करेंगे कि उनकी क़समों के बाद दूसरी क़समों से कहीं उनका रदद् न हो जाए। अल्लाह से डरो। और सुनो, अल्लाह नाफ़रमानी करनेवालों को अपनी रहनुमाई

ع الْفٰسِقِيْنَ ﴿١٠٨﴾ يَوْمَ يَجْمَعُ اللّٰهُ الرُّسُلَ فَيَقُوْلُ مَاذَآ
اُجِبْتُمْ ؕ قَالُوْا لَا عِلْمَ لَنَا ؕ اِنَّكَ اَنْتَ عَلَّامُ الْغُيُوْبِ ﴿١٠٩﴾
اِذْ قَالَ اللّٰهُ يٰعِيْسَى ابْنَ مَرْيَمَ اذْكُرْ نِعْمَتِيْ
عَلَيْكَ وَعَلٰى وَالِدَتِكَ ۘ اِذْ اَيَّدْتُّكَ بِرُوْحِ
الْقُدُسِ ۫ تُكَلِّمُ النَّاسَ فِي الْمَهْدِ وَكَهْلًا ۚ وَاِذْ
عَلَّمْتُكَ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَالتَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ ۚ وَاِذْ
تَخْلُقُ مِنَ الطِّيْنِ كَهَيْـَٔةِ الطَّيْرِ بِاِذْنِيْ فَتَنْفُخُ فِيْهَا

से महरूम कर देता है।

(109) जिस दिन[122] अल्लाह सब रसूलों को जमा करके पूछेगा कि तुम्हें क्या जवाब[123] दिया गया, तो वे कहेंगे कि हमें कुछ इल्म नहीं,[124] आप ही सब छिपी हक़ीक़तों को जानते हैं। (110, 111) फिर तसव्वुर (कल्पना) करो उस मौक़े का जब अल्लाह कहेगा[125] कि "ऐ मरयम के बेटे ईसा, याद कर मेरी उस नेमत को जो मैंने तुझे और तेरी माँ को दी थी, मैंने पाक रूह से तेरी मदद की, तू पालने में भी लोगों से बात करता था और बड़ी उम्र को पहुँचकर भी। मैंने तुझको किताब और हिकमत और तौरात और इंजील की तालीम दी, तू मेरे हुक्म से मिट्टी का पुतला परिन्दे की शक्ल का बनाता और

122. मुराद है क़ियामत का दिन।

123. यानी इस्लाम की तरफ़ जो दावत तुमने दुनिया को दी थी, उसका क्या जवाब दुनिया ने तुम्हें दिया।

124. यानी हम तो सिर्फ़ उस महदूद ज़ाहिरी जवाब को जानते हैं जो हमें अपनी ज़िन्दगी में मिलता हुआ महसूस हुआ। बाक़ी रही यह बात कि हक़ीक़त में हमारी दावत का रद्दे-अमल कहाँ, किस सूरत में, कितना हुआ तो इसका सही इल्म आपके सिवा किसी को नहीं हो सकता।

125. शुरू का सवाल तमाम रसूलों से मजमूई (सामूहिक) हैसियत से होगा। फिर एक-एक रसूल से अलग-अलग गवाही ली जाएगी जैसा कि क़ुरआन मजीद में बहुत-सी जगहों पर वाज़ेह तौर पर बयान किया गया है। इस सिलसिले में हज़रत ईसा *(अलै०)* से जो सवाल किया जाएगा वह यहाँ ख़ास तौर से नक़ल किया जा रहा है।

فَتَكُوْنُ طَيْرًا بِإِذْنِيْ وَتُبْرِئُ الْأَكْمَهَ وَالْأَبْرَصَ
بِإِذْنِيْ وَإِذْ تُخْرِجُ الْمَوْتٰى بِإِذْنِيْ وَإِذْ كَفَفْتُ بَنِيْٓ
إِسْرَآءِيْلَ عَنْكَ إِذْ جِئْتَهُمْ بِالْبَيِّنٰتِ فَقَالَ الَّذِيْنَ
كَفَرُوْا مِنْهُمْ إِنْ هٰذَآ إِلَّا سِحْرٌ مُّبِيْنٌ ﴿١١٠﴾ وَإِذْ
أَوْحَيْتُ إِلَى الْحَوَارِيّٖنَ أَنْ اٰمِنُوْا بِيْ وَبِرَسُوْلِيْ ۚ قَالُوْٓا
اٰمَنَّا وَاشْهَدْ بِأَنَّنَا مُسْلِمُوْنَ ﴿١١١﴾ إِذْ قَالَ الْحَوَارِيُّوْنَ

उसमें फूँकता था और वह मेरे हुक्म से परिन्दा बन जाता था, तू पैदाइशी (जन्मजात) अन्धे और कोढ़ी को मेरे हुक्म से अच्छा करता था, तू मुर्दों को मेरे हुक्म से निकालता था,[126] फिर जब तू बनी-इसराईल के पास खुली-खुली निशानियाँ लेकर पहुँचा और जो लोग उनमें से हक़ का इनकार करनेवाले थे, उन्होंने कहा कि ये निशानियाँ जादूगरी के सिवा और कुछ नहीं हैं तो मैंने ही तुझे उनसे बचाया, और जब मैंने हवारियों को इशारा किया कि मुझपर और मेरे रसूल पर ईमान लाओ तब उन्होंने कहा कि हम ईमान लाए और गवाह रहो कि हम मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) हैं ।"[127] — (112) (हवारियों[128] के

126. यानी मौत की हालत से निकालकर ज़िन्दगी की हालत में लाता था।

127. यानी हवारियों का तुझ पर ईमान लाना भी हमारी मेहरबानी और मदद का नतीजा था। वरना तुझ में तो इतनी ताक़त भी न थी कि उस झुठलानेवाली आबादी में एक ही माननेवाला अपने बल-बूते पर पैदा कर लेता। इशारे में एक बात यहाँ यह भी बता दी कि हवारियों का असल दीन इस्लाम था, न कि ईसाइयत।

128. चूँकि हवारियों का ज़िक्र आ गया था इसलिए ऊपर से चली आ रही बात के सिलसिले को तोड़कर बीच में यहाँ हवारियों ही के बारे में एक और वाक़िए की तरफ़ भी इशारा कर दिया गया, जिससे यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि मसीह से सीधे तौर पर जिन शागिर्दों ने तालीम पाई थी वे मसीह को एक इनसान और सिर्फ़ एक बन्दा समझते थे और उनके वहम और गुमान में भी अपने मुरशिद (गुरु) के ख़ुदा या ख़ुदाई में शरीक या ख़ुदा के बेटे होने का तसव्वुर न था। इसी के साथ यह कि मसीह ने ख़ुद भी अपने आपको उनके सामने एक बे-इख़्तियार बन्दे की हैसियत से पेश किया था।

يٰعِيسَى ابْنَ مَرْيَمَ هَلْ يَسْتَطِيعُ رَبُّكَ اَنْ يُّنَزِّلَ
عَلَيْنَا مَآئِدَةً مِّنَ السَّمَآءِ ؕ قَالَ اتَّقُوا اللّٰهَ اِنْ كُنْتُمْ
مُّؤْمِنِينَ ﴿۱۱۲﴾ قَالُوْا نُرِيْدُ اَنْ نَّاْكُلَ مِنْهَا وَتَطْمَئِنَّ
قُلُوْبُنَا وَنَعْلَمَ اَنْ قَدْ صَدَقْتَنَا وَنَكُوْنَ عَلَيْهَا
مِنَ الشّٰهِدِيْنَ ﴿۱۱۳﴾ قَالَ عِيسَى ابْنُ مَرْيَمَ اللّٰهُمَّ
رَبَّنَآ اَنْزِلْ عَلَيْنَا مَآئِدَةً مِّنَ السَّمَآءِ تَكُوْنُ لَنَا
عِيْدًا لِّاَوَّلِنَا وَاٰخِرِنَا وَاٰيَةً مِّنْكَ ۚ وَارْزُقْنَا وَاَنْتَ

सिलसिले में) यह वाक़िआ भी याद रहे कि जब हवारियों ने कहा, "ऐ मरयम के बेटे ईसा, क्या आपका रब हम पर आसमान से खाने का एक दस्तरख़ान उतार सकता है?" तो ईसा ने कहा : अल्लाह से डरो, अगर तुम ईमानवाले हो। (113) उन्होंने कहा : हम बस यह चाहते हैं कि उस दस्तरख़ान से खाना खाएँ और हमारे दिल मुतमइन हों और हमें मालूम हो जाए कि आपने जो कुछ हम से कहा है वह सच है और हम उस पर गवाह हों। (114) इस पर मरयम के बेटे ईसा ने दुआ की, "ख़ुदाया, हमारे रब, हम पर आसमान से एक दस्तरख़्वान उतार जो हमारे लिए और हमारे अगलों-पिछलों के लिए ख़ुशी का मौक़ा ठहरे और तेरी तरफ़ से एक निशानी हो, हमको रोज़ी दे और तू

यहाँ यह सवाल किया जा सकता है कि जो बातचीत क़ियामत के दिन होनेवाली है, उसके अन्दर ऊपर से चली आ रही बात से हटकर बीच में आए इस जुमले का कौन-सा मौक़ा होगा? इसका जवाब यह है कि बीच में आया हुआ यह जुमला उस बातचीत के बारे में नहीं है जो क़ियामत के दिन होगी, बल्कि उसकी इस पेशगी हिकायत और दास्तान के बारे में है जो इस दुनिया में की जा रही है। क़ियामत की इस होनेवाली बातचीत का बयान यहाँ किया ही इसलिए जा रहा है कि मौजूदा ज़िन्दगी में ईसाइयों को इससे सबक़ मिले और वे सीधे रास्ते पर आएँ। इसलिए इस बातचीत के सिलसिले में हवारियों के उस वाक़िए का बयान ऊपर से चली आ रही बात के सिलसिले से हटकर बीच में इस जुमले में आना किसी तरह बेताल्लुक़ नहीं है।

خَيْرُ الرّٰزِقِيْنَ ﴿١١٤﴾ قَالَ اللّٰهُ اِنِّيْ مُنَزِّلُهَا عَلَيْكُمْ ۚ
فَمَنْ يَّكْفُرْ بَعْدُ مِنْكُمْ فَاِنِّيْۤ اُعَذِّبُهٗ عَذَابًا لَّاۤ
اُعَذِّبُهٗۤ اَحَدًا مِّنَ الْعٰلَمِيْنَ ﴿١١٥﴾ وَاِذْ قَالَ اللّٰهُ
يٰعِيْسَى ابْنَ مَرْيَمَ ءَاَنْتَ قُلْتَ لِلنَّاسِ اتَّخِذُوْنِيْ
وَاُمِّيَ اِلٰهَيْنِ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؕ قَالَ سُبْحٰنَكَ مَا يَكُوْنُ
لِيْۤ اَنْ اَقُوْلَ مَا لَيْسَ لِيْ ۗ بِحَقٍّ ؕ اِنْ كُنْتُ قُلْتُهٗ فَقَدْ

बेहतरीन रोज़ी देनेवाला है।" (115) अल्लाह ने जवाब दिया, "मैं उसको तुमपर उतारने वाला हूँ[129] मगर इसके बाद जो तुममें से कुफ़्र करेगा उसे मैं ऐसी सज़ा दूँगा जो दुनिया में किसी को न दी होगी।"– (116) मतलब यह कि जब (इन एहसानों को याद दिलाकर) अल्लाह फ़रमाएगा कि "ऐ मरयम के बेटे ईसा, क्या तूने लोगों से कहा था कि ख़ुदा के सिवा मुझे और मेरी माँ को भी ख़ुदा बना लो?"[130] तो वह जवाब में कहेगा कि "सुब्हानल्लाह (अल्लाह पाक है), मेरा यह काम न था कि वह बात कहता जिसके कहने

129. क़ुरआन इस बारे में ख़ामोश है कि यह ख़्वान (थाल) हक़ीक़त में उतारा गया या नहीं। दूसरे किसी भरोसेमन्द ज़रीए से भी इस सवाल का जवाब नहीं मिलता। मुमकिन है कि यह नाज़िल हुआ हो और मुमकिन है कि हवारियों ने बाद की ख़ौफ़नाक धमकी सुनकर अपनी दरख़ास्त वापस ले ली हो।

130. ईसाइयों ने अल्लाह के साथ सिर्फ़ मसीह और रूहुल-क़ुदुस (पवित्रात्मा) ही को ख़ुदा बनाने पर बस नहीं किया, बल्कि मसीह की बुज़ुर्ग माँ हज़रत मरयम को भी एक मुस्तक़िल माबूद बना डाला। हज़रत मरयम (अलै.) के ख़ुदा होने या पाक रूह होने के बारे में कोई इशारा तक बाइबल में मौजूद नहीं है। मसीह के बाद शुरू के तीन सौ सालों तक ईसाई दुनिया इस ख़याल से बिलकुल बेख़बर थी। तीसरी सदी ईसवी के आख़िरी दौर में स्कन्दरिया (Alexandria) के कुछ दीनी (धार्मिक) आलिमों ने पहली बार हज़रत मरयम के लिए 'उम्मुल्लाह' या 'ख़ुदा की माँ' के अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए। इसके बाद धीरे-धीरे मरयम के ख़ुदा होने का अक़ीदा और मरयम की इबादत करने का चलन ईसाइयों में फैलना शुरू हुआ। लेकिन पहले-पहल तो चर्च उसे बाक़ायदा तस्लीम करने के लिए तैयार न था, बल्कि मरयम की पूजा करनेवालों को ग़लत

عَلِمْتَهٗ ؕ تَعْلَمُ مَا فِیْ نَفْسِیْ وَلَاۤ اَعْلَمُ مَا فِیْ نَفْسِكَ ؕ
اِنَّكَ اَنْتَ عَلَّامُ الْغُیُوْبِ ۝۱۱۷ مَا قُلْتُ لَهُمْ اِلَّا مَاۤ
اَمَرْتَنِیْ بِهٖۤ اَنِ اعْبُدُوا اللّٰهَ رَبِّیْ وَرَبَّكُمْ ۚ وَكُنْتُ

का मुझे हक़ न था, अगर मैंने ऐसी बात कही होती तो आपको ज़रूर मालूम होता। आप जानते हैं जो कुछ मेरे दिल में है और मैं नहीं जानता जो कुछ आपके दिल में है, आप तो सारी छिपी हक़ीक़तों के जाननेवाले हैं। (117) मैंने उनसे इसके सिवा कुछ नहीं कहा जिसका आपने हुक्म दिया था, यह कि अल्लाह की बन्दगी करो जो मेरा रब भी है और

अक़ीदेवाला (धर्मभ्रष्ट) क़रार देता था। फिर जब नसतूरियस के इस अक़ीदे पर कि मसीह की एक अकेली ज़ात में दो मुस्तक़िल और बिलकुल अलग-अलग शख़्सियतें जमा थीं, मसीही दुनिया में बहस और झगड़े का एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। तो इसका फ़ैसला करने के लिए 431 ई॰ में शहर अफ़िसुस में एक कौंसिल हुई और इस कौंसिल में पहली बार कलीसा (चर्च) की सरकारी ज़बान में हज़रत मरयम के लिए 'मादरे-ख़ुदा' यानी 'ख़ुदा की माँ' का लक़ब इस्तेमाल किया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि मरयम को पूजने की जो बीमारी अब तक कलीसा (चर्च) के बाहर फैल रही थी वह इसके बाद कलीसा के अन्दर भी तेज़ी के साथ फैलने लगी, यहाँ तक कि क़ुरआन के उतरने के ज़माने तक पहुँचते-पहुँचते हज़रत मरयम इतनी बड़ी देवी बन गईं कि बाप, बेटा और रूहुल-क़ुदुस तीनों उनके सामने बौने हो गए। उनके मुजस्समे (बुत और मूर्तियाँ) जगह-जगह कलीसाओं में रखे हुए थे। उनके आगे इबादत की सभी रस्में अदा की जाती थीं। उन्हीं से दुआएँ माँगी जाती थीं, वही फ़रियाद सुननेवाली, ज़रूरतों को पूरा करनेवाली, मुश्किल को दूर करनेवाली और बेसहारों को सहारा देनेवाली थीं, और एक मसीही बन्दे के लिए भरोसे का सबसे बड़ा ज़रीआ था तो वह यह था कि 'ख़ुदा की माँ' की हिमायत और सरपरस्ती उसे हासिल हो। क़ैसर जस्टनेन अपने एक क़ानून की तमहीद (भूमिका) में हज़रत मरयम को अपनी सल्तनत का हिमायती और मददगार क़रार देता है। उसका मशहूर जनरल नरसीस लड़ाई के मैदान में हज़रत मरयम से हिदायत और रहनुमाई माँगता है। नबी *(सल्ल०)* के ज़माने का बादशाह क़ैसर हिरक़्ल ने अपने झण्डे पर 'ख़ुदा की माँ' की तस्वीर बना रखी थी और उसे यक़ीन था कि इस तस्वीर की बरकत से यह झण्डा झुक न पाएगा। हालाँकि बाद की सदियों में सुधार की जो तहरीक चली उसके असर से प्रोटेस्टेंट ईसाइयों ने मरयम को पूजने के ख़िलाफ़ सख़्ती से आवाज़ उठाई, लेकिन रोमन कैथोलिक कलीसा (चर्च) आज तक इस रास्ते पर चल रहा है।

عَلَيْهِمْ شَهِيْدًا مَّا دُمْتُ فِيْهِمْ ۚ فَلَمَّا تَوَفَّيْتَنِيْ كُنْتَ
اَنْتَ الرَّقِيْبَ عَلَيْهِمْ ۭ وَاَنْتَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدٌ ﴿١١٧﴾
اِنْ تُعَذِّبْهُمْ فَاِنَّهُمْ عِبَادُكَ ۚ وَاِنْ تَغْفِرْ لَهُمْ فَاِنَّكَ
اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿١١٨﴾ قَالَ اللّٰهُ هٰذَا يَوْمُ يَنْفَعُ
الصّٰدِقِيْنَ صِدْقُهُمْ ۭ لَهُمْ جَنّٰتٌ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا
الْاَنْهٰرُ خٰلِدِيْنَ فِيْهَآ اَبَدًا ۭ رَضِيَ اللّٰهُ عَنْهُمْ وَرَضُوْا
عَنْهُ ۭ ذٰلِكَ الْفَوْزُ الْعَظِيْمُ ﴿١١٩﴾ لِلّٰهِ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَ
الْاَرْضِ وَمَا فِيْهِنَّ ۭ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿١٢٠﴾ ع

तुम्हारा रब भी। मैं उसी वक़्त तक उनका निगराँ था जब तक कि मैं उनके बीच था। जब आपने मुझे वापस बुला लिया तो आप उनपर निगराँ थे और आप तो सारी ही चीज़ों पर निगराँ हैं। (118) अब अगर आप उन्हें सज़ा दें तो वे आपके बन्दे हैं और अगर माफ़ कर दें तो आप ग़ालिब और हिकमतवाले हैं।" (119) तब अल्लाह कहेगा, "यह वह दिन है जिसमें सच्चों को उनकी सच्चाई फ़ायदा देती है। उनके लिए ऐसे बाग़ हैं जिनके नीचे नहरें बह रही हैं, यहाँ वे हमेशा रहेंगे, अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वे अल्लाह से, यही बड़ी कामयाबी है।"

(120) ज़मीन और आसमानों और तमाम मौजूद चीज़ों की बादशाही अल्लाह ही के लिए है और वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।

☆☆☆

6. अल-अनआम

परिचय

नाम

इस सूरा के रुकू 16-17 (आयत 130-144) में कुछ अनआम (मवेशियों) को हराम क़रार दिए जाने और कुछ को हलाल क़रार दिए जाने के बारे में अरबवालों के अन्धविश्वासों को रद्द किया गया है। इसी पहलू से इसका नाम अल-अनआम रखा गया है।

उतरने का ज़माना

इब्ने-अब्बास (रज़ि०) की रिवायत है कि यह पूरी सूरा मक्का में एक ही वक़्त में उतरी थी। हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि०) की चचेरी बहन असमा-बिन्ते-यज़ीद कहती हैं कि "जब यह सूरा नबी *(सल्ल॰)* पर उतर रही थी उस वक़्त आप (सल्ल॰) ऊँटनी पर सवार थे, मैं उसकी नकेल पकड़े हुए थी और बोझ के मारे ऊँटनी का यह हाल हो रहा था कि मालूम होता था कि उसकी हड्डियाँ अब टूट जाएँगी।" रिवायतों में यह बात भी बताई गई है कि जिस रात यह सूरा उतरी उसी रात को आप *(सल्ल॰)* ने इसे लिखवा दिया।

इसके मज़मूनों (विषयों) पर ग़ौर करने से साफ़ मालूम होता है कि यह सूरा मक्की दौर के आख़िरी ज़माने में उतरी होगी। हज़रत असमा-बिन्ते-यज़ीद (रज़ि०) की रिवायत भी इसी की तसदीक़ करती है; क्योंकि वे अनसार में से थीं और हिजरत के बाद ईमान लाईं। अगर इस्लाम क़बूल करने से पहले सिर्फ़ अक़ीदत की बुनियाद पर वे नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में मक्का हाज़िर हुई होंगी तो यक़ीनन यह हाज़िरी आप (सल्ल॰) की मक्की ज़िन्दगी के आख़िरी साल में ही हुई होगी। इससे पहले यसरिब (मदीना) के लोगों के साथ आपके ताल्लुक़ात इतने बढ़े ही न थे कि वहाँ से किसी औरत का आप *(सल्ल॰)* की ख़िदमत में हाज़िर होना मुमकिन होता।

उतरने की वजह

उतरने का ज़माना तय हो जाने के बाद हम आसानी के साथ उस पस-मंज़र (परिदृश्य) को देख सकते हैं जिसमें यह ख़ुतबा इरशाद हुआ है। उस वक़्त अल्लाह के रसूल को इस्लाम की तरफ़ दावत देते हुए बारह साल गुज़र चुके थे। क़ुरैश की तरफ़ से रुकावटें, सितमगरी व ज़ुल्म-ज़्यादती इन्तिहा को पहुँच चुकी थी। इस्लाम क़बूल करनेवालों

की एक बड़ी तादाद उनके ज़ुल्म और सितम से तंग आकर मुल्क छोड़ चुकी थी और हब्श में ठहरी हुई थी। नबी *(सल्ल.)* की ताईद और हिमायत के लिए न अबू-तालिब बाक़ी रहे थे और न हज़रत ख़दीजा, इसलिए दुनिया के हर सहारे से महरूम होकर आप (सल्ल.) सख़्त रुकावटों के मुक़ाबले में रिसालत (पैग़म्बरी) की तबलीग़ (प्रचार) का फ़र्ज़ अंजाम दे रहे थे। आपकी तबलीग़ के असर से मक्का में और आस-पास के क़बीलों में भी नेक और भले इनसान एक के बाद एक इस्लाम क़बूल करते जा रहे थे। लेकिन क़ौम कुल मिलाकर (नबी सल्ल. के पैग़ाम के) रद्द और इनकार पर तुली हुई थी। जहाँ कोई इनसान इस्लाम की तरफ़ थोड़ा रुझान भी ज़ाहिर करता था उसे ताने और मलामत, जिस्मानी तकलीफ़ें और मआशी (आर्थिक) व समाजी बाइकॉट का निशाना बनना पड़ता था। इस अन्धेरे माहौल में सिर्फ़ एक हल्की-सी किरण मदीना की तरफ़ से ज़ाहिर हुई थी जहाँ से औस और ख़ज़रज के असरदार लोग आकर नबी *(सल्ल.)* के हाथ पर बैअत कर चुके थे और जहाँ किसी अन्दरूनी रुकावट के बग़ैर इस्लाम फैलना शुरू हो गया था। मगर इस मामूली सी शुरुआत में आइन्दा के जो इमकानात (सम्भावनाएँ) छिपी हुई थीं उन्हें कोई ज़ाहिर में देखनेवाली आँख नहीं देख सकती थी। बज़ाहिर देखनेवालों को जो कुछ नज़र आता था वह बस यह था कि इस्लाम एक कमज़ोर-सी तहरीक है, जिसकी पीठ पर कोई माद्दी (भौतिक) ताक़त नहीं, जिसका बुलानेवाला अपने ख़ानदान की कमज़ोर-सी हिमायत के सिवा कोई ताक़त नहीं रखता और जिसे क़बूल करनेवाले कुछ मुट्ठी भर बे-बस और बिखरे हुए लोग अपनी क़ौम के अक़ीदे और मसलक से फिरकर इस तरह समाज से निकाल फेंके गए हैं जैसे पत्ते अपने पेड़ से झड़ कर ज़मीन पर फैल जाएँ।

मबाहिस (विषय-वस्तु)

इन हालात में यह ख़ुतबा इरशाद हुआ है और इसके मज़मूनों को सात बड़ी-बड़ी सुर्ख़ियों में बाँटा जा सकता है –

(1) शिर्क (अनेकेश्वरवाद) को ग़लत साबित करना और तौहीद (एकेश्वरवाद) के अक़ीदे की तरफ़ दावत देना।

(2) आख़िरत के अक़ीदे की तबलीग़ (प्रचार) और इस ग़लत ख़याल को रद्द करना कि ज़िन्दगी जो कुछ है बस यही दुनिया की ज़िन्दगी है।

(3) जाहिलियत के उन अन्धविश्वासों को रद्द करना जिनमें लोग पड़े हुए थे।

(4) उन बड़े-बड़े अख़लाक़ी उसूलों की ताकीद और नसीहत जिन पर इस्लाम समाज की तामीर चाहता था।

(5) नबी (सल्ल.) और आपके पैग़ाम के ख़िलाफ़ लोगों के एतिराज़ों और सवालों का जवाब।

(6) लम्बी जिद्दोजुहूद के बावजूद दावत का कोई नतीजा न निकलने पर नबी (सल्ल。) और आम मुसलमानों के अन्दर बेचैनी और हिम्मत हारने जैसी जो कैफ़ियत पैदा हो रही थी उस पर तसल्ली।

(7) इनकार करनेवालों और मुख़ालिफ़ों को उनकी ग़फ़लत और मदहोशी और अनजाने में ख़ुदकुशी पर नसीहत और डराना।

लेकिन ख़ुतबे का अन्दाज़ यह नहीं है कि एक-एक बात पर अलग-अलग एक साथ बातचीत की गई हो, बल्कि ख़ुतबा एक दरिया की-सी रवानी के साथ चलता जाता है और उसके दौरान में ये बातें बहुत-से तरीक़ों से बार-बार छिड़ती हैं और हर बार एक नए अन्दाज़ से उन पर बातचीत की जाती है।

मक्की ज़िन्दगी के दौर

यहाँ चूँकि पहली बार पढ़नेवालों के सामने एक तफ़सीली मक्की सूरा आ रही है इसलिए मुनासिब मालूम होता है कि इस जगह पर हम मक्की सूरतों के तारीख़ी पस-मंज़र (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि) की एक जामेअ (सारगर्भित) तशरीह (व्याख्या) कर दें, ताकि आगे सभी मक्की सूरतों को और उनकी तफ़सीर के सिलसिले में हमारे इशारों को समझना आसान हो जाए।

जहाँ तक मदनी सूरतों का ताल्लुक़ है, उनमें से तो लगभग हर एक के उतरने का ज़माना मालूम है या थोड़ी-सी कोशिश से तय किया जा सकता है; बल्कि मदनी सूरतों की तो बहुत-सी आयतों के उतरने की इनफ़िरादी वजह तक भरोसेमन्द रिवायतों में मिल जाती है। लेकिन मक्की सूरतों के बारे में हमारे पास मालूमात के इतने तफ़सीली ज़रीए मौजूद नहीं हैं। बहुत कम सूरतें या आयतें ऐसी हैं जिनके उतरने का ज़माना और उतरने के मौक़े के बारे में कोई सही और भरोसेमन्द रिवायत मिलती हो; क्योंकि उस ज़माने का इतिहास इतनी ज़्यादा छोटी-छोटी तफ़सीलों के साथ लिखा नहीं गया था, जितना कि मदनी दौर का लिखा गया है। इस वजह से मक्की सूरतों के मामले में हमको तारीख़ी गवाहियों के बजाय ज़्यादातर उन अन्दरूनी गवाहियों पर भरोसा करना पड़ता है, जो दूसरी बहुत-सी सूरतों के मज़मून (विषय) और अन्दाज़े-बयान में और अपने पस-मंज़र की तरफ़ उनके खुले या छिपे इशारों में पाई जाती हैं। और ज़ाहिर है कि इस तरह की गवाहियों से मदद लेकर एक-एक सूरा और एक-एक आयत के बारे में यह तय नहीं किया जा सकता कि यह फ़ुलाँ तारीख़ को या फ़ुलाँ सन् में फ़ुलाँ मौक़े पर उतरी है। ज़्यादा सही तौर से जो कुछ किया जा सकता है वह सिर्फ़ यह है कि एक तरफ़ हम मक्की सूरतों की अन्दरूनी गवाहियों को, और दूसरी तरफ़ नबी *(सल्ल。)* की मक्की ज़िन्दगी की तारीख़ को आमने-सामने रखें और फिर दोनों को सामने रखते हुए यह राए क़ायम करें कि कौन-सी सूरा किस दौर से ताल्लुक़ रखती है।

तहक़ीक़ (शोध) के इस तरीक़े को ज़ेहन में रखकर जब हम नबी *(सल्ल०)* की मक्की ज़िन्दगी पर निगाह डालते हैं तो वह इस्लाम की दावत के पहलू से हमको चार बड़े-बड़े नुमायाँ दौर में बँटी हुई नज़र आती है—

पहला दौर मुहम्मद *(सल्ल०)* को पैग़म्बर बनाए जाने की इबतिदा से लेकर नुबूवत के एलान तक, तक़रीबन 3 साल, जिसमें दावत ख़ुफ़िया तरीक़े से ख़ास-ख़ास आदमियों को दी जा रही थी और मक्का के आम लोगों को इसका इल्म न था।

दूसरा दौर नुबूवत के एलान से लेकर ज़ुल्म-सितम और फ़ितने (Persecution) के आग़ाज़ तक, लगभग 2 साल, जिसमें पहले मुख़ालिफ़त शुरू हुई, फिर उसने रुकावट बनने की शक्ल इख़्तियार की, फिर मज़ाक़ बनाना और फब्तियाँ कसना, इलज़ाम लगाना, गाली-गलोज और लानत-मलामत करना, झूठे प्रोपगण्डे और मुख़ालिफ़ाना जत्थेबन्दी तक नौबत पहुँची, और आख़िरकार उन मुसलमानों पर ज़्यादतियाँ शुरू हो गईं जो औरों के मुक़ाबले में ज़्यादा ग़रीब, कमज़ोर और बे-यारो मददगार थे।

तीसरा दौर, फ़ितने की शुरुआत (सन 5 नबवी) से लेकर अबू-तालिब और हज़रत ख़दीजा *(रज़ि०)* के इन्तिक़ाल (यानी दस नबवी) तक, लगभग 5-6 साल। इसमें मुख़ालिफ़त और दुश्मनी बहुत सख़्त होती चली गई, बहुत-से मुसलमान मक्का के इस्लाम-दुश्मनों के ज़ुल्म और सितम से तंग आकर हब्श की तरफ़ हिजरत कर गए, नबी *(सल्ल०)* और आपके ख़ानदान और बाक़ी बचे मुसलमानों का माली और समाजी बाइकॉट किया गया और आप *(सल्ल०)* अपने हामियों और साथियों के साथ अबू-तालिब की घाटी में क़ैद कर दिए गए।

चौथा दौर, सन 10 नबवी से लेकर 13 नबवी तक तक़रीबन तीन साल। यह नबी *(सल्ल०)* और आपके साथियों के लिए बहुत ही सख़्ती और मुसीबत का ज़माना था। मक्का में आप *(सल्ल०)* के लिए ज़िन्दगी दूभर कर दी गई थी, ताइफ़ गए तो वहाँ भी पनाह न मिली, हज के मौक़े पर अरब के एक-एक क़बीले से आप (सल्ल०) अपील करते रहे कि वह आप *(सल्ल०)* की दावत क़बूल करे और आपका साथ दे। मगर हर तरफ़ से कोरा जवाब ही मिलता रहा। और इधर मक्कावाले बार-बार ये मशविरे करते रहे कि नबी *(सल्ल०)* को क़त्ल कर दें या क़ैद कर दें या अपनी बस्ती से निकाल दें। आख़िरकार अल्लाह की मेहरबानी से अनसार के दिल इस्लाम के लिए खुल गए और उनकी दावत पर आप *(सल्ल०)* ने मदीना की तरफ़ हिजरत की।

इनमें से हर दौर में क़ुरआन मजीद की जो सूरतें उतरी हैं वे अपने मज़मूनों और अन्दाज़े-बयान में दूसरे दौर की सूरतों से अलग हैं। उनमें ज़्यादातर जगहों पर ऐसे इशारे भी पाए जाते हैं जिनसे पस-मंज़र के हालात और वाक़िआत पर साफ़ रौशनी पड़ती है। हर दौर की ख़ुसूसियतों का असर उस दौर के उतरे हुए कलाम में बहुत बड़ी हद तक नुमायाँ नज़र आता है। इन ही अलामतों पर भरोसा करके हम आगे हर मक्की सूरा की तमहीद (भूमिका) में यह बताएँगे कि वह मक्का के किस दौर में उतरी है।

﴿اٰیاتہا ۱۶۵﴾ ﴿(۶) سُوْرَۃُ الْاَنْعَامِ مَکِّیَّۃٌ (۵۵)﴾ ﴿رکوعاتہا ۲۰﴾

بِسْمِ اللّٰہِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِیْمِ

اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ الَّذِیْ خَلَقَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ وَجَعَلَ
الظُّلُمٰتِ وَالنُّوْرَ ۬ ثُمَّ الَّذِیْنَ کَفَرُوْا بِرَبِّہِمْ یَعْدِلُوْنَ ①
ھُوَ الَّذِیْ خَلَقَکُمْ مِّنْ طِیْنٍ ثُمَّ قَضٰۤی اَجَلًا ؕ وَ

6. अल-अनआम

(मक्का में उतरी, आयतें 165)

अल्लाह के नाम से जो बेइन्तिहा मेहरबान और रहम फ़रमानेवाला है।

(1) तारीफ़ अल्लाह के लिए है जिसने ज़मीन और आसमान बनाए, रौशनी और अँधेरे पैदा किए। फिर भी वे लोग जिन्होंने हक़ की दावत को मानने से इनकार कर दिया है दूसरों को अपने रब का हमसर (समकक्ष) ठहरा रहे हैं।[1] (2) वही है जिसने तुमको मिट्टी से पैदा किया,[2] फिर तुम्हारे लिए ज़िन्दगी की एक मुद्दत मुक़र्रर कर दी, और एक

1. याद रहे कि यह बात अरब के उन मुशरिकों से कही जा रही है जो इस बात को मानते थे कि ज़मीन और आसमान का पैदा करनेवाला अल्लाह है, वही दिन निकालता और रात लाता है और उसी ने सूरज और चाँद को वुजूद बख़्शा है। उनमें से किसी का भी यह अक़ीदा नहीं था कि ये काम लात या हुबल या उज़्ज़ा या किसी और देवी या देवता के हैं। इसलिए उनको ख़िताब करते हुए कहा जा रहा है कि नादानो! जब तुम ख़ुद यह मानते हो कि ज़मीन और आसमान का बनानेवाला और रात व दिन को बारी-बारी से लाने और ले जानेवाला अल्लाह है तो ये दूसरे कौन होते हैं कि उनके सामने सज्दे करते हो, नज़्रें और नियाज़ें चढ़ाते हो, दुआएँ माँगते हो और अपनी ज़रूरतें रखते हो। (देखें सूरा-1, अल-फ़ातिहा, हाशिया-2; सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-163)

रौशनी के मुक़ाबले में अँधेरों को जमा (बहुवचन) के रूप में बयान किया गया है, क्योंकि अँधेरा नाम है रौशनी के न होने का और रौशनी के न होने के बेशुमार दर्जे हैं। इसलिए रौशनी एक है और अँधेरे बहुत हैं।

أَجَلٌ مُّسَمًّى عِنْدَهٗ ثُمَّ أَنْتُمْ تَمْتَرُوْنَ ۝٢ وَهُوَ اللّٰهُ
فِي السَّمٰوٰتِ وَفِي الْاَرْضِ ؕ يَعْلَمُ سِرَّكُمْ وَجَهْرَكُمْ
وَيَعْلَمُ مَا تَكْسِبُوْنَ ۝٣ وَمَا تَاْتِيْهِمْ مِّنْ اٰيَةٍ مِّنْ
اٰيٰتِ رَبِّهِمْ اِلَّا كَانُوْا عَنْهَا مُعْرِضِيْنَ ۝٤ فَقَدْ
كَذَّبُوْا بِالْحَقِّ لَمَّا جَآءَهُمْ ؕ فَسَوْفَ يَاْتِيْهِمْ
اَنْۢبٰٓؤُا مَا كَانُوْا بِهٖ يَسْتَهْزِءُوْنَ ۝٥ اَلَمْ يَرَوْا كَمْ
اَهْلَكْنَا مِنْ قَبْلِهِمْ مِّنْ قَرْنٍ مَّكَّنّٰهُمْ فِي الْاَرْضِ

दूसरी मुद्दत और भी है जो उसके यहाँ तयशुदा है।[3] मगर तुम लोग हो कि शक में पड़े हुए हो। (3) वही एक ख़ुदा आसमानों में भी है और ज़मीन में भी, तुम्हारे खुले और छिपे सब हाल जानता है और जो बुराई या भलाई तुम कमाते हो उससे ख़ूब वाक़िफ़ है।

(4) लोगों का हाल यह है कि उनके रब की निशानियों में से कोई निशानी ऐसी नहीं जो उनके सामने आई हो और उन्होंने उससे मुँह न मोड़ लिया हो। (5) चुनाँचे अब जो हक़ इनके पास आया तो उसे भी इन्होंने झुठला दिया। अच्छा, जिस चीज़ का वे अब तक मज़ाक़ उड़ाते रहे हैं बहुत ही जल्दी उसके बारे में कुछ ख़बरें उन्हें पहुँचेंगी।[4] (6) क्या उन्होंने देखा नहीं कि इनसे पहले कितनी ऐसी क़ौमों को हम हलाक कर चुके हैं

2. इनसानी जिस्म के तमाम अजज़ा (तत्त्व) ज़मीन से हासिल होते हैं, कोई एक ज़र्रा भी इसमें ज़मीन से हटकर नहीं है। इसलिए कहा कि तुम को मिट्टी से पैदा किया गया है।
3. यानी क़ियामत की घड़ी जबकि तमाम अगले-पिछले इनसान नए सिरे से ज़िन्दा किए जाएँगे और हिसाब देने के लिए अपने रब के सामने हाज़िर होंगे।
4. इशारा है हिजरत और उन कामयाबियों की तरफ़ जो हिजरत के बाद इस्लाम को लगातार हासिल होनेवाली थीं। जिस वक़्त यह इशारा किया गया था उस वक़्त न इस्लाम-दुश्मन यह सोच सकते थे कि किस तरह की ख़बरें उन्हें पहुँचनेवाली हैं और न मुसलमानों ही के ज़ेहन में इसका कोई तसव्वुर था; बल्कि नबी (सल्ल०) ख़ुद भी इस बात से बेख़बर थे कि आइन्दा क्या-क्या हासिल होनेवाला है।

مَا لَمْ نُمَكِّنْ لَّكُمْ وَاَرْسَلْنَا السَّمَآءَ عَلَيْهِمْ مِّدْرَارًا ص
وَّجَعَلْنَا الْاَنْهٰرَ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهِمْ فَاَهْلَكْنٰهُمْ
بِذُنُوْبِهِمْ وَاَنْشَاْنَا مِنْۢ بَعْدِهِمْ قَرْنًا اٰخَرِيْنَ ۝٦
وَلَوْ نَزَّلْنَا عَلَيْكَ كِتٰبًا فِيْ قِرْطَاسٍ فَلَمَسُوْهُ
بِاَيْدِيْهِمْ لَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اِنْ هٰذَآ اِلَّا سِحْرٌ
مُّبِيْنٌ ۝٧ وَقَالُوْا لَوْلَآ اُنْزِلَ عَلَيْهِ مَلَكٌ ط وَلَوْ

जिनका अपने-अपने ज़माने में दौर-दौरा रहा है? उनको हमने ज़मीन में वह इक़्तिदार दिया था जो तुम्हें नहीं दिया है। उन पर हमने आसमान से ख़ूब बारिशें बरसाईं और उनके नीचे नहरें बहा दीं (मगर जब उन्होंने नेमतों पर नाशुक्री से काम लिया तो) आख़िरकार हमने उनके गुनाहों के बदले में उन्हें तबाह कर दिया और उनकी जगह दूसरे दौर की क़ौमों को उठाया।

(7) ऐ पैग़म्बर, अगर हम तुम्हारे ऊपर कोई काग़ज़ में लिखी-लिखाई किताब भी उतार देते और लोग उसे अपने हाथों से छूकर भी देख लेते तब भी जिन्होंने हक़ का इनकार किया है वे यही कहते कि यह तो खुला जादू है। (8) कहते हैं कि इस नबी पर कोई फ़रिश्ता क्यों नहीं उतारा गया।[5] अगर कहीं हमने फ़रिश्ता उतार दिया होता

5. यानी जब यह शख़्स ख़ुदा की तरफ़ से पैग़म्बर बनाकर भेजा गया है तो आसमान से एक फ़रिश्ता उतरना चाहिए था जो लोगों से कहता कि यह ख़ुदा का पैग़म्बर है। इसकी बात मानो वरना तुम्हें सज़ा दी जाएगी। एतिराज़ करनेवाले जाहिलों को इस बात पर ताज्जुब था कि ज़मीन और आसमान का बनानेवाला किसी को पैग़म्बर मुक़र्रर करे और फिर इस तरह उसे बे यारो-मददगार पत्थर खाने और गालियाँ सुनने के लिए छोड़ दे। इतने बड़े बादशाह का नुमाइन्दा अगर किसी बड़े स्टाफ़ के साथ न आया था तो कम से कम एक फ़रिश्ता तो उसका बॉडी गार्ड (अंग रक्षक) होना चाहिए था, ताकि वह उसकी हिफ़ाज़त करता, उसका रोब और दबदबा बिठाता, इस बात का यक़ीन दिलाता कि उसे ख़ुदा ने भेजा है और फ़ितरी तरीक़ों से ऊपर उठकर उसके काम अंजाम देता।

اَنْزَلْنَا مَلَكًا لَّقُضِيَ الْاَمْرُ ثُمَّ لَا يُنْظَرُوْنَ ۝۸ وَلَوْ جَعَلْنٰهُ
مَلَكًا لَّجَعَلْنٰهُ رَجُلًا وَّ لَلَبَسْنَا عَلَيْهِمْ مَّا يَلْبِسُوْنَ ۝۹
وَلَقَدِ اسْتُهْزِئَ بِرُسُلٍ مِّنْ قَبْلِكَ فَحَاقَ بِالَّذِيْنَ

तो अब तक कभी का फ़ैसला हो चुका होता, फिर उन्हें कोई मुहलत न दी जाती।[6] (9) और अगर हम फ़रिश्ते को उतारते तब भी उसे इनसानी शक्ल ही में उतारते और इस तरह उन्हें उसी शक में डाल देते, जिसमें अब ये पड़े हुए हैं।[7]

(10) ऐ नबी, तुमसे पहले भी बहुत-से रसूलों का मज़ाक़ उड़ाया जा चुका है मगर

---

6. यह उनके एतिराज़ का पहला जवाब है। इसका मतलब यह है कि ईमान लाने और अपने रवैये को सुधारने के लिए जो मुहलत तुम्हें मिली हुई है यह उसी वक़्त तक है जब तक हक़ीक़त ग़ैब (परोक्ष) के परदे में छिपी है। वरना जहाँ ग़ैब का परदा हटा, फिर मुहलत का कोई मौक़ा बाक़ी न रहेगा। उसके बाद तो सिर्फ़ हिसाब ही लेना बाक़ी रह जाएगा। इसलिए कि दुनिया की ज़िन्दगी तुम्हारे लिए एक इम्तिहान का ज़माना है, और इम्तिहान इस बात का है कि तुम हक़ीक़त को देखे बिना अक़्ल और फ़िक्र (बुद्धि और विवेक) के सही इस्तेमाल से उसको पाते हो या नहीं, और पाने के बाद अपने मन और उसकी ख़ाहिशों को क़ाबू में लाकर अपने अमल को हक़ीक़त के मुताबिक़ दुरुस्त रखते हो या नहीं। इस इम्तिहान के लिए ग़ैब का ग़ैब रहना लाज़िम शर्त है और तुम्हारी दुनियवी ज़िन्दगी, जो असल में इम्तिहान की मुहलत है, उसी वक़्त तक क़ायम रह सकती है जब तक ग़ैब ग़ैब है। जहाँ ग़ैब वाज़ेह होकर सामने आ गया, यह मुहलत लाज़िमी तौर पर ख़त्म हो जाएगी और इम्तिहान के बजाय इम्तिहान का नतीजा निकलने का वक़्त आ पहुँचेगा। इसलिए तुम्हारे मुतालबे के जवाब में यह मुमकिन नहीं है कि तुम्हारे सामने फ़रिश्ते को उसकी असली सूरत में नुमायाँ कर दिया जाए; क्योंकि अल्लाह अभी तुम्हारे इम्तिहान की मुद्दत ख़त्म नहीं करना चाहता। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-228)

7. यह उनके एतिराज़ का दूसरा जवाब है। फ़रिश्ते के आने की पहली सूरत यह हो सकती थी कि वह लोगों के सामने अपनी असली ग़ैबी सूरत में ज़ाहिर होता। लेकिन ऊपर बता दिया गया कि अभी इसका वक़्त नहीं आया। अब दूसरी सूरत यह बाक़ी रह गई कि वह इनसानी सूरत में आए। इसके बारे में फ़रमाया जा रहा है कि अगर वह इनसानी सूरत में आए तो उसके अल्लाह की तरफ़ से भेजा हुआ होने में भी तुमको वही शुब्ह पेश आएगा जो मुहम्मद (सल्ल॰) के अल्लाह की तरफ़ से भेजे जाने में हो रहा है।

سَخِرُوْا مِنْهُمْ مَّا كَانُوْا بِهٖ يَسْتَهْزِءُوْنَ ۝١٠ ع قُلْ
سِيْرُوْا فِي الْاَرْضِ ثُمَّ انْظُرُوْا كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ
الْمُكَذِّبِيْنَ ۝١١ قُلْ لِّمَنْ مَّا فِي السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضِ ط
قُلْ لِّلّٰهِ ط كَتَبَ عَلٰى نَفْسِهِ الرَّحْمَةَ ط لَيَجْمَعَنَّكُمْ اِلٰى
يَوْمِ الْقِيٰمَةِ لَا رَيْبَ فِيْهِ ط اَلَّذِيْنَ خَسِرُوْٓا اَنْفُسَهُمْ
فَهُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ۝١٢ وَلَهٗ مَا سَكَنَ فِي الَّيْلِ وَ النَّهَارِ ط

इन मज़ाक़ उड़ानेवालों पर आख़िरकार वही हक़ीक़त मुसल्लत होकर रही जिसका वे मज़ाक़ उड़ाते थे। (11) इनसे कहो : ज़रा ज़मीन में चल-फिर कर देखो झुठलानेवालों का क्या अंजाम हुआ है।[8]

(12) इनसे पूछो : आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है वह किसका है?—कहो : सब कुछ अल्लाह ही का है,[9] उसने रहम और करम का रवैया अपने ऊपर लाज़िम कर लिया है (इसी लिए वह नाफ़रमानियों और सरकशियों पर तुम्हें जल्दी से नहीं पकड़ लेता), क़ियामत के दिन वह तुम सबको ज़रूर जमा करेगा, यह बिलकुल एक ऐसी हक़ीक़त है जिसमें कोई शक नहीं, मगर जिन लोगों ने अपने आप को ख़ुद तबाही के ख़तरे में डाल लिया है वे उसे नहीं मानते। (13) रात के अँधेरे और दिन के उजाले में जो कुछ ठहरा

---

8. यानी गुज़री हुई क़ौमों के आसारे-क़दीमा (पुरातत्त्व) और उनकी तारीख़ी दास्तानें (ऐतिहासिक गाथाएँ) गवाही देंगी कि सच्चाई और हक़ीक़त से मुँह मोड़ने और बातिल परस्ती पर जमे रहने की बदौलत किस तरह ये क़ौमें इबरतनाक (शिक्षाप्रद) अंजाम से दो-चार हुईं।
9. यह एक लतीफ़ (सूक्ष्म) अन्दाज़े-बयान है। पहले हुक्म हुआ कि इनसे पूछो, ज़मीन और आसमान में मौजूद चीज़ें किसकी हैं। सवाल करनेवाले ने सवाल किया और जवाब के इन्तिज़ार में ठहर गया। जिन लोगों से बात की जा रही है हालाँकि वे ख़ुद इस बात को मानते हैं कि सब कुछ अल्लाह का है, लेकिन न तो वे ग़लत जवाब देने का हौसला रखते हैं और न सही जवाब देना चाहते हैं, क्योंकि अगर सही जवाब देते हैं तो इन्हें डर है कि मुख़ालिफ़ इससे उनके मुशरिकाना अक़ीदे के ख़िलाफ़ दलील पेश करेगा। इसलिए वे कुछ जवाब नहीं देते। तब हुक्म होता है कि तुम ख़ुद ही कहो कि सब कुछ अल्लाह का है।

وَهُوَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ ﴿١٣﴾ قُلْ أَغَيْرَ اللَّهِ أَتَّخِذُ وَلِيًّا
فَاطِرِ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ وَهُوَ يُطْعِمُ وَلَا يُطْعَمُ ۗ
قُلْ إِنِّي أُمِرْتُ أَنْ أَكُونَ أَوَّلَ مَنْ أَسْلَمَ ۖ وَلَا
تَكُونَنَّ مِنَ الْمُشْرِكِينَ ﴿١٤﴾ قُلْ إِنِّي أَخَافُ إِنْ
عَصَيْتُ رَبِّي عَذَابَ يَوْمٍ عَظِيمٍ ﴿١٥﴾ مَنْ يُصْرَفْ
عَنْهُ يَوْمَئِذٍ فَقَدْ رَحِمَهُ ۚ وَذَٰلِكَ الْفَوْزُ الْمُبِينُ ﴿١٦﴾

हुआ है, सब अल्लाह का है और वह सब कुछ सुनता और जानता है। (14) कहो : अल्लाह को छोड़कर क्या मैं किसी और को अपना सरपरस्त बना लूँ? उस ख़ुदा को छोड़कर जो ज़मीन और आसमान का ख़ालिक़ है और जो रोज़ी देता है रोज़ी लेता नहीं है?[10] कहो मुझे तो यही हुक्म दिया गया है कि सबसे पहले मैं उसके आगे फ़रमाँबरदारी के साथ सर झुका दूँ (और ताकीद की गई है कि कोई शिर्क करता है तो करे) तू किसी भी हाल में मुशरिकों में शामिल न हो। (15) कहो, अगर मैं अपने रब की नाफ़रमानी करूँ तो डरता हूँ कि एक बड़े (ख़ौफ़नाक) दिन मुझे सज़ा भुगतनी पड़ेगी। (16) उस दिन जो सज़ा से बच गया उस पर अल्लाह ने बड़ा ही रहम किया और यही नुमायाँ कामयाबी

---

10. इसमें एक लतीफ़ तारीज़ (सूक्ष्म व्यंग्य) है। मुशरिकों ने अल्लाह के सिवा जिन-जिनको अपना ख़ुदा बना रखा है वे सब अपने उन बन्दों को रोज़ी देने के बजाय उल्टा उनसे रोज़ी पाने के मुहताज हैं। कोई फ़िरऔन ख़ुदाई के ठाठ नहीं जमा सकता जब तक उसके बन्दे उसे टैक्स और नज़राने न दें। किसी क़ब्रवाले के माबूद होने की शान क़ायम नहीं हो सकती जब तक कि उसके परस्तार उसका शानदार मक़बरा तामीर न करें। किसी देवता का दरबारे-ख़ुदावन्दी सज नहीं सकता जब तक उसके पुजारी उसका मुजस्समा और मूर्ति बनाकर किसी शानदार मन्दिर में न रखें और उसको साज-सज्जा के सामानों से न सजाएँ। सारे बनावटी ख़ुदा बेचारे ख़ुद अपने बन्दों के मोहताज हैं। सिर्फ़ एक ख़ुदावन्दे-आलम ही वह हक़ीक़ी ख़ुदा है जिसकी ख़ुदाई आप अपने बल बूते पर क़ायम है और जो किसी की मदद का मुहताज नहीं, बल्कि सब उसी के मुहताज हैं।

وَاِنْ يَّمْسَسْكَ اللّٰهُ بِضُرٍّ فَلَا كَاشِفَ لَهٗٓ اِلَّا هُوَ ؕ
وَاِنْ يَّمْسَسْكَ بِخَيْرٍ فَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿۱۷﴾
وَهُوَ الْقَاهِرُ فَوْقَ عِبَادِهٖ ؕ وَهُوَ الْحَكِيْمُ الْخَبِيْرُ ﴿۱۸﴾
قُلْ اَيُّ شَيْءٍ اَكْبَرُ شَهَادَةً ؕ قُلِ اللّٰهُ ۙ شَهِيْدٌۢ
بَيْنِيْ وَبَيْنَكُمْ ۟ وَاُوْحِيَ اِلَيَّ هٰذَا الْقُرْاٰنُ لِاُنْذِرَكُمْ
بِهٖ وَمَنْۢ بَلَغَ ؕ اَئِنَّكُمْ لَتَشْهَدُوْنَ اَنَّ مَعَ اللّٰهِ
اٰلِهَةً اُخْرٰى ؕ قُلْ لَّآ اَشْهَدُ ۚ قُلْ اِنَّمَا هُوَ اِلٰهٌ

है। (17) अगर अल्लाह तुम्हें किसी क़िस्म का नुक़सान पहुँचाए तो उसके सिवा कोई नहीं जो तुम्हें उस नुक़सान से बचा सके, और अगर वह तुम्हें किसी भलाई से फ़ायदा पहुँचाए तो वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (18) वह अपने बन्दों पर मुकम्मल इख़्तियारात रखता है और सूझ-बूझवाला और बाख़बर है।

(19) इनसे पूछो, किसकी गवाही सबसे बढ़कर है?---कहो, मेरे और तुम्हारे दर्मियान अल्लाह गवाह है,[11] और यह क़ुरआन मेरी तरफ़ वह्य के ज़रीए से भेजा गया है, ताकि तुम्हें और जिस-जिस को यह पहुँचे, सबको ख़बरदार कर दूँ। क्या वाक़ई तुम लोग यह गवाही दे सकते हो कि अल्लाह के साथ दूसरे ख़ुदा भी हैं?[12] कहो, मैं तो इसकी गवाही हरगिज़ नहीं दे सकता।[13] कहो, ख़ुदा तो वही एक है और

11. यानी इस बात पर गवाह है कि मैं उसकी तरफ़ से भेजा गया हूँ और जो कुछ कह रहा हूँ उसी के हुक्म से कह रहा हूँ।
12. किसी चीज़ की गवाही देने के लिए सिर्फ़ गुमान या अटकल काफ़ी नहीं हैं, बल्कि उसके लिए इल्म होना ज़रूरी है, जिसकी बुनियाद पर आदमी यक़ीन के साथ कह सके कि ऐसा है। तो सवाल का मतलब यह है कि क्या वाक़ई तुम्हें यह इल्म है कि इस पूरे जहान में ख़ुदा के सिवा और भी कोई इख़्तियार रखनेवाला बादशाह है जो बन्दगी और इबादत का हक़दार हो?
13. यानी अगर तुम इल्म के बग़ैर सिर्फ़ झूठी गवाही देना चाहते हो तो दो, मैं तो ऐसी गवाही नहीं दे सकता।

وَّاحِدٌ وَّاِنَّنِيْ بَرِيْٓءٌ مِّمَّا تُشْرِكُوْنَ ﴿١٩﴾ اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ
الْكِتٰبَ يَعْرِفُوْنَهٗ كَمَا يَعْرِفُوْنَ اَبْنَآءَهُمْ ۘ اَلَّذِيْنَ
خَسِرُوْٓا اَنْفُسَهُمْ فَهُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿٢٠﴾ وَمَنْ اَظْلَمُ
مِمَّنِ افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا اَوْ كَذَّبَ بِاٰيٰتِهٖ ؕ اِنَّهٗ
لَا يُفْلِحُ الظّٰلِمُوْنَ ﴿٢١﴾ وَيَوْمَ نَحْشُرُهُمْ جَمِيْعًا ثُمَّ نَقُوْلُ

मैं उस शिर्क से बिलकुल बेज़ार (विरक्त) हूँ जिसमें तुम पड़े हुए हो। (20) जिन लोगों को हम ने किताब दी है वह इस बात को इस तरह बग़ैर किसी शक-शुब्हे के पहचानते हैं जैसे उनको अपने बेटों के पहचानने मैं कोई शक और शुब्ह नहीं होता।[14] मगर जिन्होंने अपने आपको ख़ुद घाटे में डाल दिया है वे इसे नहीं मानते। (21) और उस आदमी से बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह पर झूठा बोहतान लगाए,[15] या अल्लाह की निशानियों को झुठलाए?[16] यक़ीनन ऐसे ज़ालिम कभी फ़लाह नहीं पा सकते।

(22) जिस दिन हम इन सबको इकट्ठा करेंगे और मुशरिकों से पूछेंगे कि अब वे

14. यानी आसमानी किताबों का इल्म रखनेवाले इस हक़ीक़त को बग़ैर किसी शक और शुब्ह के पहचानते हैं कि ख़ुदा एक ही है और ख़ुदाई में किसी का कुछ हिस्सा नहीं है। जिस तरह किसी का बच्चा बहुत-से बच्चों में मिला-जुला खड़ा हो तो वह अलग पहचान लेगा कि उसका बच्चा कौन-सा है, इसी तरह जो शख़्स अल्लाह की किताब का इल्म रखता हो वह ख़ुदाई के बारे में लोगों के बहुत-से अक़ीदों और नज़रियों (धारणाओं और विचारों) के बीच बिना किसी शक और शुब्हे के यह पहचान लेता है कि इनमें से हक़ बात कौन-सी है।

15. यानी यह दावा करे कि ख़ुदा के साथ दूसरी बहुत-सी हस्तियाँ भी ख़ुदाई में शरीक हैं, ख़ुदाई सिफ़ात (गुण) रखती हैं, ख़ुदाई के इख़्तियार रखती हैं और इसकी हक़दार हैं कि इनसान उनके आगे बन्दगी और ग़ुलामी का रवैया इख़्तियार करे। साथ ही यह भी अल्लाह पर बोहतान है कि कोई यह कहे कि ख़ुदा ने फ़ुलाँ-फ़ुलाँ हस्तियों को अपना ख़ास क़रीबी ठहराया है और उसी ने यह हुक्म दिया है, या कम से कम यह कि वह इस पर राज़ी है कि उनसे ख़ुदाई सिफ़ात जोड़ी जाएँ और उनसे वह मामला किया जाए जो बन्दे को अपने ख़ुदा के साथ करना चाहिए।

16. अल्लाह की निशानियों से मुराद वे निशानियाँ भी हैं जो इनसान के अपने नफ़्स और सारी

لِلَّذِيْنَ اَشْرَكُوْٓا اَيْنَ شُرَكَآؤُكُمُ الَّذِيْنَ كُنْتُمْ
تَزْعُمُوْنَ ﴿٢٢﴾ ثُمَّ لَمْ تَكُنْ فِتْنَتُهُمْ اِلَّآ اَنْ قَالُوْا وَ اللّٰهِ
رَبِّنَا مَا كُنَّا مُشْرِكِيْنَ ﴿٢٣﴾ اُنْظُرْ كَيْفَ كَذَبُوْا عَلٰٓى
اَنْفُسِهِمْ وَضَلَّ عَنْهُمْ مَّا كَانُوْا يَفْتَرُوْنَ ﴿٢٤﴾ وَمِنْهُمْ
مَّنْ يَّسْتَمِعُ اِلَيْكَ ۚ وَجَعَلْنَا عَلٰى قُلُوْبِهِمْ اَكِنَّةً اَنْ
يَّفْقَهُوْهُ وَفِيْٓ اٰذَانِهِمْ وَقْرًا ۭ وَاِنْ يَّرَوْا كُلَّ اٰيَةٍ لَّا

तुम्हारे ठहराए हुए शरीक कहाँ हैं जिनको तुम अपना ख़ुदा समझते थे। (23) तो वे इसके सिवा कोई फ़ितना न उठा सकेंगे कि (यह झूठा बयान दें कि) ऐ हमारे आक़ा, तेरी क़सम! हम हरगिज़ मुशरिक न थे। (24) देखो, उस वक़्त ये किस तरह अपने ऊपर आप झूठ घड़ेंगे, और वहाँ उनके सारे बनावटी माबूद गुम हो जाएँगे।

(25) इनमें से कुछ लोग ऐसे हैं जो कान लगाकर तुम्हारी बात सुनते हैं, मगर हाल यह है कि हम ने उनके दिलों पर परदे डाल रखे हैं जिनकी वजह से वे इसको कुछ नहीं समझते और इनके कानों में गिरानी डाल दी है (कि सब कुछ सुनने पर भी कुछ नहीं

कायनात में फैली हुई हैं, और वे भी जो पैग़म्बरों की सीरत (आचरण) और उनके कारनामों में ज़ाहिर हुईं, और वे भी जो आसमानी किताबों में पेश की गईं। ये सारी निशानियाँ एक ही हक़ीक़त की तरफ़ रहनुमाई करती हैं। यानी यह कि पूरी कायनात में ख़ुदा सिर्फ़ एक है, बाक़ी सब बन्दे हैं। अब जो आदमी इन तमाम निशानियों के मुक़ाबले में किसी हक़ीक़ी गवाही के बिना किसी इल्म, किसी मुशाहिदे (अवलोकन) और किसी तजुर्बे के बिना सिर्फ़ अटकल या अपने बाप-दादा की पैरवी की बुनियाद पर दूसरों को ख़ुदाई सिफ़ातवाला और ख़ुदाई हक़ों का हक़दार ठहराता है, ज़ाहिर है कि उससे बढ़कर ज़ालिम कोई नहीं हो सकता। वह हक़ीक़त और सच्चाई पर ज़ुल्म कर रहा है, अपने आप पर ज़ुल्म कर रहा है और कायनात की हर उस चीज़ पर ज़ुल्म कर रहा है जिसके साथ वे इस ग़लत नज़रिए (दृष्टिकोण) की बिना पर कोई मामला करता है।

يُؤْمِنُوا بِهَا ۚ حَتَّىٰ إِذَا جَاءُوكَ يُجَادِلُونَكَ يَقُولُ
الَّذِينَ كَفَرُوا إِنْ هَٰذَا إِلَّا أَسَاطِيرُ الْأَوَّلِينَ ﴿٢٥﴾ وَهُمْ
يَنْهَوْنَ عَنْهُ وَيَنْأَوْنَ عَنْهُ ۖ وَإِنْ يُهْلِكُونَ إِلَّا

सुनते)[17] वे चाहे कोई निशानी देख लें, इस पर ईमान लाकर न देंगे। हद यह है कि जब वे तुम्हारे पास आकर तुम से झगड़ते हैं तो इनमें से जिन लोगों ने इनकार का फ़ैसला कर लिया है वे (सारी बातें सुनने के बाद) यही कहते हैं कि यह एक पुरानी कहानियों के सिवा कुछ नहीं।[18] (26) वे इस हक़ बात को क़बूल करने से लोगों को रोकते हैं और

17. यहाँ यह बात सामने रहे कि फ़ितरत के क़ानून के तहत जो कुछ दुनिया में होता है उसे अल्लाह अपने से जोड़ता है, क्योंकि अस्ल में इस क़ानून का बनानेवाला अल्लाह ही है और जो नतीजे इस क़ानून के तहत सामने आते हैं वे सब हक़ीक़त में अल्लाह की मर्ज़ी और उसके इरादे के तहत ही सामने आया करते हैं। हक़ का इनकार करनेवाले हठधर्मियों का सब कुछ सुनने पर भी कुछ न सुनना और हक़ की तरफ़ बुलानेवाले की किसी बात का उनके दिल में न उतरना उनकी हठधर्मी और तास्सुब (द्वेष) और जुमूद (जड़ता) का फ़ितरी नतीजा है। फ़ितरत का क़ानून यही है कि जो आदमी ज़िद पर उतर आता है और बेतास्सुबी (निष्पक्षता) के साथ सच्चाई पसन्द इनसान का-सा रवैया इख़्तियार करने पर तैयार नहीं होता, उसके दिल के दरवाज़े हर उस सच्चाई के लिए बन्द हो जाते हैं जो उसकी ख़ाहिशों के ख़िलाफ़ हो। इस बात को जब हम बयान करेंगे तो यूँ कहेंगे कि फ़ुलाँ आदमी के दिल के दरवाज़े बन्द हैं। और इसी बात को जब अल्लाह बयान फ़रमाएगा तो यूँ फ़रमाएगा कि उसके दिल के दरवाज़े हमने बन्द कर दिए हैं; क्योंकि हम सिर्फ़ वाक़िआ बयान करते हैं और अल्लाह उस वाक़िए की हक़ीक़त का इज़हार करता है।

18. नादान लोगों का आम तौर से यह क़ायदा होता है कि जब कोई आदमी उन्हें हक़ की तरफ़ बुलाता है तो वे कहते हैं कि तुमने नई बात क्या कही, ये तो सब वही पुरानी बातें हैं जो हम पहले से सुनते चले आ रहे हैं। मानो इन बेवक़ूफ़ों का नज़रिया यह है कि किसी बात के हक़ होने के लिए उसका नया होना भी ज़रूरी है और जो बात पुरानी है वह हक़ नहीं है। हालाँकि हक़ हर ज़माने में एक ही रहा है और हमेशा एक ही रहेगा। ख़ुदा के दिए हुए इल्म की बिना पर जो लोग इनसानों की रहनुमाई के लिए आगे बढ़े हैं वे सब पुराने ज़माने से एक ही हक़ बात को पेश करते आए हैं और आइन्दा भी जो इल्म के इस ज़रीए से फ़ायदा उठाकर कुछ पेश करेगा वह उसी पुरानी बात को दोहराएगा। अलबत्ता नई बात सिर्फ़ वही लोग निकाल सकते हैं जो ख़ुदा की रौशनी से महरूम होकर अज़ली और अब्दी (आदिकालीन और सार्वकालीन)

اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۝٢٦ وَلَوْ تَرٰٓى اِذْ وُقِفُوْا عَلَى
النَّارِ فَقَالُوْا يٰلَيْتَنَا نُرَدُّ وَلَا نُكَذِّبَ بِاٰيٰتِ رَبِّنَا
وَنَكُوْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ۝٢٧ بَلْ بَدَا لَهُمْ مَّا كَانُوْا
يُخْفُوْنَ مِنْ قَبْلُ ؕ وَلَوْ رُدُّوْا لَعَادُوْا لِمَا نُهُوْا عَنْهُ وَ
اِنَّهُمْ لَكٰذِبُوْنَ ۝٢٨ وَقَالُوْٓا اِنْ هِيَ اِلَّا حَيَاتُنَا الدُّنْيَا وَمَا
نَحْنُ بِمَبْعُوْثِيْنَ ۝٢٩ وَلَوْ تَرٰٓى اِذْ وُقِفُوْا عَلٰى رَبِّهِمْ ؕ

ख़ुद भी इससे दूर भागते हैं। (वे समझते हैं कि इस हरकत से वे तुम्हारा कुछ बिगाड़ रहे हैं) हालाँकि असल में वे ख़ुद अपनी ही तबाही का सामान कर रहे हैं मगर इन्हें इसका शऊर नहीं है। (27) काश! तुम उस वक़्त की हालत देख सकते जब वे दोज़ख़ के किनारे खड़े किए जाएँगे। उस वक़्त वे कहेंगे कि काश! कोई सूरत ऐसी हो कि हम दुनिया में फिर वापस भेजे जाएँ और अपने रब की निशानियों को न झुठलाएँ और ईमान लानेवालों में शामिल हों। (28) हक़ीक़त में यह बात वे सिर्फ़ इस वजह से कहेंगे कि जिस हक़ीक़त पर उन्होंने परदा डाल रखा था वे उस वक़्त बे-नक़ाब होकर उनके सामने आ चुकी होगी,[19] वरना अगर इन्हें पिछली ज़िन्दगी की तरफ़ वापस भेजा जाए तो फिर वही सब कुछ करें जिससे उन्हें मना किया गया है, वे तो हैं ही झूठे (इसलिए अपनी इस ख़ाहिश के इज़हार में भी झूठ ही से काम लेंगे)। (29) आज ये लोग कहते हैं कि ज़िन्दगी जो कुछ भी है बस यही दुनिया की ज़िन्दगी है और हम मरने के बाद हरगिज़ दोबारा न उठाए जाएँगे। (30) काश! वह मंज़र तुम देख सको जब ये अपने रब के

हक़ीक़त को नहीं देख सकते और अपने ज़ेहन की उपज से कुछ नज़रियात और उसूल घड़कर उन्हें हक़ के नाम से पेश करते हैं। इस क़िस्म के लोग बिला शुब्ह ऐसी अनोखी बात कहनेवाले हो सकते हैं कि वह बात कहें जो उनसे पहले कभी दुनिया में किसी ने न कही हो।

19. यानी उनका यह कहना हक़ीक़त में अक़्ल और फ़िक्र के किसी सही फ़ैसले और राय की किसी हक़ीक़ी तब्दीली का नतीजा न होगा बल्कि सिर्फ़ हक़ को देखने का नतीजा होगा, जिसके बाद ज़ाहिर है कि कोई कट्टर से कट्टर इनकारी भी इनकार की हिम्मत नहीं कर सकता।

قَالَ اَلَيْسَ هٰذَا بِالْحَقِّ ؕ قَالُوْا بَلٰى وَرَبِّنَا ؕ قَالَ فَذُوْقُوا
الْعَذَابَ بِمَا كُنْتُمْ تَكْفُرُوْنَ ﴿۳۰﴾ قَدْ خَسِرَ الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا ع
بِلِقَآءِ اللّٰهِ ؕ حَتّٰۤى اِذَا جَآءَتْهُمُ السَّاعَةُ بَغْتَةً قَالُوْا
يٰحَسْرَتَنَا عَلٰى مَا فَرَّطْنَا فِيْهَا ۙ وَهُمْ يَحْمِلُوْنَ اَوْزَارَهُمْ
عَلٰى ظُهُوْرِهِمْ ؕ اَلَا سَآءَ مَا يَزِرُوْنَ ﴿۳۱﴾ وَمَا الْحَيٰوةُ
الدُّنْيَاۤ اِلَّا لَعِبٌ وَّلَهْوٌ ؕ وَلَلدَّارُ الْاٰخِرَةُ خَيْرٌ

सामने खड़े किए जाएँगे। उस वक़्त इनका रब इनसे पूछेगा, "क्या यह हक़ीक़त नहीं है?" ये कहेंगे, "हाँ ऐ हमारे रब, यह हक़ीक़त ही है।" वह कहेगा, "अच्छा, तो अब अपने हक़ीक़त के इनकार के बदले में अज़ाब का मज़ा चखो।"

(31) नुक़सान में पड़ गए वे लोग जिन्होंने अल्लाह से अपनी मुलाक़ात की ख़बर को झूठ क़रार दिया। जब अचानक वह घड़ी आ जाएगी तो यही लोग कहेंगे, "अफ़सोस! हमसे इस मामले में कैसी कोताही हुई।" और इनका हाल यह होगा कि अपनी पीठों पर अपने गुनाहों का बोझ लादे हुए होंगे। देखो! कैसा बुरा बोझ है जो ये उठा रहे हैं।

(32) दुनिया की ज़िन्दगी तो एक खेल और एक तमाशा है,[20] हक़ीक़त में आख़िरत ही का मक़ाम उन लोगों के लिए बेहतर है जो नुक़सान उठाने से बचना चाहते हैं, फिर

---

20. इसका यह मतलब नहीं है कि दुनिया की ज़िन्दगी में कोई संजीदगी नहीं है और यह सिर्फ़ खेल और तमाशे के तौर पर बनाई गई है। असल में इसका मतलब यह है कि आख़िरत की हक़ीक़ी और पाएदार ज़िन्दगी के मुक़ाबले में यह ज़िन्दगी ऐसी है जैसे कोई आदमी कुछ देर खेल और तफ़रीह में दिल बहलाए और फिर असल संजीदा कारोबार की तरफ़ वापस हो जाए। इसी के साथ इसकी मिसाल खेल और तमाशे से इसलिए भी दी गई है कि यहाँ हक़ीक़त के छिपे होने की वजह से दूर तक न देखनेवाले और सिर्फ़ ऊपरी चीज़ों को देखकर रीझनेवाले इनसानों के लिए ग़लतफ़हमियों में पड़ने की बहुत-सी वजहें मौजूद हैं और इन ग़लतफ़हमियों में फँसकर लोग असल हक़ीक़त के ख़िलाफ़ ऐसे-ऐसे अजीब रवैये अपनाते हैं जिनकी बदौलत उनकी ज़िन्दगी सिर्फ़ एक खेल और तमाशा बनकर रह जाती है। मिसाल के तौर पर, जो आदमी यहाँ बादशाह

لِلَّذِیْنَ یَتَّقُوْنَ ؕ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ﴿۳۲﴾ قَدْ نَعْلَمُ اِنَّهٗ
لَیَحْزُنُكَ الَّذِیْ یَقُوْلُوْنَ فَاِنَّهُمْ لَا یُكَذِّبُوْنَكَ وَلٰكِنَّ
الظّٰلِمِیْنَ بِاٰیٰتِ اللّٰهِ یَجْحَدُوْنَ ﴿۳۳﴾ وَلَقَدْ كُذِّبَتْ رُسُلٌ
مِّنْ قَبْلِكَ فَصَبَرُوْا عَلٰی مَا كُذِّبُوْا وَاُوْذُوْا حَتّٰۤی

क्या तुम लोग अक्ल से काम न लोगे?

(33) ऐ नबी! हमें मालूम है कि जो बातें ये लोग बनाते हैं उनसे तुम्हें रंज होता है, लेकिन ये लोग तुम्हें नहीं झुठलाते बल्कि ये ज़ालिम असूल में अल्लाह की आयतों का इनकार कर रहे हैं।[21] (34) तुमसे पहले भी बहुत-से रसूल झुठलाए जा चुके हैं, मगर इस झुठलाने पर और उन तकलीफ़ों पर जो उन्हें पहुँचाई गईं, उन्होंने सब्र किया, यहाँ तक कि

बनकर बैठता है उसकी हैसियत हक़ीक़त में थियेटर के उस बनावटी बादशाह से अलग नहीं होती जो ताज पहनकर विराजमान होता है और इस तरह हुक्म चलाता है कि मानो वह वाक़ई बादशाह है। हालाँकि हक़ीक़ी बादशाही की उसको हवा तक नहीं लगी होती। डायरेक्टर के एक इशारे पर वह हटा दिया जाता है, क़ैद किया जाता है और उसके क़त्ल तक का फ़ैसला कर दिया जाता है। ऐसे ही तमाशे इस दुनिया में हर तरफ़ हो रहे हैं। कहीं किसी वली या देवी के दरबार से ज़रूरतें पूरी हो रही हैं। हालाँकि वहाँ ज़रूरतें पूरी करने की ताक़त का नाम-व-निशान तक मौजूद नहीं। कहीं कोई ग़ैब के जानने के कमालात का मुज़ाहिरा कर रहा है, हालाँकि ग़ैब का इल्म वहाँ रत्ती भर भी नहीं। कहीं कोई लोगों को रोज़ी देनेवाला बना हुआ है, हालाँकि बेचारा ख़ुद अपनी रोज़ी के लिए किसी और का मुहताज है। कहीं कोई अपने आप को इज़्ज़त और रुसवाई देनेवाला, नफ़ा और नुक़सान पहुँचानेवाला समझे बैठा है और यूँ अपनी बड़ाई के डंके बजा रहा है कि मानो कि वही आसपास की सारी चीज़ों का ख़ुदा है, हालाँकि उसके माथे पर यह निशान लगा हुआ है कि वह मामूली-सा बन्दा है और क़िस्मत का एक ज़रा-सा झटका उसे बड़ाई के मक़ाम से गिराकर उन्हीं लोगों के क़दमों में पामाल करा सकता है जिन पर वह कल तक ख़ुदाई कर रहा था। ये सब खेल जो दुनिया की कुछ दिन की ज़िन्दगी में खेले जा रहे हैं मौत की घड़ी आते ही एकबारगी ख़त्म हो जाएँगे। और इस सरहद से पार होते ही इनसान उस जहान में पहुँच जाएगा जहाँ सब कुछ बिलकुल सच्चाई के मुताबिक़ होगा और जहाँ दुनिया की ज़िन्दगी की सारी ग़लतफ़हमियों के छिलके उतार कर हर इनसान को दिखा दिया जाएगा कि वह सच्चाई का कितना जौहर अपने साथ लाया है जिसका हक़ की तराज़ू में कोई वज़न और कुछ भी क़ीमत हो सकती हो।

21. सच्ची बात यह है कि जब तक मुहम्मद (सल्ल॰) ने अल्लाह की आयतें सुनानी शुरू न की थीं,

اَتٰىهُمْ نَصْرُنَا ۚ وَلَا مُبَدِّلَ لِكَلِمٰتِ اللّٰهِ ۚ وَلَقَدْ جَآءَكَ
مِنْ نَّبَاِى الْمُرْسَلِيْنَ ﴿۳۴﴾ وَاِنْ كَانَ كَبُرَ عَلَيْكَ
اِعْرَاضُهُمْ فَاِنِ اسْتَطَعْتَ اَنْ تَبْتَغِىَ نَفَقًا فِى الْاَرْضِ

उन्हें हमारी मदद पहुँच गई। अल्लाह की बातों को बदलने की ताक़त किसी में नहीं है,[22] और पिछले रसूलों के साथ जो कुछ पेश आया उसकी ख़बरें तुम्हें पहुँच ही चुकी हैं।
(35) फिर भी अगर उन लोगों की बेरुख़ी तुम से बर्दाश्त नहीं होती तो अगर तुम में कुछ

आपकी क़ौम के सब लोग आपको अमीन और सादिक़ (अमानतदार और सच्चा) समझते थे और आपकी सच्चाई पर पूरा भरोसा करते थे। उन्होंने आपको झुठलाया उस वक़्त जबकि आपने अल्लाह की तरफ़ से पैग़ाम पहुँचाना शुरू किया। और इस दूसरे दौर में भी उनके अन्दर कोई शख़्स ऐसा न था जो शख़्सी हैसियत से आपको झूठा क़रार देने की जुर्रत कर सकता हो। आप *(सल्ल.)* के किसी सख़्त से सख़्त मुख़ालिफ़ ने भी कभी आप *(सल्ल.)* पर यह इलज़ाम नहीं लगाया कि आपने दुनिया के किसी मामले में कभी झूठ बोला है। उन्होंने जितना आप *(सल्ल.)* को झुठलाया वह सिर्फ़ नबी होने की हैसियत से झुठलाया। आपका सबसे बड़ा दुश्मन अबू-जहल था और हज़रत अली *(रज़ि.)* की रिवायत है कि एक बार उसने ख़ुद नबी *(सल्ल.)* से बातचीत करते हुए कहा था कि "हम आपको तो झूठा नहीं कहते, मगर जो कुछ आप पेश कर रहे हैं उसे झूठ कहते हैं।" बद्र की लड़ाई के मौक़े पर अख़नस-बिन-शरीक़ ने अकेले में अबू-जहल से पूछा कि यहाँ मेरे और तुम्हारे सिवा कोई तीसरा मौजूद नहीं है, सच बताओ कि मुहम्मद *(सल्ल.)* को तुम सच्चा समझते हो या झूठा? उसने जवाब दिया कि "ख़ुदा की क़सम, मुहम्मद *(सल्ल.)* एक सच्चा आदमी है, उम्र भर कभी झूठ नहीं बोला, मगर जब झण्डा उठाना, पानी पिलाना, काबा की निगरानी और नुबूवत सब कुछ बनी-क़ुसई ही के हिस्से में आ जाए तो बताओ बाक़ी सारे क़ुरैश के पास क्या रह गया?" इसी वजह से यहाँ अल्लाह अपने नबी को तसल्ली दे रहा है कि असल में झुठलाया तुमको नहीं, बल्कि हमें जा रहा है। और जब हम सब्र और बरदाश्त के साथ इसे सहन किए जा रहे हैं और ढील पर ढील दिए जाते हैं तो तुम क्यों बेचैन होते हो।

22. यानी अल्लाह ने हक़ और बातिल की कश-म-कश के लिए जो क़ानून बना दिया है उसे बदल देना किसी के बस में नहीं है। हक़परस्तों के लिए ज़रूरी है कि वे एक लम्बी मुद्दत तक आज़माइशों की भट्टी में तपाए जाएँ। अपने सब्र का, अपनी सच्चाई का, अपनी क़ुरबानी और फ़िदाकारी का, अपने ईमान की मज़बूती और अल्लाह पर अपने भरोसे का इम्तिहान दें। मुसीबतों और मुश्किलों के दौर से गुज़रकर अपने अन्दर वे सिफ़ात परवान चढ़ाएँ जो सिर्फ़ इसी मुश्किल घाटी में परवरिश पा सकती हैं और शुरुआती तौर पर ख़ालिस बुलन्द अख़लाक़ और नेक किरदार के ख़ालिस अख़लाक़े-फ़ाज़िला (उत्कृष्ट आचरण और सच्चरित्रता) के हथियारों से

اَوْ سُلَّمًا فِي السَّمَآءِ فَتَاْتِيَهُمْ بِاٰيَةٍ ؕ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ
لَجَمَعَهُمْ عَلَى الْهُدٰى فَلَا تَكُوْنَنَّ مِنَ الْجٰهِلِيْنَ ﴿٣٥﴾
اِنَّمَا يَسْتَجِيْبُ الَّذِيْنَ يَسْمَعُوْنَ ؔ وَالْمَوْتٰى يَبْعَثُهُمُ

ज़ोर है तो ज़मीन में कोई सुरंग ढूँढो या आसमान में सीढ़ी लगाओ और उनके पास कोई निशानी लाने की कोशिश करो।[23] अगर अल्लाह चाहता तो उन सबको हिदायत पर जमा कर सकता था, इसलिए नादान मत बनो।[24] (36) हक़ की दावत पर लब्बैक वही लोग

जाहिलियत पर फ़तूह हासिल करके दिखाएँ। इस तरह जब वे यह साबित कर देंगे कि वे निहायत नेक और भले लोग हैं तब अल्लाह की नुसरत और मदद ठीक अपने वक़्त पर उनका हाथ थामने के लिए आ पहुँचेगी। वक़्त से पहले वह किसी के लाए नहीं आ सकती।

23. नबी *(सल्ल.)* जब देखते थे कि इस क़ौम को समझाते-समझाते मुद्दतें गुज़र गई हैं और किसी तरह ये सीधे रास्ते पर नहीं आती तो कभी-कभी आपके दिल में यह ख़ाहिश पैदा होती थी कि काश! कोई निशानी ख़ुदा की तरफ़ से ऐसी ज़ाहिर हो जिससे इन लोगों की मुख़ालिफ़त ख़त्म हो और ये मेरी सच्चाई को तस्लीम कर लें। आपकी इसी ख़ाहिश का जवाब इस आयत में दिया गया है। मतलब यह है कि बे-सब्री से काम न लो जिस ढंग और जिस तरतीब से हम इस काम को चलवा रहे हैं उसी पर सब्र के साथ चले जाओ। मोजिज़ों (चमत्कारों) से काम लेना होता तो क्या हम ख़ुद न ले सकते थे? मगर हम जानते हैं कि जिस फ़िक्री (वैचारिक) और अख़लाक़ी इंक़िलाब और जिस अच्छे समाज की तामीर के काम पर तुम लगाए गए हो उसे कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचाने का सही रास्ता यह नहीं है। फिर भी अगर लोगों के मौजूदा जुमूद और उनके इनकार की सख़्ती पर तुम से सब्र नहीं होता और तुम्हें गुमान है कि इस जुमूद को तोड़ने के लिए किसी महसूस निशानी का दिखाना ही ज़रूरी है तो ख़ुद ज़ोर लगाओ और तुम्हारा कुछ बस चलता हो तो ज़मीन में घुसकर या आसमान पर चढ़कर कोई ऐसा मोजिज़ा लाने की कोशिश करो जिसे तुम समझो कि यह बेयक़ीनी को यक़ीन में बदल देने के लिए काफ़ी होगी। मगर हम से उम्मीद न रखो कि हम तुम्हारी यह ख़ाहिश पूरी करेंगे, क्योंकि हमारी स्कीम में इस तदबीर के लिए कोई जगह नहीं है।

24. यानी अगर सिर्फ़ यही बात मतलूब होती कि सारे इनसान किसी न किसी तौर पर सीधे रास्ते पर चलनेवाले बन जाएँ तो नबी भेजने और किताबें उतारने और ईमानवालों से ईमान न रखनेवालों के मुक़ाबले में जिद्दोजुहद कराने और हक़ की दावत को तदरीजी (क्रमागत) तहरीक (आन्दोलन) की मंज़िलों से गुज़रवाने की ज़रूरत ही क्या थी? यह काम तो अल्लाह के एक ही तख़लीक़ी (सृजनात्मक) इशारे से हो सकता था। लेकिन अल्लाह इस काम को इस तरीक़े पर

اللّٰهُ ثُمَّ اِلَيْهِ يُرْجَعُوْنَ ﴿۳۶﴾ وَقَالُوْا لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ اٰيَةٌ
مِّنْ رَّبِّهٖ ؕ قُلْ اِنَّ اللّٰهَ قَادِرٌ عَلٰٓى اَنْ يُّنَزِّلَ اٰيَةً

कहते हैं जो सुननेवाले हैं; रहे मुर्दे,[25] तो उन्हें तो अल्लाह बस क़ब्रों ही से उठाएगा और फिर वे (उसकी अदालत में पेश होने के लिए) वापस लाए जाएँगे।

(37) ये लोग कहते हैं कि इस नबी पर उसके रब की तरफ़ से कोई निशानी क्यों नहीं उतरी? कहो : अल्लाह निशानी उतारने की पूरी क़ुदरत रखता है, मगर उनमें से

करना नहीं चाहता। उसकी मंशा तो यह है कि हक़ को दलीलों के साथ लोगों के सामने पेश किया जाए। फिर उनमें से जो लोग सही फ़िक्र से काम लेकर हक़ को पहचान लें वे अपने आज़ादाना इख़्तियार से उस पर ईमान लाएँ। अपनी सीरतों को उसके साँचे में ढालकर बातिलपरस्तों के मुक़ाबले में अपनी अख़लाक़ी बरतरी साबित करें। इनसानों की भीड़ में से नेक लोगों को अपनी ताक़तवर दलीलों, अपने बुलन्द मक़सद, और अपनी पाकीज़ा ज़िन्दगी की कशिश से अपनी तरफ़ खींचते चले जाएँ। और बातिल के ख़िलाफ़ लगातार जिद्दोजुहद करके फ़ितरी तरक़्क़ी की राह से दीने-हक़ को क़ायम करने की मंज़िल तक पहुँचें। अल्लाह इस काम में उनकी रहनुमाई करेगा और जिस मरहले पर जैसी मदद अल्लाह से पाने का वे अपने आप को हक़दार बनाएँगे वह मदद भी उन्हें देता चला जाएगा। लेकिन अगर कोई यह चाहे कि इस फ़ितरी रास्ते को छोड़कर अल्लाह सिर्फ़ अपनी ज़बरदस्त क़ुदरत के ज़ोर से ग़लत विचारों और नज़रियात को मिटाकर लोगों में अच्छे ख़याल और नज़रिए फैला दे और बुराइयों और ख़राबियों से भरी हुई तहज़ीब और सामाजिकता का ख़ात्मा करके भलाइयों और ख़ूबियों से भरपूर तहज़ीब और समाज की तामीर कर दे तो ऐसा हरगिज़ न होगा; क्योंकि यह अल्लाह की उस हिकमत के ख़िलाफ़ है जिसके तहत उसने इनसान को दुनिया में एक ज़िम्मेदार मख़लूक़ की हैसियत से पैदा किया है, उसे इस्तेमाल के इख़्तियार दिए हैं, फ़रमाँबरदारी और नाफ़रमानी की आज़ादी दी। इम्तिहान की मुहलत दी है और उसकी कोशिश के मुताबिक़ इनाम और सज़ा देने के लिए फ़ैसले का एक वक़्त मुक़र्रर कर दिया है।

25. सुननेवालों से मुराद वे लोग हैं जिनके ज़मीर (दिल) ज़िन्दा हैं, जिन्होंने अपनी अक़्ल और फ़िक्र (चिन्तन) को मुअत्तल नहीं कर दिया है, और जिन्होंने अपने दिल के दरवाज़ों पर तास्सुब (पक्षपात) और जुमूद के ताले नहीं लगा दिए हैं। उनके मुक़ाबले में मुर्दा वे लोग हैं जो लकीर के फ़क़ीर बने अन्धों की तरह चले जा रहे हैं और उस लकीर से हटकर कोई बात क़बूल करने के लिए तैयार नहीं हैं, चाहे वे वाज़ेह हक़ ही क्यों न हो।

وَّلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿٣٧﴾ وَمَا مِنْ دَآبَّةٍ فِي الْاَرْضِ
وَلَا طٰٓئِرٍ يَّطِيْرُ بِجَنَاحَيْهِ اِلَّآ اُمَمٌ اَمْثَالُكُمْ ؕ مَا فَرَّطْنَا
فِي الْكِتٰبِ مِنْ شَيْءٍ ثُمَّ اِلٰى رَبِّهِمْ يُحْشَرُوْنَ ﴿٣٨﴾ وَالَّذِيْنَ
كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا صُمٌّ وَّبُكْمٌ فِي الظُّلُمٰتِ ؕ مَنْ يَّشَاِ اللّٰهُ
يُضْلِلْهُ ؕ وَمَنْ يَّشَاْ يَجْعَلْهُ عَلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿٣٩﴾

ज़्यादातर लोग नादानी में पड़े हुए हैं।[26] (38) ज़मीन में चलनेवाले किसी जानवर और हवा में परों से उड़नेवाले किसी परिन्दे को देख लो, ये सब तुम्हारी ही तरह की जातियाँ हैं, हमने इनकी तक़दीर के लिखे में कोई कसर नहीं छोड़ी है, फिर ये सब अपने रब की तरफ़ समेटे जाते हैं। (39) मगर जो लोग हमारी निशानियों को झुठलाते हैं वे बहरे और गूँगे हैं, अँधेरों में पड़े हुए हैं।[27] अल्लाह जिसे चाहता है भटका देता है और जिसे चाहता

26. निशानी से मुराद वह मोजिज़ा (चमत्कार) है जिसे महसूस किया जा सके। अल्लाह के इस इरशाद का मतलब यह है कि मोजिज़ा न दिखाए जाने की वजह यह नहीं है कि हम उसको दिखाने की ताक़त नहीं रखते, बल्कि इसकी वजह कुछ और है जिसे ये लोग सिर्फ़ अपनी नादानी से नहीं समझते।

27. मतलब यह कि अगर तुम्हें सिर्फ़ तमाशा देखने का शौक़ नहीं है, बल्कि हक़ीक़त में यह मालूम करने के लिए निशानी देखना चाहते हो कि यह नबी जिस चीज़ की तरफ़ बुला रहा है वह हक़ बात है या नहीं, तो आँखें खोलकर देखो, तुम्हारे आसपास हर तरफ़ निशानियाँ ही निशानियाँ फैली हुई हैं। ज़मीन के जानवरों और हवा के परिन्दों की किसी एक क़िस्म को लेकर उसकी ज़िन्दगी पर ग़ौर करो। किस तरह उसकी बनावट ठीक-ठीक उसके मुनासिब बनाई गई है जिसकी उसको ज़रूरत है। किस तरह उसकी फ़ितरत में उसकी फ़ितरी ज़रूरतों के ठीक मुताबिक़ क़ुव्वतें दी गई हैं। किस तरह उसको रोज़ी पहुँचाने का इन्तिज़ाम हो रहा है। किस तरह उसकी एक तक़दीर मुक़र्रर है, जिसकी हदों से वह न आगे बढ़ सकती है, न पीछे हट सकती है। किस तरह उनमें से एक-एक जानवर और एक-एक छोटे से छोटे कीड़े की उसी मुक़ाम पर जहाँ वह है, ख़बरगीरी, निगरानी, हिफ़ाज़त और रहनुमाई की जा रही है। किस तरह उससे एक तयशुदा स्कीम के मुताबिक़ काम लिया जा रहा है। किस तरह उसे एक क़ानून और ज़ाब्ते का पाबन्द बना कर रखा गया है और किस तरह उसकी पैदाइश, तनासुल (प्रजनन) और मौत का

قُلْ اَرَءَيْتَكُمْ اِنْ اَتٰىكُمْ عَذَابُ اللّٰهِ اَوْ اَتَتْكُمُ السَّاعَةُ

है सीधे रास्ते पर लगा देता है।[28] (40) इनसे कहो, ज़रा ग़ौर करके बताओ, अगर कभी तुम पर अल्लाह की तरफ़ से कोई बड़ी मुसीबत आ जाती है या आख़िरी घड़ी आ

सिलसिला पूरी बाक़ायदगी के साथ चल रहा है। अगर ख़ुदा की अनगिनत निशानियों में से सिर्फ़ इसी एक निशानी पर ग़ौर करो तो तुम्हें मालूम हो जाए कि ख़ुदा की तौहीद और उसकी सिफ़तों का जो तसव्वुर यह पैग़म्बर तुम्हारे सामने पेश कर रहा है और उस तसव्वुर के मुताबिक़ दुनिया में ज़िन्दगी बसर करने के लिए जिस रवैये की तरफ़ तुम्हें दावत दे रहा है वह ऐन हक़ है। लेकिन तुम लोग न ख़ुद अपनी आँखें खोलकर देखते हो, न किसी समझानेवाले की बात सुनते हो। जिहालत की तारीकियों में पड़े हुए हो और चाहते हो कि अजाइबे-क़ुदरत के करिश्मे दिखाकर तुम्हारा दिल बहलाया जाए।

28. ख़ुदा का भटकाना यह है कि एक जिहालत पसन्द इनसान को अल्लाह की निशानियों को देखने और समझने की तौफ़ीक़ न दी जाए और तास्सुब से काम लेनेवाला एक ग़ैर-हक़ीक़त पसन्द इल्म का तालिब अगर अल्लाह की निशानियों को देखे भी तो हक़ीक़त तक पहुँचने के निशानात उसकी आँख से ओझल रहें और ग़लत-फ़हमियों में उलझानेवाली चीज़ें उसे हक़ से दूर और बहुत दूर खींचती चली जाएँ। इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह की हिदायत यह है कि एक हक़ के तलबगार को इल्म के ज़रीओं से फ़ायदा उठाने की तौफ़ीक़ दी जाए और अल्लाह की निशानियों में उसे हक़ीक़त तक पहुँचने के निशानात मिलते चले जाएँ। इन तीनों कैफ़ियतों की बहुत-सी मिसालें आए दिन हमारे सामने आती रहती हैं। बहुत-से इनसान ऐसे हैं जिनके सामने कायनात में और ख़ुद उनके अपने अन्दरून में अल्लाह की बेशुमार निशानियाँ फैली हुई हैं मगर वे जानवरों की तरह उन्हें देखते हैं और कोई सबक़ हासिल नहीं करते। और बहुत-से इनसान हैं जो हैवानियात (Zoology), नबातियात (Botany), हयातियात (Biology), अरज़ियात (Geology), फ़लकियात (Astronomy), उज़ूइयात (Physiology), इल्मुत्तशरीह (Anatomy) और साइंस की दूसरी शाख़ों का मुताला करते हैं। इतिहास, आसारे-क़दीमा (पुरातत्त्व) और सामाजिक विज्ञान (Social Science) की तहक़ीक़ करते हैं और ऐसी-ऐसी निशानियाँ उनके देखने में आती हैं जो दिल को ईमान से भर दें। मगर चूँकि वे मुताला (अध्ययन) की शुरुआत ही तास्सुब के साथ करते हैं और उनके सामने दुनिया और उसके फ़ायदों और मुनाफ़ों के सिवा कुछ नहीं होता इसलिए इस मुशाहिदे के दौरान में उनको सच्चाई तक पहुँचानेवाली कोई निशानी नहीं मिलती, बल्कि जो निशानी भी सामने आती है वह उन्हें उल्टी नास्तिकता, माद्दापरस्ती (भौतिकवाद) और प्रकृतिवाद (Naturalism) की तरफ़ खींच ले जाती है। उनके मुक़ाबले में ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो आँखें खोलकर दुनिया के इस कारख़ाने को देखते हैं और उनका हाल यह है कि :

बर्गे-दरख़्ताने सब्ज़ दर नज़रे-होशियार
हर वरक़े दफ़्तरेस्त मारफ़ते-किर्दगार

اَغَيْرَ اللّٰهِ تَدْعُوْنَ ۚ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝ بَلْ اِيَّاهُ
تَدْعُوْنَ فَيَكْشِفُ مَا تَدْعُوْنَ اِلَيْهِ اِنْ شَآءَ وَ
تَنْسَوْنَ مَا تُشْرِكُوْنَ ۝ وَلَقَدْ اَرْسَلْنَآ اِلٰٓى اُمَمٍ

पहुँचती है तो क्या उस वक़्त तुम अल्लाह के सिवा किसी और को पुकारते हो? बोलो, अगर तुम सच्चे हो। (41) उस वक़्त तुम अल्लाह ही को पुकारते हो, फिर अगर वह चाहता है तो उस मुसीबत को तुम पर से टाल देता है। ऐसे मौक़ों पर तुम अपने ठहराए हुए शरीकों को भूल जाते हो।[29]

यानी : हरे-भरे पेड़ों की पत्तियाँ भी अक़्लमन्द इनसान की नज़र में बहुत अहम हैं और उनमें से हर पत्ती के अन्दर बनानेवाले की पहचान की बेशुमार निशानियाँ मौजूद हैं।

29. पिछली आयत में कहा गया था कि तुम एक निशानी की माँग करते हो और हाल यह है कि तुम्हारे आसपास हर तरफ़ निशानियाँ ही निशानियाँ फैली हुई हैं। इस सिलसिले में पहले मिसाल के तौर पर हैवानों की ज़िन्दगी को देखने की तरफ़ तवज्जोह दिलाई गई। उसके बाद अब एक दूसरी निशानी की तरफ़ इशारा किया जा रहा है जो ख़ुद हक़ का इनकार करनेवालों के अपने मन में मौजूद है। जब इनसान पर कोई बड़ी आफ़त आ जाती है, या मौत अपनी भयानक सूरत के साथ सामने आ खड़ी होती है, उस वक़्त एक ख़ुदा के दामन के सिवा कोई दूसरी पनाहगाह उसे नज़र नहीं आती। बड़े-बड़े मुशरिक ऐसे मौक़े पर अपने माबूदों को भूलकर एक ख़ुदा को पुकारने लगते हैं। ख़ुदा का कट्टर से कट्टर इनकारी तक ख़ुदा के आगे दुआ के लिए हाथ फैला देता है। इसी निशानी को यहाँ हक़ को ज़ाहिर करने के लिए पेश किया जा रहा है, क्योंकि यह इस बात पर दलील है कि ख़ुदापरस्ती और तौहीद की गवाही हर इनसान के नफ़्स में मौजूद है जिस पर ग़फ़लत और जिहालत के चाहे कितने ही परदे डाल दिए गए हों, मगर फिर भी कभी न कभी वह उभर कर सामने आ जाती है। अबू-जहल के बेटे इकरिमा को इसी निशानी के देख लेने से ईमान की तौफ़ीक़ नसीब हुई। जब मक्का मुअज़्ज़मा मुहम्मद *(सल्ल.)* के हाथों फ़तह हो गया तो इकरिमा जिद्दा की तरफ़ भागे और एक कश्ती पर सवार होकर हब्शा मुल्क की तरफ़ चल पड़े। रास्ते में सख़्त तूफ़ान आया और कश्ती ख़तरे में पड़ गई। पहले-पहल तो देवियों और देवताओं को पुकारा जाता रहा। मगर जब तूफ़ान की शिद्दत बढ़ी और मुसाफ़िरों को यक़ीन हो गया कि अब किश्ती डूब जाएगी तो सब कहने लगे कि यह वक़्त अल्लाह के सिवा किसी को पुकारने का नहीं है, वही चाहे तो हम बच सकते हैं। उस वक़्त इकरिमा की आँखें खुलीं और उनके दिल ने आवाज़ दी कि अगर यहाँ अल्लाह के सिवा कोई मददगार नहीं तो कहीं और क्यों हो। यही तो वह बात है जो अल्लाह का वह नेक बन्दा हमें बीस वर्ष से समझा रहा है और हम

مِّنْ قَبْلِكَ فَاَخَذْنٰهُمْ بِالْبَاْسَآءِ وَالضَّرَّآءِ لَعَلَّهُمْ
يَتَضَرَّعُوْنَ ۝ فَلَوْلَآ اِذْ جَآءَهُمْ بَاْسُنَا تَضَرَّعُوْا
وَلٰكِنْ قَسَتْ قُلُوْبُهُمْ وَزَيَّنَ لَهُمُ الشَّيْطٰنُ مَا كَانُوْا
يَعْمَلُوْنَ ۝ فَلَمَّا نَسُوْا مَا ذُكِّرُوْا بِهٖ فَتَحْنَا عَلَيْهِمْ
اَبْوَابَ كُلِّ شَيْءٍ ؕ حَتّٰٓى اِذَا فَرِحُوْا بِمَآ اُوْتُوْٓا اَخَذْنٰهُمْ
بَغْتَةً فَاِذَا هُمْ مُّبْلِسُوْنَ ۝ فَقُطِعَ دَابِرُ الْقَوْمِ
الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا ؕ وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝

(42) तुमसे पहले बहुत-सी क़ौमों की तरफ़ हमने रसूल भेजे और उन क़ौमों को मुसीबतों और परेशानियों में डाल दिया, ताकि वे आजिज़ी (विनम्रता) के साथ हमारे सामने झुक जाएँ। (43) इसलिए जब हमारी तरफ़ से उन पर सख़्ती आई तो क्यों न उन्होंने आजिज़ी अपनाई? मगर इनके दिल तो और सख़्त हो गए और शैतान ने इनको इतमीनान दिलाया कि जो कुछ तुम कर रहे हो ख़ूब कर रहे हो। (44) फिर जब उन्होंने इस नसीहत को, जो उन्हें की गई थी, भुला दिया तो हमने हर तरह की ख़ुशहालियों के दरवाज़े उनके लिए खोल दिए, यहाँ तक कि जब वे उन बख़्शिशों में जो उन्हें अता की गई थीं ख़ूब मग्न हो गए तो अचानक हमने उन्हें पकड़ लिया और अब हाल यह था कि वे हर भलाई से मायूस थे। (45) इस तरह उन लोगों की जड़ काट कर रख दी गई जिन्होंने ज़ुल्म किया था और तारीफ़ है सारे जहानों के रब अल्लाह के लिए (कि उसने उनकी जड़ काट दी)।

ख़ाह-म-ख़ाह उससे लड़ रहे हैं। यह इकरिमा की ज़िन्दगी में फ़ैसलाकुन लम्हा था। उन्होंने उसी वक़्त ख़ुदा से अहद किया कि अगर मैं इस तूफ़ान से बच गया तो सीधा मुहम्मद *(सल्ल.)* के पास जाऊँगा और उनके हाथ में हाथ दे दूँगा। चुनाँचे उन्होंने अपने इस अहद को पूरा किया और बाद में आकर न सिर्फ़ मुसलमान हुए, बल्कि अपनी बाक़ी उम्र इस्लाम के लिए जिद्दोजुह्द करते गुज़ार दी।

قُلْ اَرَءَيْتُمْ اِنْ اَخَذَ اللّٰهُ سَمْعَكُمْ وَاَبْصَارَكُمْ وَخَتَمَ
عَلٰى قُلُوْبِكُمْ مَّنْ اِلٰهٌ غَيْرُ اللّٰهِ يَاْتِيْكُمْ بِهٖ ؕ اُنْظُرْ
كَيْفَ نُصَرِّفُ الْاٰيٰتِ ثُمَّ هُمْ يَصْدِفُوْنَ ۝٤٦ قُلْ
اَرَءَيْتَكُمْ اِنْ اَتٰىكُمْ عَذَابُ اللّٰهِ بَغْتَةً اَوْ جَهْرَةً
هَلْ يُهْلَكُ اِلَّا الْقَوْمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝٤٧ وَمَا نُرْسِلُ
الْمُرْسَلِيْنَ اِلَّا مُبَشِّرِيْنَ وَمُنْذِرِيْنَ ۚ فَمَنْ اٰمَنَ
وَاَصْلَحَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝٤٨
وَالَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَا يَمَسُّهُمُ الْعَذَابُ بِمَا كَانُوْا
يَفْسُقُوْنَ ۝٤٩ قُلْ لَّاۤ اَقُوْلُ لَكُمْ عِنْدِيْ خَزَآئِنُ اللّٰهِ

---

(46) ऐ नबी! इनसे कहो, कभी तुमने यह भी सोचा कि अगर अल्लाह तुम्हारी देखने और सुनने की ताक़त तुम से छीन ले और तुम्हारे दिलों पर मुहर लगा दे[30] तो अल्लाह के सिवा और कौन-सा ख़ुदा है जो ये ताक़तें तुम्हें वापस दिला सकता हो? देखो, किस तरह हम बार-बार अपनी निशानियाँ उनके सामने पेश करते हैं और फिर ये किस तरह उनसे नज़र चुरा जाते हैं। (47) कहो, कभी तुमने सोचा कि अगर अल्लाह की तरफ़ से अचानक या एलानिया तुम पर अज़ाब आ जाए तो क्या ज़ालिम लोगों के सिवा कोई और हलाक होगा? (48) हम जो रसूल भेजते हैं इसी लिए तो भेजते हैं कि वे नेक किरदार लोगों के लिए ख़ुशख़बरी देनेवाले और बुरे किरदारवालों के लिए डरानेवाले हों। फिर जो लोग उनकी बात मान लें और अपने रवैये को सुधार लें उनके लिए किसी ख़ौफ़ और रंज का मौक़ा नहीं है। (49) और जो हमारी आयतों को झुठलाएँ वे अपनी नाफ़रमानियों के बदले में सज़ा भुगत कर रहेंगे।

---

30. यहाँ दिलों पर मुहर करने से मुराद सोचने और समझने की क़ुव्वतें छीन लेना है।

وَلَآ اَعۡلَمُ الۡغَيۡبَ وَلَآ اَقُوۡلُ لَكُمۡ اِنِّىۡ مَلَكٌ ۚ اِنۡ
اَتَّبِعُ اِلَّا مَا يُوۡحٰٓى اِلَىَّ ؕ قُلۡ هَلۡ يَسۡتَوِى الۡاَعۡمٰى
وَالۡبَصِيۡرُ ؕ اَفَلَا تَتَفَكَّرُوۡنَ ۝٥٠ وَاَنۡذِرۡ بِهِ الَّذِيۡنَ

(50) ऐ नबी! इनसे कहो, "मैं तुम से यह नहीं कहता कि मेरे पास अल्लाह के ख़ज़ाने हैं। न मैं ग़ैब का इल्म रखता हूँ, और न यह कहता हूँ कि मैं फ़रिश्ता हूँ। मैं तो सिर्फ़ उस वह्य की पैरवी करता हूँ जो मुझ पर उतारी जाती है।"[31] फिर इनसे पूछो : क्या अन्धा और आँखोंवाला दोनों बराबर हो सकते हैं?[32] क्या तुम ग़ौर नहीं करते?

31. नादान लोगों के ज़ेहन में हमेशा से यह बेवक़ूफ़ाना तसव्वुर रहा है कि जो शख़्स अल्लाह को पहुँचा हुआ हो उसे इनसानियत से परे होना चाहिए, उसकी अजीबो-ग़रीब बातें ज़ाहिर होनी चाहिएँ, वह एक इशारा करे और पहाड़ सोने का बन जाए, वह हुक्म दे और ज़मीन से ख़ज़ाने उबलने लगें, उस पर लोगों के अगले-पिछले सब हालात रौशन हों, वह बता दे कि खोई हुई चीज़ कहाँ रखी है। मरीज़ बच जाएगा या मर जाएगा, गर्भवती के पेट में नर है या मादा। फिर उसको इनसानी कमज़ोरियों और इनसानों के साथ जो हदबन्दियाँ हैं उन से भी परे होना चाहिए। भला वह भी कोई ख़ुदा को पहुँचा हुआ है जिसे भूख प्यास लगे, जिसको नींद आए, जो बीवी-बच्चे रखता हो, जो अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए ख़रीदता-बेचता फिरे, जिसे कभी क़र्ज़ लेने की ज़रूरत पेश आए और कभी वह मुफ़लिसी और तंगदस्ती में मुब्तला होकर परेशान हाल रहे। इसी क़िस्म के तसव्वुर नबी *(सल्ल.)* के ज़माने के लोगों के दिमाग़ों में बैठे हुए थे। वह जब आप से पैग़म्बरी का दावा सुनते थे तो आप की सच्चाई को जाँचने के लिए आपसे ग़ैब की ख़बरें पूछते थे, ऐसी बातों का मुतालबा करते थे, जो फ़ितरत से परे होती हैं (यानी जो इनसानों से ज़ाहिर नहीं होती हैं)। और आपको बिलकुल आम इनसानों जैसा एक इनसान देखकर एतिराज़ करते थे कि यह अच्छा पैग़म्बर है जो खाता-पीता है, बीवी-बच्चे रखता है और बाज़ारों में चलता फिरता है। इन्हीं बातों का जवाब इस आयत में दिया गया है।

32. मतलब यह है कि मैं जिन हक़ीक़तों को तुम्हारे सामने पेश कर रहा हूँ उनको मैंने देखा है, वह सीधे तौर पर मेरे तजुर्बे में आई हैं, मुझे वह्य के ज़रीए से उनका ठीक-ठीक इल्म दिया गया है, उनके बारे में मेरी गवाही आँखों देखी गवाही है। इसके बरख़िलाफ़ तुम उन हक़ीक़तों की तरफ़ से अन्धे हो, तुम उनके बारे में जो ख़यालात रखते हो उनकी बुनियाद अटकल और गुमान पर है या सिर्फ़ अन्धी तक़लीद (अनुसरण) पर। इसलिए मेरे और तुम्हारे बीच वही फ़र्क़ है जो किसी आँख रखनेवाले और आँख न रखनेवाले के बीच होता है और इसी हैसियत से मुझे तुमपर बड़ाई हासिल है, न इस हैसियत से कि मेरे पास ख़ुदाई के ख़ज़ाने हैं, या मैं ग़ैब का जाननेवाला हूँ, या इनसानी कमज़ोरियों से पाक हूँ।

يَخَافُوْنَ اَنْ يُّحْشَرُوْٓا اِلٰى رَبِّهِمْ لَيْسَ لَهُمْ مِّنْ
دُوْنِهٖ وَلِيٌّ وَّلَا شَفِيْعٌ لَّعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ۝ ﴿٥١﴾ وَلَا
تَطْرُدِ الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ رَبَّهُمْ بِالْغَدٰوةِ وَ الْعَشِيِّ
يُرِيْدُوْنَ وَجْهَهٗ ؕ مَا عَلَيْكَ مِنْ حِسَابِهِمْ مِّنْ

(51) और ऐ नबी! तुम इस (वह्य के इल्म) के ज़रीए से उन लोगों को नसीहत करो जो इस बात का डर रखते हैं कि अपने रब के सामने कभी इस हाल में पेश किए जाएँगे कि उसके सिवा वहाँ कोई (ऐसा ताक़तवर) न होगा जो उनका हामी और मददगार हो या उनकी सिफ़ारिश करे, शायद कि (इस नसीहत से ख़बरदार होकर) वे ख़ुदा तरसी का रवैया इख़्तियार कर लें।[33] (52) और जो लोग अपने रब को रात-दिन पुकारते रहते हैं और उसकी ख़ुशनूदी की तलब में लगे हुए हैं उन्हें अपने से दूर न फेंको।[34] उनके

33. मतलब यह है कि जो लोग दुनिया की ज़िन्दगी में ऐसे मदहोश हैं कि उन्हें न मौत की फ़िक्र है, न यह ख़याल है कि कभी हमें अपने ख़ुदा को भी मुँह दिखाना है, उन पर तो यह नसीहत हरगिज़ कारगर न होगी। और इसी तरह उन लोगों पर भी उसका कुछ असर न होगा, जो इस बे-बुनियाद भरोसे पर जी रहे हैं कि दुनिया में हम जो चाहें कर गुज़रें, आख़िरत में हमारा बाल तक बाँका न होगा, क्योंकि हम फ़ुलाँ का दामन पकड़े हुए हैं, या फ़ुलाँ हमारी सिफ़ारिश कर देगा, या फ़ुलाँ हमारे लिए कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) बन चुका है। तो ऐसे लोगों को छोड़कर तुम अपनी बात का रुख़ उन लोगों की तरफ़ रखो जो ख़ुदा के सामने हाज़िरी का भी अन्देशा रखते हों और उसके साथ झूठे भरोसों पर फूले हुए भी न हों। इस नसीहत का असर सिर्फ़ ऐसे ही लोगों पर हो सकता है और उन्हीं के दुरुस्त होने की उम्मीद की जा सकती है।

34. क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदारों और खाते-पीते लोगों को नबी *(सल्ल॰)* पर और दूसरे एतिराज़ों के अलावा एक एतिराज़ यह भी था कि आपके आसपास हमारी क़ौम के ग़ुलाम, दलित और निचले तबक़े के लोग जमा हो गए हैं। वे ताना दिया करते थे कि इस शख़्स को साथी भी कैसे-कैसे इज़्ज़तदार लोग मिले हैं, बिलाल, अम्मार, सुहैब और ख़ब्बाब। बस यही लोग अल्लाह को हमारे दर्मियान ऐसे मिले जिनका चुनाव किया जा सकता था! फिर वे उन ईमान लानेवालों की ख़स्ताहाली का मज़ाक़ उड़ाने पर ही बस नहीं करते थे, बल्कि उनमें से जिस-जिस से कभी पहले कोई अख़लाक़ी कमज़ोरी ज़ाहिर हुई थी उसपर भी नुक्ताचीनी करते थे और कहते थे कि फ़ुलाँ जो कल तक यह था और फ़ुलाँ जिसने यह किया था आज वह भी इस 'चुने हुए गरोह' में शामिल है। इन्हीं बातों का जवाब यहाँ दिया जा रहा है।

شَیۡءٍ وَّمَا مِنۡ حِسَابِكَ عَلَيۡهِمۡ مِّنۡ شَیۡءٍ فَتَطۡرُدَهُمۡ
فَتَكُوۡنَ مِنَ الظّٰلِمِيۡنَ ۞ ٥٢ وَكَذٰلِكَ فَتَنَّا بَعۡضَهُمۡ
بِبَعۡضٍ لِّيَقُوۡلُوۡۤا اَهٰٓؤُلَاۤءِ مَنَّ اللّٰهُ عَلَيۡهِمۡ مِّنۡۢ
بَيۡنِنَا ؕ اَلَيۡسَ اللّٰهُ بِاَعۡلَمَ بِالشّٰكِرِيۡنَ ۞ ٥٣ وَاِذَا جَآءَكَ
الَّذِيۡنَ يُؤۡمِنُوۡنَ بِاٰيٰتِنَا فَقُلۡ سَلٰمٌ عَلَيۡكُمۡ كَتَبَ
رَبُّكُمۡ عَلٰى نَفۡسِهِ الرَّحۡمَةَ ۙ اَنَّهٗ مَنۡ عَمِلَ مِنۡكُمۡ

हिसाब में से किसी चीज़ का भार तुम पर नहीं है। और तुम्हारे हिसाब में से किसी चीज़ का भार उन पर नहीं। इस पर भी अगर तुम उन्हें दूर फेंकोगे तो ज़ालिमों में गिने जाओगे।[35] (53) असल में हमने इस तरह उन लोगों में से कुछ को कुछ के ज़रीए से आज़माइश में डाला है[36] ताकि वे इन्हें देखकर कहें, "क्या ये हैं वे लोग जिन पर हमारे दर्मियान अल्लाह की मेहरबानी और करम है?"--- हाँ! क्या ख़ुदा अपने शुक्रगुज़ार बन्दों को इनसे ज़्यादा नहीं जानता है? (54) जब तुम्हारे पास वे लोग आएँ जो हमारी आयतों पर ईमान लाते हैं तो उनसे कहो, "तुम पर सलामती है। तुम्हारे रब ने रहम और करम का रवैया अपने ऊपर लाज़िम कर लिया है। यह उसका रहम और करम ही है कि अगर

---

35. यानी हर आदमी अपनी बुराई और भलाई का ज़िम्मेदार ख़ुद ही है। इन मुसलमान होनेवालों में से किसी शख़्स की जवाबदेही के लिए तुम खड़े न होगे और न तुम्हारी जवाबदेही के लिए इनमें से कोई खड़ा होगा। तुम्हारे हिस्से की कोई नेकी ये तुमसे छीन नहीं सकते और अपने हिस्से की कोई बुराई तुमपर डाल नहीं सकते। फिर जब ये सिर्फ़ हक़ के तलबगार बनकर तुम्हारे पास आते हैं तो आख़िर तुम क्यों इन्हें अपने से दूर फेंको।

36. यानी ग़रीबों और मुफ़लिसों और ऐसे लोगों को जो समाज में मामूली हैसियत रखते हैं, सबसे पहले ईमान की तौफ़ीक़ देकर हमने दौलत और इज़्ज़त का घमण्ड रखनेवाले लोगों को आज़माइश में डाल दिया है।

سُوْٓءًۢا بِجَهَالَةٍ ثُمَّ تَابَ مِنْۢ بَعْدِهٖ وَاَصْلَحَ فَاَنَّهٗ
غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٥٤ وَكَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ وَلِتَسْتَبِيْنَ
سَبِيْلُ الْمُجْرِمِيْنَ ۝٥٥ قُلْ اِنِّيْ نُهِيْتُ اَنْ اَعْبُدَ الَّذِيْنَ ع
تَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؕ قُلْ لَّآ اَتَّبِعُ اَهْوَآءَكُمْ ۙ
قَدْ ضَلَلْتُ اِذًا وَّمَآ اَنَا مِنَ الْمُهْتَدِيْنَ ۝٥٦ قُلْ

तुम में से कोई नादानी के साथ कोई बुराई कर बैठा हो, फिर उसके बाद तौबा करे और सुधार कर ले तो वह उसे माफ़ कर देता है और नर्मी से काम लेता है।''[37] (55) और इस तरह हम अपनी निशानियाँ खोल-खोलकर पेश करते हैं, ताकि मुजरिमों की राह बिलकुल नुमायाँ हो जाए।[38]

(56) ऐ नबी! इनसे कहो कि ''तुम लोग अल्लाह के सिवा जिन दूसरों को पुकारते हो उनकी बन्दगी करने से मुझे मना किया गया है।'' कहो, ''मैं तुम्हारी ख़ाहिशों की पैरवी नहीं करूँगा, अगर मैंने ऐसा किया तो गुमराह हो गया, सीधा रास्ता पानेवालों में से न रहा।''

---

37. जो लोग उस वक़्त नबी *(सल्ल.)* पर ईमान लाए थे उनमें से ज़्यादातर लोग ऐसे भी थे जिन से जाहिलियत के ज़माने में बड़े-बड़े गुनाह हो चुके थे। अब इस्लाम क़बूल करने के बाद हालाँकि उनकी ज़िन्दगियाँ बिलकुल बदल गई थीं। लेकिन इस्लाम के मुख़ालिफ़ उनको पिछली ज़िन्दगी के ऐबों और कामों के ताने देते थे। इस पर कहा जा रहा है कि ईमानवालों को तसल्ली दो। इन्हें बताओ कि जो शख़्स तौबा करके अपनी इस्लाह कर लेता है उसके पिछले क़ुसूरों पर पकड़ करने का तरीक़ा अल्लाह के यहाँ नहीं है।

38. 'इस तरह' का इशारा तक़रीर के उस पूरे सिलसिले की तरफ़ है जो आयत 37 से शुरू हुआ था, ''ये लोग कहते हैं कि इस पर कोई निशानी क्यों नहीं उतरी।'' मतलब यह है कि ऐसी साफ़ और वाज़ेह दलीलों और निशानियों के बाद भी जो लोग अपने कुफ़्र और इनकार पर ज़िद ही किए चले जाएँ उनका मुजरिम होना किसी शक व शुब्ह के बग़ैर साबित हुआ जाता है और यह हक़ीक़त बिलकुल आईने की तरह नुमायाँ हुई जाती है कि असल में ये लोग गुमराही को पसन्द करने की वजह से यह राह चल रहे हैं, न इस वजह से कि हक़ की राह की दलीलें वाज़ेह नहीं हैं या यह कि कुछ दलीलें उनकी इस गुमराही के हक़ में भी मौजूद हैं।

إِنِّي عَلَىٰ بَيِّنَةٍ مِّن رَّبِّي وَكَذَّبْتُم بِهِۦ ۚ مَا عِندِي
مَا تَسْتَعْجِلُونَ بِهِۦٓ ۚ إِنِ ٱلْحُكْمُ إِلَّا لِلَّهِ ۖ يَقُصُّ ٱلْحَقَّ
وَهُوَ خَيْرُ ٱلْفَٰصِلِينَ ﴿٥٧﴾ قُل لَّوْ أَنَّ عِندِي مَا
تَسْتَعْجِلُونَ بِهِۦ لَقُضِيَ ٱلْأَمْرُ بَيْنِي وَبَيْنَكُمْ ۗ
وَٱللَّهُ أَعْلَمُ بِٱلظَّٰلِمِينَ ﴿٥٨﴾ وَعِندَهُۥ مَفَاتِحُ ٱلْغَيْبِ لَا
يَعْلَمُهَآ إِلَّا هُوَ ۚ وَيَعْلَمُ مَا فِي ٱلْبَرِّ وَٱلْبَحْرِ ۚ
وَمَا تَسْقُطُ مِن وَرَقَةٍ إِلَّا يَعْلَمُهَا وَلَا حَبَّةٍ فِي

(57) कहो : "मैं अपने रब की तरफ़ से एक रौशन दलील पर क़ायम हूँ और तुमने उसे झुठला दिया है, अब मेरे इख़्तियार में वह चीज़ है नहीं, जिसके लिए तुम जल्दी मचा रहे हो[39] फ़ैसले का सारा इख़्तियार अल्लाह को है, वही हक़ बात बयान करता है और वही बेहतरीन फ़ैसला करनेवाला है।" (58) कहो, "अगर कहीं वह चीज़ मेरे इख़्तियार में होती जिसकी तुम जल्दी मचा रहे हो तो मेरे और तुम्हारे दर्मियान कभी का फ़ैसला हो चुका होता। मगर अल्लाह ज़्यादा बेहतर जानता है कि ज़ालिमों के साथ क्या मामला किया जाना चाहिए। (59) उसी के पास ग़ैब की कुंजियाँ हैं, जिन्हें उसके सिवा कोई नहीं जानता। ख़ुश्की (थल) और तरी (जल) में जो कुछ है सबको वह जानता है। पेड़ से गिरनेवाला कोई पत्ता ऐसा नहीं जिसका उसे इल्म न हो। ज़मीन के अंधेरे पर्दों में कोई

39. इशारा है अल्लाह के अज़ाब की तरफ़। मुख़ालिफ़ लोग कहते थे कि अगर तुम ख़ुदा की तरफ़ से भेजे हुए नबी हो और हम खुल्लम-खुल्ला तुमको झुठला रहे हैं तो क्यों नहीं ख़ुदा का अज़ाब हम पर टूट पड़ता? तुम्हारे अल्लाह की तरफ़ से मुक़र्रर किए जाने का तक़ाज़ा तो यह था कि इधर कोई तुम्हें झुठलाता या तौहीन करता और उधर फ़ौरन ज़मीन धँसती और वह इसमें समा जाता या बिजली गिरती और वह भस्म हो जाता। यह क्या है कि ख़ुदा का भेजा हुआ पैग़म्बर और उस पर ईमान लानेवाले तो मुसीबतों पर मुसीबतें और रुसवाइयों पर रुसवाइयाँ सह रहे हैं और उनको गालियाँ देने और पत्थर मारनेवाले चैन किए जाते हैं?

ظُلُمٰتِ الْاَرْضِ وَلَا رَطْبٍ وَّلَا يَابِسٍ اِلَّا فِىْ
كِتٰبٍ مُّبِيْنٍ ﴿۵۹﴾ وَهُوَ الَّذِىْ يَتَوَفّٰىكُمْ بِالَّيْلِ وَ
يَعْلَمُ مَا جَرَحْتُمْ بِالنَّهَارِ ثُمَّ يَبْعَثُكُمْ فِيْهِ
لِيُقْضٰٓى اَجَلٌ مُّسَمًّى ۚ ثُمَّ اِلَيْهِ مَرْجِعُكُمْ ثُمَّ
يُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ﴿۶۰﴾ وَهُوَ الْقَاهِرُ فَوْقَ ع
عِبَادِهٖ وَيُرْسِلُ عَلَيْكُمْ حَفَظَةً ؕ حَتّٰٓى اِذَا جَآءَ
اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ تَوَفَّتْهُ رُسُلُنَا وَهُمْ لَا يُفَرِّطُوْنَ ﴿۶۱﴾
ثُمَّ رُدُّوْٓا اِلَى اللّٰهِ مَوْلٰىهُمُ الْحَقِّ ؕ اَلَا لَهُ الْحُكْمُ قف

दाना ऐसा नहीं जिसको वह न जानता हो। ख़ुश्क और तर सब कुछ एक खुली किताब में लिखा हुआ है। (60) वही है जो रात को तुम्हारी रूहें क़ब्ज़ करता है और दिन को जो कुछ तुम करते हो उसे जानता है, फिर दूसरे दिन वह तुम्हें इसी कारोबार की दुनिया में वापस भेज देता है, ताकि ज़िन्दगी की मुक़र्रर मुद्दत पूरी हो। आख़िरकार उसी की तरफ़ तुम्हारी वापसी है, फिर वह तुम्हें बता देगा कि तुम क्या करते रहे हो। (61) अपने बन्दों पर वह पूरी क़ुदरत रखता है और तुम पर निगरानी करनेवाले मुक़र्रर करके भेजता है[40] यहाँ तक कि जब तुम में से किसी की मौत का वक़्त आ जाता है तो उसके भेजे हुए फ़रिश्ते उसकी जान निकाल लेते हैं और अपना फ़र्ज़ अंजाम देने में ज़रा कोताही नहीं करते, (62) फिर सबके सब अल्लाह अपने हक़ीक़ी आक़ा की तरफ़ वापस लाए जाते हैं। ख़बरदार हो जाओ, फ़ैसले के सारे इख़्तियारात उसी को हासिल हैं और वह हिसाब लेने

---

40. यानी ऐसे फ़रिश्ते जो तुम्हारी एक-एक हरकत और एक-एक बात पर निगाह रखते हैं और तुम्हारी हर-हर हरकत का रिकॉर्ड महफ़ूज़ करते रहते हैं।

وَهُوَ اَسْرَعُ الْحٰسِبِيْنَ ﴿٦٢﴾ قُلْ مَنْ يُّنَجِّيْكُمْ مِّنْ
ظُلُمٰتِ الْبَرِّ وَ الْبَحْرِ تَدْعُوْنَهٗ تَضَرُّعًا وَّخُفْيَةً ۚ
لَئِنْ اَنْجٰىنَا مِنْ هٰذِهٖ لَنَكُوْنَنَّ مِنَ الشّٰكِرِيْنَ ﴿٦٣﴾
قُلِ اللّٰهُ يُنَجِّيْكُمْ مِّنْهَا وَمِنْ كُلِّ كَرْبٍ ثُمَّ اَنْتُمْ
تُشْرِكُوْنَ ﴿٦٤﴾ قُلْ هُوَ الْقَادِرُ عَلٰٓى اَنْ يَّبْعَثَ عَلَيْكُمْ
عَذَابًا مِّنْ فَوْقِكُمْ اَوْ مِنْ تَحْتِ اَرْجُلِكُمْ اَوْ يَلْبِسَكُمْ

में बहुत तेज़ है।''

(63) ऐ नबी! इन से पूछो : रेगिस्तान और समन्दर के अंधेरों में कौन तुम्हें ख़तरों से बचाता है? कौन है जिससे तुम (मुसीबत के वक़्त) गिड़गिड़ा, गिड़-गिड़ाकर और चुपके-चुपके दुआएँ माँगते हो? किससे कहते हो कि अगर इस बला से तूने हमको बचा लिया तो हम ज़रूर शुक्रगुज़ार होंगे?—(64) कहो, अल्लाह तुम्हें उससे और हर तकलीफ़ से नजात देता है फिर तुम दूसरों को उसका शरीक ठहराते हो।[41] (65) कहो : वह इसकी कुदरत रखता है कि तुम पर कोई अज़ाब ऊपर से नाज़िल कर दे, या तुम्हारे क़दमों के

41. यानी यह हक़ीक़त कि अकेले अल्लाह ही क़ादिरे-मुतलक़ है और वही तमाम इख़्तियारात का मालिक और तुम्हारी भलाई और बुराई पर पूरा इख़्तियार रखता है। और उसी के हाथ में तुम्हारी क़िस्मतों की बागडोर है। इसकी गवाही तो तुम्हारे अपने अन्दर मौजूद है। जब कोई सख़्त वक़्त आता है और उससे बचने की तरकीबें नाकाम होती नज़र आती हैं तो उस वक़्त तुम बे-इख़्तियार उसी की तरफ़ रुजू करते हो। लेकिन इस खुली निशानी के होते हुए भी तुमने ख़ुदाई में बग़ैर किसी दलील व हुज्जत और बिना सुबूत के दूसरों को उसका शरीक बना रखा है। पलते हो उसकी रोज़ी पर और अन्न दाता बनाते हो दूसरों को। मदद पाते हो उसकी मेहरबानी और रहमत से और हिमायती व मददगार ठहराते हो दूसरों को। ग़ुलाम हो उसके और बन्दगी बजा लाते हो दूसरों की। मुश्किलें दूर करता है वह, बुरे वक़्त पर गिड़गिड़ाते हो उसके सामने और जब वह वक़्त गुज़र जाता है तो तुम्हारे बिगड़ी बनानेवाले बन जाते हैं दूसरे और नज़्रें और नियाज़ें चढ़ने लगती हैं दूसरों के नाम की।

شِيَعًا وَّيُذِيْقَ بَعْضَكُمْ بَاْسَ بَعْضٍ ۭ اُنْظُرْ كَيْفَ
نُصَرِّفُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّهُمْ يَفْقَهُوْنَ ﴿٦٥﴾ وَكَذَّبَ بِهٖ
قَوْمُكَ وَهُوَ الْحَقُّ ۭ قُلْ لَّسْتُ عَلَيْكُمْ بِوَكِيْلٍ ﴿٦٦﴾ ؕ
لِكُلِّ نَبَاٍ مُّسْتَقَرٌّ ۡ وَّسَوْفَ تَعْلَمُوْنَ ﴿٦٧﴾ وَاِذَا رَاَيْتَ

नीचे से बरपा कर दे, या तुम्हें गरोहों में बाँट कर एक गरोह को दूसरे गरोह की ताक़त का मज़ा चखवा दे। देखो, हम किस तरह बार-बार अलग-अलग तरीक़ों से अपनी निशानियाँ उनके सामने पेश कर रहे हैं, शायद कि ये हक़ीक़त को समझ लें।[42] (66) तुम्हारी क़ौम उसका इनकार कर रही है हालाँकि वह हक़ीक़त है। इनसे कह दो कि मैं तुम पर हवालादार नहीं बनाया गया हूँ।[43] (67) हर ख़बर के सामने आने का एक वक़्त मुक़र्रर है, निकट ही तुम को ख़ुद अंजाम मालूम हो जाएगा।

---

42. जो लोग अल्लाह के अज़ाब को अपने से दूर पाकर हक़ की दुश्मनी में जुर्रत पर जुर्रत दिखा रहे थे उन्हें ख़बरदार किया जा रहा है कि अल्लाह के अज़ाब को आते कुछ देर नहीं लगती। हवा का एक तूफ़ान तुम्हें अचानक बरबाद कर सकता है। ज़लज़ले का एक झटका तुम्हारी बस्तियों को ख़ाक में मिला देने के लिए काफ़ी है। क़बीलों और क़ौमों और मुल्कों की दुश्मनियों के मैगज़ीन में एक चिंगारी वह तबाही फैला सकती है कि सालों-साल तक ख़ून-ख़राबे और बदअमनी से नजात न मिले। तो अगर अज़ाब नहीं आ रहा है तो यह तुम्हारे लिए ग़फ़लत और मदहोशी की पीनक न बन जाए कि मुतमइन होकर सही और ग़लत का फ़र्क़ किए बग़ैर अन्धों की तरह ज़िन्दगी के रास्ते पर चलते रहो। ग़नीमत समझो कि अल्लाह तुम्हें मुहलत दे रहा है और वे निशानियाँ तुम्हारे सामने पेश कर रहा है जिनसे तुम हक़ को पहचान कर सही रास्ता इख़्तियार कर सको।

43. यानी मेरा यह काम नहीं है कि जो कुछ तुम नहीं देख रहे हो वह ज़बरदस्ती तुम्हें दिखाऊँ और जो कुछ तुम नहीं समझ रहे हो वह ज़बरदस्ती तुम्हारी समझ में उतार दूँ। और मेरा यह काम भी नहीं है कि अगर तुम न देखो और न समझो तो तुम पर अज़ाब उतार दूँ। मेरा काम सिर्फ़ हक़ और बातिल को अलग करके तुम्हारे सामने पेश कर देना है। अब अगर तुम नहीं मानते तो जिस बुरे अंजाम से मैं तुम्हें डराता हूँ वे अपने वक़्त पर ख़ुद तुम्हारे सामने आ जाएगा।

الَّذِيْنَ يَخُوْضُوْنَ فِيْٓ اٰيٰتِنَا فَاَعْرِضْ عَنْهُمْ حَتّٰى
يَخُوْضُوْا فِيْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖ ۭ وَاِمَّا يُنْسِيَنَّكَ
الشَّيْطٰنُ فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرٰى مَعَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ ۝۶۸
وَمَا عَلَى الَّذِيْنَ يَتَّقُوْنَ مِنْ حِسَابِهِمْ مِّنْ شَيْءٍ
وَّلٰكِنْ ذِكْرٰى لَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ۝۶۹ وَذَرِ الَّذِيْنَ

---

(68) और ऐ नबी! जब तुम देखो कि लोग हमारी आयतों पर नुक्ताचीनियाँ कर रहे हैं तो उनके पास से हट जाओ, यहाँ तक कि वे इस गुफ़्तगू को छोड़कर दूसरी बातों में लग जाएँ। और अगर कभी शैतान तुम्हें भुलावे में डाल दे[44] तो जिस वक़्त तुम्हें इस ग़लती का एहसास हो जाए उसके बाद फिर ऐसे ज़ालिम लोगों के पास न बैठो। (69) उनके हिसाब में से किसी चीज़ की ज़िम्मेदारी परहेज़गार लोगों पर नहीं है, अलबत्ता नसीहत करना उनका फ़र्ज़ है, शायद कि वे ग़लत रवी से बच जाएँ।[45] (70) छोड़ो उन

---

44. यानी अगर किसी वक़्त हमारी यह हिदायत तुम्हें याद न रहे और तुम भूले से ऐसे लोगों के साथ में बैठे रह जाओ।

45. मतलब यह है कि जो लोग ख़ुदा की नाफ़रमानी से ख़ुद बचकर काम करते हैं उन पर नाफ़रमानों के किसी अमल की ज़िम्मेदारी नहीं है, फिर वे क्यों ख़ाह-म-ख़ाह इस बात को अपने ऊपर फ़र्ज़ कर लें कि इन नाफ़रमानों से बहस और मुनाज़रा (शास्त्रार्थ) करके ज़रूर उन्हें क़ायल करके ही छोड़ेंगे और उनके हर बेहूदा और बेमानी और मुहमिल एतिराज़ का जवाब ज़रूर ही देंगे और अगर वे न मानते हों तो किसी न किसी तरह मनवाकर ही रहेंगे। इनका फ़र्ज़ बस इतना है कि जिन्हें गुमराही में भटकते देख रहे हों उन्हें नसीहत करें और हक़ बात उनके सामने पेश कर दें। फिर अगर वे न मानें और झगड़े और बहस और हुज्जतबाज़ियों पर उतर आएँ तो हक़परस्तों का यह काम नहीं है कि उनके साथ दिमाग़ी कुश्तियाँ लड़ने में अपना वक़्त और अपनी क़ुव्वतें बरबाद करते फिरें। गुमराही-पसन्द लोगों के बजाय उन्हें अपने वक़्त और अपनी क़ुव्वतों को उन लोगों की तालीम और तरबियत और इस्लाह और नसीहत पर लगाना चाहिए जो ख़ुद हक़ के तालिब हों।

اتَّخَذُوْا دِيْنَهُمْ لَعِبًا وَّلَهْوًا وَّغَرَّتْهُمُ الْحَيٰوةُ
الدُّنْيَا وَذَكِّرْ بِهٖٓ اَنْ تُبْسَلَ نَفْسٌۢ بِمَا كَسَبَتْ ۖۗ
لَيْسَ لَهَا مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ وَلِيٌّ وَّلَا شَفِيْعٌ ۚ وَاِنْ
تَعْدِلْ كُلَّ عَدْلٍ لَّا يُؤْخَذْ مِنْهَا ۗ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ
اُبْسِلُوْا بِمَا كَسَبُوْا ۚ لَهُمْ شَرَابٌ مِّنْ حَمِيْمٍ وَّعَذَابٌ
اَلِيْمٌۢ بِمَا كَانُوْا يَكْفُرُوْنَ ۝ قُلْ اَنَدْعُوْا مِنْ دُوْنِ ع
اللّٰهِ مَا لَا يَنْفَعُنَا وَلَا يَضُرُّنَا وَنُرَدُّ عَلٰٓى اَعْقَابِنَا
بَعْدَ اِذْ هَدٰىنَا اللّٰهُ كَالَّذِي اسْتَهْوَتْهُ الشَّيٰطِيْنُ
فِي الْاَرْضِ حَيْرَانَ ۖ لَهٗٓ اَصْحٰبٌ يَّدْعُوْنَهٗٓ اِلَى

लोगों को जिन्होंने अपने दीन को खेल और तमाशा बना रखा है और जिन्हें दुनिया की ज़िन्दगी धोखे में डाले हुए है। हाँ, मगर इस क़ुरआन को सुनाकर नसीहत और ख़बरदार करते रहो कि कहीं कोई शख़्स अपने किए करतूतों के वबाल में गिरफ़्तार न हो जाए, और गिरफ़्तार भी इस हाल में हो कि अल्लाह से बचानेवाला कोई हामी और मददगार और कोई सिफ़ारिशी उसके लिए न हो, और अगर वह हर मुमकिन चीज़ फ़िदये में देकर छूटना भी चाहे तो वह भी उससे क़बूल न की जाएगी, क्योंकि ऐसे लोग तो ख़ुद अपनी कमाई के नतीजे में पकड़े जाएँगे, इनको तो अपने हक़ के इनकार के बदले में खौलता हुआ पानी पीने को और दर्दनाक अज़ाब भुगतने को मिलेगा।

(71) ऐ नबी! इनसे पूछो : क्या हम अल्लाह को छोड़कर उनको पुकारें जो न हमें फ़ायदा पहुँचा सकते हैं, न नुक़सान? और जबकि अल्लाह हमें सीधा रास्ता दिखा चुका है तो क्या अब हम उल्टे पाँव फिर जाएँ? क्या हम अपना हाल उस शख़्स का-सा कर लें जिसे शैतानों ने रेगिस्तान में भटका दिया हो और वह हैरान व परेशान फिर रहा हो? जब

الْهُدَى ائْتِنَا ۗ قُلْ إِنَّ هُدَى اللَّهِ هُوَ الْهُدَىٰ ۖ
وَأُمِرْنَا لِنُسْلِمَ لِرَبِّ الْعَالَمِينَ ﴿٧١﴾ وَأَنْ أَقِيمُوا
الصَّلَاةَ وَاتَّقُوهُ ۚ وَهُوَ الَّذِي إِلَيْهِ تُحْشَرُونَ ﴿٧٢﴾
وَهُوَ الَّذِي خَلَقَ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضَ بِالْحَقِّ ۖ
وَيَوْمَ يَقُولُ كُن فَيَكُونُ ۚ قَوْلُهُ الْحَقُّ ۚ وَلَهُ

कि हाल यह है कि उसके साथी उसे पुकार रहे हों कि इधर आ, यह सीधा रास्ता मौजूद है? कहो : हक़ीक़त में सही रहनुमाई तो सिर्फ़ अल्लाह ही की रहनुमाई है और उसकी तरफ़ से हमें यह हुक्म मिला है कि कायनात के मालिक के आगे फ़रमाँबरदारी के साथ सिर झुका दो, (72) नमाज़ क़ायम करो और उसकी नाफ़रमानी से बचो, उसी की तरफ़ तुम समेटे जाओगे। (73) वही है जिसने आसमान और ज़मीन को बामक़सद पैदा किया है।[46] और जिस दिन वह कहेगा कि हश्र (प्रलय) हो जाए उसी दिन वह हो जाएगा।

46. क़ुरआन में यह बात जगह-जगह बयान की गई है कि अल्लाह ने ज़मीन और आसमानों को हक़ पर पैदा किया है या हक़ के साथ पैदा किया है। यह इरशाद अपने अन्दर बहुत-से मानी रखता है।

इसका एक मतलब यह है कि ज़मीन और आसमानों की पैदाइश सिर्फ़ खेल के तौर पर नहीं हुई है। यह ईश्वर जी की लीला नहीं है। यह किसी बच्चे का खिलौना नहीं है कि सिर्फ़ दिल बहलाने के लिए वह इससे खेलता रहे और फिर यूँ ही उसे तोड़-फोड़कर फेंक दे। असल में यह एक निहायत संजीदा काम है जो हिकमत की बुनियाद पर किया गया है, एक बहुत बड़ा मक़सद इसके अन्दर काम कर रहा है और इसका एक दौर गुज़र जाने के बाद ज़रूरी है कि बनानेवाला उस पूरे काम का हिसाब ले, जो उस दौर में अंजाम पाया हो और उसी दौर के नतीजों पर दूसरे दौर की बुनियाद रखे। यही बात है जो क़ुरआन में दूसरी जगहों पर इस तरह बयान की गई है –

"ऐ हमारे रब, तू ने यह सब कुछ फ़िज़ूल पैदा नहीं किया है।"

"हमने आसमान और ज़मीन और उन चीज़ों को जो आसमान और ज़मीन के दर्मियान हैं खेल के तौर पर पैदा नहीं किया है।" और

"तो क्या तुमने यह समझ रखा है कि हमने तुम्हें यूँ ही फ़िज़ूल पैदा किया है और तुम हमारी तरफ़ वापस न लाए जाओगे?"

الْمُلْكُ يَوْمَ يُنْفَخُ فِي الصُّوْرِ عٰلِمُ الْغَيْبِ وَالشَّهَادَةِ
وَهُوَ الْحَكِيْمُ الْخَبِيْرُ ۝ وَ اِذْ قَالَ اِبْرٰهِيْمُ لِاَبِيْهِ

उसका फ़रमान बिलकुल हक़ है। और जिस दिन सूर फूँका जाएगा[47] उस दिन बादशाही उसी की होगी[48] वह छिपी और खुली[49] हर चीज़ का जाननेवाला है और सूझ-बूझ रखनेवाला और बाख़बर है।

दूसरा मतलब यह है कि अल्लाह ने कायनात का यह सारा निज़ाम हक़ की ठोस बुनियादों पर क़ायम किया है। इनसाफ़ और हिकमत और सच्चाई के क़ानूनों पर उसकी हर चीज़ का दारोमदार है। बातिल (असत्य) के लिए हक़ीक़त में इस निज़ाम में जड़ पकड़ने और फलने-फूलने की कोई गुंजाइश ही नहीं है। यह और बात है कि अल्लाह बातिलपरस्तों को मौक़ा दे दे कि वे अगर अपने झूठ, ज़ुल्म और ग़लत बात को फैलाना और बढ़ाना चाहते हैं तो अपनी कोशिश करके देखें। लेकिन आख़िरकार ज़मीन बातिल के हर बीज को उगल कर फेंक देगी और आख़िरी हिसाब के चिट्ठे में हर बातिलपरस्त देख लेगा कि जो कोशिशें उसने इस ख़बीस (बुरे) पौधे की खेती करने और सींचने में लगाई वे सब बरबाद हो गईं।

तीसरा मतलब यह है कि ख़ुदा ने इस सारी कायनात को हक़ की बुनियाद पर क़ायम किया है और अपने ज़ाती हक़ की बुनियाद पर ही वह इस पर हुकूमत कर रहा है। उसका हुक्म यहाँ इसलिए चलता है कि वही अपनी पैदा की हुई कायनात में हुक्मरानी का हक़ रखता है। दूसरों का हुक्म अगर बज़ाहिर चलता नज़र भी आता हो तो उससे धोखा न खाओ, हक़ीक़त में न उनका हुक्म चलता है, न चल सकता है, क्योंकि कायनात की किसी चीज़ पर भी उनका कोई हक़ नहीं है कि वे इस पर अपना हुक्म चलाएँ।

47. सूर फूँकने की सही कैफ़ियत क्या होगी, इसकी तफ़सील हमारी समझ से बाहर है। क़ुरआन से जो कुछ हमें मालूम हुआ है वह सिर्फ़ इतना है कि क़ियामत के दिन अल्लाह के हुक्म से एक बार सूर फूँका जाएगा और सब हलाक हो जाएँगे। फिर न मालूम कितनी मुद्दत के बाद, जिसे अल्लाह ही जानता है, दूसरा सूर फूँका जाएगा और तमाम अगले और पिछले नए सिरे से ज़िन्दा होकर अपने आपको हश्र के मैदान में पाएँगे। पहले सूर पर कायनात का सारा निज़ाम दरहम-बरहम होगा और दूसरे सूर पर एक दूसरा निज़ाम नई सूरत और नए क़ानूनों के साथ क़ायम हो जाएगा।

48. यह मतलब नहीं है कि आज बादशाही उसकी नहीं है, बल्कि मतलब यह है कि उस दिन जब परदा उठाया जाएगा और हक़ीक़त बिलकुल सामने आ जाएगी तो मालूम हो जाएगा कि वे सब जो बा-इख़्तियार नज़र आते थे, या समझे जाते थे, बिलकुल बे-इख़्तियार हैं और बादशाही के सारे इख़्तियार उसी एक ख़ुदा के लिए हैं, जिसने कायनात को पैदा किया है।

49. ग़ैब यानी वह सब कुछ जो मख़लूक़ात (प्राणियों) से छिपा हुआ है।

أٰزَرَ اَتَتَّخِذُ اَصْنَامًا اٰلِهَةً ۚ اِنِّيْٓ اَرٰىكَ وَقَوْمَكَ

(74) इबराहीम का वाक़िआ याद करो जबकि उसने अपने बाप आज़र से कहा था, "क्या तू बुतों को ख़ुदा बनाता है?[50] मैं तो तुझे और तेरी क़ौम को खुली गुमराही में

शहादत यानी वह सब कुछ जो मख़लूक़ात के लिए ज़ाहिर और मालूम है।

50. यहाँ हज़रत इबराहीम के वाक़िए का ज़िक्र इस बात की ताईद और गवाही में पेश किया जा रहा है कि जिस तरह अल्लाह की बख़्शी हुई हिदायत से आज मुहम्मद *(सल्ल.)* ने और आपके साथियों ने शिर्क का इनकार किया है और सब बनावटी ख़ुदाओं से मुँह मोड़कर सिर्फ़ एक मालिके-कायनात के आगे फ़रमाँबरदारी के साथ सिर झुका दिया है, उसी तरह कल यही कुछ इबराहीम *(अलैहि.)* भी कर चुके हैं और जिस तरह आज मुहम्मद *(सल्ल.)* और उन पर ईमान लानेवालों से उनकी जाहिल क़ौम झगड़ रही है उसी तरह कल हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* से भी उनकी क़ौम यही झगड़ा कर चुकी है। और कल जो जवाब हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने अपनी क़ौम को दिया था आज मुहम्मद *(सल्ल.)* और उनकी पैरवी करनेवालों की तरफ़ से उनकी क़ौम को भी वही जवाब है। मुहम्मद *(सल्ल.)* उस रास्ते पर हैं जो नूह *(अलैहि.)* और इबराहीमी नस्ल के तमाम नबियों का रास्ता रहा है। अब जो लोग उनकी पैरवी से इनकार कर रहे हैं उन्हें मालूम हो जाना चाहिए कि वे नबियों के तरीक़े से हटकर गुमराही की राह पर जा रहे हैं।

यहाँ यह बात और समझ लेनी चाहिए कि अरब के लोग आम तौर पर हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* को अपना पेशवा और इमाम मानते थे। ख़ास तौर से क़ुरैश के लोगों के फ़ख़्र और नाज़ की सारी बुनियाद ही यह थी कि वे इबराहीम *(अलैहि.)* की औलाद और उनके तामीर किए हुए ख़ुदा के घर (काबा) के ख़ादिम हैं। इसलिए उनके सामने हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के तौहीद के अक़ीदे का और शिर्क से उनके इनकार और मुशरिक क़ौम से उनके झगड़े का ज़िक्र करने का मतलब यह था कि क़ुरैश के फ़ख़्र और नाज़ का सारा सरमाया और अरब के इस्लाम-दुश्मनों का अपने मुशरिकाना दीन पर सारा इतमीनान उनसे छीन लिया जाए, और उन पर साबित कर दिया जाए कि आज मुसलमान उस मक़ाम पर हैं जिस पर हज़रत इबराहीम थे और तुम्हारी हैसियत वह है जो हज़रत इबराहीम से लड़नेवाली जाहिल क़ौम की थी। यह बिलकुल ऐसा ही है जैसे कोई शैख़ अब्दुल-क़ादिर जीलानी *(रह.)* के अक़ीदतमन्दों और क़ादरी नस्ब के पीरज़ादों के सामने हज़रत शैख़ की असल तालीमात और उनकी ज़िन्दगी के वाक़िआत पेश करके यह साबित कर दे कि जिन बुज़ुर्ग के तुम नामलेवा हो, तुम्हारा अपना तरीक़ा उनके बिलकुल ख़िलाफ़ है और तुमने आज उन्हीं गुमराह लोगों की हैसियत इख़्तियार कर ली है जिनके ख़िलाफ़ तुम्हारे इमाम और पेशवा जिहाद करते रहे।

فِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ۝ وَكَذٰلِكَ نُرِيْٓ اِبْرٰهِيْمَ
مَلَكُوْتَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَلِيَكُوْنَ مِنَ
الْمُوْقِنِيْنَ ۝ فَلَمَّا جَنَّ عَلَيْهِ الَّيْلُ رَاٰ كَوْكَبًا ۚ

पाता हूँ।'' (75) इबराहीम को हम इसी तरह ज़मीन और आसमानों का निज़ामे-सल्तनत दिखाते[51] थे और इसलिए दिखाते थे कि वह यक़ीन करनेवालों में से हो जाए।[52] (76) चुनाँचे जब रात उस पर छा गई तो उसने एक तारा देखा। कहा :

51. यानी जिस तरह तुम लोगों के सामने कायनात की निशानियाँ नुमायाँ हैं और अल्लाह की निशानियाँ तुम्हें दिखाई जा रही हैं, उसी तरह इबराहीम *(अलैहि॰)* के सामने भी यही निशानियाँ थीं। मगर तुम लोग उन्हें देखने पर भी अन्धों की तरह कुछ नहीं देखते और इबराहीम *(अलैहि॰)* ने उन्हें आँखें खोलकर देखा। यही सूरज और चाँद और तारे जो तुम्हारे सामने निकलते और डूबते हैं और रोज़ाना तुमको जैसा गुमराह निकलते वक़्त पाते हैं वैसा ही डूबते वक़्त छोड़ जाते हैं, इन्हीं को उस आँखोंवाले इनसान ने भी देखा था और इन्हीं निशानियों से वह हक़ीक़त तक पहुँच गया।

52. इस जगह को और क़ुरआन की उन दूसरी जगहों को जहाँ हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* से उनकी क़ौम के झगड़े का ज़िक्र आया है, अच्छी तरह समझने के लिए ज़रूरी है कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की क़ौम के मज़हबी और तमद्दुनी (सांस्कृतिक) हालात पर एक नज़र डाल ली जाए। नए ज़माने की खोज़ों और तहक़ीक़ात के सिलसिले में न सिर्फ़ वह शहर मालूम हो गया है जहाँ हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* पैदा हुए थे, बल्कि इबराहीमी दौर में उस इलाक़े के लोगों की जो हालत थी उस पर भी बहुत कुछ रौशनी पड़ी है। सर ल्यूनार्ड वूली (Sir Leonard Wooly) ने अपनी किताब Abraham, London, 1935 में इस तहक़ीक़ात के जो नतीजे शाया (प्रकाशित) किए हैं उनका ख़ुलासा हम यहाँ बयान कर रहे हैं।

अन्दाज़ा किया गया है कि लगभग 2100 ईसा पूर्व के ज़माने में, जिसे अब आम तौर पर तहक़ीक़ और खोज करनेवाले तो हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* के दुनिया में आने का ज़माना मानते हैं, उर शहर की आबादी ढाई लाख के क़रीब थी और नामुमकिन नहीं है कि पाँच लाख हो। यह शहर बड़ा सनअती (औद्योगिक) और तिजारती मरकज़ था। एक तरफ़ पामेर और नीलगिरी तक से वहाँ माल आता था और दूसरी तरफ़ अनातूलिया तक से इसके तिजारती ताल्लुक़ात थे। जिस रियासत का यह सदर मक़ाम (केन्द्र) था उसकी हदें इराक़ की मौजूदा हुकूमत से उत्तर में कुछ कम और पश्चिम में कुछ ज़्यादा थीं। मुल्क की आबादी ज़्यादातर

उद्योग-धन्धे और तिजारत करती थीं। उस दौर की जो तहरीरें (लेख) आसारे-क़दीमा (पुरातत्त्व) के खण्डहरों में मिले हैं उनसे मालूम होता है कि ज़िन्दगी में उन लोगों का नज़रिया ख़ालिस माद्दापरस्ताना (भौतिकवादी) था। दौलत कमाना और ज़्यादा से ज़्यादा ऐशो-आराम जुटाना उनकी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा मक़सद था। सूदख़ोरी ख़ूब फैली हुई थी। सख़्त कारोबारी क़िस्म के लोग थे। हर एक दूसरे को शक की निगाह से देखता था और आपस में मुक़द्दमेबाज़ियाँ बहुत होती थीं। अपने ख़ुदाओं से उनकी दुआएँ ज़्यादातर उम्र के लम्बे होने, ख़ुशहाली और कारोबार की तरक़्क़ी के बारे में हुआ करती थीं। आबादी में तीन तबक़े शामिल थे—

1. अमीलो : ये ऊँचे तबक़े के लोग थे जिनमें पुजारी, हुकूमत के ओहदेदार और फ़ौजी अफ़सर वग़ैरा शामिल थे।
2. मिशकीनो : ये तिजारत पेशा, कारख़ानेदार और खेती करनेवाले लोग थे।
3. अरदो : यानी ग़ुलाम।

इनमें से पहले तबक़े यानी अमीलो को ख़ास इम्तियाज़ी हैसियत हासिल थी। उनके फ़ौजदारी और दीवानी हक़ दूसरों से मुख़्तलिफ़ थे। और उनकी जान-माल की क़ीमत दूसरों से बढ़कर थी। यह शहर और यह समाज था जिसमें हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने आँखें खोलीं। उनका और उनके ख़ानदान का जो हाल हमें तलमूद में मिलता है उससे मालूम होता है कि वे अमीलो तबक़े के एक व्यक्ति थे और उनका बाप रियासत का सबसे बड़ा ओहदेदार था। (देखें सूरा-2, अल-बक़रा, हाशिया-290)

उर के कतबात (शिलालेखों) में लगभग पाँच हज़ार ख़ुदाओं के नाम मिलते हैं। मुल्क के मुख़्तलिफ़ शहरों के अलग-अलग ख़ुदा थे। हर शहर का एक ख़ास मुहाफ़िज़ ख़ुदा होता था जो रब्बुल-बलद (शहर का पालनकर्ता और शासक) महादेव या रईसुल-आलिहा (देवताओं का प्रमुख) समझा जाता था और उसका एहतिराम दूसरे माबूदों से ज़्यादा होता था। उर का रब्बुल-बलद 'नन्नार' (चाँद देवता) था और इसी ताल्लुक़ से बाद के लोगों ने इस शहर का नाम 'क़मरीना' भी लिखा है। दूसरा बड़ा शहर लरसा था जो बाद में उर के बजाय रियासत का मरकज़ बना। उसका रब्बुल-बलद 'शमाश' (सूर्य देवता) था। इन बड़े ख़ुदाओं के मातहत बहुत-से छोटे ख़ुदा भी थे जो ज़्यादातर आसमानी तारों और सैयारों (ग्रहों) में से और कमतर ज़मीन से चुने गए थे। और लोग अपनी बहुत-सी छोटी-मोटी ज़रूरतों को उनसे मुताल्लिक़ समझते थे। इन आसमानी और ज़मीनी देवताओं और देवियों की शक्ल-सूरत बुतों की शक्ल में बना ली गई थीं और इबादतों के तमाम तरीक़े उन्हीं के आगे पूरे किए जाते थे।

'नन्नार' का बुत उर में सबसे ऊँची पहाड़ी पर एक आलीशान इमारत में रखा हुआ था। इसी के क़रीब 'नन्नार' की बीवी 'निन गल' का माबद (पूजास्थल) था। नन्नार के माबद की शान एक शाही महल-सरा की-सी थी। उसकी ख़ाबगाह (शयन कक्ष) में रोज़ाना रात को एक पुजारिन जाकर उसकी दुल्हन बनती थी। मन्दिर में बहुत-सी औरतें देवता के नाम पर वक़्फ़ थीं और उनकी हैसियत देवदासियों (Religious Prostitutes) की-सी थी। वह औरत बड़ी इज़्ज़तवाली समझी जाती थी जो 'ख़ुदा' के नाम पर अपनी बकारत (कौमार्य) क़ुरबान कर दे। कम से कम एक बार अपने आपको 'ख़ुदा की राह' में किसी अजनबी के हवाले करना औरत के लिए नजात

का ज़रीआ समझा जाता था। अब यह बयान करना कुछ ज़रूरी नहीं कि इस मज़हबी ताइफ़गिरी (वेश्यावृत्ति) से फ़ायदा उठानेवाले ज़्यादातर पुजारी लोग ही होते थे।

नन्नार सिर्फ़ एक देवता ही न था, बल्कि मुल्क का सबसे बड़ा ज़मींदार, सबसे बड़ा ताजिर, सबसे बड़ा कारख़ानेदार और मुल्क की सियासी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा हाकिम भी था। बहुत-से बाग़, मकान और ज़मीनें इस मन्दिर के लिए वक़्फ़ थीं। इस जायदाद की आमदनी के अलावा किसान, ज़मींदार, ताजिर, सब हर क़िस्म के ग़ल्ले, दूध, सोना, कपड़ा और दूसरी चीज़ें लाकर मन्दिर में नज़्र भी करते थे, जिन्हें वुसूल करने के लिए मन्दिर में एक बहुत बड़ा स्टाफ़ मौजूद था। बहुत-से कारख़ाने मन्दिर के मातहत क़ायम थे। तिजारती कारोबार भी बहुत बड़े पैमाने पर मन्दिर की तरफ़ से होता था। ये सब काम देवता के नुमाइन्दे होने की हैसियत से पुजारी ही करते थे। फिर मुल्क की सबसे बड़ी अदालत मन्दिर ही में थी। पुजारी उसके जज थे और उनके फ़ैसले ख़ुदा के फ़ैसले समझे जाते थे। ख़ुद शाही ख़ानदान की हाकिमियत भी नन्नार ही से ली गई थी। असूल बादशाह नन्नार था और मुल्क का बादशाह उसकी तरफ़ से हुकूमत करता था। इस ताल्लुक़ से बादशाह ख़ुद भी माबूदों में शामिल हो जाता था और ख़ुदाओं के जैसी उसकी पूजा की जाती थी।

उर का शाही ख़ानदान जो हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* के ज़माने में हुकमराँ था, उसके सबसे पहले बानी (संस्थापक) का नाम उर नमूव था जिसने 2300 ईसा पूर्व में एक बड़ी सल्तनत क़ायम की थी। उसकी सल्तनत की हदें पूरब में सूसा से लेकर पश्चिम में लुबनान तक फैली हुई थी। उसी से इस ख़ानदान को 'नमूव' का नाम मिला जो अरबी में जाकर नमरूद हो गया। हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की हिजरत के बाद इस ख़ानदान और इस क़ौम पर लगातार तबाही नाज़िल होनी शुरू हुई। पहले ईलामियों ने उर को तबाह किया और नमरूद को नन्नार के बुत समेत पकड़ कर ले गए। फिर लरसा में एक ईलामी हुकूमत क़ायम हुई, जिसके मातहत उर का इलाक़ा ग़ुलाम की हैसियत से रहा। आख़िरकार एक अरबी नसूल के ख़ानदान के मातहत बाबिल ने ज़ोर पकड़ा और लरसा और उर दोनों उसकी हुकूमत के तहत आ गए। इन तबाहियों ने नन्नार के साथ उर के लोगों का अक़ीदा डगमगा दिया, क्योंकि वह उनकी हिफ़ाज़त न कर सका।

यक़ीनी तौर पर नहीं कहा जा सकता कि बाद के दौर में हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की तालीमात का असर इस मुल्क के लोगों ने कहाँ तक क़बूल किया। लेकिन 1910 ईसा पूर्व में बाबिल के बादशाह हम्मूराबी (बाइबल के अमुराफ़ील) ने जो क़ानून बनाए थे वे गवाही देते हैं कि सीधे तौर पर या किसी दूसरे ज़रीए से उनके मुरत्तब किए जाने में नुबूवत के चिराग़ से हासिल की हुई रौशनी किसी हद तक ज़रूर कारफ़रमा थी। इन क़ानूनों का तफ़सीली कतबा (शिलालेख) 1902 ई॰ में आसारे-क़दीमा के एक फ़्रांसीसी खोजी को मिला और उसका अंग्रेज़ी तर्जमा C.H.W JOHN ने 1903 ई॰ में The Oledst Code of Law के नाम से शाया किया। इस क़ानूनी ज़ाब्ते के बहुत-से उसूल क़ानूनों के इस ज़ाब्ते में बहुत-सी उन असली और दूसरी बातें हज़रत मूसा *(अलैहि॰)* की शरीअत से मेल रखनेवाली हैं।

ये अब तक के नई तहक़ीक़ात के नतीजे अगर सही हैं तो उनसे यह बात बिलकुल साफ़ हो

قَالَ هٰذَا رَبِّیْ ۚ فَلَمَّآ اَفَلَ قَالَ لَآ اُحِبُّ
الْاٰفِلِیْنَ ﴿٧٦﴾ فَلَمَّا رَاَ الْقَمَرَ بَازِغًا قَالَ هٰذَا رَبِّیْ ۚ
فَلَمَّآ اَفَلَ قَالَ لَئِنْ لَّمْ یَهْدِنِیْ رَبِّیْ لَاَكُوْنَنَّ
مِنَ الْقَوْمِ الضَّآلِّیْنَ ﴿٧٧﴾ فَلَمَّا رَاَ الشَّمْسَ بَازِغَةً
قَالَ هٰذَا رَبِّیْ هٰذَآ اَكْبَرُ ۚ فَلَمَّآ اَفَلَتْ قَالَ
یٰقَوْمِ اِنِّیْ بَرِیْٓءٌ مِّمَّا تُشْرِكُوْنَ ﴿٧٨﴾ اِنِّیْ وَجَّهْتُ

यह मेरा रब है। मगर जब वह डूब गया तो बोला : डूब जानेवालों का तो मैं चाहनेवाला नहीं हूँ। (77) फिर जब चाँद चमकता नज़र आया तो कहा : यह है मेरा रब। मगर जब वह भी डूब गया तो कहा : अगर मेरे रब ने मेरी रहनुमाई न की होती तो मैं भी गुमराह लोगों में शामिल हो गया होता। (78) फिर जब सूरज को रौशन देखा तो कहा : यह है मेरा रब, यह सबसे बड़ा है। मगर जब वह भी डूबा तो इबराहीम पुकार उठा कि "ऐ मेरी क़ौम के लोगो! मैं उन सबसे बेज़ार (विरक्त) हूँ जिन्हें तुम ख़ुदा का शरीक ठहराते हो।[53]

जाती है कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की क़ौम में शिर्क सिर्फ़ एक मज़हबी अक़ीदे और बुत-परस्ताना इबादात का मजमुआ ही न था, बल्कि हक़ीक़त में उस क़ौम की पूरी मआशी (आर्थिक), तमद्दुनी (सांस्कृतिक), सियासी और समाजी ज़िन्दगी का निज़ाम उसी अक़ीदे की बुनियाद पर था। उसके मुक़ाबले में हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* तौहीद की जो दावत लेकर उठे थे उसका असर सिर्फ़ बुतों की पूजा ही पर नहीं पड़ता था, बल्कि शाही ख़ानदान की माबूदियत और हाकमियत, पुजारियों और ऊँचे तबक़ों की समाजी, मआशी और सियासी हैसियत, और पूरे मुल्क की इज्तिमाई ज़िन्दगी उसकी चपेट में आई जाती थी। उनकी दावत को क़बूल करने का मतलब यह था कि नीचे से ऊपर तक सारी सोसाइटी की इमारत उधेड़ डाली जाए और उसे नए सिरे से अल्लाह की तौहीद की बुनियाद पर तामीर किया जाए। इसी लिए इबराहीम *(अलैहि॰)* की आवाज़ बुलन्द होते ही आम लोग और ख़ास लोग, पुजारी और नमरूद सबके सब एक ही वक़्त में उसको दबाने के लिए खड़े हो गए।

53. यहाँ हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* के उस शुरू के फ़िक्र (चिन्तन) की कैफ़ियत बयान की गई है जो उन्हें पैग़म्बर बनाए जाने से पहले उनके लिए हक़ीक़त तक पहुँचने का ज़रीआ बनी। इसमें

बताया गया है कि एक सही दिमाग़ रखनेवाला और सही अन्दाज़ से देखनेवाला इनसान जिसने सरासर शिर्क के माहौल में आँखें खोली थीं, और जिसे तौहीद की तालीम कहीं से हासिल नहीं हो सकती थी, किस तरह कायनात की निशानियों को देखकर और उन पर ग़ौर और फ़िक्र करके और उनसे सही तौर पर चीज़ को साबित करके हक़ बात मालूम करने में कामयाब हो गया। ऊपर इबराहीम *(अलैहि॰)* की क़ौम के जो हालात बयान किए गए हैं उन पर एक नज़र डालने से यह मालूम हो जाता है कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* ने जब होश संभाला था तो उनके आसपास हर तरफ़ चाँद, सूरज और तारों की ख़ुदाई के डंके बज रहे थे। इसलिए क़ुदरती तौर पर हक़ीक़त को तलाश करने की हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की कोशिश करने की शुरुआत इसी सवाल से होना चाहिए थी कि क्या हक़ीक़त में इनमें से कोई रब हो सकता है? इसी मरकज़ी सवाल पर उन्होंने ग़ौर-फ़िक्र किया और आख़िरकार अपनी क़ौम के सारे ख़ुदाओं को एक अटल क़ानून के तहत ग़ुलामों की तरह गर्दिश करते देखकर वे इस नतीजे पर पहुँच गए कि जिन-जिन के रब होने का दावा किया जाता है उनमें से किसी के अन्दर भी रब होने का शायबा (अंश) तक नहीं है, रब तो सिर्फ़ वही एक है जिसने इन सबको पैदा किया और बन्दगी पर मजबूर किया।

इस क़िस्से के अलफ़ाज़ से आम तौर पर लोगों के ज़ेहन में एक शुब्ह पैदा होता है। यह जो कहा गया है कि जब रात छाई तो उसने एक तारा देखा, और जब वह डूब गया तो यह कहा, फिर चाँद को देखा और जब वह डूब गया तो यह कहा, फिर सूरज को देखा और जब वह भी डूब गया तो यह कहा, इस पर एक आम आदमी के ज़ेहन में फ़ौरन यह सवाल खटकता है कि क्या बचपन से आँख खोलते ही रोज़ाना हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* पर रात छाती न रही थी। और क्या वे हर दिन चाँद, तारों और सूरज को निकलते और डूबते न देखते थे? ज़ाहिर है कि यह ग़ौर और फ़िक्र तो उन्होंने समझ-बूझ की उम्र को पहुँचने के बाद ही किया होगा। फिर यह क़िस्सा इस तरह क्यों बयान किया गया है कि जब रात हुई तो यह देखा और दिन निकला तो यह देखा? मानो इस ख़ास वाक़िए से पहले उन्हें ये चीज़ें देखने का इत्तिफ़ाक़ न हुआ था, हालाँकि ऐसा होना बिलकुल नामुमकिन है। यह शक कुछ लोगों के लिए इस क़द्र नाक़ाबिले-हल बन गया कि इसे हल करने की कोई सूरत उन्हें इसके सिवा नज़र न आई कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की पैदाइश और परवरिश के बारे में एक ग़ैर-मामूली क़िस्सा घड़ लें। चुनाँचे बयान किया जाता है कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की पैदाइश और परवरिश एक गुफा में हुई थी, जहाँ समझने-बूझने की उम्र को पहुँचने तक वे चाँद, तारों और सूरज को देखने से महरूम रखे गए थे। हालाँकि बात बिलकुल साफ़ है और इसको समझने के लिए इस तरह की किसी दास्तान की ज़रूरत नहीं है। न्यूटन के बारे में मशहूर है कि उसने बाग़ में एक सेब को पेड़ से गिरते हुए देखा और इससे उसका ज़ेहन अचानक इस सवाल की तरफ़ मुतवज्जेह हो गया कि चीज़ें आख़िर ज़मीन पर ही क्यों गिरा करती हैं, यहाँ तक कि ग़ौर करते-करते वह क़ानूने-जज़्ब-व-कशिश (गुरुत्त्वाकर्षण नियम) की खोज तक पहुँच गया। सवाल पैदा होता है कि क्या इस वाक़िए से पहले न्यूटन ने कभी कोई चीज़ ज़मीन पर गिरते नहीं देखी थी? ज़ाहिर है कि ज़रूर देखी होगी और बहुत-बार देखी होगी। फिर क्या वजह है कि उसी ख़ास तारीख़ को सेब

وَجْهِيَ لِلَّذِي فَطَرَ السَّمٰوٰتِ وَ الْاَرْضَ حَنِيْفًا

(79) मैंने तो यकसू (एकाग्र) होकर अपना रुख़ उस हस्ती की तरफ़ कर लिया जिसने

गिरते हुए देखने से न्यूटन के ज़ेहन में वह हरकत पैदा हुई जो उससे पहले रोज़ाना के ऐसे सैकड़ों वाक़िओं को देखने से न हुई थी? इसका जवाब अगर कुछ हो सकता है तो यही कि ग़ौर और फ़िक्र करनेवाला ज़ेहन हमेशा एक तरह के वाक़िओं को देखने से एक ही तरह मुतास्सिर नहीं हुआ करता। बहुत बार ऐसा होता है कि आदमी एक चीज़ को हमेशा देखता रहता है और उसके ज़ेहन में कोई हरकत पैदा नहीं होती, मगर एक वक़्त उसी चीज़ को देखकर अचानक ज़ेहन में एक खटक पैदा हो जाती है जिससे फ़िक्र की क़ुव्वतें एक ख़ास मज़मून की तरफ़ काम करने लगती हैं। या पहले से किसी सवाल की तहक़ीक़ और खोज में ज़ेहन उलझ रहा होता है और यकायक रोज़ाना दिखने में आनेवाली चीज़ों में से किसी एक चीज़ पर नज़र पड़ते ही गुत्थी का वह सिरा हाथ लग जाता है जिस से सारी उलझनें सुलझती चली जाती हैं। ऐसा ही मामला हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* के साथ भी पेश आया। रातें रोज़ आती थीं और गुज़र जाती थीं। सूरज और चाँद और तारे सब ही आँखों के सामने डूबते और उभरते रहते थे। लेकिन वह एक ख़ास दिन था जब एक तारे के देखने ने उनके ज़ेहन को उस राह पर डाल दिया जिससे आख़िरकार वे एक अल्लाह की मरकज़ी हक़ीक़त तक पहुँचकर रहे। मुमकिन है कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* का ज़ेहन पहले से इस सवाल पर ग़ौर कर रहा हो कि जिन अक़ीदों पर सारी क़ौम की ज़िन्दगी का निज़ाम चल रहा है उनमें किस हद तक सच्चाई है और फिर एक तारा यकायक सामने आकर कामयाबी की कुंजी बन गया हो। और यह भी मुमकिन है कि तारे को देखने ही से ज़ेहनी हरकत की शुरुआत हुई हो।

इस सिलसिले में एक और सवाल भी पैदा होता है। वह यह कि जब हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* ने तारे को देखकर कहा : यह मेरा रब है, और जब चाँद और सूरज को देखकर उन्हें अपना रब कहा, तो क्या उस वक़्त वक़्ती तौर पर ही सही वे शिर्क में पड़ गए थे? इसका जवाब यह है कि हक़ की तलब रखनेवाला एक आदमी अपनी जुस्तजू की राह में सफ़र करते हुए बीच की जिन मंज़िलों पर सोच-विचार के लिए ठहरता है, अस्ल एतिबार उन मंज़िलों का नहीं होता, बल्कि अस्ल एतिबार उस सम्त का होता है जिस पर वह आगे बढ़ रहा है और उस आख़िरी मक़ाम का होता है जहाँ पहुँचकर वह क़ियाम करता है। बीच की मंज़िलें हक़ के हर चाहनेवाले के लिए बहुत ही ज़रूरी हैं। उन पर ठहरना तलब और जुस्तजू के सिलसिले में होता है, न कि फ़ैसले की सूरत में। अस्ल में यह ठहराव समझने और खोजबीन करने के लिए हुआ करता है, न कि फ़ैसले के रूप में। एक खोजी आदमी जब इनमें से किसी मंज़िल पर रुक कर कहता है कि ''ऐसा है'' तो अस्ल में यह उसकी आख़िरी राय नहीं होती, बल्कि इसका मतलब यह होता है कि ''ऐसा है?'' और तहक़ीक़ व खोज से उसका जवाब 'नहीं' में पाकर वह आगे बढ़ जाता है। इसलिए यह ख़याल करना बिलकुल ग़लत है कि बीच रास्ते में जहाँ-जहाँ वह ठहरता रहा वहाँ वह वक़्ती तौर पर कुफ़्र या शिर्क में पड़ा रहा।

وَّمَآ اَنَا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۝٧٩ وَحَآجَّهٗ قَوْمُهٗ ؕ قَالَ
اَتُحَآجُّوْٓنِّيْ فِي اللّٰهِ وَقَدْ هَدٰىنِ ؕ وَلَآ اَخَافُ مَا
تُشْرِكُوْنَ بِهٖٓ اِلَّآ اَنْ يَّشَآءَ رَبِّيْ شَيْـًٔا ؕ وَسِعَ رَبِّيْ
كُلَّ شَيْءٍ عِلْمًا ؕ اَفَلَا تَتَذَكَّرُوْنَ ۝٨٠ وَكَيْفَ
اَخَافُ مَآ اَشْرَكْتُمْ وَلَا تَخَافُوْنَ اَنَّكُمْ اَشْرَكْتُمْ
بِاللّٰهِ مَا لَمْ يُنَزِّلْ بِهٖ عَلَيْكُمْ سُلْطٰنًا ؕ فَاَيُّ
الْفَرِيْقَيْنِ اَحَقُّ بِالْاَمْنِ ۚ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝٨١

ज़मीन और आसमानों को पैदा किया है और मैं हरगिज़ शिर्क करनेवालों में से नहीं हूँ।" (80) उसकी क़ौम उससे झगड़ने लगी तो उसने क़ौम से कहा, "क्या तुम लोग अल्लाह के मामले में मुझ से झगड़ते हो? हालाँकि उसने मुझे सीधा रास्ता दिखा दिया है। और मैं तुम्हारे ठहराए हुए शरीकों से नहीं डरता। हाँ, अगर मेरा रब कुछ चाहे तो वह ज़रूर हो सकता है। मेरे रब का इल्म हर चीज़ पर छाया हुआ है। फिर क्या तुम होश में न आओगे?[54] (81) और आख़िर मैं तुम्हारे ठहराए हुए शरीकों से कैसे डरूँ जबकि तुम अल्लाह के साथ उन चीज़ों को ख़ुदाई में शरीक बनाते हुए नहीं डरते जिनके लिए उसने तुम पर कोई सनद नहीं उतारी है? हम दोनों फ़रीक़ों में से कौन ज़्यादा बेख़ौफ़ी और इत्मीनान का हक़दार है? बताओ अगर तुम कुछ इल्म रखते हो।

54. मूल अरबी में लफ्ज़ 'तज़क्कुर' इस्तेमाल हुआ है, जिसका सही मतलब यह है कि एक आदमी जो ग़फ़लत और भुलावे में पड़ा हुआ हो वह चौंककर उस चीज़ को याद कर ले जिससे वह ग़ाफ़िल था। इसी लिए हम ने अरबी जुमले 'अ-फ़-ला त-तज़क्करून' का यह तर्जमा किया है। हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* के कहने का मतलब यह था कि तुम जो कुछ कह रहे हो, तुम्हारा असली और हक़ीक़ी रब इससे बेख़बर नहीं है, उसका इल्म सारी चीज़ों पर फैला हुआ है, फिर क्या इस हक़ीक़त को जानकर भी तुम्हें होश न आएगा?

الَّذِينَ آمَنُوا وَلَمْ يَلْبِسُوا إِيمَانَهُم بِظُلْمٍ أُولَٰئِكَ
ع ١٢ ١٥ لَهُمُ الْأَمْنُ وَهُم مُّهْتَدُونَ ﴿٨٢﴾ وَتِلْكَ حُجَّتُنَا
آتَيْنَاهَا إِبْرَاهِيمَ عَلَىٰ قَوْمِهِ ۚ نَرْفَعُ دَرَجَاتٍ مَّن نَّشَاءُ ۗ

(82) हक़ीक़त में तो अमन उन ही के लिए है और सीधे रास्ते पर वही हैं जो ईमान लाए और जिन्होंने अपने ईमान में ज़ुल्म की मिलावट नहीं की।"[55]

(83) यह थी हमारी वह हुज्जत (तर्क) जो हमने इबराहीम को उसकी क़ौम के

---

55. यह पूरी तक़रीर इस बात पर गवाह है कि वह क़ौम आसमानों और ज़मीन को पैदा करनेवाले अल्लाह की हस्ती की इनकारी न थी, बल्कि उसका असली जुर्म अल्लाह के साथ दूसरों को ख़ुदाई सिफ़ात और ख़ुदावन्दाना हुक़ूक़ में शरीक क़रार देना था। पहले तो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ख़ुद ही फ़रमा रहे हैं कि तुम अल्लाह के साथ दूसरी चीज़ों को शरीक करते हो। दूसरे जिस तरह आप इन लोगों को ख़िताब करते हुए अल्लाह का ज़िक्र करते हैं, बयान का यह अन्दाज़ सिर्फ़ उन्हीं लोगों के मुक़ाबले में इख़्तियार किया जा सकता है जो अल्लाह के वुजूद का इनकार न करते हों। इसलिए क़ुरआन के उन मुफ़स्सिरों की राय दुरुस्त नहीं है जिन्होंने इस मक़ाम पर और हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के सिलसिले में दूसरे मक़ामात पर क़ुरआन के बयानों की तफ़सीर इस ख़याली बात पर की है कि इबराहीम *(अलैहि.)* की क़ौम अल्लाह का इनकार करती थी या उसको जानती ही नहीं थी और सिर्फ़ अपने माबूदों ही को पूरे तौर पर ख़ुदाई का मालिक समझती थी।

आख़िरी आयत में यह जो जुमला है कि ''जिन्होंने अपने ईमान में ज़ुल्म की मिलावट नहीं की'' इसमें लफ़्ज़ ज़ुल्म से कुछ सहाबा को ग़लतफ़हमी हुई थी कि शायद इससे मुराद गुनाह है। लेकिन नबी *(सल्ल.)* ने ख़ुद बता दिया दी कि असल में यहाँ ज़ुल्म से मुराद शिर्क है। इसलिए इस आयत का मतलब यह हुआ कि जो लोग अल्लाह को मानें और अपने इस मानने में किसी मुशरिकाना अक़ीदे और अमल की मिलावट न करें, अमन सिर्फ़ उन्हीं के लिए है और वही सीधे रास्ते पर हैं।

इस मौक़े पर यह जान लेना भी दिलचस्पी से ख़ाली न होगा कि यह वाक़िआ जो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* की अज़ीमुश्शान पैग़म्बराना ज़िन्दगी का शुरुआती नुक्ता है, बाइबल में कोई जगह नहीं पा सका है। अलबत्ता तलमूद में इसका ज़िक्र मौजूद है। लेकिन इसमें दो बातें क़ुरआन से अलग हैं। एक यह कि वह हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* की हक़ीक़त की जुस्तजू को सूरज से शुरू करके तारों तक और फिर ख़ुदा तक ले जाती है। दूसरे उसका बयान है कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने जब सूरज को 'हाज़ा रब्बी' (यह मेरा रब है) कहा तो साथ ही उसकी पूजा भी कर डाली और इसी तरह चाँद को भी उन्होंने 'हाज़ा रब्बी' कहकर उसकी पूजा की।

إِنَّ رَبَّكَ حَكِيمٌ عَلِيمٌ ﴿٨٣﴾ وَوَهَبْنَا لَهُ إِسْحَاقَ وَيَعْقُوبَ ۚ
كُلًّا هَدَيْنَا ۚ وَنُوحًا هَدَيْنَا مِن قَبْلُ ۖ وَمِن ذُرِّيَّتِهِ دَاوُودَ
وَسُلَيْمَانَ وَأَيُّوبَ وَيُوسُفَ وَمُوسَىٰ وَهَارُونَ ۚ وَكَذَٰلِكَ
نَجْزِي الْمُحْسِنِينَ ﴿٨٤﴾ وَزَكَرِيَّا وَيَحْيَىٰ وَعِيسَىٰ وَإِلْيَاسَ ۖ
كُلٌّ مِّنَ الصَّالِحِينَ ﴿٨٥﴾ وَإِسْمَاعِيلَ وَالْيَسَعَ وَيُونُسَ وَ
لُوطًا ۚ وَكُلًّا فَضَّلْنَا عَلَى الْعَالَمِينَ ﴿٨٦﴾ وَمِنْ آبَائِهِمْ وَ
ذُرِّيَّاتِهِمْ وَإِخْوَانِهِمْ ۖ وَاجْتَبَيْنَاهُمْ وَهَدَيْنَاهُمْ إِلَىٰ
صِرَاطٍ مُّسْتَقِيمٍ ﴿٨٧﴾ ذَٰلِكَ هُدَى اللَّهِ يَهْدِي بِهِ مَنْ

मुक़ाबले में अता की। हम जिसे चाहते हैं बुलन्द मर्तबे अता करते हैं। हक़ यह है कि तुम्हारा रब निहायत सूझ-बूझवाला और इल्म रखनेवाला है।

(84) फिर हमने इबराहीम को इसहाक़ और याक़ूब जैसी औलाद दी और हर एक को सीधी राह दिखाई। (वही सीधी राह) जो इससे पहले नूह को दिखाई थी और उसी की नस्ल से हमने दाऊद, सुलैमान, अय्यूब, यूसुफ़, मूसा और हारून को (हिदायत बख़्शी)। इस तरह हम नेकी करनेवालों को उनकी नेकी का बदला देते हैं। (85) (उसी की औलाद से) ज़करिय्या, यहया, ईसा और इलयास को (राह दिखाई) हर एक उनमें से नेक था। (86) (उसी के ख़ानदान से) इसमाईल, अल-यसअ, यूनुस और लूत को (रास्ता दिखाया)। इनमें से हर एक को हमने तमाम दुनियावालों पर फ़ज़ीलत (बड़ाई) अता की। (87) इसी के साथ उनके बाप-दादा और उनकी औलाद और उनके भाई-बन्दों में से बहुतों को हमने नवाज़ा, उन्हें अपनी ख़िदमत के लिए चुन लिया और सीधे रास्ते की तरफ़ उनकी रहनुमाई की। (88) यह अल्लाह की हिदायत है जिसके साथ वह अपने

يَشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ ؕ وَلَوْ اَشْرَكُوْا لَحَبِطَ عَنْهُمْ مَّا كَانُوْا
يَعْمَلُوْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحُكْمَ وَ
النُّبُوَّةَ ۚ فَاِنْ يَّكْفُرْ بِهَا هٰٓؤُلَآءِ فَقَدْ وَكَّلْنَا بِهَا قَوْمًا
لَّيْسُوْا بِهَا بِكٰفِرِيْنَ ۝ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ هَدَى اللّٰهُ فَبِهُدٰىهُمُ

बन्दों में से जिसकी चाहता है रहनुमाई करता है। लेकिन अगर कहीं उन लोगों ने शिर्क किया होता तो उनका सब किया-कराया बरबाद हो जाता[56] (89) वे लोग थे जिनको हमने किताब और हुक्म और नुबूवत[57] अता की थी। अब अगर ये लोग इसको मानने से इनकार करते हैं तो (परवाह नहीं) हमने कुछ और लोगों को यह नेमत सौंप दी है जो उसके इनकारी नहीं हैं।[58] (90) ऐ नबी! वही लोग अल्लाह की तरफ़ से हिदायत पाए

56. यानी जिस शिर्क में तुम लोग पड़े हुए हो अगर कहीं वे भी इसी में पड़े हुए होते तो ये मर्तबे हरगिज़ नहीं पा सकते थे। मुमकिन था कि कोई आदमी कामयाब डाका डालकर फ़ातेह (विजयी) की हैसियत से दुनिया में शोहरत पा लेता, या माल की पूजा में कमाल पैदा करके क़ारून का-सा नाम पैदा कर लेता, या किसी और सूरत से दुनिया के बदकारों में नामवर बदकार बन जाता। लेकिन हिदायत के काम और नेक और परहेज़गार लोगों के रहनुमा होने का यह इज़्ज़तवाला मक़ाम और यह दुनिया भर के लिए भलाई और कामयाबी का सरचश्मा (स्रोत) होने का यह मक़ाम तो कोई भी नहीं पा सकता अगर शिर्क से दूर और ख़ालिस ख़ुदापरस्ती की राह पर मज़बूती से जमा न होता।

57. यहाँ नबियों को तीन चीज़ें दिए जाने का ज़िक्र किया गया है। एक किताब यानी अल्लाह का हिदायतनामा, दूसरे हुक्म यानी उस हिदायतनामे की सही समझ और उसके उसूलों को ज़िन्दगी के मामलों पर चस्पाँ और लागू करने की सलाहियत और ज़िन्दगी के मसलों में फ़ैसलाकुन राय क़ायम करने की अल्लाह की दी हुई क़ाबिलियत। तीसरे नुबूवत, यानी यह मंसब कि वह उस हिदायतनामे के मुताबिक़ अल्लाह के बन्दों की रहनुमाई करें।

58. मतलब यह है कि अगर ये ख़ुदा का इनकार करनेवाले और मुशरिक लोग अल्लाह की इस हिदायत को क़बूल करने से इनकार करते हैं तो कर दें, हमने ईमानवालों का एक ऐसा गरोह पैदा कर दिया है जो इस नेमत की क़द्र करनेवाला है।

اقْتَدِهْ ۗ قُلْ لَّآ اَسْـَٔلُكُمْ عَلَيْهِ اَجْرًا ۗ اِنْ هُوَ اِلَّا ذِكْرٰى
ع لِلْعٰلَمِيْنَ ۝ وَمَا قَدَرُوا اللّٰهَ حَقَّ قَدْرِهٖٓ اِذْ قَالُوْا مَآ
اَنْزَلَ اللّٰهُ عَلٰى بَشَرٍ مِّنْ شَيْءٍ ۗ قُلْ مَنْ اَنْزَلَ الْكِتٰبَ

हुए थे, इन ही के रास्ते पर तुम चलो, और कह दो कि मैं (इस तबलीग़ और हिदायत के) काम पर तुम से कोई बदला नहीं चाहता हूँ। यह तो एक आम नसीहत है तमाम दुनियावालों के लिए।

(91) इन लोगों ने अल्लाह का बहुत ग़लत अन्दाज़ा लगाया जब कहा कि अल्लाह ने किसी बशर (इनसान) पर कुछ नहीं उतारा है।[59] इनसे पूछो : फिर वह किताब जिसे मूसा

---

59. बयान के पिछले सिलसिले (वार्ताक्रम) और बाद की जवाबी तक़रीर से साफ़ मालूम होता है कि यह क़ौल यहूदियों का था। चूँकि नबी *(सल्ल.)* का दावा यह था कि मैं नबी हूँ और मुझ पर किताब उतरी है, इसलिए क़ुदरती तौर पर क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मन और अरब के दूसरे मुशरिक इस दावे की तहक़ीक़ के लिए यहूदियों और ईसाइयों की तरफ़ पलटते थे और उनसे पूछते थे कि तुम भी किताबवाले हो, पैग़म्बरों को मानते हो, बताओ क्या वाक़ई उस आदमी पर अल्लाह का कलाम उतरी है? फिर जो कुछ जवाब वे देते उसे नबी *(सल्ल.)* के सरगर्म मुख़ालिफ़ जगह-जगह बयान करके लोगों को भड़काते फिरते थे। इसी लिए यहाँ यहूदियों की इस बात को, जिसे इस्लाम के मुख़ालिफ़ों ने हुज्जत (दलील) बना रखा था, नक़ल करके उसका जवाब दिया जा रहा है।

शुब्हा किया जा सकता है कि एक यहूदी जो ख़ुद तौरात को ख़ुदा की तरफ़ से उतरी हुई किताब मानता है, यह कैसे कह सकता है कि ख़ुदा ने किसी इनसान पर कुछ नहीं उतारा। लेकिन यह शुब्हा सही नहीं है, इसलिए कि ज़िद और हठधर्मी की बुनियाद पर कभी-कभी आदमी किसी दूसरे की सच्ची बातों को रद्द करने के लिए ऐसी बातें भी कह जाता है जिनसे ख़ुद उसकी अपनी तस्लीमशुदा सच्चाइयों पर भी चोट पड़ जाती है। ये लोग मुहम्मद *(सल्ल.)* की नुबूवत को रद्द करने पर तुले हुए थे और अपनी मुख़ालिफ़त के जोश में इतने अन्धे हो जाते थे कि नबी *(सल्ल.)* की रिसालत को रद्द करते-करते ख़ुद रिसालत ही को मानने से इनकार कर देते थे। और यह जो फ़रमाया कि लोगों ने अल्लाह का बहुत ग़लत अन्दाज़ा लगाया। जब यह कहा, तो इसका मतलब यह है कि उन्होंने अल्लाह की हिकमत और उसकी क़ुदरत का अन्दाज़ा करने में ग़लती की है। जो आदमी यह कहता है कि ख़ुदा ने किसी इनसान पर हक़ का इल्म और ज़िन्दगी के लिए कोई हिदायतनामा नहीं उतारी है वह या तो इनसान पर वह्य के उतरने को

الَّذِیْ جَآءَ بِهٖ مُوْسٰی نُوْرًا وَّهُدًی لِّلنَّاسِ تَجْعَلُوْنَهٗ
قَرَاطِیْسَ تُبْدُوْنَهَا وَتُخْفُوْنَ كَثِیْرًا ۚ وَعُلِّمْتُمْ مَّا لَمْ
تَعْلَمُوْۤا اَنْتُمْ وَلَاۤ اٰبَآؤُكُمْ ؕ قُلِ اللّٰهُ ۙ ثُمَّ ذَرْهُمْ فِیْ خَوْضِهِمْ
یَلْعَبُوْنَ ﴿۹۱﴾ وَهٰذَا كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ مُبٰرَكٌ مُّصَدِّقُ الَّذِیْ
بَیْنَ یَدَیْهِ وَلِتُنْذِرَ اُمَّ الْقُرٰی وَمَنْ حَوْلَهَا ؕ وَالَّذِیْنَ
یُؤْمِنُوْنَ بِالْاٰخِرَةِ یُؤْمِنُوْنَ بِهٖ وَهُمْ عَلٰی صَلَاتِهِمْ

लाया था, जो तमाम इनसानों के लिए रौशनी और हिदायत थी, जिसे तुम पारा-पारा करके रखते हो, कुछ दिखाते हो और बहुत कुछ छिपा जाते हो, और जिसके ज़रीए से तुमको वह इल्म दिया गया जो न तुम्हें हासिल था और न तुम्हारे बाप-दादा को, आख़िर उसका उतारनेवाला कौन था?[60] ---- बस इतना कह दो कि अल्लाह, फिर उन्हें अपनी दलीलबाज़ियों से खेलने के लिए छोड़ दो। (92) (उसी किताब की तरह) यह एक किताब है जिसे हमने उतारा है। बड़ी ख़ैर और बरकतवाली है। उस चीज़ की तसदीक़ करती है जो इससे पहले आई थी। और इसलिए उतारी गई है कि इसके ज़रीए से तुम बस्तियों के इस मरकज़ (यानी मक्का) और इसके आस-पास में रहनेवाले लोगों को ख़बरदार करो। जो लोग आख़िरत को मानते हैं वे इस किताब पर ईमान लाते हैं और उनका हाल यह है

नामुमकिन समझता है और यह ख़ुदा की क़ुदरत का ग़लत अन्दाज़ा है, या फिर वह यह समझता है कि ख़ुदा ने इनसान को सूझ-बूझ के हथियार और इस्तेमाल करने के इख़्तियारात तो दे दिए मगर उसकी सही रहनुमाई का कोई इन्तिज़ाम न किया, बल्कि उसे दुनिया में अन्धा-धुन्ध काम करने के लिए यूँ ही छोड़ दिया और यह ख़ुदा की हिकमत का ग़लत अन्दाज़ा है।

60. यह जवाब चूँकि यहूदियों को दिया जा रहा है इसलिए मूसा *(अलैहि.)* पर तौरात के उतरने को दलील के तौर पर पेश किया गया है, क्योंकि वे ख़ुद इसके क़ायल थे। ज़ाहिर है कि उनका यह तस्लीम करना कि हज़रत मूसा पर तौरात उतरी थी, उनके इस कहने को आप से आप रद्द कर देता है कि ख़ुदा ने किसी इनसान पर कुछ नहीं उतारा। इसी के साथ कम से कम इतनी बात तो साबित हो जाती है कि इनसान पर ख़ुदा का कलाम उतर सकता है और उतर चुका है।

يُحَافِظُوْنَ ۝٩٢ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنِ افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا
اَوْ قَالَ اُوْحِيَ اِلَيَّ وَلَمْ يُوْحَ اِلَيْهِ شَيْءٌ وَّمَنْ قَالَ سَاُنْزِلُ
مِثْلَ مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ ؕ وَلَوْ تَرٰۤى اِذِ الظّٰلِمُوْنَ فِيْ غَمَرٰتِ

कि अपनी नमाज़ों की पाबन्दी करते हैं।[61] (93) और उस शख़्स से बड़ा ज़ालिम और कौन होगा जो अल्लाह पर झूठा बुहतान घड़े, या कहे कि मुझ पर वह्य आई है। हालाँकि उस पर कोई वह्य उतारी न गई हो, या जो अल्लाह की उतारी हुई चीज़ के मुक़ाबले में कहे कि मैं भी ऐसी चीज़ उतार करके दिखा दूँगा? काश, तुम ज़ालिमों को इस हालत में

---

61. पहली दलील इस बात के सुबूत में थी कि इनसान पर ख़ुदा का कलाम उतर सकता है और अमली तौर पर उतरा भी है। अब यह दूसरी दलील इस बात के सुबूत में है कि यह कलाम जो मुहम्मद *(सल्ल.)* पर उतरा है यह ख़ुदा ही का कलाम है। इस हक़ीक़त को साबित करने के लिए चार बातें गवाही के तौर पर पेश की गई हैं—

एक यह कि यह किताब बड़ी ख़ैर और बरकतवाली है, यानी इसमें इनसान की फ़लाह और कामयाबी के लिए बेहतरीन उसूल पेश किए गए हैं। सही अक़ीदों की तालीम है, भलाइयों पर उभारा गया है, बेहतरीन अख़लाक़ की नसीहत है, पाकीज़ा ज़िन्दगी बसर करने की हिदायत है और फिर यह जिहालत, ख़ुदग़र्ज़ी, तंगनज़री, ज़ुल्म, गन्दी बातों और दूसरी उन बुराइयों से, जिनका ढेर तुम लोगों ने पाक किताब के मजमूए में भर रखा है, बिलकुल पाक है।

दूसरे यह कि इससे पहले ख़ुदा की तरफ़ से जो हिदायतनामे आए थे यह किताब उनसे अलग हटकर कोई मुख़ालिफ़ हिदायत पेश नहीं करती, बल्कि उसी चीज़ की तसदीक़ और ताईद करती है जो उनमें पेश की गई थी।

तीसरे यह कि यह किताब उसी मक़सद के लिए उतरी है जो हर ज़माने में अल्लाह की तरफ़ से किताबों के उतरने का मक़सद रहा है, यानी ग़फ़लत में पड़े हुए लोगों को चौंकाना और ग़लत रास्ते पर चलने के बुरे अंजाम से ख़बरदार करना।

चौथे यह कि इस किताब की दावत ने इनसानों के गरोह में से उन लोगों को नहीं समेटा जो दुनियापरस्त और नफ़्स की ख़ाहिश के बन्दे हैं, बल्कि ऐसे लोगों को अपने आस-पास जमा किया है जिनकी नज़र दुनिया की ज़िन्दगी की तंग सरहदों से आगे तक जाती है और फिर इस किताब से मुतास्सिर होकर जो इनक़िलाब उनकी ज़िन्दगी में पैदा हुआ है उसकी सबसे ज़्यादा खुली निशानी यह है कि वे इनसानों के दर्मियान अपनी ख़ुदापरस्ती के एतिबार से नुमायाँ हैं। क्या ये ख़ुसूसियतें और ये नतीजे किसी ऐसी किताब के हो सकते हैं जिसे किसी झूठे इनसान ने घड़ लिया हो जो अपनी तसनीफ़ को ख़ुदा की तरफ़ मंसूब कर देने की इन्तिहाई मुजरिमाना जसारत (दुस्साहस) तक कर गुज़रे?

الْمَوْتِ وَالْمَلٰٓئِكَةُ بَاسِطُوْٓا اَيْدِيْهِمْ ۚ اَخْرِجُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۗ
اَلْيَوْمَ تُجْزَوْنَ عَذَابَ الْهُوْنِ بِمَا كُنْتُمْ تَقُوْلُوْنَ عَلَى
اللّٰهِ غَيْرَ الْحَقِّ وَكُنْتُمْ عَنْ اٰيٰتِهٖ تَسْتَكْبِرُوْنَ ﴿٩٣﴾ وَلَقَدْ
جِئْتُمُوْنَا فُرَادٰى كَمَا خَلَقْنٰكُمْ اَوَّلَ مَرَّةٍ وَّتَرَكْتُمْ
مَّا خَوَّلْنٰكُمْ وَرَآءَ ظُهُوْرِكُمْ ۚ وَمَا نَرٰى مَعَكُمْ شُفَعَآءَكُمُ
الَّذِيْنَ زَعَمْتُمْ اَنَّهُمْ فِيْكُمْ شُرَكٰٓؤُا ۗ لَقَدْ تَّقَطَّعَ بَيْنَكُمْ
وَضَلَّ عَنْكُمْ مَّا كُنْتُمْ تَزْعُمُوْنَ ﴿٩٤﴾ اِنَّ اللّٰهَ فَالِقُ الْحَبِّ ع ١٢
وَالنَّوٰى ۗ يُخْرِجُ الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ وَمُخْرِجُ الْمَيِّتِ مِنَ

देख सको जबकि वे मौत की तकलीफ़ में डुबकियाँ खा रहे होते हैं और फ़रिश्ते हाथ बढ़ा-बढ़ाकर कह रहे होते हैं कि "लाओ, निकालो अपनी जान, आज तुम्हें उन बातों के बदले में रुस्वाई का अज़ाब दिया जाएगा जो तुम अल्लाह पर तुहमत रखकर नाहक़ बका करते थे और उसकी आयतों के मुक़ाबले में सरकशी दिखाते थे।" (94) (और अल्लाह फ़रमाएगा) "लो अब तुम वैसे ही तने-तन्हा हमारे सामने हाज़िर हो गए जैसा हमने तुम्हें पहली बार अकेला पैदा किया था। जो कुछ हमने तुम्हें दुनिया में दिया था वह सब तुम पीछे छोड़ आए हो, और अब हम तुम्हारे साथ तुम्हारे उन सिफ़ारिशियों को भी नहीं देखते जिनके बारे में तुम समझते थे कि तुम्हारे काम बनाने में उनका भी कुछ हिस्सा है, तुम्हारे आपस के सब राब्ते टूट गए और वे सब तुम से गुम हो गए जिनका तुम दावा रखते थे।

(95) दाने और गुठली को फाड़नेवाला अल्लाह है।[62] वही ज़िन्दा को मुर्दा से

---

62. यानी ज़मीन की तहों में बीज को फाड़कर उससे पेड़ की कोंपल निकालनेवाला।

الْحَيِّ ۚ ذٰلِكُمُ اللّٰهُ فَاَنّٰى تُؤْفَكُوْنَ ﴿٩٥﴾ فَالِقُ الْاِصْبَاحِ ۚ وَ
جَعَلَ الَّيْلَ سَكَنًا وَّالشَّمْسَ وَالْقَمَرَ حُسْبَانًا ۚ ذٰلِكَ
تَقْدِيْرُ الْعَزِيْزِ الْعَلِيْمِ ﴿٩٦﴾ وَهُوَ الَّذِيْ جَعَلَ لَكُمُ النُّجُوْمَ
لِتَهْتَدُوْا بِهَا فِيْ ظُلُمٰتِ الْبَرِّ وَالْبَحْرِ ۚ قَدْ فَصَّلْنَا الْاٰيٰتِ
لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ﴿٩٧﴾ وَهُوَ الَّذِيْٓ اَنْشَاَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ
وَّاحِدَةٍ فَمُسْتَقَرٌّ وَّمُسْتَوْدَعٌ ۚ قَدْ فَصَّلْنَا الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ
يَّفْقَهُوْنَ ﴿٩٨﴾ وَهُوَ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً ۚ فَاَخْرَجْنَا

निकालता है और वही मुर्दा को ज़िन्दा से निकालता है।[63] ये सारे काम करनेवाला तो अल्लाह है, फिर तुम किधर बहके चले जा रहे हो? (96) रात के परदे को चाक करके वही सुबह निकालता है। उसी ने रात को सुकून का वक़्त बनाया है। उसी ने चाँद और सूरज के निकलने और डूबने का हिसाब मुक़र्रर किया। ये सब उसी ज़बरदस्त क़ुदरत और इल्म रखनेवाले के ठहराए हुए पैमाने हैं। (97) और वही है जिसने तुम्हारे लिए तारों को रेगिस्तान और समन्दर के अन्धियारों में रास्ता मालूम करने का ज़रीआ बनाया। देखो हमने निशानियाँ खोलकर बयान कर दी हैं उन लोगों के लिए जो इल्म रखते हैं।[64] (98) और वही है जिसने एक जान से तुम को पैदा किया[65] फिर हर एक के लिए एक ठहरने की जगह है और एक उसके सौंपे जाने की जगह। ये निशानियाँ हमने वाज़ेह कर

63. ज़िन्दा को मुर्दा से निकालने का मतलब बेजान माद्दे (निर्जीव पदार्थों) से ज़िन्दा मख़लूक़ को पैदा करना है और मुर्दा को ज़िन्दा से निकालने का मतलब जानदार जिस्मों में से बेजान माद्दों को निकालना है।

64. यानी इस हक़ीक़त की निशानियाँ कि ख़ुदा सिर्फ़ एक है। कोई दूसरा न ख़ुदाई की सिफ़तें रखता है, न ख़ुदाई के इख़्तियारों में हिस्सेदार है और न ख़ुदाई के हुक़ूक़ में से किसी हक़ का हक़दार है। मगर इन निशानियों व अलामतों से हक़ीक़त तक पहुँचना जाहिलों के बस की बात नहीं। इस दौलत से फ़ायदा सिर्फ़ वही लोग उठा सकते हैं जो इल्मी तरीक़े पर कायनात की निशानियों को देखते हैं।

65. यानी इनसानी नस्ल की शुरुआत एक जान से की।

بِهٖ نَبَاتَ كُلِّ شَيْءٍ فَاَخْرَجْنَا مِنْهُ خَضِرًا نُّخْرِجُ مِنْهُ
حَبًّا مُّتَرَاكِبًا ۚ وَمِنَ النَّخْلِ مِنْ طَلْعِهَا قِنْوَانٌ دَانِيَةٌ
وَّجَنّٰتٍ مِّنْ اَعْنَابٍ وَّالزَّيْتُوْنَ وَالرُّمَّانَ مُشْتَبِهًا
وَّغَيْرَ مُتَشَابِهٍ ۗ اُنْظُرُوْٓا اِلٰى ثَمَرِهٖٓ اِذَآ اَثْمَرَ وَيَنْعِهٖ ۗ
اِنَّ فِيْ ذٰلِكُمْ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يُّؤْمِنُوْنَ ﴿٩٩﴾ وَجَعَلُوْا لِلّٰهِ
شُرَكَآءَ الْجِنَّ وَخَلَقَهُمْ وَخَرَقُوْا لَهٗ بَنِيْنَ وَبَنٰتٍۭ

दी हैं उन लोगों के लिए जो समझ-बूझ रखते हैं।[66] (99) और वही है जिसने आसमान से पानी बरसाया, फिर उसके ज़रीए से हर क़िस्म की नबातात (वनस्पतियाँ) उगाईं, फिर उससे हरे-हरे खेत और पेड़ पैदा किए, फिर उनसे तह पर तह चढ़े हुए दाने निकाले और खजूर के गाभों से फलों के गुच्छे के गुच्छे पैदा किए जो बोझ के मारे झुके पड़ते हैं, और अंगूर, ज़ैतून और अनार के बाग़ लगाए जिनके फल एक दूसरे से मिलते-जुलते भी हैं और फिर हर एक की ख़ुसूसियतें अलग-अलग भी हैं। ये पेड़ जब फलते हैं तो इनमें फल आने और फिर उनके पकने की कैफ़ियत ज़रा ग़ौर की नज़र से देखो, इन चीज़ों में निशानियाँ हैं उन लोगों के लिए जो ईमान लाते हैं। (100) इस पर भी लोगों ने जिन्नों को अल्लाह का शरीक ठहरा दिया,[67] हालाँकि वह उनका पैदा करनेवाला है, और

66. यानी इनसानी नस्ल की पैदाइश और इसके अन्दर मर्द और औरत में फ़र्क़ और तनासुल (प्रजनन-क्रिया) के ज़रीए से इसकी बढ़ोतरी और माँ के पेट में इनसानी बच्चे का नुत्फ़ा क़रार पा जाने के बाद से ज़मीन में इसके सौंपे जाने तक इसकी ज़िन्दगी के बहुत-से तरीक़ों पर अगर नज़र डाली जाए तो इसमें अनगिनत खुली-खुली निशानियाँ आदमी के सामने आएँगी जिनसे वह उस हक़ीक़त को पहचान सकता है जो ऊपर बयान हुई हैं। मगर इन निशानियों से यह इल्म हासिल करना उन्हीं लोगों का काम है जो समझ-बूझ से काम लें। जानवरों की तरह ज़िन्दगी जीनेवाले जो सिर्फ़ अपनी ख़ाहिशों से और उन्हें पूरा करने की तदबीरों ही से मतलब रखते हैं इन निशानियों में कुछ भी नहीं देख सकते।

67. यानी अपनी अटकल और गुमान से यह ठहरा लिया कि कायनात के इन्तिज़ाम में और इनसान की क़िस्मत के बनाने और बिगाड़ने में अल्लाह के साथ दूसरी छिपी हुई हस्तियाँ भी शरीक हैं।

ع ١٢ ١٨ بِغَيْرِ عِلْمٍ ۭ سُبْحٰنَهٗ وَتَعٰلٰى عَمَّا يَصِفُوْنَ ۝ بَدِيْعُ السَّمٰوٰتِ
وَالْاَرْضِ ۭ اَنّٰى يَكُوْنُ لَهٗ وَلَدٌ وَّلَمْ تَكُنْ لَّهٗ صَاحِبَةٌ ۭ
وَخَلَقَ كُلَّ شَيْءٍ ۚ وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ۝ ذٰلِكُمُ اللّٰهُ
رَبُّكُمْ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ خَالِقُ كُلِّ شَيْءٍ فَاعْبُدُوْهُ ۚ وَهُوَ
عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ وَّكِيْلٌ ۝ لَا تُدْرِكُهُ الْاَبْصَارُ ۡ وَهُوَ يُدْرِكُ
الْاَبْصَارَ ۚ وَهُوَ اللَّطِيْفُ الْخَبِيْرُ ۝ قَدْ جَآءَكُمْ بَصَآئِرُ مِنْ
رَّبِّكُمْ ۚ فَمَنْ اَبْصَرَ فَلِنَفْسِهٖ ۚ وَمَنْ عَمِيَ فَعَلَيْهَا ۭ

बेजाने-बूझे उसके लिए बेटे और बेटियाँ बना दीं,[68] हालाँकि वह पाक और बालातर (उच्च) है उन बातों से जो ये लोग कहते हैं। (101) वह तो आसमानों और ज़मीन का ईजाद करनेवाला है। उसका कोई बेटा कैसे हो सकता है, जबकि उसका कोई जीवन साथी ही नहीं है। उसने हर चीज़ को पैदा किया है और वह हर चीज़ का इल्म रखता है। (102) यह है अल्लाह तुम्हारा रब, कोई ख़ुदा उसके सिवा नहीं है, हर चीज़ का पैदा करनेवाला, तो तुम उसी की बन्दगी करो और वह हर चीज़ का ज़िम्मेदार है। (103) निगाहें उसको नहीं पा सकतीं और वह निगाहों को पा लेता है, वह निहायत बारीक बीं (सूक्ष्मदर्शी) और बाख़बर है।

(104) देखो, तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से आँख खोल देनेवाली रौशनियाँ आ

कोई बारिश का देवता है, तो कोई पैदा करने का। कोई दौलत की देवी है तो कोई बीमारी की, और कुछ इसी तरह की बेहूदा बातें। इस तरह के बेहूदा और बेमानी अक़ीदे दुनिया की सभी मुशरिक क़ौमों में रूहों और शैतानों और राक्षसों और देवताओं और देवियों के बारे में पाए जाते रहे हैं।

68. अरब के जाहिल लोग फ़रिश्तों को ख़ुदा की बेटियाँ कहते थे। इसी तरह दुनिया की दूसरी मुशरिक क़ौमों ने भी ख़ुदा से अपनी नसूल का सिलसिला चलाया है। और फिर देवताओं और देवियों की एक पूरी नसूल अपने अटकल और गुमान से पैदा कर दी।

وَمَآ اَنَا عَلَيْكُمْ بِحَفِيْظٍ ﴿۱۰۴﴾ وَكَذٰلِكَ نُصَرِّفُ الْاٰيٰتِ وَ
لِيَقُوْلُوْا دَرَسْتَ وَلِنُبَيِّنَهٗ لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ﴿۱۰۵﴾ اِتَّبِعْ مَآ
اُوْحِيَ اِلَيْكَ مِنْ رَّبِّكَ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ وَاَعْرِضْ عَنِ

गई हैं, अब जो आँखों से काम लेगा अपना ही भला करेगा और जो अन्धा बनेगा ख़ुद नुक़सान उठाएगा, मैं तुम पर कोई पासबान नहीं हूँ।[69]

(105) इस तरह हम अपनी आयतों को बार-बार मुख़्तलिफ़ तरीक़ों से बयान करते हैं और इसलिए करते हैं कि ये लोग कहें, 'तुम किसी से पढ़ आए हो', और जो लोग इल्म रखते हैं उन पर हम हक़ीक़त को रौशन कर दें।[70] (106) ऐ नबी! उस वह्य की पैरवी

69. यह जुमला हालाँकि अल्लाह ही का कलाम है मगर नबी की तरफ़ से अदा हो रहा है। क़ुरआन मजीद में जिस तरह मुख़ातब बार-बार बदलते हैं कि कभी नबी से ख़िताब होता है, कभी ईमानवालों से, कभी किताबवालों से, कभी इनकारियों और मुशरिकों से। कभी क़ुरैश के लोगों से, कभी अरबवालों से और कभी आम इनसानों से। हालाँकि असल मक़सद तमाम इनसानों की हिदायत है। इसी तरह कहनेवाले भी बार-बार बदलते हैं, कि कहीं कहनेवाला ख़ुदा होता है और कहीं वह्य लानेवाला फ़रिश्ता, कहीं फ़रिश्तों का गरोह, कहीं नबी और कहीं ईमानवाले। हालाँकि इन सब सूरतों में कलाम वही एक ख़ुदा का कलाम होता है।

"मैं तुम पर पासबान नहीं हूँ" यानी मेरा काम बस इतना ही है कि इस रौशनी को तुम्हारे सामने पेश कर दूँ। इसके बाद आँखें खोलकर देखना या न देखना तुम्हारा अपना काम है। मेरे सुपुर्द यह ख़िदमत नहीं की गई है कि जिन्होंने ख़ुद आँखें बन्द कर रखी हैं उनकी आँखें ज़बरदस्ती खोलूँ, और जो कुछ वे नहीं देखते वह उन्हें दिखाकर ही छोड़ूँ।

70. यह वही बात है जो सूरा-2, अल-बक़रा, आयत-21 से 29 में फ़रमाई गई है कि मच्छर और मकड़ी वग़ैरा चीज़ों की मिसालें सुनकर हक़ की तलब रखनेवाले तो इस सच्चाई को पा लेते हैं जो इन मिसालों के पैराए में बयान हुई हैं। मगर जिन पर इनकार का तास्सुब मुसल्लत है वे मज़ाक़ उड़ाते हुए कहते हैं कि भला अल्लाह के कलाम में इन हक़ीर चीज़ों के बयान का क्या काम हो सकता है? इसी बात को यहाँ एक दूसरे अन्दाज़ में बयान किया गया है। कहने का मक़सद यह है कि यह कलाम लोगों के लिए आज़माइश बन गया है, जिससे खोटे और खरे इनसान अलग हो जाते हैं। एक तरह के इनसान वे हैं जो इस कलाम को सुनकर या पढ़कर इसके मक़सद और मंशा पर ग़ौर करते हैं और जो हिकमत और नसीहत की बातें इसमें कही गई हैं उनसे फ़ायदा उठाते हैं। इसके बरख़िलाफ़ एक दूसरी तरह के इनसानों का हाल यह है कि उसे सुनने और पढ़ने के बाद उनका ज़ेहन कलाम की रूह की तरफ़ मुतवज्जेह होने के बजाय

الْمُشْرِكِيْنَ ﴿١٠٦﴾ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ مَآ اَشْرَكُوْا ط وَمَا جَعَلْنٰكَ
عَلَيْهِمْ حَفِيْظًا ج وَمَآ اَنْتَ عَلَيْهِمْ بِوَكِيْلٍ ﴿١٠٧﴾ وَلَا تَسُبُّوا
الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ فَيَسُبُّوا اللّٰهَ عَدْوًا بِغَيْرِ

किए जाओ जो तुम पर तुम्हारे रब की तरफ़ से उतरी है; क्योंकि उस एक रब के सिवा कोई और ख़ुदा नहीं है। और इन मुशरिकों के पीछे न पड़ो। (107) अगर अल्लाह की मर्ज़ी होती तो (वह ख़ुद ऐसा इन्तिज़ाम कर सकता था कि) ये लोग शिर्क न करते। तुम को हमने इन पर पासबान मुक़र्रर नहीं किया है और न तुम उन पर हवालादार हो।[71] (108) और (ऐ ईमान लानेवालो) ये लोग अल्लाह के सिवा जिनको पुकारते हैं उन्हें

इस टटोल में लग जाता है कि आख़िर यह उम्मी और अनपढ़ इनसान ये बातें लाया कहाँ से है। और क्योंकि मुख़ालिफ़ाना तास्सुब पहले से उनके दिल पर क़ब्ज़ा किए हुए होता है इसलिए एक ख़ुदा की तरफ़ से उतारे हुए होने के इमकान को छोड़कर बाक़ी तमाम मुमकिन सूरतें जो सोची जा सकती हैं वे अपने ज़ेहन से घड़ते हैं और उन्हें इस तरह बयान करते हैं कि मानो उन्होंने इस बात की तहक़ीक़ करली है कि यह किताब कहाँ से आई है।

71. मतलब यह है कि तुम्हें बुलानेवाला और तबलीग़ करनेवाला बनाया गया है, कोतवाल नहीं बनाया गया। तुम्हारा काम सिर्फ़ यह है कि लोगों के सामने इस रौशनी को पेश कर दो और हक़ को ज़ाहिर करने का हक़ अदा करने में अपनी हद तक कोई कसर उठा न रखो। अब अगर कोई इस हक़ को क़बूल नहीं करता, तो न करे। तुमको न इस काम पर लगाया गया है कि लोगों को हक़परस्त (सत्यवादी) बनाकर ही रहो और न तुम्हारी ज़िम्मेदारी और जवाबदेही में यह बात शामिल है कि तुम्हारी नुबूवत के हलक़े में कोई आदमी बातिलपरस्त न रह जाए। इसलिए इस फ़िक्र में ख़ाह-म-ख़ाह अपने ज़ेहन को परेशान न करो कि अन्धों को किस तरह आँखोंवाला बनाया जाए। और जो आँखें खोलकर नहीं देखना चाहते उन्हें कैसे दिखाया जाए। अगर हक़ीक़त में अल्लाह की हिकमत का तक़ाज़ा यही होता कि दुनिया में कोई आदमी बातिलपरस्त (असत्यवादी) न रहने दिया जाए तो अल्लाह को यह काम तुमसे लेने की क्या ज़रूरत थी? क्या उसका एक ही ऐसा इशारा जिसकी पाबन्दी पर सब मजबूर होते, तमाम इनसानों को हक़परस्त न बना सकता था? मगर वहाँ तो मक़सद सिरे से यह है ही नहीं। मक़सद तो यह है कि इनसान के लिए हक़ और बातिल को चुनने की आज़ादी बाक़ी रहे। फिर हक़ की रौशनी उसके सामने पेश करके उसकी आज़माइश की जाए कि वह दोनों चीज़ों में से किसको चुनता है। इसलिए

عَلِيمٍ ۚ كَذَٰلِكَ زَيَّنَّا لِكُلِّ أُمَّةٍ عَمَلَهُمْ ثُمَّ إِلَىٰ رَبِّهِم
مَّرْجِعُهُمْ فَيُنَبِّئُهُم بِمَا كَانُوا يَعْمَلُونَ ﴿١٠٨﴾ وَأَقْسَمُوا بِاللَّهِ
جَهْدَ أَيْمَانِهِمْ لَئِن جَاءَتْهُمْ آيَةٌ لَّيُؤْمِنُنَّ بِهَا ۚ قُلْ

गालियाँ न दो, कहीं ऐसा न हो कि ये शिर्क से आगे बढ़कर जिहालत की बिना पर अल्लाह को गालियाँ देने लगें।[72] हमने तो इसी तरह हर गरोह के लिए इसके अमल को ख़ुशनुमा बना दिया है,[73] फिर उन्हें अपने रब ही की तरफ़ पलटकर आना है, उस वक़्त वह उन्हें बता देगा कि वे क्या करते रहे हैं।

(109) ये लोग कड़ी-कड़ी क़समें खा-खाकर कहते हैं कि अगर कोई निशानी[74] हमारे सामने आ जाए तो हम उस पर ईमान ले आएँगे। ऐ नबी! इनसे कहो कि "निशानियाँ

तुम्हारे लिए सही रवैया यही है कि जो रौशनी तुम्हें दिखा दी गई है उसके उजाले में सीधी राह पर ख़ुद चलते रहो और दूसरों को उसकी तरफ़ बुलाते रहो। जो लोग इस दावत को क़बूल कर लें उन्हें सीने से लगाओ और उनका साथ न छोड़ो। चाहे वे दुनिया की निगाह में कितने ही हक़ीर और मामूली हों, और जो इसे क़बूल न करें उनके पीछे न पड़ो। जिस बुरे अंजाम की तरफ़ वे ख़ुद जाना चाहते हैं और जाने पर ज़िद कर रहे हैं उसकी तरफ़ जाने के लिए उन्हें छोड़ दो।

72. यह नसीहत नबी *(सल्ल.)* की पैरवी करनेवालों को की गई है कि अपनी तबलीग़ के जोश में इतने बेक़ाबू न हो जाएँ कि मुनाज़रे (शास्त्रार्थ), बहस और तकरार से मामला बढ़ते-बढ़ते ग़ैर-मुस्लिमों के अक़ीदों पर सख़्त हमले करने और उनके पेशवाओं और उनके माबूदों (उपास्यों) को गालियाँ देने तक नौबत पहुँच जाए; क्योंकि यह चीज़ उनको हक़ से क़रीब लाने के बजाय और ज़्यादा दूर फेंक देगी।

73. यहाँ फिर उस हक़ीक़त को सामने रखना चाहिए जिसकी तरफ़ इससे पहले भी हम अपनी टिप्पणी में इशारा कर चुके हैं कि जो बातें फ़ितरत के क़ानून के तहत सामने आती हैं अल्लाह उन्हें अपना काम क़रार देता है, क्योंकि वही इन क़ानूनों को मुक़र्रर करनेवाला है और जो कुछ इन क़ानूनों के तहत सामने आता है वह उसी के हुक्म से सामने आता है। जिस बात को अल्लाह इस तरह बयान करता है कि हमने ऐसा किया है। इसी को अगर हम इनसान बयान करें तो इस तरह कहेंगे कि फ़ितरी तौर पर ऐसा ही हुआ करता है।

74. निशानी से मुराद कोई ऐसा खुला और महसूस मोजिज़ा (चमत्कार) है जिसे देखकर नबी *(सल्ल.)* की सच्चाई और आप को अल्लाह की तरफ़ से नबी बनाकर भेजा हुआ मान लेने के सिवा कोई चारा न रहे।

إِنَّمَا الْاٰيٰتُ عِنْدَ اللّٰهِ وَمَا يُشْعِرُكُمْ ۙ اَنَّهَاۤ اِذَا جَآءَتْ
لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿۱۰۹﴾ وَنُقَلِّبُ اَفْـِٕدَتَهُمْ وَاَبْصَارَهُمْ كَمَا لَمْ
يُؤْمِنُوْا بِهٖۤ اَوَّلَ مَرَّةٍ وَّنَذَرُهُمْ فِيْ طُغْيَانِهِمْ يَعْمَهُوْنَ ﴿۱۱۰﴾ ع
وَلَوْ اَنَّنَا نَزَّلْنَاۤ اِلَيْهِمُ الْمَلٰٓئِكَةَ وَكَلَّمَهُمُ الْمَوْتٰى
وَحَشَرْنَا عَلَيْهِمْ كُلَّ شَيْءٍ قُبُلًا مَّا كَانُوْا لِيُؤْمِنُوْۤا
اِلَّاۤ اَنْ يَّشَآءَ اللّٰهُ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ يَجْهَلُوْنَ ﴿۱۱۱﴾

तो अल्लाह के पास हैं।"[75] और तुम्हें कैसे समझाया जाए कि अगर निशानियाँ आ भी जाएँ तो ये ईमान लानेवाले नहीं।[76] (110) हम उसी तरह इनके दिलों और निगाहों को फेर रहे हैं जिस तरह ये पहली बार इस पर ईमान नहीं लाए थे।[77] हम इन्हें इनकी सरकशी ही में भटकने के लिए छोड़े देते हैं। (111) अगर हम फ़रिश्ते भी इन पर उतार देते और मुर्दे इनसे बातें करते और दुनिया भर की चीज़ों को हम इनकी आँखों के सामने जमा कर देते तब भी ये ईमान लानेवाले न थे, सिवाय इसके कि अल्लाह की मर्ज़ी यही हो (कि ईमान लाएँ[78]) मगर ज़्यादातर लोग नादानी की बातें करते हैं।

75. यानी निशानियों के पेश करने और बना लाने की क़ुदरत मुझे हासिल नहीं है। इनका इख़्तियार तो अल्लाह को है। चाहे दिखाए और न चाहे, न दिखाए।

76. यह बात मुसलमानों से कही जा रही है, जो बेताब हो-होकर तमन्ना करते थे और कभी-कभी ज़बान से भी इस ख़ाहिश का इज़हार कर देते थे कि कोई ऐसी निशानी ज़ाहिर हो जाए जिससे उनके गुमराह भाई सीधे रास्ते पर आ जाएँ। उनकी इसी तमन्ना और ख़ाहिश के जवाब में कहा जा रहा है कि आख़िर तुम्हें किस तरह समझाया जाए कि उन लोगों के ईमान लाने का दारोमदार किसी निशानी के ज़ाहिर होने पर नहीं है।

77. यानी इनके अन्दर वही ज़ेहनियत (मानसिकता) काम किए जा रही है जिसकी वजह से उन्होंने पहली बार मुहम्मद *(सल्ल.)* की दावत सुनकर उसे मानने से इनकार कर दिया था। उनकी सोच में अभी तक कोई तब्दीली नहीं हुई है। वही अक़्ल का फेर और नज़र की टेढ़ जो उन्हें उस वक़्त सही समझने और सही देखने से रोक रही थी आज भी उन पर उसी तरह मुसल्लत है।

78. यानी ये लोग अपने इख़्तियार और इन्तिख़ाब से तो हक़ को बातिल के मुक़ाबले में तरजीह देकर क़बूल करनेवाले हैं नहीं, अब इनके हक़परस्त बनने की सिर्फ़ एक ही सूरत बाक़ी है और

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنَا لِكُلِّ نَبِيٍّ عَدُوًّا شَيٰطِيْنَ الْاِنْسِ
وَالْجِنِّ يُوْحِيْ بَعْضُهُمْ اِلٰى بَعْضٍ زُخْرُفَ الْقَوْلِ
غُرُوْرًا ؕ وَلَوْ شَآءَ رَبُّكَ مَا فَعَلُوْهُ فَذَرْهُمْ وَمَا يَفْتَرُوْنَ ﴿۱۱۲﴾

(112) और हमने तो इसी तरह हमेशा शैतान इनसानों और शैतान जिन्नों को हर नबी का दुश्मन बनाया है जो एक-दूसरे के दिलों पर ख़ुश कर देनेवाली बातें धोखे और फ़रेब के तौर पर दिल में डालते रहे हैं।[79] अगर तुम्हारे रब ने यही चाहा कि वे ऐसा न करें तो वे कभी न करते।[80] तो तुम उन्हें उनके हाल पर छोड़ दो कि झूठ घड़ने का काम करते

वह यह कि फ़ितरी अमल से जिस तरह कायनात की तमाम बेइख़्तियार चीज़ों को हक़परस्त पैदा किया गया है उसी तरह इन्हें भी बेइख़्तियार करके फ़ितरी और पैदाइशी तौर पर हक़परस्त बना डाला जाए। मगर यह उस हिकमत के ख़िलाफ़ है जिसके तहत अल्लाह ने इनसान को पैदा किया है। इसलिए तुम्हारा यह उम्मीद करना बेकार है कि अल्लाह सीधे तौर पर अपनी उस फ़ितरी दख़ल-अन्दाज़ी से उनको ईमानवाला बनाएगा जिसकी पाबन्दी करने पर ये मजबूर हों।

79. यानी आज अगर शैतान जिन्न और इनसान एकजुट होकर तुम्हारे मुक़ाबले में एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं तो घबराने की कोई बात नहीं। यह कोई नई बात नहीं है जो तुम्हारे ही साथ पेश आ रही है। हर ज़माने में ऐसा ही होता आया है कि जब कोई पैग़म्बर दुनिया को सीधा रास्ता दिखाने के लिए उठा तो तमाम शैतानी ताक़तें उसके मिशन को नाकाम करने के लिए कमरकस कर खड़ी हो गईं।

"ख़ुश करनेवाली बातों" से मुराद वे तमाम चालें और तदबीरें और शक-शुब्हे और एतिराज़ हैं जिनसे ये लोग आम लोगों को हक़ की तरफ़ बुलानेवाले के ख़िलाफ़ और उसकी दावत के ख़िलाफ़ भड़काने और उकसाने का काम लेते हैं। फिर इन सब बातों को मजमूई हैसियत से धोखा और फ़रेब कहा गया है; क्योंकि हक़ से लड़ने के लिए जो हथियार भी हक़ के मुख़ालिफ़ लोग इस्तेमाल करते हैं वे न सिर्फ़ दूसरों के लिए बल्कि ख़ुद इनके लिए भी हक़ीक़त के एतिबार से सिर्फ़ एक धोखा होते हैं। हालाँकि देखने में वे इनको बहुत फ़ायदेमन्द और कामयाब हथियार नज़र आते हैं।

80. हमने पीछे जो तशरीहें (व्याख्याएँ) की हैं, उनके अलावा यहाँ यह हक़ीक़त भी अच्छी तरह ज़ेहन में बैठ जानी चाहिए कि क़ुरआन के मुताबिक़ अल्लाह की मंशा और उसकी रज़ा में बहुत बड़ा फ़र्क़ है, जिसको नज़रअन्दाज़ कर देने से आम तौर से सख़्त ग़लतफ़हमियाँ पैदा हो जाती हैं। किसी चीज़ का अल्लाह की मर्ज़ी और उसकी इजाज़त के तहत सामने आना लाज़िमी तौर पर यह मानी नहीं रखता कि अल्लाह उससे राज़ी भी है और उसे पसन्द भी करता है। दुनिया में कोई वाक़िआ कभी पेश नहीं आता, जब तक अल्लाह उसके होने की इजाज़त न दे और अपनी

अज़ीमुश्शान स्कीम में उसके होने की गुंजाइश न निकाले और हालात और वजहों को इस हद तक साज़गार न बना दे कि वह वाक़िआ रूनुमा हो सके। किसी चोर की चोरी, किसी क़ातिल का क़त्ल, किसी ज़ालिम और फ़सादी का ज़ुल्म और फ़साद और किसी इनकारी या मुशरिक का इनकार और शिर्क अल्लाह के चाहे बिना मुमकिन नहीं है। और इसी तरह किसी ईमानवाले और किसी परहेज़गार इनसान का ईमान और परहेज़गारी भी अल्लाह के चाहे बिना नामुमकिन है। दोनों तरह के वाक़िए बराबर तौर पर अल्लाह की मर्ज़ी के तहत रूनुमा होते हैं। मगर पहली तरह के वाक़िओं से अल्लाह राज़ी नहीं है और इसके बरख़िलाफ़ दूसरी तरह के वाक़िओं को ख़ुदा की ख़ुशनूदी और उसकी पसन्दीदगी और महबूबियत की सनद हासिल है। हालाँकि आख़िरकार किसी बड़ी भलाई ही के लिए कायनात के फ़रमाँरवा की मर्ज़ी काम कर रही है। लेकिन उस बड़ी भलाई के ज़ाहिर होने का रास्ता नूर और ज़ुलमत (प्रकाश और अन्धकार) नेकी और बुराई और तथा सुधार और फ़साद की मुख़्तलिफ़ ताक़तों के एक दूसरे के मुक़ाबले में कश-म-कश करने ही से सामने आता है। इसलिए अपनी निहायत दूरन्देशियाँ रखनेवाली मसलिहतों की बुनियाद पर वह फ़रमाँबरदारी और नाफ़रमानी, इबराहीमियत और नमरूदियत, मूसवियत और फ़िरऔनियत, आदमियत और शैतानियत दोनों को अपना-अपना काम करने का मौक़ा देता है। उसने अपनी इख़्तियार रखनेवाली मख़लूक़ (जिन्न और इनसान) को नेकी और बुराई में से किसी एक के चुनाव कर लेने की आज़ादी दे दी है। जो चाहे दुनिया के इस कारख़ाने में अपने लिए नेकी का काम पसन्द कर ले और जो चाहे बुराई का काम। दोनों तरह के काम करनेवालों को जिस हद तक ख़ुदाई मसलिहतें इजाज़त देती हैं, हालात और वजहों की हिमायत नसीब होती है। लेकिन अल्लाह की ख़ुशी और उसकी पसन्दीदगी सिर्फ़ भलाई ही के लिए काम करनेवालों को हासिल है। और अल्लाह को पसन्द यही बात है कि उसके बन्दे अपने चुनाव की आज़ादी से फ़ायदा उठाकर भलाई को अपनाएँ, न कि बुराई को।

इसके साथ यह बात और समझ लेनी चाहिए कि यह जो अल्लाह हक़ के दुश्मनों की मुख़ालिफ़ाना कार्यवाइयों का ज़िक्र करते हुए अपनी मर्ज़ी का बार-बार हवाला देता है उससे मक़सद असल में नबी *(सल्ल.)* को और आपके ज़रीए से ईमानवालों को यह समझाना है कि तुम्हारे काम की नौईयत फ़रिश्तों के काम की-सी नहीं है, जो किसी रुकावट के बग़ैर अल्लाह के अहकामों को पूरा कर रहे हैं, बल्कि तुम्हारा असल काम शरारती लोगों और बाग़ियों के मुक़ाबले में अल्लाह के पसन्द किए हुए तरीक़े को ग़ालिब करने के लिए जिद्दोजुहद करना है। अल्लाह अपनी मर्ज़ी के तहत उन लोगों को भी काम करने का मौक़ा दे रहा है, जिन्होंने अपनी कोशिशों और जिद्दोजुहद के लिए ख़ुद अल्लाह से बग़ावत के रास्ते को इख़्तियार किया है और इसी तरह वह तुमको भी जिन्होंने फ़रमाँबरदारी और बन्दगी के रास्ते को इख़्तियार किया है, काम करने का पूरा मौक़ा देता है। हालाँकि उसकी ख़ुशी और हिदायत व रहनुमाई और ताईद और मदद तुम्हारे ही साथ है; क्योंकि तुम उस पहलू में काम कर रहे हो जिसे वह पसन्द करता है। लेकिन तुम्हें यह उम्मीद नहीं रखनी चाहिए कि अल्लाह अपनी फ़ौक़ुलफ़ितरत (नैसर्गिक) दख़लअन्दाज़ी से उन लोगों को ईमान लाने पर मजबूर कर देगा जो ईमान नहीं लाना चाहते। या उन शैतान जिन्न और इनसानों को ज़बरदस्ती तुम्हारे रास्ते से हटा देगा, जिन्होंने अपने दिल व दिमाग़ को

وَلِتَصْغَىٰٓ إِلَيْهِ أَفْـِٔدَةُ ٱلَّذِينَ لَا يُؤْمِنُونَ بِٱلْـَٔاخِرَةِ
وَلِيَرْضَوْهُ وَلِيَقْتَرِفُوا۟ مَا هُم مُّقْتَرِفُونَ ﴿١١٣﴾ أَفَغَيْرَ
ٱللَّهِ أَبْتَغِى حَكَمًا وَهُوَ ٱلَّذِىٓ أَنزَلَ إِلَيْكُمُ
ٱلْكِتَـٰبَ مُفَصَّلًا ۚ وَٱلَّذِينَ ءَاتَيْنَـٰهُمُ ٱلْكِتَـٰبَ
يَعْلَمُونَ أَنَّهُۥ مُنَزَّلٌ مِّن رَّبِّكَ بِٱلْحَقِّ ۖ فَلَا تَكُونَنَّ

रहें। (113) (ये सब कुछ हम इन्हें इसी लिए करने दे रहे हैं कि) जो लोग आख़िरत पर ईमान नहीं रखते उनके दिल इस (ख़ुशनुमा धोखे) की तरफ़ झुकें और वे इससे राज़ी हो जाएँ और उन बुराइयों को करें जिनको वे करना चाहते हैं – (114) फिर जब हाल यह है तो क्या मैं अल्लाह के सिवा कोई और फ़ैसला करनेवाला तलाश करूँ, हालाँकि उसने पूरी तफ़सील के साथ तुम्हारी तरफ़ किताब उतार दी है?[81] और जिन लोगों को हमने (तुमसे पहले) किताब दी थी वे जानते हैं कि ये किताब तुम्हारे रब ही की तरफ़ से हक़

और हाथ-पावों की ताक़तों को और अपने साधनों और ज़रीओं को हक़ की राह रोकने के लिए इस्तेमाल करने का फ़ैसला कर लिया है। नहीं, अगर तुमने वाक़ई हक़ और नेकी व सच्चाई के लिए काम करने का पक्का इरादा किया है तो तुम्हें बातिलपरस्तों के मुक़ाबले में सख़्त कश-म-कश और जिद्दोजुह्द करके अपनी हक़परस्ती का सुबूत देना होगा, वरना मोजज़े (चमत्कार) के ज़ोर से बातिल को मिटाना और हक़ को ग़ालिब करना होता तो तुम्हारी ज़रूरत ही क्या थी। अल्लाह ख़ुद ऐसा इन्तिज़ाम कर सकता था कि दुनिया में कोई शैतान न होता और किसी शिर्क और नाफ़रमानी के ज़ाहिर होने का इमकान न होता।

81. इस जुमले में बात कहनेवाले नबी *(सल्ल०)* हैं और बात मुसलमानों से कही जा रही है। मतलब यह है कि जब अल्लाह ने अपनी किताब में साफ़-साफ़ ये तमाम हक़ीक़तें बयान कर दी हैं और यह भी फ़ैसला कर दिया है कि फ़ौक़ुल-फ़ितरी (पराप्राकृतिक) दख़लअन्दाज़ी के बग़ैर हक़परस्तों को फ़ितरी तरीक़ों ही से हक़ के ग़लबे की जिद्दोजुह्द करनी होगी, तो क्या अब मैं अल्लाह के सिवा कोई और ऐसा हाकिम तलाश करूँ जो अल्लाह के इस फ़ैसले पर नज़रसानी करे और ऐसा कोई मोजिज़ा भेजे जिससे ये लोग ईमान लाने पर मजबूर हो जाएँ?

مِنَ الْمُمْتَرِيْنَ ﴿١١٤﴾ وَتَمَّتْ كَلِمَتُ رَبِّكَ صِدْقًا وَّ
عَدْلًا ۗ لَا مُبَدِّلَ لِكَلِمٰتِهٖ ۚ وَهُوَ السَّمِيْعُ
الْعَلِيْمُ ﴿١١٥﴾ وَاِنْ تُطِعْ اَكْثَرَ مَنْ فِى الْاَرْضِ
يُضِلُّوْكَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۗ اِنْ يَّتَّبِعُوْنَ اِلَّا الظَّنَّ
وَاِنْ هُمْ اِلَّا يَخْرُصُوْنَ ﴿١١٦﴾ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ اَعْلَمُ
مَنْ يَّضِلُّ عَنْ سَبِيْلِهٖ ۚ وَهُوَ اَعْلَمُ بِالْمُهْتَدِيْنَ ﴿١١٧﴾

के साथ उतारी है, इसलिए तुम शक करनेवालों में शामिल न हो।[82] (115) तुम्हारे रब की बात सच्चाई और इनसाफ़ के पहलू से मुकम्मल है, कोई उसके फ़रमानों को बदलनेवाला नहीं है और वह सब कुछ सुनता और जानता है।

(116) और ऐ नबी! अगर तुम उनके ज़्यादातर लोगों के कहने पर चलो जो ज़मीन में बसते हैं तो वे तुम्हें अल्लाह के रास्ते से भटका देंगे। वे तो सिर्फ़ गुमान पर चलते और अटकल दौड़ाते हैं।[83] (117) हक़ीक़त में तुम्हारा रब ज़्यादा बेहतर जानता है कि कौन उसके रास्ते से हटा हुआ है और कौन सीधे रास्ते पर है।

82. यानी यह कोई नई बात नहीं है जो वाक़िआत को सही साबित करने में आज घड़ी गई हो। वे तमाम लोग जो आसमानी किताबों का इल्म रखते हैं और जो नबियों के मिशन को जानते हैं, इस बात की गवाही देंगे कि यह जो कुछ क़ुरआन में बयान किया जा रहा है ठीक-ठीक हक़ बात है और वह हमेशा से चली आ रही है और हमेशा तक रहनेवाली हक़ीक़त है जिसमें कभी फ़र्क़ नहीं आया है।

83. यानी ज़्यादातर लोग जो दुनिया में बसते हैं इल्म के बजाय गुमान और अटकल की पैरवी कर रहे हैं और उनके अक़ीदे, ख़यालात, फ़लसफ़े, ज़िन्दगी के उसूल और अमल के क़ानून सबके सब अटकलों पर हैं। इसके बरख़िलाफ़ अल्लाह का रास्ता, यानी दुनिया में ज़िन्दगी बसर करने का वह तरीक़ा जो अल्लाह की ख़ुशी के मुताबिक़ है, लाज़िमी तौर पर सिर्फ़ वही एक है जिसका इल्म अल्लाह ने ख़ुद दिया है, न कि वह जिसको लोगों ने अपने तौर पर अपनी अटकलों और गुमानों से घड़ लिया है। इसलिए किसी हक़ के तालिब को यह न देखना चाहिए कि दुनिया के ज़्यादातर इनसान किस रास्ते पर जा रहे हैं, बल्कि उसे पूरी मज़बूती के साथ उस

فَكُلُوْا مِمَّا ذُكِرَ اسْمُ اللّٰهِ عَلَيْهِ اِنْ كُنْتُمْ بِاٰيٰتِهٖ
مُؤْمِنِيْنَ ﴿۱۱۸﴾ وَمَا لَكُمْ اَلَّا تَاْكُلُوْا مِمَّا ذُكِرَ اسْمُ
اللّٰهِ عَلَيْهِ وَقَدْ فَصَّلَ لَكُمْ مَّا حَرَّمَ عَلَيْكُمْ اِلَّا
مَا اضْطُرِرْتُمْ اِلَيْهِ ؕ وَاِنَّ كَثِيْرًا لَّيُضِلُّوْنَ بِاَهْوَآئِهِمْ

(118) फिर अगर तुम लोग अल्लाह की आयतों पर ईमान रखते हो तो जिस जानवर पर अल्लाह का नाम लिया गया हो उसका गोश्त खाओ।[84] (119) आख़िर क्या वजह है कि तुम वह चीज़ न खाओ जिस पर अल्लाह का नाम लिया गया हो, हालाँकि जिन चीज़ों का इस्तेमाल मजबूरी की हालत के सिवा दूसरी तमाम हालतों में अल्लाह ने हराम कर दिया है उनकी तफ़सील वह तुम्हें बता चुका है।[85] ज़्यादातर लोगों का हाल यह है कि

राह पर चलना चाहिए जो अल्लाह ने बताई है, चाहे उस रास्ते पर चलने के लिए वह दुनिया में अकेला ही रह जाए।

84. उन सभी ग़लत तरीक़ों के साथ-साथ जो ज़्यादातर ज़मीनवालों ने ख़ुद अपने तौर से अटकल और गुमान से घड़ लिए और जिन्हें मज़हबी हदों और पाबन्दियों की हैसियत हासिल हो गई, एक वे पाबन्दियाँ भी हैं जो खाने-पीने की चीज़ों में बहुत-सी क़ौमों के दर्मियान पाई जाती हैं। कुछ चीज़ों को लोगों ने आप ही आप हलाल क़रार दे लिया है, हालाँकि अल्लाह की नज़र में वे हराम हैं। और कुछ चीज़ों को उन्होंने ख़ुद हराम ठहरा लिया है, हालाँकि अल्लाह ने उन्हें हलाल किया है। ख़ास तौर से सबसे ज़्यादा जाहिलाना बात जिस पर पहले भी कुछ गरोह अड़े हुए थे और आज भी दुनिया के कुछ गरोह अड़े हुए हैं, वह यह है कि अल्लाह का नाम लेकर जो जानवर ज़ब्ह किया जाए वह तो उनके नज़दीक नाजाइज़ है और अल्लाह के नाम के बग़ैर जिसे ज़ब्ह किया जाए वह बिलकुल जाइज़ है। इसी को रद्द करते हुए अल्लाह यहाँ मुसलमानों से फ़रमा रहा है कि अगर तुम हक़ीक़त में अल्लाह पर ईमान लाए हो और उसके अहकाम को मानते हो तो उन तमाम अन्धविश्वासों और तास्सुबों को छोड़ दो जो काफ़िर और मुशरिक लोगों में पाए जाते हैं। उन सब पाबन्दियों को तोड़ दो जो ख़ुदा की हिदायत से बेनियाज़ होकर लोगों ने ख़ुद लगा रखी हैं। हराम सिर्फ़ उसी चीज़ को समझो जिसे ख़ुदा ने हराम किया है और हलाल उसी को ठहराओ जिसको अल्लाह ने हलाल ठहरा दिया है।

85. देखें सूरा-16, अन-नह्ल की आयत 115। इस इशारे से एक बात यह भी मालूम हुई कि सूरा अन-नह्ल इस सूरा से पहले नाज़िल हो चुकी थी।

بِغَيْرِ عِلْمٍ ۭ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ اَعْلَمُ بِالْمُعْتَدِيْنَ ﴿١١٩﴾
وَذَرُوْا ظَاهِرَ الْاِثْمِ وَبَاطِنَهٗ ۭ اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْسِبُوْنَ
الْاِثْمَ سَيُجْزَوْنَ بِمَا كَانُوْا يَقْتَرِفُوْنَ ﴿١٢٠﴾ وَلَا تَاْكُلُوْا
مِمَّا لَمْ يُذْكَرِ اسْمُ اللّٰهِ عَلَيْهِ وَاِنَّهٗ لَفِسْقٌ ۭ وَاِنَّ
الشَّيٰطِيْنَ لَيُوْحُوْنَ اِلٰٓى اَوْلِيٰۗـــِٕهِمْ لِيُجَادِلُوْكُمْ ۚ وَاِنْ
اَطَعْتُمُوْهُمْ اِنَّكُمْ لَمُشْرِكُوْنَ ﴿١٢١﴾ ع اَوَمَنْ كَانَ مَيْتًا ع

इल्म के बग़ैर सिर्फ़ अपनी ख़ाहिशों की बुनियाद पर गुमराह कर देनेवाली बातें करते हैं, इन हद से गुज़रनेवालों को तुम्हारा रब ख़ूब जानता है। (120) तुम खुले गुनाहों से भी बचो और छिपे गुनाहों से भी, जो लोग गुनाह की कमाई करते हैं वे अपनी उस कमाई का बदला पाकर रहेंगे। (121) और जिस जानवर को अल्लाह का नाम लेकर ज़ब्ह न किया गया हो उसका गोश्त न खाओ, ऐसा करना फ़िस्क़ (नाफ़रमानी) है। शैतान अपने साथियों के दिलों में शक और एतिराज़ डालते हैं, ताकि वे तुमसे झगड़ा करें।[86] लेकिन अगर तुमने बात मान ली, तो यक़ीनन तुम मुशरिक हो।[87]

86. हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास की रिवायत है कि यहूदी आलिम अरब के जाहिल लोगों को नबी मुहम्मद *(सल्ल.)* पर एतिराज़ करने के लिए जो सवाल सिखाया करते थे उनमें से एक यह भी था कि "आख़िर यह क्या मामला है कि जिसे ख़ुदा मारे वह तो हराम हो और जिसे हम मारें वह हलाल हो जाए।" यह एक मामूली-सा नमूना है उस टेढ़ी ज़ेहनियत का जो सिर्फ़ नाम के उन किताबवालों में पाई जाती थी। वे इस तरह के सवालात घड़-घड़ कर पेश करते थे, ताकि आम लोगों के दिलों में शुब्हे डालें और उन्हें हक़ से लड़ने के लिए हथियार जुटाकर दें।

87. यानी एक तरफ़ अल्लाह की ख़ुदावन्दी का इक़रार करना और दूसरी तरफ़ अल्लाह से फिरे हुए लोगों के रास्ते पर चलना और उनके मुक़र्रर किए हुए तरीक़ों की पाबन्दी करना शिर्क है। तौहीद यह है कि ज़िन्दगी सरासर अल्लाह की इताअत में बसर हो। अल्लाह के साथ अगर दूसरों को अपने अक़ीदों में आज़दाना तौर पर हुक्म देनेवाला मान लिया जाए तो यह अक़ीदे का शिर्क है, और अगर अमली तौर पर ऐसे लोगों की इताअत की जाए जो अल्लाह की हिदायत से बेनियाज़ होकर ख़ुद हुक्म देने और रोकने के मुख़्तार बन गए हों तो यह अमली शिर्क है।

فَاَحۡيَيۡنٰهُ وَجَعَلۡنَا لَهٗ نُوۡرًا يَّمۡشِىۡ بِهٖ فِى النَّاسِ
كَمَنۡ مَّثَلُهٗ فِى الظُّلُمٰتِ لَيۡسَ بِخَارِجٍ مِّنۡهَا ؕ
كَذٰلِكَ زُيِّنَ لِلۡكٰفِرِيۡنَ مَا كَانُوۡا يَعۡمَلُوۡنَ ۝١٢٢ وَكَذٰلِكَ
جَعَلۡنَا فِىۡ كُلِّ قَرۡيَةٍ اَكٰبِرَ مُجۡرِمِيۡهَا لِيَمۡكُرُوۡا فِيۡهَا ؕ
وَمَا يَمۡكُرُوۡنَ اِلَّا بِاَنۡفُسِهِمۡ وَمَا يَشۡعُرُوۡنَ ۝١٢٣ وَاِذَا

(122) क्या वह शख़्स जो पहले मुर्दा था फिर हमने उसे ज़िन्दगी बख़्शी[88] और उसको वह रौशनी अता की जिसके उजाले में वह लोगों के दर्मियान ज़िन्दगी का रास्ता तय करता है, उस शख़्स की तरह हो सकता है जो तारीकियों में पड़ा हुआ हो और किसी तरह उनसे न निकलता हो?[89] हक़ का इनकार करनेवालों के लिए तो इसी तरह उनके आमाल ख़ुशनुमा बना दिए गए हैं,[90] (123) और इसी तरह हमने हर बस्ती में उसके बड़े-बड़े मुजरिमों को लगा दिया है कि वहाँ अपने धोखे और फ़रेब का जाल फैलाएँ। असल में वह अपने फ़रेब के जाल में आप फँसते हैं, मगर उन्हें इसकी समझ नहीं है।

88. यहाँ मौत से मुराद जिहालत और बेशऊरी की हालत है, और ज़िन्दगी से मुराद इल्म और समझ-बूझ और हक़ीक़त को पहचान लेने की हालत है। जिस आदमी को सही और ग़लत की पहचान नहीं और जिसे मालूम नहीं कि सीधा रास्ता क्या है, वह तबीआत के मुताबिक़ चाहे ज़िन्दा हो मगर हक़ीक़त के लिहाज़ से उसको इनसानियत की ज़िन्दगी हासिल नहीं है। वह ज़िन्दा हैवान तो ज़रूर है, मगर ज़िन्दा इनसान नहीं। ज़िन्दा इनसान असल में सिर्फ़ वह आदमी है जिसे हक़ और बातिल, नेकी और बदी, सही और ग़लत का शऊर हासिल है।

89. यानी तुम किस तरह यह उम्मीद कर सकते हो कि जिस इनसान को इनसानियत का शऊर नसीब हो चुका है और जो इल्म की रौशनी में टेढ़े रास्तों के दर्मियान हक़ की सीधी राह को साफ़ देख रहा है वह उन बेशऊर लोगों की तरह दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारेगा, जो नादानी और जिहालत के अंधेरों में भटकते फिर रहे हैं।

90. यानी जिन लोगों के सामने रौशनी पेश की जाए और वे उसको क़बूल करने से इनकार कर दें, जिन्हें सीधे रास्ते की तरफ़ दावत दी जाए और वे अपने टेढ़े रास्तों ही पर चलते रहने को तरजीह दें, उनके लिए अल्लाह का क़ानून यही है कि फिर उन्हें अंधेरा अच्छा मालूम होने लगता है। वे अन्धों की तरह टटोल-टटोलकर चलना और ठोकरें खा-खाकर गिरना ही पसन्द करते हैं।

جَآءَتۡهُمۡ اٰيَةٌ قَالُوۡا لَنۡ نُّؤۡمِنَ حَتّٰى نُؤۡتٰى مِثۡلَ مَآ
اُوۡتِىَ رُسُلُ اللّٰهِ ؔ ۘ اَللّٰهُ اَعۡلَمُ حَيۡثُ يَجۡعَلُ رِسَالَتَهٗ ؕ
سَيُصِيۡبُ الَّذِيۡنَ اَجۡرَمُوۡا صَغَارٌ عِنۡدَ اللّٰهِ وَعَذَابٌ
شَدِيۡدٌۢ بِمَا كَانُوۡا يَمۡكُرُوۡنَ ﴿۱۲۴﴾ فَمَنۡ يُّرِدِ اللّٰهُ اَنۡ
يَّهۡدِيَهٗ يَشۡرَحۡ صَدۡرَهٗ لِلۡاِسۡلَامِ‌ ۚ وَمَنۡ يُّرِدۡ اَنۡ
يُّضِلَّهٗ يَجۡعَلۡ صَدۡرَهٗ ضَيِّقًا حَرَجًا كَاَنَّمَا يَصَّعَّدُ

(124) जब इनके सामने कोई आयत आती है तो वे कहते हैं, "हम न मानेंगे जब तक कि वह चीज़ ख़ुद हमको न दी जाए जो अल्लाह के रसूलों को दी गई है।"[91] अल्लाह ज़्यादा बेहतर जानता है कि अपनी पैग़म्बरी का काम किस से ले और किस तरह ले। क़रीब है वह वक़्त जब ये मुजरिम अपनी मक्कारियों के बदले में अल्लाह के यहाँ रुसवाई और सख़्त अज़ाब से दो-चार होंगे।

(125) तो (यह हक़ीक़त है कि) जिसे अल्लाह हिदायत बख़्शने का इरादा करता है उसका सीना इस्लाम के लिए खोल देता है[92] और जिसे गुमराही में डालने का इरादा करता है उसके सीने को तंग कर देता है और ऐसा भींचता है कि (इस्लाम का तसव्वुर करते ही) उसे यूँ मालूम होने लगता है कि मानो उसकी रूह आसमान की तरफ़ परवाज़

उनकों झाड़ियाँ ही बाग़ और काँटे ही फूल नज़र आते हैं। उन्हें हर बुराई में मज़ा आता है, हर बेवक़ूफ़ी को वे तहक़ीक़ (खोज) समझते हैं, और हर बिगाड़ से भरे हुए तजरिबे के बाद उससे बढ़कर दूसरे बिगाड़ से भरे हुए तजरिबे के लिए वे इस उम्मीद पर तैयार हो जाते हैं कि पहले इत्तिफ़ाक़ से दहकते हुए अँगारे पर हाथ पड़ गया था अबके तो क़ीमती हीरे हाथ आएँगे।

91. यानी हम रसूलों के इस बयान पर ईमान नहीं लाएँगे कि उनके पास फ़रिश्ता आया और ख़ुदा का पैग़ाम लाया, बल्कि हम सिर्फ़ उसी वक़्त ईमान ला सकते हैं जबकि फ़रिश्ता ख़ुद हमारे पास आए और सीधे तौर से हमसे कहे कि यह अल्लाह का पैग़ाम है।

92. सीना खोल देने से मुराद इस्लाम की सच्चाई पर पूरी तरह मुत्मइन कर देना और शक और शुब्हों, तज़बज़ुब और तरद्दुद (संकोच और दुविधा) को दूर कर देना है।

فِي السَّمَآءِ ۭ كَذٰلِكَ يَجْعَلُ اللّٰهُ الرِّجْسَ عَلَى الَّذِيْنَ
لَا يُؤْمِنُوْنَ ۝١٢٥ وَهٰذَا صِرَاطُ رَبِّكَ مُسْتَقِيْمًا ۭ
قَدْ فَصَّلْنَا الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّذَّكَّرُوْنَ ۝١٢٦ لَهُمْ دَارُ
السَّلٰمِ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَهُوَ وَلِيُّهُمْ بِمَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ۝١٢٧
وَيَوْمَ يَحْشُرُهُمْ جَمِيْعًا ۚ يٰمَعْشَرَ الْجِنِّ قَدِ اسْتَكْثَرْتُمْ
مِّنَ الْاِنْسِ ۚ وَقَالَ اَوْلِيٰٓؤُهُمْ مِّنَ الْاِنْسِ رَبَّنَا
اسْتَمْتَعَ بَعْضُنَا بِبَعْضٍ وَّبَلَغْنَآ اَجَلَنَا الَّذِيْٓ

कर रही है। इस तरह अल्लाह (हक़ से फ़रार और नफ़रत की) नापाकी उन लोगों पर मुसल्लत कर देता है जो ईमान नहीं लाते; (126) हालाँकि यह रास्ता तुम्हारे रब का सीधा रास्ता है और उसके निशान उन लोगों के लिए वाज़ेह कर दिए गए हैं जो नसीहत क़बूल करते हैं। (127) उनके लिए उनके रब के पास सलामती का घर है[93] और वह उनका सरपरस्त है उस सही रवैये की वजह से जो उन्होंने इख़्तियार किया।

(128) जिस रोज़ अल्लाह उन सब लोगों को घेर कर जमा करेगा, उस रोज़ वह जिन्नों[94] से ख़िताब करके फ़रमाएगा कि "ऐ जिन्नों के गरोह, तुमने तो इनसानी बिरादरी पर ख़ूब हाथ साफ़ किया।" इनसानों में से जो उनके साथी थे वे कहेंगे कि "परवरदिगार, हम में से हर एक ने दूसरे को ख़ूब इस्तेमाल किया है,[95] और अब हम उस वक़्त पर आ

---

93. "सलामती का घर" यानी जन्नत जहाँ इनसान हर आफ़त से महफ़ूज़ और हर ख़राबी से बचाव में होगा।

94. यहाँ जिन्नों से मुराद शैतान जिन्न हैं।

95. यानी हममें से हर एक ने दूसरे से नाजाइज़ फ़ायदे उठाए हैं, हर एक दूसरे को धोखे और फ़रेब में डालकर अपनी ख़्वाहिशें पूरी करता रहा है।

اَجَّلْتَ لَنَا ؕ قَالَ النَّارُ مَثْوٰىكُمْ خٰلِدِيْنَ فِيْهَاۤ اِلَّا
مَا شَآءَ اللّٰهُ ؕ اِنَّ رَبَّكَ حَكِيْمٌ عَلِيْمٌ ﴿۱۲۸﴾ وَكَذٰلِكَ
نُوَلِّيْ بَعْضَ الظّٰلِمِيْنَ بَعْضًۢا بِمَا كَانُوْا يَكْسِبُوْنَ ﴿۱۲۹﴾ ع ۱۵
يٰمَعْشَرَ الْجِنِّ وَالْاِنْسِ اَلَمْ يَاْتِكُمْ رُسُلٌ مِّنْكُمْ
يَقُصُّوْنَ عَلَيْكُمْ اٰيٰتِيْ وَيُنْذِرُوْنَكُمْ لِقَآءَ يَوْمِكُمْ
هٰذَا ؕ قَالُوْا شَهِدْنَا عَلٰۤى اَنْفُسِنَا وَغَرَّتْهُمُ

पहुँचे हैं जो तू ने हमारे लिए मुक़र्रर कर दिया था।" अल्लाह कहेगा, "अच्छा, अब आग तुम्हारा ठिकाना है, इसमें तुम हमेशा रहोगे।" उससे बचेंगे सिर्फ़ वही लोग जिन्हें अल्लाह बचाना चाहेगा, बेशक तुम्हारा रब सूझ-बूझवाला और जाननेवाला है।[96] (129) देखो, इस तरह हम (आख़िरत में) ज़ालिमों को एक दूसरे का साथी बनाएँगे, उस कमाई की वजह से जो वे (दुनिया में एक दूसरे के साथ मिलकर) करते थे।[97] (130) (इस मौक़े पर अल्लाह उनसे यह भी पूछेगा कि) "ऐ जिन्नों और इनसानों के गरोह, क्या तुम्हारे पास ख़ुद तुम ही में से वे पैग़म्बर नहीं आए थे जो तुमको मेरी आयतें सुनाते और इस दिन के अंजाम से डराते थे?" वे कहेंगे, "हाँ, हम अपने खिलाफ़ ख़ुद गवाही देते हैं।[98] आज

---

96. यानी हालाँकि अल्लाह को इख़्तियार है कि जिसे चाहे सज़ा दे और जिसे चाहे माफ़ कर दे, मगर यह सज़ा और माफ़ी बिना किसी मुनासिब वजह के सिर्फ़ ख़ाहिश की बुनियाद पर नहीं होगी, बल्कि इल्म और हिकमत की बुनियाद पर होगी। ख़ुदा माफ़ उसी मुजरिम को करेगा जिसके बारे में वह जानता है कि वह ख़ुद अपने जुर्म का ज़िम्मेदार नहीं है और जिसके बारे में उसकी हिकमत यह फ़ैसला करेगी कि उसे सज़ा नहीं दी जानी चाहिए।

97. यानी जिस तरह वे दुनिया में गुनाह समेटने और बुराई करने में एक-दूसरे के शरीक थे उसी तरह आख़िरत की सज़ा पाने में भी वे एक-दूसरे के शरीक होंगे।

98. यानी हम इक़रार करते हैं कि आपकी तरफ़ से रसूल पर रसूल आते और हमें हक़ीक़त से ख़बरदार करते रहे, मगर यह हमारा अपना क़ुसूर था कि हमने उनकी बात न मानी।

الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا وَشَهِدُوْا عَلٰٓى اَنْفُسِهِمْ اَنَّهُمْ كَانُوْا
كٰفِرِيْنَ ۝١٣٠ ذٰلِكَ اَنْ لَّمْ يَكُنْ رَّبُّكَ مُهْلِكَ الْقُرٰى
بِظُلْمٍ وَّاَهْلُهَا غٰفِلُوْنَ ۝١٣١ وَلِكُلٍّ دَرَجٰتٌ مِّمَّا
عَمِلُوْا ۭ وَمَا رَبُّكَ بِغَافِلٍ عَمَّا يَعْمَلُوْنَ ۝١٣٢ وَرَبُّكَ
الْغَنِيُّ ذُو الرَّحْمَةِ ۭ اِنْ يَّشَاْ يُذْهِبْكُمْ وَيَسْتَخْلِفْ
مِنْۢ بَعْدِكُمْ مَّا يَشَاۗءُ كَمَآ اَنْشَاَكُمْ مِّنْ ذُرِّيَّةِ

दुनिया की ज़िन्दगी ने इन लोगों को धोखे में डाल रखा है, मगर उस वक़्त वे ख़ुद अपने ख़िलाफ़ गवाही देंगे कि वे इनकारी थे।[99] (131) (यह गवाही उनसे इसलिए ली जाएगी कि यह साबित हो जाए कि) तुम्हारा रब बस्तियों को ज़ुल्म के साथ तबाह करनेवाला न था। जबकि उनके बाशिन्दे हक़ीक़त से बेख़बर हों।[100]

(132) हर शख़्स का दर्जा उसके काम के लिहाज़ से है और तुम्हारा रब लोगों के कामों से बे ख़बर नहीं है। (133) तुम्हारा रब बे नियाज़ है और मेहरबानी उसका तरीक़ा है।[101] अगर वह चाहे तो तुम लोगों को ले जाए और तुम्हारी जगह दूसरे जिन लोगों को

---

99. यानी बेख़बर और अनजान न थे, बल्कि इनकारी थे। वे ख़ुद तस्लीम करेंगे कि हक़ हम तक पहुँचा था, मगर हमने ख़ुद उसे क़बूल करने से इनकार कर दिया था।

100. यानी अल्लाह अपने बन्दों को यह मौक़ा नहीं देना चाहता कि वह उसके मुक़ाबले में यह शिकायत कर सकें कि आपने हमें हक़ीक़त से तो आगाह किया नहीं, और न हम को सही रास्ता बताने का कोई इन्तिज़ाम फ़रमाया, मगर जब न जानने की बुनियाद पर हम ग़लत राह पर चल पड़े तो अब आप हमें पकड़ते हैं। इसी हुज्जत और शिकायत को ख़त्म कर देने के लिए अल्लाह ने पैग़म्बर भेजे और किताबें उतारीं, ताकि जिन्नों और इनसानों को साफ़-साफ़ ख़बरदार कर दिया जाए। अब अगर लोग ग़लत रास्तों पर चलते हैं और उनको सज़ा देता है तो उसका इलज़ाम ख़ुद उनपर है, न कि अल्लाह पर।

101. "तुम्हारा रब बे नियाज़ है" यानी उसकी कोई ग़रज़ तुमसे अटकी हुई नहीं है, उसका कोई फ़ायदा तुमसे जुड़ा हुआ नहीं है कि तुम्हारी नाफ़रमानी से उसका कुछ बिगड़ जाता हो, या तुम्हारी फ़रमाँबरदारी से उसको कोई फ़ायदा पहुँच जाता हो। तुम सब मिलकर सख़्त नाफ़रमान

قَوۡمٍ اٰخَرِيۡنَ ؕ﴿۱۳۳﴾ اِنَّ مَا تُوۡعَدُوۡنَ لَاٰتٍ ۙ وَّمَاۤ اَنۡتُمۡ
بِمُعۡجِزِيۡنَ ﴿۱۳۴﴾ قُلۡ يٰقَوۡمِ اعۡمَلُوۡا عَلٰى مَكَانَتِكُمۡ اِنِّىۡ

चाहे ले आए, जिस तरह उसने तुम्हें कुछ और लोगों की नस्ल से उठाया है। (134) तुमसे जिस चीज़ का वादा किया जा रहा है वह यक़ीनन आनेवाली है[102] और तुम ख़ुदा को मजबूर कर देने की ताक़त नहीं रखते। (135) ऐ नबी! कह दो कि लोगो, तुम अपनी

बन जाओ तो उसकी बादशाही में ज़र्रा बराबर कमी नहीं कर सकते। और सबके सब मिलकर उसके फ़रमाँबरदार और इबादतगुज़ार बन जाओ तो उसके सल्तनत में कोई इज़ाफ़ा नहीं कर सकते। वह न तुम्हारी सलामियों का मुहताज है और न तुम्हारी नज़्र व नियाज़ का। अपने बेशुमार ख़ज़ाने तुमपर लुटा रहा है बग़ैर इसके कि उनके बदले में अपने लिए तुमसे कुछ चाहे। "मेहरबानी उसका तरीक़ा है" यहाँ मौक़े के लिहाज़ से इस जुमले के दो मतलब हैं। एक यह कि तुम्हारा रब तुमको सीधे रास्ते पर चलने की जो नसीहत करता है और असल हक़ीक़त के ख़िलाफ़ रवैया इख़्तियार करने से जो मना करता है उसकी वजह यह नहीं है कि तुम्हारा सीधे रास्ते पर चलने से उसका कोई फ़ायदा और ग़लत रास्ते पर चलने से उसका कोई नुक़सान होता है, बल्कि इसकी वजह असल में यह है कि सीधे रास्ते पर चलने में तुम्हारा अपना फ़ायदा है और ग़लत रास्ते पर चलने में तुम्हारा अपना नुक़सान है। इसलिए यह सरासर उसकी मेहरबानी है कि वे तुम्हें उस सही रवैये की तालीम देता है जिससे तुम बुलन्द दर्जों तक तरक़्क़ी करने के क़ाबिल बन सकते हो और उस ग़लत रवैये से रोकता है जिसकी बदौलत तुम पस्त मर्तबों की तरफ़ गिरा करते हो। दूसरे यह कि तुम्हारा रब सख़्त पकड़ करनेवाला नहीं है, तुमको सज़ा देने में उसे कोई मज़ा नहीं आता है, वह तुम्हें पकड़ने और मारने पर तुला हुआ नहीं है कि ज़रा तुमसे ग़लती हो जाए और वह तुम्हारी ख़बर ले डाले। हक़ीक़त में वह अपनी तमाम मख़लूक़ पर बहुत ही मेहरबान है, इन्तिहाई दर्जे के रहम और करम के साथ ख़ुदाई कर रहा है, और यही उसका मामला इनसानों के साथ भी है। इसी लिए वह तुम्हारे क़सूर माफ़ करता चला जाता है। तुम नाफ़रमानियाँ करते हो, गुनाह करते हो, जुर्म करते हो, उसकी रोज़ी से पलकर भी उसके हुक्मों से मुँह मोड़ते हो, मगर वह बरदाश्त और माफ़ी ही से काम लिए जाता है और तुम्हें सँभलने और समझने और अपनी इस्लाह कर लेने के लिए मुहलत पर मुहलत दिए जाता है। वरना अगर वह सख़्त पकड़ करनेवाला होता तो उसके लिए कुछ मुश्किल नहीं था कि तुम्हें दुनिया से रुख़सत कर देता और तुम्हारी जगह किसी दूसरी क़ौम को उठा खड़ा करता, या सारे इनसानों को ख़त्म करके कोई और मख़लूक़ पैदा कर देता।

102. यानी क़ियामत, जिसके बाद तमाम अगले-पिछले इनसान नए सिरे से ज़िन्दा किए जाएँगे और अपने रब के सामने आख़िरी फ़ैसले के लिए पेश होंगे।

عَامِلٌ ۚ فَسَوْفَ تَعْلَمُوْنَ ۙ مَنْ تَكُوْنُ لَهٗ عَاقِبَةُ
الدَّارِ ۗ اِنَّهٗ لَا يُفْلِحُ الظّٰلِمُوْنَ ۝١٣٥ وَجَعَلُوْا لِلّٰهِ مِمَّا
ذَرَاَ مِنَ الْحَرْثِ وَالْاَنْعَامِ نَصِيْبًا فَقَالُوْا هٰذَا
لِلّٰهِ بِزَعْمِهِمْ وَهٰذَا لِشُرَكَآئِنَا ۚ فَمَا كَانَ لِشُرَكَآئِهِمْ
فَلَا يَصِلُ اِلَى اللّٰهِ ۚ وَمَا كَانَ لِلّٰهِ فَهُوَ يَصِلُ اِلٰى

जगह अमल करते रहो और मैं भी अपनी जगह अमल कर रहा हूँ[103] जल्द ही तुम्हें मालूम हो जाएगा कि अंजाम किस के हक़ में बेहतर होता है। बहरहाल यह हक़ीक़त है कि ज़ालिम कभी फ़लाह नहीं पा सकते।

(136) इन लोगों ने[104] अल्लाह के लिए ख़ुद उसी की पैदा की हुई खेतियों और मवेशियों में से एक हिस्सा मुक़र्रर किया है और अपने ख़याल से कहते हैं कि यह अल्लाह के लिए है, और यह हमारे ठहराए हुए शरीकों के लिए,[105] फिर जो हिस्सा उनके ठहराए हुए शरीकों के लिए है वह तो अल्लाह को नहीं पहुँचता। मगर जो अल्लाह के

103. यानी अगर मेरे समझाने से तुम नहीं समझते और अपने ग़लत रवैये से नहीं रुकते तो जिस रास्ते पर तुम चल रहे हो, चले जाओ, और मुझे अपनी राह पर चलने के लिए छोड़ दो, अंजाम जो कुछ होगा वह तुम्हारे सामने भी आ जाएगा और मेरे सामने भी।

104. तक़रीर का ऊपर का सिलसिला इस बात पर ख़त्म हुआ था कि अगर ये लोग नसीहत क़बूल करने के लिए तैयार नहीं हैं और अपनी जाहिलियत पर अड़े ही रहते हैं तो इनसे कह दो कि अच्छा, तुम अपने तरीक़े पर अमल करते रहो और मैं अपने तरीक़े पर अमल करूँगा, क़ियामत एक दिन ज़रूर आनी है, उस वक़्त तुम्हें मालूम हो जाएगा कि इस रवैये का क्या अंजाम होता है। बहरहाल यह ख़ूब समझ लो कि वहाँ ज़ालिमों को फ़लाह नसीब न होगी। इसके बाद अब उस जाहिलियत का मतलब बताया जाता है जिस पर वे लोग अड़े हुए थे और जिसे छोड़ने पर किसी तरह तैयार न होते थे। उन्हें बताया जा रहा है कि तुम्हारा वह "ज़ुल्म" क्या है जिस पर क़ायम रहते हुए तुम किसी फ़लाह और कामयाबी की उम्मीद नहीं कर सकते।

105. इस बात को वे ख़ुद मानते थे कि ज़मीन अल्लाह की है और खेतियाँ वही उगाता है। इसी के साथ उन जानवरों का पैदा करनेवाला भी अल्लाह ही है जिनसे वे अपनी ज़िन्दगी में ख़िदमत लेते हैं। लेकिन उनका ख़याल यह था कि उन पर अल्लाह का यह फ़ज़्ल उन देवियों और

شُرَكَآئِهِمْ ۗ سَآءَ مَا يَحْكُمُوْنَ ۝ وَكَذٰلِكَ زَيَّنَ لِكَثِيْرٍ
مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ قَتْلَ اَوْلَادِهِمْ شُرَكَآؤُهُمْ لِيُرْدُوْهُمْ

लिए है वह उनके शरीकों को पहुँच जाता है।[106] कैसे बुरे फ़ैसले करते हैं ये लोग!

(137) और इसी तरह बहुत-से मुशरिकों के लिए उनके शरीकों ने अपनी औलाद के

देवताओं और फ़रिश्तों और जिन्नों और आसमानी सितारों और गुज़रे हुए बुज़ुर्गों की रूहों की वजह से और बरकत से है जो उन पर रहमत की नज़र रखते हैं। इसलिए वे अपने खेतों की पैदावार और अपने जानवरों में से दो हिस्से निकालते थे। एक हिस्सा अल्लाह के नाम का, इस शुक्रिये में कि उसने ये खेत और ये जानवर बख़्शे। और दूसरा हिस्सा अपने क़बीले या ख़ानदान के सरपरस्त माबूदों की नज़्र व नियाज़ का, ताकि उनकी मेहरबानियाँ उनके साथ रहें। अल्लाह सबसे पहले उनके इसी ज़ुल्म पर पकड़ करता है कि ये सब मवेशी हमारे पैदा किए हुए और हमारे दिए हुए हैं, इनमें यह दूसरों की नज़्र व नियाज़ कैसी? यह नमक हरामी नहीं तो क्या है कि तुम अपने मुहसिन के एहसान को, जो उसने सरासर ख़ुद अपने फ़ज़्ल और करम से तुम पर किया है, दूसरों की दख़लअन्दाज़ी और उनके ज़रीआ और वास्ता बनने का नतीजा क़रार देते हो और शुक्रिया के हक़ में उन्हें उसके साथ शरीक करते हो। फिर इशारे के तौर पर दूसरी गिरफ़्त इस बात पर भी फ़रमाई है कि यह अल्लाह का हिस्सा जो उन्होंने मुक़र्रर किया है यह भी अपने आप ही कर लिया है, अपने लिए क़ानून बनानेवाले ख़ुद बन बैठे हैं, आप ही जो हिस्सा चाहते हैं अल्लाह के लिए मुक़र्रर कर लेते हैं और जो चाहते हैं दूसरों के लिए तय कर देते हैं। हालाँकि अपनी बख़्शिश का असल मालिक और मुख़्तार ख़ुद अल्लाह है और यह बात उसी की शरीअत के मुताबिक़ तय होनी चाहिए कि इस बख़्शिश में से कितना हिस्सा उसके शुक्रिया के लिए निकाला जाए और बाक़ी में कौन-कौन हक़दार हैं। तो हक़ीक़त में इस मनमाने तरीक़े से जो हिस्सा ये लोग अपने झूठे ख़याल में ख़ुदा के लिए निकालते हैं और फ़क़ीरों और मुहताजों पर ख़ैरात करते हैं वह भी कोई नेकी नहीं है। ख़ुदा के यहाँ उसके क़बूल होने की भी कोई वजह नहीं।

106. यह लतीफ़ तंज़ (व्यंग्य) है उनकी इस हरकत पर कि वे ख़ुदा के नाम से जो हिस्सा निकालते थे उसमें भी तरह-तरह की चालबाज़ियाँ करके कमी करते रहते थे और हर सूरत से अपने ख़ुद के घड़े हुए शरीकों का हिस्सा बढ़ाने की कोशिश करते थे, जिससे ज़ाहिर होता था कि जो दिलचस्पी उन्हें अपने उन शरीकों से है वे ख़ुदा से नहीं है। मिसाल के तौर पर, जो ग़ल्ले या फल वग़ैरा ख़ुदा के नाम पर निकाले जाते उनमें से अगर कुछ गिर जाता तो वह शरीकों के हिस्से में शामिल कर दिया जाता था, और अगर शरीकों के हिस्से में से गिरता, या ख़ुदा के हिस्से में मिल जाता तो उसे उन्हीं के हिस्से में वापस किया जाता। खेत का जो हिस्सा शरीकों की नज़्र के लिए ख़ास किया जाता था अगर उसमें से पानी उस हिस्से की तरफ़ फूट बहता जो

وَلِيَلْبِسُوا عَلَيْهِمْ دِينَهُمْ ۖ وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ مَا فَعَلُوهُ

क़त्ल को ख़ुशनुमा बना दिया है[107] ताकि उनको हलाकत में डालें[108] और उन पर उनके

ख़ुदा की नज़्र के लिए ख़ास होता था तो उसकी सारी पैदावार शरीकों के हिस्से में दाख़िल कर दी जाती थी, लेकिन अगर उसके बरख़िलाफ़ सूरत पेश आती तो ख़ुदा के हिस्से में कोई बढ़ोतरी न की जाती। अगर कभी सूखा पड़ने की वजह से नज़्र व नियाज़ का ग़ल्ला ख़ुद इस्तेमाल करने की ज़रूरत पेश आ जाती तो ख़ुदा का हिस्सा खा लेते थे मगर साझीदारों के हिस्से को हाथ लगाते हुए डरते थे कि कहीं कोई बला नाज़िल न हो जाए। अगर किसी वजह से शरीकों के हिस्से में कुछ कमी आ जाती तो वे ख़ुदा के हिस्से से पूरी की जाती थी लेकिन ख़ुदा के हिस्से में कमी होती तो शरीकों के हिस्से में से एक दाना भी इसमें न डाला जाता। इस रवैये पर कोई नुक्ताचीनी करता तो जवाब में तरह-तरह की दिलफ़रेब दलीलें दी जाती थीं। मिसाल के तौर पर, कहते थे कि ख़ुदा तो ग़नी (बेनियाज़) है, उसके हिस्से में से कुछ कम भी हो जाए तो उसे क्या परवाह हो सकती है। रहे ये शरीक, तो ये बन्दे हैं, ख़ुदा की तरह ग़नी नहीं हैं, इसलिए ज़रा-सी कमी या बेशी पर भी उनके यहाँ पकड़ हो जाती है।

इन अन्धविश्वासों की असल जड़ क्या थी, इसको समझने के लिए यह जान लेना भी ज़रूरी है कि अरब के जाहिल लोग अपने माल में से जो हिस्सा ख़ुदा के लिए निकालते थे, वह फ़क़ीरों, मुहताजों, मुसाफ़िरों और यतीमों वग़ैरा की मदद में ख़र्च किया जाता था, और जो हिस्सा शरीकों की नज़्र व नियाज़ के लिए निकालते थे वह या तो सीधे तौर पर मज़हबी तबक़ों के पेट में जाता था या आस्तानों पर चढ़ावे की सूरत में पेश किया जाता और इस तरह घूम-घुमा कर मुजाविरों (मठाधीशों) और पुजारियों तक पहुँच जाता था। इसी लिए इन ख़ुदग़र्ज़ मज़हबी पेशवाओं ने सदियों की लगातार नसीहत से उन जाहिलों के दिल में यह बात बिठाई थी कि ख़ुदा के हिस्से में कमी हो जाए तो कुछ हरज नहीं, मगर 'ख़ुदा के प्यारों' के हिस्से में कमी नहीं होनी चाहिए, बल्कि जहाँ तक हो सके कुछ बढ़ोतरी ही होती रहे तो बेहतर है।

107. यहाँ 'शरीकों' का लफ़्ज़ एक दूसरे मानी में इस्तेमाल हुआ है जो ऊपर के मानी से अलग है। ऊपर की आयत में जिन्हें शरीक कहा गया था वे उनके माबूद थे जिनकी बरकत या सिफ़ारिश या वास्ते को ये लोग नेमत के हासिल करने में मददगार समझते थे और नेमत के शुक्र के हक़ में उन्हें ख़ुदा के साथ हिस्सेदार बनाते थे। इसके बरख़िलाफ़ इस आयत में 'शरीक' से मुराद वे इनसान और शैतान हैं जिन्होंने औलाद के क़त्ल को उन लोगों की निगाह में एक जाइज़ और पसन्दीदा काम बना दिया था। उन्हें शरीक कहने की वजह यह है कि इस्लाम के नज़रिए से जिस तरह इबादत का हक़दार अकेला अल्लाह है इसी तरह बन्दों के लिए क़ानून बनाने और जाइज़ और नाजाइज़ की हदें मुक़र्रर करने का हक़दार भी सिर्फ़ अल्लाह है। इसलिए जिस तरह किसी दूसरे के आगे इबादत के कामों में से कोई काम करना उसे ख़ुदा का शरीक बनाने के बराबर है, उसी तरह किसी के ख़ुद के बनाए हुए क़ानून को हक़ समझते हुए उसकी पाबन्दी करना और उसकी मुक़र्रर की हुई हदों की इताअत को ज़रूरी मानना भी उसे ख़ुदाई में शरीक

فَذَرْهُمْ وَمَا يَفْتَرُوْنَ ﴿١٣٧﴾ وَقَالُوْا هٰذِهٖٓ اَنْعَامٌ

दीन को मुश्तबह (सन्दिग्ध) बना दें।[109] अगर अल्लाह चाहता तो ये ऐसा न करते। तो इन्हें छोड़ दो कि झूठ घड़ने के काम में लगे रहें।[110]

क़रार देने के बराबर है। ये दोनों काम बहरहाल शिर्क हैं, चाहे इनकार करनेवाला उन हस्तियों को ज़बान से इलाह और रब कहे या न कहे जिनके आगे वह नज़्र व नियाज़ पेश करता है या जिनके मुक़र्रर किए क़ानून को इताअत के लिए ज़रूरी मानता है।

औलाद के क़त्ल की तीन सूरतें अरब के लोगों में राइज थीं और क़ुरआन में तीनों की तरफ़ इशारा किया गया है—

1. लड़कियों का क़त्ल, इस ख़याल से कि कोई उनका दामाद न बने, या क़बायली लड़ाइयों में वे दुश्मन के हाथ न पड़ें, या किसी दूसरी वजह से वह उनके लिए शर्मिन्दगी की वजह न बनें।
2. बच्चों का क़त्ल, इस ख़याल से कि उनकी परवरिश का बोझ न उठाया जा सकेगा और ज़राए-मआश (आर्थिक संसाधनों) की कमी की वजह से वे नाक़ाबिले-बरदाश्त बोझ बन जाएँगे।
3. बच्चों को अपने माबूदों की ख़ुशनूदी के लिए भेंट चढ़ाना।

108. यह हलाकत का लफ़्ज़ निहायत गहरे मानी रखता है। इससे मुराद अख़लाक़ी हलाकत भी है कि जो इनसान संगदिली और सख़्ती की इस हद को पहुँच जाए कि अपनी औलाद को अपने हाथ से क़त्ल करने लगे, उसमें इनसानियत का जौहर होना तो दूर की बात है हैवानियत का जौहर तक बाक़ी नहीं रहता। और नौई और क़ौमी (जातीय और राष्ट्रीय) हलाकत भी कि औलाद के क़त्ल का लाज़िमी नतीजा नस्लों का घटना और आबादी का कम होना है, जिससे मानव-जाति को भी नुक़सान पहुँचता है और वह क़ौम भी तबाही के गढ़े में गिरती है जो अपने हामियों और अपने समाज के कारकुनों और मीरास के वारिसों को पैदा नहीं होने देती, या पैदा होते ही ख़ुद अपने हाथों उन्हें ख़त्म कर डालती है। और उससे मुराद अंजामी हलाकत भी है कि जो आदमी मासूम बच्चों पर यह ज़ुल्म करता है और जो अपनी इनसानियत को बल्कि अपनी हैवानी फ़ितरत तक को यूँ उलटी छुरी से ज़ब्ह करता है, और जो मानव-जाति के साथ और ख़ुद अपनी क़ौम के साथ यह दुश्मनी करता है, वह अपने आपको ख़ुदा के सख़्त अज़ाब का हक़दार बनाता है।

109. जाहिलियत के ज़माने के अरब अपने आपको हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* और इसमाईल *(अलैहि॰)* का पैरौ कहते और समझते थे और इस वजह से उनका ख़याल यह था कि जिस मज़हब की पैरवी कर रहे हैं वह ख़ुदा का पसन्दीदा मज़हब ही है। लेकिन जो दीन उन लोगों ने हज़रत इबराहीम और इसमाईल *(अलैहि॰)* से सीखा था उसके अन्दर बाद की सदियों में मज़हबी पेशवा, क़बीलों के सरदार, ख़ानदानों के बड़े-बूढ़े और बहुत-से लोग तरह-तरह के अक़ीदों (धारणाओं), कामों और रस्मों का इज़ाफ़ा करते चले गए, जिन्हें आनेवाली नस्लों ने असल

وَحَرْثٌ حِجْرٌ ۖ لَّا يَطْعَمُهَآ إِلَّا مَن نَّشَآءُ بِزَعْمِهِمْ
وَأَنْعَٰمٌ حُرِّمَتْ ظُهُورُهَا وَأَنْعَٰمٌ لَّا يَذْكُرُونَ

(138) कहते हैं ये जानवर और ये खेत महफ़ूज़ हैं, इन्हें सिर्फ़ वही लोग खा सकते हैं जिन्हें हम खिलाना चाहें, हालाँकि यह पाबन्दी उनकी ख़ुद की लगाई हुई है।[111] फिर कुछ जानवर हैं जिनपर सवारी और बोझ ढोने का काम हराम कर दिया गया है और कुछ

मज़हब का हिस्सा समझा और अक़ीदतमन्दी के साथ उनकी पैरवी की। चूँकि रिवायतों में, या तारीख़ में, या किसी किताब में ऐसा कोई रिकॉर्ड महफ़ूज़ नहीं था जिससे मालूम होता कि असल मज़हब क्या था और बाद में क्या चीजें किस ज़माने में किसने किस तरह बढ़ा दीं, इस वजह से अरब के लोगों के लिए उनका पूरा दीन शक व शुब्हे से भरा हुआ होकर रह गया था। न किसी चीज़ के बारे में यक़ीन के साथ यही कह सकते थे कि यह असल दीन का अंश है जो ख़ुदा की तरफ़ से आया था और न यही जानते थे कि ये बिदअतें (यानी नई घड़ी हुई बातें) और ग़लत रस्में हैं जो बाद में लोगों ने बढ़ा दीं। इसी सूरते-हाल की तर्जमानी इस जुमले में की गई है।

110. यानी अगर अल्लाह चाहता कि वे ऐसा न करें तो वे कभी न कर सकते थे, लेकिन चूँकि अल्लाह की मर्ज़ी यही थी कि जो आदमी जिस राह पर जाना चाहता है उसे जाने का मौक़ा दिया जाए। इसी लिए यह सब कुछ हुआ। इसलिए अगर ये लोग तुम्हारे समझाने से नहीं मानते और इस तरह के झूठ गढ़ने ही पर वे अड़े हुए हैं। तो जो कुछ ये करना चाहते हैं करने दो। इनके पीछे पड़ने की कुछ ज़रूरत नहीं।

111. अरब के लोगों का क़ायदा था कि कुछ जानवरों के बारे में या कुछ खेतियों की पैदावार के बारे में मन्नत मान लेते थे कि ये फ़ुलाँ आस्ताने या फ़ुलाँ हज़रत की नियाज़ के लिए ख़ास हैं। उस नियाज़ को हर एक न खा सकता था, बल्कि उसके लिए उनके यहाँ एक तफ़सीली ज़ाब्ता और क़ानून था जिसके मुताबिक़ मुख़्तलिफ़ नियाज़ों को मुख़्तलिफ़ क़िस्म के ख़ास लोग ही खा सकते थे। अल्लाह उनके इस काम को न सिर्फ़ मुशरिकाना कामों में शुमार करता है बल्कि इस पहलू पर भी ख़बरदार करता है कि यह ज़ाब्ता और क़ानून उनका ख़ुद का घड़ा हुआ है। यानी जिस ख़ुदा की रोज़ी में से वे ये मन्नतें मानते और नियाज़ें करते हैं उसने न इन मन्नतों और नियाज़ों का हुक्म दिया है और न उनके खाने के बारे में ये पाबन्दियाँ लगाई हैं। यह सब कुछ उन सरकश और बाग़ी बन्दों ने अपने इख़्तियार से ख़ुद ही घड़ लिया है।

اسْمَ اللّٰهِ عَلَيْهَا افْتِرَآءً عَلَيْهِ ؕ سَيَجْزِيْهِمْ بِمَا
كَانُوْا يَفْتَرُوْنَ ﴿١٣٨﴾ وَقَالُوْا مَا فِيْ بُطُوْنِ هٰذِهِ
الْاَنْعَامِ خَالِصَةٌ لِّذُكُوْرِنَا وَمُحَرَّمٌ عَلٰٓى اَزْوَاجِنَا ۚ
وَاِنْ يَّكُنْ مَّيْتَةً فَهُمْ فِيْهِ شُرَكَآءُ ؕ سَيَجْزِيْهِمْ
وَصْفَهُمْ ؕ اِنَّهٗ حَكِيْمٌ عَلِيْمٌ ﴿١٣٩﴾ قَدْ خَسِرَ الَّذِيْنَ

जानवर हैं जिन पर ये अल्लाह का नाम नहीं लेते।[112] और यह सब कुछ इन्होंने अल्लाह पर झूठ घड़ा है।[113] जल्दी ही अल्लाह इन्हें इनके झूठ घड़ने का बदला देगा।

(139) और कहते हैं कि जो कुछ इन जानवरों के पेट में है ये हमारे मर्दों के लिए ख़ास है और हमारी औरतों पर हराम, लेकिन अगर वह मुर्दा हो तो दोनों उसके खाने में शरीक हो सकते हैं।[114] ये बातें जो इन्होंने घड़ ली हैं इनका बदला अल्लाह इन्हें देकर रहेगा। यक़ीनन वह हिकमतवाला है और सब बातों की उसे ख़बर है।

---

112. रिवायतों से मालूम होता है कि अरब के लोगों के यहाँ कुछ ख़ास मन्नतों और नज़्रों के जानवर ऐसे होते थे जिनपर ख़ुदा का नाम लेना जाइज़ नहीं समझा जाता था। उन पर सवार होकर हज करना मना था, क्योंकि हज के लिए लब्बैक अल्लाहुम-म लब्बैक (यानी हाज़िर हूँ मैं ऐ अल्लाह मैं हाज़िर हूँ!) कहना पड़ता था। इसी तरह उनका दूध दुहते वक़्त या उन पर सवार होने की हालत में, या उनको ज़ब्ह करते हुए, या उनको खाने के वक़्त इस बात का ख़ास ख़याल रखा जाता था कि ख़ुदा का नाम ज़बान पर न आए।

113. यानी ये क़ायदे ख़ुदा के मुक़र्रर किए हुए नहीं हैं, मगर वे उनकी पाबन्दी यही समझते हुए कर रहे हैं कि उन्हें ख़ुदा ने मुक़र्रर किया है, और ऐसा समझने के लिए उनके पास ख़ुदा के किसी हुक्म की सनद नहीं है, बल्कि सिर्फ़ यह सनद है कि बाप-दादा से यूँ ही होता चला आ रहा है।

114. अरबवालों के यहाँ नज़्रों और मन्नतों के जानवरों के बारे में जो ख़ुद की घड़ी हुई शरीअत बनी हुई थी उसकी एक दफ़ा यह भी थी कि उन जानवरों के पेट से जो बच्चा पैदा हो उसका गोश्त सिर्फ़ मर्द खा सकते हैं, औरतों के लिए उसका खाना जाइज़ नहीं। लेकिन अगर वह बच्चा मुर्दा हो या मर जाए तो उसका गोश्त खाने में मर्द और औरत दोनों शरीक हो सकते हैं।

قَتَلُوْٓا اَوْلَادَهُمْ سَفَهًۢا بِغَيْرِ عِلْمٍ وَّ حَرَّمُوْا مَا
رَزَقَهُمُ اللّٰهُ افْتِرَآءً عَلَى اللّٰهِ ۭ قَدْ ضَلُّوْا وَمَا كَانُوْا
مُهْتَدِيْنَ ﴿١٤٠﴾ۧ وَهُوَ الَّذِيْٓ اَنْشَاَ جَنّٰتٍ مَّعْرُوْشٰتٍ
وَّغَيْرَ مَعْرُوْشٰتٍ وَّالنَّخْلَ وَالزَّرْعَ مُخْتَلِفًا اُكُلُهٗ
وَالزَّيْتُوْنَ وَالرُّمَّانَ مُتَشَابِهًا وَّغَيْرَ مُتَشَابِهٍ ۭ

(140) यक़ीनन घाटे में पड़ गए वे लोग जिन्होंने अपनी औलाद को जिहालत और नादानी की बुनियाद पर क़त्ल किया और अल्लाह की दी हुई रोज़ी को अल्लाह पर झूठ घड़ के हराम ठहरा लिया। यक़ीनन वे भटक गए और हरगिज़ वे सीधा रास्ता पानेवालों में से न थे।[115]

(141) वह अल्लाह ही है जिसने तरह-तरह के बाग़ और ताकिस्तान[116] और नख़लिस्तान पैदा किए, खेतियाँ उगाईं जिनसे तरह-तरह के खाने की चीज़ें हासिल होती हैं, ज़ैतून और अनार के पेड़ पैदा किए जिनके फल सूरत में मिलते-जुलते और मज़े में

115. यानी हालाँकि वे लोग जिन्होंने ये रस्म और रिवाज घड़े थे तुम्हारे बाप-दादा थे, तुम्हारे मज़हबी बुज़ुर्ग थे, तुम्हारे पेशवा और सरदार थे, लेकिन हक़ीक़त बहरहाल हक़ीक़त है, उनके पैदा किए हुए ग़लत तरीक़े सिर्फ़ इसलिए सही नहीं हो सकते कि वे तुम्हारे पूर्वज और बुज़ुर्ग थे। जिन ज़ालिमों ने औलाद के क़त्ल जैसे वहशियाना काम को रस्म बनाया हो, जिन्होंने ख़ुदा की दी हुई रोज़ी को ख़ाह-म-ख़ाह ख़ुदा के बन्दों पर हराम किया हो, जिन्होंने दीन में अपनी तरफ़ से नई-नई बातें शामिल करके ख़ुदा से जोड़ी हों, वे आख़िर कामयाब और सीधे रास्ते पर कैसे हो सकते हैं? चाहे वे तुम्हारे पूर्वज और बुज़ुर्ग ही क्यों न हों, बहरहाल थे वे गुमराह, और अपनी इस गुमराही का बुरा अंजाम भी वे देखकर रहेंगे।

116. असल अरबी में ''जन्नातिंमारूशातिंव व ग़ैर मारूशातिन'' के लफ़्ज़ इस्तेमाल किए गए हैं, जिनसे मुराद दो तरह के बाग़ हैं, एक वे जिनकी बेलें टट्टियों पर चढ़ाई जाती हैं। दूसरे वे जिनके पेड़ ख़ुद अपने तनों पर खड़े रहते हैं। हमारी ज़बान में बाग़ का लफ़्ज़ सिर्फ़ दूसरी तरह के बाग़ों के लिए इस्तेमाल होता है। इसलिए हमने अरबी जुमले ''जन्नातिन ग़ैर मारूशातिन'' का तर्जमा 'बाग़' किया है और ''जन्नातिंमारूशातिन'' के लिए 'ताकिस्तान' (अंगूरी बाग़) का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है।

كُلُوْا مِنْ ثَمَرِهٖٓ اِذَآ اَثْمَرَ وَاٰتُوْا حَقَّهٗ يَوْمَ حَصَادِهٖ ۖ
وَلَا تُسْرِفُوْا ۭ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ ۝١٤١ وَمِنَ
الْاَنْعَامِ حَمُوْلَةً وَّفَرْشًا ۭ كُلُوْا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ
وَلَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ۭ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۝١٤٢
ثَمٰنِيَةَ اَزْوَاجٍ ۚ مِنَ الضَّاْنِ اثْنَيْنِ وَمِنَ الْمَعْزِ
اثْنَيْنِ ۭ قُلْ ءٰۗالذَّكَرَيْنِ حَرَّمَ اَمِ الْاُنْثَيَيْنِ اَمَّا

मुख़्तलिफ़ होते हैं। खाओ इनकी पैदावार जबकि ये फलें, और अल्लाह का हक़ अदा करो जब उनकी फ़सल काटो, और हद से न गुज़रो कि अल्लाह हद से गुज़रनेवालों को पसन्द नहीं करता। (142) फिर वही है जिसने मवेशियों में से वे जानवर भी पैदा किए जिनसे सवारी और बोझ ढोने का काम लिया जाता है और वे भी जो खाने और बिछाने के काम आते हैं।[117] खाओ उन चीज़ों में से, जो अल्लाह ने तुम्हें दी हैं। और शैतान की पैरवी न करो कि वह तुम्हारा खुला दुश्मन है।[118] (143) ये आठ नर और मादा हैं, दो भेड़ की

117. मूल अरबी में लफ़्ज़ 'फ़र्श' इस्तेमाल हुआ है। जानवरों को फ़र्श कहना या तो इस रिआयत से है कि वे छोटे क़द के हैं और ज़मीन से लगे हुए चलते हैं या इस रिआयत से कि वे ज़ब्ह के लिए ज़मीन पर लिटाए जाते हैं, या इस रिआयत से कि उनकी खालों और उनके बालों से फ़र्श बनाए जाते हैं।

118. ऊपर से जो बात चली आ रही है उसको देखने से साफ़ मालूम होता है कि यहाँ अल्लाह तीन बातें ज़ेहन में बिठाना चाहता है। एक यह कि ये बाग़ और खेत और ये जानवर जो तुमको हासिल हैं, ये सब अल्लाह के बख़्शे हुए हैं, किसी दूसरे का इस बख़्शिश में कोई हिस्सा नहीं है, इसलिए बख़्शिश के शुक्रिये में भी किसी का कोई हिस्सा नहीं हो सकता। दूसरे यह कि जब ये चीज़ें अल्लाह की बख़्शिश हैं तो इनके इस्तेमाल में अल्लाह ही के क़ानून की पैरवी होनी चाहिए। किसी दूसरे को हक़ नहीं पहुँचता कि उनके इस्तेमाल पर अपनी तरफ़ से हदें मुक़र्रर कर दे। अल्लाह के सिवा किसी और की मुक़र्रर की हुई रस्मों की पाबन्दी करना और अल्लाह के सिवा किसी और के आगे नेमत के शुक्र की नज़्र पेश करना ही हद से गुज़रना है और यही शैतान की पैरवी है। तीसरे यह कि ये सब चीज़ें अल्लाह ने इनसान के खाने-पीने और इस्तेमाल करने ही के लिए पैदा की हैं, इसलिए पैदा नहीं कीं कि इन्हें ख़ाह-म-ख़ाह हराम कर लिया जाए। अपने अन्धविश्वासों और अटकलों की बुनियाद पर जो पाबन्दियाँ लोगों ने ख़ुदा की रोज़ी और उसकी बख़्शी हुई चीज़ों के इस्तेमाल पर लगा ली हैं वे सब अल्लाह की मंशा के ख़िलाफ़ हैं।

اشْتَمَلَتْ عَلَيْهِ أَرْحَامُ الْأُنْثَيَيْنِ ۖ نَبِّئُونِي بِعِلْمٍ
إِنْ كُنْتُمْ صَادِقِينَ ﴿١٤٣﴾ وَمِنَ الْإِبِلِ اثْنَيْنِ وَمِنَ
الْبَقَرِ اثْنَيْنِ ۗ قُلْ آلذَّكَرَيْنِ حَرَّمَ أَمِ الْأُنْثَيَيْنِ
أَمَّا اشْتَمَلَتْ عَلَيْهِ أَرْحَامُ الْأُنْثَيَيْنِ ۖ أَمْ كُنْتُمْ
شُهَدَاءَ إِذْ وَصَّاكُمُ اللَّهُ بِهَٰذَا ۚ فَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّنِ

क़िस्म से और दो बकरी की क़िस्म से। ऐ नबी! इनसे पूछो कि अल्लाह ने उनके नर हराम किए हैं या मादा, या वे बच्चे जो भेड़ों और बकरियों के पेट में हों? ठीक-ठीक इल्म के साथ मुझे बताओ, अगर तुम सच्चे हो[119] (144) और इसी तरह दो ऊँट की क़िस्म से हैं और दो गाय की क़िस्म से। पूछो : इनके नर अल्लाह ने हराम किए हैं या मादा, या वे बच्चे जो ऊँटनी और गाय के पेट में हों?[120] क्या तुम उस वक़्त मौजूद थे जब अल्लाह ने उनके हराम होने का हुक्म तुम्हें दिया था? फिर उस शख़्स से बढ़कर

119. यानी अटकल और गुमान या बाप-दादा की रिवायतों को न पेश करो; बल्कि इल्म पेश करो, अगर वह तुम्हारे पास हो।

120. यह सवाल इस तफ़सील के साथ उनके सामने इसलिए पेश किया गया है कि उन पर ख़ुद ये बात वाज़ेह हो जाए कि उनके अन्धविश्वास किसी दलील और इल्म की बुनियाद पर नहीं हैं। यह बात कि एक ही जानवर का नर हलाल हो और मादा हराम, या मादा हलाल हो और नर हराम, या जानवर ख़ुद हलाल हो मगर उसका बच्चा हराम, यह खुले तौर पर ऐसी ग़लत बात है कि सही अक़्ल इसे मानने से इनकार करती है और कोई अक़्लवाला इनसान यह तसव्वुर नहीं कर सकता कि ख़ुदा ने ऐसी बेहूदा बातों का हुक्म दिया होगा। फिर जिस तरीक़े से क़ुरआन ने अरबवालों को यह बात समझाने की कोशिश की है कि उनके अन्धविश्वास की बुनियाद न तो अक़्ल पर है और न इल्म पर बिलकुल उसी तरीक़े पर दुनिया की उन दूसरी क़ौमों को भी उनके अन्धविश्वासों की बेहूदा और ग़लत बातों पर ख़बरदार किया जा सकता है जिनके अन्दर खाने-पीने की चीज़ों को हराम करने या हलाल करने की ऐसी पाबन्दियाँ और छूत-छात के ऐसे बन्धन पाए जाते हैं जिनकी ताईद न अक़्ल करती है और न इल्म।

افْتَرٰى عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا لِّيُضِلَّ النَّاسَ بِغَيْرِ عِلْمٍ ؕ اِنَّ
اللّٰهَ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ۝ ع قُلْ لَّاۤ اَجِدُ فِىْ
مَاۤ اُوْحِىَ اِلَىَّ مُحَرَّمًا عَلٰى طَاعِمٍ يَّطْعَمُهٗۤ اِلَّاۤ اَنْ
يَّكُوْنَ مَيْتَةً اَوْ دَمًا مَّسْفُوْحًا اَوْ لَحْمَ خِنْزِيْرٍ فَاِنَّهٗ
رِجْسٌ اَوْ فِسْقًا اُهِلَّ لِغَيْرِ اللّٰهِ بِهٖ ۚ فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ

ज़ालिम और कौन होगा जो अल्लाह से जोड़कर झूठी बात कहे, ताकि इल्म के बग़ैर लोगों की ग़लत रहनुमाई करे। यक़ीनन अल्लाह ऐसे ज़ालिमों को सीधा रास्ता नहीं दिखाता।

(145) ऐ नबी! इनसे कहो कि जो वह्य मेरे पास आई है उसमें तो मैं कोई चीज़ ऐसी नहीं पाता जो किसी खानेवाले पर हराम हो, सिवाय इसके कि वह मुर्दार हो, या बहाया हुआ ख़ून हो, या सूअर का गोश्त हो कि वह नापाक है। या फ़िस्क़ (नाफ़रमानी) हो कि अल्लाह के सिवा किसी और के नाम पर ज़ब्ह किया गया हो।[121] फिर जो शख़्स

121. यह मज़मून सूरा-2, अल-बक़रा की आयत-173 और सूरा-5, अल-माइदा की आयत-3 में आ चुका है, और आगे सूरा-16, अन-नह्ल की आयत-115 में आनेवाला है।

सूरा-2, अल-बक़रा की आयत और इस आयत में बज़ाहिर इतना इख़्तिलाफ़ पाया जाता है कि वहाँ सिर्फ़ 'ख़ून' कहा गया है और यहाँ ख़ून के साथ 'मसफ़ूह' की क़ैद लगाई गई है यानी ऐसा ख़ून जो किसी जानवर को ज़ख़्मी करके या ज़ब्ह करके निकाला गया हो। मगर असल में यह इख़्तिलाफ़ नहीं, बल्कि उस हुक्म की तशरीह (व्याख्या) है। इसी तरह सूरा-5 अल-माइदा की आयत में इन चार चीज़ों के अलावा कुछ और चीज़ों को हराम किए जाने का भी ज़िक्र मिलता है यानी वे जानवर जो गला घुटकर या चोट खाकर या बुलन्दी से गिरकर या टक्कर खाकर मरा हो या जिसे किसी दरिन्दे ने फाड़ा हो। लेकिन हक़ीक़त में यह भी इख़्तिलाफ़ नहीं है, बल्कि एक तशरीह (व्याख्या) है जिससे मालूम होता है कि जो जानवर इस तौर पर हलाक हुए हों वे भी मुर्दार कहलाएँगे।

इस्लाम के फ़ुक़हा (इस्लामी धर्मशास्त्रियों) में से एक गरोह इस बात का क़ायल है कि हैवानी ग़िज़ाओं में से यही चार चीज़ें हराम हैं और इनके सिवा हर चीज़ का खाना जाइज़ है। यही मसलक हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि॰)* और हज़रत आइशा *(रज़ि॰)* का था। लेकिन बहुत-सी हदीसों से मालूम होता है कि नबी *(सल्ल॰)* ने कुछ चीज़ों के खाने से या तो मना किया

بَاغٍ وَّلَا عَادٍ فَإِنَّ رَبَّكَ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ﴿١٤٦﴾ وَعَلَى الَّذِينَ
هَادُوا حَرَّمْنَا كُلَّ ذِي ظُفُرٍ ۚ وَمِنَ الْبَقَرِ وَالْغَنَمِ

मजबूरी की हालत में (कोई चीज़ इनमें से खा ले) बग़ैर इसके कि वह नाफ़रमानी का इरादा रखता हो और बग़ैर इसके कि वह ज़रूरत की हद से आगे बढ़े। तो यक़ीनन तुम्हारा रब दरगुज़र और माफ़ी से काम लेनेवाला और रहम करनेवाला है। (146) और जिन लोगों ने यहूदियत इख़्तियार की इन पर हमने सब नाख़ुनवाले जानवर हराम कर दिए

है या उन पर नापसन्दीदगी का इज़हार किया है। जैसे, पालतू गधे, कचुलियों (नुकीले दाँत) वाले दरिन्दे और पंजोंवाले परिन्दे। इस वजह से ज़्यादातर फ़ुक़हा (धर्मशास्त्री) इन चार चीज़ों को ही हराम किए जाने तक महदूद नहीं मानते, बल्कि दूसरी चीज़ें भी इसमें शामिल कर देते हैं। मगर इसके बाद फिर बहुत-सी चीज़ों को हलाल और हराम होने में फ़ुक़हा के दर्मियान इख़तिलाफ़ हुआ है। मिसाल के तौर पर पालतू गधे को इमाम अबू-हनीफ़ा *(रह.)*, इमाम मालिक *(रह.)* और इमाम शाफ़ई *(रह.)* हराम क़रार देते हैं। लेकिन कुछ दूसरे फ़ुक़हा कहते हैं कि वह हराम नहीं है, बल्कि किसी वजह से नबी *(सल्ल.)* ने एक मौक़े पर उसको मना कर दिया था। दरिन्दे जानवरों और शिकारी परिन्दों और मुर्दार खानेवाले जानवरों को हनफ़ी मसलक के उलमा बिलकुल हराम क़रार देते हैं। मगर इमाम मालिक और औज़ाई के नज़दीक शिकारी परिन्दे हलाल हैं। लैस के नज़दीक बिल्ली हलाल है। इमाम शाफ़ई के नज़दीक सिर्फ़ वे दरिन्दे हराम हैं जो इनसान पर हमला करते हैं, जैसे शेर, भेड़िया, चीता वग़ैरा। इकरिमा के नज़दीक कौआ और बिज्जू दोनों हलाल हैं। इसी तरह हनफ़ी मसलक के उलमा ज़मीन के अन्दर रहनेवाले तमाम कीड़े-मकौड़ों को हराम क़रार देते हैं, मगर इब्ने-अबी-लैला, इमाम मालिक और औज़ाई के नज़दीक साँप हलाल है।

इन सभी अलग-अलग बातों और उनकी दलीलों पर ग़ौर करने से यह बात साफ़ मालूम होती है कि अस्ल में अल्लाह की शरीअत में बिलकुल हराम चीज़ें यही चार हैं, जिनका ज़िक्र क़ुरआन में किया गया है। उनके सिवा दूसरी हैवानी ग़िज़ाओं में मुख़्तलिफ़ दर्जों की कराहत (नापसन्दीदगी) है। जिन चीज़ों का नापसन्द होना सही रिवायतों के मुताबिक़ नबी *(सल्ल.)* से साबित है वे हराम होने के दर्जे से ज़्यादा क़रीब हैं। और जिन चीज़ों में फ़ुक़हा के दर्मियान इख़्तिलाफ़ हुआ है उनके नापसन्द होने में शक है। रही फ़ितरी नापसन्दीदगी जिसकी वजह से कुछ लोग कुछ चीज़ों को खाना पसन्द नहीं करते, गरोही नापसन्दीदगी जिसकी वजह से इनसानों के कुछ गरोह कुछ चीज़ों को नापसन्द करते हैं, या क़ौमी नापसन्दीदगी जिसकी वजह से कुछ क़ौमें कुछ चीज़ों से नफ़रत करती हैं, तो अल्लाह की शरीअत किसी को मजबूर नहीं करती कि वह ख़ाह-म-ख़ाह हर उस चीज़ को ज़रूर ही खा जाए, जो हराम नहीं की गई है और इसी तरह शरीअत किसी को यह हक़ भी नहीं देती कि वह अपनी नापसन्दीदगी या नफ़रत को क़ानून क़रार दे और उन लोगों पर इलज़ाम लगाए जो ऐसी ग़िज़ाएँ इस्तेमाल करते हैं जिन्हें वे नापसन्द करता है।

حَرَّمْنَا عَلَيْهِمْ شُحُومَهُمَآ اِلَّا مَا حَمَلَتْ ظُهُورُهُمَآ
اَوِ الْحَوَايَآ اَوْ مَا اخْتَلَطَ بِعَظْمٍ ۭ ذٰلِكَ جَزَيْنٰهُمْ بِبَغْيِهِمْ ۡ ۖ
وَاِنَّا لَصٰدِقُوْنَ ۝۱۴۶ فَاِنْ كَذَّبُوْكَ فَقُلْ رَّبُّكُمْ ذُوْ

थे, और गाय और बकरी की चरबी भी, सिवाय उसके जो उनकी पीठ या उनकी आँतों से लगी हो या हड्डी से लगी रह जाए। यह हमने उनकी सरकशी की सज़ा उन्हें[122] दी थी और ये जो कुछ हम कह रहे हैं, बिलकुल सच कह रहे हैं। (147) अब अगर वे तुम्हें

122. यह मज़मून क़ुरआन मजीद में तीन जगहों पर बयान हुआ है। सूरा-3, आले-इमरान की आयत-93 में फ़रमाया गया, "खाने की ये सारी चीज़ें (जो मुहम्मद सल्ल॰ की शरीअत में हलाल हैं) बनी-इसराईल के लिए भी हलाल थीं, अलबत्ता कुछ चीज़ें ऐसी थीं जिन्हें तौरात के उतारे जाने से पहले इसराईल ने ख़ुद अपने ऊपर हराम कर लिया था। इनसे कहो कि लाओ तौरात और पेश करो उसकी कोई इबारत अगर तुम (अपने एतिराज़ में) सच्चे हो।" फिर सूरा-4, अन-निसा की आयत-160 में फ़रमाया कि बनी-इसराईल के जुर्मों की बुनियादों पर "हमने बहुत-सी वे पाक चीज़ें उन पर हराम कर दीं जो पहले उनके लिए हलाल थीं।" और यहाँ कहा गया है कि उनकी सरकशियों के बदले में हमने उन पर तमाम नाख़ुनवाले जानवर हराम किए और बकरी और गाय की चरबी भी उनके लिए हराम ठहरा दी। इन तीनों आयतों को जमा करने से मालूम होता है कि मुहम्मद *(सल्ल॰)* की शरीअत और यहूदी फ़िक़्ह के दर्मियान हैवानी ग़िज़ाओं को हलाल और हराम किए जाने के मामले में जो फ़र्क़ पाया जाता है उनकी दो वजहें हैं–

एक यह कि तौरात के उतरने से सदियों पहले हज़रत याक़ूब (इसराईल) ने कुछ चीज़ों का इस्तेमाल छोड़ दिया था और उनके बाद उनकी औलाद भी उन चीज़ों को छोड़ बैठी थी, यहाँ तक कि यहूदी फ़ुक़हा ने इनको बाक़ायदा हराम समझ लिया और उनके हराम होने की बात तौरात में लिख ली। इन चीज़ों में ऊँट और ख़रगोश और शापान शामिल हैं। आज बाइबल में तौरात के जो हिस्से हमको मिलते हैं उनमें इन तीनों चीज़ों को हराम होने का ज़िक्र है। (देखें लैव्यव्यवसथा 11:4-6, व्यववस्थविक्रण 14:7) लेकिन क़ुरआन मजीद में यहूदियों को जो चैलेंज दिया गया था कि लाओ तौरात और दिखाओ ये चीज़ें कहाँ हराम लिखी हैं, इससे मालूम हुआ कि तौरात में इनका इज़ाफ़ा उसके बाद किया गया है, क्योंकि अगर उस वक़्त तौरात में ये अहकाम मौजूद होते तो बनी-इसराईल फ़ौरन लाकर पेश कर देते।

दूसरा फ़र्क़ इस वजह से है कि अल्लाह की उतारी हुई शरीअत से जब यहूदियों ने बग़ावत की और आप अपनी शरीअत बनानेवाले बन बैठे तो उन्होंने बहुत-सी पाक चीज़ों को अपनी बाल

رَحْمَةٍ وَّاسِعَةٍ ۚ وَلَا يُرَدُّ بَأْسُهٗ عَنِ الْقَوْمِ
الْمُجْرِمِيْنَ ۝ سَيَقُوْلُ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْا لَوْ شَآءَ
اللّٰهُ مَآ اَشْرَكْنَا وَلَآ اٰبَآؤُنَا وَلَا حَرَّمْنَا مِنْ شَيْءٍ ؕ

झुठलाएँ तो उनसे कह दो कि तुम्हारे रब की रहमत का दामन फैला हुआ है और मुजरिमों से उसके अज़ाब को फेरा नहीं जा सकता।[123]

(148) ये मुशरिक लोग (तुम्हारी इन बातों के जवाब में) ज़रूर कहेंगे कि "अगर अल्लाह चाहता तो न हम शिर्क करते और न हमारे बाप-दादा, और न हम किसी चीज़

की खाल निकालनेवाली आदत से ख़ुद हराम कर लिया और अल्लाह ने सज़ा के तौर पर उन्हें इस ग़लतफ़हमी में पड़े रहने दिया। इन चीज़ों में एक तो नाख़ुनवाले जानवर शामिल हैं, यानी शतुरमुर्ग़, क़ाज़, बतख़ वग़ैरा। दूसरे गाय और बकरी की चरबी। बाइबल में इन दोनों तरह की हराम की गई चीज़ों को तौरात के हुक्मों में दाख़िल कर दिया गया है। (देखें लैव्यव्यवस्था 3:17; व्यवस्थाविवरण 7:23-25) लेकिन सूरा-4, अन-निसा से मालूम होता है कि ये चीज़ें तौरात में हराम नहीं थीं, बल्कि ईसा *(अलैहि.)* के बाद हराम हुई हैं और इतिहास भी गवाही देता है कि मौजूदा यहूदी शरीअत दूसरी सदी ईसवी के आख़िर में रब्बी यहूदा के हाथों मुकम्मल हुई है। रहा यह सवाल कि फिर इन चीज़ों के बारे में यहाँ और सूरा-4, अन-निसा में अल्लाह ने 'हर्रमना' (हमने हराम किया) का लफ़्ज़ क्यों इस्तेमाल किया तो इसका जवाब यह है कि अल्लाह के हराम करने की सिर्फ़ यही एक सूरत नहीं है कि वह किसी पैग़म्बर और किताब के ज़रीए से किसी चीज़ को हराम करे, बल्कि इसकी एक सूरत यह भी है कि वे अपने बाग़ी बन्दों पर बनावटी शरीअत बनानेवालों और जाली क़ानून गढ़ लेनेवालों को मुसल्लत कर दे और वे उन पर पाक चीज़ों को हराम कर दें। पहली क़िस्म का हराम करना ख़ुदा की तरफ़ से रहमत के तौर पर होता है और यह दूसरी क़िस्म का हराम करना उसकी फिटकार और सज़ा के तौर पर हुआ करता है।

123. यानी अगर तुम अब भी अपनी नाफ़रमानी की रविश से बाज़ आ जाओ और बन्दगी के सही रवैये की तरफ़ पलट आओ तो अपने रब की रहमत के दामन को अपने लिए कुशादा पाओगे। लेकिन अगर अपनी इसी मुजरिमाना और बाग़ियाना रविश पर अड़े रहोगे तो ख़ूब जान लो कि उसके ग़ज़ब से भी फिर कोई बचानेवाला नहीं है।

كَذٰلِكَ كَذَّبَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ حَتّٰى ذَاقُوْا
بَأْسَنَا ۗ قُلْ هَلْ عِنْدَكُمْ مِّنْ عِلْمٍ فَتُخْرِجُوْهُ لَنَا ۗ
اِنْ تَتَّبِعُوْنَ اِلَّا الظَّنَّ وَاِنْ اَنْتُمْ اِلَّا تَخْرُصُوْنَ ۝
قُلْ فَلِلّٰهِ الْحُجَّةُ الْبَالِغَةُ ۚ فَلَوْ شَآءَ لَهَدٰىكُمْ
اَجْمَعِيْنَ ۝ قُلْ هَلُمَّ شُهَدَآءَكُمُ الَّذِيْنَ يَشْهَدُوْنَ
اَنَّ اللّٰهَ حَرَّمَ هٰذَا ۚ فَاِنْ شَهِدُوْا فَلَا تَشْهَدْ مَعَهُمْ ۚ

को हराम ठहराते।"[124] ऐसी ही बातें बना-बनाकर इनसे पहले के लोगों ने भी हक़ को झुठलाया था, यहाँ तक कि आख़िरकार हमारे अज़ाब का मज़ा उन्होंने चख लिया। इनसे कहो, "क्या तुम्हारे पास कोई इल्म है जिसे हमारे सामने पेश कर सको? तुम तो सिर्फ़ गुमान पर चल रहे हो और निरी अटकलें लगाते हो।" (149) फिर कहो (तुम्हारी इस हुज्जत के मुक़ाबले में) "हक़ीक़त तक पहुँचनेवाली हुज्जत (तर्क) तो अल्लाह के पास है, बेशक अगर अल्लाह चाहता तो तुम सबको सीधे रास्ते पर चला देता।"[125]

(150) इनसे कहो कि "लाओ अपने वे गवाह जो इस बात की गवाही दें कि

124. यानी वे अपने जुर्म और अपनी ग़लतकारी के लिए वही पुराना उज़्र पेश करेंगे जो हमेशा से मुजरिम और ग़लतकार लोग पेश करते रहे हैं। वे कहेंगे कि हमारे हक़ में अल्लाह की मर्ज़ी यही है कि हम शिर्क करें और जिन चीज़ों को हमने हराम ठहरा रखा है उन्हें हराम ठहराएँ। वरना अगर ख़ुदा न चाहता कि हम ऐसा करें तो कैसे मुमकिन था कि ये काम हमसे होते। तो चूँकि हम अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ ये सब कुछ कर रहे हैं इसलिए ठीक कर रहे हैं, इसका इलज़ाम अगर है तो हम पर नहीं, अल्लाह पर है। और जो कुछ हम कर रहे हैं ऐसा ही करने पर मजबूर हैं कि इसके सिवा कुछ और करना हमारी क़ुदरत से बाहर है।

125. यह उनके उज़्र का मुकम्मल जवाब है। इस जवाब को समझने के लिए इसका जाइज़ा लेकर देखना चाहिए—

पहली बात यह कही गई कि अपनी ग़लतकारी और गुमराही के लिए अल्लाह की मर्ज़ी को बहाने के तौर पर पेश करना और उसे बहाना बनाकर सही रहनुमाई को क़बूल करने से इनकार करना मुजरिमों की पुरानी रविश रही है, और इसका अंजाम यह हुआ है कि आख़िरकार वे तबाह हुए और हक़ के ख़िलाफ़ चलने का बुरा नतीजा उन्होंने देख लिया।

फिर फ़रमाया कि यह उज़्र जो तुम कर रहे हो यह असल में हक़ीक़त के इल्म की बुनियाद पर

وَلَا تَتَّبِعْ أَهْوَآءَ الَّذِينَ كَذَّبُوا بِـَٔايَٰتِنَا وَالَّذِينَ لَا
يُؤْمِنُونَ بِالْأٓخِرَةِ وَهُم بِرَبِّهِمْ يَعْدِلُونَ ﴿١٥٠﴾ قُلْ

अल्लाह ही ने इन चीज़ों को हराम किया है।" फिर अगर वे गवाही दे दें, तो तुम उनके साथ गवाही न देना[126] और हरगिज़ उन लोगों की ख़ाहिशों के पीछे न चलना जिन्होंने हमारी आयतों को झुठलाया है, और जो अख़िरत के इनकारी हैं और जो दूसरों को अपने रब का हमसर (समकक्ष) ठहराते हैं।

नहीं है, बल्कि सिर्फ़ गुमान और अन्दाज़ा है। तुमने मर्ज़ी का लफ़्ज़ कहीं से सुन लिया और इस पर गुमानों की एक इमारत खड़ी कर ली। तुमने यह समझा ही नहीं कि इनसान के हक़ में हक़ीक़त में अल्लाह की मर्ज़ी क्या है? तुम मर्ज़ी का मतलब यह समझ रहे हो कि चोर अगर अल्लाह की मर्ज़ी के तहत चोरी कर रहा है तो वह मुजरिम नहीं है, क्योंकि उसने यह काम ख़ुदा की मर्ज़ी के तहत किया है। हालाँकि असूल में इनसान के हक़ में ख़ुदा की मर्ज़ी यह है कि वह शुक्र अैर नाशुक्री, हिदायत और गुमराही, फ़रमाँबरदारी और नाफ़रमानी में से जो राह भी अपने लिए चुनेगा, ख़ुदा वही राह उसके लिए खोल देगा, और फिर ग़लत या सही, जो काम भी इनसान करना चाहेगा, ख़ुदा अपनी आलमगीर मसलिहतों का लिहाज़ करते हुए जिस हद तक मुनासिब समझेगा उसे उस काम की इजाज़त और उसकी तौफ़ीक़ देगा। इसलिए अगर तुमने और तुम्हारे बाप-दादा ने अल्लाह की मर्ज़ी के तहत शिर्क और पाक चीज़ों को हराम करने की तौफ़ीक़ पाई तो उसका यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि तुम लोग अपने इन कामों के ज़िम्मेदार और जवाबदेह नहीं हो। अपने ग़लत रास्ता चुनने और अपने ग़लत इरादे और कोशिश के ज़िम्मेदार तो तुम ख़ुद ही हो।

आख़िर में एक ही जुमले के अन्दर काँटे की बात भी फ़रमा दी गई कि "तुम अपनी बहानेबाज़ी में यह हुज्जत पेश करते हो कि अगर अल्लाह चाहता तो हम शिर्क न करते, इससे पूरी बात अदा नहीं होती। पूरी बात कहना चाहते हो तो यूँ कहो कि 'अगर अल्लाह चाहता तो तुम सबको सीधे रास्ते पर चला देता'।" दूसरे अलफ़ाज़ में तुम ख़ुद अपने चुनाव से सीधा रास्ता अपनाने को तैयार नहीं हो, बल्कि यह चाहते हो कि ख़ुदा ने जिस तरह फ़रिश्तों को पैदाइशी तौर सीधे रास्ते पर चलनेवाला बनाया है उसी तरह तुम्हें भी बना दे। तो बेशक अगर अल्लाह की मर्ज़ी इनसान के हक़ में यह होती तो वह ज़रूर ऐसा कर सकता था, लेकिन उसकी मर्ज़ी नहीं है, इसलिए जिस गुमराही को तुमने अपने लिए ख़ुद पसन्द किया है अल्लाह भी तुम्हें उसी में पड़ा रहने देगा।

126. यानी अगर वे गवाही की ज़िम्मेदारी को समझते हैं और जानते हैं कि गवाही उसी बात की देनी चाहिए जिसका आदमी को इल्म है, तो वे कभी यह गवाही देने की हिम्मत न करेंगे कि

تَعَالَوْا أَتْلُ مَا حَرَّمَ رَبُّكُمْ عَلَيْكُمْ أَلَّا تُشْرِكُوا بِهِ

(151) ऐ नबी! इनसे कहो कि आओ मैं तुम्हें सुनाऊँ तुम्हारे रब ने तुम पर क्या पाबन्दियाँ लगाई हैं[127] –

1) यह कि उसके साथ किसी को शरीक न करो,[128]

खाने-पीने पर ये पाबन्दियाँ, जो उनके यहाँ रस्म के तौर पर लागू हैं, और ये पाबन्दियाँ कि फ़ुलाँ चीज़ को फ़ुलाँ न खाए और फ़ुलाँ चीज़ को फ़ुलाँ का हाथ न लगे, ये सब ख़ुदा की मुक़र्रर की हुई हैं। लेकिन अगर ये लोग गवाही की ज़िम्मेदारी को महसूस किए बग़ैर इतनी ढिटाई पर उतर आएँ कि ख़ुदा का नाम लेकर झूठी गवाही देने में भी न झिझकें, तो इनके इस झूठ में तुम इनके साथी न बनो, क्योंकि उनसे यह गवाही इसलिए नहीं माँगी जा रही है कि अगर ये गवाही दे दें तो तुम इनकी बात मान लोगे, बल्कि उसकी ग़रज़ सिर्फ़ यह है कि इनमें से जिन लोगों के अन्दर कुछ भी सच्चाई मौजूद है उनसे जब कहा जाएगा कि क्या वाक़ई तुम सच्चाई के साथ इस बात की गवाही दे सकते हो कि ये क़ानून ख़ुदा ही के मुक़र्रर किए हुए हैं तो वे अपनी रस्मों की हक़ीक़त पर ग़ौर करेंगे और जब इनके अल्लाह की तरफ़ से होने का कोई सुबूत न पाएँगे तो इन फ़िज़ूल रस्मों की पाबन्दी से बाज़ आ जाएँगे।

127. यानी तुम्हारे रब की लागू की गई पाबन्दियाँ वे नहीं हैं जिनमें तुम गिरफ़्तार हो, बल्कि असल पाबन्दियाँ ये हैं जो अल्लाह ने इनसानी ज़िन्दगी को ठीक तौर पर चलाने के लिए लागू की हैं और जो हमेशा से अल्लाह की शरीअतों की असल बुनियाद रही हैं। मुक़ाबले के लिए देखें बाइबल की किताब निगर्मन, अध्याय-20)

128. यानी न ख़ुदा की ज़ात में किसी को उसका शरीक ठहराओ, न उसकी सिफ़तों में, न उसके इख़्तियारात में, और न उसके हुक़ूक़ में।

ज़ात में शिर्क यह है कि ख़ुदाई के जौहर में किसी को हिस्सेदार ठहराया जाए। जैसे ईसाइयों का तीन ख़ुदाओं का अक़ीदा, अरब के मुशरिकों (बहुदेववादियों) का फ़रिश्तों को ख़ुदा की बेटियाँ ठहराना, और दूसरे मुशरिकों का अपने देवताओं और देवियों को और अपने शाही ख़ानदानों को ख़ुदा की जिन्स ठहराना। ये सब ज़ात में शरीक ठहराना है।

सिफ़ात (विशेषता और गुण) में शिर्क यह है कि ख़ुदाई सिफ़ात जैसी कि वे ख़ुदा के लिए हैं, वैसा ही उनको या उनमें से किसी सिफ़त को किसी दूसरे के लिए ठहराना। जैसे किसी के बारे में यह समझना कि उस पर ग़ैब की सारी हक़ीक़तें रौशन हैं, या वह सब कुछ सुनता और देखता है, या वह तमाम ऐबों और तमाम कमज़ोरियों से पाक और बिलकुल बे-ख़ता है।

इख़्तियारात में शिर्क यह है कि ख़ुदा होने की हैसियत से जो इख़्तियारात सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ास हैं उनको या उनमें से किसी को अल्लाह के सिवा किसी और के लिए तसलीम किया जाए। जैसे ग़ैर-फ़ितरी तरीक़ से फ़ायदा और नुक़सान पहुँचाना, ज़रूरतें पूरी करना और हाथ थाम लेना, हिफ़ाज़त और निगहबानी करना, दुआएँ सुनना और क़िस्मतों को बनाना और

شَيْـًٔا وَّبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ۚ وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَوْلَادَكُمْ
مِّنْ اِمْلَاقٍ ۭ نَحْنُ نَرْزُقُكُمْ وَاِيَّاهُمْ ۚ وَلَا تَقْرَبُوا
الْفَوَاحِشَ مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَمَا بَطَنَ ۚ وَلَا تَقْتُلُوا

2) और माँ-बाप के साथ नेक सुलूक करो,[129]

3) और अपनी औलाद को मुहताजी के डर से क़त्ल न करो, हम तुम्हें भी रोज़ी देते हैं और उनको भी देंगे।

4) और बेशर्मी की बातों के क़रीब भी न जाओ[130] चाहे वे खुली हों या छिपी।

बिगाड़ना। साथ ही हराम और हलाल और जाइज़ और नाजाइज़ की हदें मुक़र्रर करना और इनसानी ज़िन्दगी के लिए क़ानून और शरीअत तय करना। ये सब ख़ुदा के ख़ास इख़्तियारात हैं जिनमें से किसी और को अल्लाह के सिवा किसी के लिए तसलीम करना शिर्क है।

हुक़ूक़ में शिर्क यह है कि ख़ुदा होने की हैसियत से बन्दों पर ख़ुदा के जो ख़ास हक़ हैं वे या उनमें से कोई हक़ ख़ुदा के सिवा किसी और के लिए माना जाए। जैसे रुकू और सजदे करना, हाथ बाँधकर उसके सामने खड़े रहना, सलाम करना और आस्ताने को चूमना, नेमत के शुक्र या बड़ाई की तस्लीम करने के लिए नज़्र व नियाज़ और क़ुरबानी, ज़रूरतों को पूरा करने और मुश्किलों को दूर करने के लिए मन्नत, मुसीबतों और मुश्किलों में मदद के लिए पुकारा जाना और ऐसी ही इबादत और बुज़ुर्गी बयान करने की दूसरी तमाम सूरतें अल्लाह के ख़ास हक़ों में से हैं। इसी तरह ऐसा महबूब होना कि उसकी मुहब्बत पर दूसरी सब मुहब्बतें क़ुरबान की जाएँ, और डर व परहेज़गारी का ऐसा हक़दार होना कि छिपे और खुले में उसकी नाराज़ी और उसके हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी से डरा जाए, यह भी सिर्फ़ अल्लाह का हक़ है। और यह भी अल्लाह ही का हक़ है कि उसकी इताअत और फ़रमाँबरदारी बग़ैर किसी शर्त के की जाए, और उसकी हिदायत को सही और ग़लत की कसौटी माना जाए, और किसी ऐसी इताअत और फ़रमाँबरदारी का पट्टा अपने गले में न डाला जाए जो अल्लाह की इताअत और फ़रमाँबरदारी से आज़ाद एक मुस्तक़िल इताअत और फ़रमाँबरदारी हो और जिसके हुक्म के लिए अल्लाह के हुक्म की सनद न हो। इन हक़ों में से जो हक़ भी दूसरे को दिया जाएगा वह अल्लाह का शरीक ठहरेगा, चाहे उसको ख़ुदाई नामों में से कोई नाम दिया जाए या न दिया जाए।

129. नेक सुलूक में अदब करना, बड़ाई बयान करना, फ़रमाँबरदारी, ख़ुशी की चाहत, ख़िदमत करना, सब शामिल हैं। माँ-बाप के इस हक़ को क़ुरआन में हर जगह तौहीद के हुक्म के बाद बयान फ़रमाया गया है जिससे साफ़ ज़ाहिर है कि ख़ुदा के बाद बन्दों के हक़ों में सबसे पहला हक़ इनसान पर उसके माँ-बाप का है।

130. असल अरबी में लफ़्ज़ 'फ़वाहिश' इस्तेमाल हुआ है जिसको उन सभी कामों के लिए बोला

النَّفْسَ الَّتِيْ حَرَّمَ اللهُ اِلَّا بِالْحَقِّ ، ذٰلِكُمْ وَصّٰكُمْ
بِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿١٥١﴾ وَلَا تَقْرَبُوْا مَالَ الْيَتِيْمِ اِلَّا

5) और किसी जान को, जिसे अल्लाह ने मुहतरम ठहराया है, हलाक न करो, मगर हक़ और इनसाफ़ के साथ।[131]

ये बातें हैं जिनकी हिदायत उसने तुम्हें की है, शायद कि तुम समझ-बूझ से काम लो।

6) (152) और यह कि यतीम के माल के क़रीब न जाओ मगर ऐसे तरीक़े से जो

जाता है जिनकी बुराई बिलकुल वाज़ेह है। क़ुरआन में ज़िना (व्यभिचार), हज़रत लूत *(अलैहि॰)* की क़ौम का अमल (मर्दों की मर्दों से काम वासना की पूर्ति), नंगापन, झूठी तोहमत और उस औरत से निकाह करना जिससे बाप ने निकाह कर लिया हो, ये सब काम फ़वाहिश में आते हैं। हदीस में चोरी और शराब पीने और भीख माँगने को भी फ़वाहिश काम बताया गया है। इसी तरह दूसरे तमाम शर्मनाक काम भी फ़वाहिश में दाख़िल हैं और अल्लाह का फ़रमान यह है कि इस तरह के काम न खुल्लम-खुल्ला किए जाएँ और न छिपकर।

131. यानी इनसानी जान, जो असूल में ख़ुदा की तरफ़ से हराम ठहराई गई है, हलाक न की जाए मगर हक़ के साथ। अब रहा सवाल यह कि "हक़ के साथ" का क्या मतलब है, तो इसकी तीन सूरतें क़ुरआन में बयान की गई हैं और इनके अलावा दो सूरतें नबी *(सल्ल॰)* ने और बयान की हैं। क़ुरआन की बयान की हुई सूरतें ये हैं–

1- इनसान किसी दूसरे इनसान के क़त्ल का जान-बूझकर मुजरिम हो और उस पर क़िसास (हत्या-दण्ड) का हक़ क़ायम हो जाए।
2- दीने-हक़ (सत्य-धर्म) को क़ायम करने की राह में रुकावट हो और उससे जंग किए बग़ैर कोई रास्ता न रहा हो।
3- दारुल-इस्लाम की हदों में बदअम्नी फैलाए या इस्लामी निज़ामे-हुकूमत को उलटने की कोशिश करे।

बाक़ी दो सूरतें जो हदीस में बयान हुई हैं, ये हैं–

4- शादी-शुदा होने के बावजूद ज़िना करे।
5- इर्तिदाद (सत्य-धर्म को त्यागने) और जमाअत (इस्लामी समाज) से बग़ावत का मुजरिम हो।

इन पाँच सूरतों के सिवा किसी सूरत में इनसान का क़त्ल इनसान के लिए हलाल (जाइज़) नहीं है, चाहे वह मोमिन हो या ज़िम्मी (इस्लामी हुकूमत की ग़ैर-मुस्लिम जनता) या ग़ैर-मुस्लिम।

بِالَّتِیۡ هِیَ اَحۡسَنُ حَتّٰی یَبۡلُغَ اَشُدَّهٗ ۚ وَ اَوۡفُوا
الۡکَیۡلَ وَ الۡمِیۡزَانَ بِالۡقِسۡطِ ۚ لَا نُکَلِّفُ نَفۡسًا اِلَّا
وُسۡعَهَا ۚ وَ اِذَا قُلۡتُمۡ فَاعۡدِلُوۡا وَ لَوۡ کَانَ ذَا قُرۡبٰی ۚ
وَ بِعَهۡدِ اللّٰهِ اَوۡفُوۡا ؕ ذٰلِکُمۡ وَصّٰکُمۡ بِهٖ لَعَلَّکُمۡ

बेहतरीन हो[132] यहाँ तक कि वे अपनी जवानी की उम्र को पहुँच जाएँ,

(7) और नाप-तौल में पूरा इनसाफ़ करो, हम हर शख़्स पर ज़िम्मेदारी का उतना ही भार रखते हैं जितना उसके वश में है,[133]

(8) और जब बात कहो इनसाफ़ की कहो, चाहे मामला अपने रिश्तेदार ही का क्यों न हो,

(9) और अल्लाह के अहद को पूरा करो।[134]

इन बातों की हिदायत अल्लाह ने तुम्हें की है शायद कि तुम नसीहत क़बूल करो।

---

132. यानी ऐसा तरीक़ा जो ज़्यादा से ज़्यादा बेग़रज़ी, नेक नीयती और यतीम की ख़ैर-ख़ाही पर मुश्तमिल हो, और जिस पर अल्लाह और लोगों किसी की तरफ़ से भी तुमपर एतिराज़ न किया जा सके।

133. यह हालाँकि अल्लाह की शरीअत का एक मुस्तक़िल उसूल (सिद्धान्त) है, लेकिन यहाँ इसके बयान करने का मक़सद यह है कि जो शख़्स अपनी हद तक नाप-तौल और लेन-देन के मामलों में सच्चाई और इनसाफ़ से काम लेने की कोशिश करे वह अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो जाएगा। भूल-चूक या अनजाने में कमी-बेशी हो जाने पर उससे पूछ-गच्छ न होगी।

134. "अल्लाह के अहद" से मुराद वह अहद भी है जो इनसान अपने ख़ुदा से करे और वे भी जो ख़ुदा का नाम लेकर बन्दों से करे, और वे भी जो इनसान और ख़ुदा और इनसान और इनसान के दर्मियान उस वक़्त आपसे आप बँध जाता है, जिस वक़्त एक शख़्स ख़ुदा की ज़मीन में एक इनसानी सोसाइटी के अन्दर पैदा होता है।

पहले दोनों अहद शऊरी और इरादी हैं, और यह तीसरा अहद एक फ़ितरी अहद (Natural Contract) है जिस के बाँधने में हालाँकि इनसान के इरादे का कोई दख़ल नहीं है, लेकिन इसका लिहाज़, एहतिराम और इसको पूरा करना उसी तरह ज़रूरी है, जिस तरह पहले दो अहदों को पूरा करना ज़रूरी है। किसी शख़्स का ख़ुदा के बख़्शे हुए वुजूद से, उसकी दी हुई जिस्मानी और नफ़सियाती क़ुव्वतों से, उसके दिए हुए जिस्मानी आलात (अंगों-प्रत्यंगों) से, और उसकी

تَذَكَّرُونَ ۝١٥٢ وَاَنَّ هٰذَا صِرَاطِيْ مُسْتَقِيْمًا
فَاتَّبِعُوْهُ ۚ وَلَا تَتَّبِعُوا السُّبُلَ فَتَفَرَّقَ بِكُمْ عَنْ
سَبِيْلِهٖ ۭ ذٰلِكُمْ وَصّٰىكُمْ بِهٖ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝١٥٣ ثُمَّ

(153) इसी के साथ उसकी हिदायत यह है कि यही मेरा सीधा रास्ता है, इसलिए तुम इसी पर चलो और दूसरे रास्तों पर न चलो कि वे उसके रास्ते से हटाकर तुम्हें बिखेर देंगे।[135] यह है वह हिदायत जो तुम्हारे रब ने तुम्हें की है, शायद कि तुम गुमराही से बचो।

पैदा की हुई ज़मीन और रोज़ी और ज़रीओं से फ़ायदा उठाना, और ज़िन्दगी के उन मौक़ों से फ़ायदा उठाना जो क़ुदरत के क़ानून की वजह से मिलते हैं, ख़ुद-ब-ख़ुद फ़ितरी तौर पर ख़ुदा के कुछ हक़ उस पर डाल देता है और इसी तरह आदमी का एक माँ के पेट में उसके ख़ून से परवरिश पाना, एक बाप की मेहनतों से बसे हुए घर में पैदा होना और एक सामाजिक ज़िन्दगी के बेशुमार मुख़्तलिफ़ इदारों से मुख़्तलिफ़ शक्लों में फ़ायदा उठाना, मतर्बों दर्जों के लिहाज़ से उसके ज़िम्मे बहुत-से लोगों और सामाजिक इदारों के हक़ भी लागू कर देता है। इनसान का ख़ुदा से और इनसान का सोसाइटी से यह अहद किसी काग़ज़ पर नहीं लिखा गया, मगर उसके रोएँ-रोएँ पर लिखा हुआ है। इनसान ने उसे शऊर व इरादे के साथ नहीं बाँधा, मगर उसका पूरा वुजूद उसी अहद पर क़ायम है। इसी अहद की तरफ़ सूरा-2, अल-बक़रा की आयत-27 में कहा गया है कि नाफ़रमान वे हैं जो, "अल्लाह के अहद को उसके पूरा होने के बाद तोड़ते हैं और जिसे अल्लाह ने जोड़े का हुक्म दिया है उसे काटते हैं और ज़मीन में फ़साद फैलाते हैं।" और इसी का ज़िक्र आगे चलकर सूरा-7, अल-आराफ़ की आयत-172 में हुआ है कि अल्लाह ने शुरू ही में आदम की पीठों से उनकी औलाद को निकालकर उनसे गवाही ली थी कि क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ? और उन्होंने इक़रार किया था कि हाँ, हम गवाह हैं।

135. और जिस फ़ितरी अहद का ज़िक्र हुआ, यह उस अहद का लाज़िमी तक़ाज़ा है कि इनसान अपने रब के बताए हुए रास्ते पर चले, क्योंकि उसके हुक्म की पैरवी से मुँह मोड़ना और ख़ुदसरी और ख़ुद-मुख़तारी या ग़ैर की बन्दगी की तरफ़ क़दम बढ़ाना इनसान की तरफ़ से उस अहद की सबसे पहली ख़िलाफ़वर्ज़ी है, जिसके बाद हर क़दम पर उसकी दफ़ाएँ टूटती चली जाती हैं। लेकिन इस निहायत नाज़ुक, बहुत ही वसीअ और निहायत पेचीदा अहद की ज़िम्मेदारियों से इनसान हरगिज़ बरी नहीं हो सकता, जब तक कि वह ख़ुदा की रहनुमाई को क़बूल करके उसके बताए हुए रास्ते पर ज़िन्दगी बसर न करे। उसको क़बूल न करने के दो ज़बरदस्त नुक़सान हैं। एक यह कि हर दूसरे रास्ते की पैरवी लाज़िमी तौर पर इनसान को उस

اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ تَمَامًا عَلَى الَّذِيْٓ اَحْسَنَ وَ
تَفْصِيْلًا لِّكُلِّ شَيْءٍ وَّهُدًى وَّرَحْمَةً لَّعَلَّهُمْ بِلِقَآءِ
رَبِّهِمْ يُؤْمِنُوْنَ ﴿۱۵۴﴾ وَهٰذَا كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ مُبٰرَكٌ
فَاتَّبِعُوْهُ وَاتَّقُوْا لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ﴿۱۵۵﴾ اَنْ تَقُوْلُوْٓا
اِنَّمَآ اُنْزِلَ الْكِتٰبُ عَلٰى طَآئِفَتَيْنِ مِنْ قَبْلِنَا

(154) फिर हमने मूसा को किताब अता की थी जो भलाई की रविश इख़्तियार करनेवाले इनसान पर नेमत की तकमील और हर ज़रूरी चीज़ की तफ़सील और सरासर हिदायत और रहमत थी (और इसलिए बनी-इसराईल को दी गई थी कि) शायद लोग अपने रब की मुलाक़ात पर ईमान लाएँ[136] (155) और इसी तरह यह किताब हमने उतारी है, एक बरकतवाली किताब। तो तुम इसकी पैरवी करो और तक़वा (ईश-भय, संयम) का तरीक़ा अपनाओ। नामुमकिन नहीं कि तुम पर रहम किया जाए। (156) अब तुम यह नहीं कह सकते कि किताब तो हमसे पहले के दो गरोहों को दी गई थी,[137] और

राह से हटा देती है जो ख़ुदा के क़रीब और उसकी ख़ुशी तक पहुँचने की एक ही राह है। दूसरे यह कि इस राह से हटते ही अनगिनत पगडण्डियाँ सामने आ जाती हैं, जिनमें भटककर पूरी इनसानी नस्ल बिखर जाती है। और इस गन्दगी के साथ ही उसके बालिग़ होने और तरक़्क़ी का ख़ाब भी परेशान होकर रह जाता है। इन्ही दोनों नुक़सानों को इस जुमले में बयान किया गया है कि 'दूसरे रास्तों पर न चलो कि वे तुम्हें उसके रास्ते से हटाकर परागन्दा कर देंगे'' (देखें सूरा-5, अल-माइदा, हाशिया-35)

136. रब की मुलाक़ात पर ईमान लाने से मुराद अपने आपको अल्लाह के सामने जवाबदेह समझना और ज़िम्मेदाराना ज़िन्दगी गुज़ारना है। यहाँ इस बात के दो मतलब हो सकते हैं। एक यह कि ख़ुद बनी-इसराईल में इस किताब की हिकमत भरी तालीम से ज़िम्मेदारी का एहसास जाग जाए। दूसरे यह कि आम लोग उस आला दर्जे के निज़ामे-ज़िन्दगी को देखकर और नेक और भले इनसानों में उस हिदायत की नेमत और उस रहमत के असर देखकर यह महसूस कर लें कि आख़िरत के इनकार की ग़ैर-ज़िम्मेदारा ज़िन्दगी के मुक़ाबले में वह ज़िन्दगी हर एतिबार से बहतर है जो आख़िरत के इक़रार की बुनियाद पर ज़िम्मेदाराना तरीक़े से बसर की जाती है, और इस तरह यह देखना और समझना उन्हें इनकार से ईमान की तरफ़ खींच लाए।

137. यानी यहूदी और ईसाइयों को।

وَاِنْ كُنَّا عَنْ دِرَاسَتِهِمْ لَغٰفِلِيْنَ ۝١٥٦ اَوْ تَقُوْلُوْا لَوْ
اَنَّآ اُنْزِلَ عَلَيْنَا الْكِتٰبُ لَكُنَّآ اَهْدٰى مِنْهُمْ ۚ
فَقَدْ جَآءَكُمْ بَيِّنَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَهُدًى وَّرَحْمَةٌ ۚ
فَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ كَذَّبَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ وَصَدَفَ
عَنْهَا ۗ سَنَجْزِى الَّذِيْنَ يَصْدِفُوْنَ عَنْ اٰيٰتِنَا
سُوْٓءَ الْعَذَابِ بِمَا كَانُوْا يَصْدِفُوْنَ ۝١٥٧ هَلْ يَنْظُرُوْنَ
اِلَّآ اَنْ تَاْتِيَهُمُ الْمَلٰٓئِكَةُ اَوْ يَاْتِىَ رَبُّكَ اَوْ يَاْتِىَ
بَعْضُ اٰيٰتِ رَبِّكَ ۗ يَوْمَ يَاْتِىْ بَعْضُ اٰيٰتِ رَبِّكَ

हमको कुछ ख़बर न थी कि वे क्या पढ़ते-पढ़ाते थे। (157) और अब तुम यह बहाना भी नहीं कर सकते कि अगर हम पर किताब उतारी गई होती तो हम उनसे ज़्यादा सीधे रास्ते पर चलनेवाले साबित होते। तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से एक रौशन दलील और हिदायत और रहमत आ गई है, अब उससे बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह की आयतों को झुठलाए और इनसे मुँह मोड़े।[138] जो लोग हमारी आयतों से मुँह मोड़ते हैं उन्हें इस मुँह मोड़ने के बदले में हम बदतरीन सज़ा देकर रहेंगे। (158) क्या अब लोग इसके इन्तिज़ार में हैं कि उनके सामने फ़रिश्ते आ खड़े हों, या तुम्हारा रब ख़ुद आ जाए, या तुम्हारे रब की कुछ वाज़ेह निशानियाँ[139] सामने आ जाएँ? जिस दिन तुम्हारे रब की

138. अल्लाह की आयतों से मुराद उसके वे फ़रमान भी हैं जो क़ुरआन की सूरत में लोगों के सामने पेश किए जा रहे थे, और वे निशानियाँ भी जो नबी *(सल्ल.)* की शख़्सियत और आप पर ईमान लानेवालों की पाकीज़ा ज़िन्दगी में नुमायाँ तौर पर नज़र आ रही थीं, और कायनात की वे निशानियाँ भी जिन्हें क़ुरआन अपनी दावत की ताईद में गवाही के तौर पर पेश कर रहा था।

139. यानी कायनात की निशानियाँ या अज़ाब या कोई और ऐसी निशानी जो हक़ीक़त से बिलकुल परदा उठा देनेवाली हो और जिसके ज़ाहिर हो जाने के बाद इम्तिहान और आज़माइश का कोई सवाल बाक़ी न रहे।

لَا يَنْفَعُ نَفْسًا اِيْمَانُهَا لَمْ تَكُنْ اٰمَنَتْ مِنْ قَبْلُ
اَوْ كَسَبَتْ فِيْٓ اِيْمَانِهَا خَيْرًا ؕ قُلِ انْتَظِرُوْٓا اِنَّا
مُنْتَظِرُوْنَ ﴿۱۵۸﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ فَرَّقُوْا دِيْنَهُمْ وَكَانُوْا
شِيَعًا لَّسْتَ مِنْهُمْ فِيْ شَيْءٍ ؕ اِنَّمَآ اَمْرُهُمْ اِلَى اللّٰهِ
ثُمَّ يُنَبِّئُهُمْ بِمَا كَانُوْا يَفْعَلُوْنَ ﴿۱۵۹﴾ مَنْ جَآءَ بِالْحَسَنَةِ

कुछ ख़ास निशानियाँ सामने आ जाएँगी फिर किसी ऐसे आदमी को उसका ईमान कुछ फ़ायदा न देगा जो पहले ईमान न लाया हो या जिसने अपने ईमान में कोई भलाई न कमाई हो।[140] ऐ नबी! इनसे कह दो कि अच्छा, तुम इन्तिज़ार करो, हम भी इन्तिज़ार करते हैं।

(159) जिन लोगों ने अपने दीन को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और गरोह-गरोह बन गए यक़ीनन उनसे तुम्हारा कोई वास्ता नहीं,[141] उनका मामला तो अल्लाह के सुपुर्द है, वही उनको बताएगा कि उन्होंने क्या कुछ किया है। (160) जो अल्लाह के पास नेकी लेकर

140. यानी ऐसी निशानियों को देख लेने के बाद अगर कोई इनकारी अपने इनकार से तौबा करके ईमान ले आए तो उसके ईमान लाने का कोई मतलब नहीं है, और अगर कोई नाफ़रमान मोमिन अपनी नाफ़रमानी की रविश छोड़कर इताअतगुज़ार और फ़रमाँबरदार बन जाए तो उसकी इताअत भी बेफ़ायदा है, इसलिए कि ईमान और इताअत की क़द्र तो उसी वक़्त है जब तक हक़ीक़त परदे में है, मुहलत की रस्सी लम्बी नज़र आ रही है और दुनिया धोखे भरे अपने तमाम साज़ो-सामान के साथ यह धोखा देने के लिए मौजूद है कि कैसा ख़ुदा और कहाँ की आख़िरत, बस खाओ-पियो और मज़े करो।

141. बात नबी *(सल्ल.)* से कही जा रही है और आप *(सल्ल.)* के वास्ते से दीने-हक़ की पैरवी करनेवाले सभी लोग इसके मुख़ातब हैं। कहने का मक़सद है कि असूल दीन हमेशा से यही रहा है और अब भी यही है कि एक ख़ुदा को इलाह और रब माना जाए। अल्लाह की ज़ात, सिफ़ात, इख़्तियारात और हुक़ूक़ में किसी को शरीक न किया जाए। अल्लाह के सामने अपने-आपको जवाबदेह समझते हुए आख़िरत पर ईमान लाया जाए और उन वसीअ (व्यापक) उसूल और ज़ाब्तों के मुताबिक़ ज़िन्दगी बसर की जाए जिनकी तालीम अल्लाह ने अपने रसूलों और अपनी किताबों के ज़रीए से दी है। यही दीन तमाम इनसानों को पैदाइश के पहले ही दिन

فَلَهٗ عَشْرُ اَمْثَالِهَا ۚ وَمَنْ جَآءَ بِالسَّيِّئَةِ فَلَا
يُجْزٰٓى اِلَّا مِثْلَهَا وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ﴿١٦٠﴾ قُلْ اِنَّنِىْ
هَدٰىنِىْ رَبِّىْٓ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ۚ دِيْنًا قِيَمًا
مِّلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ حَنِيْفًا ۚ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿١٦١﴾
قُلْ اِنَّ صَلَاتِىْ وَنُسُكِىْ وَمَحْيَاىَ وَمَمَاتِىْ لِلّٰهِ
رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٦٢﴾ لَا شَرِيْكَ لَهٗ ۚ وَبِذٰلِكَ اُمِرْتُ

आएगा उसके लिए दस गुना अज्र (बदला) है और जो बदी लेकर आएगा उसको उतना ही बदला दिया जाएगा जितना उसने क़ुसूर किया है, और किसी पर ज़ुल्म न किया जाएगा।

(161) ऐ नबी! कहो मेरे रब ने यक़ीनन मुझे सीधा रास्ता दिखा दिया है, बिलकुल ठीक दीन जिसमें कोई टेढ़ नहीं, इबराहीम का तरीक़ा जिसे[142] यकसू (एकाग्र) होकर उसने इख़्तियार किया था, और वह मुशरिकों में से न था। (162) कहो : मेरी नमाज़, मेरी

से दिया गया था। बाद में जितने बहुत-से मज़हब बने वे सबके सब इस तरह बने कि अलग-अलग ज़मानों के लोगों ने अपने ज़ेहन की ग़लत उपज से या नफ़्स की ख़ाहिशों के ग़लबे से या अक़ीदत में हद से आगे बढ़ने से इस दीन को बदला और इसमें नई-नई बातें मिलाईं। उसके अक़ीदों में अपने अन्धविश्वासों और गुमानों और फ़लसफ़ों से कमी-बेशी और फेर-बदल की। उसके अहकाम में नई-नई बातें गढ़कर इज़ाफ़े किए। अपने आप गढ़े हुए क़ानून बनाए। छोटी-छोटी और ग़ैर-बुनियादी बातों में बाल की खाल निकालीं। ग़ैर ज़रूरी इख़्तिलाफ़ात को हदों से आगे बढ़ाया। अहम को ग़ैर-अहम और ग़ैर-अहम को अहम बनाया। उसके लानेवाले नबियों और उसके अलमबरदार बुज़ुर्गों में से किसी की अक़ीदत में हद से आगे बढ़े और किसी को हसद और मुख़ालिफ़त का निशाना बनाया। इस तरह बेशुमार मज़हब और फ़िरक़े बनते चले गए और हर मज़हब और फ़िरक़े की पैदाइश इनसानों को एक-दूसरे के दुश्मन गरोहों में बाँटती चली गई। अब जो शख़्स भी असल दीने-हक़ की पैरवी करनेवाला हो उसके लिए ज़रूरी है कि इन सारी गरोहबन्दियों से अलग हो जाए और इस सबसे अपना रास्ता अलग कर ले।

142. "इबराहीम *(अलैहि॰)* का तरीक़ा" यह उस रास्ते की पहचान के लिए एक और बात बताई गई है। हालाँकि इसको मूसा *(अलैहि॰)* का तरीक़ा या ईसा *(अलैहि॰)* का तरीक़ा भी कहा जा सकता था, मगर हज़रत मूसा की तरफ़ दुनिया ने यहूदियत को और हज़रत ईसा *(अलैहि॰)* की तरफ़ ईसाइयत को जोड़ रखा है, इसलिए "इबराहीम *(अलैहि॰)* का तरीक़ा" कहा गया। हज़रत

وَاَنَا اَوَّلُ الْمُسْلِمِيْنَ ﴿۱۶۳﴾ قُلْ اَغَيْرَ اللّٰهِ اَبْغِيْ رَبًّا
وَّهُوَ رَبُّ كُلِّ شَيْءٍ ؕ وَلَا تَكْسِبُ كُلُّ نَفْسٍ
اِلَّا عَلَيْهَا ۚ وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِّزْرَ اُخْرٰى ۚ ثُمَّ اِلٰى
رَبِّكُمْ مَّرْجِعُكُمْ فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ﴿۱۶۴﴾
وَهُوَ الَّذِيْ جَعَلَكُمْ خَلٰٓئِفَ الْاَرْضِ وَرَفَعَ بَعْضَكُمْ

इबादत की सारी रस्में,[143] मेरा जीना और मेरा मरना, सब कुछ अल्लाह, सारे जहानों के रब के लिए है (163) जिसका कोई शरीक नहीं। इसी का मुझे हुक्म दिया गया है और सबसे पहले फ़रमाँबरदारी में सर झुकानेवाला मैं हूँ। (164) कहो कि क्या मैं अल्लाह के सिवा कोई और रब तलाश करूँ, हालाँकि वही हर चीज़ का रब है?[144] हर आदमी जो कुछ कमाता है उसका ज़िम्मेदार वह ख़ुद है, कोई बोझ उठानेवाला दूसरे का बोझ नहीं उठाता,[145] फिर तुम सबको अपने रब की तरफ़ पलटना है, उस वक़्त वह तुम्हारे इख़्तिलाफ़ों की हक़ीक़त तुम पर खोल देगा। (165) वही है जिसने तुमको ज़मीन का

इबराहीम *(अलैहि॰)* को यहूदी और ईसाई दोनों गरोह हक़ पर मानते थे, और दोनों यह भी जानते हैं कि वे यहूदियत और ईसाइयत की पैदाइश से बहुत पहले गुज़र चुके थे। साथ ही अरब के मुशरिक भी इनको सीधे रास्ते पर मानते थे और अपनी जिहालत के बावजूद कम से कम इतनी बात उन्हें भी तस्लीम थी कि काबा की बुनियाद रखनेवाला पाकीज़ा इनसान ख़ालिस ख़ुदापरस्त था, न कि बुतपरस्त।

143. असल में अरबी लफ़्ज़ 'नुसुक' इस्तेमाल हुआ है जिसके मानी क़ुरबानी के भी हैं और इसको आम तौर से बन्दगी और इबादत की दूसरी तमाम सूरतों के लिए भी बोला जाता है।

144. यानी कायनात की सारी चीज़ों का रब तो अल्लाह है, मेरा रब कोई और कैसे हो सकता है? किस तरह यह बात अक़्ल में आ सकती है कि सारी कायनात तो अल्लाह की इताअत और फ़रमाँबरदारी के निज़ाम पर चल रही हो और कायनात का एक हिस्सा होने के हैसियत से मेरा अपना वुजूद भी उसी निज़ाम पर चले, मगर मैं अपनी शऊरी और इख़्तियारी ज़िन्दगी के लिए कोई और रब तलाश करूँ? क्या पूरी कायनात के ख़िलाफ़ मैं अकेला एक दूसरे रुख़ पर चल पड़ूँ?

145. यानी हर शख़्स ख़ुद ही अपने अमल का ज़िम्मेदार है, एक के अमल की ज़िम्मेदारी दूसरे पर नहीं है।

فَوْقَ بَعْضٍ دَرَجٰتٍ لِّیَبْلُوَكُمْ فِیْ مَاۤ اٰتٰىكُمْ ؕ اِنَّ
رَبَّكَ سَرِیْعُ الْعِقَابِ ۖؗ وَاِنَّهٗ لَغَفُوْرٌ رَّحِیْمٌ ﴿۱۶۵﴾

खलीफ़ा बनाया, और तुम में से कुछ को कुछ के मुक़ाबले में ज़्यादा बुलन्द दर्जे दिए, ताकि जो कुछ तुमको दिया है उसमें तुम्हारी आज़माइश करे।[146] बेशक तुम्हारा रब सज़ा देने में भी बहुत तेज़ है और बहुत माफ़ करने और रहम फ़रमानेवाला भी है।

146. इस जुमले में तीन हक़ीक़तें बयान की गई हैं—

एक यह कि तमाम इनसान ज़मीन में ख़ुदा के ख़लीफ़ा (नायब) हैं, इस मानी में कि ख़ुदा ने अपनी पैदा की हुई चीज़ों में से बहुत-सी चीज़ें उनकी अमानत में दी हैं और उनको इस्तेमाल के इख़्तियार दिए हैं।

दूसरे यह कि इन ख़लीफ़ाओं (प्रतिनिधियों) में मर्तबों का फ़र्क़ भी ख़ुदा ही ने रखा है, किसी की अमानत का दायरा फैला हुआ है और किसी का महदूद, किसी को ज़्यादा चीज़ों पर तसर्रुफ़ के इख़्तियारात दिए हैं और किसी को कम चीज़ों पर, किसी को ज़्यादा कारकर्दगी की क़ुव्वत दी है और किसी को कम, और कुछ इनसान भी कुछ इनसानों की अमानत में हैं।

तीसरे यह कि यह सब कुछ असल में इम्तिहान का सामान है, पूरी ज़िन्दगी एक इम्तिहानगाह है और जिसको जो कुछ भी ख़ुदा ने दिया है उसी में उसका इम्तिहान है कि उसने किस तरह ख़ुदा की अमानत को इस्तेमाल किया, कहाँ तक अमानत की ज़िम्मेदारी को समझा और उसका हक़ अदा किया और किस हद तक अपनी क़ाबिलियत या नाक़ाबिलियत का सुबूत दिया। इसी इम्तिहान के नतीजे पर ज़िन्दगी के दूसरे मरहले में इस बात का दारोमदार है कि इनसान को क्या दर्जा हासिल होगा।

☆☆☆

इण्डेक्स
तफ़हीमुल-क़ुरआन-1

(आ=आयत, हा=हाशिया)

(अ)

● **असहाबुस-सब्त**
★ उनके बंदर बनाए जाने का वाक़िआ— सूरा-2, आ-65।
★ उनके बंदर बनाए जाने का मतलब— सूरा-2, आ-83।
● **अज्र (फल) या बदला—**
★ कौन से काम अज्र के मुस्तहिक़ हैं— सूरा-2, आ-112 और 274।
★ किस तरह के लोग इसके मुस्तहिक़ हैं— सूरा-2, आ-262 और 277; सूरा-3, आ-57 और 169 से 172; सूरा-4, आ-114, 146, 162 और 173; सूरा-5, आ-9।
★ किसका बदला बेकार न जाएगा— सूरा-2, आ-272 और 277; सूरा-3, आ-171।
★ अल्लाह नेकी का बदला अपनी तरफ़ से बढ़ाकर देता है— सूरा-4, आ-40; सूरा-4, आ-173।
★ अल्लाह की राह में लड़नेवालों के लिए बहुत बड़ा बदला है— सूरा-4, आ-74।
★ अल्लाह के रास्ते में घर छोड़नेवालों का बदला ख़ुदा अपने ऊपर ज़रूरी क़रार देता है— सूरा-4, आ-100।
★ नबियों पर किसी भेदभाव के बिना ईमान लानेवालों के लिए बड़ा बद(अलै.) ला है— सूरा-4, आ-152, हा-179।
● **अज़लाम—देखें : जुआ।**
● **अशहुरे-हुरुम (प्रतिबंधित महीने)**
★ उनकी हक़ीक़त— सूरा-2, आ-194, हा-206।
★ ये इबराहीम (अलै.) के वक़्त से मुक़र्रर हैं— सूरा-2, हा-206।
★ नख़ला का वाक़िआ— सूरा-2, आ-217, हा-232।
★ अशहुरे-हुरुम (प्रतिबंधित महीनों) में जंग— सूरा-2, आ-217 हा-232।
★ अशहुरे-हुरुम (प्रतिबंधित महीनों) का एहतिराम किया जाए— सूरा-5, आ-2।
● **असहाबे-सुफ़्फ़ा— सूरा-2, हा-314।**
● **अम्र-बिल-मअरूफ़ नही-अनिल-मुनकर** (भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना)— देखें : इक़ामते-दीन।
● **अहले-किताब**
★ उनका झूठा ज़ोम (घमंड) कि नजात पर उन्हीं का हक़ है— सूरा-2, आ-111।
★ उनकी ग़लतफ़हमियाँ— सूरा-2, आ-113।
★ उनके फ़साद फैलानेवाले गरोह का रवैया— सूरा-2, आ-120।
★ उनके नेक लोगों का रवैया— सूरा-2, आ. 121, हा-122; सूरा-3, आ-113 और 199।
★ उनके उलमा का हक़ को छिपाना— सूरा-2, आ-140, हा-141 और 146।
★ उनके उलमा की फ़िरक़ाबन्दी— सूरा-2, आ-140, हा-141।
★ जानते-बूझते हक़ की मुख़ालिफ़त— सूरा-2, आ-144।
★ उनके कारनामे— सूरा-3, आ-21।
★ उनके उलमा की हालत— सूरा-3, आ-23, 24, हा-24 ; सूरा-4, आ-44, हा-71; सूरा-5, आ-61 से 63।
★ उनके मज़हबी और अख़लाक़ी जुर्म— सूरा-3, आ-23।
★ उनको दावत किस चीज़ की दी जाती थी— सूरा-3, आ-23, हा-22; सूरा-4, आ-47।
★ आख़िरत के बारे में उनके अक़ीदे की ख़राबी— सूरा-3, आ-24, हा-23।
★ उनकी कजबहसियों पर पकड़— सूरा-3, आ-66।
★ उनका अल्लाह की आयतों से इनकार— सूरा-3, आ-70।
★ दावते-इस्लाम के ख़िलाफ़ उनकी चालबाज़ियाँ— सूरा-3, आ-72 और 73, हा-61।
★ मुसलमानों को उनसे तकलीफ़देह बातें सुननी पड़ेंगी— सूरा-3, आ-186, हा-131।
★ उनका अल्लाह की किताब को पीठ पीछे डालना और उसे बेचना— सूरा-3, आ-187।

★ उनकी मनक़बत (तारीफ़) पसन्दियाँ—
सूरा-3, आ-188, हा-133।
★ उनमें से पर ईमान लानेवालों के लिए अज्र—
सूरा-3, आ-199।
★ उनका पाकीज़गी और तक़वा का ज़ौम—
सूरा-4, आ-49।
★ उनका फ़ालगीरियों और टोने-टोटकों से दिलचस्पी लेना — सूरा-4, आ-51, हा-81।
★ नबी (सल्ल.) से उनका मुज़हकाख़ेज़ (हास्यास्पद) मुतालबा— सूरा-4, आ-153, हा-181।
★ उनका खुली निशानियाँ देखने के बाद शिर्क करना—
सूरा-4, आ-153, हा-183।
★ उनका दीन में ग़ुलू (हद से आगे बढ़ना)—
सूरा-4, आ-171, हा-211; सूरा-5, आ-77।
★ मुसलमानों के लिए किताबवालों के ज़बीहे का हलाल होना— सूरा-5, आ-5, हा-21।
★ मुसलमानों के लिए किताबवालों की औरतों से निकाह की इजाज़त— सूरा-5, आ-5, हा-22।
★ उन पर मुहम्मद (सल्ल.) के नबी बनाए जाने के ज़रीए हुज्जत तमाम होना— सूरा-5, आ-19।
★ उनका अज़ान का मज़ाक़ उड़ाना—
सूरा-5, आ-58, हा-89।
★ उनपर तौरात और इंजील को क़ायम करने की ज़िम्मेदारी— सूरा-5, आ-66।
★ उनकी अकसरियत (बहुसंख्या) का बद अमल होना—
सूरा-5, आ-66।
★ तौरात और इंजील की इक़ामत (स्थापना) के बिना अल्लाह के नज़दीक उनकी दीनदारी का दावा बे मानी है— सूरा-5, आ-68।
★ क़ुरआन का दावा कि किताबवाले तौहीद की सच्चाई को ख़ूब पहचानते हैं— सूरा-6, आ-19, 20, हा-14।
★ मज़हबी रहनुमाई हासिल करने के लिए अरबवालों का उनकी तरफ़ रुजू करना—
सूरा-6, आ-90, हा-59।
★ क़ुरआन का दावा कि किताबवाले का अल्लाह की तरफ़ से होना ख़ूब जानते हैं— सूरा-6, आ-114।
● **अय्यामे-तशरीक़— देखें : हज्ज।**
● **अज़ाबे-इलाही**
★ किस क़िस्म के लोगों के लिए है—
सूरा-2, आ-85, 90, 104, 114, 162, 173, 174, 178, 196, 211; सूरा-3, 4, 21, 56, 77, 105, 181; सूरा-4, 18, 37, 161; सूरा-5, 73; सूरा-6, 70, 124।
★ किसी फ़िदये से नहीं टल सकता—
सूरा-3, आ-91; सूरा-6, आ-70।
★ अगर लोग ईमान और शुक्र की रविश पर चलें तो अल्लाह ख़ाह-मख़ाह अज़ाब देनेवाला नहीं—
सूरा-4, आ-147।
★ दुनिया की सज़ा आख़िरत की सज़ा से नहीं बचा सकती— सूरा-5, आ-33।
★ क़ायम रहनेवाला अज़ाब— सूरा-5, आ-37।
★ यह ऐसी चीज़ है जिससे डरा जाए—
सूरा-6, आ-15।
★ दुनिया में अज़ाब देने से पहले मुजरिमों पर ख़ुशहाली का दौर— सूरा-6, आ-44।
★ अज़ाब ज़ालिमों पर ही आता है— सूरा-6, आ-47।
★ अल्लाह की आयतों से इनकार करनेवाले अज़ाब भुगतकर रहेंगे— सूरा-6, आ-49।
★ अज़ाब लाना किसी के बस में नहीं होता—
सूरा-6, आ-57, हा-39।
★ अज़ाबे-दुनिया की मुख़्तलिफ़ सूरतें—
सूरा-6, आ-65, हा-42।
★ अज़ाबे-आख़िरत की तफ़सील— सूरा-6, आ-70।
★ अज़ाबे-दुनिया ख़बरदार करने के बाद नाज़िल किया जाता है— सूरा-6, आ-131, हा-100।
★ मुजरिमों से अल्लाह के अज़ाब को फेरा नहीं जा सकता— सूरा-6, आ-147, हा-123।
★ जिसने भी हक़ को झुठलाया उसने ख़ुदा के अज़ाब का मज़ा चखा— सूरा-6, आ-148।
● **अरफ़ात— देखें : हज।**
● **अहद (वचन)**
★ अल्लाह के अहद को तोड़ने की सज़ा—
सूरा-3, आ-77; सूरा-5, आ-13।
★ अहद जो नबियों से लिया गया—
सूरा-3, आ-81, हा-69।
★ वे अहद जो बनी-इसराईल से लिए गए—
सूरा-2, आ-83, 93; सूरा-3, आ-187, हा-132; सूरा-5, आ-12।
★ 'मीसाक़े-तूर' जो बनी-इसराईल से लिया गया—
सूरा-4, आ-154।
★ मुसलमानों को अल्लाह के अहद पर क़ायम रहने की ताकीद— सूरा-5, आ-7।
★ 'समीअना व अतअना' (सुनने और मानने) का अहद (वचन)— सूरा-5, आ-7।

★ ईसाइयों से भी अहद लिया गया और उन्होंने भी अहद को तोड़ा— सूरा-5, आ-14।
★ अल्लाह के अहद के तीन मफ़हूम— सूरा-6, हा-134।
★ 'फ़ितरी अहद' की तौज़ीह— सूरा-6, हा-134।
★ फ़ितरी अहद का तक़ाज़ा यह है कि इनसान अल्लाह के बताए हुए सीधे रास्ते पर चले— सूरा-6, आ-153, हा-153।

(आ)

● **आयत-आयात**
★ लफ़्ज़ आयत के मानी— सूरा-2, आ-39, हा-54।
★ आयाते-किताब की दो क़िस्में— सूरा-3, आ-7, हा-5, 6, और 7।
★ आयाते-इलाही का लफ़्ज़ किन-किन मानों में इस्तेमाल होता है— सूरा-2, हा-54; सूरा-6, हा-16; सूरा-6, हा-138।
★ अक़्ल से काम लेनेवालों के लिए हर तरफ़ आयात ही आयात मौजूद हैं— सूरा-2, आ-164, हा-162; सूरा-3, आ-190; सूरा-6, आ-37 से 39, हा-27, 28।
★ अल्लाह की आयात से इनकार का अंजाम अज़ाब है— सूरा-3, आ-4, 10 और 11; सूरा-4, आ-56; सूरा-5, आ-86; सूरा-6, आ-49 और 93।
★ अल्लाह की आयात कामयाबी तक पहुँचानेवाले सीधे रास्ते को वाज़ेह करती हैं— सूरा-3, आ-103 हा-85।
★ उनसे कैसे लोग फ़ायदा उठाते हैं— सूरा-3, आ-191, हा-135।
★ अल्लाह की आयात की मजमूई शहादत क्या है— सूरा-3, आ-191, हा-136।
★ अल्लाह की आयत के ख़िलाफ़ जहाँ कुफ़्र बका जा रहा-हो वहाँ एक मुसलमान का रवैया क्या हो?— सूरा-4, आ-140, हा-170; सूरा-6, आ-68।
★ जो लोग अल्लाह की निशानियों की अनदेखी करते हैं, वही हक़ को झुठलाते हैं— सूरा-6, आ-4, 5।
★ हज़रत इबराहीम (अलै॰) का अल्लाह की निशानियों से फ़ायदा उठाना— सूरा-6, आ-75, हा-51।
★ अल्लाह की आयतों से सही फ़ायदा सिर्फ़ समझ-बूझ रखनेवाले ही उठा सकते हैं— सूरा-6, आ-98, हा-66।
★ अल्लाह की आयतों से सही फ़ायदा ईमानवाले ही उठा सकते हैं— सूरा-6, आ-99।
★ अल्लाह की निशानियों में सर्फ़े-कलाम (वर्णन-शैली) का उसलूब— सूरा-6, आ-105।
★ उनको झुठलानेवालों के पीछे चलने की मनाही— सूरा-6, आ-150।
● **आख़िरत** (हिसाब-किताब का दिन)— सूरा-1, आ-3, हा-5; सूरा-2, आ-4।
★ आख़िरत के अक़ीदे की तसरीह—सूरा-2, आ-4, हा-8; सूरा-2, आ-48, हा-63; सूरा-3, आ-25।
★ मौत के बाद दूसरी ज़िन्दगी— सूरा-2, आ-28।
★ आख़िरत के अक़ीदे के अख़लाक़ी नतीजे— सूरा-2, आ-46, हा-61, आ-249।
★ आख़िरत के अक़ीदे में ख़राबी आ-जाने के नतीजे— सूरा-2, आ-48, हा-63; सूरा-3, आ-25, हा-23।
★ दुनिया को आख़िरत पर तरजीह (प्राथमिकता) देने के नतीजे— सूरा-2, हा-307।
★ आख़िरत में पूछ-गच्छ किन चीज़ों पर होनी है— सूरा-2, आ-134, हा-134; सूरा-2 आ-141; सूरा-4, आ-31, हा-53।
★ आख़िरत में इनसानों पर गवाह होने के फ़र्ज़ की जवाबदेही— सूरा-2, आ-143, हा-144
★ आख़िरत में गुमराह करनेवाले पेशवाओं का रवैया— सूरा-2, आ-166, हा-165।
★ ग़लत रहनुमाओं के पीछे चलनेवालों की नाकाम हसरत— सूरा-2, आ-167।
★ दुनियापरस्तों के लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं— सूरा-2 आ-200।
★ आख़िरत की कामयाबी का दारोमदार रिज़्क़ के ज़्यादा होने पर नहीं बल्कि तक़वा पर है— सूरा-2, आ-212।
★ ख़ुदा की रहमत के जाइज़ उम्मीदवार कौन हैं— सूरा-2, आ-218।
★ वहाँ न लेन-देन होगा, न दोस्ती व सिफ़ारिश का दख़ल होगा— सूरा-2, आ-254, हा-277; सूरा-4, आ-173; सूरा-6, आ-70।
★ दिखावे के कामों का वहाँ बे-फ़ायदा साबित होना— सूरा, 2 आ-266, हा-307।
★ दुनिया की सज़ा आख़िरत की सज़ा से नहीं बचाती— सूरा-2, हा-319; सूरा-5 आ-33।
★ एक-एक आदमी पर जवाबदेही की ज़िम्मेदारी— सूरा-2, हा-335; सूरा-6, आ-94।
★ कामों का फल क़ाबिले-इन्तिक़ाल (हस्तानान्तरणीय) चीज़ नहीं— सूरा-2, आ-286, हा-339।

★ दुनिया की मरग़ूबात (प्रलोभनों) के मुक़ाबले आख़िरत का इनाम– सूरा-3, आ-14।
★ किये का पूरा फल पाने का दिन– सूरा-3, आ-30।
★ मुजरिमों की वक़्त निकलने के बाद पशेमानी– सूरा-3, आ-30।
★ आख़िरत में सभी इख़्तिलाफ़ों का आख़िरी फ़ैसला– सूरा-3, आ-55; सूरा-5, आ-48, हा-81; सूरा-6, आ-164।
★ वहाँ किन लोगों के लिए महरूमी है– सूरा-3, आ-77 और 85।
★ नाफ़रमानी की हालत में मरनेवालों को सज़ा से कोई चीज़ न बचा सकेगी– सूरा-3, आ-91।
★ वहाँ कुछ लोग सुर्ख़रू (कामयाब) होंगे और कुछ का मुँह काला होगा– सूरा-3, आ-106।
★ कुफ़्र आख़िरत की खेती के लिए तबाहकुन है– सूरा-3, आ-117, हा-91।
★ जो सवाबे-आख़िरत के इरादे से काम करेगा वही आख़िरत का फल पाएगा– सूरा-3, आ-145 हा-105।
★ ख़ियानत करनेवाले अपनी ख़ियानत के साथ हाज़िर होंगे– सूरा-3, आ-161।
★ सभी बातों (वचनों) और कामों का रिकॉर्ड रखा जा रहा है– सूरा-3, आ-181; सूरा-6, आ-61, हा-40।
★ असल कामयाबी की मंज़िल– सूरा-3, आ-185।
★ इसके मुक़ाबले में दुनिया की ज़िन्दगी की हक़ीक़त– सूरा-3, आ-185; सूरा-4, आ-77; सूरा-6, आ-32, हा-20।
★ आख़िरत की दलीलें– सूरा-3, आ-190 से 191, हा-130।
★ उस दिन अच्छे लोगों के काम बरबाद न जाएँगे– सूरा-3, आ-195।
★ आख़िरत की पूछ-गच्छ में लोगों के दर्मियान बराबरी– सूरा-3, हा-139।
★ क़ौमों पर उनके नबियों से गवाही तलब की जाएगी– सूरा-4, आ-41, हा-64; सूरा-5, आ-109, हा-125
★ वहाँ कोई बात छुपी न रह जाएगी– सूरा-4, आ-42।
★ आख़िरत के लिए दुनिया के फ़ायदे की क़ुरबानी– सूरा-4, आ-74, हा-103।
★ किसी मोमिन को जान-बूझकर क़त्ल करने की आख़िरत में सज़ा सदा के लिए नरक है– सूरा-4, आ-93।
★ वहाँ कमज़ोर होने का बहाना काम न देगा– सूरा-4, आ-97।
★ वहाँ का अंजाम किसी की ख़ुशख़यालियों पर मौक़ूफ़ (आधारित) नहीं– सूरा-4, आ-121।
★ वहाँ आमाल (कर्म) अपना ठीक-ठीक फल देंगे– सूरा-4, आ-123 और 124।
★ वहाँ कैसे लोग दीवालिया होंगे– सूरा-5, आ-5।
★ दुनिया की कारगुज़ारी के वाज़ेह होने का दिन सूरा-5, आ-14, 105, 116 से 118; सूरा-6, आ-108
★ वहाँ ज़ालिमों का कोई मददगार न होगा– सूरा-5, आ-72।
★ ख़ुदा की पेशी में लोगों को घेर कर हाज़िर किया जाएगा– सूरा-5, आ-96; सूरा-6, आ-22।
★ सब को ख़ुदा की तरफ़ पलट कर जाना है– सूरा-5, आ-105; सूरा-6, आ-164।
★ हज़रत ईसा से आख़िरत में गवाही ली जाएगी– सूरा-5, आ-110, हा-125।
★ हज़रत ईसा पर जिरह और आपका सफ़ाई का बयान– सूरा-5, आ-116 से 118।
★ आख़िरत में अपनी उम्मत के लिए हज़रत ईसा की आजिज़ाना (विनम्र) सिफ़ारिश– सूरा-5, आ-118।
★ वहाँ सिर्फ़ सच्चों के लिए उनकी सच्चाई फ़ायदेमंद होगी– सूरा-5, आ-119।
★ मुशरिकों से यह सवाल कि अब तुम्हारे वे खुद साख़्ता (स्वयं निर्मित) साझी कहाँ हैं?– सूरा-6, आ-22।
★ दोज़ख़ के किनारे पहुँच कर अपराधियों की यह तमन्ना कि काश, दुनिया में जाकर तलाफ़ी (प्रायश्चित) करने का एक मौक़ा मिले– सूरा-6, आ-27 से 28।
★ वहाँ हक़ीक़त पूरी तरह बेनक़ाब होगी– सूरा-6, आ-28, हा-19।
★ इसके बारे में दुनिया में दुनियापरस्तों की ग़फ़लत– सूरा-6, आ-31, 32 हा-20।
★ असली ठिकाना वही है– सूरा-6, आ-32।
★ आख़िरत के बारे मकें दुनियापरस्तों के झूठे भरोसों का इनकार– सूरा-6, आ-51, हा-33।
★ वहाँ कोई ऐसा ज्री इक्तिदार (शक्तिशाली) न होगा जो किसी की हिमायत, मदद और सिफ़ारिश कर सके– सूरा-6, आ-51।

★ वहाँ किसी की जवाबदेही की ज़िम्मेदारी दूसरे पर नहीं होगी— सुरा 6, हा-35।
★ वहाँ ज़ालिमों का हिसाब नेक लोगों से न लिया जाएगा— सूरा-6, आ-68 से 69।
★ आख़िरत को माननेवालों का अमली रवैया— सूरा-6, आ-92।
★ ज़ालिमों की हालत मौत आने के वक़्त— सूरा-6, आ-93।
★ वहाँ मुतवक़्क़ेअ (अपेक्षित) सिफ़ारिशियों का खो जाना— सूरा-6, आ-94।
★ वहाँ दुनियावी रब्तों का टूट जाना— सूरा-6, आ-94।
★ वहाँ अकेले ख़ुदा के सामने पेशी— सूरा-6, आ-94।
★ उसको न माननेवालों का ख़ुदफ़रेबियों में मग्न होना— सूरा-6, आ-113।
★ आख़िरत में शैतानों व जिन्नों से ख़िताब— सूरा-6, आ-128।
★ वहाँ मुजरिमों का अपने ऊपर ख़ुद गवाह होना— सूरा-6, आ-130, हा-98।
★ वहाँ मुक़द्दमे की पूरी तरह कार्यवाही करके अंतिम फ़ैसला किया जाएगा— सूरा-6, आ-130, 131, हा-100।
★ अल्लाह नेकी का बदला दस गुना और बुराई का बदला बराबर-बराबर देगा— सूरा-6, आ-160।
★ वहाँ किसी पर ज़ुल्म न होगा— सूरा-6, आ-160।
● **अख़लाक़**— देखें : अख़लाक़ी तालीमात।
● **अख़लाक़ी तालीमात**— सूरा-2, आ-108 से 110।
★ वे अख़लाक़ी बुराइयाँ ज़िन्हें मिटाना चाहता है— सूरा-2,आ-27,हा-32;सूरा-2,आ-35, हा-49,82से86।
★ माँ-बाप के साथ नेक सुलूक— सूरा-2, आ-83, 215; सूरा-4, आ-36; सूरा-6, आ-151, हा-129।
★ यतीमों (अनाथों) के साथ नेक सुलूक— सूरा-2, आ-83, 177, 215, 220, हा-236; सूरा-4, आ-2, 3, 36; सूरा-4, आ-127, हा-3, 4; सूरा-6 आ-152, हा-132।
★ निज़ामे-अख़लाक़ में तौबा की अहमियत— सूरा-2, हा-52।
★ वे भलाइयाँ जो क़ुरआन आदमी में पैदा करना चाहता है — सूरा-2, आ-83; सूरा-2, आ-177।
★ भलाइयों की तरफ़ सबक़त करो (एक-दूसरे से आगे बढ़ो)— सूरा-2, आ-148।
★ वे हिदायतें जो मुसलमानों को पूरी दुनिया की इमामत का मंसब सौंपते हुए दी गईं— सूरा-2, आ-153 से 157, हा-153 से 156।
★ ज़मीर से ख़ियानत करने की हालत— सूरा-2, आ-187, हा-191; सूरा-4, आ-107, हा-141।
★ धाँधली से माल हासिल करने की मनाही— सूरा-2, आ-188; सूरा-4, आ-29, हा-50।
★ अख़लाक़ में एहसान और इनफ़ाक़ की अहमियत— सूरा-2, आ-195, हा-208; सूरा-2, आ-215 अहमियत
★ हज में इस्लामी अख़लाक़ियात की तरबियत— सूरा-2, आ-197, हा-214, 215।
★ हज के सफ़र के लिए नेकी को ज़ादे-राह (यात्रा-ख़र्च) बनाने का हुक्म— सूरा-2, आ-197, हा-217।
★ दुनिया की भलाई आख़िरत की भलाई के साथ-साथ तलब करनी चाहिए— सूरा-2, आ-201; सूरा-2 आ-219
★ अख़लाक़ के लिए ख़ुदा के सामने पेशी के यक़ीन की अहमियत— सूरा-2, आ-203।
★ अल्लाह की रिज़ा (प्रसन्नता) के लिए जान की बाज़ी लगा देने वाला किरदार— सूरा-2, आ-207।
★ नेकी करने के लिए उस शऊर की अहमियत कि ख़ुदा हमारी कारगुज़ारियों को ख़ूब जानता है— सूरा-2, आ-215।
★ अहकाम में हुस्ने-अख़लाक़ की तरग़ीब का एहतिमाम— सूरा-2, आ-220।
★ इज़्दिवाजी (मियाँ-बीवी के) मामलों में इस्तिआरों (उपमाओं) की ज़बान इस्तेमाल करके हयादारी की तालीम देता है— सूरा-2, आ-222, हा-239।
★ अलाहदगी की सूरत में मियाँ-बीवी को अच्छे अख़लाक़ की तलक़ीन— सूरा-2, आ-229, हा-250।
★ अल्लाह की आयतों को खेल न बनाओ, उसकी किताब का एहतिराम करो— सूरा-2, आ-231, हा-255।
★ 'उम्मते-वसत' होने के अख़लाक़ी तक़ाज़ों की याददिहानी— सूरा-2, आ-231, हा-255।
★ एक-दूसरे के साथ फ़ैयाज़ाना (उदारतापूर्ण) बरताव— की तलक़ीन— सूरा-2, आ-236, 237, हा-261, सूरा-4, आ-24।
★ अल्लाह का कलिमा बुलन्द करने के लिए अख़लाक़ी बुलन्दी की ज़रूरत— सूरा-2, आ, 261, हा-298; सूरा-4।

★ इनफ़ाक़ के साथ एहसान धरने की मनाही— सूरा-2, आ-262।
★ दिखावे से बचने और ख़ुलूस पर कारबन्द रहने की नसीहत— सूरा-2, आ-264, 265; हा-303 से 305; सूरा-4, आ-38।
★ अमानतदारी की तलक़ीन— सूरा-2, आ-283।
★ दिल का गुनाह में लिप्त (आलूदा) होना— सूरा-2, आ-283।
★ शहादत (गवाही) को छुपाने की मनाही— सूरा-2, आ-283, हा-332।
★ अख़लाक़ में 'अपनी-अपनी कमाई' का उसूल— सूरा-2, आ-286, हा-339।
★ मक्का में मुसलमानों की अख़लाक़ी और रूहानी तरबियत के ख़ुतूत (सीमाएँ)— सूरा-2, हा-342।
★ इज्तिमाई क़ुव्वत में अख़लाक़ की अहमियत— सूरा-3, आ-13-16, हा-10।
★ दुनिया के फ़ायदे से निगाह ऊँची रखने की नसीहत— सूरा-3, आ-15, 16 और 145, हा-105।
★ मुख़ालिफ़ों को माफ़ करने, उनकी हरकतों की अनदेखी करने और एहसान करने का अख़लाक़ अल्लाह को पसंद है— सूरा-5, आ-13।
★ तंगनज़र लोग ख़ुदा को पसंद नहीं हैं— सूरा-2, आ-267, हा-308।
★ सदक़ात से अख़लाक़ की गन्दगियाँ दूर होती हैं— सूरा-2, आ-271।
★ ज़रूरतमन्दों की आगे बढ़कर मदद करने की ज़रूरत— सूरा-2, आ-273, हा-313।
★ बदहाली में वक़ार के साथ रहना— सूरा-2, आ-273।
★ हक़दारों को उनके मारे हुए हक़ लौटाने का जज़्बा— सूरा-2, हा-319।
★ दो तरह के इनसानी किरदारों का तक़ाबुल (तुलनात्मक अध्ययन) — सूरा-2, आ-274 से 281, हा-322।
★ लेन-देन में फैयाज़ाना (उदारतापूर्ण) बरताव की नसीहत— सूरा-2, आ-280 और 282।
★ कर्ज़दार के साथ नरमी की तलक़ीन— सूरा-2, आ-280 हा-324
★ पढ़े-लिखे आदमी की ज़िम्मेदारियाँ— सूरा-2, आ-282।
★ गवाही देने से इनकार न किया जाए— सूरा-2, आ-282।
★ गवाही के मोतबर (विश्वसनीय) होने के लिए अख़लाक़ी सीरत का लिहाज़— सूरा-2 आ-282, हा-328।
★ ग़ैरों को दोस्त और राज़दार बनाने की मनाही— सूरा-3, आ-118, हा-92; सूरा-4, आ-144।
★ सूदख़ोरी और इनफ़ाक़ से दो अलग-अलग क़िस्म की सीरतें बनती हैं— सूरा-3, हा-99
★ ग़लती के बाद फ़ौरन शर्मिंदा होने और सुधार करने की रविश— सूरा-3, आ-135; सूरा-4 आ-64; और 110।
★ अज़्म और हिम्मत ईमान के लिए लज़िमी औसाफ़ (गुण) हैं— सूरा-3, आ-139।
★ इस्लामी अख़लाक़ियात का फ़ैसलाकुन सवाल— सूरा-3, हा-105।
★ बातिल के मुक़ाबले में डटे रहने की तलक़ीन— सूरा-3, आ-146, 147, हा-107; सूरा-3, आ-200, हा-141; सूरा-4, आ-104।
★ हिर्स और लालच की अख़लाक़ी बुराइयां पर तबसिरा (आलोचना)— सूरा-3, आ. 152।
★ उहुद की जंग में पराजय अख़लाक़ी कमज़ोरियों का नतीजा थी— सूरा-3, आ-155।
★ हक़ के लिए जान की क़ुरबानी का जज़्बा— सूरा-3, आ-157 और 195।
★ नबी पर बदगुमानी की मनाही— सूरा-3, आ-161, हा-144।
★ ख़ियानत का अंजाम आख़िरत में— सूरा-3, आ-161।
★ अल्लाह की ख़ुशी चाहनेवाले और अल्लाह के ग़ज़ब में घिर जानेवाले बराबर नहीं हो सकते— सूरा-3, आ-162, 163।
★ ख़ुशहाल आदमी की कंजूसी मकरूह है— सूरा-3, आ-180; सूरा-4, आ-37, हा-63।
★ इश्तिआलअंगेज़ी (भड़काने और उकसाने) के जवाब में सब्र और ख़ुदातरसी पर जमे रहना हौसलामन्द लोगों का काम है— सूरा-3, आ-186, हा-131।
★ यतीमों के माल में अमानतदारी की ताकीद— सूरा-4, आ-2, हा-2, 3।
★ विरासत की तक़सीम के वक़्त वुसअते-क़ल्बी (उदारता) का मुज़ाहिरा (प्रदर्शन)— सूरा-4, आ-8, हा 13।
★ वसीयत में हक़तलफ़ी की मनाही— सूरा-4, आ-12, हा-24।

★ ज़ौजैन (पति-पत्नी) को भले तरीक़े से ज़िन्दगी बसर करने की ताकीद— सूरा-4, आ-19, हा-30।
★ 'अपने-आप को क़त्ल न करो' के तीन मफ़हूम— सूरा-4, आ-29, हा-51।
★ अल्लाह ने जो फ़ज़्ल किसी को ज़्यादा दिया हो उसकी तमन्ना न करो— सूरा-4, आ-32, हा-54।
★ इताअत-शिआर (आज्ञाकारिणी) बीवियों के साथ ख़ाह-म-ख़ाह मार-पीट न की जाए— सूरा-4, आ-34।
★ आपसी इस्लाह पसन्दी की ताकीद— सूरा-4, आ-35, हा-61।
★ माँ-बाप, रिश्तेदारों, यतीमों, मिस्कीनों और पड़ोसियों से अच्छा सुलूक— सूरा-4, आ-36, हा-62।
★ घमण्ड अल्लाह को पसंद नहीं— सूरा-4, आ-36।
★ कंजूस और कंजूसी का मुबल्लिग़ (प्रचारक) अल्लाह को पसंद नहीं— सूरा-4, आ-37।
★ इनसाफ और अमानत की ताकीद— सूरा-4, आ-58, हा-88।
★ मुसलमानों को हमेशा भलाई की सिफ़ारिश करनी चाहिए— सूरा-4, आ-85।
★ आपस में सलाम करने की ताकीद—सूरा-4, आ-86।
★ इनसाफ में भेदभाव को दख़ल नहीं होना चाहिए— सूरा-4, आ-105, हा-140।
★ नापसन्द बातों के लिए ख़ुफिया मशवरों की मनाही— सूरा-4, आ-108, आ-114।
★ अपने गुनाह दूसरों पर थोपने का अख़लाक़ी असर— सूरा-4, आ-112।
★ नजवा (ख़ुफ़िया बात-चीत) सिर्फ़ नेक कामों के लिए ही जाइज़ है— सूरा-4, आ-114।
★ तंगदिली से बचने की ताकीद— सूरा-4 आ-128, हा-159।
★ अल्लाह के लिए इनसाफ़ के साथ गवाही देने की ताकीद— सूरा-4, आ-135, हा-164, 165; सूरा-4, आ-8।
★ इनसाफ़ के अलम्बरदार (झण्डावाहक) बनो— सूरा-4, आ-135, हा-164।
★ बदगोई (अपशब्द बोलने) की मनाही— सूरा-4, आ-148।
★ बुराई के बदले भलाई करने या कम से कम दरगुज़र करने की ताकीद— सूरा-4, आ-149, हा-177।
★ सच्चाई पर क़ायम रहनेवाले बनो— सूरा-5, आ-8।
★ अल्लाह की हदों से आगे न बढ़ो— सूरा-5, आ-87, हा-105
★ अल्लाह पर भरोसा रखो— सूरा-5, आ-11
★ मुक़द्दमों में इनसाफ़ की ताकीद— सूरा-5, आ-42, हा-70।
★ भलाइयों में एक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश— करो— सूरा-5, आ-48।
★ शराब का हराम किया जाना— सूरा-5, आ-90, हा-109
★ जुए का हराम किया जाना— सूरा-5, आ-90, हा-198।
★ फ़ुज़ूल सवालों की मनाही— सूरा-5, आ-101, हा-116, 117।
★ दूसरों के माबूदों को बुरा-भला कहने की मनाही— सूरा-6, आ-108, हा-72।
★ खुले गुनाहों से भी बचो और छिपे गुनाहों से भी— सूरा-6, आ-120।
★ फ़वाहिश (अश्लीलता) के क़रीब भी न फटको— सूरा-6, आ-151, हा-130।
★ इनसान की जान का एहतिराम किया जाए— सूरा-6, आ-151, हा-131।
★ नाप-तौल पूरी रखने की ताकीद— सूरा-6, आ-152, हा-133।
★ बात इनसाफ़ के साथ कहो— सूरा-6, आ-152।
★ अल्लाह के अहद को पूरा करो— सूरा-6, आ-152, हा-134।

● **आज़माइश**

★ क़िबला बदलने में आज़माइश— सूरा-2, आ-143, हा-145।
★ हक़ की राह में आज़माइश ज़रूरी है— सूरा-2, आ-155, 214; सूरा-3, आ-186; सूरा-6, हा-80।
★ इनसान की दुनिया की ज़िन्दगी सरासर आज़माइश है— सूरा-2, हा., 228; सूरा-6, हा-141।
★ आज़माइश के लिए ग़ैब के पर्दे के क़ायम रहने की अहमियत— सूरा-2, आ-210, 228; सूरा-6, हा-6।
★ दुनिया की मरग़ूबात (आकर्षणों और प्रलोभनों) का आज़माइश की वजह होना— सूरा-3, आ-14।
★ हक़ के सच्चे दाइयों (सत्य के प्रति पूरी तरह समर्पित प्रचारकों) को छाँटने का ज़रीआ— सूरा-3, आ-140, 141, हा-101।
★ दिलों के खोट छाँटने के लिए आज़माइश ज़रूरी है— सूरा-3, आ-154।
★ उहुद के मैदान में चोट खाना मोमिनों और मुनाफ़िक़ों

की छँटाई का ज़रीआ बनी— सूरा-3, आ-166, 167।
★ आज़माइश के मरहलों में सब्र और तक़्वा की ज़रूरत— सूरा-3, आ-186, हा-131।
★ शरीअत के इख़्तिलाफ़ में आदमी का इम्तिहान— सूरा-5, आ-48, हा-81।
★ हक़ और बातिल की कश-मकश में आज़माइश— सूरा-6, हा-24।
★ दुनिया के अज़ाब के आने से पहले ख़ुदा की तरफ़ से ख़ुशहाली की आज़माइश आना— सूरा-6, आ-44।
★ ग़रीबों की ईमान में सबक़त (एक-दूसरे से आगे निकल जाना) बड़े लोगों के लिए आज़माइश बना दी— गई— सूरा-6, आ-53, हा-35।
★ अपने मुख़ातिबों के लिए आज़माइश बन गया है— सूरा-6, हा-70।
★ इनसान की आज़माइश का दारोमदार उसकी आज़ादी और इख़्तियार पर है— सूरा-6, आ-105, हा-71।
★ आज़माइश की हालत के ख़ातिमे पर ईमान लाना बेकार है— सूरा-6, आ-107, हा-139।

● **आदम (अलै.)**

★ मुक़द्दिमा तफ़हीमुल-क़ुरआन— सूरा-2, आ-31, 33 और 35।
★ जन्नत में उनका इम्तिहान और उसका मक़सद— सूरा-2, आ-35, हा-48।
★ जन्नत से निकाला जाना— सूरा-2, आ-36।
★ उनकी तौबा (क्षमा-याचना)— सूरा-2, आ-37, हा-51।
★ तौबा क़बूल होने के बावजूद जन्नत से क्यों निकाले गए?— सूरा-2, आ-38, हा-53।
★ जन्नत से विदा करते वक़्त अल्लाह तआला की हिदायत— सूरा-2 आ-38, 39।
★ आप से हज़रत ईसा (अलै.) की तश्बीह की वजह— सूरा-3, आ-59, हा-53।
★ आपके दो बेटों का क़िस्सा— सूरा-5, आ-27 से 31, हा-47-52।

(इ)

● **इबराहीम (अलै.)**

★ आप पर आलमगीर (विश्वव्यापी) दावत की ज़िम्मेदारी — सूरा-2, हा.-123।
★ आपकी नस्ल की दो बड़ी शाख़ें— सूरा-2, हा.-123।
★ आपका असल काम— सूरा-2, हा.-123।
★ इमामत का मंसब— सूरा-2, हा.-123
★ ख़ुदा की तरफ़ से आज़माइशों में आपका पूरा उतरना— सूरा-2, आ-124, हा.-124।
★ अपनी नसल से एक मुस्लिम (आज्ञाकारी) क़ौम और उसके अन्दर एक रसूल उठाए जाने की दुआ— सूरा-2, आ-128, 129।
★ आपका हक़ की दावत की ख़िदमत के लिए चुना जाना— सूरा-2, आ-130।
★ नबी (सल्ल.) की तरफ़ से इबराहीम के तरीक़े को अपनाने का एलान — सूरा-2, आ-135।
★ आप मुशरिक (बहुदेववादी) न थे— सूरा-2, आ-135; सूरा-3, आ-95, हा-78; सूरा-6, आ-161।
★ यहूदियत और ईसाइयत आपके बाद की पैदावार हैं— सूरा-2, हा-135; सूरा-3, हा.-58।
★ आपसे नमरूद की बहस— सूरा-2, आ-257 और 258।
★ मौत के बाद ज़िन्दगी की हक़ीक़त को अपनी आँखों से देखने की दरख़ास्त— सूरा-2, आ-260।
★ आपसे निस्बत का हक़ किन लोगों को पहुँचता है— सूरा-3, आ-68।
★ आपके तरीक़े की पैरवी का हुक्म— सूरा-3, आ-95; सूरा-4, आ-125।
★ आपकी औलाद को 'मुल्के-अज़ीम' बख़्शने का मफ़हूम— सूरा-4, आ-54, हा-86।
★ शिर्क के नज़रिए के ख़िलाफ़ आपकी कश-मकश— सूरा-6, आ-74 से 83, हा-50 से 55।
★ आपका ख़िताब अपने बाप से— सूरा-6, आ-74।
★ आपकी क़ौम के मज़हबी व तमद्दुनी (सांस्कृतिक) हालात— सूरा-6, हा-52, 55।
★ आपका ख़ुदा की निशानियों से सही इस्तिफ़ादा (मुनासिब फ़ायदा हासिल करना) — सूरा-6, हा-51, आ-76 से 78।
★ आप पर क़ुरैश का बेजा (अनुचति) फ़ख़्र व नाज़— सूरा-6, हा-50।
★ आपकी पैदाइश का ज़माना— सूरा-6, हा-52।
★ हक़ की तलाश के लिए आपका इब्तिदाई तफ़क्कुर (आरम्भिक चिन्तन)— सूरा-6, हा-53।
★ आपका शिर्क से इज़हारे-बेज़ारी— सूरा-6, आ-78, हा 53।
★ आपकी तौहीद की दावत की चोट कहाँ-कहाँ पड़ी— सूरा-6, हा-52।

★ क़ौम की तरफ़ से आपकी मुज़ाहमत और आपकी साबित-क़दमी— सूरा-6, आ-80।
★ क़ौम के सामने आपकी दलीलें— सूरा-6, आ-81, 82, हा-54।
★ इबराहीम की क़ौम ख़ुदा के वुजूद की मुनकिर न थी— सूरा-6, हा-55।
★ आपके लिए ख़ुदा की तरफ़ से नेक औलाद की नेमत— सूरा-6, आ-84, 85।
★ इबराहीम के दीन के बारे में अरबवालों के ग़लत मज़ऊमात (धारणाएँ)— सूरा-6, हा-109।
★ आपके तरीक़े की तारीफ़— सूरा-6, आ-161, हा-142।

● **इबलीस**
★ सजदे से उसका इनकार— सूरा-2, आ-34।
★ इबलीस लफ़्ज़ के मानी— सूरा-2, हा-46।
★ इसकी हक़ीक़त— सूरा-2, हा-46।

● **इहराम**
★ इसकी तशरीह (व्याख्या)— सूरा-5, हा-3।
★ इहराम की हालत की पाबन्दियाँ— सूरा-2, आ-197, हा-214 से 216; सूरा-5, आ-1, हा-3; आ-95 और 96, हा-110।
★ इहराम शआइरुल्लाह (अल्लाह की निशानियों) में से है— सूरा-5, आ-2, हा-5 से 7।
★ इहराम की हालत में शिकार करने का कफ्फ़ारा— सूरा-5, आ-95, हा-110।

● **इर्तिदाद (धर्म-त्याग)**
★ दुनिया व आख़िरत में तमाम आमाल को बर्बाद करने वाला गुनाह— सूरा-2, आ-217।
★ यहूदियों का ईमान लाने के बाद फिर कुफ़्र करना और उसका वबाल— सूरा-3, आ-86।
★ ईमान की नेमत पा कर फिर कुफ़्र न करने का अंजाम— सूरा-3, आ-106।
★ कुफ़्र और ईमान को खेल बना लेना— सूरा-4, आ-137, हा-168।

● **इज़्दिवाजी ज़िन्दगी** (वैवाहिक जीवन)
★ इनसानी तमद्दुन (संस्कृति) में इज़्दिवाजी ज़िन्दगी की अहमियत— सूरा-2, आ-102, हा-106—
★ इज़्दिवाज़ी ताल्लुक़ की नौईयत— सूरा-2, आ-187, हा-190 आ-222।
★ इज़्दिवाज़ी ज़िन्दगी के आदाब— सूरा-2, आ-222, 223, हा- 237।
★ महर के मामले में मियाँ-बीवी को फैयाज़ाना (उदारता-पूर्ण) बर्ताव की ताकीद— सूरा-2, आ-236, 237 हा-261।
★ बीवियों के नान-नफ़्क़े के लिए वसीयत करने का हुक्म— सूरा-2, आ-240।
★ कई बीवियों की सूरत में बीवियों के दर्मियान इनसाफ़ का हुक्म— सूरा-4, आ-3, हा-5 और 157।
★ बीवियों की तादाद पर पाबन्दी— सूरा-4, आ-3, हा-5।
★ बीवी का महर माफ़ करना— सूरा-4, आ-4, हा-7।
★ शादी के ताल्लुक़ को सब्र से निबाहना— सूरा-4, आ-19, हा-30।
★ महर में हक़मारी के लिए औरतों को तंग न किया जाए— सूरा-4, आ-19।
★ तलाक़ बिलकुल आख़िरी चारए-कार (उपाय) है— सूरा-4, हा-30।
★ इस्लामी समाज में मर्द की क़व्वामियत— सूरा-4, आ-34, हा-56।
★ औरत का नुशूज़— सूरा-4, आ-34, हा-59।
★ बेहतरीन बीवी की ख़ूबियाँ— सूरा-4, आ-34, हा-58।
★ शोहर की फ़रमाँबरदारी की हद— सूरा-4, हा-58।
★ मर्द पर औरत के नान-नफ़्क़े (भरण-पोषण) की ज़िम्मेदारी— सूरा-4, आ-34।
★ मियाँ-बिवी के ताल्लुक़ात के सुधार के लिए सालिसी (मध्यस्थता) का तरीक़ा— सूरा-4, आ-35, हा-60, 61।
★ नुशूज़ (सरकशी) की सूरत में औरत की सरज़निश (दण्ड) की आख़िरी हद— सूरा-4, आ-34, हा-59।
★ मियाँ-बीवी के लिए जुदाई से समझौता बेहतर है— सूरा-4, आ-128, हा-158।
★ बीवी के बीच दर्मियान इनसाफ़ के बर्ताव की हद— सूरा-4, आ-129, हा-161।
★ मियाँ-बीवी आपस में तंगदिली से बर्ताव न करें— सूरा-4, आ-128, हा-159।
★ बीवियों को अधर में छोड़ने की मनाही— सूरा-4, आ-129, हा-161। देखें : ईला, ख़ुलअ, रज़ाअत, तलाक़, इद्दत, महर, निकाह।

● **इस्लाम**
★ उसकी तशरीह— मुक़द्दमा सूरा-2, हा-130 और 132; सूरा-3 हा-71; सूरा-4, आ-77; सूरा-4, आ-125, हा-150; सूरा-6, आ-72।

★ असल दीन इस्लाम था और दूसरे धर्म इसी की शक्ल बिगाड़ने से बने— देखें : मुक़द्दिमा।
★ इस्लामी तहज़ीब के उसूल— सूरा-1, हा-1।
★ इस्लाम क़बूल करने की इब्तिदाई ज़ाहिरी अलामतें— सूरा-2, आ-172, हा-170।
★ उसकी इबादतों के निज़ामे-औक़ात (समय-प्रबन्धन)— की सादगी— सूरा-2, हा-192, 193।
★ मुकम्मल तौर पर उसके अन्दर आ-जाने की माँग— सूरा-2, आ-208, हा-226।
★ उसका मआशी नुक्तए-नज़र (आर्थिक दृष्टिकोण)— सूरा-2, आ-261, हा-298 से 300।
★ इस्लामी आक़ीदों और इस्लामी तर्ज़े-अमल (रवैये) का ख़ुलासा (सारांश)— सूरा-4, आ-162।
★ इसके सत्य होने की दलीलें— सूरा-3, आ-4 से 6 और 71।
★ अल्लाह के नज़दीक दीन सिर्फ़ इस्लाम है— सूरा-3, आ-19, हा-16; सूरा-5, आ-3, हा-16।
★ तमाम नबियों का दीन इस्लाम था— सूरा-3, हा-17।
★ उसकी तीन बुनियादी बातें— सूरा-3, हा-48।
★ वही एक दीने-हक़ है— सूरा-3, आ-85, हा-72।
★ इस्लाम के सिवा कोई और रविश अल्लाह के सामने क़बूल न होगी— सूरा-3, आ-85।
★ मुख़ालिफ़ों के एतिराज़ात और उनके जवाब सूरा-3, आ-93, हा-76, 79।
★ इस्लामी शरीअत (धर्म-विधान) इनसान की भलाई के लिए है— सूरा-4, आ-29, हा-52।
★ अक़ीदा और मसलक से आगे बढ़कर इसका रियासत बन जाना— सूरा-5 का परिचय (शाने-नुज़ूल)।
★ इस्लाम को क़बूल करने का मतलब— सूरा-5, हा-16।
★ इस्लामी शरीअत के अहकाम (आदेश) तंगी पैदा करने वाले नहीं हैं— सूरा-5, आ-6।
★ इसके मुक़ाबले में जाहिलियत की इस्तिलाह (पारिभाषिक शब्द)— सूरा-5, आ-50, हा-83।
★ इस्लाम के मुस्तक़बिल की कामयाबी के बारे में पेशगी इशारा— सूरा-6, आ-5, हा-4।
★ अल्लाह जिसे हिदायत देना चाहता है, उसका सीना इस्लाम के लिए खोल देता है— सूरा-6, आ-125।
★ इस्लाम के तमाम क़ानूनों में क्या उसूली पाबन्दियाँ लगाई गई हैं— सूरा-6, आ-151, हा-127-131।
★ इस्लाम टेढ़ से पाक दीन है— सूरा-6, आ-161।
★ यह इबराहीम (अलै.) का तरीक़ा है— सूरा-6, आ-161 हा-142।

● **इस्लामी रियासत**
★ इसके दस्तूर (संविधान) की सबसे पहली दफ़ा (धारा) और उसकी तफ़सीलात— सूरा-4, आ-59, हा-89।
★ इस्लामी रियासत के हाकिम— सूरा-4, हा-89 और आ-59, हा-83।
★ इस्लामी रियासत और इक़ामते-सलात (नमाज़ की स्थापना)— सूरा-4, हा-89।
★ इसके लिए आख़िरी सनद— सूरा-4, आ-59, हा-89।
★ हुकूमत और अवाम के दर्मियान निज़ाअ (झगड़े) का हल— सूरा-4, हा-89।
★ इमाम ही को नमाज़ की इमामत करनी चाहिए— सूरा-4, आ-102।
★ मदीना की इस्लामी रियासत का फैलाव— सन 6 और 7 हिजरी में, सूरा-5, अल-माइदा (शाने-नुज़ूल)।
★ इस्लामी कानून से बग़ावत की सज़ा— सूरा-6, आ-33, हा-55।
★ शराब की पाबन्दी इस्लामी हुकूमत की लाज़िमी ज़िम्मेदारियों में से है— सूरा-5, आ-90, हा-109।

● **इकरिमा** (इब्ने-अबी-जबल) के इस्लाम क़बूल करने का वाक़िआ — सूरा-6, हा-29।

● **इस्लामी निज़ामे-जमाअत**
★ अमीर बनाए जाने के लिए मतलूबा औसाफ़ (गुण)— सूरा-3, आ-159।
★ शूरा (मामलों में मशवरा करने) की अहमियत— सूरा-3, आ-159।
★ समअ व इताअत (सुनने और आज्ञा मानने) का निज़ाम— सूरा-4, हा-89, आ-59।
★ अफ़वाहें फैलाने का बिगाड़— सूरा-4, आ-83।

● **आसमान**
★ सात असामानों का मतलब—सूरा-2, आ-29, हा-34।

● **इक़ामते-दीन**
★ अल्लाह की मदद करने का मतलब— सूरा-3, आ-52, हा-50।
★ अम्र-बिल मअरूफ़ और नही-अनिल मुनकर (अच्छाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना) कामयाबी का ज़रीआ है— सूरा-3, आ-104।
★ मुसलमानों पर अच्छाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने की ज़िम्मेदारी एक भलाई करनेवाली उम्मत

की हैसियत से— सूरा-3, आ-110, हा-88।
★ ईमान का तक़ाज़ा (अपेक्षाएँ)— सूरा-3, आ-113 से 115।
★ किताबवालों पर तौरात व इंजील को क़ायम करने की ज़िम्मेदारी— सूरा-5, आ-66, हा-97।
★ 'अलैकुम अनफ़ुस-कुम' का मक़सद अच्छाई का हुक्म देने और बुराई से रोकने की ज़िम्मेदारी की मनाही नहीं है— सूरा-5, आ-105, हा-119।
★ दीन को कायम करने के लिए मुज़ाहमत (संघर्ष) लाज़िमी है— सूरा-6, हा-80।
● **इक़ामते-सलात** (नमाज़ क़ायम करना)— देखें : नमाज़।
● **इलियास (अलै.)**
★ उनकी मज़लूमाना जिलावतनी— सूरा-2, हा-79।
● **इमामत**
★ यह इबराहीम के नुत्फ़े (औलाद) की मीरास नहीं बल्कि सच्ची इताअत व फ़रमाँबरदारी का फल है— सूरा-2, हा-123।
★ इमामत के मंसब से बनी इसराईल की माज़ूली— सूरा-2, हा-123।
★ इमामत की तब्दीली और क़िबले (काबा) की तब्दीली— सूरा-2, हा-123।
★ इमामत ज़ालिमों को नहीं मिल सकती— सूरा-2, आ-124, हा-125।
★ नेक इमामत और दुनिया के रिज़्क़ के हक़दार होने में फ़र्क़— सूरा-2, आ-126, हा-127।
★ कुरैश के मुशरिक भी बनी-इसराईल की तरह इमामत के हक़ से अलग कर दिए गए— सूरा-2, आ-125, हा-126।
★ मुहम्मद (सल्ल.) की उम्मत की इमामत का एलान— सूरा-2, आ-143, हा-144; सूरा-3, आ-110, हा-88
★ इसके लिए लफ़्ज़ नेमत का इस्तेमाल— सूरा-2, आ-150, हा-151।
★ मुसलमानों को यह मंसब देते हुए अव्वलीन हिदायतें जो दी गईं— सूरा-2, आ-153, से 156, हा-153 से 156।
★ इसके लिए "मुल्के-अज़ीम" के लफ़्ज़ का इस्तेमाल— सूरा-4, आ-54, हा-86।
● **इम्तिहान**— देखें : आज़माइश।
● **इंजील**
★ ख़ुदा की तरफ़ से हिदायत देनेवाली किताब— सूरा-3, आ-3, हा-2।
★ हिदायत और रौशनी का सरचश्मा थी— सूरा-5, आ-46।
★ तौरात के बाक़ी रह गए हिस्सों (जो सत्य उसमें बाक़ी रह गया था) की तसदीक़ करनेवाली— सूरा-5, आ-46, हा-76
★ क़ुरआन किस इंजील की तसदीक़ करता है— सूरा-3, हा-2।
● **इनसान**
देखें : मुक़द्दिमा, सूरा-2, आ-30, हा-38; सूरा-2, हा-275।
★ कायनात में उसकी हैसियत— मुक़द्दिमा (2); सूरा-2, हा-36, आ-253 से 254, हा-275।
★ अल्लाह से उसके ताल्लुक़ की नौईयत— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसकी दुनयवी ज़िन्दगी की हक़ीक़त— देखें : मुक़द्दिमा। परिशिष्ट (2); सूरा-2, हा-228, 309; सूरा-3, आ-145, हा-105, 106 और 130; सूरा-6, आ-32, हा-20।
★ दुनिया में उसके लिए सही रवैया क्या है— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसके सही और ग़लत रवैये का अंजाम— देखें : मुक़द्दिमा।
★ ज़मीन पर उसकी ज़िन्दगी की शुरुआत जिहालत के अँधेरे में नहीं, बल्कि इल्म की रौशनी में हुई— देखें : मुक़द्दिमा; सूरा-2 आ-38, 213 और हा-230।
★ उसका असुल मज़हब इस्लाम था— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसके इस्लाम से हटकर दूसरे मज़हबों में भटक जाने की वजहें— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसका बिगाड़ किस तरह शुरू हुआ— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसकी असुल— सूरा-2, हा-38; सूरा-4, आ-1, हा-1।
★ उसकी ख़िलाफ़त पर फ़रिश्तों के एतिराज़ की हक़ीक़त— सूरा-2, आ-30, हा-39 से 43।
★ उसको किस नौईयत का इल्म दिया गया है— सूरा-2, आ-32, 33, हा-43, 44।
★ इनसानी ख़िलाफ़त की हक़ीक़त— सूरा-2, आ-33, हा-44।
★ उसके पैदाइशी गुनहगार होने का ग़लत तसव्वुर— सूरा-2, हा-53।

- ★ उसकी नजात और हलाकत का मदार किस चीज़ पर है— सूरा-2, आ-38, 208 और 209, हा-52।
- ★ उसकी नजात का मदार किस चीज़ पर है— सूरा-2, आ-62 और 141, हा-80।
- ★ कभी-कभी इनसान का इल्म दूररस नतीजों को हावी न होने की वजह से अहकाम की मसलिहतों को नहीं समझ सकता— सूरा-2, आ-216।
- ★ ख़ुदा के सामने उसकी ज़िम्मेदारी इस्तिताअत (सामर्थ्य) के मुताबिक़ है— सूरा-2, आ-286, हा-338।
- ★ इनसानी बराबरी का इस्लामी तसव्वुर— सूरा-3, आ-195, हा-139।
- ★ शरीअत में इनसानी कमज़ोरियों का लिहाज़— सूरा-4, आ-28।
- ★ इसकी इज्तिमाई ज़िन्दगी में फ़ितरी नाबराबरी— सूरा-4, आ-32, हा-54।
- ★ इसके मसलों की पेचीदगियाँ— सूरा-5, हा-35
- ★ इनसानी फ़ितरत (स्वभाव) की कमज़ोरियाँ— सूरा-5, हा-35।
- ★ इनसानी तारीख़ का असन्तुलन— सूरा-5, हा-35।
- ★ इसकी फ़ितरत राहे-रास्त की तलबगार है— सूरा-5, हा-35।
- ★ इसके इतिहास के बारे में जदली अमल (कश-मकश) का ग़लत नज़रिया— सूरा-5, हा-53।
- ★ इनसानी तारीख़ में क़त्ल का पहला वाक़िआ— सूरा-5, आ-30।
- ★ बाक़ी रहने और अमन से रहने के लिए इनसानी जान के एहतिराम की अहमियत— सूरा-5, आ-32, हा-54।
- ★ उसकी ज़िन्दगी में हक़ व बातिल की कश-मकश— सूरा-5, आ-35, हा-59।
- ★ इनसानी क़ौम और समाजों के बिगाड़ का तरीक़ा— सूरा-5, आ-78, हा-102।
- ★ उसके लिए सही क़द्र व क़ीमत के मेयार— सूरा-5, आ-100, हा-115।
- ★ उसका जिस्म ज़मीन के अज्ज़ा (तत्वों) पर मुश्तमिल है— सूरा-6, आ-2, हा-2।
- ★ हक़ का इनकार करके इनसान अपनी ही बर्बादी का सामान करता है— सूरा-6, आ-26।
- ★ उसका असल ठिकाना आख़िरत में है— सूरा-6, आ-32।
- ★ उसके लिए हिदायत देने और गुमराह करने के लिए ख़ुदा का निज़ाम— सूरा-6, हा-24।
- ★ उसकी दो बड़ी क़िस्में— सूरा-6, हा-28।
- ★ उसके नफ़्स में तौहीद की गवाही— सूरा-6, हा-29।
- ★ पूरी नसले-इनसानी एक ही रूह से पैदा हुई है— सूरा-6, आ-98, हा-65।
- ★ इसकी तख़लीक़ और उसकी नसल के बढ़ोतरी में हक़ीक़त के सबब— सूरा-6, हा-66।
- ★ आज़ादी और इख़्तियार में उसकी आज़माइश है— सूरा-6, आ-107, हा-71।
- ★ उसका इल्म से हटकर क़यास आराइयां (गुमानों) में मुब्तला होना— सूरा-6, आ-116 और 119, हा-83।
- ★ उसका शैतानों के हाथों में खेलना— सूरा-6, आ-128, हा-94।
- ★ ख़ुदा की इताअत में उसका अपना फ़ायदा है और उसकी नाफ़रमानी में उसका अपना नुक़सान है— सूरा-6, हा-101।
- ★ उसके लिए हिदायत का सामान फ़राहम करना अल्लाह की मेहरबानी है— सूरा-6, हा-101।
- ★ अल्लाह के यहाँ इनसानों के मुख़्तलिफ़ दर्जे अमल के लिहाज़ से— सूरा-6, आ-132।
- ★ ख़ुदा ने फ़रिश्तों की तरह इनसान को पैदाइशी तौर पर सीधे रास्ते पर चलनेवाला नहीं बनाया है— सूरा-6, हा-125।
- ★ उसका अपने ख़ुदा से फ़ितरी अहद— सूरा-6, आ-152, हा-134।
- ★ उस पर फ़ितरी तौर पर ख़ुदा के हुक़ूक़ लागू होते हैं— सूरा-6, हा-134।
- ★ उसके लिए ख़ुदा की हिदायत की अहमियत— सूरा-6, आ-153, हा-153।
- ★ इनसानों का झगड़ालू गरोहों में बँट जाना— सूरा-6, आ-159, हा-141।
- ★ उसकी दुनयवी ज़िन्दगी के बारे में तीन अहम हक़ीक़तें— सूरा-6, आ-165, हा-146।

● **इनामे-इलाही**

- ★ हक़ीक़ी और ज़ाहिरी नेमतों का फ़र्क़— सूरा-1, हा-10।
- ★ अल्लाह की नेमत को शक़ावत (बदक़िस्मती) से बदलने की सज़ा— सूरा-2, आ-211।
- ★ नबियों, सिद्दीक़ों, शहीदों और नेक लोगों का इनाम-याफ़्ता होना— सूरा-4, आ-69।

★ इसके लिए ख़ुदा और रसूल की इताअत शर्त है— सूरा-4, हा-98।
★ नेमत पूरी करने का मतलब— सूरा-5, आ-6, हा-27।
★ बनी-इसराईल पर अल्लाह के इनाम— सूरा-5, आ-20, हा-42, सूरा-2, आ-40, हा-56, आ-47, हा-62।
● **इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह** (अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करना)
★ दीन के निज़ाम में इनफ़ाक़ (ख़र्च करने) की अहमियत— सूरा-2, आ-3, हा-6।
★ इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह के रास्ते— सूरा-2, आ-177।
★ इससे रुकना इज्तिमाई हलाकत का मूजिब (कारण) है— सूरा-2, आ-195, 207।
★ क्या ख़र्च किया जाए और किन कामों में किया जाए— सूरा-2, आ-215।
★ बचतों के ख़र्च करने का हुक्म— सूरा-2, आ-219।
★ अल्लाह को क़र्ज़े-हसन (अच्छा कर्ज़) देने का मतलब —सूरा-2, आ-245, हा-267; सूरा-5, आ-12, हा-33।
★ अल्लाह के रास्ते में ख़र्च किए हुए माल का फलना-फूलना— सूरा-2, आ-245, 261, 265, हा-267।
★ यह आख़िरत में नजात का ज़रीआ होगा— सूरा-2, आ-254।
★ इसके लिए बड़ा मैदान— सूरा-2, हा-299।
★ 'इनफ़ाक़-मन्न-व-अज़ा' से पाक होना चाहिए (यानी माल ख़र्च करके न एहसान जताया जाए और न दुख पहुँचाया जाए।)— सूरा-2, आ-262।
★ दिखावे के लिए किये गए इनफ़ाक़ का अंजाम— सूरा-2, आ-264, 266; सूरा-4, आ-38।
★ अच्छे माल का मुतालबा— सूरा-2, आ-267।
★ इनफ़ाक़ खुले तौर पर भी किया जाए और छिपे तौर पर भी— सूरा-2, आ-271 और 274, हा-311; सूरा-2, आ-274।
★ बुराइयों को दूर करने का ज़रीआ— सूरा-2, आ-271, हा-312।
★ इसमें इनसान का अपना भला है—सूरा-2, आ-272।
★ ग़ैर-मुस्लिमों की मदद— सूरा-2, हा-313 ।
★ माली मदद के सबसे ज़्यादा हक़दार कौन लोग हैं?— सूरा-2, आ-273, हा-314।
★ इसके अख़लाक़ी, मआशी और तमद्दुनी फ़ायदे— सूरा-2, आ-276, हा-320।
★ सूद के अख़लाक़ी, रूहानी, मआशी और तमद्दुनी नतीजों से इसका मुवाज़ना (तुलना)— सूरा-2, हा-320।
★ नेकी के दरवाज़े की कुंजी— सूरा-3, आ-92, हा-75।
★ सबसे ज़्यादा प्यारे मालों को ख़र्च करने का मतालबा— सूरा-3, आ-92।
★ कंजूसी का आख़िरत में अंजाम— सूरा-3, आ-180।
★ मुख़ालिफ़ों की ज़्यादतियों पर भड़क कर नारवा ज़्यादतियाँ न करो— सूरा-5, आ-2।
★ सदक़ा कफ़्फ़ारे के तौर पर— सूरा-5, आ-45, 89 हा-75 और 106।
● **इबादत**
★ उसके तीन मफ़हूम— सूरा-1, आ-4, हा-6।
★ सिर्फ़ अल्लाह ही की इबादत— सूरा-1, आ-4; सूरा-2, 21, आ-138; सूरा-3, आ-64; सूरा-4, आ-36; सूरा-5, आ-76; सूरा-6, आ-102।
★ ताग़ूत की इबादत लानत का सबब है— सूरा-5, आ-60, हा-91।
★ ग़ैरुल्लाह की इबादत मना है— सूरा-2, आ-83; सूरा-6, आ-56।
★ हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) अपनी औलाद से अहद (वचन) लेते हैं कि वे सिर्फ़ अल्लाह की इबादत करेंगे— सूरा-2, आ-133।
★ इबादत क़ानून की इताअत के माने में— सूरा-2, आ-172, हा-170।
★ मसीह (अलै.) की दावत अल्लाह ही की बन्दगी की तरफ़ थी— सूरा-3, आ-51 हा-48; सूरा-5, आ-72, और 117।
★ इबादत का मुस्तहिक़ सिर्फ़ वह है जो नफ़े-नुक़सान का इख़्तियार रखता हो— सूरा-5, आ-76।
★ अहले-किताब को की दावत कि सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी करो— सूरा-3, आ-64।
★ अल्लाह की इबादत से मुँह मोड़ना अज़ाब का सबब है— सूरा-4, आ-172।
★ किसी की बे चूँ-चरा इताअत उसकी इबादत है— सूरा-4, आ-117, हा-145।
● **इद्दत**
★ (शौहर की) वफ़ात की सूरत में— सूरा-2, आ-234, हा-259।
★ तलाक़ की सूरत में— देखें : तलाक़।
● **इमरान** (इमराते-इमरान) के दो मफ़हूम— सूरा-3, हा-32

● इस्तिबाग़ (रंग में रंगना)— सूरा-2, आ-138, हा-137।

● इज़्तिरार (बेचैनी)

★ इस हालत में हराम खाने की इजाज़त और उसकी शर्तें— सूरा-2, आ-173, हा-172 सूरा-5, आ-3; सूरा-6, आ-119 और 145।

(ई)

● ईला

★ इसका मफ़हूम इस्लामी शरई इस्तिलाह की हैसियत से— सूरा-2, आ-226, हा-245।

★ इसके अहकाम— सूरा-2, आ-226, 227; हा-245 से 248।

● ईमान

★ इसके साथ नेक अमल का ताल्लुक़— सूरा-2, आ-25।

★ अल्लाह की किताब को पूरे तौर पर मानना— सूरा-2, आ-85।

★ वे काम जो ईमान वालों को नहीं करने चाहिएँ— सूरा-2, हा-107, 108, आ-104 हा-110

★ सभी नबियों की तालीम पर ईमान लाने का मुतालबा— सूरा-2, आ-136; सूरा-3, आ-84; सूरा-4, आ-152।

★ उसके तक़ाज़े— सूरा-2, हा-164, आ-170, 172, 218, 221, 228, 232, 254, 264, 286, सूरा-3, आ-28; 100, 101, 102, 103, 104, 130, 140, 156, 160, सूरा-4, आ-29, 36, 37, 59, 68, 76, 92, 94, 135, 144, 162, सूरा-5, आ-2, 8, 10, 23, 35, 51, 54-57, 90, 93, सूरा-6, आ-118

★ ईमानवालों की सिफ़ात और उनकी पहचान— सूरा-2, आ-177; सूरा-3, आ-16, 17, हा-13; सूरा-4, आ-115; सूरा-5, आ-5।

★ 'अल्लाह पर ईमान' के लिए 'तागूत से कुफ़्र' की अहमियत— सूरा-2, आ-256।

★ ईमान के होते हुए इत्मीनान की तलब— सूरा-2, आ-260, हा-296।

★ दिखावा अल्लाह पर ईमान और आख़िरत पर ईमान की ज़िद है— सूरा-2, आ-264, हा-303।

★ ईमानयात की तफ़सील— सूरा-2, आ-285, हा-337; सूरा-3, आ-84; सूरा-4, आ-136।

★ सुनना और मानना ईमान का तक़ाज़ा है— सूरा-2, आ-285; सूरा-4, आ-60।

★ ईमान लानेवालों के सोचने का अन्दाज़— सूरा-3, आ-7 और 8।

★ ईमानवाले काफ़िरों (नाफ़रमानों) को अपना दोस्त व राज़दार न बनाएँ— सूरा-3, आ-28; सूरा-5, आ-51।

★ उसके नतीजे— सूरा-3, आ-139; और 169 से 171।

★ मोमिन का ईमान मुख़ालिफ़तों के मुक़ाबले में और बढ़ता है— सूरा-3, आ-173।

★ अल्लाह के सिवा किसी और से न डरना ईमान की शर्त है— सूरा-3, आ-175।

★ ईमान की आज़माइश ज़रूरी है— सूरा-3, आ-179, सूरा-2, आ-155।

★ ग़ैब के मामलों की हद तक ख़ुदा और रसूल पर ईमान लाने के सिवा कोई चारा नहीं— सूरा-3, आ-179

★ मुसलमानों के ऊँचे दर्जे के लिए इम्तियाज़ की असूल वजह ईमान है— सूरा-4, हा-45।

★ रसूल का सभी मामलों में हुक्म मानना ईमान की शर्त है— सूरा-4, आ-64, 65, हा-94।

★ ईमानवाले सिर्फ़ अल्लाह की राह में लड़ने हैं— सूरा-4, आ-76, हा-105।

★ तागूत की राह में लड़ना ईमान के ख़िलाफ़ है— सूरा-4, आ-76, हा-105।

★ कमज़ोरी की बिना पर अपने ईमान के तक़ाज़ों से बचनेवालों का अंजाम— सूरा-4, आ-97।

★ ईमानवालों से मुतालबे (अपेक्षाएँ)— सूरा-4, आ-135।

★ ईमानवालों को इनसाफ़ का अलमबरदार (झण्डा-वाहक) होना चाहिए— सूरा-4, हा-164।

★ ईमान लाने के दो मफ़हूम— सूरा-4, हा-166।

★ मोमिनों में शामिल वह है जो अपने दीन को अल्लाह के लिए ख़ालिस कर ले—सूरा-4, आ-146, हा-174।

★ शुक्र और ईमान का ताल्लुक़ पाबन्द— सूरा-4, आ-147, हा-175।

★ ईमान के साथ शरई बन्दिशों की पाबन्दी ज़रूरी है— सूरा-5, आ-1, हा-1।

★ उसी पर हराम व हलाल की हदों की पाबन्दी का दारोमदार है— सूरा-5, आ-3, हा-13।

★ ईमान की रविश पर चलने से इनकार करने का आख़िरत में अंजाम— सूरा-5, आ-5।

★ ईमानवालों को किन ताक़तों से टकराना पड़ेगा— सूरा-5, आ-35, हा-59।

★ ईमान सिर्फ़ ज़बानी दावे का नाम नहीं— सूरा-5, आ-41।
★ अल्लाह के क़ानून से रू गर्दानी ईमान के ख़िलाफ़ है— सूरा-5, आ-43।
★ अल्लाह को कैसे ईमानवाले मतलूब हैं— सूरा-5, आ-54।
★ ईमानवालों की दोस्ती का हल्क़ा— सूरा-5, आ-55।
★ दीन का मज़ाक़ उड़ाने वालों से दोस्ती ईमान के ख़िलाफ़ है — सूरा-5, आ-57, हा-89।
★ कौन से अमल ईमान के न होने की गवाही देते हैं— सूरा-5, आ-61, 62।
★ (ईमान पर) किसी का इजारा (एकाधिकार) नहीं— सूरा-5, आ-69।
★ उसकी एक खुली पहचान— सूरा-5, आ-81।
★ ईमान क़बूल करने के लिए सही जज़्बात (भावनाओं) की तस्वीर— सूरा-5, आ-83।
★ हराम और हलाल की तमीज़ ईमान का लाज़िमा (अनिवार्य अंग) है— सूरा-5, आ-87, हा-104।
★ ईमानवालों पर असल ज़िम्मेदारी अपनी ज़ात की है— सूरा-5, आ-105, हा-119।
★ ईमान लाने की मुहलत उसी वक़्त तक है जब तक हक़ीक़त ग़ैब के परदे में है— सूरा-6, आ-78, हा-6, आ 158।
★ हक़ की दावत पर कैसे लोग लब्बैक कहते हैं— सूरा-6, आ-36।
★ जान-बूझ कर इख़्तियार किया गया ईमान ही मतलूब (अपेक्षित) है— सूरा-6, आ-35, हा-24; हा-80।
★ (ईमान) दुनिया और आख़िरत में ख़ौफ़ और रंज से बचाने का ज़रीआ है— सूरा-6, आ-48।
★ ईमानवालों के साथ नबी (सल्ल.) को किस रवैये की हिदायत की गई— सूरा-6, आ-54।
★ ईमानवालों के लिए ही दुनिया व आख़िरत में हक़ीक़ी अमन है— सूरा-6, आ-82।
★ ईमान को ज़ुल्म से आलूदा (प्रदूषित) करने का मतलब— सूरा-6, हा-55।
★ ईमान हक़ीक़त तक पहुँचने की कुंजी है— सूरा-6, आ-99।
★ इनकार करने वालों को मोजिज़ों से ईमान हासिल नहीं होता— सूरा-6, आ-109, हा-74।
★ कैसे लोग ईमान से महरूम रहते हैं— सूरा-6, आ-111, हा-78।
★ ईमान न लानेवालों पर उनकी नापाकी का मुसल्लत होना— सूरा-6, आ-125।

● **ईसा** (अलै.)
★ आपके ख़िलाफ़ बनी-इसराईल की ज़्यादतियाँ— सूरा-2, हा-79; सूरा-4, आ, 156, हा-190।
★ आपके फ़ज़ाइल— सूरा-2, आ-87, हा-93।
★ आपकी मदद के लिए रूहुल-क़ुदुस— सूरा-2, आ-253।
★ आपको अल्लाह का फ़रमान क्यों कहा-गया— सूरा-3, आ-39, हा-39।
★ मोजिज़े के तौर पर पैदाइश की वजह से आप इलाह नहीं क़रार पा सकते — सूरा-3, हा-42; सूरा-5, आ-17, हा-40।
★ आपकी मोजिज़े के तौर पर पैदाइश — सूरा-3, आ-45 से 47, हा-44; सूरा-4, आ-156, हा-190।
★ आपके ख़ास मोजिज़े— सूरा-3, आ-49।
★ आप तौरात और इंजील की तालीम देने आए थे— सूरा-3, आ-48।
★ आप तौरात की तसदीक़ करनेवाले थे— सूरा-3, आ-50; सूरा-5, आ-46।
★ वही दीन लाए थे जो मूसा और दूसरे नबियों (अलै.) का दीन था— सूरा-3, आ-50, हा-46।
★ आपकी असल दावत— सूरा-3, आ-50 और 51, हा-47, 48; सूरा-5, आ-72, और 117।
★ बाइबल में आपकी दावत के आसार— सूरा-3, हा-48।
★ बनी-इसराईल के कुफ़्र पर आपका "मन अनसारि इलल्लाह" (कौन है अल्लाह की तरफ़ मेरा मददगार) की आम पुकार बुलन्द करना— सूरा-3, आ-52, हा-50।
★ 'तवफ़्फ़ी' का मफ़हूम— सूरा-3, हा-51; सूरा-4, हा-195।
★ आपका उठाया जाना— सूरा-3, आ-55, हा-51।
★ अल्लाह की तरफ़ से आपको मुनकिरों पर फ़ौक़ियत देने का वादा— सूरा-3, आ-55।
★ आदम (अलै.) से आपकी तश्बीह की वजह— सूरा-3, आ-59, हा-53।
★ आपकी दावत वही थी जो मुहम्मद (सल्ल.) ने दी थी— सूरा-3, आ-54।
★ आपके क़त्ल होने और सलीब दिए जाने की तरदीद— सूरा-4, आ-157, हा-193।
★ सलीब के वाक़िए से पहले आपका उठाया जाना— सूरा-4, आ-157, हा-193।

★ वाक़िआ-रफ़अ की ग़ैर-मामूली नौईयत— सूरा-4, आ-158, हा-195।
★ आपकी मौत के पहले तमाम अहले-किताब के आप पर ईमान लाने का मफ़हूम— सूरा-4, आ-159, हा-196।
★ आपके बारे में अहले-किताब का ग़ुलू (हद से आगे बढ़ना)— सूरा-4, आ-171, हा-211।—
★ आपके कलिमतुल्लाह होने और मरयम पर भेजे जाने का मफ़हूम— सूरा-4, आ-171, हा-212।
★ 'रूहुम-मिन्हु' का मतलब— सूरा-4, आ-171, हा-213।
★ इंजील में आपके अक़वाल (कथन) तौहीद पर मुश्तमिल हैं— सूरा-4, हा-215।
★ आपका मक़ाम अबदियत है— सूरा-4, आ-172।
★ ईसाइयों का आपको ख़ुदा क़रार देना— सूरा-5, आ-17, हा-39।
★ आप और आपकी माँ अल्लाह की बे इख़्तियार रईयत हैं— सूरा-5, आ-17।
★ आपकी हैसियत ख़ुदा का रसूल होने से ज़्यादा कुछ नहीं थी— सूरा-5, आ-75।
★ आपका और आपकी माँ का इनसान होना— सूरा-5, आ-75।
★ शैतान के ज़रीए आपकी आज़माइश— सूरा-5, हा-100।
★ ईसाइयों के एक ख़यालो ईसा (मसीह) घड़ने की दास्तान— सूरा-5, हा-101।
★ आपके सारे मोजिज़े अल्लाह की मर्ज़ी से ज़ाहिर हुए— सूरा-5, आ-110।
★ आप पर हवारियों का ईमान लाना— सूरा-5, आ-111, हा-127।
★ आसमानी ख़्वान के लिए आपकी दुआ— सूरा-5, आ-114।
★ आप पर आख़िरत में अल्लाह की जिरह— सूरा-5, आ-116।
★ आख़िरत में आपका सफ़ाई का बयान— सूरा-5, आ-116 और 117।
★ अपनी उम्मत के लिए आपकी आजिज़ाना लतीफ़ शफ़ाअत— सूरा-5, आ-118।
● **ईसाई**
★ मसीह के इब्तिदाई पैरो ईसाई नहीं बल्कि मुसलिम थे— सूरा-3, आ-52।
★ ईसाइयों के सामने क़ुरआन की तीन तशरीहात— सूरा-3, हा-54।
★ उनसे अहद लिया गया और उन्होंने अहद को तोड़ा— सूरा-5, आ-14।
★ लफ़्ज़ नसारा की तशरीह— सूरा-5, आ-14, हा-36।
★ उनका यह ज़ोम कि हम अल्लाह के बेटे और चहेते हैं— सूरा-5, आ-18।
★ उनको अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला करने का हुक्म— सूरा-5, आ-47, हा-77।
★ उनका अक़ीदए-तसलीस (त्रिवाद) कुफ़्र है— सूरा-5, आ-73, हा-100।
★ उनका एक ख़याली (मसीह) घड़ लेना— सूरा-5, हा-101।
★ इस्लाम और मुसलमानों के साथ उनके सलीमुल-फ़ितरत उनूसुर का रवैया— सूरा-5, आ-82 और 83, हा-103।
★ हज़रत ईसा (अलै.) ने उनको तौहीद की दावत दी थी, न कि तस्लीस (त्रिवाद) की— सूरा-5, आ-117।
● **ईसाइयत**
★ हज़रत मसीह के बाद पैदा हुई— सूरा-2, हा-135।
★ उसके बातिल होने पर क़ुरआन का एक लतीफ़ इस्तिदलाल— सूरा-2, आ-135, आ-140, हा-135।
★ उसकी बुनियादी गुमराही— सूरा-3, हा-31।
★ ईसा (अलै.) की मोजिज़ाना पैदाइश की वजह से ईसाइयों का बुनियादी मुग़ालता— सूरा-3, हा-42।
★ हज़रत ईसा (अलै.) के बारे में अक़ीदए-उलूहियत पैदा होने के अस्बाब— सूरा-3, हा-51
★ हज़रत इबराहीम (अलै.) के बहुत बाद पैदा हुई— सूरा-3, हा-58।
★ वाक़िआ-सलीब के बारे में ईसाइयों के इख़्तिलाफ़ात- सूरा-4, आ-157, हा-194।
★ अक़ीदए-तसलीस— सूरा-4, आ-171, हा-213 और 215; सूरा-5, आ-73।
★ कफ़्फ़ारे का अक़ीदा और उसकी तरदीद— सूरा-4, हा-216।
★ मसीही फ़ल्सफ़े (दर्शन) पर रेवरेण्ड चार्ल्स एण्डर्सन स्कॉट का तब्सिरा (समीक्षा)— सूरा-5, हा-101।
★ मसीही कलीसा के अक़ीदे पर रेवरेण्ड जॉर्ज विलियम नॉक्स की बहस— सूरा-5, हा-101।
★ उलूहियते-मसीह (मसीह के ख़ुदा होने) के अक़ीदे का नश्व-व-इर्तिक़ा (विकास)— सूरा-5, हा-101।
★ उलूहियते-मरयम (मरयम के ख़ुदा होने) का अक़ीदा

मरयम को ईसाइयों का उम्मुल्लाह (अल्लाह की माँ) क़रार देना— सूरा-5, आ-116, हा-130।

(उ)

● उर
★ हज़रत इबराहीम (अलै०) का वतन— सूरा-6, हा-52।
★ उसकी आबादी की तबक़ाती तक़सीम— सूरा-6, हा-52।
★ उसका मुशरिकाना निज़ामे-फ़िक्र— सूरा-6, हा-52।
★ इबराहीमी दौर का शाही ख़ानदान— सूरा-6, हा-52।
● **उम्मते-वसत** (बीच की अर्थात् ज़िम्मेदार उम्मत) दुनिया की क़ौमों की सदारत का मंसब— सूरा-2, आ-143, हा-144।
★ उम्मते वसत के औसाफ़ (गुण)— सूरा-2, हा-144।
★ इस मंसब का लिहाज़ रखने की अहमियत— सूरा-2, हा-255।
● **उलिल-अम्र** (इस्लामी रियासत के हुक्काम)
★ उनकी इताअत लाज़िम होने की वजह— सूरा-4, आ-59, हा-89।
★ इस इस्तिलाह (पारिभाषिक शब्द) का सही मफ़हूम— सूरा-4, हा-89।
★ उनकी इताअत कुछ शर्तों के साथ है— सूरा-4, हा-89।
★ इनके बारे में नबी (सल्ल०) की हदीस की तशरीहात (व्याख्या)— सूरा-4, हा-89।
★ उलमा और मशाइख़ की ज़िम्मेदारियाँ— सूरा-5, आ-63।
● **उमरा**— देखें : हज।
● **उहुद** (ग़ज़वह या जंग)।
★ सूरा-आले-इमरान से इसका ताल्लुक़ — मुक़द्दिमा सूरा-3, आले-इमरान।
★ तहरीके-इस्लामी के इतिहास में ग़ज़वए-उहुद का मक़ाम— देखें : मुक़द्दिमा सूरा-3, आले-इमरान।
★ जंगे-उहुद की तफ़सील— सूरा-3, आ-121, हा-94।
★ इस मौक़े पर नबी (सल्ल०) की बद्दुआ और उस पर गिरिफ़्त— सूरा-3, आ-127-129, हा-97।
★ दुनिया की हवस का लाया हुआ वबाल— सूरा-3, आ-152।
★ मुसलमानों को रंज पर रंज देने का मक़सद उन्हें सबक़ सिखाना था— सूरा-3, आ-153, हा-111।
★ ठीक जंग की हालत में मुसलमानों पर ग़ुनूदगी का ग़लबा— सूरा-3 : आ-154, हा-112।
★ नबी के बारे में सुए-ज़न (ग़लतफ़हमी) का नतीजा— सूरा-3, आ-161, हा-114।
★ हार के असर से आम मुसलमानों की एक फ़िक्री उलझन— सूरा-3, हा-115।
★ उहुद की मुसीबत की ज़िम्मेदारी— सूरा-3, आ-165, हा-117।
★ जंगे-उहुद के बाद मीरास की तक़सीम के सवाल का पैदा होना— मुक़द्दिमा सूरा-4, अन-निसा।
★ उहुद की हज़ीमत (अपमान) का रद्दे-अमल दुश्मनों में मुक़द्दिमा सूरा-4, अल-निसा, हा-101।
★ उहुद की हज़ीमत का रद्दे-अमल मुसलमानों में— शाने-नुज़ूल सूरा-5, अल-माइदा।

(ए)

● **एहसान**
★ इताअत का सबसे ऊँचा मक़ाम— सूरा-2, आ-195, हा-208।
★ एहसान का रवैया— सूरा-5, आ-93।
★ उसका दुनिया में बदला— सूरा-6, आ-84।
● **एहकामुल-क़ुरआन** (क़ुरआन के एहकाम)— सूरा-2, आ-104, हा-108; आ-144, हा-146 आ-149, 150, हा-149, 150 आ-158, हा-158, आ-168 से 203, हा-166 से 222, आ-219 से 242, हा-235 से 263, आ-272 से 283, हा-313 से 331; सूरा-3, आ-28, हा-25, आ-104, आ-118, आ-130, हा-98; सूरा-4, व्याख्या; सूरा-4।
★ शाने-नुज़ूल और मुबाहिस, आ-2 से 43, हा-2 से 69, आ-58, 59, हा-88-89, आ-71 से 75, हा-101 से 104, आ-86, हा-114, आ-89 से 94, हा-118 से 126, आ-101 से 104, हा-132 से 139, आ-126 से 128, हा-153 से 159, आ-135 से 136, हा-163 से 165, आ-138 से 140 हा-169, आ-144-145, आ-176, हा-219 से 223; सूरा-5, आ-1 से 6, हा-1 से 26, आ-33, हा-55, 56, आ-38, हा-60, आ-42, हा-69, 70, आ-49 से 51, हा-78 से 84 आ-87 से 97, हा-104 से 113, आ-106 से 108, हा-120, से 121; सूरा-6, आ-107, हा-71, आ-118 से 121, हा-84 से 87, आ-145, 146, हा-121, 122 आ-151, 152, हा-129 से 134।
● **एतिकाफ़**
बीवियों से रात में मिलने (सम्भोग) की मनाही— सूरा-2, आ-187, हा-195।

(औ)

● औहामे-जाहिलियत
★ चाँद की चाल से शगून लेना— सूरा-2, हा-198।
★ हज से लौटते हुए घरों में दाख़िल होने का ग़ैर-माक़ूल तरीक़ा— सूरा-2, आ-189, हा-199।
★ एक सफ़र में हज व उमरा करने को गुनाह समझा जाता था— सूरा-2, हा-213।
★ हज के सफ़र में माल कमाने को ममनूअ़ (निषिद्ध) और दुनियादाराना काम समझना— सूरा-2, आ-198, हा-218।
★ हज के ख़ात्मे पर मुशरिकों का भरे मजमों में अपने बाप-दादा के कारनामे बयान करना— सूरा-2, आ-200, हा-221।
★ हालते-हैज़ के बारे में ग़लत तसव्वुरात— सूरा-4, हा-49।
★ मुँहबोले रिश्तों के लिए मीरास में हिस्सा— सूरा-4, हा-55।
★ टोनों-टोटकों, फ़ालगीरों और शगुनों का रिवाज सूरा-4, हा-81; सूरा-5, हा-14।
★ मुशरिकाना अक़ीदों के तहत जानवरों के कान चीर कर उनको देवताओं का नाम पर पुण्य करना— सूरा-4, आ-119, हा-147।
★ बहीरा, साइबा, वसीला और हाम— सूरा-5, आ-103, हा-118।
★ फ़रिश्तों को ख़ुदा की बेटियाँ ठहराना— सूरा-6, आ-100, हा-68।
★ मुशरिकाना अक़ीदों और ग़ैरुल्लाह के लिए नज़र व नियाज़ की रस्में— सूरा-6, आ-136, हा-105, 106, हा-111।
★ औलाद का क़त्ल— सूरा-6, आ-137, हा-107, आ-140, हा-115।
★ जाहिलियत के औहाम (अन्धविश्वास व अज्ञान) की असल जड़— सूरा-6, हा-106।
★ किसी चीज़ को हलाल या हराम किए जाने के वहमी तसव्वुर— सूरा-6, आ-139, हा-114।
★ अरबों के मुशरिकाना तौहुमात (अंधविश्वासों) का तजज़िया (समीक्षा) करने के लिए क़ुरआन का एक अहम सवाल— सूरा-6, आ-143, 144, हा-120।

● औरत
★ समाज में इसकी हैसियत और मर्तबा— सूरा-2, आ-223, हा-241, आ-228, आ-232, आ-234, आ-240; सूरा-4, आ-11, हा-15, आ-19, हा-28, आ-34, हा-56, 57।
★ उसके अख़लाक़ी फ़राइज़— सूरा-2, आ-228।
★ समाज में उसके हुक़ूक़— सूरा-2, आ-235।
★ गवाही के क़ानून में उसकी गवाही— सूरा-2, आ-282।
★ उसके मआशी (आर्थिक) हुक़ूक़— सूरा-4, आ-7, हा-12।
★ बेहतरीन बीवी की सिफ़तें— सूरा-4, आ-34, हा-58।
★ उससे शौहर की इताअत का मुतालबा कहाँ तक है— सूरा-4, हा-58।

(अं)

● अंबिया
★ उनकी उम्मतों का बिगाड़—
★ मुक़द्दिमा तफ़हीमुल-क़ुरआन; सूरा-3, हा-97। उनकी मुख़ालिफ़त कुफ़्र है— सूरा-2, आ-98।
★ मुहम्मद सल्ल. का तरीक़ा वही है जो पिछले नबियों का था— सूरा-2 हा-123; परिचय सूरा-3 (ख़िताब और मुबाहिस)।
★ इस्लाम सारे नबियों का दीन था— सूरा-2, आ-133, हा-130, आ-213, हा-230, परिचय सूरा-3 (ख़िताब और मुबाहिस); सूरा-3, हा-17, आ-84, हा-72; सूरा-5, आ-44, हा-72।
★ सभी नबियों पर ईमान लाना ज़रूरी है— सूरा-2, आ-136, हा-136, आ-285, हा-337; सूरा-3, आ-84, हा-72।
★ उनके बीच तफ़रीक़ (भेद-भाव) न करने मतलब— सूरा-2, हा-136।
★ इबराहीम (अलै.), इसहाक़ (अलै.), याक़ूब (अलै.), और याक़ूब (अलै.) की औलाद यहूदी और ईसाई न थे— सूरा-2, आ-140।
★ उनको नबी बनाए जाने का मक़सद— सूरा-2, आ-213; सूरा-4, आ-165, हा-207।
★ हक़ की दावत के लिए उनकी जिद्दोजुहद— सूरा-2, हा-231।
★ उनके मर्तबे— सूरा-2, हा-253।
★ उनको ईमान की गवाही से सरफ़राज़ किया जाता है— सूरा-2, आ-260 हा-297।
★ उनका काम और उनकी हैसियत—सूरा-2, आ-272।
★ अल्लाह की हिदायत पर उनका ईमान लाना— सूरा-2, आ-285।
★ उनकी ज़िम्मेदारी— सूरा-3, आ-20।

★ अल्लाह की इताअत के साथ उनकी इताअत की माँग— सूरा-3, आ-31।
★ आदम, नूह, आले-इबराहीम और आले-इमरान का रिसालत के लिए चुना जाना और उनका सारी दुनिया पर तरजीह (प्राथमिकता) पाना— सूरा-3, आ-33।
★ ये एक सिलसिले के लोग थे— सूरा-3, आ-34, हा-31।
★ इन सबकी दावत की तीन बातें— सूरा-3, हा-48।
★ वे ख़ुदा की बन्दगी के बजाय अपनी बन्दगी की दावत नहीं दे सकते— सूरा-3, आ-79।
★ शिर्क की तालीम को उनसे नहीं जोड़ा जा सकता— सूरा-3, आ-79।
★ वह अहद जो उनसे लिया गया— सूरा-3, आ-81, हा-69।
★ कोई नबी ख़ाइन नहीं हो सकता— सूरा-3, आ-161।
★ ज़्यादातर नबियों को झुठलाया जाता रहा— सूरा-3, आ-184; सूरा-6 आ-34, हा-21।
★ उन सबने एक ही तरह के क़ानून पेश किए— सूरा-4, आ-26।
★ वे आख़िरत में अपनी क़ौमों पर गवाही देंगे— सूरा-4, आ-41, हा-64; (सूरा-3, का हा-69 भी देखें) सूरा-5, आ-109, हा-125।
★ उनकी नाफ़रमानी का आख़िरत में अंजाम— सूरा-4, आ-42; सूरा-6, आ-11, हा-8
★ रसूल की इताअत की दस्तूरी व क़ानूनी हैसियत— सूरा-4, आ-59, हा-89।
★ ये सब अल्लाह की मर्ज़ी से मुताअ बन कर आए हैं— सूरा-4, आ-64, हा-94।
★ नबियों, सिद्दीक़ों, शहीदों और सालिहीन की आपसी दोस्ती— सूरा-4, आ-69।
★ इनमें भेद-भाव कुफ़्र है— सूरा-4, आ-150, हा-178।
★ में सारे नबियों का ज़िक्र नहीं— सूरा-4, आ-164।
★ उनका नबी बनाया जाना बन्दों पर हुज्जत तमाम करना है— सूरा-4, आ-165, हा-208; सूरा-6 हा-100।
★ सवाउस्सबील को वाज़ेह करने आए— सूरा-5, हा-35।
★ ये सब आपस में तरदीद करने वाले नहीं, बल्कि तसदीक़ करनेवाले थे— सूरा-5, आ-46, हा-76।
★ ज़्यादातर नबियों का मज़ाक़ उड़ाया गया— सूरा-6, आ-10।
★ उनको चोट पहुँचाने पर सब्र करना—सूरा-6, आ-34।
★ उनके आने पर मुसीबतों के आने की हिकमत— सूरा-6, आ-42।
★ इनका नेक किरदारों के लिए ख़ुशख़बरी देनेवाला और बुरे किरदारों के लिए ख़ुदा के खौफ़ से डराने-वाला होना— सूरा-6, आ-48।
★ उनके तरीक़े से हट कर चलना गुमराही है— सूरा-6, आ-74, हा-50।
★ सबके सब नेक थे— सूरा-6, आ-85।
★ अल्लाह ने उनको दुनिया पर फ़ज़ीलत दी— सूरा-6, आ-86।
★ उनका शिर्क से पाक होना—सूरा-6, आ-88, हा-56।
★ उनके लिए किताब, हुक्म, और नबूवत के तीन गुना अतियात (उपहार)— सूरा-6, आ-89, हा-57।
★ उनपर वह्य (ईशवाणी) आने के लिए चार दलीलें— सूरा-6, हा-61।
★ उनकी दावत से शैतानों, जिन और इनसान की दुश्मनी— सूरा-6, आ-112, हा-79।
★ उसी क़ौम से उठाए जाते हैं, जिसमें कि वे दावत देते हैं— सूरा-6, आ-130।

(क)

● **क़ानितात**

★ मुसलमान औरतों की तारीफ़— सूरा-4, आ-34, हा-58।

क़ानूने-इस्लामी

शराब

★ शराब पीने की सज़ा— सूरा-5, हा-109।

क़र्ज़ व रहन

★ उसके एहकाम— सूरा-2, आ-282, 283, हा-325 से 332।
★ विरासत की तक़सीम से पहले क़र्ज़ की अदायगी का हुक्म— सूरा-4, आ-11, हा-20, आ-12।
★ दीवालिया का क़ानून— सूरा-2, आ-280, हा-324।

क़ानूने-जंग

★ जंग का हुक्म— सूरा-2, आ-190, हा-200; सूरा-4, आ-91।
★ जंग का मक़सदअ— सूरा-2, हा-201; सूरा-3, आ-140 से 142; सूरा-4, आ-75, हा-104।
★ जंग की हदें— सूरा-2, हा-205; सूरा-4, आ-89, आ-94, हा-126, आ-95।
★ क़त्ल के लिए क़िसास का क़ानून— सूरा-2, आ-178, हा-176, 177 और 181, आ-179

★ क़त्ल का मामला राज़ीनामे के क़ाबिल है— सूरा-2, आ-178, हा-178।
★ दियत या ख़ूँ-बहा का क़ायदा— सूरा-2, हा-177।
★ मोमिन की जान की हुरमत (प्रतिष्ठा)— सूरा-4, आ-92, हा-120।
★ किसी मोमिन को जान-बूझ कर क़त्ल करने का कफ़्फ़ारा— सूरा-4, आ-92, हा-121 से 123।
★ ख़ूँ-बहा और उसकी मिक़दार— सूरा-4, हा-122।
★ क़त्ल का एक वाक़िआ-पूरी इनसानियत को ख़तरे में डाल देता है— सूरा-5, आ-32, हा-54।
★ इस्लाम में क़त्ल के जवाज़ के लिए पाँच वजहें— सूरा-6, हा-131।
★ तौरात का क़ानूने-क़िसास— सूरा-5, आ-45 (और ज़्यादा जानकारी के लिए देखें : क़िसास)।

अदालत व क़ज़ा

★ अदालती फ़ैसले का दारोमदार ज़ाहिरी गवाहियों पर होगा— सूरा-2, हा-197।
★ अदालत की तरफ़ से पंचों के तक़र्रुर का क़ानून— सूरा-4, आ-35, हा-61।
★ क़ज़ा का इस्लामी तरीक़ा— सूरा-4, आ-105, हा-140।
★ इस्लामी अदालत को मदीना के यहूदियों के मुक़द्दिमों को न सुनने का इख़्तियार दिया गया— सूरा-5, आ-42।

इज़्दिवाजी (पति-पत्नी के) मामले

निकाह

सूरा-2, आ-221, 235; सूरा-3, आ-2, हा-4, आ-22; सूरा-4, आ-22-24, 25; सूरा-5, आ-5।

ईला

सूरा-2, आ-266, हा-245।

तलाक़

सूरा-2, आ-227 से 239, हा-247 से 252।

महर

सूरा-2, आ-236; सूरा-4, आ-4, 19, 20, और 24; सूरा-5, आ-5।

इद्दत

सूरा-2, आ-228, 231, और 234, हा-259।

रजअत

सूरा-2, आ-229, 231, हा-254।

ख़ुलअ

सूरा-2, आ-229, हा-252।

औरत का नफ़्क़ा (भरण-पोषण)

सूरा-4, आ-34, हा-56।
देखें : इज़्दिवाजी ज़िन्दगी।

उसूले-क़ानून

★ सारे मामलों में ही क़ानूनी मरजा है— सूरा-5, आ-48, और 49।
★ इस्लामी क़ानून को लागू करने से पहले के मामलों का हुक्म— सूरा-4, हा-32।
★ क़ानूनी और अख़लाक़ी हैसियतों का फ़र्क़— सूरा-2, हा-318 और 319।

चोरी

★ चोर की सज़ा हाथ काटना है— सूरा-5, आ-38, हा-60।
★ चोर की सज़ा के बारे में नबी (सल्ल.) की तशरीहात (व्याख्याएँ)— सूरा-5, हा-60।

ज़िना (व्याभिचार)

★ ज़िना की इब्तिदाई सज़ा— सूरा-4, आ-15, 16, हा-26।
★ ज़िना के लिए गवाही का निसाब— सूरा-4, आ-15।
★ मुहरमात से ज़िना करना फ़ौजदारी जुर्म है— सूरा-4, हा-33।
★ मनकूहा-लोंडियों के लिए ज़िना की सज़ा— सूरा-4, आ-25, हा-46।
★ रज्म की तरफ़ एक लतीफ़ इशारा— सूरा-4, आ-26, हा-46, देखें : ज़िना।

दस्तूरी मसले

★ इस्लामी हुकूमत की दस्तूरी बुनियादें— सूरा-4, हा-89, आ-59।

बग़ावत

★ इस्लामी निज़ाम से बग़ावत की सज़ा— सूरा-5, आ-33, हा-55।
★ ख़ुदा और रसूल के ख़िलाफ़ जंग करने का मफ़हूम— सूरा-5, हा-55।
★ बाग़ियों के लिए तौबा की गुंजाइश— सूरा-5, आ-34, हा-57।

विरासत

★ विरासत के क़ानून की दीनी अहमियत— सूरा-4, आ-14, हा-25।
★ वारिसों के हिस्सों में वसीयत के ज़रीए कमी-बेशी नहीं की जा सकती— सूरा-2, हा-182।

★ विरासत का हक़ क़राबत की बिना पर— सूरा-4, आ-7-8।
★ विरासत पूरे तरके में जारी होगी— सूरा-4, आ-7, हा-12।
★ विरासत में मर्द के साथ औरत भी हक़दार है— सूरा-4, आ-7।
★ औलाद के हिस्से— सूरा-4, आ-11।
★ वालिदैन (माँ-बाप) के हिस्से— सूरा-4, आ-11, हा-17।
★ मीरास की तक़सीम और वसीयत व क़र्ज़— सूरा-4, आ-10 और 11, हा-20।
★ बीवी के तरके में शौहर का हिस्सा— सूरा-4, आ-12।
★ शौहर के तरके में बीवी का हिस्सा— सूरा-4, आ-12, हा-22।
★ मुरव्वजा 'वफ़ात टैक्स' इस्लामी क़ानून की रौशनी में— सूरा-4, हा-25।
★ मुँहबोले रिश्तों को विरासत का क़ानून तस्लीम नहीं करता— सूरा-4, हा-55।
★ कलाला की तारीफ़ (परिभाषा)— सूरा-4, हा-220।
★ कलाला का मीरास का हिस्सा मुख़्तलिफ़ सूरतों में— सूरा-4, हा-24; सूरा-4, आ-176, हा-220।
★ हज़रत उमर (रज़ि.) का कलाला के बारे में तरद्दुद (सोच)— सूरा-4, हा-220।

वसीयत

★ विरासत के क़ानून से पहले वसीयत का हुक्म दिया गया था— सूरा-2, आ-180, हा-182।
★ विरासत के क़ानून के नाज़िल होने के बाद वसीयत की हदें— सूरा-2, हा-182; सूरा-4, हा-20।
★ मीरास की तक़सीम और वसीयत— सूरा-4, आ-11, और 12, हा-20।
★ नुक़सान पहुँचानेवाली वसीयतों की इस्लाह— सूरा-4, आ-12, हा-24।
★ वसीयत के लिए शहादत का निसाब— सूरा-5, आ-106।

शहादत

★ शहादत का क़ानून— सूरा-2, आ-282।
★ ज़िना के लिए गवाही का निसाब— सूरा-4, आ-16, हा-26।
★ वसीयत के लिए गवाही का निसाब— सूरा-5, आ-106।
★ गवाहों का इनसाफ़ पसन्द होना— सूरा-5, आ-106।
★ शहादत का ज़ाबिता— सूरा-5, आ-106।

सूद

★ सूद फ़ौजदारी जुर्म है— सूरा-2, आ-279, हा-323 और देखें : सूद।
● क़त्ल— देखें : क़ानूने-इस्लामी।
● क़ुरआन
★ उसके लफ़्ज़ी तर्जमे के नक़ायस— देखें : दीबाचा।
★ उसका उसलूबे-बयान— देखें : दीबाचा, सूरा-2, हा-134; सूरा-3, आ-7, हा-6, 7 और हा-94 सूरा-4, हा-26।
★ उसमें बज़ाहिर बे रब्ती महसूस होने की वजहें— देखें : दीबाचा।
★ उसको समझने के लिए तारीख़ी पसमंज़र को निगाह में रखने की अहमियत— देखें : दीबाचा।
★ सूरतों का नुज़ूल किन हालात में होता था— देखें : दीबाचा।
★ उसकी मख़्सूस इस्तिलाही ज़बान— देखें : दीबाचा।
★ उसके लफ़्ज़ी तर्जमे के फ़ायदे और नुक़सानात— देखें : दीबाचा।
★ इसका आम किताबों से फ़र्क़ व इम्तियाज़— देखें : दीबाचा।
★ उसको समझने में आम लोगों को किस क़िस्म की मुश्किलें पेश आती हैं और उनकी वजहें— देखें : दीबाचा।
★ उसकी आयतों में मसनूई (कृत्रिम) रब्त बनाने की ग़लती— देखें : दीबाचा।
★ उसकी आयतों को सियाक़ व सबाक़ (सन्दर्भ) से अलग करके देखने का नुक़सान— देखें : दीबाचा।
★ उसको समझने के लिए किन चीज़ों का जान लेना ज़रूरी है— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसकी असल हक़ीक़त— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसका मा बादत्तबीई (पराप्राकृतिक) पसमंज़र— देखें : दीबाचा।
★ उसका मौज़ूअ— देखें : दीबाचा।
★ उसका मरकज़ी मज़मून— देखें : दीबाचा।
★ उसका मुद्दआ— देखें : दीबाचा।
★ उसके रब्ते-कलाम की तशरीह— देखें : दीबाचा।
★ उसके नाज़िल होने की कैफ़ियत— देखें : दीबाचा सूरा-6, अल-अनआम।

★ इस्लाम की दावत के मुख़्तलिफ़ मरहलों में नाज़िल हुई सूरतों की अलग ख़ुसूसियतें—
देखें : दीबाचा।
★ उसके उसलूबे-बयान (वर्णन-शैली) की ख़ुसूसियतें—
देखें : दीबाचा।
★ उसके मज़मूनों में वक़्ती और मक़ामी रंग इतना नुमायाँ क्यों है? और यह कि यह चीज़ उसके दाइमी और आलमगीर हिदायत होने में रुकावट नहीं है—
देखें : दीबाचा।
★ मक्की सूरतों का पसमंज़र और उनकी ख़ुसूसियतें—
देखें : दीबाचा और देखें : सूरा-6, अल-अनआम : परिचय।
मदनी सूरतों का पसमंज़र और उनकी ख़ुसूसियतें
देखें : दीबाचा और देखें : सूरा-6, अल-अनआम : परिचय। इसमें मज़ामीन की तकरार क्यों है—
देखें : दीबाचा।
★ उसकी मौजूदा तरतीब नुज़ूले-तरतीब से मुख़्तलिफ़ क्यों है?— देखें : दीबाचा।
★ मैजूदा तरतीब की हिकमतें— देखें : दीबाचा।
★ इसकी मौजूदा तरतीब किस की दी हुई है और कब दी गई है— देखें : दीबाचा।
★ उसके महफ़ूज़ होने के दलाइल— देखें : दीबाचा।
★ नबी (सल्ल.) के ज़माने में इसकी किताबत—
देखें : दीबाचा।
★ इसको याद (हिफ़्ज़) करने का तरीक़ा शुरू से ही राइज हो गया था— देखें : दीबाचा।
★ इसमें तहरीफ़ (फेर-बदल) क्यों नामुमकिन है?—
देखें : दीबाचा।
★ पहला मुस्तनद नुस्ख़ा किस तरह तैयार किया गया—
देखें : दीबाचा।
★ इसके "सात हुरूफ़" पर नाज़िल होने का मतलब—
देखें : दीबाचा।
★ नबी (सल्ल.) के ज़माने में किन-किन लोगों के पास के अज्ज़ा (अंश) तहरीरी शक्ल में मौजूद थे—
देखें : दीबाचा।
★ उसके मुताले का सही तरीक़ा— देखें : दीबाचा;
देखें : दीबाचा (सूरा-1, अल-फ़ातिहा)।
★ उसके तहक़ीक़ी मुताले का तरीक़ा—देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसकी रूह को पा लेना उसके मंशा के मुताबिक़ काम किए बग़ैर मुमकिन नहीं है— देखें : मुक़द्दिमा।
★ सुलूके-क़ुरआनी— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसके आलमगीर और अबदी हिदायत होने के —
देखें : मुक़द्दिमा।
★ इसके मुफ़स्सल हिदायतनामा होने का मतलब—
देखें : दीबाचा।
★ सुन्नत के साथ इसका ताल्लुक़— देखें : दीबाचा।
★ वह किस क़िस्म के तफ़रक़े और इख़्तिलाफ़ से मना करता है— देखें : दीबाचा।
★ उसकी रू से जाइज़ और नाजाइज़ इख़्तिलाफ़ की हदें— देखें : दीबाचा।
★ सबसे पहली मुकम्मल सूरा— देखें : परिचय, सूरा-1, अल-फ़ातिहा।
★ वह्य नाज़िल होने की शुरुआत किन आयतों से हुई? — देखें : दीबाचा (सूरा-1, अल-फ़ातिहा, ज़माना-ए-नुज़ूल)।
★ सूरतों के नाम— देखें : दीबाचा सूरा-2, अल-बक़रा, नाम और वजहे-तस्मिया।
★ उसकी ख़ुसूसियतें— सूरा-2, आ-2, हा-2; देखें : दीबाचा सूरा-3, आले-इमरान।
★ किस क़िस्म के लोग इससे हिदायत हासिल कर सकते हैं?— सूरा-2, आ-2 से 4, हा-3 से 8; सूरा-3, आ-7, हा-5।
★ इनसानों को इसकी दावत क्या है?—
सूरा-2, आ-21, हा-21, हा-36।
★ उसके कलामे-इलाही होने की दलीलें—
सूरा-2, आ-23, हा-24; सूरा-3, आ-7, हा-7।
★ उसे कलामे-इलाही न मानने के आख़िरत में सामने आनेवाले नतीजे— सूरा-2, आ-24, हा-25।
★ उसे कलामे-इलाही मान लेने के आख़िरत में सामने आनेवाले नतीजे— सूरा-2, आ-25।
★ उस पर मुख़ालिफ़ों के एतिराज़ात और उनके जवाब — सूरा-2, हा-28, हा-109, हा-199; सूरा-6, हा-70।
★ किस क़िस्म के लोग से गुमराही हासिल करते हैं?—
सूरा-2, आ-26, आ-29; सूरा-3, आ-7, हा-6।
★ इसकी दावत वही है जो पिछली तमाम आसमानी किताबों की थी— सूरा-2, हा-56; सूरा-3, हा-2, सूरा-5, आ-68 हा-97।
★ पिछली आसमानी किताबों की तसदीक़ करता है—
सूरा-2, आ-41, 89, 91, 97, हा-102; सूरा-3, आ-3, हा-2; सूरा-4, आ-47, सूरा-5, आ-48, हा-78; सूरा-6, आ-92।
★ पिछली किताबों की तसदीक़ वह किन मानों में

करता है— सूरा-3, हा-2।
★ नबी (सल्ल॰) के पास जिबरील के ज़रीए आया है— सूरा-2, आ-97।
★ इसकी सिफ़ात— सूरा-2, आ-97, 99, और 185।
★ इसमें नस्ख़ होने (किसी चीज़ को हटाकर उससे अच्छी चीज़ लेने) का मतलब— सूरा-2, आ-106, हा-109।
★ इसकी उसूली तालीमात— सूरा-2, आ-135।
★ क़ानून बयान करने के साथ-साथ वह अख़लाक़ी एहसासों को भी उभारता है— सूरा-2, आ-178; सूरा-4, आ-135, हा-163।
★ इसके नाज़िल होने की शुरुआत— सूरा-2, आ-185।
★ इनसानी तारीख़ के मुताल्लिक़ इसका नज़रिया— सूरा-2, आ-213, हा-230।
★ वह हक़ लेकर आया है— सूरा-3, आ-3; सूरा-4, आ-105; सूरा-5, आ-48; सूरा-6, आ-114।
★ का हक़ और बातिल की कसौटी होना— सूरा-3, आ-4।
★ उसके अहकामों से इनकार का नतीजा— सूरा-3, आ-4।
★ उसकी आयतों की दो बड़ी क़िस्में : मुहकमात और मुतशाबिहात— सूरा-3, आ-7, हा-5, 6।
★ उससे हिदायत किस तरह हासिल हो सकती है— सूरा-3, आ-7, 8।
★ वह ईमानवालों के लिए फ़ैसले का मेयार और क़ानून का सरचश्मा है— सूरा-4, हा-90, आ-105, हा-140; सूरा-5, आ-48।
★ वह सिर्फ़ किताबे-आईन (संविधान) ही नहीं, बल्कि हिदायत की किताब है— सूरा-4, हा-90।
★ उसका तज़ाद (विरोधाभास) से पाक होना— सूरा-4, आ-82, हा-111।
★ उसका किताबे-मुबीन (वाज़ेह किताब) होना— सूरा-5, आ-15, सूरा-4, हा-195।
★ उसके अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल होने पर अल्लाह और फ़रिश्तों की गवाही— सूरा-4, आ-166।
★ वह अल्लाह की तरफ़ से रौशन दलील है— सूरा-4, आ-174; सूरा-6, आ-157।
★ उसका हलाल व हराम करने का नज़रिया— सूरा-5, आ-4, हा-18।
★ अन्धेरे से निकालकर उजाले की तरफ़ लानेवाली किताब— सूरा-5, आ-16।
★ वह सलामती के तरीक़े बताता है— सूरा-5, आ-16, हा-38।
★ नबियों के बारे में उसकी एक अहम तसरीह— सूरा-5, आ-46, हा-76।
★ आसमानी किताब पर उसके मुहैमिन होने का मतलब— सूरा-5, आ-48, हा-79।
★ उसका नुज़ूल यहूद के तुग़यान व कुफ़्र में इज़ाफ़े का सबब बन गया— सूरा-5, आ-64, हा-95।
★ मुजरिमों की रविश को नुमायाँ करता है— सूरा-6, आ-55।
★ वह नसीहत और तंबीह का ज़रीआ है— सूरा-6, आ-70।
★ ख़ैर और बरकतवाली किताब— सूरा-6, आ-92 और 155।
★ उसके अव्वलीन मुख़ातिबीन— सूरा-6, आ-92।
★ उसके मानने के लिए आख़िरत पर ईमान ज़रूरी है— सूरा-6, आ-92।
★ उसमें तसरीफ़े-कलाम का उसलूब— सूरा-6, हा-70।
★ वह अपने मुख़ातिबों के लिए आज़माइश बन गया है— सूरा-6, हा-70।
★ उसके बयान में तफ़सील का होना— सूरा-6, आ-114।
★ उसके ज़रीए लोगों पर हुज्जत तमाम करना— सूरा-6, आ-155 से 157।
● **क़ुरआनी तमसीलात** (मिसालें)
★ मुनाफ़िक़ों के दो गरोहों की मिसालें— सूरा-2, आ-17, हा-16।
★ हिदायत से बेनियाज़ लोगों के लिए जानवरों और चरवाहे की मिसाल— सूरा-2, आ-171।
★ इनफ़ाक़ के लिए बीज, बालों और दानों की मिसाल— सूरा-2, आ-261, हा-300।
★ रियाकाराना (दिखावे के) इनफ़ाक़ की मिसाल— सूरा-2, आ-264, हा-304।
★ मुख़लिसाना इनफ़ाक़ की मिसाल—सूरा-2, आ-265।
★ हब्ते-आमाल (आमाल ज़ाया हो जाने) की मिसाल— सूरा-2, आ-266, हा-307; सूरा-3, आ-117, हा-91।
★ अहले-शिर्क के लिए सेहरा में भटकने की मिसाल— सूरा-6, आ-71।
★ छोटी-छोटी चीज़ों की मिसालों पर मुख़ालिफ़ों का एतिराज़ और उसका जवाब— सूरा-2, आ-26, हा-28; सूरा-6, हा-70।

★ मौत से मुराद जिहालत व बे शऊरी की ज़िन्दगी— सूरा-6, हा-88।
★ ज़िन्दगी से मुराद नेकी व बदी के शऊर की हालत— सूरा-6, हा-88।
★ 'रौशनी' और 'तारीकी' से 'इल्म' और 'जाहिलियत' का मफ़हूम— सूरा-6, आ-122, हा-88।

● **क़ुरबानी**
उसके अपनी जगह पहुँचने का मफ़हूम— सूरा-2, आ-196, हा-210।
★ हाजी क़ुरबानी से पहले बाल न तरशवाए— सूरा-2, आ-196।
★ क़ुरबानी मुयस्सर न होने की सूरत में हाजी रोज़े रखे— सूरा-2, आ-196, हा-211।
★ वह क़ुरबानी जिसे आसमानी आग खा जाए— सूरा-3, आ-183, हा-129।
★ क़ुरबानी के जानवरों के साथ ज़बरदस्ती न की जाए— सूरा-5, आ-2।
★ आदम अलै॰ के दो बेटों की क़ुरबानी का वाक़िआ— सूरा-5, आ-27।

● **क़र्ज़**
★ मक़रूज़ से फ़ैयाज़ाना (उदारतापूर्ण) मामले की तलक़ीन— सूरा-2, आ-280, हा-324।
★ दीवालिये का क़ानून— सूरा-2, आ-280, हा-324।
★ लैन-देन के लिए दस्तावेज़ात लिखने की अहमियत— सूरा-2, आ-282, हा-326।
★ मुद्दत की तअयीन (समय निश्चित करना)— सूरा-2, आ-282, आ-325।
★ रोज़मर्रा के लेन-देन में दस्तावेज़ की ज़रूरत नहीं— सूरा-2, आ-282, हा-329।
★ दस्तावेज़ के बजाय रहन— सूरा-2, आ-283, हा-331।
★ रहन में सूद की सूरत— सूरा-2, हा-331
★ मरनेवाले के तरके में से उसकी अदायगी— सूरा-4, आ-11, हा-20, आ-12, हा-24।

● **क़ुरआ-अन्दाज़ी**
★ मुशरिकाना फ़ालगीरी— सूरा-5, हा-14।
★ क़ुरआ-अन्दाज़ी की जाइज़ सूरत— सूरा-5, हा-14।

● **क़ुरैश**
★ उनके मज़हबी और अख़लाक़ी जुर्म— सूरा-2, आ-114, हा-114, हा-126, 220, आ-217 और हा-232।
★ मुसलमानों पर उनकी ज़्यादतियाँ— सूरा-2, आ-114।
★ नबी (सल्ल.) पर उनके एतिराज़ कि अदना (छोटे) लोग आपकी दावत पर जमा हुए हैं— सूरा-6, हा-34।
★ हज़रत इबराहीम पर उनका बेजा फ़ख़्र और नाज़— सूरा-6, हा-50।

● **क़सम**
★ नेकी और तक़वा से बाज़ रखनेवाली क़समों की मनाही और उनको तोड़ देने का हुक्म— सूरा-2, आ-224, हा-243।
★ बेमानी क़समों पर गिरिफ़्त नहीं— सूरा-2, आ-225, हा-244।
★ क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा— सूरा-2, आ-245, हा-243; सूरा-5, आ-89, हा-106।
★ क़समों को बेचनेवालों का आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं— सूरा-3, आ-77।
★ मुहमिल क़समों का हुक्म— सूरा-5, आ-89, हा-106।
★ इसकी हिफ़ाज़त करने की ताकीद— सूरा-5, आ-89, हा-107।
★ शहादत (गवाही) के लिए क़सम— सूरा-6, आ-106 और 107।

● **क़िसास**
★ उसके मानी— सूरा-2, हा-176।
★ उसका जाहिली तसव्वुर— सूरा-2, हा-177।
★ क़िसास में सोसाइटी की ज़िन्दगी है— सूरा-2, आ-179, हा-181 (और ज़्यादा जानकारी के लिए देखें : क़ानूने-इस्लामी)।

● **क़स्र**
देखें : नमाज़।

● **क़िबला**
★ किसी सम्त को क़िबला बनाने के मानी ये नहीं कि अल्लाह उसी तरफ़ है— सूरा-2, हा-143।
★ तहवीले-क़िबला और इंक़िलाबे-इमामत— सूरा-2, हा-144।
★ तहवीले-क़िबला में आज़माइश— सूरा-2, हा-145।
★ तहवीले-क़िब्ला का असूल हुक्म— सूरा-2, आ-144, हा-146।
★ नबी (सल्ल.) का तहवीले-क़िबला के लिए आरज़ूमन्द होना— सूरा-2, आ-144, हा-146।
★ तहवीले-क़िबला की तामील नमाज़ के दौरान कैसे की गई?— सूरा-2, आ-146।

★ क़िबला बनने के लिए काबा की अव्वलियत— सूरा-3, आ-96, हा-79।

● **क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह**

★ इसका सबसे पहला हुक्म— सूरा-2, आ-190, हा-200।

★ इसके मक़ासिद— सूरा-2, आ-191, 193 हा-201; सूरा-3, आ-140; सूरा-4, आ-75।

★ इसकी हदें— सूरा-2, आ-193, आ-194 हा-205; सूरा-4, आ-89, आ-94, आ-95।

★ यह ईमान का लाज़िमा (ज़रूरी हिस्सा) है— सूरा-4, आ-76, हा-105।

★ बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाले निकम्मे साबित होते हैं— सूरा-4, आ-77, हा-107।

★ जिहाद के हुक्म पर मुनाफ़िक़ों का ज़ेहनी रद्दे-अमल सूरा-4, आ-77, हा-107।

★ क़िताल के हुक्म में ख़ैर छिपी हुई है— सूरा-2, आ-216।

★ क़िताल के मुक़ाबले में जिहाद का वसीअ मफ़हूम— सूरा-2, आ-218, हा-234; सूरा-5, आ-35, हा-59।

★ बनी-इसराईल का उससे जी चुराना और उसके नतीजे— सूरा-2, आ-243, हा-266; सूरा-5, आ-21।

★ अल्लाह की राह में लड़ने और कुफ़्र के लिए लड़ने में फ़र्क़— सूरा-3, आ-13।

★ अल्लाह की राह में लड़ने का अज्र— सूरा-4, आ-74 और 95।

★ क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह में सब्र व इस्तिक़ामत की अहमियत— सूरा-3, आ-146।

★ मुक़ाबले के लिए तैयार रहने का हुक्म— सूरा-4, आ-71।

★ यह उन लोगों का काम है जो आख़िरत के बदले दुनियावी ज़िन्दगी को बेच दें— सूरा-4, आ-74 हा-103।

★ नफ़ीरे-आम और फ़र्ज़े-किफ़ाया का फ़र्क़— सूरा-4, हा-128।

★ नमाज़ में क़स्र की इजाज़त— सूरा-4, आ-101, हा-132।

★ ख़ौफ़ की नमाज़— सूरा-4, आ-101, 102, हा-133 से 136।

● **क़ियामत**

★ इख़्तिलाफ़ों के फ़ैसले का दिन— सूरा-2, आ-113।

★ पूरे-पूरे अज्र पाने का दिन— सूरा-3, आ-185।

★ सारे इनसानों को जमा किया जाएगा— सूरा-3, आ-87; सूरा-6, आ-12 और 128।

★ क़ियामत के दिन मुजरिमों की तरफ़ से कोई वकालत न कर सकेगा— सूरा-4, आ-109।

★ मुसलमानों और मुनाफ़िक़ों के दर्मियान क़ियामत ही को फ़ैसला होगा— सूरा-4, आ-141।

★ क़ियामत के दिन हज़रत ईसा (अलै.) का अहले-किताब पर गवाही देना— सूरा-4, आ-159।

★ अहले-कुफ़्र को क़ियामत के दिन कोई सज़ा से बचा न सकेगा— सूरा-5, आ-36।

★ वह एक ग़ैर-मुश्तबह हक़ीक़त है— सूरा-6, आ-12।

★ बड़ा ख़ौफ़नाक दिन— सूरा-6, आ-15।

★ जिस दिन अल्लाह कहेगा कि हश्र हो जाए उसी दिन वह हो जाएगा— सूरा-6, आ-73।

★ क़ियामत में सूर फूँकने का मफ़हूम— सूरा-6, हा-47।

★ निज़ामे-कायनात का दरहम-बरहम होकर नए सिरे से क़ायम होना— सूरा-6, हा-47।

★ उसका आना यक़ीनी है—सूरा-6, हा-134।

● **कबायर** (बड़े गुनाह)

★ इनकी तीन सूरतें : ज़ुल्म, फ़िस्क़ व मासियत और फ़ुजूर— सूरा-4, हा-53।

★ कबायर (बड़े गुनाहों) से बचनेवालों की छोटी-छोटी ग़लतियाँ अल्लाह माफ़ कर देगा— सूरा-4, आ-31, हा-53।

● **कुतुबे-आसमानी** (आसमानी किताबें)

सब किताबों पर ईमान लाना ज़रूरी है— सूरा-2, आ-4 और 136, हा-7।

★ उनके नाज़िल करने का मक़सद— सूरा-2, आ-213; सूरा-3, आ-3।

★ तौरात और इंजील की तारीख़— सूरा-3, हा-2।

★ हज़रत ईसा तौरात की इक़ामत के लिए आए थे— सूरा-3, आ-50, हा-46।

★ सभी आसमानी किताबों के लिए लफ़्ज़ 'अल-किताब' का इस्तेमाल— सूरा-5, आ-48, हा-78।

★ सभी आसमानी किताबों की तसदीक़ करनेवाला और मुहाफ़िज़ है— सूरा-3, आ-3, हा-2; सूरा-5, आ-48, हा-78।

● **कसब** (कमाई)

★ आमाल को कसब (कमाई) कहता है— सूरा-2, आ-134, हा-134।

★ हर शख़्स अपने कमाए हुए आमाल (कर्मों) का ख़ुद ज़िम्मेदार है— सूरा-6, आ-160।
● **काबा**
★ बैतुल-मक़दिस से पहले की मरकज़ी इबादतगाह— सूरा-2, हा-148।
★ उसके क़िबला बनाने पर यहूदियों का एतिराज़— सूरा-3, हा-79।
★ उसकी अल्लाह के यहाँ मक़बूल होने की अलामात— सूरा-3, आ-79।
★ अरबों में उसका एहतिराम—सूरा-3, आ-97, हा-81।
★ उसके असरात अरबों की इज्तिमाई ज़िन्दगी पर— सूरा-5, आ-97, हा-113।
● **कफ़्फ़ारा** (प्रायश्चित)
★ क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा— सूरा-2, आ-226, हा-243, सूरा-5, आ-89।
★ मोमिन को ग़लती से क़त्ल करने का कफ़्फ़ारा— सूरा-4, आ-92, हा-121 से 124।
★ कफ़्फ़ारे और जुर्माने में फ़र्क़— सूरा-3, हा-125।
★ सदक़ा बतौर कफ़्फ़ारा— सूरा-5, आ-45, हा-75।
★ एहराम की हालत में शिकार करने का कफ़्फ़ारा— सूरा-5, आ-95।
● **कुफ़्फ़ारे-मक्का** (देखें : क़ुरैश)।
● **कुफ़्र**।
★ कुफ़्र क्यों ख़िलाफ़े-अक़्ल व फ़ितरत है?— सूरा-2, हा-35।
★ अल्लाह की आयतों से कुफ़्र करने का मतलब— सूरा-2, हा-78।
★ अल्लाह की किताब के एक हिस्से को मानना और दूसरे हिस्से को छोड़ देना— सूरा-2, आ-85, हा-92।
★ काफ़िराना अक़ाइद व आमाल की तफ़्सील— सूरा-2, आ-98 से 103, हा-104।
★ कुफ़्र के रवैये की मुख़्तलिफ़ सूरतें— सूरा-2, आ-161, हा-161, सूरा-4, आ-136, हा-167, आ-150, हा-178।
★ 'कुफ़्र' लफ़्ज़ का इस्तेमाल 'शुक्र' के मुक़ाबले में— सूरा-2, हा-161।
★ अहले-कुफ़्र के लिए दुनियावी ज़िन्दगी बड़ी दिलचस्प बना दी जाती है— सूरा-2, आ-212।
★ कुफ़्र व ईमान में समझौता नहीं हो सकता— सूरा-2, आ-217, हा-333।
★ कुफ़्र बन्दगी से इनहिराफ़ का दूसरा मर्तबा है— सूरा-2, हा-286।
★ रियाकारी (दिखावे) पर कुफ़्र का इतलाक़— सूरा-2, आ-264, हा-304।
★ कुफ़्र के उख़रवी अंजाम से माल और औलाद नहीं बचा सकते— सूरा-3, आ-10 और 116।
★ रसूल की इताअत से इनकार कुफ़्र है— सूरा-3, आ-32।
★ इस रविश का अंजाम— सूरा-3, आ-56।
★ कोई नबी कुफ़्र का हुक्म नहीं दे सकता— सूरा-3, आ-80, हा-68।
★ कुफ़्र दर कुफ़्र का रवैया— सूरा-3, आ-90।
★ कुफ़्र की हालत में जान देनेवालों का अजाम— सूरा-3, आ-91; सूरा-4, आ-18।
★ अल्लाह के हुक़ूक़ की अदायगी से बचना कुफ़्र है— सूरा-3, आ-97।
★ अहले-कुफ़्र की चलत-फिरत दीने-हक़ के मुक़ाबले में कुछ नहीं— सूरा-3, आ-176 और 196।
★ अहले-कुफ़्र के लिए आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं— सूरा-3, आ-176।
★ अहले-कुफ़्र को ढील देने का मक़सद— सूरा-3, आ-178।
★ काफ़िर व मुस्लिम का उसूली फ़र्क़— सूरा-4, हा-89।
★ तागूत की राह में लड़ना काफ़िरों का काम है— सूरा-4, आ-76, हा-105।
★ निज़ामे-कुफ़्र के तहत अहले-ईमान के ज़िन्दगी बसर करने की दो सूरतें— सूरा-4, हा-131।
★ इस्लाम के लिए बे हमीयती कुफ़्र का मूजिब है— सूरा-4, आ-140, हा-170।
★ नसारा का कुफ़्र— सूरा-5, आ-17, और 72, हा-39।
★ अहले-कुफ़्र (काफ़िरों) को आख़िरत के अज़ाब से कोई फ़िदया बचा नहीं सकता— सूरा-5, आ-36।
★ "युसारिऊ न फ़िल कुफ़्र" का मतलब— सूरा-5, आ-41, हा-62।
★ जो अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करें वे काफ़िर हैं— सूरा-5, आ-44, 62।
★ दीन में मूशिगाफ़ियों (बाल की खाल निकालने) का नतीजा कुफ़्र होता है— सूरा-5, आ-102, हा-117।
★ अहले-कुफ़्र ही हठधर्मी— सूरा-6, आ-7 और 8।
★ अहले-कुफ़्र के लिए गुमराही का ख़ुशनुमा बन जाना— सूरा-6, आ-122, हा-90।
● **कुफ़्राने-नेमत**
★ 'कुफ़्र' शुक्र के मुक़ाबले में— सूरा-2, हा-161।

★ कंजूसी कुफ़्राने-नेमत है— सूरा-4, आ-37, हा-63।
★ कुफ़्राने-नेमत और उसकी पादाश (नतीजा)— सूरा-6, आ-6।
★ कुफ़्राने-नेमत का नतीजा नेमत का छिन जाना है— सूरा-6, आ-89, हा-58।

(ख)

● **ख़ुला**
★ ख़ुला का इस्तिलाही (पारिभाषिक) मफ़हूम और उसका तरीक़ा— सूरा-2, आ-229, हा-252।
● **ख़ुला की इद्दत**— सूरा-2, हा-252।
● **ख़म्र**— (देखें : शराब)।
● **ख़ूँबहा**— (देखें : क़ानूने-इस्लाम)।
● **ख़ैरे-उम्मत**
★ ख़ैरे-उम्मत के औसाफ़ (गुण) और ज़िम्मेदारियाँ— सूरा-3, आ-110, हा-88।
● **ख़ुसरान** (घाटा)
★ किस तरह के लोग घाटे के मुस्तहिक़ हैं?— सूरा-2, आ-27 और 121; सूरा-6, आ-31, आ-140।
● **ख़िलाफ़त**
★ ख़िलाफ़त के मानी— सूरा-2, हा-38।
★ इनसानी ख़िलाफ़त के बारे में तीन अहम हक़ीक़तें— सूरा-6, आ-165, 146।

(ग)

● **गुलामी**
★ लौण्डियों से तमत्तोअ की इजाज़त— सूरा-4 : आ-3, हा-6; आ-24, हा-44।
★ मनकूहा-लौंडी के लिए ज़िना की सज़ा— सूरा-4, आ-25, हा 46।
● **ग़ैब**
उसके मानी— सूरा-2, आ-3, हा-4।
★ ईमान-बिल-ग़ैब का मतलब— सूरा-2, हा-4।
★ अल्लाह ग़ैब की हक़ीक़तों में से जितना कुछ चाहता है अपने रसूलों को बताता है— सूरा-3, आ-179।
★ ग़ैब की बातों के बारे में अल्लाह और रसूलों पर एतिमाद करो— सूरा-3, आ-179।
★ ग़ैब का पर्दा उठाने के बाद इस्लाह (सुधार) का ख़ात्मा— सूरा-6, हा-6।
★ आख़िरत में हक़ीक़त बिल्कुल बे नक़ाब होगी— सूरा-6, आ-28, हा-19।
★ नबी (सल्ल॰) के आलिमुल-ग़ैब होने की सरीह (खुल्लम-खुल्ला) तरदीद— सूरा-6, आ-50।
★ ग़ैब की कुंजियाँ सिर्फ़ अल्लाह के पास है— सूरा-6, आ-59।

(ज)

● **जादू**
★ इसकी हक़ीक़त— सूरा-2, आ-102, हा-104 और 106।
● **जाहिलियत**
★ उसका इस्तिलाही (पारिभाषिक) मफ़हूम— सूरा-5, आ-50, हा-83।
● **जिब्त**
★ उसके मानी— सूरा-4, आ-51, हा-81।
● **जिबरील** (अलै॰)
★ उनसे यहूदियों की दुश्मनी— सूरा-2, आ-97, हा-100।
★ लानेवाले— सूरा-2, आ-97, हा-102।
● **जिन्न**
★ उनको भी अल्लाह का साझी ठहराया गया— सूरा-6, आ-100, हा-67।
★ इनसानों की तरह जिन्नों के लिए भी भलाई और बुराई में इन्तिख़ाब की आज़ादी— सूरा-6, आ-112, हा-80।
★ आख़िरत में जिन्न शैतानों से ख़िताब— सूरा-6, आ-128।
● **जन्नत**
★ उसकी नेमतों की तफ़सीलात— सूरा-2, आ-25।
★ किसी क़िस्म के लोग जन्नत में जाएँगे?— सूरा-2, आ-25, हा-48, आ-82, आ-214; सूरा-3, आ-15, आ, 133, 134 से 136 और आ-195 सूरा-4, आ-57, 122 और 124 सूरा-5, आ-12, 84 और 85।
★ जन्नत में मियाँ-बीवी का रिश्ता— सूरा-2, आ-25, हा-27।
★ आदम और उनकी बीवी को जन्नत में रखा जाता है— सूरा-2, आ-35, हा-48।
★ जन्नत की तरफ़ बढ़ने में पहल करो— सूरा-3, आ-133।
★ जन्नत की राह सख़्त आज़माइशों से होकर गुज़रती है— सूरा-3, आ-142।
★ जन्नत को हासिल करने का दारोमदार अल्लाह और

रसूल की फ़रमाँबरदारी पर है— सूरा-4, आ-13।

★ मुशरिकों के लिए जन्नत हराम है— सूरा-5, आ-72।

★ जन्नत सलामती और शान्ति का घर— सूरा-6, आ-127, हा-93।

● **जंग**
देखें : क़िताल फ़ी सबीलिल्लाह।

● **जिहाद**
देखें : अल्लाह की राह में क़िताल।

● **जहन्नम**— देखें : दोज़ख़।

● **जुआ** (क़िमार)

★ जुए के बारे में का पहला हुक्म— सूरा-2, आ-219, हा-235।

★ उसके ज़रीए से तक़सीम और फ़ालगीरी की मनाही— सूरा-5, आ-3, हा-14।

★ जुए की क़िस्म के खेलों और मामलों का हराम किया जाना— सूरा-5, हा-14।

★ जुए को क़तई तौर पर हराम क़रार दिया जाना— सूरा-5, आ-90, हा-109।

★ जुए के हराम होने की वजह— सूरा-5, आ-91।

● **ज़ालिम**।

● **ज़ालिमीन**— देखें : ज़ुल्म।

● **ज़ुल्म**

★ की इस्तिलाह में ज़ुल्म से क्या मुराद है— सूरा-2, हा-49।

★ अल्लाह की मस्जिदों में इबादत से रोकना और उनको वीरान करना ज़ुल्म है— सूरा-2, आ-114।

★ ख़ुदा के दिए हुए इल्म को छोड़कर दूसरों की पैरवी करना ज़ुल्म है— सूरा-2, आ-145।

★ अल्लाह ज़ालिमों को नापसन्द करता है— सूरा-3, आ-57।

★ अल्लाह ज़ालिमों को हिदायत नहीं देता— सूरा-3, आ-86; सूरा-5, आ-51; सूरा-6, आ-144।

★ मज़लूम के लिए बदकलामी की रुख़सत— सूरा-4, आ-148।

★ जो अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करें वे ज़ालिम हैं— सूरा-5, आ-45।

★ अल्लाह पर बुहतान लगाने और अल्लाह की आयतों को झुठलानेवाले सबसे बढ़कर ज़ालिम हैं— सूरा-6, आ-21।

★ ज़ालिमों के लिए फ़लाह नहीं है— सूरा-6, आ-21।

★ अल्लाह की आयतों पर नुक्ताचीनियाँ करनेवाले ज़ालिम हैं— सूरा-6, आ-68।

★ ज़ुल्म का इतलाक़ शिर्क पर है— सूरा-6, आ-82, हा-55।

★ अल्लाह पर बुहतान बाँधकर नुबूवत का दावा करना— सूरा-6, आ-93।

★ ज़ालिमों की हालत सकराते-मौत के आलम में— सूरा-6, आ-93।

★ अल्लाह पर झूठ बाँधना इन्तिहाई ज़ुल्म है— सूरा-6, आ-144।

● **ज़िक्र**

★ हज के साथ अल्लाह के ज़िक्र की अहमियत— सूरा-2, आ-200।

★ अल्लाह का ज़िक्र करनेवालों के दो गरोह—
(1) सिर्फ़ दुनिया चाहनेवाले,
(2) दुनिया और आख़िरत दोनों को चाहनेवाले— सूरा-2, आ-200 और 201।

★ अल्लाह का ज़िक्र उस तरीक़े से करो जो अल्लाह ने सिखाया हो— सूरा-2, आ-239।

● **ज़बूर**
इसमें तहरीफ़— सूरा-4, हा-205।

● **ज़कात**
सूरा-2, आ-43, हा-59, आ-83, और 110।

● **ज़करीया** (अलै.)

★ उनका मज़लूमाना क़त्ल— सूरा-2, हा-79।

● **ज़िना**

★ ज़िना की इन्तिहाई सज़ा— सूरा-4, आ-15, हा-26।

★ ज़िना के लिए चार गवाहों की गवाही— सूरा-4, आ-15।

★ शादी-शुदा लौंडी के लिए ज़िना की सज़ा— सूरा-2, आ-25, हा-46।

★ ज़िना के गुनाह होने के मुख़्तलिफ़ दर्जे— सूरा-4, हा-53।

(त)

● **ताग़ूत**

★ लफ़्ज़ 'ताग़ूत' के मानी— सूरा-4, हा-91।

★ बन्दगी के रवैये से इनहिराफ़ का तीसरा मर्तबा— सूरा-2, हा-286।

★ अल्लाह पर ईमान लाने के लिए ताग़ूत से इनकार ज़रूरी है— सूरा-2, आ-257, हा-288; सूरा-4, आ-60।

★ ताग़ूत की मुख़्तलिफ़ क़िस्में— सूरा-2, हा-288।

★ ताग़ूत से मामलों में रुजूअ करना ईमान के मनाफ़ी

है— सूरा-4, आ-60, हा-91।
★ इसकी राह में लड़ना कुफ़्र है— सूरा-4, आ-76, हा-105।

● **तालूत**
★ बादशाहत के लिए तक़र्रुर— सूरा-2, आ-247, और 248, हा-269।
★ तालूत का लश्कर लेकर निकलना— सूरा-2, आ-249, 250।

● **तलाक़**
★ मुतल्लक़ा औरतों के लिए इद्दत का हुक्म— सूरा-2, आ-228, हा-247।
★ रजअत— सूरा-2, आ-229, हा-250।
★ तलाक़ का सही तरीक़ा— सूरा-2, आ-229, हा-250।
★ तीन तलाक़ों पर ताल्लुक़ का क़तई ख़त्म हो जाना— सूरा-2, आ-230।
★ साज़िशी हलाले की हैसियत— सूरा-2, आ-230, हा-253।
★ अलाहदगी की सूरत में शरीफ़ाना रवैये की तलक़ीन— सूरा-2, आ-229।
★ तलाक़ को नुक़सान पहुँचाने का ज़रीआ न बनाया जाए— सूरा-2, आ-231।
★ अलाहदगी की सूरत में बच्चों को दूध पिलाने का मामला — सूरा-2, आ-233, हा-257।
★ मुतल्लक़ा (तलाक़शुदा) औरत जब इद्दत गुज़ारे तो अपनी मर्ज़ी से निकाह करने में इसके लिए रुकावट न डाली जाए— सूरा-2, आ-232।
★ हाथ लगाने से पहले तलाक़ देने की सूरत— सूरा-2, आ-236, 237।
★ यह बिल्कुल आख़िरी चारा-ए-कार है— सूरा-4, आ-19, हा-30।

● **तूर**
★ बनी-इसराईल पर उसका हाथ उठाया जाना— सूरा-2, आ-63, हा-81।
★ बनी-इसराईल को 'फ़रमान' देने का वाक़िआ— सूरा-4, आ-153-154, हा-184।

● **तहारत व पाकीज़गी**
★ हैज़ की माहियत— सूरा-2, आ-222, हा-238।
★ हैज़ (मासिक धर्म) की हालत में क़रीब जाने की मनाही— सूरा-2, आ-222, हा-239।
★ हैज़ की हालत के मुताल्लिक़ मुशरिकों और यहूदियों का तरीक़ा— सूरा-2, हा-239, सूरा-4, हा-49।
★ जनाबत का ग़ुस्ल— सूरा-4, आ-43, हा-68; सूरा-5, आ-6, हा-25।
★ तयम्मुम— सूरा-4 का परिचय और आ-43, हा-70; सूरा-5, आ-6
★ वुज़ू— सूरा-5, आ-6, हा-24।

● **ताबूत-ए-सकीना**
★ बनी-इसराईल को इसकी वापसी की ख़ुशख़बरी— सूरा-2, आ-248।
★ इसकी हक़ीक़त— सूरा-2, हा-270।

● **तज़क्कुर**
★ इसका मफ़हूम— सूरा-6, हा-54।

● **तज़किया**
★ इसका वसीअ (विस्तृत) मफ़हूम— सूरा-2, हा-128।
★ छिप कर नेकी करने के असरात इनसान के नफ़्स पर— सूरा-2, हा-312।
★ गवाही को छुपाने से दिल गुनाह से आलूदा (गन्दा) होता है— सूरा-2, आ-283।

● **तसबीह**
★ उसके मानी— सूरा-2, हा-40।

● **तिफ़रक़ा और इख़्तिलाफ़**
★ किस क़िस्म के तफ़्रिक़े की में मनाही है— देखें : मुक़द्दिमा।
★ इज्तिहादी इख़्तिलाफ़ात उसकी तारीफ़ में नहीं आते— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसकी असल वजह— सूरा-2, आ-213, और 253, हा-275; सूरा-3, आ-19।
★ उसकी मनाही— सूरा 3, आ-103, हा-83।
★ उससे बचने का वाहिद ज़रीआ— सूरा-3, आ-103, हा-83।
★ उससे बचने के लिए भलाई का हुक्म करने और बुराई से रोकने की अहमियत— सूरा-3, आ-104।
★ इनसानियत का दो टकराववाले गरोहों में बँट जाना?— सूरा-6, आ-159, हा-141।

● **तफ़हीमुल-क़ुरआन**
★ इसकी ख़ुसूसियत— देखें : दीबाचा।
★ तर्जमे के बजाय तर्जमानी का तरीक़ा इख़्तियार करने की वजहें— देखें : दीबाचा।
★ तर्जमानी के तरीक़े की तसरीह— देखें : दीबाचा।
★ इससे फ़ायदा उठाने का तरीक़ा— देखें : दीबाचा।
★ इसका इतिहास— देखें : दीबाचा।
★ मुक़द्दिमे का मक़सद— देखें : मुक़द्दिमा।

● **तक़दीर** (भाग्य)

★ अल्लाह किस क़िस्म के लोगों को हिदायत से महरूम करता है— सूरा-2, आ-6, हा, 9, 16, आ-19, आ-258, और 264।

★ अल्लाह के गुमराही में इज़ाफ़ा करने का मतलब— सूरा-2, हा-12।

★ अल्लाह के हिदायत देने और गुमराह करने का मतलब— सूरा-2, आ-26, हा-29; सूरा-6, आ-39, हा-28।

★ अल्लाह की मर्ज़ी के बिना कोई काम नहीं हो सकता — सूरा-2, आ-102।

★ हिदातय का ताल्लुक़ अल्लाह के हाथ में होने का मतलब— सूरा-2, आ-213।

★ ज़मीन को फ़साद से बचाने के लिए अल्लाह तआला की तदबीर— सूरा-2, आ-251, हा-274।

★ इनसान को इख़्तिलाफ़ की आज़ादी अल्लाह ने दी है — सूरा-2, आ-253, हा-275।

★ अल्लाह तमाम कायनात को संभाले हुए है— सूरा-2, आ-255।

★ 'आयत-ल-कुर्सी' में तक़दीर के निज़ाम के बारे में खुले इशारों की अहमियत— सूरा-2, हा-284।

★ हार और जीत अल्लाह के हाथ में है— सूरा-3, आ-13 और 126; सूरा-4, आ-102, हा-137।

★ तमाम उतार-चढ़ाव के पीछे ख़ुदा का हाथ— सूरा-3, आ-26, 27।

★ अल्लाह का रिज़्क़ पहुँचाने का निज़ाम— सूरा-3, आ-37।

★ हालात की गर्दिशों में अल्लाह की मर्ज़ी की मसलिहतें — सूरा-3, आ-140 और 166।

★ मौत के डर का इज़ाला (निवारण)— सूरा-3, आ-145, हा-104; सूरा-4, आ-78।

★ मौत की घड़ी अटल है— सूरा-3, आ-154।

★ ख़ुदा की नाफ़रमानी करके उसकी तक़दीर से नहीं बचा जा सकता— सूरा-3, हा-113।

★ अल्लाह जिस की मदद पर हो उस पर कोई ग़ालिब नहीं आ-सकता— सूरा-3, आ-160।

★ काफ़िरों (नाफ़रमानों) को ढील देने का मक़सद— सूरा-3, आ-178।

★ भलाई और मुसीबत सब कुछ अल्लाह की मर्ज़ी के तहत है— सूरा-4, आ-79।

★ अल्लाह चाहे तो ज़मीन से एक को हटा-कर दूसरे को ले आए— सूरा-4, आ-133।

★ नबी (सल्ल.) और मुसलमानों को यहूद की साज़िश से ख़ुदा का बचा लेना— सूरा-5, आ-11, हा-30।

★ अल्लाह ने नसारा के अन्दर सज़ा के तौर पर बुग्ज़ और दुश्मनी डाल दी है— सूरा-5, आ-14।

★ बनी-इसराईल के नाम पाक ज़मीन का लिख दिया जाना— सूरा-5, आ-21, हा-43।

★ अल्लाह के 'फ़ितने में डालने' का मतलब— सूरा-5, हा-67।

★ यहूदियों के जुर्म की वजह से उनको मुसीबत में डालने का फ़ैसला— सूरा-5, आ-49।

★ यहूद को तुग़यान व कुफ़्र (सरकशी व नाफ़रमानी) के वबाल के तौर पर अल्लाह का उनमें बुग्ज़ व दुश्मनी डालना— सूरा-5, आ-64।

★ हज़रत ईसा (अलै.) को मुख़ालिफ़ों से बचाने वाला अल्लाह ख़ुद था— सूरा-5, आ-110।

★ अगर अल्लाह नुक़सान पहुँचाना चाहे तो उससे कोई बचा नहीं सकता— सूरा-6, आ-17।

★ अगर अल्लाह भलाई देना चाहे तो कोई रुकावट नहीं बन सकता— सूरा-6, आ-17

★ दिलों पर अल्लाह की तरफ़ से पर्दे डालने का मफ़हूम— सूरा-6, आ-25, हा-17।

★ फ़ितरत के क़ानून के तहत होने वाले सभी हादिसे अल्लाह की तरफ़ से होते हैं— सूरा-6, हा-17।

★ अल्लाह के क़ानूनों को बदलने की ताक़त किसी में नहीं— सूरा-6, आ-34, हा-22।

★ हक़ और बातिल की कश-मकश का अटल क़ानून— सूरा-6, हा-22।

★ जानवरों और परिन्दों के लिए तक़दीर के नविश्ते— सूरा-6, आ-38।

★ हिदायत और गुमराही अल्लाह के इख़्तियार में है— सूरा-6, आ-39 और 88।

★ नबियों के आने पर मुसीबतों का आना और उसकी हिकमत— सूरा-6, आ-42।

★ फ़ैसले का सारा इख़्तियार अल्लाह के हाथ में है— सूरा-6, आ-57।

★ ख़ुश्क-व-तर (जल-थल की सारी चीज़ों के बारे में) सब कुछ एक किताब में लिखा हुआ है— सूरा-6, आ-59।

★ हर आदमी पर निगरानी करनेवाले फ़रिश्ते मुक़र्रर हैं— सूरा-6, आ-61, हा-40।

★ हर बात के ज़ाहिर होने के लिए एक वक़्त मुक़र्रर है— सूरा-6, आ-67।
★ कायनात का निज़ाम अल्लाह के ठहराए हुए अन्दाज़ पर चल रहा है—सूरा-6, आ-96।
★ हर एक इनसान के लिए ठिकाना और ठहरने की जगह मुक़र्रर है— सूरा-6, आ-98।
★ अल्लाह की मर्ज़ी यह नहीं है कि लोगों को जबरन हिदायत पर पैदा किया जाता— सूरा-6, आ-107, हा-71।
★ आदमी के लिए उसका अमल ख़ुशनुमा बन जाता है— सूरा-6, आ-108, 122 और 137।
★ अल्लाह की तरफ़ इनसान के अमल की निस्बत की वजह— सूरा-6, आ-108, हा-73।
★ अल्लाह का दिलों और निगाहों को फेरना— सूरा-6, आ-110।
★ जिन्न व इनसान शैतानों को नबियों का दुश्मन बनाया गया है— सूरा-6, आ-112।
★ अल्लाह की मर्ज़ी और रिज़ा में फ़र्क़— सूरा-6, आ-112, हा-80।
★ अल्लाह की तक़दीर यह नहीं है कि लोगों को जबरन किसी गुमराही से रोके और कोई चीज़ मनवाए— सूरा-6, आ-137।
★ जिन्नों और इनसानों को भलाई और बुराई में इन्तिख़ाब की आज़ादी— सूरा-6, हा-80।
★ बड़े-बड़े मुजरिमों का अपनी मक्कारियों के जाल में ख़ुद ही फँस जाना— सूरा-2, आ-123।
★ अल्लाह की तरफ़ से हक़ क़बूल करने के लिए 'दिल की तंगी' और 'दिल के खुलने' की कैफ़ियत— सूरा-2, आ-125, हा-92।
★ ईमान न लानेवालों पर उनकी नापाकी का मुसल्लत हो जाना— सूरा-6, आ-125।
★ अल्लाह पर झूठ गढ़नेवाले ज़ालिम लोगों को हिदायत नसीब नहीं होती है— सूरा-6, आ-144।
★ मुजरिमों का अपने जुर्म के लिए ख़ुदा की मंशा की आड़ लेना— सूरा-6, आ-148, हा-124।
★ तक़दीर की आड़ लेनेवालों को अल्लाह का जवाब— सूरा-6, हा-125।

● **तक़दीस** (पावनता)
★ उसके मानी— सूरा-2, हा-40।

● **तक़वा**
★ तक़वा का मफ़हूम— सूरा-2, आ-21 हा-22।
★ तक़वा के पैदा करने का तरीक़ा— सूरा-2, आ-187, हा-196।
★ हज के सफ़र के लिए बेहतरीन ज़ादे-राह— सूरा-2, आ-197।
★ आख़िरत की भलाई का दारोमदार तक़वा पर है, न कि रिज़्क़ की कुशादगी पर— सूरा-2, आ-212।
★ आख़िरत में तक़वा के नतीजे— सूरा-3, आ-15, आ-198।
★ तक़वावालों की ख़ास सिफ़त सब्र है— सूरा-3, आ-17, हा-13।
★ अल्लाह का महबूब बनने के लिए तक़वा की अहमियत— सूरा-3, आ-76।
★ कामयाबी के लिए तक़वा लाज़िमी है— सूरा-3, आ-130।
★ चोटें खाकर भी ख़ुदा और रसूल की पुकार पर लब्बैक कहना— सूरा-3, आ-172, हा-122।
★ इस्लामी क़ानूनों की कामयाबी के लिए तक़वा की अहमियत— सूरा-4, आ-1, हा-1।
★ शादी-शुदा ज़िन्दगी में तक़वा की अहमियत— सूरा-4, आ-128, 129।
★ अहले-किताब को भी इसी तरह तक़वा की हिदायत की गई थी— सूरा-4, आ-131।
★ अल्लाह के क़ानूनों को तोड़ने से बचना— सूरा-5, आ-4।
★ अल्लाह मुत्तक़ियों की इबादत क़बूल करता है— सूरा-5, आ-27, हा-48।

● **तक़ीय्या** (किसी के डर से हक़ का छिपाना)
★ किस हालत में और किस हद तक किया जा सकता है— सूरा-3, आ-28, हा-25 और 26।

● **तलमूद**
★ इसमें हज़रत याक़ूब (अलै.) की वसीयत का मज़मून से बहुत मिलता-जुलता है— सूरा-2, हा-133।
★ हज़रत इबराहीम (अलै.) से नमरूद के मुबाहसे (तर्क-वितर्क) के बारे में उसका बयान— सूरा-2, हा-290।
★ हज़रत इबराहीम (अलै.) की हक़ीक़त को तलाश करने की जुस्तजू की हक़ीक़त के बारे में उसका बयान— सूरा-6, हा-55।

● **तौबा**
★ तौबा लफ़्ज़ के मानी— सूरा-2, हा-51; सूरा-4, हा-27।

- ★ तौबा की हक़ीक़त— सूरा-2, हा-51; सूरा-4, हा-27।
- ★ किस तरह के गुनाह माफ़ किए जाते हैं— सूरा-2, आ-37, हा-52; सूरा-6, आ-54, हा-37।
- ★ अख़लाक़ी निज़ाम में तौबा की अहमियत— सूरा-2, हा-52।
- ★ तौबा के साथ इस्लाह व सुधार की अहमियत— सूरा-2, आ-160; सूरा-3, आ-89; सूरा-4, आ-16, 146, सूरा-5, आ-39; सूरा-6, आ-54।
- ★ किन-किन की तौबा मक़बूल नहीं— सूरा-3, आ-90; सूरा-4, आ-18, हा-27।
- ★ सच्ची तौबा के आदाब और तरीक़े— सूरा-3, आ-135; सूरा-6, आ-54।
- ★ उसकी क़ाबिले-क़बूल सूरत— सूरा-4, आ-17 और 110; सूरा-6, आ-54।
- ★ तौबा के लिए क़फ़्फ़ारे (प्रायश्चित) की अहमियत— सूरा-4, आ-92, हा-125।
- ★ बग़ावत के मुजरिमों के लिए तौबा की गुंजाइश नहीं — सूरा-5, आ-34, हा-57।
- ★ अदालती सज़ा के बावजूद आख़िरत की सज़ा से बचने के लिए तौबा की अहमियत— सूरा-5, आ-39, हा-61।
- ★ इस्लाम लाने से पहले के गुनाहों की माफ़ी— सूरा-6, आ-54, हा-82।

● **तौहीद** (ऐकेश्वरवाद) सूरा-2, आ-29, हा-36 और आ-83।

- ★ सिर्फ़ अल्लाह के लिए हम्द (प्रशंसा)— सूरा-1, आ-1, हा-2।
- ★ सिर्फ़ अल्लाह ही की इबादत— सूरा-1, आ-4, आ-6।
- ★ सिर्फ़ अल्लाह ही से मदद माँगना— सूरा-1, आ-4, हा-7।
- ★ तौहीद के दलाइल (प्रमाण)— सूरा-2, आ-22, हा-23, आ-28, हा-34, आ-164, हा-162; सूरा-6, आ-41, हा-29, आ-47, आ-63 से 64, हा-41, आ-95 से 98, हा-63 से 66।
- ★ अल्लाह से सीधे तौर पर दुआ-और सिफ़ारिश करना— सूरा-2, आ-186, हा-188।
- ★ पूरी कायनात को संभालने और उसका इन्तिज़ाम करनेवाला अकेला अल्लाह है— सूरा-2, आ-255; सूरा-3, आ-2।
- ★ 'आयतल-कुर्सी' का अल्लाह की मारिफ़त की कुंजी होना— सूरा-2, आ-255, हा-284।
- ★ नमरूद के सामने हज़रत इबराहीम (अलै.) के तौहीद के दलाइल (प्रमाण)— सूरा-2, आ-258, 291।
- ★ अकेला एक ही माबूद (उपासक)— सूरा-3, आ-2; सूरा-6, आ-102 और 106।
- ★ हादी (मार्गदर्शक) वही हो सकता है जो ख़ालिक (पैदा करनेवाला) है— सूरा-3, आ-6, हा-4।
- ★ अपनी तौहीद पर अल्लाह ख़ुद गवाही देता है— सूरा-3, आ-18, हा-14।
- ★ तौहीद पर फ़रिश्तों और इल्मवालों की गवाही— सूरा-3, आ-18, हा-15।
- ★ तमाम तकवीनी इख़्तियारात (नैसर्गिक अधिकार) का अल्लाह ही के हाथ में होना— सूरा-3, आ-26 और 27।
- ★ हज़रत ईसा (अलै.) की तौहीद की दावत— सूरा-3, हा-48; सूरा-5, आ-72, और 117।
- ★ तौहीद के नज़रिये (धारणा) पर नजरान के वफ़्द (प्रतिनिधिमण्डल) को मुबाहिले की दावत— सूरा-3, हा-55 आ-61।
- ★ किताबवालों को तौहीद की दावत— सूरा-3, आ-64।
- ★ नबी ख़ुदा की बन्दगी के बजाय अपनी या फ़रिश्तों या पैग़म्बरों की बन्दगी की दावत नहीं देते। वे रब्बानी बनने की दावत नहीं देते हैं— सूरा-3, आ-79, हा-68।
- ★ तौहीद के इनकार का मतलब है आमाल (कर्मों) का नष्ट हो जाना— सूरा-3, आ-117, हा-91।
- ★ पूरी सियासी हकिमियत (राजनीतिक सम्प्रभुत्व) अल्लाह ही के लिए ख़ास है— सूरा-3, आ-154।
- ★ अल्लाह पाक और नापाक को छाँट देता है— सूरा-3, आ-179।
- ★ अपने दीन को अल्लाह के लिए ख़ालिस (विशुद्ध) करना— सूरा-4, आ-146, हा-174।
- ★ 'ला तक़ूलू सलासतुन' (तीन न कहो)— सूरा-4, आ-171, हा-215।
- ★ अल्लाह एक ही ख़ुदा है— सूरा-4, आ-171; सूरा-5, आ-73।
- ★ अल्लाह हुक्म देने में हक़ीक़ी हाकिम है— सूरा-5, आ-1, हा-4।
- ★ हलाल व हराम करने के सारे इख़्तियारात अल्लाह के हाथ में हैं— सूरा-5, आ-1, हा-4, आ-87, हो 104।
- ★ ज़मीन आसमान की पूरी सल्तनत का मालिक

अकेला अल्लाह है— सूरा-5, आ-40; सूरा-6, आ-12, हा-9।
- ★ मामलों का अल्लाह के क़ानून के तहत निपटारा करना उसका तक़ाज़ा है— सूरा-5, आ-44 से 47, हा-77।
- ★ तौरात और इंजील में तौहीद ही की तालीम दी गई थी— सूरा-5, हा-97।
- ★ अरब के मुशरिक भी पैदा करनेवाले को एक ही मानते थे— सूरा-6, हा-1।
- ★ एक ही अल्लाह आसमानों का ख़ुदा भी है और ज़मीन का भी— सूरा-6, आ-3।
- ★ मुहम्मद (सल्ल॰) का तौहीद का एलान— सूरा-6, आ-14 हा-10 और आ-161 से 164।
- ★ का यह दावा कि किताबवाले तौहीद की सच्चाई को ख़ूब जानते हैं— सूरा-6, आ-20, हा-14।
- ★ तौहीद का लाज़िमी तक़ाज़ा शिर्क से बेज़ारी (विरक्ति) है— सूरा-6, आ-19।
- ★ फ़ैसले का सारा इख़्तियार अल्लाह के हाथ में हैं— सूरा-6, आ-57, आ-62।
- ★ कायनात का सारा निज़ाम तौहीद की बुनियाद पर क़ायम है— सूरा-6, आ-73, हा-46।
- ★ इबराहीम (अलै॰) की दावत और उसकी चोट— सूरा-6, आ-78, हा-53।
- ★ हर तरफ़ से मुँह मोड़कर ख़ुदा की तरफ़ यकसू (एकाग्र) हो जाना— सूरा-6, आ-79।
- ★ सारी बागडोर अल्लाह के हाथ में है— सूरा-6, आ-95।
- ★ अल्लाह ही बेहतरीन फ़ैसला करनेवाला है— सूरा-6, आ-114।
- ★ उसके फ़रामीन को बदलनेवाला कोई नहीं— सूरा-6, आ-115।
- ★ अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में पूरी ज़िन्दगी को दे देना तौहीद का तक़ाज़ा है— सूरा-6, आ-121, हा-87।
- ★ हज़रत इबराहीम (अलै॰) का मसलक (पंथ) तौहीद था— सूरा-6, आ-161, हा-142।

● **तौरात**
- ★ इसमें किस-किस तरह की तब्दीलियाँ की गईं— सूरा-2, परिचय (शाने-नुज़ूल) सूरा-3, हा-2।
- ★ किस तौरात की तसदीक़ करता है— सूरा-3, हा-2।
- ★ तौरात में यहूदी आलिमों की अपनी तरफ़ से मिलावट कर देना— सूरा-3, हा-77।
- ★ उसके साथ किताबवालों का मामला— सूरा-3, आ-187; सूरा-6, आ-91, हा-132।
- ★ तौरात में ज़िना की सज़ा रज्म थी— सूरा-5, आ-43, हा-70।
- ★ तौरात हिदायत का सरचश्मा (स्रोत) थी— सूरा-5, आ-44; सूरा-6, आ-154।
- ★ इसकी हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी— सूरा-5, आ-44।
- ★ नबी उसके क़ानून से फ़ैसला देते थे— सूरा-5, आ-44, हा-71।
- ★ क़िसास का क़ानून— सूरा-5, आ-45, हा-74।

● **तयम्मुम**
- ★ उसका हुक्म कब आया— देखें : परिचय सूरा- 4, अन-निसा, ज़माना-ए-नुज़ूल और विषय अंश।
- ★ उसका तरीक़ा—सूरा-4, आ-43, हा-70; सूरा-5, आ-6।
- ★ उसकी हिकमत— सूरा-4, हा-70।

(द)

● **दाऊद** (अलै॰)
- ★ जालूत के क़त्ल का वाक़िआ— सूरा-2, आ-251, हा-273।

● **दुआ**
- ★ दुआ-की हक़ीक़त।
- ★ देखें : परिचय, सूरा-1, अल-फ़ातिहा।
- ★ दुआ का सही तरीक़ा— सूरा-1, हा-2।
- ★ क़ुरआनी दुआएँ— सूरा-1, आ-5 और 6, सूरा-2, आ-250, 286; सूरा-3, आ-8, 9, आ-16, 26, 27, 147, 193 और 194।
- ★ हज़रत इबराहीम व इस्माईल (अलै॰) की दुआ— सूरा-2, आ-128 और 129।
- ★ ख़ुदा तक दुआएँ पहुँचाने के लिए किसी वास्ते की ज़रूरत नहीं— सूरा-2, आ-186, हा-188।
- ★ हज़रत मरयम की माँ की दुआ— सूरा-3, आ-35।
- ★ हज़रत ज़करीया की दुआ-नेक औलाद के लिए— सूरा-3, आ-38, हा-37।
- ★ अल्लाह का फ़ज़्ल चाहने की दुआ-का हुक्म— सूरा-4, आ-32।
- ★ आसमानी दस्तरख़्वान के लिए ईसा (अलै॰) की दुआ— सूरा-5, आ-114।

● **दोज़ख़**
- ★ मुशरिकों के बुत भी दोज़ख में जाएँगे— सूरा-2, आ-24, हा-25।

★ किस तरह के लोग दोज़ख़ में जाएँगे—
सूरा-2, आ-24, 39, 80, 81, 119, आ-188; हा-197, आ-205, 206, 257, और 275; सूरा-3, आ-10-12, 151, 162; सूरा-4, 30, 55 और 115; सूरा-5, आ-10, 72, और 86।
★ दोज़ख़ में हमेशा क़ियाम— सूरा-2, आ-39; सूरा-4, आ-14; सूरा-6, आ-128।
★ दोज़ख़ का अज़ाब मुजरिमों की अपनी कमाई का हासिल होगा— सूरा-3, आ-182।
★ दोज़ख़ की सज़ा बड़ी ज़िल्लत भरी है—
सूरा-3, आ-192।
★ दोज़ख़ रहने की बहुत बुरी जगह है—
सूरा-3, आ-197; सूरा-4, आ-115।
★ यतीमों के माल खानेवालों का अंजाम—
सूरा-4, आ-10।
★ दोज़ख़ के अज़ाब की तफ़सील— सूरा-4, आ-56।
★ दोज़ख़ से छुटकारे की कोई सूरत न होगी—
सूरा-4, आ-121; सूरा-5, आ-37।
★ मुनाफ़िक़ और काफ़िर उसमें जमा किए जाएँगे—
सूरा-4, आ-140।
★ मुनाफ़िक़ दोज़ख़ के सबसे निचले तबक़े में होंगे—
सूरा-4, आ-145।
★ कुफ़्र और ज़ुल्म करने वालों को यक़ीनी तौर पर हमेशा के लिए दोज़ख़ में जाना है—
सूरा-4, आ-169।
★ दोज़ख़ से बचानेवाला सिर्फ़ अल्लाह ही है—
सूरा-6, आ-128, हा-96।
● **देयत**—देखें : क़ानूने-इस्लामी।
● **दीन**
★ पूरी इनसानी नस्ल का अस्ल दीन एक ही था—
सूरा-2, आ-213, हा-230।
★ पूरा दीन अल्लाह के लिए हो—
सूरा-2, आ-193, 204।
★ दीन के मामले में ज़बरदस्ती न होने का मतलब—
सूरा-2, आ-256, हा-285।
★ दीन की बुनियाद किन बातों पर है—
सूरा-2, आ-284, हा-333 और 334।
★ दीन की सबसे पहली बुनियाद अल्लाह के मालिके-ज़मीन व आसमान होने का शुऊर है—
सूरा-2, हा-334।
★ दीने-हक़ हमेशा एक ही था—
देखे परिचय सूरा-3, आले-इमरान (ख़िताब और मबाहिस); सूरा-6, हा-141।
★ अल्लाह के नज़दीक दीन सिर्फ़ इस्लाम है—
सूरा-3, आ-19, हा-16।
★ दीन अल्लाह की इताअत के मसलक (पंथ) का नाम है— सूरा-3, आ-83, हा-71।
★ दीन फ़िक़ह की छोटी-छोटी बातों का नाम नहीं, बल्कि एक अल्लाह की बन्दगी के उसूल का नाम है— सूरा-3, हा-78।
★ अल्लाह के लिए दीन को ख़ालिस करने का मतलब— सूरा-4, आ-146, हा-174।
★ दीन में ग़ुलू करने (हद से बढ़ने) की मनाही—
सूरा-4, आ-171, हा-211।
★ दीन से काफ़िरों की मायूसी का मतलब—
सूरा-5, आ-3, हा-15।
★ दीन के कामिल (पूर्ण) होने का एलान—
सूरा-5, आ-3, हा-16।
★ एक ही दीन के तहत शरीअतों का जुज़्वी (आंशिक) इख़्तिलाफ़— सूरा-5, हा-80।
★ दीन में बाल की खाल निकालने का नतीजा कुफ़्र होता है— सूरा-5, हा-117।
★ दीन पर मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से 'असातीरुल-अव्वलीन' की फब्ती और उसका जवाब—
सूरा-6, आ-25, हा-18।
★ हक़ हर ज़माने में एक ही था— सूरा-6, हा-18।
★ दीन को खेल तमाशा बनानेवाले— सूरा-6, आ-70।
★ दीन में 'अल्लाह की सनद' की अहमियत—
सूरा-6, आ-81।
★ एक दीन से कई मज़हब कैसे बने?—
सूरा-6, आ-159, हा-141।

(न)

● **नुबूवत**
★ उसकी तशरीह— देखें : मुक़द्दिमा।
★ उसकी ज़रूरत किस लिए पेश आई—
देखें : मुक़द्दिमा।
★ तमाम नबियों का दीन एक था और उनकी दावत एक थी— देखें : मुक़द्दिमा।
★ नबी किस काम के लिए आते थे— देखें : मुक़द्दिमा।
★ नुबूवत का आग़ाज़— सूरा-2, हा-230।
★ नबियों के आने का मक़सद— सूरा-2, हा-230।

★ अल्लाह पर बोहतान बाँध कर नुबूवत का दावा करनेवाले— सूरा-6, आ-93।
★ अल्लाह ख़ुद बेहतर जानता है कि रिसालत के लिए किसको मुन्तख़ब करे— सूरा-6, आ-124— और देखें : अंबिया।
● **नजरान**
★ नजरान के वफ़्द की आमद पर नाज़िल होनेवाली आयतें— सूरा-3, हा-28।
★ वहाँ की ईसाई जमहूरियत का निज़ाम— सूरा-3, हा-29।
★ नजरान के वफ़्द की हठधर्मी— सूरा-3, हा-55।
★ नजरान के वफ़्द का दावते-मुबाहला से गुरेज़— सूरा-3, आ-63, हा-55।
● **नज्र**
★ उसकी हक़ीक़त— सूरा-2, आ-270, हा-310।
● **नसी**
★ अरब में नसी का क़ायदा और उसमें बे जा तसर्रुफ़ात— सूरा-2, हा-206।
● **नसारा**— देखें : ईसाई।
● **नुसरते-इलाही**
★ कब आती है?— सूरा-2, आ-214; सूरा-6, आ-34, हा-22।
★ वह सब्र करनेवालों के लिए है— सूरा-2, आ-249, 250; सूरा-3, आ-125, 126।
★ उसके बल पर क़लील (छोटा) गरोह कसीर (बड़े) गरोह पर ग़ालिब आ-जाता है— सूरा-2, आ-249; सूरा-3, आ-13, हा-9।
★ अल्लाह ईमानवालों का हामी व मददगार है— सूरा-2, आ-257; सूरा-3, आ-122 और 150।
★ नबी सल्ल और आपके साथियों से उसका वादा— सूरा-3, आ-152।
★ यह जिसे हासिल हो उस पर कोई ग़ालिब नहीं आ-सकता— सूरा-3, आ-160।
★ जो इससे महरूम हो वह कहीं से मदद नहीं पा सकता— सूरा-3, आ-160।
● **निफ़ाक़**— देखें : मुनाफ़िक़ीन।
● **नफ़्ल इबादतें**
★ इनको छिपाकर करना अफ़ज़ल (ज़्यादा बहतर) है— सूरा-2, आ-271, हा-311।
● **निकाह**
★ मुशरिकों से निकाह की मनाही और उसकी मसलिहत — सूरा-2, आ-221, हा-237।
★ औरत की इद्दत गुज़रने से पहले निकाह करने का फ़ैसला न किया जाए— सूरा-2, आ-235।
★ तअद्दुदे-इज़्दिवाज (एक से ज़्यादा निकाह) की इजाज़त— सूरा-4, आ-3।
★ तअद्दुदे-इज़्दिवाज पर क़ैद—सूरा-4, आ-3, हा-5।
★ मुहर्रमात— सूरा-4, आ-21 से 23, हा-32 से 43।
★ ज़न व शो (औरत और मर्द) का तअल्लुक़ सिर्फ़ निकाह की सूरत में जाइज़ है— सूरा-4, आ-24।
★ निकाह के लिए महर की शर्त— सूरा-4, आ-24 और 25; सूरा-5, आ-5।
★ किताबवालों की औरतों से निकाह की इजाज़त— सूरा-5, आ-5, हा-22।
● **नमाज़**
सूरा-2, आ-43, 83, और 110।
★ निज़ामे-दीन में इसकी अहमियत— सूरा-2, आ-3, हा-5।
★ इसके क़ायम करने का मतलब— सूरा-2, हा-5।
★ किन लोगों के लिए मुश्किल और किन लोगों के लिए आसान है— सूरा-2, आ-45, 46 हा-61।
★ नमाज़ में मस्जिदे-हराम की तरफ़ मुँह करने का हुक्म— सूरा-2, आ-144 और 149, हा-146।
★ रेल या किश्ती में इस्तिक़बाले-क़िबला— सूरा-2, आ-144, 149, हा-146।
★ सलाते-वुस्ता की हक़ीक़त— सूरा-2, आ-238, हा-263।
★ इस्लामी निज़ामे-ज़िन्दगी में नमाज़ का मक़ाम— सूरा-2, हा-262।
★ हर क़िस्म के हालात में अदा की जाए— सूरा-2, आ-239।
★ सलाते-ख़ौफ़ का हुक्म कब आया?— देखें : परिचय, सूरा-4, अन-निसा।
★ **तयम्मुम**— देखें : परिचय, सूरा-4, अन-निसा; आ-43, हा-70।
★ क़स्र— सूरा-4, अन-निसा, परिचय; आ-101, हा-132।
★ सलाते-ख़ौफ़— देखें : परिचय, सूरा-4, आ-101 से 103, हा-134 से 136।
★ नशे की हालत में नमाज़ की मनाही— सूरा-4, आ-43, हा-65।
★ जनाबत की हालत में नमाज़ की मनाही— सूरा-4, आ-43, हा-67।
★ इक़ामते-सलात इस्लामी हुकूमत की नुमायाँ अलामत

है— सूरा-4, हा-89।
★ जंगी हालात में नमाज़ में देर करने की इजाज़त— सूरा-4, आ-101, हा-132।
★ इस के लिए वक़्त की पाबन्दी की अहमियत— सूरा-4, आ-103।
★ मुनाफ़िक़ की नमाज़ का नक़्शा— सूरा-4, आ-142।
★ दिखावे की नमाज़ जो मारे बाँधे पढ़ी जाए— सूरा-4, आ-142।
★ रिसालत के दौर में इसका अव्वलीन मेयारे-कुफ़्र व ईमान— सूरा-4, हा-172।
★ वुज़ू का फ़र्ज़ होना और उसका तरीक़ा— सूरा-5, आ-7, हा-24।
★ शराब और जुए में नमाज़ से ग़फ़लत पैदा करने की ख़ासियत— सूरा-5, आ-91।

● **नमरूद**
★ इसका हज़रत इबराहीम से मुबाहसा— सूरा-2, आ-258, हा-289 से 292।
★ इसके ख़ुदाई के दावे की हक़ीक़त— सूरा-2, आ-258, हा 292।

● **नेकी**
★ दिखावे की रस्में करने का नाम नेकी नहीं है— सूरा-2, आ-177, हा-175, आ-189, हा-198।
★ इसकी हक़ीक़त — सूरा-2, आ-177, हा-175, आ-189, हा-198 और 199।
★ ज़ाहिरी दिखावे का नाम नेकी नहीं— सूरा-3, आ-92, हा-75।
★ अल्लाह की राह में ख़र्च नेकी के दरवाज़े कि कुंजी है सूरा-3, आ-92, हा-75
★ नेकी की तरफ़ बुलाने के लिए एक नज़्मे-जमाअत की ज़रूरत— सूरा-3, आ-104।
★ ईमान के साथ जो नेकी की जाए वह ज़ाया नहीं जा सकती— सूरा-3, आ-115।
★ नेकी के अज्र को अल्लाह दोगुना कर देता है— सूरा-4, आ-40।
★ अल्लाह और आख़िरत पर ईमान हो तो आदमी नेकी करने में दिखावा नहीं करता— सूरा-4, आ-38 और 39।
★ नेकी में हर एक से तआवुन (सहयोग) करना चाहिए— सूरा-5, आ-2।
★ हमले की मुदाफ़िअत (प्रतिरक्षा) न करना नेकी नहीं है— सूरा-5, हा-49।
★ नेकी का अज्र अल्लाह के यहाँ दस गुना है— सूरा-6, आ-160।

(प)

● **परहेज़गार**— देखें : मुत्तक़ी।

(फ)

● **फ़ासिक़/फ़ासिक़ीन**
★ फ़िस्क़ के मानी— सूरा-2, हा-30।
★ फ़ासिक़ीन की सिफ़ात— सूरा-2, आ-27।
★ अल्लाह की आयतों से फ़ासिक़ ही इनकार करते हैं— सूरा-2, आ-99।
★ फ़िस्क़ बन्दगी के रवैये से इनहिराफ़ का पहला मर्तबा है— सूरा-2, हा-286।
★ ख़ुदा से अहद करके फिर जाना फ़िस्क़ है— सूरा-3, आ-82, हा-70।
★ फ़िस्क़ की चन्द सूरतें— सूरा-5, आ-3।
★ जो अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसला न करें, वे फ़ासिक़ हैं— सूरा-5, आ-47, हा-77।
★ अल्लाह फ़ासिक़ीन को हिदायत नहीं देता— सूरा-5, आ-108।
★ जिस ज़बीहे पर अल्लाह का नाम न लिया गया हो उसका खाना फ़िस्क़ है— सूरा-6, आ-121।

● **फ़ितना**
★ लफ़्ज़ फ़ितना के मानी— सूरा-2, हा-202।
★ फ़ितना क़त्ल से ज़्यादा संगीन है— सूरा-2, आ-191।
★ लफ़्ज़ फ़ितना का इस्तेमाल बातिल के ग़ल्बे के मानी में— सूरा-2, आ-193, हा-204।
★ फ़ितना ख़ूँरेज़ी से बदतर है— सूरा-2, आ-217।
★ फ़ितना फैलानेवालों की मुतशाबिहात से ग़ैर-मामूली दिलचस्पी— सूरा-3, आ-7, हा-7।
★ अल्लाह के फ़ितने में डालने का मफ़हूम— सूरा-5, हा-67।
★ मुख़ालिफ़ों के फ़ितने में डालने से होशियार रहने की ताकीद— सूरा-5, आ-49।

● **फ़रिश्ते**
★ फ़रिश्ता लफ़्ज़ के मानी— सूरा-2, हा-37।
★ कायनात के निज़ाम में फ़रिश्तों की हैसियत— सूरा-2, आ-30, हा-37, हा-43, 105, और हा-45, आ-102, हा 105।
★ इनसान की ख़िलाफ़त पर फ़रिश्तों के एतिराज़ की हक़ीक़त— सूरा-2, आ-30, हा-39।
★ फ़रिश्तों के इल्म की हक़ीक़त— सूरा-2, आ-43, हा-43।

★ आदम के आगे उनको सजदा करने का हुक्म और उसका मतलब— सूरा-2, आ-34, हा-45।
★ उनकी मुख़ालिफ़त कुफ़्र है— सूरा-2, आ-98।
★ तौहीद पर फ़रिश्तों की शहादत की अहमियत— सूरा-3, आ-18, हा-14।
★ फ़रिश्तों का हज़रत ज़करीया को नमाज़ में ख़ुशख़बरी सुनाना— सूरा-3, आ-39।
★ फ़रिश्तों का हज़रत मरयम को बशारत (ख़ुशख़बरी) देना— सूना 3, आ-42, आ-45।
★ हक़ और बातिल के मारिके में उनका हिस्सा— सूरा-3, आ-124।
★ उनका रूह क़ब्ज़ करने के लिए आना— सूरा-4, आ-97; सूरा-6, आ-61।
★ फ़रिश्तों के अलल-ऐलान (खुल्लम-खुल्ला) आने की दो सूरतें— सूरा-6, हा-7।
★ हर आदमी पर निगरानी करनेवाले फ़रिश्ते मुक़र्रर हैं— सूरा-6, आ-61, हा-40।
★ फ़रिश्ते फ़राइज़ को अंजाम देने में कोई कोताही नहीं करते— सूरा-6, आ-61।
★ फ़रिश्ते ज़ालिमों की जान कैसे लेते हैं— सूरा-6, आ-93।
★ फ़रिश्ते पैदाइशी तौर पर रास्तरौ (सत्य मार्ग पर) हैं— सूरा-6, हा-125।

● **फ़िरऔन**
★ बनी-इसराईल पर उसके ज़ुल्म— सूरा-2, आ-49।
★ फ़िरऔन के लश्कर की ग़रक़ाबी (पानी में डूबना)— सूरा-2, आ-50।

● **फ़ुरक़ान**
★ हज़रत मूसा (अलै.) को अता किया जाता है— सूरा-2, आ-53।
★ उसकी सिफ़त— सूरा-2, आ-185।
★ कसौटी के मानी में— सूरा-3, आ-4।

● **फ़िरक़ाबन्दी**
देखें : तिफ़रक़ा और इख़्तिलाफ़।

● **फ़साद**
★ क़ुरआन के नज़दीक ज़मीन में फ़साद बरपा करने से क्या मुराद है— सूरा-2, हा-33।
★ फ़साद फैलानेवाला इनसानी किरदार— सूरा-2, आ-205।
★ ज़मीन को फ़साद से बचाने के लिए अल्लाह की तदबीर— सूरा-2, आ-251, हा-274।
★ बन्दगी के रवैये में फ़साद के तीन मर्तबे— सूरा-2, हा-286।
★ फ़साद इस्लामी हुकूमत का तख़्ता उलटने के माने में— सूरा-5, हा-55।
★ अल्लाह को फ़साद फैलानेवाले नापसन्द हैं— सूरा-5, आ-64।

● **फ़िस्क़**— देखें : फ़ासिक़।

● **फ़लाह**
★ किस क़िस्म के लोग फ़लाह पानेवाले हैं— सूरा-2, आ-3 से 5; सूरा-3, आ-200।
★ इसके लिए अम्र-बिल मारूफ़ और नही अनिल-मुनकर (भलाई का हुक्म देना और बुराई से रोकना)— सूरा-3, आ-104।
★ इसके लिए तक़वा लाज़िम है— सूरा-3, आ-130।
★ फ़लाह पाने के लिए ईमान के साथ तक़वा और जिहाद की अहमियत— सूरा-5, आ-35, हा-59।
★ फ़लाह पाने के लिए गन्दे शैतानी कामों से बचना ज़रूरी है— सूरा-5, आ-90।
★ ज़ालिमों के लिए फ़लाह नहीं है— सूरा-6, आ-21 और 135।

● **फ़वाहिश**—
★ इसके मानी की तशरीह— सूरा-6, हा-130।

(ब)

● **बैनुल-अक़वामी (अन्तर्राष्ट्रीय) क़ानून**
★ बैनुल-अक़वामी मुआहदों (अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों) का ज़ाब्ता— सूरा-4, आ-90, हा-119।

● **बातिल**
★ कायनात को बातिल (झूठ) के फ़रोग़ के लिए नहीं बनाया गया— सूरा-6, हा-46।

● **बाइबल**
★ हज़रत याक़ूब (अलै.) की वसीयत का उसमें कोई ज़िक्र नहीं— सूरा-2, हा-133।
★ शमूएल नबी और तालूत की बादशाहत के बारे में उसका बयान— सूरा-2, हा-268।
★ ताबूते-सकीना के बारे में उसका बयान— सूरा-2, आ-248, हा-270।
★ इबराहीम (अलै.) से नमरूद के मुबाहिसे के बारे में बाइबल ख़ामोश है— सूरा-2, हा-290।
★ बाइबल की हक़ीक़त— सूरा-3, हा-2।
★ पहाड़ी की तक़रीर— सूरा-3, हा-46।

★ इसमें हज़रत ईसा की दावत के आसार (लक्षण)— सूरा-3, हा-48।
★ इसमें सोख़्तनी क़ुरबानी का बयान— सूरा-3, आ-183, हा-129।
★ कलामे-हक़ में इनसानी मिलावट— सूरा-4, हा-205।
★ 'बाप' के लफ़्ज़ का इस्तेमाल इस्तिआरे (मिसाल) के तौर पर— सूरा-4, आ-171, हा-216।
★ बनी-इसराईल के बारह नक़ीबों का ज़िक्र बाइबल में— सूरा-5, हा-31।
★ इसका हज़रत इबराहीम (अलै.) के शुरू की फ़िक्र पर कोई रौशनी न डालना— सूरा-6, हा-55।

● **बद्र की जंग**
★ सतरह क़ैदियों को माफ़ी के एलान से अलग रखना — सूरा-2, हा-205।
★ तहरीके-इस्लामी की तारीख़ में जंगे-बद्र का मक़ाम— देखें : परिचय, सूरा-3, आले-इमरान।
★ बद्र के वाक़िए में दावत का सबक़— सूरा-3, आ-13, हा-10।
★ बद्र का दूसरा वाक़िआ— सूरा-3, आ-175, हा-124।

● **बनी-इसराईल**
★ उनके इस नाम के रखे जाने की वजह— सूरा-2, हा-56, हा-123।
★ उन पर मजीद की तनक़ीद— सूरा-2, हा-56।
★ उनको क़ुरआन की दावत— सूरा-2, हा-56।
★ दुनिया की क़ौमों पर उनकी फ़ज़ीलत का मतलब— सूरा-2, आ-47, हा-62 और 123।
★ उनके बिगाड़ की वजहें— सूरा-2, हा-63 और 268।
★ फ़िरऔन के ज़ुल्म— सूरा-2, आ-49 से 51।
★ समुद्र फाड़ कर उनके लिए रास्ता बनाया जाता है— सूरा-2, आ-50।
★ बछड़े को माबूद बनाते हैं— सूरा-2, आ-51।
★ मिस्र से निकल कर सीना प्रायद्वीप में जाते हैं— सूरा-2, आ-51, हा-67।
★ उन में गायपरस्ती कहाँ से आई— सूरा-2, हा-68।
★ गायपरस्ती की सज़ा जो बनी-इसराईल के नाफ़रमानों को दी गई— सूरा-2, आ-54, हा-70।
★ उनके मज़हबी व अख़लाक़ी जुर्म— सूरा-2, आ-57 और 87; सूरा-3, आ-184; सूरा-4, आ-156 हा-190, सूरा-5, आ-13।
★ उन पर बादलों का साया किया जाता है— सूरा-2, आ-57, हा-72।
★ उन पर मन-सलवा का उतरना—सूरा-2, आ-57, 73।
★ वह बस्ती जहाँ उनको सज्दा करते होते हुए दाख़िल होने का हुक्म दिया गया था— सूरा-2, आ-58।
★ बदकारियों (कुकर्मों) की सज़ा पाते हैं— सूरा-2, आ-59।
★ उनके लिए चट्टान से चश्मे निकाले जाते हैं— सूरा-2, आ-60, हा-76।
★ बेसब्र होकर शहरी ग़िज़ाएँ माँगते हैं— सूरा-2, आ-61।
★ उनका कुफ़्र और पैग़म्बरों को क़त्ल करना और नाफ़रमानियाँ करना— सूरा-2, आ-61; सूरा-3, हा-129; सूरा-5, आ-70।
★ अपने नबियों के साथ उनके मुजरिमाना रवैये की तारीख़ी शहादतें— सूरा-2, हा-79।
★ उनकी अहदशिकनियाँ— सूरा-2, आ-64, 83 और 93; सूरा-3, आ-187; सूरा-4, आ-155; सूरा-5, आ-13, और 70।
★ सब्त के क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी— सूरा-2, आ-65, हा-82।
★ उनको गाय ज़ब्ह करने का हुक्म दिया जाता है— सूरा-2, आ-68, हा-84।
★ उनको गाय ज़ब्ह करने का हुक्म क्यों दिया गया— सूरा-2, हा-84।
★ उनकी संगदिली और सख़्ती— सूरा-2, आ-74।
★ वे अहद जो उनसे लिए गए— सूरा-2, आ-83, 84, और 93; सूरा-3, आ-187, हा-132; सूरा-5, आ-12।
★ उनका नसली तास्सुब— सूरा-2, आ-91।
★ बाबिल के क़ैद के ज़माने में उनकी हालत— सूरा-2, हा-105।
★ उनको आख़िरत के सख़्त हिसाब-किताब की याद-दिहानी— सूरा-2, आ-123।
★ उनके नेमत से नवाज़े जाने का मतलब— सूरा-2, हा-123।
★ दोनों की क़ौमों के लिए उनका नमूनए-इबरत होना— सूरा-2, आ-211, हा-229।
★ ख़ुरूज का वाक़िआ— सूरा-2, हा-266।
★ उन की तरफ़ से शमूएल नबी के सामने बादशाह के तक़र्रुर की माँग— सूरा-2, आ 246, हा-268।
★ ताबूते-सकीना की वापसी की ख़ुशख़बरी— सूरा-2, आ-248, हा-270।
★ नहर के वाक़िए में उनकी बे सब्री की मिसाल— सूरा-2, आ-249, हा-271।

★ तौरात की तारीख़— सूरा-3, हा-2।
★ हज़रत ईसा (अलै.) का उनके लिए रसूल मुक़र्रर होना— सूरा-3, आ-49।
★ ईसा (अलै.) की दावत— सूरा-3, आ-50-51, हा-47 और 48।
★ ईसा (अलै.) की दावत के ख़िलाफ़ कुफ़्र की रविश— सूरा-3, आ-52।
★ हज़रत ईसा (अलै.) के ख़िलाफ़ उनकी ख़ुफ़िया चालें — सूरा-3, आ-54।
★ उनके लिए खाने की कुछ चीज़ों को ख़ास तौर से हराम किया जाना— सूरा-3, आ-93।
★ उनके ग़ज़ब में होने का फ़ैसला— सूरा-3, आ-112।
★ उनके नेकों का रवैया— सूरा-3, आ-113 और 114।
★ मुसलमानों को उनकी बुराइयों से बचने की ताकीद— सूरा-4, आ-58, हा-88।
★ बनी-इसराईल की तरफ़ से नबियों के क़त्ल किये जाने का इक़रार— सूरा-4, आ-157, हा-191।
★ बारह नक़ीबों का तक़र्रुर— सूरा-5, आ-12, हा-31।
★ उनसे नमाज़ क़ायम करने, ज़कात देने, रसूल पर ईमान लाने, दीन क़ायम करने में मदद और अल्लाह के रास्ते मे ख़र्च करने की माँग— सूरा-5, आ-12।
★ उन पर अल्लाह के इनाम— सूरा-5, आ-20, हा-42।
★ उनको पाक ज़मीन में दाख़िल होने का हुक्म— सूरा-5, आ-21।
★ उनके नाम पाक ज़मीन का लिख दिया जाना— सूरा-5, आ-21, हा-43।
★ उनकी उरूज व तरक्क़ी का दौर मूसा (अलै.) से पहले— सूरा-5, हा-42।
★ जिहाद की दावत पर उनकी बुज़दिली— सूरा-5, आ-22।
★ उनकी बुज़दिली की सज़ा— सूरा-5, आ-26, हा-46।
★ चालीस सालों तक जंगलों की ख़ाक छानते फिरना— सूरा-5, आ-26, हा-46।
★ यूशा-बिन-नून के ज़माने में बनी-इसराईल का फ़लस्तीन को फ़त्ह करना— सूरा-5, हा-46।
★ क़त्ल को हराम किए जाने का फ़रमान— सूरा-5, आ-32।
★ उन पर दाऊद और ईसा (अलै.) की ज़बान से क्यों लानत की गई?— सूरा-5, आ-78।
★ ईमानवालों के मुक़ाबले में काफ़िरों से उनकी दोस्ती का ताल्लुक़— सूरा-5, आ-80।
★ उनके रवैये से उनके ईमान से महरूम होने की गवाही— सूरा-5, आ-79।
★ उनकी अकसरीयत का बिगाड़— सूरा-5, आ-81।

● **बैतुल्लाह**
★ इसको पाक रखने का असल मफ़हूम— सूरा-2, हा-126।

● **बैतुल-मक़दिस**
★ अल्लाह की दावत का मर्कज़— सूरा-2, हा-123।
★ दावत के लिहाज़ से उसकी मर्कज़ीयत का ख़ातिमा— सूरा-2, हा-123।
★ काबा से तेरह सौ साल बाद तामीर किया गया— सूरा-2, हा-148।

(म)

● **माहे-हराम**— देखें : अशहुरे-हुरुम।
★ मुबाहला : नजरान के वफ़्द को मुबाहले की दावत और वफ़द का उससे गुरेज़— सूरा-3, आ-61, हा-55।

● **मुतशाबिहात**
★ मुतशाबिहात आयतों की तारीफ़— सूरा-3, आ-7, हा-6।
★ मुतशाबिहात से अहले-फ़ितना की ग़ैर-मामूली दिलचस्पी— सूरा-3, आ-7, हा-7।

● **मुत्तक़ी**
★ मुत्तक़ियों की सिफ़ात— सूरा-2, आ-2 से 4, हा-3; सूरा-3, आ-134 और 135।
★ दूसरों को नसीहत करना उनका फ़र्ज़ है, मगर दूसरों के हिसाब की ज़िम्मेदारी उन पर नहीं— सूरा-6, आ-69, हा-45।

● **मुहकमात**
★ मुहकमात आयतों की तारीफ़— सूरा-3, हा-5।

● **मुहम्मद** (सल्ल.)
★ आप (सल्ल.) किस काम के लिए तशरीफ़ लाए थे— देखें : 'मुक़द्दिमा'; सूरा-2, आ-119, हा-120।
★ आपकी दावत का आग़ाज़ किस तरह हुआ और किन मरहलों से गुज़रकर तकमील को पहुँचा; देखें : मुक़द्दिमा।
★ आप (सल्ल.) की मुख़ालिफ़त किस-किस तरह की गई और किन वजहों से की गई; देखें : मुक़द्दिमा।
★ किस क़िस्म के लोगों ने आप (सल्ल.) की दावत क़बूल की और उनकी ज़िन्दगी पर क्या असरात पड़े; देखें : मुक़द्दिमा।

★ आपकी कामयाबी की वजहें; देखें : मुक़द्दिमा।

★ आप (सल्ल.) की दावत वही है जो पिछले नबियों की थी— सूरा-2, हा-56; देखें : परिचय सूरा-3, आले-इमरान, सूरा-6, हा-50।

★ मुख़ालिफ़ों के आप (सल्ल.) पर एतिराज़ात और उनके जवाबात— सूरा-2, हा-118 और 232; सूरा-6, हा-6, 18, आ-37, हा-26, आ-91, हा-59।

★ आप (सल्ल.) की नुबूवत के दलाइल— सूरा-2, आ-119, हा-120; सूरा-3, आ-70, हा-60।

★ आप (सल्ल.) का ज़ुहूर हज़रत इबराहीम (अलै.) की दुआ-का जवाब है— सूरा-2, आ-129, हा-129।

★ आप (सल्ल.) पर आयतों की तिलावत, तज़किया और किताब और हिकमत की तालीम की ज़िम्मेदारियाँ— सूरा-2, आ-151।

★ आप पर ईमान लानेवालों के औसाफ़ (गुण)— सूरा-2, आ-285।

★ आप (सल्ल.) की रिसालत की ज़िम्मेदारी— सूरा-3, आ-20; सूरा-4, आ-79 और 83; सूरा-5, आ-67, 92, और 99।

★ आपकी पैरवी अल्लाह की मुहब्बत का ऐन तक़ाज़ा है— सूरा-3, आ-31।

★ आपकी दावत वही है जो ईसा (अलै.) की थी— सूरा-3, आ-60, हा-54।

★ आप पर नुबूवत ख़त्म होने के मुताल्लिक़ ज़िमनी इशारा— सूरा-3, आ-81, हा-69।

★ उहुद की जंग के मौक़े पर बद-दुआ-करने पर तंबीह— सूरा-3, आ-128 से 129, हा-97।

★ पिछले रसूलों की तरह महज़ एक रसूल हैं— सूरा-3, आ-144।

★ जंगे-उहुद के मौक़े पर आप (सल्ल.) की मौत की ख़बर का उड़ना— सूरा-3, आ-144, हा-103।

★ शुजाअत व इस्तिक़ामत का बेमिसाल मुज़ाहिरा— सूरा-3, आ-153, हा-110।

★ क़यादत के बेहतरीन औसाफ़ की जामेअ हस्ती— सूरा-3, आ-159।

★ आप (सल्ल.) सौ फ़ी सदी एतिमाद के मुस्तहिक़ हैं— सूरा-3, आ-161, हा-114।

★ आपकी बेअसत (नबी बनाया जाना) मोमिनों के लिए अल्लाह का बड़ा एहसान है— सूरा-3, आ-164।

★ आपकी रिसालत के काम के बुनियादी शोबे— सूरा-3, आ-164।

★ आप (सल्ल.) से आपकी उम्मत पर आख़िरत में गवाही ली जाएगी— सूरा-4, आ-41।

★ आप (सल्ल.) की सुन्नत क़ियामत तक के लिए सनद है— सूरा-4, हा-95।

★ आप पर ईमान लाने का तक़ाज़ा— सूरा-4, आ-65, हा-95।

★ ख़ुदा की इताअत नबी (सल्ल.) की इताअत के बग़ैर मुमकिन नहीं— सूरा-4, आ-80।

★ आपका मंसबे-क़ज़ा— सूरा-4, आ-105, हा-140।

★ आप (सल्ल.) की मुख़ालिफ़त का नतीजा जहन्नम का अज़ाब है— सूरा-4, आ-115।

★ आप (सल्ल.) पर वहय आना कोई अनोखा वाक़िआ नहीं— सूरा-4, आ-163, हा-204।

★ आप (सल्ल.) अपने रब की तरफ़ से हक़ लेकर आए— सूरा-4, आ-170।

★ क़ुरैश का मुआहदा आप (सल्ल.) को काबा की ज़ियारत से रोकने का वाक़िआ— देखें : परिचय, सूरा-5, अल-माइदा, ज़माना-ए-नुज़ूल।

★ आप (सल्ल.) उन बातों को खोलने वाले हैं जिनपर अहले-किताब ने परदा डाल रखा था— सूरा-5, आ-15।

★ आप (सल्ल.) का नबी बनाया जाना अहले-किताब के लिए हुज्जत तमाम करने का ज़रीआ है— सूरा-6, आ-19, हा-41।

★ आप सल्ल को तमाम मामलों में किताबुल्लाह के तहत फ़ैसला करने का हुक्म— सूरा-5, आ-48।

★ आप (सल्ल.) के लिए अल्लाह की तरफ़ से हिफ़ाज़त का वादा— सूरा-5, आ-67।

★ सूरा-अनआम के नुज़ूल के वक़्त आपकी कैफ़ियत— देखें : परिचय, सूरा-6, अल-अनआम (ज़माना-ए-नुज़ूल)।

★ मक्का में आप (सल्ल.) की दावत के चार बड़े दौर देखें : परिचय सूरा-6, अल-अनआम (मक्की ज़िन्दगी के दौर)।

★ आपका एलाने-तौहीद— सूरा-6, आ-14 और 19।

★ लोगों के झुठलाने पर आपका रंज— सूरा-6, आ-33, हा-21।

★ आप (सल्ल.) को झुठलानेवाले आप (सल्ल.) की ज़ात को नहीं, बल्कि असल में अल्लाह की आयतों को झुठलाते थे— सूरा-6, आ-33।

★ आप (सल्ल.) को ज़ाती हैसियत से मुख़ालिफ़ लोग सादिक़ मानते— सूरा-6, हा-21।

★ आप (सल्ल.) के लिए फ़ौकुल-इनसानी (परा प्राकृतिक) इख़्तियारात होने की तरदीद करता है— सूरा-6, आ-50, हा-32।
★ आप (सल्ल.) के आलिमुल—ग़ैब होने की तरदीद करता है— सूरा-6, आ-50।
★ आप (सल्ल.) अल्लाह की तरफ़ से आनेवाली वह्य की पैरवी करनेवाले थे— सूरा-6, आ-50।
★ ईमान लानेवालों के बारे में आप (सल्ल.) का ख़ास हिदायतें— सूरा-6, आ-51।
★ अज़ाब लाना आप (सल्ल.) के इख़्तियार में नहीं था— सूरा-6, आ-56, हा-39।
★ आप (सल्ल.) को लोगों पर हवालादार नहीं बनाया गया—
सूरा-6, आ-66, 104, और 107, हा-69 और 71।
★ आप (सल्ल.) का काम वही था जो हज़रत इबराहीम (अलै.) ने किया था— सूरा-6, 50।
★ आप (सल्ल.) को पिछले नबियों के तरीक़े पर चलने की हिदायत— सूरा-6, आ-90।
★ आप (सल्ल.) की नुबूवत को रद्द करने में यहूद का अन्धा जोश— सूरा-6, आ-91।
★ आप (सल्ल.) को ख़ुद से मोजिज़े दिखाने का इख़्तियार नहीं था— सूरा-6, आ-109, हा-75।
★ आप (सल्ल.) का इबराहीम अलै. के तरीक़े पर होना सूरा-6, आ-163, हा-142।

● **मदीना**
★ मदनी दौर की सूरतों की ख़ुसूसियात—
देखें : परिचय सूरा-2, अल-बक़रा (शाने-नुज़ूल)।
★ मदनी दौर के शुरू में इस्लाम और मुसलमानों की हालत— देखें : परिचय सूरा-2, अल-बक़रा (शाने-नुज़ूल); सूरा-2, हा-86, हा-265, परिचय सूरा-3, आले-इमरान (शाने-नुज़ूल) सूरा-4, हा-112, सूरा-5, हा-84।
★ मदीना के यहूदियों की रविश इस्लाम और मुसलमानों के मामले में— सूरा-2, आ-89, हा-95, आ-104, हा-108; सूरा-3, आ-118, हा-92।
★ मुहाजिरों की आमद का असर मआशी तवाज़ुन पर देखें : परिचय सूरा-3, आले-इमरान (शाने-नुज़ूल)
मदीना में अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के काम के तीन शोबे— देखें : परिचय सूरा-4, अन-निसा (शाने-नुज़ूल और मुबाहिस)।
★ तमाम मुसलमानों को मदीना में हिजरत कराने का हुक्म— सूरा-4, हा-116।
★ मदीना में इस्लाम के ग़लबे का दौर— देखें : परिचय सूरा-5, अल-माइदा (शाने-नुज़ूल)।

● **मज़ाहिब**
★ मुख़्तलिफ़ मज़हबों की असूल के मुताल्लिक़ क़ुरआन का नुक़्तए-नज़र— सूरा-2, आ-213; सूरा-3, आ-19, हा-16।
★ मुख़्तलिफ़ मज़ाहिब इस्लाम मे रद्दो-बदल करके बनाए गए हैं— सूरा-3, हा-17।
★ एक दीन से कई मज़हब कैसे बने—सूरा-6, हा-141।

● **मरवा**
★ अल्लाह की निशानी है— सूरा-2, आ-158।

● **मरयम**
★ आपकी पैदाइश— सूरा-3, आ-36।
★ हैकल के दाख़िले के बाद के हालात—
सूरा-3, हा-35।
★ दुनिया की औरतों में मुमताज़ दर्जा—
सूरा-3, आ-42।
★ फ़रिश्तों का हज़रत ईसा (अलै.) की पैदाइश की बशारत आपको देना— सूरा-3, आ-45।
★ आप पर बनी-इसराईल का बोहतान लगाना—
सूरा-4, आ-156, हा-190।
★ आप पर 'कलिमा' भेजने का मतलब—
सूरा-4, आ-171, हा-212।
★ 'रूहुम-मिन्हु' का मतलब—
सूरा-4, आ-171, हा-213।
★ वे एक रास्तबाज़ ख़ातून थीं— सूरा-5, आ-75।
★ ईसाइयों में उलूहियते-मरयम का अक़ीदा
सूरा-5, आ-116, हा-130।

● **मुज़दलफ़ा** — देखें : 'हज'।

● **मसाजिदल्लाह**
★ कौन लोग इनकी तौलियत के मुस्तहिक हैं?—
सूरा-2, आ-114, हा-114।

● **मस्जिदे-हराम**
★ इस इस्तिलाह का मफ़हूम—सूरा-2, हा-146।
★ इसकी हुरमत और हुकमे जिहाद—
सूरा-2, आ-191, हा-202।
★ क़ुरैश का इससे मुसलमानों को रोकना—
सूरा-2, आ-217, हा-232।
★ मस्जिदे हराम से ज़ाइरीन को रोकने का किसी को कोई हक़ नहीं है—सूरा-5, आ-2, हा-8।

● **मस्ख़**

★ अस्हाबुस्सब्त का मस्ख़— सूरा-2, आ-65, हा-83।

★ यहूद का बन्दर और सूअर बनाया जाना— सूरा-5, आ-60, हा-91।

● **मुस्लिम**

★ मुस्लिम कौन होता है?— सूरा-2, आ-131, हा-130; सूरा-3, आ-64।

★ मुस्लिम होने के तक़ाज़े— सूरा-3, आ-52, 53, हा-50।

★ मरते दम तक मुस्लिम रहने का मुतालबा— सूरा-3, आ-102, हा-82।

★ उसका रवैया ख़ुदा के सामने— सूरा-5, हा-4।

★ मुकम्मल तौर पर अल्लाह की राह में लग जाना— सूरा-6, आ-161 से 163।

● **मसीह**—देखें : ईसा।

● **मसीही**—देखें : ईसाई।

● **मसीहीयत**—देखें : ईसाइयत।

● **मुशरिकीने-अरब**

★ उनके जाहिलाना ख़यालात— सूरा-2, आ-170, हा-167।

★ उनकी जाहिलाना रसमें— सूरा-2, आ-168, हा-167।

★ उनकी जाहिलाना सोहबतें— सूरा-2, आ-168, हा-167।

★ इस्लाम से पहले उनकी हालत— सूरा-3, आ-103, हा-84—

★ ये ख़ालिक़ के एक होने के क़ायल थे— सूरा-6, हा-1।

★ उनके लिए उनके दीन का मुश्तबह हो जाना— सूरा-6, हा-109।

★ उनके हलाल व हराम होने के मुशरिकाना तसव्वुरात सूरा-6, हा-110 से 115 (इसके अलावा देखें : औहामे-जाहिलियत)।

● **मशीयते-इलाही**—देखें : तक़दीर

● **मआशी क़ानून**

★ मालों को नादान लोगों के हाथों में देना फ़साद की बुनियाद है— सूरा-4, आ-5, हा-8।

★ कमाई के बातिल तरीक़े और लेन-देन के जाइज़ तरीक़े— सूरा-4, आ-29, हा-50।

★ ख़ुदा के अतयात मे फ़ितरी ना-बराबरी और उसकी पासदारी— सूरा-4, आ-32, हा-54।

● **मोजिज़े**

★ ज़िन्दगी के बाद मौत का मोजिज़े के तौर पर अमली मुज़ाहरा— सूरा-2, आ-259।

★ चार परिन्दों के ज़िन्दा करने का वाक़िआ— सूरा-2, आ-260।

★ हज़रत ज़करिया की बाँझ बीवी के यहाँ औलाद की पैदाइश— सूरा-3, आ-39-40, हा-40-41।

★ हज़रत ईसा की मोजिज़े के तौर पर पैदाइश— सूरा-3, आ-45।

★ हज़रत ईसा के ख़ास मोजिज़े— सूरा-3, आ-49-50, हा-45-46।

★ क़बूल होनेवाली क़ुरबानी को आसमानी आग का खा जाना— सूरा-3, आ-183।

★ अहले-किताब को सोख़्तनी क़ुरबानी का मोजिज़ा तलब करने पर जवाब— सूरा-3, हा-132।

★ ईसा (अलै.) के उठाए जाने की ग़ैर मामूली नौईयत— सूरा-4, आ-158, हा-195।

★ ईस (अलै.) के मोजिज़ों की तफ़सील— सूरा-5, आ-110।

★ मोजिज़े अल्लाह की मर्ज़ी से होते हैं— सूरा-5, आ-110।

★ ख़ुद से मोजिज़े दिखाने की नबी (सल्ल.) ताक़त नहीं रखते— सूरा-6, हा-75।

★ मदनियते-सालिहा-(नेक समाज) की तामीर मोजिज़ों के बल पर नहीं हो सकती— सूरा-6, हा-23।

★ मोजिज़े दिखाने का इख़्तियार अल्लाह के हाथ में है। सूरा-6, आ-109, हा-75।

● **मारूफ़**

★ इसका शरई और क़ानूनी मफ़हूम— सूरा-2, हा-179।

★ अम्र-बिल-मारूफ़ का फ़रीज़ा— सूरा-3, आ-104।

● **मक्का**

★ मक्की दौर की नाज़िल-शुदा सूरतों की ख़ुसूसियतें— देखें : परिचय सूरा-2, अल-बक़रा (शाने-नुज़ूल)।

★ मक्की दौर में इस्लाम और मुसलमानों की हालत— देखें : परिचय सूरा-2, अल-बक़रा (शाने-नुज़ूल), हा-342।

★ मक्का में मुसलमानों की अख़लाक़ी और रूहानी तरबियत के ख़ुतूत— सूरा-2, हा-342।

★ सबसे पहली मरकज़ी इबादतगाह मक्का में बनी— सूरा-3, आ-96, हा-79।

★ मक्की ज़िन्दगी में दावते-नबवी के चार बड़े दौर— देखें : परिचय सूरा-6, अल-अनआम।
★ इस्लामी दावत के लिए उसकी मरकज़ियत— सूरा-6, आ-92।
● **मनासिक**
★ सफ़ा व मरवा की सई (चक्कर लगाना) शिर्क के ज़माने की ईजाद नहीं— सूरा-2, आ-158, हा-158।
● **मुनाफ़िक़**— सूरा-2, आ-6 से 20।
★ मक्का में किस क़िस्म के मुनाफ़िक़ पाए जाते थे— देखें : परिचय सूरा-2, अल-बक़रा (शाने-नुज़ूल)।
★ मदीना में मुनाफ़िक़ों की मुख़्तलिफ़ क़िस्में— देखें : परिचय सूरा-2, अल-बक़रा (शाने-नुज़ूल)।
★ नख़्ला के वाक़िए पर मदीना के मुनाफ़िक़ों की फ़ित्ना अंगेज़ियाँ— सूरा-2, हा-232।
★ जंगे-अहुद में मुनाफ़िक़ों का अड़चनें डालना— देखें : परिचय सूरा-3, आले-इमरान; सूरा-3, हा-103, हा-108।
★ जंगे-उहुद के मौके पर अब्दुल्लाह-बिन-उबई की फ़ित्नाअंगेज़ी— सूरा-3, हा-94।
★ मुसलमानों के ईमान में रख़्नाअन्दाज़ियाँ— सूरा-3, हा-108।
★ उहुद की जंग के बाद अल्लाह के बारे में उनके जाहिलाना गुमान— सूरा-3, आ-154।
★ उनका नफ़्सियाती तजज़िया— सूरा-3, आ-167-168; सूरा-4, आ-63; सूरा-5, आ-52, हा-84।
★ अल्लाह आज़माइशों के ज़रीए ईमान वालों से मुनाफ़िक़ों को अलग कर लेता है— सूरा-3, आ-179, हा-126।
★ उहुद के वाक़िए के बाद मदीना में उनकी सरगर्मियाँ —देखें : परिचय सूरा-4, अन-निसा (शाने-नुज़ूल और मुबाहिस)।
★ उनसे क्या बरताव किया जाए— देखें : परिचय सूरा-4, अन-निसा (शाने-नुज़ूल और मुबाहिस)।
★ इस्लाम की इस्लाहात (सुधारों) से उनकी चिढ़— सूरा-4, हा-49।
★ मामलों के फ़ैसले के लिए उनका क़ुरआन को छोड़ कर तागूत की तरफ़ रुजूअ करना— सूरा-4, आ-60, हा-91।
★ उनका जिहाद से जी चुराना— सूरा-4, आ-72, हा-102 और 103, हा-74 से 75।
★ उनकी तरफ़ से हुक्मे-जिहाद पर ज़ेहनी रद्दे-अमल— सूरा-4, आ-77, हा-107।
★ उनके ख़ुफ़िया मशवरे— सूरा-4, आ-81।
★ उनकी इंतिशार फैलानेवाली हरकतें— सूरा-4, आ-83।
★ उनके बारे में मुसलमानों से दो रायें रखने पर गिरिफ़्त — सूरा-4, आ-88, हा-116।
★ ये मुसलमानों को अपने कुफ़्र की छूत लगाना चाहते हैं— सूरा-4, आ-89।
★ उनसे दोस्ती की मनाही— सूरा-4, आ-89।
★ उनसे जंग के दौरान मामला— सूरा-4, आ-89-91, हा-117 से 119।
★ नबी (सल्ल.) के अदालती फ़ैसले से इंहिराफ़ निफ़ाक़ है— सूरा-4, आ-115, हा-143।
★ उनका ईमानवालों के बजाए काफ़िरों को रफ़ीक़ बनाना— सूरा-4, आ-138।
★ उनको जहन्नम में काफ़िरों के साथ जमा किया जाएगा— सूरा-4, आ-140।
★ उनकी दिलचस्प पॉलीसी—सूरा-4, आ-141, हा-171।
★ उनकी ख़ुदा से फ़रेबकारी— सूरा-4, आ-142।
★ उनकी हालते-तज़बज़ुब— सूरा-4, आ-143।
★ ये दोज़ख़ के सबसे निचले तबक़े में होंगे— सूरा-4, आ-145।
★ दीने-हक़ की मुख़ालिफ़त करनेवाले यहूदियों और ईसाइयों से उनकी दिलचस्पियाँ— सूरा-5, आ-52।
★ उनके लिए आमाल (कर्म) के ज़ाया हो जाने का फ़ैसला— सूरा-5, आ-53, हा-86।
★ निफ़ाक़ आख़िरकार खुलकर रहता है— सूरा-5, आ-52।
● **मुनकर**
★ नही अनिल-मुनकर का फ़रीज़ा— सूरा-3, आ-104।
★ नही अनिल-मुनकर में कोताही करने का नतीजा— सूरा-5, आ-79, हा-102।
● **मन व सलवा**— सूरा-2, आ-57, हा-73।
● **मूसा (अलै.)**
★ आपका ज़माना—देखें : परिचय सूरा-2, अल-बक़रा (शाने-नुज़ूल)।
★ चालीस शबाना रोज़ (दिन-रात) के लिए तूर पर बुलाए जाते हैं— सूरा-2, आ-51, हा-67।
★ किताब और फ़ुरक़ान से नवाज़े जाते हैं— सूरा-2, आ-53।
★ चट्टान में चश्मे निकालने का मोजिज़ा— सूरा-2, आ-60।

★ आप से अल्लाह का सीधे तौर पर बात करना— सूरा-4, आ-164, हा-206।
★ फ़ारान के जंगलों में आपका बनी-इसराईल से ख़िताब— सूरा-5, आ-21, हा-44।
● महर
★ बिना हाथ लगाए तलाक़ की सूरत में आधा महर देना चाहिए — सूरा-2, आ-237।
★ बीवी का महर माफ़ करना— सूरा-4, आ-4, हा-7।
★ बीवी को तंग करके महर में हक़ मारी करने की मनाही— सूरा-4, आ-19, हा-29।
★ महर वापस न लिया जाए— सूरा-4, आ-20, हा-31।
★ यह निकाह के अरकान में से है— सूरा-4, आ-24; सूरा-5, आ-5।
● मीसाक़— देखें : 'अहद'।

(य)

● यतीम
★ यतीमों के मालों में अमानतदारी— सूरा-4, आ-2,6 और 8, हा-9 और 13; सूरा-6, आ-152, हा-132।
★ यतीमों के हुक़ूक़ और तअद्दुदे-इज़्दिवाज (एक से ज़्यादा औरतों से निकाह करना)— सूरा-4, आ-3, हा-4।
★ बालिग़ होने तक उनके मालों की हिफ़ाज़त— सूरा-4, आ-6, हा-9 और 10।
★ यतीम बच्चों और बच्चियों के बारे में इनसाफ़ की ताकीद— सूरा-4, आ-126।

● यह्या (अलै.)
★ उनका मज़लूमाना क़त्ल— सूरा-2, हा-79।
★ किन औसाफ़ (गुणों) के साथ पैदा किए गए— सूरा-3, आ-39।
● याक़ूब (अलै.)
★ अपनी औलाद को आख़िरी तलक़ीन— सूरा-2, आ-132।
● यहूद
★ क़ुरआन नाज़िल होने के वक़्त उनकी मज़हबी और अख़लाक़ी हालत— देखें : परिचय सूरा-2; सूरा-3, हा-61।
★ उनके बिगाड़ पर क़ुरआन की तनक़ीद क्या सबक़ देती है— देखें : परिचय सूरा-2।
★ क़ुरआन में उनपर तनक़ीद क्यों की गई है?— सूरा-2, हा-56, 86।
★ उनके अख़लाक़ी और मज़हबी जुर्म— सूरा-2, आ-91, 93, 97, 102, 104, हा-58, 105, 108; सूरा-3, आ-72, हा-61 और 75; सूरा-4, आ-160, हा-83, 199; सूरा-5, आ-42।
★ अरब के मुशरिकों में उनका मज़हबी और अख़लाक़ी असर— सूरा-2, हा-58।
★ इस्लाम के ख़िलाफ़ उनके हथकण्डे— सूरा-2, आ-58, हा-76 और 88, देखें : परिचय सूरा-3।
★ नमाज़ और ज़कात से उनकी ग़फ़लत— सूरा-2, हा-59।
★ उनकी बुतपरस्ती—सूरा-2, आ-79।
★ उनका झूठा ज़ोम कि नजात सिर्फ़ उन्हीं के लिए है— सूरा-2, आ-95, हा-80।
★ अल्लाह की किताब में उनकी तहरीफ़ात (तब्दीलियाँ और मिलावटें)— सूरा-2, आ-75 और 79, हा-87 और 90।
★ मदीनावालों पर उनके अख़लाक़ी और मज़हबी असरात— सूरा-2, हा-86 हा-95।
★ उनके आलिमों की अख़लाक़ी हालत— सूरा-2, आ-66 और 78, हा-86 और 90; सूरा-3, आ-89 और 90।
★ ख़ुदा के साथ उनकी बदगुमानियाँ— सूरा-2, आ-76, 77 और 78, हा-88।
★ उनके आम लोगों की जिहालत— सूरा-2, हा-89।
★ उनके बिगाड़ की वजहें— सूरा-2, आ-79, 85 और 159, हा-92, 110 और 160।
★ आख़िरत के बारे में उनका ग़लत अक़ीदा— सूरा-2, आ-80; सूरा-3, हा-64।
★ मदीना के यहूदियों की अख़लाक़ी हालत— सूरा-2, हा-92 और 95।
★ यहूदी आलिमों पर हज़रत ईसा (अलै.) की तनक़ीद — सूरा-3, हा-48।
★ यहूदियों ने हज़रत ईसा (अलै.) की दावत को रद्द कर दिया— सूरा-3, हा-51।
★ इसराईल और ग़ैर-इसराईल के लिए अलग-अलग अख़लाक़ी रवैये— सूरा-3, हा-64।
★ उनका अल्लाह पर झूठ गढ़ना— सूरा-3, आ-75।
★ नेकी के बारे में उनका ज़ाहिरपरस्ताना (दिखावटी) तसव्वुर— सूरा-3, हा-75।

★ उनके आलिमों के ज़रीए मामलों में फ़िक़्ही नुक्ते निकालना — सूरा-3, आ-93, हा-77।
★ उनकी फ़ित्नाअंगेज़ियों पर तंबीह— सूरा-3, आ-98 और 99।
★ मदीना के मुसलमानों से उनके मुनाफ़िक़ाना (कपट-पूर्ण) ताल्लुक़ात — सूरा-3, हा-42।
★ अल्लाह का मज़ाक़ उड़ाने की जसारत (साहस)— सूरा-3, आ-181, हा-128।
★ बनी-नज़ीर की साज़िशी कार्रवाइयाँ— देखें : परिचय सूरा-4।
★ इस्लाम के सुधारों से उनकी चिढ़— सूरा-4, हा-49।
★ अल्लाह की किताब में फेर-बदल और मिलावटें करने की यहूदियों की तीन सूरतें— सूरा-4, हा-73।
★ जुज़ियात (मामूली बातों) की नाप-तौल के साथ उनकी शिर्कपसन्दी— सूरा-4, हा-80।
★ मदीना के यहूदियों का अल्लाह के रसूल (सल्ल.) से मज़हका अंगेज़ (हास्यास्पद) मुतालबा— सूरा-4, आ-153, हा-181।
★ उनके लिए बहुत-सी पाक चीज़ें सज़ा के तौर पर हराम कर दी गईं— सूरा-4, आ-161, हा-201; सूरा-6, आ 122।
★ उनका अच्छा पहलू— सूरा-4, आ-162।
★ उस क़ौम का इबरत का नमूना होना— सूरा-4, हा-202।
★ नबी (सल्ल.) और आपके सहाबियों को क़त्ल करने की उनकी साज़िश— सूरा-5, हा-30।
★ उनका यह ज़ोम कि वे अल्लाह के बेटे और चहेते हैं सूरा-5, आ-18।
★ नबी (सल्ल.) के क़त्ल की साज़िश पर उनको लतीफ़ मलामत (सूक्ष्म निन्दा)— सूरा-5, हा-52।
★ नबी (सल्ल.) के लिए यहूदियों के मुक़द्दमात सुनने या न सुनने का इख़्तियार— सूरा-5, आ-42।
★ उनके लिए दुनिया में भी रुसवाई और आख़िरत में भी— सूरा-5, आ-41।
★ उनका ख़ुदा के क़ानून से बचना— सूरा-5, आ-43।
★ उनका रज्म के हुक्म को छिपाना— सूरा-5, हा-70।
★ उनकी मज़हबी बद-दियानती की परददारी— सूरा-5, हा-71।
★ उनको इस्लाह की दावत— सूरा-5, आ-44।
★ उनके लिए मस्ख़ की सज़ा— सूरा-5, आ-60, हा-91।
★ अल्लाह पर कंजूसी की फब्ती कसते थे— सूरा-5, आ-64, हा-92।
★ क़ुरआन का नाज़िल होना उनके लिए तुग़यान और कुफ़्र में बढ़ोतरी की वजह बन गया—सूरा-5, हा-95।
★ उनके तुग़यान और कुफ़्र का वबाल—सूरा-5, हा-96।
★ उनका मुशरिकों से जोड़— सूरा-5, आ-82, हा-103।
★ उनका अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के इनसान होने पर एतिराज़ और उसका जवाब— सूरा-6, आ-91, हा-59।
★ उनका ख़ुद शारेअ (शरीअत या क़ानून बनानेवाला) बन बैठना— सूरा-6, हा-122।
★ उनका अल्लाह की मर्ज़ी के बारे में ग़लत तसव्वुर— सूरा-6, हा-125।
● **यहूदियत**
★ हज़रत इबराहीम (अलै.) के बहुत बाद तीसरी-चौथी सदी ईसा पूव में पैदा हुई— सूरा-3, आ-65, हा-58।
★ यहूदियत के मज़हबी निज़ाम में नसूली तास्सुब की रूह— सूरा-3, हा-64।

(र)

● **रिबा**— देखें : सूद।
● **रिज़्क़**
★ दुनिया का रिज़्क़ मोमिन और काफ़िर सबको दिया जाता है— सूरा-2, आ-126।
★ दुनिया में ज़्यादा रिज़्क़ का दिया जाना हक़्क़े-इमामत की बुनियाद नहीं— सूरा-2, आ-226, हा-127।
★ दुनिया का रिज़्क़ तक़वा के लिहाज़ से नहीं दिया जाता— सूरा-2, आ-212।
★ दुनिया के रिज़्क़ की कसरत और क़िल्लत पर आख़िरत की कामयाबी व नाकामी का मदार नहीं— सूरा-2, आ-212।
★ रिज़्क़ पहुँचाना अल्लाह के इख़्तियार में है— सूरा-3, आ-27 और 37।
★ सिर्फ़ हलाल और पाक रिज़्क़ इस्तेमाल करने का हुक्म— सूरा-5, आ-88।
★ खेती और जानवरों से हासिल होनेवाले रिज़्क़ (इमलाक) के बारे में तीन अहम हिदायतें— सूरा-6, हा-118।
★ रिज़्क़ पहुँचाना अल्लाह के ज़िम्मे है— सूरा-6, आ-151।
● **रसूल-रुसुल**—देखें : अंबिया।

● **रिश्वत**

★ रिश्वत की मनाही— सूरा-2, आ-188, हा-197।

● **रिज़ाअत** (दूध पिलाना)

★ तलाक़ या ख़ुलअ की सूरत में बच्चों को दूध पिलाने का मामला— सूरा-2, आ-233, हा-257।

★ उजरत देकर रिज़ाअत (दूध पिलाना)— सूरा-2, आ-233।

★ यतीम बच्चे को दूध पिलाने की ज़िम्मेदारी उसके औलिया (संरक्षकों) पर है— सूरा-2, आ-233, हा-258।

★ दूध की बुनियाद पर हराम होनेवाले रिश्ते— सूरा-2, आ-23, हा-37, हा-38।

● **रमज़ान**

★ इस माह में क़ुरआन के नाज़िल होने की शुरुआत हुई— सूरा-2, आ-185।

★ इस महीने के रोज़े रखने का हुक्म— सूरा-2, आ-185, हा-185-186।

● **रूहुल-क़ुदुस**

★ रूहुल-क़ुदुस से ईसा (अलै.) की मदद की गई— सूरा-2, आ-253।

★ 'रूहुम-मिन्हु' का मतलब— सूरा-4, हा-213।

★ इसके बारे में ईसाइयों का ग़लत तसव्वुर— सूरा-4, हा-213।

● **रोज़ा**

★ रोज़े का असूल मक़सद— सूरा-2, आ-183।

★ रोज़े के अहकाम में तदरीज— सूरा-2, हा-183।

★ सफ़र की हालत के लिए रोज़े के अहका— सूरा-2, हा-186।

★ क़ुरआन नाज़िल होने की नेमत पर शुक्रिए के इज़हार का ज़रीआ— सूरा-2, आ-185, हा-187।

★ रात के वक़्त बीवियों के पास जाने की इजाज़त— सूरा-2, आ-187, हा-191।

★ सेहरी और इफ़्तार के वक़्तों की हदबन्दी— सूरा-2, आ-187, हा-192-194।

★ मन्तिक़ए शिमाली व जुनूबी में उसके वक़्तों का निज़ाम— सूरा-2, हा-193।

★ एतिकाफ़ की हालत में बीवियों के पास जाने की मनाही— सूरा-2, आ-187, हा-195।

★ सेहरी और इफ़्तार में बे जा शिद्दत से एहतियात— सूरा-2, हा-194।

★ रोज़ा फ़िदये के तौर पर (हज के सिलसिले में)— सूरा-2, आ-196।

★ क़फ़ारे के तौर पर रोज़ा सूरा-6, आ-92; सूरा-5, आ-89 और 95।

● **रहबानियत**

★ मज़हबी लोगों का एक ग़लत रुज्हान— सूरा-5, हा-104।

● **रेहन**

★ रेहन बिल-क़ब्ज़ का मामला— सूरा-2, आ-283, हा-331।

★ रहन पर रखी हुई चीज़ से माली फ़ायदा उठाना सूद है— सूरा-2, हा-331।

● **रिया** (दिखावा)

★ ख़ुदा और रसूल पर ईमान न होने की अलामत— सूरा-2, आ-264, हा-303; सूरा-4, आ-38।

(ल)

● **लानत**

★ किस क़िस्म के लोग इसके मुस्तहिक़ हैं?— सूरा-2, आ-89, 159 और 161; सूरा-3, आ-87; सूरा-4, आ-47, 52, 93 और 118; सूरा-5, आ-60।

★ बातिलपरस्ती की तरफ़ से यहूद पर लानत— सूरा-4, आ-47।

★ जिस पर अल्लाह की लानत हो फिर उसको लानत से बचानेवाला कोई मददगार नहीं मिल सकता— सूरा-4, आ-52।

★ बनी-इसराईल के कुफ़्र पर दाऊद व ईसा (अलै.) की लानत— सूरा-5, आ-78।

● **लौंडी**—देखें : ग़ुफ्लामी।

(व)

● **विरासत**—देखें : क़ानुने-इस्लामी।

● **वसीला**

★ इसका मफ़हूम— सूरा-5, आ-35।

● **वह्य**

★ इस के मानी— सूरा-4, हा-204।

★ मुहम्मद (सल्ल.) पर वह्य आना कोई अनोखा वाक़िआ नहीं, बल्कि सारे नबियों पर पहले भी वह्य आती रही है— सूरा-4, आ-163।

★ क़ुरआन का अल्लाह की तरफ़ से मुहम्मद (सल्ल.) पर वह्य के ज़रीए आना— सूरा-6, आ-19।

★ इनसान पर वह्य नाज़िल होने से इनकार के मानी— सूरा-6, हा-59।

★ नबियों पर इसके नाज़िल होने की चार दलीलें— सूरा-6, आ-61।
★ शैतान का अपने साथियों पर वह्य करना— सूरा-6, आ-121।
● वसीयत—देखें : क़ानूने-इस्लामी।
● वुज़ू
★ इसके अरकान— सूरा-5, आ-6।
★ नबी (सल्ल.) की तरफ़ से वुज़ू की अमली तकमील— सूरा-5, हा-24।

(श)

● शराब
★ शराब के बारे में पहला हुक्म— सूरा-2, आ-219, हा-235।
★ शराब के फ़ायदों से नुक़सान ज़्यादा हैं— सूरा-2, आ-219।
★ तदरीजी इम्तिनाअ (मनाही) के तहत दूसरा हुक्म— सूरा-4, आ-43, हा-65।
★ इसको बिल्कुल हराम किए जाने का हुक्म— सूरा-5, आ-90, हा-109।
★ शराब पीना शैतानी काम है— सूरा-5, आ-90 और 91।
★ शराब के मुताल्लिक़ नबी (सल्ल.) के तफ़सीली अहकाम— सूरा-5, हा-109।
● शिर्क
★ इसकी शुरुआत कब और कैसे हुई— देखें : मुक़द्दिमा।
★ अल्लाह की सिफ़ात और अल्लाह के हक़ों में दूसरों को शामिल करना— सूरा-2, आ-165, हा-163।
★ ज़बीह पर ग़ैरुल्लाह का नाम लेना— सूरा-2, आ-173; सूरा-5, आ-3, हा-10।
★ शिर्क का नज़रिया झूठ और हक़ीक़त के ख़िलाफ़ एलाने-जंग है— सूरा-2, आ-255, हा-278; सूरा-4, आ-48।
★ मुशरिक समाज का निज़ामे-फ़िक्र— सूरा-2, हा-291।
★ शिर्क का जौहर— सूरा-3, हा-48।
★ नाक़ाबिले-माफ़ी जुर्म— सूरा-4, आ-47, आ-116
★ मुशरिकाना अक़ीदों के तहत जानवरों के कान चीर कर उनको देवताओं के नाम पर पुण्य करना— सूरा-4, आ-119, हा-147।
★ मुशरिकाना फ़ालगीरी— सूरा-5, हा-14 और 108।
★ आसतानों के चढ़ावे— सूरा-5, आ-3, हा-12, आ-90 और हा-108।
★ मुशरिकों के लिए जन्नत हराम— सूरा-5, आ-72।
★ अल्लाह ने कोई बहीरा, सायबा, वसीला और हाम मुक़र्रर नहीं किए— सूरा-5, आ-103, हा-118।
★ शिर्क किस माने में ज़ुल्म है— सूरा-6, हा-16, आ-82 और हा-55।
★ मुसीबत के वक़्त मुशरिकों का साझीदारों को छोड़कर एक अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाना— सूरा-6, आ-40, 41, हा-29 आ-63।
★ शिर्क करनेवालों के लिए सहरा में भटकने की मिसाल— सूरा-6, आ-71।
★ शिर्क के नज़रिए के ख़िलाफ़ हज़रत इबराहीम (अलै.) की जिद्दोजुहद— सूरा-6, आ-74, हा-50।
★ जो शिर्क करे उसका किया-कराया ग़ारत हो जाएगा — सूरा-6, आ-88।
★ दूसरों को अल्लाह के मुक़ाबिल ठहराना— सूरा-2, आ-22, हा-23।
★ मुशरिकों का अंजाम— सूरा-2, आ-24, हा-25।
★ शिर्क इज्तिमाई क़ुव्वत को कमज़ोर करता है— सूरा-3, आ-151।
★ आख़िरत में मुशरिकों से बाज़पुर्स (पूछगच्छ)— सूरा-6, आ-22।
★ जिन्नों को भी ख़ुदा का शरीक ठहराया गया— सूरा-6, आ-100, हा-67।
★ अल्लाह के लिए औलाद तजवीज़ करने का शिर्क— सूरा-6, आ-100, हा-67।
★ शिर्क की बुनियाद औहाम (अंधविश्वास) पर है— सूरा-6, आ-100, हा-68।
★ शैतान की इताअत भी शिर्क है— सूरा-6, आ-121, हा-87।
★ एतिक़ादी शिर्क और अमली शिर्क— सूरा-6, हा-87।
★ अल्लाह की नेमतों में शरीकों का हिस्सा लगाना— सूरा-6, अल-अनआम, आ-136, हा-105-106।
★ अल्लाह के हुक़ूक़ में शिर्क— सूरा-6, आ-136, हा-105।
★ मुशरिकाना ख़यालों की बुनियाद पर औलाद का क़त्ल — सूरा-6, आ-137, हा-107।
★ ग़ैर-इलाही क़ानून को तसलीम करना भी शिर्क है— सूरा-6, हा-107।
★ मुशरिकों के लिए मुशरिकाना आमाल का ख़ुशनुमा बन जाना— सूरा-6, आ-137।

★ शिर्क की चार सूरतें : ज़ात में शिर्क, सिफ़ात में शिर्क, इख़्तियारात में शिर्क और हुक़ूक़ में शिर्क— सूरा-6, आ-151, हा-128।
★ कायनात के निज़ाम में शिर्क की कोई जगह नहीं— सूरा-6, हा-144।
● **शरीअत**
★ वे बुनियादी पाबन्दियाँ जो तमाम इलाही शरीअतों में लगाई गई हैं— सूरा-6, आ-151, हा-127।
● **शुआइरुल्लाह**
★ लफ़्ज़ शिआर की तशरीह— सूरा-5, हा-5।
★ सफ़ा और मरवा शुआइरुल्लाह में से हैं— सूरा-2, आ-158।
★ शुआइरल्लाह की तौहीन का मतलब— सूरा-5, आ-2, हा-5।
★ उनके एहतिराम की वजह— सूरा-5, हा-5।
★ इहराम भी शुआइरुल्लाह में से है— सूरा-6, हा-7।
● **शफ़ाअत**
★ मुजरिमों के लिए इसका फ़ायदेमन्द न होना— सूरा-2, आ-123।
★ अल्लाह की मर्ज़ी के बग़ैर किसी की मजाल नहीं कि किसी के बारे में सिफ़ारिश कर सके— सूरा-2, आ-255, हा-281।
★ क़ियामत के दिन मुजरिमों की तरफ़ से कोई वकालत न कर सकेगा— सूरा-4, आ-109।
★ आख़िरत में ख़ुदा की बन्दगी से गुरेज़ करनेवालों का कोई हामी और मददगार न होगा— सूरा-4, आ-173।
★ अपनी उम्मत के लिए हज़रत ईसा (अलै.) की आजिज़ाना लतीफ़ शफ़ाअत— सूरा-5, आ-118।
★ आख़िरत में कोई ऐसा ज़ी-इक्तिदार (अधिकार-प्राप्त) न होगा कि किसी की हिमायत, नुसरत और सिफ़ारिश कर सके— सूरा-6, आ-51।
★ आख़िरत में हिमायत, सिफ़ारिश, और फ़िदये का बेकार होना— सूरा-6, आ-70।
★ आख़िरत में मुतवक़्क़े सिफ़ारिशियों का खो जाना— सूरा-6, आ-94।
★ हिसाब के लिए हर एक की हाज़िरी तन्हा-होगी— सूरा-6, आ-94।
● **शिकार**
★ इहराम की हालत में शिकार का हराम होना— सूरा-5, आ-95, हा-110।
★ शिकार के क़ायदे— सूरा-5, आ-4, हा-19।
★ शिकारी जानवरों से मुराद— सूरा-5, हा-19।
★ इहराम की हालत में शिकार करने का कफ़्फ़ारा— सूरा-5, आ-95, हा-111।
★ समुद्री शिकार का हलाल होना— सूरा-5, आ-96, हा-112।
● **शुक्र**
★ शुक्र के असूल मानी— सूरा-4, हा-175; सूरा-2, हा-161।
★ कुफ़्र की ज़िद (विलोम)— सूरा-2, हा-161।
★ शुक्र के रवैये की तशरीह— सूरा-4, हा-175।
★ अल्लाह के शाकिर होने का मफ़हूम— सूरा-4, आ-147, हा-176।
★ शुक्र और ईमान का ताल्लुक़— सूरा-4, हा-176।
★ शुक्र करनेवालों से मुराद कौन लोग हैं?-- सूरा-3, हा-106।
★ अल्लाह की तरफ़ से शुक्र और बन्दे की तरफ़ से शुक्र— सूरा-4, आ-176।
● **शहादत** (जानी कुरबानी के मानी में)
★ अल्लाह की राह में जान क़ुरबान करने के मानी— सूरा-2, आ-154, हा-155।
★ उसका बेशक़ीमत बदला— सूरा-3, आ-157।
★ शहीदों के लिए आख़िरी इनाम और दर्जे— सूरा-3, आ-169-170, हा-121।
★ उसकी ग़ैर मामूली लज़्ज़त— सूरा-3, हा-121।
★ शहादत (हक़ की गवाही के मानी में)।
★ लोगों पर गवाही के काम में उम्मत का जानशीने-रसूल (रसूल का उत्तराधिकारी) होना— सूरा-2, आ-143, हा-144।
★ लोगों पर गवाही देने के वसीअ तक़ाज़े— सूरा-2, हा-144।
★ इस काम के लिए अल्लाह मुख़लिसों को आज़माकर छाँटता है— सूरा-3, आ-140, 141।
★ शहादत की ज़िम्मेदारी— सूरा-2, आ-140।
● **शहादत** (गवाही के मानी में)।
★ शहादत का क़ानून— सूरा-2, आ-282, हा-327 से 330; सूरा-5, आ-106
★ शहादत के क़ानून में औरत की गवाही— सूरा-2, आ-282।
★ शहादत के क़ानून में ग़ैर-मुस्लिम की गवाही—सूरा-2, आ-282, हा-327, सूरा-5, आ-106, हा-121।

★ गवाही के भरोसामन्द होने के लिए अख़लाक़ और सीरत (किरदार) का लिहाज़— सूरा-2, आ-282, हा-328; सूरा-5, आ-116, हा-120।
★ शहादत (गवाही) से इनकार मना है— सूरा-2, आ-282।
★ कातिब और गवाह को सताया न जाए सूरा-2, आ-282, हा-330।
★ शहादत को छिपाना गुनाह है— सूरा-2, आ-283, हा-332।
★ मामलों में शहादत (गवाही) की अहमियत— सूरा-4, आ-6।
★ ज़िना के लिए चार गवाहों की शहादत (गवाही)— सूरा-4, आ-15।
★ सिर्फ़ अल्लाह के लिए इनसाफ़ के साथ गवाही देने की माँग— सूरा-4, आ-135, हा-164-165।
★ अल्लाह और फ़रिश्तों की गवाही क़ुरआन के बारे में— सूरा-4, आ-166।
★ वसीयत के लिए शहादत का निसाब— सूरा-5, आ-106।

● **शुहदा**
★ उनकी तारीफ़— सूरा-4, हा-99।

● **शैतान** (शयातीन)
★ लफ़्ज़ शैतान के मानी— सूरा-2, हा-15।
★ सरकश इनसानों के लिए शैतान लफ़्ज़ का इस्तेमाल — सूरा-2, हा-15।
★ 'अश-शैतान' से क्या मुराद है?— सूरा-2, हा-46।
★ शैतान की हक़ीक़त— सूरा-2, हा-46।
★ शैतान जिन्न कौन हैं— सूरा-2, हा-47।
★ शैतान आदम (अलै.) को जन्नत से निकलवाता है— सूरा-2, आ-36।
★ इनसान का अज़ली (हमेशा से) दुश्मन है— सूरा-2, हा-50, आ-168, और 208; सूरा-6, आ-142।
★ बुराई और बेहयाई का दाई (अलमबरदार)— सूरा-2, आ-169।
★ शैतान ही जादू के पैदा करनेवाले हैं— सूरा-2, आ-102, हा-104।
★ शैतान की पैरवी न करो— सूरा-2, आ-168, और सूरा-6, आ-142, 208।
★ शैतान निफ़ाक़ (अल्लाह की राह में ख़र्च करने) से रोकने के लिए मुफ़लिसी का ख़ौफ़ दिलाता है— सूरा-2, आ-268।
★ शैतान का छूकर बावला कर देना— सूरा-2, आ-275।
★ वह बुज़दिली और घबराहट फैलाता है— सूरा-3, आ-155।
★ वह बातिल से ख़ौफ़ दिलाता है— सूरा-3, आ-175।
★ उसकी रिफ़ाक़त (दोस्ती) बहुत बुरी रिफ़ाक़त है— सूरा-4, आ-38।
★ उसकी चालें कमज़ोर होती हैं— सूरा-4, आ-76।
★ उसको माबूद बनाने का मफ़हूम— सूरा-4, हा-145।
★ इनसान के बारे में उसका चेलैंज— सूरा-4, आ-119।
★ उसका सब्ज़ बाग़ दिखाना— सूरा-7, आ-120, हा-149।
★ शराब, जुआ, आस्ताने और पाँसे गन्दे शैतानी काम हैं— सूरा-5, आ-90, हा-109।
★ वह मुसलमानों में बुग़्ज़ और अदावत डालना चाहता है— सूरा-5, आ-91।
★ शैतान का गुमराही को ख़ुशनुमा बनाना— सूरा-6, आ-43।
★ वह भुलावे में डालता है— सूरा-6, आ-68, हा-44।
★ शैतान जिन्नों और इनसानों की नबियों की दावत से दुश्मनी— सूरा-6, आ-112।
★ शैतानों की ख़ुश आयन्द बातें इल्क़ा करना (दिलों में डालना)— सूरा-6, आ-112, हा 79।
★ शैतानों को बातों के ख़ुश आइन्द होने का मतलब। सूरा-6, हा-79।
★ शैतानों का अपने साथियों के दिलों में शक और एतिराज़ डालना— सूरा-6, आ-121।
★ शैतानों की इताअत शिर्क है— सूरा-6, आ-121, हा-87।
★ शैतान जिन्नों से आख़िरत में जवाब तलबी और उनके लिए दोज़ख़ की दायिमी (हमेशा रहने वाली) सज़ा— सूरा-6, आ-128।

(स)

● **सवाब**
★ सवाब के मानी (अर्थ) और उसकी क़िस्में— सूरा-3, हा-105।
★ कौन-से काम सवाब के मुस्तहिक़ हैं— सूरा-2, आ-103।
★ सवाबे-दुनिया और सवाबे-आख़िरत— सूरा-3, आ-145, हा-105 और आ-148; सूरा-4, आ-134, हा-163।

- ● **सालेहीन**
- ★ उनकी तारीफ़— सूरा-4, आ-69, हा-99।
- ● **सब्र**
- ★ लफ़्ज़ सब्र के मानी— सूरा-2, हा-60, आ-177; सूरा-3, आ-16, हा-13, आ-146।
- ★ सब्र करनेवालों के लिए अल्लाह की मदद— सूरा-2, आ-156 से 157, और 249; सूरा-3, आ-125।
- ★ बातिल का मुक़ाबला करने में सब्र की अहमियत— सूरा-3, आ-146।
- ★ आज़माइश के मरहलों के लिए उसकी ज़रूरत— सूरा-3, आ-186, हा-130।
- ★ अहले-हक़ के लिए सब्र कामयाबी की शर्त है— सूरा-2, आ-45, हा-60, आ-155, 249; सूरा-3, आ-120, 142; सूरा-6, आ-34, हा-22।
- ★ साबिरू के दो मानी— सूरा-3, हा-141।
- ● **सिब्ग़तुल्लाह** (अल्लाह का रंग)
- ★ अल्लाह का रंग अल्लाह की बन्दगी करने से चढ़ता है— सूरा-2, आ-132, हा-137।
- ● **सदक़ा**
  देखें : इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह।
- ● **सिद्दीक़ीन**
- ★ उनकी तारीफ़ (परिभाषा)— सूरा-4, आ-69, हा-99।
- ● **सिराते-मुस्तक़ीम**
- ★ इसका मतलब— सूरा-1, आ-5, हा-8; सूरा-5, आ-12, हा-35।
- ★ वह अल्लाह की आयतों के ज़रीए वाज़ेह होती है— सूरा-3, आ-103।
- ★ किसी को सिराते-मुस्तक़ीम पर ले आना अल्लाह के इख़्तियार में है— सूरा-6, आ-39, हा-28।
- ★ उसके निशानात ख़ूब वाज़ेह कर दिए गए हैं— सूरा-6, आ-126।
- ★ अल्लाह का मुतालबा कि इनसान उसके बताए हुए सीधे रास्ते पर चले— सूरा-6, आ-153, हा-135।
- ● **सफ़ा**
- ★ अल्लाह की निशानी है— सूरा-2, आ-158।
- ● **सिफ़ाते-इलाही**
- ★ रबूबियत व रज़्ज़ाक़ी— सूरा-1, आ-1, हा-3 सूरा-2, आ-212; सूरा-3, आ-27, 35, आ-37, आ-38, आ-40, आ-73, सूरा-5, आ-114; सूरा-6, आ-15, आ-161।
- ★ हयात— सूरा-2, आ-255, हा-278; सूरा-3, आ-2।
- ★ रहमत— सूरा-1, आ-2, हा-4; सूरा-2, 37, 54, 128, 182, 192, 199, 226; सूरा-3, आ-31 74, 89, 129, 57; सूरा-4, आ-16, 23, 25, 29, 64, 100, 106, 110, 129; सूरा-5, आ-3, 34, 39, 74, 98; सूरा-6, आ-12, 54, 145, 165।
- ★ हिसाब लेना, जज़ा और सज़ा देना और इन्तिक़ाम लेना— सूरा-1, आ-2, हा-5; सूरा-2, आ-165, 166, 196, 211, 284, हा 335, 336; सूरा-3, आ-4, 10, 19, 129; सूरा-5, आ-2, 4, 13, 18, 40, 95, 98; सूरा-6, आ-62, 133, 165।
- ★ ख़ल्क़ (पैदा करना) ईजाद, सूरतगरी— सूरा-2, आ-117; सूरा-3, आ-6, 47; सूरा-4, आ-1; सूरा-5, आ-17; सूरा-6, आ-1, 214, 73, 79, 94, 98, 102, 141।
- ★ इल्म व ख़बर— सूरा-2, आ-29, 32, 77, 78, 137, 140, 145, 149, 158, 181, 215, 220, 227, 231, 232, 234, 244, 247, 255, 256, 261, 269, 271, 282, 283; सूरा-3, आ-5, 29, 34, 66, 73, 92, 99, 121, 153, 154, 180; सूरा-4, आ-12, 17, 24, 26, 32, 35, 42, 63, 70, 92, 94, 104, 127, 128, 135, 147, 148, 170; सूरा-5, आ-7, 54, 76, 97, 116, सूरा-6, आ-3, 13, 18, 53, 59, 73, 80, 83, 96, 101, 115, 117, 119, 128, 139।
- ★ तौबा क़बूल करना— सूरा-2, आ-37, 54, 128।
- ★ नरमी करना और माफ़ करना— सूरा-2, आ-182, 192, 199, 235, 226, 225, 226, 235, 263, हा-236; सूरा-3, आ-89, 129, 135, 155; सूरा-4, आ-12, हा-25, आ-16, 17, 23, 25, 28, 43, 48, 64, 100, 106, 110, 116, आ-129; सूरा-4, आ-149; सूरा-5, आ-3, 18, 34, 39, 40, 74, 98, 101; सूरा-6, आ-54, 145 और 165।
- ★ क़ुव्वत, क़ुदरत, इख़्तियार, इहाता, ग़ल्बा— सूरा-2, आ-20, हा-52, आ-102, 106, 109, 148, 165, 209, 220, 228, 240, 245, 247, 253, 259, 284; सूरा-3, आ-4, 26, 29, 40, 62, 74, 120, 126, 128, 165, 189; सूरा-4, आ-30, 56, 111 133, 149, 158, 165; सूरा-5, आ-17, 19, 38, 40, 120; सूरा-6, आ-17, 37, 57, 59, 61, 73, 80, 96, 102 और 134।

★ हाकिमियत, इक्तिदार, बादशाही—
सूरा-2, आ-107, 117, 129, 255, हा-282, 283; सूरा-3, आ-189; सूरा-4, आ-47; सूरा-5, आ-1, हा-4, आ-50, 120; सूरा-6, आ-73।
★ कारसाज़, वली, मददगार, वकील—
सूरा-2, आ-107; सूरा-4, आ-45, 81, 132, 171; सूरा-6, आ-102।
★ हिकमतवाला— सूरा-2, आ-32, 129, 209, 220, 228, 240, 260; सूरा-3, आ-6, 18, 62, 126; सूरा-4, आ-11, 17, 24, 26, 54, 92, 104, 130, 158, 165, 170; सूरा-5, आ-38, 118; सूरा-6, आ-18, 73, 83, 128, 139।
★ निगराँ, बसीर— सूरा-2, आ-110, 233, 237, 265; सूरा-3, आ-15, 20, 156, 163; सूरा-4, आ-1, 33, 58, 85, 134; सूरा-5, आ-71, 117।
★ वासेअ— सूरा-2, आ-115, 247, 261, 268; सूरा-3, आ-73; सूरा-4, आ-130; सूरा-5, आ-54।
★ समीअ— सूरा-2, आ-137, 181, 224, 227, 244; सूरा-3, 34, 38, 121; सूरा-4, आ-58, 134, 148; सूरा-5, आ-76; सूरा-6, आ-13, 115।
★ मालिक— सूरा-2, आ-142, 255, 284; सूरा-3, आ-26, 109, 129, 180, 189; सूरा-4, आ-131, 170, 171; सूरा-5, आ-17, 18, 40; सूरा-6, आ-12
★ शाकिर और क़द्रदान— सूरा-2, आ-158; सूरा-4, आ-147, हा-176।
★ हादी व मुज़िल्ल (हिदायत देनेवाला और गुमराह करनेवाला) — सूरा-2, आ-213, 264, 272; सूरा-4, आ-88।
★ फ़रियाद सुननेवाला— सूरा-2, आ-186।
★ फ़ैसला करनेवाला, हिसाब लेनेवाला—
सूरा-2, आ-202; सूरा-4, आ-86, और 141।
★ मुदब्बिर, क़य्यूम, मुन्तज़िम, फ़आल—
सूरा-2, आ-255, हा-278; सूरा-3, आ-2, 26, 54, 109; सूरा-6, आ-95, 96, 99।
★ ऐबों, कमियों और कमज़ोरियों से पाक—
सूरा-2, आ-255; सूरा-4, आ-171; सूरा-6, आ-100
★ बे नियाज़— सूरा-2, आ-263, हा-302, 267; सूरा-3, आ-97, सूरा-4, आ-131; सूरा-6, आ-133, हा-101।
★ बुज़ुर्गी, बरतरी, बुलन्दी बड़ाई—
सूरा-2, आ-255; सूरा-4, आ-34; सूरा-6, आ-100।
★ तमाम ख़ूबियों का जामेअ, लाइक़े-सताइश—
सूरा-1, आ-1, हा-2; सूरा-2, आ-267, हा-308; सूरा-3, आ-131; सूरा-6, आ-1, 45।
★ उसके वादों का अटल होना—
सूरा-3, आ-9; सूरा-4, आ-122।
★ मारने और जिलानेवाला— सूरा-3, आ-156; सूरा-6, आ-6, 36, 95, हा-63, आ-128, 131।
★ इनसाफ़ करनेवाला, ज़ुल्म से पाक—
सूरा-3, आ-182; सूरा-6, आ-114।
★ न उसका कोई मकान है वह हर वक़्त साथ रहता है— सूरा-4, आ-108।
● **सब्त**
★ बनी-इसराईल के लिए उसके अहकाम—
सूरा-2, आ-65, हा-82।
● **सहर**—देखें : जादू।
● सुरक्षा—देखें : इस्लामी क़ानून।
● **सकराते-मौत**
★ ज़ालिमों की हालत सकराते-मौत के आलम में—
सूरा-6, आ-93।
● **सलवा**—देखें : मन्न व सलवा।
● **सुलैमान (अलै.)**
★ उनके बाद इसराईली उम्मत का बिखराव—
सूरा-2, हा-56।
★ उन पर जादूगरी का झूठा इल्ज़ाम—
सूरा-2, आ-102।
● **सुन्नत**
★ दीन के निज़ाम में इसकी अहमियत—
देखें : मुक़द्दिमा।
★ नबी (सल्ल.) की सुन्नत क़ियामत तक के लिए सनद है— सूरा-4, हा-95।
● **सवाउस्सबील**
★ इस इस्तिलाह की मुकम्मल वज़ाहत—सूरा-5, हा-35।
★ यहूदियों का सवाउस्सबील से भटकना—
सूरा-5, आ-60, हा-91।
★ किताबवालों का सवाउस्सबील से भटकना—
सूरा-5, आ-77, हा-101।
● **सूद**
★ 'रिबा' (सूद) लफ़्ज़ की तहक़ीक़—
सूरा-2, हा-315।
★ सूद का हराम होना—
सूरा-2, आ-275 से 279, हा-316 से 323।

★ सूद का अक़्ल के ख़िलाफ़ होना—
सूरा-2, हा-316।
★ सूद का इनसाफ़ के ख़िलाफ़ होना—
सूरा-2, हा-316, हा-317।
★ तिजारत और सूद का फ़र्क़—
सूरा-2, आ-275, हा-317, 318।
★ सूद खानेवाले का हश्र— सूरा-2, हा-316।
★ सूद के रूहानी, मआशी और अख़लाक़ी नुक़सान—
सूरा-2, आ-276, हा-318 से 320; सूरा-3, हा-99।
★ सूद का शरई हुक्म— सूरा-2, आ-275।
★ सदक़ा और सूद का तक़ाबुल— सूरा-2, आ-276।
★ पिछले सूदी मामलों की तंसीख़— सूरा-2, आ-278।
★ सूद फ़ौजदारी जुर्म क़रार दिया जाता है—
सूरा-2, आ-323।
★ रहन में सूद की सूरत— सूरा-2, आ-283।
★ इसके दूर तक पड़नेवालो बुरे असरात—
सूरा-3, आ-130, हा-98।
★ तौरात में इसकी मनाही— सूरा-4, हा-200।

(ह)

● **हब्ते-आमाल** (कर्मों का विनष्ट हो जाना)
★ इर्तिदाद (धर्म से फिर जाने) का लाज़िमी नतीजा—
सूरा-2, आ-217।
★ दिखावे के ख़र्च का नतीजा— सूरा-2, आ-264।
★ नबियों और मुसलेहीन (सुधारवादियों) के क़त्ल का नतीजा— सूरा-3, आ-21 और 22।
★ कुफ़्र का लाज़िमी नतीजा— सूरा-3, आ-116।
★ इसकी वजह क्या है?— सूरा-3, हा-91।
★ ईमान की रविश पर चलने से इनकार का नतीजा—
सूरा-5, आ-5।
★ निफ़ाक़ (कपटाचार) का नतीजा—
सूरा-5, आ-53, हा-86।
★ शिर्क का नतीजा— सूरा-6, आ-88, हा-56।
● **हबलुल्लाह** (अल्लाह की रस्सी)
★ हबलुल्लाह का मफ़हूम— सूरा-3, आ-103, हा-83।
● **हज**
★ हज और उमरे की नियत को पूरा किया जाए—
सूरा-2, आ-196, हा-209।
★ हाजी क़ुरबानी से पहले बाल न कटवाए—
सूरा-2, आ-196, हा-210।
★ हज को जाते हुए 'घिर जाने' और 'अम्न नसीब हो जाने' का मफ़हूम—
सूरा-2, आ-196, हा-209 और 212।
★ क़ुरबानी मुयस्सर न होने की सूरत में हाजी रोज़े रखे— सूरा-2, आ-196, हा-211।
★ इहराम की हालत की पाबन्दियाँ— सूरा-2, आ-197, हा-214 और 215; सूरा-5, आ-1, हा-3।
★ हज में इस्लामी अख़लाक़ियात की अमली तरबियत—
सूरा-2, आ-197, हा-214 से 217।
★ हज के सफ़र में माल कमाने की इजाज़त—
सूरा-2, आ-198, हा-218।
★ 'तक़वा' को ज़ादे-राह बनाने की ताकीद—
सूरा-2, आ-197, हा-217।
★ मशअरे-हराम (मुज़दलफ़ा) के आदाब—
सूरा-2, आ-198।
★ हज के मनासिक में क़ुरैश की तरमीमात—
सूरा-2, हा-220, हा-221।
★ मक्का से अरफ़ात और अरफ़ात से मुज़दल्फ़ा आना-जाना— सूरा-2, हा-220।
★ अल्लाह के ज़िक्र का हुक्म— सूरा-2, आ-200।
★ तशरीक़ के दिनों में मिना से मक्का की तरफ़ वापसी में तक़दीम व ताख़ीर (कुछ कामों को पहले करने और कुछ को बाद में करने) की इजाज़त—
सूरा-2, आ-203, हा-222।
★ हज लोगों पर अल्लाह का हक़ है— सूरा-3, आ-97।
★ हज के फ़र्ज़ होने के लिए इस्तिताअत (सामर्थ्य) शर्त है— सूरा-3, आ-97।
★ हज पर आनेवालों को काबा से न रोका जाए—
सूरा-5, आ-2, हा-8।
● **हुदूदुल्लाह** (अल्लाह की हदें)
★ हुदूदुल्लाह के बारे में बहुत ही एहतियात की ज़रूरत है— सूरा-2, आ-187, हा-196।
★ उनकी पाबन्दी वही कर सकते हैं जो उनको तोड़ने के बुरे अंजाम का शुऊर रखते हों—
सूरा-2, आ-230।
★ हद से आगे न निकलने का मफ़हूम—
सूरा-5, हा-105।
● **हुदैबिया**
★ वे हालात जिन में सूरा-अल-माइदा नाज़िल हुई—
देखें : परिचय सूरा-5, अल-माइदा, शाने-नुज़ूल।
★ मुसलमानों के लिए सुलह हुदैबिया (हुदैबिया की सन्धि) के दूररस अच्छे असरात—
देखें : परिचय, सूरा-5, अल-माइदा (शाने-नुज़ूल)।

● **हुरूफ़े-मुक़त्तआत**— सूरा-2, हा-1।
● **हिज़बुल्लाह** (अल्लाह की जमाअत)
★ हिज़बुल्लाह कैसे लोगों से मिलकर बनती है— सूरा-5, आ-56।
★ आख़िरकार यही ग़ालिब होनेवाला गरोह है— सूरा-5, आ-56।
● **हक़**
★ इनसानी ज़िन्दगी में हक़ और बातिल की कश-मकश सूरा-5, आ-35, हा-59।
★ हक़ को रद्द करके इनसान अपनी ही तबाही का सामान करता है— सूरा-6, आ-26।
★ हक़ की दावत पर कैसे लोग लब्बैक कहते हैं— सूरा-6, आ-36।
★ ज़मीन और आसमान को हक़ के साथ पैदा करने का मतलब— सूरा-6, हा-46
● **हुक़ूक़ुल-इबाद** (इनसानों के हक़)
★ वालिदैन (माँ-बाप)— सूरा-2, आ-83, आ-215; सूरा-4, आ-36; सूरा-6, आ-151, हा-129।
★ ज़विल-क़ुरबा (रिश्तेदार)— सूरा-2, आ-83, 177, 215, सूरा-4, आ-36, 220, सूरा-4, आ-2, 3, 36, 127, सूरा-6, आ-152, हा-132।
★ यतीम— सूरा-2, आ-83, आ, 177, आ-215; सूरा-4, आ-215 आ-220, सूरा-4, आ-2, 3, 36, 127, सूरा-6, आ-152, हा-132।
★ मसाकीन— सूरा-2, आ-83, आ-177, आ-215, सूरा-4, आ-36।
★ मुसाफ़िर— सूरा-2, आ-177, आ-215, सूरा-4, आ-36।
★ अहले-हाजत (ज़रूरतमन्द)— सूरा-2, आ-177।
★ हमसाया (पड़ोसी)— सूरा-4, आ-36।
★ एहतिरामे-मिलकियत— सूरा-2, हा-197।
★ माली मदद हासिल करने का हक़—सूरा-2, आ-214।
★ बन्दों के हक़ों का एहतिराम वही लोग कर सकते हैं, जो तक़वावाले हों— सूरा-2, आ-241।
★ लौण्डी-ग़ुलाम— सूरा-4, आ-36।
● **हुक़ूक़ुल्लाह** (अल्लाह के हक़)
★ अल्लाह के हक़ों मे मुदाख़िलत (हस्तक्षेप) करने के मानी— सूरा-2, आ-165, हा-163।
★ हज अल्लाह के हक़ों में से है— सूरा-3, आ-97
★ हुक़ूक़ुल्लाह इनसान पर फ़ितरी तौर पर लागू होते हैं — सूरा-6, हा-134।
● **हिकमत**
★ शैतान के हथकण्डों से बचने का ज़रीआ है— सूरा-2, आ-268, हा-309।
★ अल्लाह की एक नेमत— सूरा-2, आ-231 हा-255; आ-269, हा-209; सूरा-4, आ-54, हा-86।
★ तमाम नबियों को दी जाती है— सूरा-3, आ-81।
★ दाऊद (अलै.) को दी जाती है— सूरा-2, आ-251।
★ ईसा (अलै.) को दी जाती है— सूरा-3, आ-48; सूरा-5, आ-110।
★ नबी (सल्ल.) को दी जाती है— सूरा-4, आ-113।
★ नबी (सल्ल.) हिकमत की तालीम देने के लिए भेजे गए— सूरा-2, आ-129, 151; सूरा-3, आ-164।
● **हिकमते-तबलीग़**—
★ अल्लाह की फ़रमाँबरदारी के सवाल पर आख़िर झगड़ा कैसा?— सूरा-2, आ-139, हा-138।
★ किताबवालों को क़ुरआन की दावते-इस्लाम— सूरा-3, आ-20।
★ तबलीग़ में मुबाहले का मक़ाम— सूरा-3, आ-55।
★ तौहीद के अक़ीदे पर बुलाने का तरीक़ा— सूरा-3, आ-64।
★ किताबवालों को तौहीद की दावत— सूरा-3, आ-65।
★ तबलीग़ में 'क़ौले-बलीग़' (शिष्ट बात) की अहमियत — सूरा-4, आ-63।
★ रसूलुल्लाह (सल्ल.) का बादशाहों को ख़तों के ज़रीए इस्लाम की दावत देना— देखें : परिचय, सूरा-5, अल-माइदा : शाने-नुज़ूल।
★ इस्लाम की दावत देने के लिए ख़ुतूत— देखें : परिचय, सूरा-5, अल-माइदा : शाने-नुज़ूल।
★ अशरार (फ़ितनों) से बचना— सूरा-6, आ-68।
★ मुनाज़िरों से बचना— सूरा-6, आ-68, 69, हा-45।
★ हक़ के तालिबों पर तवज्जोह— सूरा-6, आ-69, हा-45।
★ तबलीग़ कोई पेशेवराना काम नहीं— सूरा-6, आ-90।
★ मुबल्लिग़ की दुनियवी फ़ायदों से बेनियाज़ी— सूरा-6, आ-90।
★ दाई (आह्वानकर्ता) और मुबल्लिग़ (प्रचारक) का मंसब (पद) और उसकी ज़िम्मेदारियों की हद— सूरा-6, आ-106 से 108, हा-71 और 72।
★ बहस व मुनाज़रे में जोशीलेपन से बचने की हिदायत — सूरा-6, हा-72।

● **हलाल व हराम**
★ हलाल व पाक चीज़ें खाने का हुक्म— सूरा-2, आ-168।
★ पाक चीज़ें बे तकल्लुफ़ खाओ— सूरा-2, आ-172, हा-170।
★ हराम चीज़ों के खाने के बारे में इजाज़त की तीन शर्तें— सूरा-2, आ-173।
★ धाँधली से हासिल किए हुए मालों का हराम होना— सूरा-2, आ-188।
★ बनी-इसराईल के लिए खाने की कुछ चीज़ें ख़ास तौर से हराम की गई थीं— सूरा-3, आ-93; सूरा-6, हा-122।
★ यहूदियों के लिए सज़ा के तौर पर कुछ पाक चीज़ों का हराम किया जाना— सूरा-4, आ-161।
★ चरनेवाले चौपायों का हलाल किया जाना— सूरा-5, आ-1, हा-2।
★ हलाल और हराम के पूरे इख़्तियारात अल्लाह के हाथ में हैं— सूरा-5, हा-4 आ-87, हा-104।
★ मुर्दार, ख़ून और सूअर के गोश्त का हराम किया जाना— सूरा-5, आ-3।
★ हादसे से मर जानेवाले जानवर मुर्दार होने की वजह से हराम हैं— सूरा-5, आ-3, हा-11।
★ ज़ब्ह की अहमियत— सूरा-5, हा-11।
★ 'ज़कात' का इस्तिलाही (पारिभाषिक) मफ़हूम— सूरा-5, हा-11।
★ ख़ुदा के सिवा किसी और के नाम पर ज़ब्ह होनेवाले जानवरों का हराम किया जाना— सूरा-5, आ-3, हा-10; सूरा-6, आ-119, हा-84, आ-121।
★ खाने-पीने की चीज़ों को हराम करने की वजहें तिब्बी (Medical) नहीं, बल्कि अख़लाक़ी और एतिक़ादी हैं— सूरा-5, हा-13।
★ हराम और हलाल के मामले में क़ुरआन का नज़रिया — सूरा-5, आ-4, हा-18।
★ शिकार के क़ायदे— सूरा-5, आ-4, हा-19।
★ हलाल के साथ 'पाक' की क़ैद का मक़सद— सूरा-5, हा-18।
★ किताबवालों के ज़ब्ह किए हुए को खाना हलाल है— सूरा-5, आ-5, हा-21।
★ हलाल चीज़ों को हराम करने की मनाही— सूरा-5, आ-87, हा-104।
★ शराब के क़तई हराम होने का हुक्म— सूरा-5, आ-90, हा-109।
★ समुद्री शिकार का हलाल होना— सूरा-5, आ-96, हा-112।
★ पाक और नापाक बराबर नहीं हैं— सूरा-5, आ-100, हा-115।
★ ज़ब्ह के लिए अल्लाह का नाम लेने की अहमियत— सूरा-6, आ-118, हा-84।
★ लोगों के ख़ुद से हलाल और हराम कर लेने की कोई हैसियत नहीं— सूरा-6, आ-119, हा-84।
★ लोगों की ख़ुद गढ़ी हुई मज़हबी पाबन्दियाँ अल्लाह पर झूठ गढ़ने की तारीफ़ (परिभाषा) में हैं— सूरा-6, आ-138।
★ अरबवालों के यहाँ हलाल व हराम के मुशरिकाना तौहमपरस्ताना तसव्वुर (अन्धविश्वासपूर्ण धारणाएँ)— सूरा-6, आ-139, हा-114।
★ अल्लाह की शरीअत में बुनियादी तौर पर हराम चीज़ें मुर्दार, ख़ून, सूअर का गोश्त और एसे ज़बीहे हैं, जिनपर अल्लाह का नाम न लिया गया हो— सूरा-6, आ-145, हा-121।
★ हलाल और हराम के बारे में इस्लाम के फ़क़ीहों के इख़्तिलाफ़— सूरा-6, हा-121।
★ मुहम्मद (सल्ल.) की शरीअत और यहूदी फ़िक़्ह में हलाल व हराम के हुक्मों का फ़र्क़ क्यों?— सूरा-6, हा-122।
★ फिटकार के तौर पर ख़ुदाई तहरीम की एक ख़ास सूरत— सूरा-6, आ-148।
● **हम्द (प्रशंसा)**
★ हम्द के मानी— सूरा-1, हा-2।
★ अल्लाह ही इसका मुस्तहिक़ क्यों?— सूरा-1, हा-2।
● **हव्वा**
★ आप (अलै.) की पैदाइश के बारे में बाइबल का बयान— सूरा-4, हा-1।
● **हवारी**
★ इस लफ़्ज़ के सही मानी— सूरा-3, हा-49।
★ हवारियों का दीन इस्लाम ही था— सूरा-3, आ-52।
★ ईसा (अलै.) पर हवारियों का ईमान लाना— सूरा-5, आ-111, हा-127।
★ ईसा (अलै.) के हवारियों का आसमानी ख़्वान की ख़ाहिश करना— सूरा-5, आ-112।
● **हयात बादे-मौत** (मौत के बाद की ज़िन्दगी)

★ अल्लाह की तरफ़ से मोजिज़े के तौर पर इसका मुज़ाहिरा— सूरा-2, आ-259।
★ हज़रत इबराहीम (अलै.) की दरख़ास्त पर चार परिन्दों को ज़िन्दा करने का वाक़िआ— सूरा-2, आ-260।
★ ख़ुदा की राह में जान देनेवालों के लिए ख़ुशख़बरी— सूरा-3, आ-157।
★ अल्लाह की राह में शहीदों के लिए बेहतरीन ज़िन्दगी की ख़ुशख़बरी— सूरा-3, आ-169।
★ ख़ुदा की पेशी में सब लोगों को घेरकर हाज़िर किया जाएगा— सूरा-6, आ-12, 128।
★ क़ियामत के दिन अल्लाह तमाम इनसानों को ज़रूर जमा करेगा— सूरा-6, आ-12।
★ मौत के बाद की ज़िन्दगी की मिसाल रात को सोकर सुबह जागने की-सी है— सूरा-6, आ-60।
★ तमाम इनसान फिर से ज़िन्दा किए जाएँगे— सूरा-6, हा-102।
★ हारूत व मारूत— सूरा-2, आ-102।

● **हिजरत**

★ मदीना के दारुल-इस्लाम में आम मुसलमानों को हिजरत करके आ जाने का हुक्म— परिचय सूरा-4।
★ इससे बाज़ रहनेवालों पर निफ़ाक़ का हुक्म लागू होना— सूरा-4, हा-116।
★ हिजरत करके मदीना न आ जानेवाले मुनाफ़िक़ों के लिए हुक्म— सूरा-4, हा-116।
★ दारुल-कुफ़्र के मुसलमानों पर किन हालात में हिजरत वाजिब होती है— सूरा-4, आ-97, हा-116 और 130।
★ जहाँ अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ जीना मुमकिन न हो वहाँ से हिजरत करने का मुतालबा— सूरा-4, आ-97, हा-130।
★ 'फ़त्‌ह के बाद कोई हिजरत नहीं' का मफ़हूम समझने में एक ग़लतफ़हमी— सूरा-4, हा-131।

● **हिदायत**

★ अल्लाह किस क़िस्म के लोगों को हिदायत से महरूम करता है?— सूरा-2, आ-6, 7, 16, 20, 258, हा-10; सूरा-3, आ-85; सूरा-4, आ-115; सूरा-5, आ-51,108; सूरा-6, आ-144।
★ इनसान के लिए सीधा रास्ता मालूम करने की सिर्फ़ दो सूरतें— सूरा-2, हा-55।
★ सिर्फ़ अल्लाह की रहनुमाई ही हिदायत है— सूरा-2, आ-120; सूरा-3, आ-4; सूरा-6, आ-71, 88
★ अल्लाह की हिदायत से मुँह मोड़ने का अंजाम— सूरा-2, आ-121।
★ हिदायतयाफ़्ता होने का मेयार यहूदियत और ईसाइयत की मनघड़न्त मज़हबी ख़ुसूसियतें नहीं हैं— सूरा-2, हा-135।
★ हिदायत का दारोमदार आलमगीर सिराते-मुस्तक़ीम के इख़्तियार करने पर है— सूरा-2, आ-136, हा-135।
★ कौन लोग हिदायतयाफ़्ता हैं?— सूरा-2, आ-157।
★ यह नबियों पर ईमान लाने से मिलती है— सूरा-2, आ-213।
★ हिदायत अल्लाह की देन है — सूरा-3, आ-73; सूरा-6, आ-39, हा-27; सूरा-6, आ-77।
★ सीधी राह पाने की शर्तें— सूरा-3, आ-101।
★ गुमराह लोग दूसरों को भी गुमराह करना चाहते हैं— सूरा-4, आ-44।
★ हिदायत के लिए नसीहत क़बूल करना और यकसू होना ज़रूरी है— सूरा-4, आ-64, हा-94।
★ हिदायत से महरूमी बुराइयों की वजह से होती है— सूरा-4, आ-88, हा-117।
★ जिसे अल्लाह हिदायत से महरूम कर दे उसे कोई हिदायत नहीं दे सकता— सूरा-4, आ-88 और 143।
★ हिदायत और गुमराही की तौफ़ीक़ का क़ानून— सूरा-4, आ-173; सूरा-6, आ-39 और 125, हा-27 और 28।
★ अल्लाह ने बनी-इसराईल के दिलों पर उनकी बातिल परस्ती की वजह से ठप्पा लगाया— सूरा-4, आ-155।
★ कुफ़्र और अल्लाह के रास्ते से रोकने का नतीजा इन्तिहाई गुमराही— सूरा-4, आ-167।
★ कुफ़्र और ज़ुल्म करनेवालों को अल्लाह जहन्नम के रास्ते के सिवा और किसी तरफ़ रहनुमाई नहीं करता—सूरा-4, आ-168, 169।
★ अल्लाह सीधे रास्ते की तरफ़ कैसे लोगों की रहनुमाई करता है— सूरा-4, 125 ।
★ अल्लाह की रिज़ा चाहनेवालों के लिए क़ुरआन हिदायत का ज़रीआ है— सूरा-5, आ-16।
★ दिलों पर अल्लाह की तरफ़ से परदे डाले जाने का मफ़हूम— सूरा-6, 25 और 44, हा-17 और 30।
★ अल्लाह ज़बरदस्ती हिदायत नहीं देता— सूरा-6, आ-35।
★ हक़ की दावत पर कैसे लोग लब्बैक कहते हैं— सूरा-6, आ-36।

★ हक़ की दावत से मुर्दा ज़मीर लोगों की बे नसीबी — सूरा-6, आ-36।
★ इनसान के हिदायत क़बूल करने में शैतान की रुकावटें— सूरा-6, आ-43।
★ उसको हासिल करने के लिए अपनी आँख की रौशनी ही काम दे सकती है— सूरा-6, आ-104।
★ उसके क़बूल करने या रद्द करने में आदमी का अपना ही फ़ायदा या नुक़सान है— सूरा-6, आ-104।
★ अल्लाह की मर्ज़ी यह नहीं है कि लोगों को ज़बरदस्ती हिदायत पर पैदा किया जाता— सूरा-6, आ-107, हा-71।
★ हिदायत का दारोमदार मोजिज़ों पर नहीं है— सूरा-6, आ-111।
★ अल्लाह तकवीनी (नैसर्गिक) मुदाख़िलत करके किसी को मोमिन नहीं बनाता— सूरा-6, आ-111, 112, 114, 149, हा-125।
★ जिसे अल्लाह हिदायत देना चाहता है उसका सीना इस्लाम के लिए खोल देता है— सूरा-6, आ-125।
● **हलाकत—**
★ इस लफ़्ज़ का मानीख़ेज़ इस्तेमाल सूरा-6, हा-108।
● **हैज़** (माहवारी)— देखें : तहारत और पाकीज़गी।

☆☆☆

क़ुरआन से मुताल्लिक़ इस्तिलाही अलफ़ाज़ (पारिभाषिक शब्द)

अनसार — यह नासिर की जमा (बहुवचन) है। नासिर का मानी है मदद करनेवाला। इस तरह अनसार के माने हुए मदद करनेवाले। इस्लाम में अनसार मदीना के रहनेवाले उन मुसलमानों को कहा गया है, जिन्होंने अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* को और आप *(सल्ल.)* के साथियों को मक्का से हिजरत करके मदीना पहुँचने पर अपने घरों में ठहराया था और उनकी हर तरह से मदद की थी।

अज़ाब — अज़ाब के माने हैं दुख, यातना। अल्लाह उन लोगों को जो उसकी नाफ़रमानी करते हैं और अल्लाह के हुक्मों को नहीं मानते दुनिया और आख़िरत में अज़ाब देगा।

आख़िरत का दिन — इससे मुराद वह दिन है जब अल्लाह लोगों के आमाल (कर्मों) का हिसाब-किताब करेगा और उनके आमाल के हिसाब से उन्हें जज़ा या सज़ा देगा। क़ुरआन में इसके लिए 'यौमुलआख़िर', 'यौमुलजज़ा', 'यौमुलक़ियामह' और 'यौमुद्दीन' जैसे अलफ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं।

अरफ़ात — इसका असल नाम 'अर्फ़ा' है, लेकिन अरफ़ात के नाम से जाना जाता है। यह मक्का शहर से पूरब की तरफ़ ताइफ़ के रास्ते पर वाक़ेअ (स्थित) एक बहुत बड़ा और वसीअ मैदान है। मक्का शहर से इसकी दूरी 13 मील (यानी लगभग 21 किलोमीटर) और मिना से 9 मील (यानी किलोमीटर 14.48) है। इस मैदान की चौड़ाई 4 मील (यानी 6·4 किलोमीटर) और लम्बाई 8 मील (यानी 12·8 किलोमीटर) है। यह उत्तर जानिब एक पहाड़ी 'जबले-अर्फ़ा' से घिरा हुआ है।

यही वह मैदान है जहाँ हज करनेवाले हर हाजी को अरबी महीने ज़िलहिज्जा की 9वीं तारीख़ को सूरज ढलना (ज़वाल) शुरू होने से लेकर शाम सूरज के डूबने तक ठहरना ज़रूरी है। कोई शख़्स जो हज के लिए गया होता है, इस तारीख़ और इस वक़्त में न पहुँच सके तो उसका हज नहीं होगा। यही वजह है कि इस्लाम के कुछ आलिमों का मानना है कि हज असल में 9वीं ज़िलहिज्जा को इस मैदान में मौजूद होने का ही नाम है।

अर-रसवाले — यह एक पुराने ज़माने की क़ौम का नाम है जिसका ज़िक्र क़ुरआन मजीद में 'आद' और 'समूद' क़ौमों के साथ हुआ है। एक जगह पर अर-रसवालों के साथ हज़रत नूह (अलै.) की क़ौम का भी ज़िक्र हुआ है। कुछ आलिम कहते हैं कि 'अर-रस' किसी ख़ास जगह का नाम है। यूँ अरबी में 'अर-रस' पुराने कुएँ या अन्धे कुएँ को कहते हैं।

अर्श — तख़्त, अल्लाह का तख़्त या सिंहासन। अल्लाह के तख़्त पर बैठा होने का एक वाज़ेह और साफ़ मतलब यह है कि उसने पूरी कायनात के निज़ाम और हुकूमत की बागडोर को अपने हाथों में ले रखी है।

अल-आराफ़— इससे मुराद ख़ास ऊँची जगहें हैं, जिनपर अल्लाह के ख़ास बन्दे बैठे होंगे।

अल्लाह — ईश्वर, ख़ुदा। अल्लाह लफ़्ज़ असल में 'अल-इलाह' था, जो बदल कर अल्लाह हो गया। 'अल' अरबी भाषा में उसी तरह इस्तेमाल होता है जैसे अंग्रेज़ी में किसी लफ़्ज़ से पहले Theलगाकर उसे ख़ुसूसियत दी जाती है। इस तरह अल्लाह से मुराद एक ख़ास इलाह या पूज्य हुआ। अल्लाह शुरू से ही उसी एक हस्ती का नाम रहा है, जिसके अन्दर तमाम सिफ़ात पाई जाती हैं और जो पूरी कायनात का पैदा करनेवाला, मालिक और रब (पालनहार) है।

लुग़वी एतिबार (धात्वर्थ की दृष्टि) से 'इलाह' उसे कहा जाएगा जो अज़ीम (सर्वोच्च) और ग़ैब में

(अमूर्त) हो, हमारी आँखें जिसे पाने में नाकाम रहें, पूरी तरह से जिसका हम तसव्वुर भी न कर सकें, जो इनसान का अमीन (शरणदाता) हो और जिसकी तरफ़ वह पूरी चाहत के साथ लपक सके, जिसे वह मुसीबत में पुकार सके, जो अमन दे सकता हो, जो अपने बन्दों की तरफ़ मुहब्बत से बढ़ता हो और जिसकी तरफ़ बन्दे भी मुहब्बत के साथ बढ़ सकें, जो इनसान का महबूब और मक़सूद (अभीष्ट) हो, जिसे वह अपना माबूद और पूज्य बना सके। ये सारी ख़ूबियाँ सिर्फ़ एक अल्लाह ही में पाई जाती हैं। इसलिए हक़ीक़त में वही अकेला 'इलाह' और माबूद है।

इबरानी भाषा में भी 'ईल' लफ़्ज़ अल्लाह के लिए इस्तेमाल हुआ है। जैसे— इसराईल, जिसके मानी होते हैं 'अल्लाह का बन्दा'।

अल-हिज्र — यह समूद जाति का मरकज़ी (केन्द्रीय) शहर था। मदीना से तबूक जाते हुए रास्ते में यह शहर पड़ता है। इस शहर के खण्डहर आज भी मिलते हैं।

अस्र — (1) दिन का चौथा पहर। (2) इसी लिए वह नमाज़ जो थोड़ा दिन रहने पर पढ़ी जाती है उसे अस्र की नमाज़ कहते हैं। इसका वक़्त दिन डूबने तक रहता है।

अरबी में 'अस्र' असल में 'काल' या वक़्त को कहते हैं। इसमें वक़्त के तेज़ी से बीतने की तरफ़ इशारा होता है। यह लफ़्ज़ अक्सर बीते हुए समय के लिए इस्तेमाल होता है। इसी लिए दिन के आख़िरी हिस्से को, जब दिन गुज़रकर मानो बिल्कुल निचुड़ जाता है उसे अस्र कहते हैं।

आख़िरत — मरने के बाद की ज़िन्दगी। क़ुरआन के मुताबिक़ इस दुनिया का वक़्त महदूद है। एक वक़्त आएगा जबकि इस कायनात का निज़ाम दरहम-बरहम हो जाएगा। फिर अल्लाह एक नई दुनिया क़ायम करेगा, जिसके क़ानून इस दुनिया के क़ानूनों से बिल्कुल अलग और मुख़्तलिफ़ होंगे। जो कुछ आज छिपा हुआ है, उस दुनिया में ज़ाहिर हो जाएगा। दुनिया में जो कुछ लोगों ने भला-बुरा किया होगा, वह उनके सामने आ जाएगा। अल्लाह के फ़रमाँबरदार बन्दों का ठिकाना जन्नत होगा और नाफ़रमानों को जहन्नम में डाल दिया जाएगा।

आद — यह अरब की क़दीम (प्राचीन) क़ौम का नाम है। अरबी की क़दीम शायरी में इस क़ौम का बहुत ज़िक्र मिलता है। जिस तरह इसकी इज़्ज़त बढ़ी हुई थी, उसी तरह दुनिया से इसका मिट जाना भी एक मिसाल बनकर रह गया।

यह क़ौम 'अहक़ाफ़' इलाक़े में बसती थी जो हिजाज़, यमन और यमामा के बीच पड़ता है। आजकल यह ग़ैर-आबाद है। हज़रत नूह (अलै॰) की क़ौम के हलाक होने के बाद यही क़ौम हर तरह से उसकी वारिस थी। इस क़ौम के लोग ऊँचे-ऊँचे सुतूनोंवाली इमारतें बनवाते थे। इनके यहाँ हज़रत हूद (अलै॰) को पैग़म्बर बनाकर भेजा गया था, लेकिन बदक़िस्मती से यह क़ौम सीधी राह पर न आ सकी और हलाक होकर रही।

आयत — निशानी, इशारा वग़ैरह। क़ुरआन में 'आयत' लफ़्ज़ तीन मानों में इस्तेमाल हुआ है—

(1) फ़ितरी निशानियों, हक़ीक़तों और तारीख़ी वाक़िआत को भी आयत कहा गया है, क्योंकि इनसे हमें उन सच्चाइयों का पता मिलता है जो इस माद्दी (भौतिक) दुनिया के पीछे काम कर रही हैं।

(2) वे मोजिज़े जिन्हें अल्लाह के पैग़म्बर अपने नबी होने की दलील के तौर पर लोगों को दिखाते थे।

(3) क़ुरआन के जुमले या वाक्य को भी आयत कहा गया है। क़ुरआन के जुमलों में जो ख़ूबी पाई जाती है वह इस बात की दलील है कि क़ुरआन अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल हुआ है और वह अल्लाह का कलाम है। आयत और दलील (प्रमाण) में फ़र्क़ है। दलील असल में आयत पर ही मुनहसिर होती है।

इनजील — यह यूनानी लफ़्ज़ है। इसके मानी हैं — ख़ुशख़बरी। हज़रत ईसा (अलै॰) आसमानी बादशाहत या अल्लाह की बादशाहत की ख़ुशख़बरी देते थे। ईसाइयों के अक़ीदे के मुताबिक़ इसी लिए ईसा पर नाज़िल होनेवाली किताब को इनजील कहा जाता है। लेकिन मुसलमानों के अक़ीदे के मुताबिक़

इनजील इसलिए ख़ुशख़बरी है कि उसमें हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के आने की ख़बर दी गई है और ख़ुदा की बादशाहत का ताल्लुक़ भी असल में उनके आने से ही है।

इद्दत — इसका मतलब है गिनती, अवधि। इस्लामी इस्तिलाह में इद्दत उस वक़्त को कहते हैं जिसके दौरान में तलाक़ पाई हुई औरत दूसरा निकाह नहीं कर सकती यानी इद्दत पूरी होने के बाद ही तलाक़शुदा औरत दूसरा निकाह कर सकती है।

इबलीस — इसका मतलब है बहुत मायूस और निराश या दुख में डूबा हुआ या इनकार करनेवाला। यह उस जिन्न का दूसरा नाम है जिसने अल्लाह के हुक्म की नाफ़रमानी करके हज़रत आदम (अलै॰) के आगे झुकने से इनकार कर दिया था और फिर यह तय किया कि वह आदम की औलाद को सीधे रास्ते से हटाने और भटकाने की कोशिश करता रहेगा।

इबादत — इसका मतलब है ग़ुलामी, नर्मी, किसी के आगे बिछ जाना या किसी के सामने पूरी तरह से झुक जाना।

इबादत में मुहब्बत और लगाव के माना भी शामिल हैं। इबादत का ताल्लुक़ इनसान की पूरी ज़िन्दगी से है। इसलिए इबादत के मानी जहाँ पूजा और इबादत के होते हैं वहीं यह लफ़्ज़ बन्दगी, ग़ुलामी और फ़रमाँबरदारी के माने में भी इस्तेमाल होता है।

इलाह — माबूद, पूज्य, ख़ुदा, ईश्वर (देखें : अल्लाह)।

इशा — इसका मतलब है रात का अँधेरा, रात का पहला पहर। इसी लिए वह नमाज़ जो सूरज छिप जाने के बाद मग़रिब (पश्चिम) की लाली ख़त्म होने के बाद पढ़ी जाती है उसे इशा की नमाज़ कहा जाता है। इसका वक़्त सुबह सादिक़ से पहले तक रहता है। लेकिन बेहतर यही है कि यह नमाज़ रात के पहले पहर में अदा कर ली जाए।

इस्लाम — इस लफ़्ज़ के माने हैं फ़रमाँबरदारी, हुक्म मानना, अपनी मर्ज़ी से ग़ुलामी क़बूल करना, ख़ुद-सिपुर्दगी, सलामती वग़ैरह। अल्लाह के आगे अपने आपको डाल देने और उसकी फ़रमाँबरदारी करने ही का दूसरा नाम इस्लाम है।

इस्लाम का दूसरा मतलब सुलह, सलामती, शान्ति, मुहाफ़िज़त (संरक्षण), अमन वग़ैरह भी हैं। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा है, "इस्लाम अपना लो, (तबाही से) बच जाओगे।" आप (सल्ल॰) ने यह भी कहा, "जो शख़्स भी इस (इस्लाम) में आया, सलामत (सुरक्षित) रहा।"

इहराम — हज या उमरा करनेवाले मक्का शहर पहुँचने से पहले एक तयशुदा दूरी पर ग़ुस्ल करके एक ख़ास क़िस्म का फ़क़ीराना लिबास पहनते हैं और तलबिया (एक तरह की दुआ) कहते हैं। यही इहराम है। इस लिबास में सिर्फ़ एक तहमद (बिना सिली हुई लुंगी) और एक चादर होती है जिसको ऊपर से ओढ़ लेते हैं। औरतों के लिए इहराम सिला हुआ लिबास ही है। इस लिबास के पहनने के बाद बहुत-सी चीज़ें आदमी पर हराम हो जाती हैं, जो आम हालतों में हराम नहीं होतीं। जैसे— ख़ुशबू का इस्तेमाल, बाल कटवाना, बनना-सँवरना (शृंगार) और सोहबत (पति-पत्नी प्रसंग) वग़ैरह। इन चीज़ों के हराम होने ही के कारण इस लिबास को इहराम कहा जाता है। इहराम की हालत में यह पाबन्दी भी है कि किसी जानवर का का क़त्ल न जाए और न किसी जानवर का शिकार किया जाए और न ही किसी शिकारी को शिकार का पता बताया जाए।

ईमान — यक़ीन, आस्था, मानना। ईमान असल में तसदीक़ करने और मानने को कहते हैं। इसका मुतज़ाद (विलोम) है कुफ़्र, जिसके माना हैं झुठलाना, इनकार करना, क़बूल न करना, हठधर्मी करना। इस्लाम में ईमान एक वसीअ मफ़हूम (व्यापक अर्थ) रखता है।

ईमान लाना — मानना, यक़ीन करना, क़बूल करना। इस्लामी इस्तिलाह में उन बातों को पूरे यक़ीन के साथ मानना जो इस्लाम ने पेश की हैं। जैसे— अल्लाह पर ईमान, उसके नबियों पर ईमान, आसमानी किताबों पर ईमान, आख़िरत पर ईमान वग़ैरह।

ईसाई — ईसा (अलै॰) को मानने का दावा करनेवाले लोग।

उमरा – तामीर करना, आबादी। इस्लामी इस्तिलाह में उमरा भी हज की तरह एक इबादत है जो काबा की ज़ियारत (दर्शन) के साथ की जाती है। हज और उमरा में फ़र्क़ है। हज उसपर फ़र्ज़ होता है जिसके अन्दर इस्तिताअत (सामर्थ्य) हो; लेकिन उमरा फ़र्ज़ नहीं। हज का वक़्त तय है, लेकिन उमरा किसी भी वक़्त किया जा सकता है; हज इज्तिमाई तौर पर करना होता है, लेकिन उमरा अकेले भी किया जा सकता है। उमरा में हज की कुछ रस्मों को अदा करना पड़ता है।

उम्मी – जो शख़्स या क़ौम अनपढ़ हो, जिस क़ौम के पास कोई आसमानी किताब न हो।

एतिकाफ़ – इसका लुग़वी (शाब्दिक) माना तो अपने आपको किसी चीज़ से जोड़े रखने के हैं। लेकिन इस्लामी शरीअत में एतिकाफ़ "नीयत के साथ मसजिद में रुके रहने या घर में नमाज़ की जगह सबसे कटकर ठहरे रहने" को कहते हैं। इसका मतलब 'गोशानशीनी' या 'एकान्तवास' भी ले सकते हैं। लेकिन इसमें भी अल्लाह की याद का होना लाज़िमी है।

रमज़ान के आख़िरी दस दिनों में रमज़ान की इक्कीसवीं रात से लेकर ईद का चाँद दिखने तक एतिकाफ़ करना 'सुन्नते-मुअक्कदा-ए-किफ़ाया' है यानर किसी बस्ती या मुहल्ले में मसजिद और मुसलमान हों और यह एतिकाफ़ न किया गया तो सारे के सारे मुसलमान गुनहगार होंगे और यदि एक शख़्स ने भी एतिकाफ़ कर लिया तो वह सब की तरफ़ से अदा हो जाएगा।

मसजिद में एतिकाफ़ करना सिर्फ़ मर्दों के लिए जाइज़ है। औरतों के लिए उनके घर, जहाँ वे अपनी नमाज़ें अदा करती हैं, को भी जाइज़ माना गया है यानी औरतें घर में ही एतिकाफ़ कर सकती हैं।

एतिकाफ़ की हालत में आदमी को एतिकाफ़ की जगह (मसजिद या घर) से बिना ज़रूरत बाहर निकलना हराम है। अगर मसजिद में पेशाब-पाख़ाने वग़ैरह का इन्तिज़ाम नहीं है तो वह बाहर निकल सकता है। उनसे फ़ारिग़ होने के बाद फ़ौरन वापस होना शर्त है। इसी तरह यदि वह ऐसी मसजिद में है जिसमें जुमा की नमाज़ नहीं होती है, तो जुमे की नमाज़ के लिए भी वह जामा मसजिद जा सकता है। यदि खाने का इन्तिज़ाम मसजिद में न हो सके, तो खाने के लिए वह बाहर निकल सकता है।

एतिकाफ़ की हालत में हर लम्हे इबादत और अल्लाह की याद में मस्त रहना बेहतर माना गया है और इनसे थोड़ी भी लापरवाही नापसन्दीदा है। सोहबत (पति-पत्नी प्रसंग) हराम है। इसी तरह गन्दे और अश्लील ख़यालात का दिल में लाना और बातें भी हराम हैं।

ऐकावाले – ऐका तबूक का क़दीम (प्राचीन) नाम है। ऐका का लुग़वी माना घना जंगल होता है। मदयनवाले और ऐकावाले एक ही नस्ल के दो क़बीले थे। इनके इलाक़े आपस में मिले हुए थे। तिजारत इनका पेशा था। दोनों ही क़बीलों की हिदायत के लिए हज़रत शुऐब (अलै॰) को अल्लाह ने नबी बनाकर भेजा था।

कफ़्फ़ारा – कफ़्फ़ारा का लुग़वी माना है छिपानेवाली चीज़। किसी गुनाह से छुटकारा पाने के लिए की जानेवाली तदबीर या मज़हबी काम। नेक काम या नेकी गुनाह को ढक लेती है और उसके असर को मिटा देती है। इसी नज़रिए से उन कामों को कफ़्फ़ारा कहा गया है जो किसी गुनाह से छुटकारा पाने के लिए किए जाते हैं। मुख़्तलिफ़ गुनाहों का कफ़्फ़ारा क़ुरआन में तय किया गया है।

काफ़िर – कुफ़्र करनेवाला, इनकार करनेवाला, मज़हब का मुख़ालिफ़, सच्चाई को छिपानेवाला, नाशुक्रा। वे लोग जो उन सच्चाइयों को मानने और क़बूल करने से इनकार करते हैं जिनकी तालीम ख़ुदा ने अपने पैग़म्बरों के ज़रीए दी है।

काबा – मक्का में वाक़ेअ वह पाक घर जो ख़ालिस तौहीद (ऐकेश्वरवाद) की अलामत है, जिसकी दीवारें अल्लाह के आदेश से हज़रत इबराहीम और उनके बेटे हज़रत इसमाईल (अलै॰) ने खड़ी की थीं। इसी घर की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ी जाती है।

किताब – यह लफ़्ज़ क़ुरआन में कई मानों इस्तेमाल हुआ है –

1. अल्लाह का कलाम जो उसने रसूलों पर उतारा।

पूरी किताब को भी किताब कहते हैं और उसके किसी हिस्से को भी किताब कहते हैं।

2. हुक्म, शरीअत और क़ानून।

3. अल्लाह का वह रिकॉर्ड जिसमें हर चीज़ दर्ज है।

4. वह किताब जिसमें उसके फ़ैसले दर्ज हैं।

5. ख़त के माने में भी इसका इस्तेमाल हुआ है।

6. वह आमालनामा जिसमें इनसान के अपने अच्छे-बुरे आमाल का ब्योरा दिया गया होगा। अच्छे लोगों को उनका आमालनामा उनके दाहिने हाथ में और बुरे लोगों को उनका आमालनामा उनके बाएँ हाथ में दिया जाएगा।

7. तक़दीर, पहले से तयशुदा बात।

किताबवाले (अहले-किताब) — वे लोग जिन्हें अल्लाह की तरफ़ से किताब दी गई थी। यह इशारा यहूदियों और ईसाइयों की तरफ़ है, जिन्हें अल्लाह ने तौरात और इनजील नाम की किताबें दी गई थीं, लेकिन दुख की बात है कि उन्होंने उनमें फेर-बदल कर दिए।

क़िबला — वह चीज़ जो आदमी के सामने रहे और जिसकी तरफ़ वह मुतवज्जेह रहे। इस्लामी इस्तिलाह में इससे मुराद वह हालत है जिसकी तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ी जाती है यानी काबा।

क़िब्ती — मिस्र के क़दीम (पुराने) बाशिन्दे। ये मुशरिक थे। मूर्तियाँ पूजते थे। मिस्र में इसराईल की औलाद जब ग़ुलामी की ज़िन्दगी जी रही थी, उस वक़्त जिस गरोह की मुल्क पर हुकूमत थी उसका ताल्लुक़ इसी क़िब्ती क़ौम से रहा है।

क़ियामत — दोबारा उठाया जाना, दुनिया का फ़ना हो जाना। इससे मुराद एक ऐसा दिन है जब मौजूदा दुनिया का निज़ाम दरहम-बरहम हो जाएगा। सारे जानदार मर जाएँगे। इसके बाद अल्लाह एक दूसरी दुनिया बनाएगा। सारे लोग फिर से जी उठाए जाएँगे और उन्हें उनके अपने आमाल का बदला दिया जाएगा। यही दिन क़ियामत का होगा।

क़िसास — ख़ून का बदला, हत्या-दण्ड। इस्लामी शरीअत में क़ातिल को क़त्ल के बदले में क़त्ल किया जाएगा या अगर मक़्तूल (मारे गए आदमी) के वारिस कुछ माल लेकर उसे माफ़ करना चाहें तो उसे माफ़ कर दिया जाएगा। इसी को क़िसास कहते हैं। माफ़ करने का हक़ मक़्तूल के वारिसों को हासिल होता है। क़िसास को लागू करना इस्लामी हुकूमत की अदालत की ज़िम्मेदारी है। इसे हर कोई अपने हाथ में नहीं ले सकता। क़िसास को लागू करने से बहुत-सी जानें बचाई जा सकती हैं। इसी लिए क़ुरआन में आया है, "क़िसास में तुम्हारे लिए ज़िन्दगी है।"

कुफ़्र — इनकार, नाफ़रमानी, हठधर्मी। कुफ़्र का लुग़वी माना है — छिपाना, ढाँकना, परदा डालना। इसी से काफ़िर बना है, जिसका मतलब होता है— छिपानेवाला, ढाँकनेवाला, परदा डालनेवाला।

इस्लाम इनसान का फ़ितरी (स्वाभाविक और प्राकृतिक) मज़हब है और उसकी फ़ितरत (प्रकृति) की माँग है। लेकिन इनसान अपनी जिहालत में आकर उस पर परदा डालता है और उससे हटकर किसी दूसरी राह को अपनाए रखता है, इसी लिए ऐसे आदमी को काफ़िर कहा जाता है।

क़ुरआन — अल्लाह की आख़िरी किताब का नाम, जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) पर उतरी है। इसका लुग़वी माना है— पढ़ना। इसलिए इस किताब का नाम ही यह बता रहा है कि यह किताब इसलिए नाज़िल हुई है कि ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़ी जाए और दुनिया के सारे लोग इसे पढ़कर अपनी ज़िन्दगी की राह तय करें। इस किताब को क़ुरआन कहना ऐसा ही है जैसे किसी बहुत ही ख़ूबसूरत इनसान को उसकी ख़ूबसूरती की वजह से 'ख़ूबसूरत' का लक़ब दिया जाए।

क़ुरबानी — बलिदान। जानवर को अल्लाह के नाम पर क़ुरबान करने का काम। ऐसी चीज़ जिसके ज़रीए अल्लाह का क़ुर्ब (सामीप्य) हासिल किया जाए। अल्लाह की अता की हुई चीज़ को एहसानमन्दी के तौर पर पेश करना। क़ुरबानी का काम असल में अपनी जान को अल्लाह को सौंप देने का इज़हार है। जानवर का ख़ून बहाकर असल में यह इरादा किया जाता है कि अगर अल्लाह के लिए हमें अपनी जान की बाज़ी लगानी पड़े तो इसमें कभी कोई हिचकिचाहट न होगी। क़ुरबानी रूह को पाक करने की एक

तदबीर (उपाय) भी है। इसी लिए क़ुरबानी की रस्म सभी क़ौमों में रही है और इसे अल्लाह को ख़ुश करने का एक ज़रीआ समझा गया है।

क़ुरबानी हज़रत इबराहीम (अलै.) की यादगार भी है। हज़रत इबराहीम (अलै.) ने अपने बेटे को अल्लाह के लिए क़ुरबान करना चाहा, तो यह क़ुरबानी दूसरी शक्ल में क़बूल की गई।

जानवर की क़ुरबानी की हैसियत एक फ़िदये की भी है। जानवर की क़ुरबानी देकर हम अपनी जानों को छुड़ा लेते हैं। लेकिन हमारी जान हमें लौटाई नहीं जाती, बल्कि हमारी अमानत में उन्हें सौंप दी जाती है, ताकि जब भी ज़रूरत पेश आए हम उन्हें अल्लाह के लिए निछावर कर दें। इस्लाम की हक़ीक़त भी असल में क़ुरबानी ही की है। इसमें आदमी अपने आपको सिपुर्द कर देता है। देखें : इस्लाम।

क़ुरैश — हज़रत इसमाईल (अलै.) की औलाद में नज़्र-बिन-कनाना की नस्ल से ताल्लुक़ रखनेवाला एक मुअज़्ज़ज़ (प्रतिष्ठित) क़बीला। नबी (सल्ल.) इसी क़बीले में पैदा हुए।

ख़लीफ़ा — नायब, किसी के बाद आनेवाला, प्रतिनिधि, नायक, उत्तराधिकारी। प्रतिनिधि के माने में ख़लीफ़ा वह आदमी होता है जो मालिक के दिए हुए हुक़ूक़ और इख़्तियारात का इस्तेमाल उसके हुक्म के मुताबिक़ ही करता है। वह अपने को मालिक नहीं समझता और हक़ीक़त यह है कि इनसान को ज़मीन में जो इख़्तियारात मिले हैं उनका इस्तेमाल भी अल्लाह के हुक्मों के मुताबिक़ ही होना चाहिए।

ख़ुला — छुटकारा हासिल करना, आज़ाद होना। इस्लाम ने अगर मर्दों को तलाक़ का अधिकार दिया है तो औरतों को ख़ुला का। औरत यदि यह समझती है कि उसका गुज़र-बसर मौजूदा शौहर के साथ नहीं हो सकता, तो वह ख़ुला हासिल कर सकती है। औरत अगर ख़ुला हासिल करना चाहती है तो उसे वह माल या उसका एक हिस्सा मर्द को लौटाना होगा जो उसे निकाह के वक़्त महर के तौर पर मिला था। औरत अगर शौहर के ज़ुल्म और अत्याचार की वजह से ख़ुला हासिल करना चाहती है, तो मर्द को सिरे से माल लेना ही ठीक न होगा।

ग़नीमत — दुश्मन का माल। हक़ के लिए लड़ी जानेवाली जंग में हक़ के दुश्मनों का जो माल इस्लामी सेना के क़ब्ज़े में आता है, उसे 'ग़नीमत' कहते हैं। इस्लाम सिर्फ़ उसी माल को ग़नीमत कहता है जो मैदाने-जंग में दुश्मन सेना से फ़तह हासिल करनेवालों के हाथ आता है। ग़नीमत के माल में ग़रीबों, मुहताजों, मिसकीनों और आम लोगों की भलाई के लिए पाँचवाँ हिस्सा तय है। (क़ुरआन, 8 : 41)

ग़ैब — छिपा हुआ, जिसके जानने का हमारे पास अपना कोई ज़रीआ न हो, परोक्ष, अदृष्ट। ग़ैब लफ़्ज़ राज़ और रहस्य के लिए भी इस्तेमाल हुआ है।

☆ ग़ैब असल में उन चीज़ों को कहा गया है जिन तक हमारे हवास (ज्ञानेन्द्रियों) की पहुँच नहीं है। जैसे — अल्लाह का वुजूद, फ़रिश्ते, जन्नत, जहन्नम, आख़िरत वग़ैरह।

☆ ग़ैब के बारे में माक़ूल और ज़रूरी इल्म के बिना इनसानी ज़िन्दगी की तशरीह नहीं की जा सकती। ग़ैब के बारे में सच्चा इल्म हमारी एक बड़ी ज़रूरत है। ग़ैब के बारे में सही जानकारी नबियों और पैग़म्बरों के ज़रीए लाए हुए अल्लाह के पैग़ाम से ही हासिल होती है।

ज़कात — बढ़ना, पाक होना, नश्व-व-नुमा देना यानी विकसित होना। इस्तिलाह में ज़कात एक तयशुदा माल को कहते हैं। इसे अपनी कमाई और अपने माल में से निकालकर अल्लाह के बताए हुए नेक कामों में ख़र्च करना लाज़िमी ठहराया गया है। जैसे— मुसाफ़िरों, मोहताजों की ख़िदमत, क़र्ज़दारों के बोझ से किसी को छुटकारा दिलाना, दीन के लिए की जानेवाली कोशिशों में ख़र्च करना वग़ैरह। ज़कात की हैसियत किसी टैक्स या कर की नहीं है, बल्कि यह एक तरह की इबादत है। ज़कात देकर बन्दा अल्लाह का शुक्र अदा करता है और इस तरह वह अपनी रूह को भी पाक करता और नश्व-व-नुमा देता है। ख़ुद ज़कात लफ़्ज़ से भी इस हक़ीक़त की तरफ़ इशारा मिलता है।

जन्नत — बाग़, आख़िरत में अल्लाह के नेक बन्दों के रहने की जगह, स्वर्ग।

ज़बूर — किताब, ख़त, पट्टिका। वह किताब जो पैग़म्बर हज़रत दाऊद (अलै.) पर नाज़िल हुई थी।

जहन्नम — दोज़ख़। आख़िरत में जहाँ अल्लाह के बाग़ी और नाफ़रमान लोगों को रखा जाएगा। वहाँ उनको अज़ाब दिया जाएगा। वहाँ वे आग में जलाए जाएँगे।

ज़िक्र — याद, याददिहानी, नसीहत, तारीख़, हर वह चीज़ जो किसी की याद दिलाए। क़ुरआन और दूसरी आसमानी किताबों को भी ज़िक्र कहा गया है।

जिज़या — इस्लामी हुकूमत में बसनेवाले ग़ैर मुस्लिम लोगों से उनकी जान, माल और आबरू की हिफ़ाज़त के बदले में लिया जानेवाला टैक्स। यह टैक्स हुकूमती इन्तिज़ाम के उन कामों में ख़र्च होता है जो ग़ैर मुस्लिमों की हिफ़ाज़त से ताल्लुक़ रखते हैं और उनके मतलूब कामों के लिए होते हैं। यह टैक्स सिर्फ़ मालदार ग़ैर-मुसलिमों से ही लिया जाता है। ग़रीब और मोहताज ग़ैर-मुस्लिमों पर यह टैक्स न लागू होता है और न ही उनसे लिया जाता है, बल्कि हुकूमत उनकी ज़रूरतों को अपने ख़ज़ाने से पूरा करती है।

जिन्न — इसका लुग़वी माना छिपा हुआ होना है। जिन्न इनसानों से मुख़्तलिफ़ एक तरह की मख़लूक़ है। जिन्न चूँकि आँखों से दिखाई नहीं देते। इसी लिए इन्हें जिन्न कहा जाता है।

जिबरील — यह इबरानी भाषा का शब्द है, जिसका मतलब होता है अल्लाह का बन्दा। जिबरील अल्लाह के एक ख़ास फ़रिश्ते का नाम है। हज़रत जिबरील (अलै॰) का ख़ास काम अल्लाह का पैग़ाम और उसका हुक्म नबियों तक पहुँचाना था।

जिहाद — जानतोड़ कोशिश, मक़सद को हासिल करने के लिए पूरी ताक़त लगा देना। जिहाद के माने ख़ालिस जंग नहीं है। जंग के लिए क़ुरआन में क़िताल लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। जिहाद का अर्थ क़िताल के माने से कहीं ज़्यादा वसीअ और व्यापक है। जो शख़्स दीने-हक़ के लिए अपने माल, अपने क़लम, अपनी ज़बान वग़ैरह से कोशिश कर रहा हो और इसके लिए अपने को थकाता हो वह जिहाद ही कर रहा है। दीन के लिए जंग भी करना पड़ सकता है और उसके लिए जान की भी क़ुरबानी दी जा सकती है। यह भी जिहाद ही का एक हिस्सा है। जिहाद को उसी वक़्त इस्लामी जिहाद कहा जाएगा जबकि वह ख़ालिस अल्लाह ही के लिए हो। अल्लाह के नाम और उसके दीन की अज़मत के लिए हो, न कि माल-दौलत हासिल करने के लिए। जिहाद का ख़ास मक़सद दीने-हक़ की रुकावटों को दूर करना, दुनिया को अल्लाह के अलावा दूसरों की ग़ुलामी से छुटकारा दिलाना और दीन की इताअत में जो रुकावटें खड़ी होती हैं उन्हें दूर करना है।

ज़ुहर — ज़ुहर दिन के तीसरे पहर, यानी दिन ढलने के वक़्त को कहते हैं। इसी लिए वह नमाज़ जो सूरज ढलने के बाद पढ़ी जाती है उसे ज़ुहर की नमाज़ कहते हैं। इस नमाज़ का वक़्त अस्र की नमाज़ तक रहता है।

तक़वा — डर रखना, परहेज़गारी, ख़ौफ़े-ख़ुदा। तक़वा का लुग़वी (शाब्दिक) माना बचना है। किसी चीज़ से पहुँचनेवाले नुक़सान से अपने आपको बचाना, किसी मुसीबत से डरना, अल्लाह की नाफ़रमानी से बचना और उसकी नाराज़गी से बचना।

तक़वा असूल में वह एहसास और मन की कैफ़ियत है जो अल्लाह के डर से दिल में पैदा होती है। और फिर इनसान अल्लाह के हुक्मों की इताअत में लग जाता है। और उसकी नाफ़रमानी से बचने की कोशिश करता है। अच्छे लिबास की तरह तक़वा भी इनसान की रूहानी ख़ूबसूरती को बढ़ाता है। इससे लाज़िमन उसकी ज़िन्दगी में पाकी और ख़ूबसूरती आ जाती है।

तयम्मुम — पानी न मिलने पर ग़ुस्ल और वुज़ू के बदले तयम्मुम से काम लेते हैं। यानी पाक मिट्टी पर हाथ मारकर अपने मुँह और हाथ फेर लेते हैं। इसी तरीक़े को तयम्मुम कहते हैं। यह तरीक़ा इसलिए अपनाया गया है ताकि पाकी का ख़याल हमेशा बना रहे और आदमी कभी भी उससे बेपरवाह न हो।

तलाक़ — छुटकारा, शौहर का बीवी को छोड़ देना। निकाह का टूट जाना।

तवाफ़ — चक्कर लगाना। हज या उमरा करनेवाले अल्लाह के घर काबा के चारों तरफ़ सात चक्कर लगाते हैं। इसे तवाफ़ कहते हैं।

तसबीह — अल्लाह की अज़मत और उसकी महानता का बयान। तसबीह के लुग़वी माने हैं चेहरे के

बल बिछ जाना। नमाज़ को भी इसलिए तसबीह कहा गया है कि नमाज़ में नमाज़ी अल्लाह के आगे सजदे में चेहरे के बल बिछ जाता है और उसकी अज़मत और बड़ाई बयान करता है। दुनिया की तमाम चीज़ें अल्लाह की अज़मत और बड़ाई की गवाह हैं और अल्लाह की बड़ाई और उसके हुक्म के आगे झुकी हुई हैं। इसी लिए क़ुरआन में आया है कि दुनिया की तमाम चीज़ें अल्लाह की तसबीह कर रही हैं।

तहज्जुद – नींद तोड़कर उठना। इस्लामी इस्तिलाह में इससे मुराद वह नमाज़ है जो रात के एक हिस्से में सो लेने के बाद उठकर पढ़ी जाती है। सोने से पहले भी यह नमाज़ पढ़ सकते हैं।

ताग़ूत – यह लफ़्ज़ 'तुग़यान' से निकला है। तुग़यान के माने हैं हद से आगे बढ़ना, सरकश हो जाना। इसलिए हर उस चीज़ को ताग़ूत कहेंगे जिसमें अल्लाह के मुक़ाबले में सरकशी पाई जाती हो और जो सरकशी पर लोगों को उभारती हो, चाहे वह आदमी की अपनी ख़ाहिश हो या समाज का कोई शख़्स हो या कोई हुकूमत या इदारा (संस्था) हो या ख़ुद शैतान या इबलीस हो।

तूर – यह एक ख़ास पहाड़ का नाम है। यह सीना पहाड़ या मूसा पहाड़ के नाम से भी जाना जाता है। यह क़ुरआन के नाज़िल होते वक़्त 'तूर' के नाम से मशहूर था। यह पहाड़ जज़ीरानुमा सीना (प्रायद्वीप सीना) के दक्षिण में है। इसकी ऊँचाई 7359 फ़ीट है।

तौबा – पलटना, लौटना, माफ़ी चाहना, रुख़ करना, पछतावा वग़ैरह। आदमी की तरफ़ से तौबा का मतलब यह होता है वह गुनाह और बुराई को छोड़कर अल्लाह की ख़ुशी की तरफ़ पलटता है। और अल्लाह की तरफ़ से तौबा का मतलब यह होता है कि वह अपने बन्दे पर रहमत की नज़र डाले और उसके गुनाह को माफ़ कर दे और अपनी नाराज़गी ख़त्म करके उसकी तरफ़ रहमत के साथ पलट आए।

तौरात – यह इबरानी भाषा का शब्द है। इसका मतलब है 'हुक्म और क़ानून'। तौरात वह किताब है जो हज़रत मूसा (अलै॰) पर नाज़िल हुई थी।

तौहीद – अल्लाह को एक मानना और किसी को उसका साझी और बराबर का न ठहराना। यही तौहीद तमाम नबियों की तालीम (शिक्षा) की बुनियाद रही है। तौहीद (सिर्फ़) सिर्फ़ एक अक़ीदा और धारणा ही नहीं है, बल्कि हमारी पूरी ज़िन्दगी पर इसका असर पड़ता है।

दीन – ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा, मज़हब। वह शरीअत जिसपर इनसान के ख़यालात, नज़रियात और उसूल व ज़ाबिते वग़ैरह सब कुछ टिके हुए हों।

दीन लफ़्ज़ के असल माने में ग़ुलामी और ख़ाकसारी का जज़्बा भी पाया जाता है। फिर इसमें चार माने पाए जाते हैं – 1. क़ुदरत, 2. फ़रमाँबरदारी, ग़ुलामी, बन्दगी 3. क़ानून, शरीअत, नियम, ज़ाबिता जिसको माना जाए और 4. जाँच-पड़ताल, फ़ैसला, अच्छे-बुरे आमाल का बदला।

नज़्र – मन्नत, भेंट। नज़्र सिर्फ़ अल्लाह ही के आगे पेश की जा सकती है। किसी और के आगे नज़्र गुज़ारना जायज़ नहीं। हम मुहब्बत के जज़्बे से अगर किसी को कोई चीज़ देते हैं उसे हद्या कहेंगे, नज़्र नहीं। नज़्र सिर्फ़ अल्लाह के लिए ख़ास है।

नबी – पैग़म्बर, जो नुबूवत के मंसब पर फ़ाइज़ (नियुक्त) किया गया हो, पैग़ाम पहुँचानेवाला। नबी पर अल्लाह का कलाम (वाणी या प्रकाशना) उतरता है। अल्लाह उसे अपने हुक्म से रूशनास (अवगत) कराता है। फिर नबी की ज़िम्मेदारी यह होती है कि वह लोगों तक अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाए। दुनिया में बहुत-से नबी हुए हैं। सबसे आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं।

नमाज़ – नमाज़ के लिए क़ुरआन में 'सलात' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। सलात का मतलब होता है किसी चीज़ की तरफ़ बढ़ना और उसमें दाख़िल हो जाना, किसी चीज़ की तरफ़ ध्यान देना। यहीं से यह लफ़्ज़ झुकने और दुआ के माने में भी इस्तेमाल होने लगा। पूजा और इबादत के लिए इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल बहुत पुराना है। सलात बन्दे को उसके अपने रब से मिलाती और उससे जोड़ती है। नमाज़ के लिए सलात लफ़्ज़ बहुत ही मानाख़ेज़ (अर्थपूर्ण) है।

नमाज़ क़ायम करना – नमाज़ को ठीक ढंग से उसके सारे ज़ाबितों के साथ अदा करना।

नसारा – ईसाई। 'नसारा' नसरान की जमा (बहुवचन) है। क़ुरआन में ईसा (अलै॰) के माननेवालों

को 'नसारा' लफ़्ज़ से मुख़ातब किया गया है। शुरू में ईसा (अलै.) के माननेवालों को 'नसारा' लफ़्ज़ से ही ख़िताब किया जाता था। इस लफ़्ज़ के बारे में बहुत-सी बातें मशहूर हैं। इनमें से ख़ास दो हैं –

1. फ़िलस्तीन में एक बस्ती नासिरा है। ईसा (अलै.) ने अपना बचपन यहीं गुज़ारा था। इसलिए उन्हें मसीह नासिरी कहा जाता था और इसी इसी लिए लिए उनके माननेवालों को नसारा कहा गया।

2. 'नसारा' लफ़्ज़ 'नुसरत' से बना है। नुसरत का लुग़वी माना (शाब्दिक अर्थ) मदद करना है।

ईसा (अलै.) ने जब अपने नबी होने का एलान किया और दीने-हक़ की दावत देनी शुरू की तो कुछ लोगों ने उनकी मुख़ालिफ़त की, कुछ लोगों ने मदद की। मदद करनेवालों को नसारा कहा गया। कुछ तारीख़ी किताबों (ऐतिहासिक ग्रन्थों) के मुताले से मालूम होता है कि ईसा (अलै.) ने ख़ुद अपने माननेवाले साथियों को 'नसारा' कहकर मुख़ातब किया था। लेकिन बाद में ईसा (अलै.) के माननेवालों ने जिस तरह ख़ुदाई शरीअत में फेर-बदल किया, अपना नाम भी बदल कर 'ईसाई' रख लिया।

निफ़ाक़ – छल-कपट, अन्दरूनी दुश्मनी। निफ़ाक़ यह है कि कोई आदमी एक दरवाज़े से तो दीन में दाख़िल हो, लेकिन दूसरे दरवाज़े से बाहर भी निकल जाए। ज़ाहिरी तौर से तो अपने को मुसलमानों में शामिल रखे, लेकिन असूल से उसका कोई ताल्लुक़ न हो। निफ़ाक़ कई तरह का होता है। तफ़सील के लिए देखें 'मुनाफ़िक़'।

नुबूवत – पैग़म्बरी, नबी होना। तफ़सील के लिए देखें **'नबी'**।

नूह की कौम के लोग (क़ौमे-नूह) – वे लोग जिनके बीच नूह (अलै.) नबी बनाकर भेजे गए और उन्होंने उनके बीच अल्लाह के दीन की दावत दी।

क़ुरआन और बाइबल से यह इशारा मिलता है कि नूह की क़ौम के लोगों का मसकन (निवास-स्थान) वह इलाक़ा था, जो आज इराक़ कहलाता है। इसकी तसदीक़ पत्थर की उन तख़्तियों (शिला-लेखों) से भी होती है, जो बाइबल से भी ज़्यादा क़दीम और पुरानी हैं। इन तख़्तियों में पानी के उस तूफ़ान का ज़िक्र मिलता है जिसका बयान क़ुरआन और बाइबल में पाया जाता है। इस सैलाब से मिलती-जुलती कहानियाँ यूनान, मिस्र, भारत और चीन के लिट्रेचर में भी मिलती हैं, बल्कि बर्मा, मलाया, ऑस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, अमेरिका और यूरोप के मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में भी ऐसी ही कहानियाँ क़दीम ज़माने से चली आ रही हैं। इससे अन्दाज़ा होता है कि सैलाब का वाक़िआ उस वक़्त का है, जब तमाम इनसान किसी एक ही इलाक़े में बसते थे, फिर वहीं से निकलकर वे दुनिया के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में फैले।

सैलाब के मौक़े पर अल्लाह के हुक्म से हज़रत नूह (अलै.) और उनके साथी जिस नाव में सवार हो गए थे, उस नाव का अवशेष जूदी पहाड़ पर खोज लिया गया है। यह खोज एक अमरीकी साइंटिस्ट वेंडिल जोंस की कोशिशों का नतीजा है। (तफ़सील के लिए देखें 'The Mail on Sunday', London, January 30, 1994)

फ़ज्र – सुबह सादिक़, पौ फटना। इसी इसी लिए लिए वह नमाज़ जो सुबह के वक़्त सूरज निकलने से पहले पढ़ी जाती है, उसे फ़ज्र की नमाज़ कहते हैं।

फ़िदया – छुटकारा, प्रतिदान। वह माल जिसके बदले में किसी गुनहगार को छुड़ाया जाए या मौत की सज़ा से छुटकारा दिलाया जाए। वह माल जो आदमी अपनी किसी ख़ता और कोताही के बदले में मुहताजों पर ख़र्च करे।

फ़िरदौस – जन्नत, स्वर्ग। फ़िरदौस लफ़्ज़ संस्कृत, ईरानी, इबरानी, यूनानी, अरबी वग़ैरह तक़रीबन सभी ज़बानों में पाया जाता है। यह लफ़्ज़ सभी ज़बानों में ऐसे बाग़ के लिए इस्तेमाल होता है जो वसीअ (व्यापक) हो और उसके चारों तरफ़ चहारदिवारी हो और आदमी के मसकन (निवास-स्थान) से मिला हुआ हो और उसमें हर तरह के फल ख़ास तौर से अंगूर पाए जाते हों।

फ़रिश्ता – क़ुरआन में इसके लिए 'मलक' लफ़्ज़ आया है। मलक का मतलब होता है पैग़ाम लानेवाला। फ़रिश्तों में इसकी ताक़त होती है कि वे आसमाने-दुनिया से अपना ताल्लुक़ क़ायम कर सकें और इनसानी दुनिया से भी अपना ताल्लुक़ जोड़ सकें। इसी लिए उन्हें अल्लाह का पैग़ाम पैग़म्बरों तक

पहुँचाने के लिए चुने गए। फ़रिश्ते अल्लाह के पैदा किए हुए और उसके बन्दे हैं। वे वही काम करते हैं जिनका उन्हें अल्लाह की तरफ़ से हुक्म होता है। वे हमेशा अल्लाह की हम्द व सना (गुणगान) करते रहते हैं। अल्लाह ने कितने ही फ़रिश्तों को अपने अज़ीम काम में लगा रखा है। फ़रिश्ते ज़रूरत पड़ने पर जो शक्ल चाहें इख़्तियार कर सकते हैं। भटके हुए लोग उन्हें अपना माबूद बनाकर उनकी इबादत करने लगे और उन्हें सिफ़ारिशी और दुखों को दूर करनेवाला समझ लिया गया और उनसे दुआएँ भी की जाने लगीं। क़ुरआन ने फ़रिश्तों की हैसियत वाज़ेह कर दी है, ताकि शिर्क का दरवाज़ा बन्द हो सके।

बैअत — फ़रमाँबरदारी का अहद करना, वादा करना वग़ैरह।

बनी-इसमाईल — हज़रत इसमाईल (अलै.) की औलाद के लोग। हज़रत इसमाईल (अलै.) हज़रत इबराहीम (अलै.) के बड़े बेटे थे। अल्लाह के आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की पैदाइश बनी-इसमाईल ही की औलाद में हुई।

बनी-इसराईल — इसराईल की औलाद, यहूदी। इसराईल हज़रत याक़ूब (अलै.) का दूसरा नाम था। हज़रत याक़ूब (अलै.), हज़रत इसहाक़ (अलै.) के बेटे और हज़रत इबराहीम (अलै.) के पोते थे। यहूदी इन्हीं की नस्ल में से हैं। इसी लिए उन्हें बनी-इसराईल कहकर पुकारा गया है।

बैतुल-मक़दिस — मस्जिदे-अक़सा। वह पाक घर जो यरूशलम में है, जिसकी तामीर का क़स्द (संकल्प) हज़रत दाऊद (अलै.) ने किया था और यह काम उनके बेटे हज़रत सुलैमान (अलै.) के हाथों पूरा हुआ।

मजूस — एक फ़िरक़े (सम्प्रदाय) का नाम, जो आग की पूजा करता है। इनके मज़हब को 'अल-मजूसिया' कहते हैं। ये ज़रतुश्त की तालीमात पर चलते हैं, इसलिए इन्हें ज़रतुश्ती भी कहा जाता है। अरबी लिट्रेचर में यह लफ़्ज़ उत्तरी यूरोप के रहनेवालों के लिए भी इस्तेमाल हुआ है।

क़ुरआन मजीद (22 : 17) में यह लफ़्ज़ 'मजूस' सिर्फ़ एक बार आया है और एक ख़ास क़ौम के लिए ही इस्तेमाल हुआ है। क़ुरआन का मुताला करने से मालूम होता है कि यह क़ौम अहले-किताब (यानी नसारा और यहूदी) की तरह एक क़ौम है, लेकिन ख़ुद अहले-किताब नहीं हैं। इस्लाम के शुरू के ज़माने में यह क़ौम इराक़, फ़ारस, किरमान, बहिस्तान, ख़ुरासान, तबरिस्तान, अल-जिबाल, आज़रबाईजान और ईरान में बहुत बड़ी तादाद में पाई जाती थी। लेकिन बाद में ज़्यादातर इस्लाम के पैरो बन गए। इस वक़्त इनकी तादाद दुनिया में बहुत कम पाई जाती है।

मदयनवाले — अरब की एक क़दीम और पुरानी क़ौम। इस क़ौम की आबादी हिजाज़ से फ़िलस्तीन के दक्षिण तक और वहाँ से जज़ीरानुमा-ए-सीना (सीना प्रायद्वीप) के आख़िरी छोर तक, बहरे-अहमर (लाल सागर) और अक़बा की खाड़ी तक फैली थी। इसका मरकज़ मदयन शहर था। मदयनवाले हज़रत इबराहीम (अलै.) के बेटे मिदयान की नस्ल से बताए जाते हैं। इस क़ौम की हिदायत के लिए अल्लाह ने हज़रत शुऐब (अलै.) को नबी बनाकर भेजा। इस क़ौम में शिर्क ही नहीं, बल्कि इसके अलावा और भी बहुत-सी बुराइयाँ पैदा हो गई थीं। जब इस क़ौम ने अपने नबी की बात न मानी और अपनी सरकशी से बाज़ न आए तो अल्लाह ने अपना अज़ाब उतारकर इस क़ौम को तबाह कर दिया। सिर्फ़ इसके खण्डहर ही इबरत और शिक्षा के लिए बाक़ी रह गए हैं।

मन्न — मन्न फ़ितरी ग़िज़ा है जो इसराइलियों को बेघरबार होने की सूरत में 40 सालों तक मिलता रहा। मन्न को वे मीठे शहद के तौर पर इस्तेमाल में लाते थे। मन्न के अलावा उन्हें सलवा भी हासिल था। सलवा बटेर की क़िस्म की एक चिड़िया थी, जिसको वे खाते थे।

मस्जिदे-हराम — वह मस्जिद जिसके बीच काबा वाक़ेअ (स्थित) है।

महर — वह रक़म या माल जो शादी के ताल्लुक़ से शौहर अपनी बीवी को देता है। क़ुरआन में इसके लिए 'सदक़ात' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है जो सदक़ा की जमा (बहुवचन) है। सदक़ा 'सिद्क़' से बना है। सच्चाई, दोस्ती, दुरुस्ती वग़ैरह इसके कई माने हैं। महर असल में औरत और मर्द के ताल्लुक़ात और उनके मुहब्बत के जज़्बात के बने रहने की एक अलामत है और औरत की अज़मत की भी।

मीकाईल (अलै.) — एक बहुत ही मुअज़्ज़ज़ और पाक फ़रिश्ते का नाम।

मीकाईल लफ़्ज़ असूल में इबरानी भाषा का है। यह इबरानी के दो लफ़्ज़ 'मीका' और 'ईल' से मिलकर बना है। 'मीका' का मतलब होता है बन्दा, ग़ुलाम या सेवक और ईल का मतलब है 'ख़ुदा' या 'अल्लाह'। इस तरह मीकाईल लफ़्ज़ का मतलब हुआ 'ख़ुदा का बन्दा या ग़ुलाम'।

यहूदी इस फ़रिश्ते से दूसरे फ़रिश्ते के मुक़ाबले में कुछ ज़्यादा ही अक़ीदत रखते हैं। वे इसे अपना मुहाफ़िज़, ख़ुशहाली और नजात का फ़रिश्ता मानते हैं; जबकि मुसलमान सभी फ़रिश्तों से बराबर अक़ीदत रखते हैं और मज़हबी तालीम के मुताबिक़ मीकाईल (अलै.) को तमाम जानदारों तक उनकी रोज़ी पहुँचानेवाला और बारिश का इन्तिज़ाम करनेवाला फ़रिश्ता मानते हैं।

इस फ़रिश्ते का नाम क़ुरआन में सिर्फ़ एक मक़ाम पर, सूरा-2, अल-बक़रा की आयत-98 में आया है।

मुनाफ़िक़ — निफ़ाक़ रखनेवाला, कपटी। ऐसा आदमी जो अपने को मुसलमान कहता हो, लेकिन इस्लाम से उसका सच्चा ताल्लुक़ न हो। मुनाफ़िक़ कई क़िस्म के हो सकते हैं —

1. वे लोग जो मुसलमानों में इसी लिए घुस आए हों और अपने आप को मुसलमान कहते हों, ताकि वे इस्लाम को ज़्यादा से ज़्यादा नुक़सान पहुँचाने में कामयाब हो सकें।

2. वे जिनका मक़सद इस्लाम या मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाना तो न हो, लेकिन मुसलमान सिर्फ़ इसलिए हुए हों कि वे मुसलमानों से दुनियावी फ़ायदा उठाएँ; न तो उनका इस्लाम से कोई ताल्लुक़ हो और न ही उसकी चाह उनके दिल में हो।

3. वे लोग जो शामिल तो हों मुसलमानों ही के गरोह में, लेकिन ईमान उनका बहुत ही कमज़ोर हो। जब कभी भी आज़माइश पेश आए तो वे कमज़ोरी दिखा जाएँ।

मुशरिक — शिर्क करनेवाला, बहुदेववादी, एक अल्लाह के सिवा बहुत-सों को पूजनेवाला या किसी दूसरे को एक ख़ुदा के बराबर ठहरानेवाला।

मुशरिक वह आदमी है जो ख़ुदा के वुजूद या उसकी सिफ़ात या उसके हक़ में दूसरों को साझीदार बनाए। वुजूद में साझीदार ठहराने का मतलब यह है कि 'किसी से उसको या उससे किसी को पैदा' होने का अक़ीदा रखा जाए। जैसे किसी को उसका बाप या उसकी औलाद समझा जाए।

सिफ़ात में दूसरों को ख़ुदा का साझीदार ठहराने का मतलब यह होता है कि ख़ुदा के लिए ख़ास सिफ़ात का ताल्लुक़ दूसरों से भी जोड़ा जाए। जैसे — कोई यह समझने लगे कि इस कायनात को पैदा करने में किसी दूसरी देवी या देवता का भी हाथ है या कोई यह मानने लगे कि कुछ और हस्तियाँ भी हैं जो आज़ादाना इख़्तियार रखती हैं कि जो चाहें करें, जिसका चाहें काम बना दें और जिसका चाहें बिगाड़ दें।

हक़ और अधिकार में ख़ुदा का शरीक ठहराने का मतलब यह है कि जो हक़ और अधिकार ख़ुदा का होता है, उसमें वह दूसरों को भी साझीदार समझने लगे। जैसे— कायनात का मालिक और पैदा करनेवाला एक ख़ुदा है, तो पूजा और इबादत भी उसी की होनी चाहिए। अब अगर कोई ख़ुदा से हटकर किसी दूसरे की बन्दगी और पूजा करता है, तो यह ख़ुदा के हक़ में दूसरे को शरीक ठहराना होगा और ऐसा करनेवाले को मुशरिक कहा जाएगा।

मुसलमान — यह वैसे तो 'मुस्लिम' लफ़्ज़ की जमा है, लेकिन आम तौर पर इसका इस्तेमाल वाहिद यानी एकवचन के तौर पर होने लगा है। तफ़सील के लिए देखें 'मुस्लिम'।

मुस्लिम — फ़रमाँबरदार, इस्लाम की पैरवी करनेवाला, सिर्फ़ एक ख़ुदा को अपना रब, मालिक, हाकिम और माबूद सब कुछ माननेवाला और अपने आपको उसके सामने डाल देनेवाला। उसी के हुक्मों के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारनेवाला। दुनिया की सारी चीज़ें— सूरज, चाँद, सितारे, सैयारे, हवाएँ वग़ैरह सब हक़ीक़त में मुस्लिम हैं; क्योंकि ये सभी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में लगी हुई हैं।

मुहाजिर — हिजरत करनेवाला, अल्लाह के लिए अपना घरबार छोड़नेवाला। नबी (सल्ल॰) के वे साथी जो अल्लाह के लिए अपना वतन —मक्का— छोड़कर मदीना हिजरत कर गए थे।

मोमिन — ईमानवाला। वह शख़्स जो अल्लाह, उसके पैग़म्बरों और उन सच्चाइयों पर मुकम्मल ईमान रखता हो और उन्हें दिल से मानता हो, जिनकी तालीम पैग़म्बरों ने दी है। देखें : मुस्लिम।

यतीम — अनाथ, वह बच्चा जिसका बाप मर चुका हो।

यहूद — यह लफ़्ज़ यहूदी की जमा है। इसका मतलब है यहूदी लोग। तफ़सील के लिए देखें : यहूदी।

यहूदी — वे लोग जो अपना ताल्लुक़ मूसा (अलै॰) से जोड़ते हैं। एक ख़ास क़बीले से यहूदी नज़रिया वुजूद में आया, उस क़बीले का नाम 'यहूदाह' था। यहूदाह लफ़्ज़ 'हूद' से निकला है। हूद का मतलब होता है लौटना, पलटना, तौबा करना।

रब — इसका असल मतलब है पालनेवाला! फिर फ़ितरी तौर पर इसमें कई माने शामिल हो गए। क़ुरआन में 'रब' लफ़्ज़ तीन ख़ास मानों में इस्तेमाल हुआ है, जिनमें आपस में गहरा ताल्लुक़ पाया जाता है।

1. पालनेवाला, मुहाफ़िज़; 2. मालिक, आक़ा; 3. हाकिम, क़ानून बनानेवाला, शासक।

रब्बानी — मज़हबी पेशवा। यहूद के यहाँ जो लोग, मज़हबी ओहदों पर होते थे और मज़हबी मामलों में हिदायत देना उनकी ज़िम्मेदारी होती थी, उन्हें रब्बानी कहा जाता था। उनकी ज़िम्मेदारी में यहूद की इबादत के निज़ाम की निगरानी भी होती थी। इसका इशारा क़ुरआन में भी किया गया है। देखें : क़ुरआन, 5 : 63।

रमज़ान — हिजरी साल का नौवाँ महीना। रमज़ान लफ़्ज़ 'रमज़' से बना है, जिसका मतलब है तपिश, गरमी। आलिमों का मानना है कि जब शुरू में महीनों के नाम तय किए गए होंगे, तो यह महीना सख़्त गर्मी के मौसम में आया होगा।

इस महीने में तमाम मुसलमानों पर पूरे महीने उसूल के मुताबिक़ रोज़ा रखना फ़र्ज़ है। इस महीने का ज़िक्र क़ुरआन में कई जगह आया है। इस महीने की बड़ाई करते हुए क़ुरआन में कहा गया है कि यही वह महीना है, जिसमें क़ुरआन नाज़िल हुआ है और जिसमें एक ऐसी रात आती है, जो हज़ार रातों से अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) है।

रसूल — पैग़म्बर, वह शख़्स जो रिसालत के मंसब पर फ़ाइज़ हो। एक शख़्स जिसके ज़रीए अल्लाह लोगों को अपना रास्ता दिखाता और उन तक अपना पैग़ाम पहुँचाता है, उसे रसूल या नबी कहते हैं।

रसूल और नबी में थोड़ा फ़र्क़ है। रसूल वह पैग़म्बर होता है, जिसे अल्लाह की तरफ़ से नई शरीअत और किताब दी गई हो। नबी हरेक पैग़म्बर को कहते हैं, चाहे उसे नई शरीअत और किताब मिली हो या उसे सिर्फ़ अपने से पहले की आई हुई किताब और शरीअत पर लोगों को चलाने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई हो। ख़ुदा के पैग़म्बर या नबी दुनिया के मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में आए हैं, उनकी एक बड़ी तादाद है, जिनमें से हम कुछ ही नबियों के नाम से वाक़िफ़ हैं। नबियों की बुनियादी तालीमात एक रही हैं। हर मुसलमान के लिए लाज़िम है कि वह सभी नबियों पर ईमान लाए और उनके ताल्लुक़ से अपने दिल में अक़ीदत और मुहब्बत बनाए रखे। भले ही उन नबियों में से किसी या किन्हीं की क़ौम के लोग उसके दुश्मन ही क्यों न हों और दुश्मनी में वे कितने ही आगे क्यों न बढ़े हुए हों। जैसे — मुसलमान के लिए लाज़िम है कि वह हज़रत मूसा (अलै॰) को पैग़म्बर तसलीम करे और उनके लिए अपने दिल में इज़्ज़त और एहतिराम का जज़्बा रखे, हालाँकि हज़रत मूसा (अलै॰) को माननेवाले यहूदियों की इस्लाम और मुसलमानों से दुश्मनी कोई ढकी-छिपी बात नहीं है।

रस्सवाले — देखें : अर-रसवाले।

रहमान — बहुत ही महरबान, वह हस्ती जिसकी रहमत न तो फीकी पड़े और कम ही न हो, अल्लाह का एक ख़ास नाम।

रिब्बी — अल्लाहवाले।

रिसालत — रसूल होना, पैग़म्बरी, ईशदूतत्त्व। (देखें : रसूल।

रुकू —सिर झुकाना, नमाज़ का एक हिस्सा जिसमें आदमी अल्लाह की बड़ाई का ध्यान करते हुए उसके आगे झुक जाता है।

रूहुल-क़ुदुस — पाक रूह। इससे मुराद वह्य का इल्म भी है जो हज़रत ईसा (अलै.) को दिया गया था। इससे मुराद फ़रिश्ता हज़रत जिबरील (अलै.) भी हैं, जो अल्लाह का कलाम पैग़म्बर तक पहुँचाते थे और इससे मुराद हज़रत ईसा (अलै.) की अपनी पाकी भी होती है।

रोज़ा —क़ुरआन में इसके लिए 'सियाम' लफ़्ज़ आया है, जिसका बुनियादी मतलब है रुक जाना। रोज़े में आदमी सुबह पौ फटने से लेकर सूरज डूबने तक खाने-पीने और नफ़्सानी ख़ाहिशों की तकमील (काम-वासना की पूर्ति) से रुका रहता है। रूह की पाकी और बालीदगी (विकास) के लिए रोज़ा रखना ज़रूरी है। रोज़े से आदमी में सब्र का माद्दा पैदा होता है और वह मुत्तक़ी (ईशपरायण) बन जाता है यानी वह अल्लाह का डर रखनेवाला और उसकी नाफ़रमानी से बचनेवाला आदमी बन जाता है और उसके मन में यह जज़्बा पैदा हो जाता है कि ज़िन्दगी में खाने-पीने और माद्दी चीज़ों के इस्तेमाल के अलावा भी कुछ है, जिसे हासिल किए बिना इनसान हैवानी सतह से ऊपर नहीं उठ सकता।

लूत (अलै.) — अल्लाह के एक मुअज़्ज़ज़ पैग़म्बर, जिनको पूर्वी उर्दुन के सदूरा और आमूरा नामक इलाक़े में अल्लाह के दीन की तबलीग़ के लिए भेजा गया था। ये हज़रत इबराहीम (अलै.) के भतीजे और हारान-बिन-आज़र के बेटे थे। ये दक्षिणी इराक़ के पुराने शहर उर में पैदा हुए । शहर उर 'फ़रात' नदी के किनारे बाबिल और नैनवा से भी पहले आबाद था।

यही वे पैग़म्बर हैं जिनको एक ऐसी क़ौम (जाति) में भेजा गया था, जो बहुत ही बदकिरदार, गुमराह और बेशर्म थी। उस क़ौम में कई बुराइयाँ थीं। लेकिन उनमें से सबसे बड़ी बुराई यह पैदा हो गई थी कि वे अपनी नफ़सानी ख़ाहिश (काम-वासना) औरतों के बजाय मर्दों से पूरी करते थे। औरतें (जिंसी ताल्लुक़ क़ायम करने के नज़रिए से) मर्दों से मायूस हो चुकी थीं। यह क़ौम अपने गुनाह और बदकिरदारी के लिए आज भी मशहूर है। लूत (अलै.) ने बड़े सब्र और नर्मी के साथ उन्हें सीधे रास्ते पर लाने की बड़ी कोशिश की, लेकिन वे समझने के बजाय और ज़्यादा ज़ुल्म पर उतर आए और पैग़म्बर पर ही ज़ुल्मो-ज़्यादती करने लगे। आख़िरकार अल्लाह ने इसे तलपट कर दिया और उस हरी-भरी और आबाद ज़मीन को लगभग चार सौ मीटर समुद्र से नीचे कर दिया। यहाँ पानी ही पानी भर गया। आज यह बहरे-मौत (मृत सागर) या लूत सागर के नाम से मशहूर है।

क़ौमे-लूत (अलै.) — हज़रत लूत (अलै.) को जिन लोगों के बीच पैग़म्बर बनाकर भेजा गया और जिनके बीच उन्होंने अल्लाह के दीन और उसके हुक्मों को पहुँचाने का काम किया, उन लोगों को 'क़ौमे-लूत' या 'अहले-लूत' कहते हैं।

लौंडी — इससे मुराद वे औरतें हैं जो इस्लामी जंग में गिरफ़्तार हुई हों। इन औरतों के बारे में इस्लामी क़ानून यह है कि पहले उन्हें हुकूमत के हवाले किया जाएगा; फिर हुकूमत को यह इख़्तियार है कि वह उन्हें रिहा कर दे या रिहाई के बदले में कुछ फ़िदया ले या वह उन मुसलमान क़ैदियों की रिहाई के बदले में उन्हें छोड़ दे, जो दुश्मन के क़ब्ज़े में हों।

हुकूमत की तरफ़ से ज़ाबिते के तहत औरत को किसी शख़्स की मिलकियत में भी दिया जा सकता है। यह काम ठीक उसी तरह मज़हब के मुताबिक़ है जैसे शादी मज़हब के मुताबिक़ काम है। लौंडी से जो औलाद पैदा होगी वह जाइज़ औलाद मानी जाएगी और उस औलाद को वही हक़ हासिल होंगे, जो अपनी बीवी से पैदा हुई औलाद को हासिल हैं। बच्चा पैदा होने के बाद लौंडी को बेचा नहीं जा सकता। अपने मालिक के मरने के बाद वह आज़ाद हो जाएगी। इस्लाम में इसे अच्छा माना गया है कि लौंडियों को आज़ाद करके उनसे ख़ुद निकाह कर लिया जाए या बेहतर लोगों से उनका निकाह कर दिया जाए। लड़ाई

में गिरफ़्तार औरत समाज के लिए एक मसला होती है। इस्लाम ने इसका जो हल निकाला है वह फ़ितरी (स्वाभाविक) और बाइज़्ज़त हल है।

वुज़ू — नमाज़ पढ़ने से पहले पाकी हासिल करने के लिए ज़ाबिते के मुताबिक़ हाथ, मुँह और पैरों को धोना और सिर पर गीला हाथ फेरना।

वह्य — ख़ुदाई इशारा, प्रकाशना। वह्य का लुग़वी (शाब्दिक) माना होता तेज़ या ख़ुफ़िया इशारा यानी ऐसा इशारा जो तेज़ी से इस तरह किया जाए जिसे वही जान सके जिसको इशारा किया गया हो।

इस्लामी इस्तिलाह में इससे मुराद वह ख़ास वह्य है जिसके ज़रीए अल्लाह अपने नबियों को अपनी मर्ज़ी और हुक्मों से रूशनास (अवगत) कराता है। क़ुरआन और दूसरी ख़ुदाई किताबों का नुज़ूल वह्य के ज़रीए ही हुआ है।

शहीद — गवाह, हाज़िर, हक़ की राह में जान क़ुरबान करनेवाला। इस लफ़्ज़ के कई माने होते हैं —

(1) जो शख़्स किसी क़ौम की तरफ़ से क़ौम के नुमाइन्दे के तौर पर किसी मामले की गवाही दे। (क़ुरआन, 28 : 75)

(2) बादशाह के यहाँ जिसकी हैसियत आम लोगों के नुमाइन्दे या सिफ़ारिशी की हो।

(3) जिस चीज़ की गवाही दी जा रही हो यानी जिसकी ख़बर लोगों को दी जा रही हो उस चीज़ और लोगों के बीच जो शख़्स वास्ता या सालिस (माध्यम) बन रहा हो। (क़ुरआन, 2 : 143)

(4) जो शख़्स किसी बड़े मामले की गवाही सुबूत के साथ दे। जो अपनी पूरी ज़िन्दगी और किरदार से इस बात की गवाही दे कि वह ज़िन्दगी की जिन हक़ीक़तों और इक़दार (मूल्यों) पर ईमान और यक़ीन रखता है, वे हक़ हैं।

अल्लाह की राह में जान देनेवाले या मारे जानेवाले को इसी लिए शहीद कहा जाता है कि वह अपनी जान देकर इस बात की गवाही देता है कि जिस चीज़ पर उसका ईमान लाने का दावा था, उस पर उसने अपने आपको न्योछावर कर दिया।

(5) वह शख़्स जो किसी चीज़ को पूरी तरह जानता हो और इस सिलसिले में वही गवाह और सनद (प्रमाण) हो। (क़ुरआन, 29 : 52)

शिर्क —किसी को अल्लाह का शरीक या साझीदार ठहराना। अल्लाह की हस्ती, उसकी सिफ़ात और उसके इख़्तियारात में किसी को शरीक समझना। देखें : मुशरिक।

शैतान — इसका लुग़वी माना है जल्दबाज़, आग की फ़ितरत रखनेवाला, अशान्त। इसके बाद इसमें सरकशी के माने भी शामिल हो गए। शैतान की ये ख़राबियाँ किसी जिन्न में भी पाई जा सकती हैं और किसी इनसान में भी। क़ुरआन में इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल इनसान और जिन्न दोनों के लिए हुआ है।

सजदा — झुकना, दोनों पैर, दोनों हाथों, नाक और पेशानी के साथ झुकना, सिर ज़मीन पर रख देना, चेहरे के बल बिछ जाना, नमाज़ का एक ख़ास हिस्सा।

सदक़ा — ख़ैरात, अल्लाह की राह में ख़र्च करना, दान। क़ुरआन में ज़कात और ख़ैरात दोनों ही के लिए यह लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। सदक़ा लफ़्ज़ 'सिद्क़' से बना है, जिसके माने होते हैं सच्चाई और निष्ठा।

समूद — अरब की क़दीम क़ौमों में से एक मशहूर क़ौम। इस क़ौम का ज़िक्र असीरिया में पत्थर की तख़्तियों (शिल-लेखों) में भी मिलता है। यूनान, स्कन्दरिया और रूस के मुवर्रिख़ीन (इतिहासकारों) और जुग़राफ़िया के मुसन्निफ़ीन (भूगोल-लेखकों) ने भी इस क़ौम का ज़िक्र किया है।

यह क़ौम अरब के उत्तर-पश्चिम इलाक़े में बसती थी। आज इस इलाक़े को 'अलहिज्र' कहते हैं। मदीना और तबूक के बीच एक जगह 'मदायने-सालेह' पड़ता है। क़दीम ज़माने में इसे हिज्र कहते थे और यही समूद की राजधानी थी। हज़ारों एकड़ के इलाक़े में आज भी ऐसी इमारतें मौजूद हैं, जिनकी तामीर समूद ने पहाड़ों को काट-काटकर की थी।

समूद की हिदायत के लिए अल्लाह ने हज़रत सालेह (अलै.) को नबी बनाकर भेजा। लेकिन यह क़ौम राह पर न आई और अल्लाह ने इसे तबाह करके रख दिया।

सलवा – देखें : मन्न।

सहाबा (असहाब) – यह सहाबी या साहिब की जमा (बहुवचन) है, जिसके मानी हैं साथी। इस्लामी इस्तिलाह (पारिभाषिक शब्दावली) में सहाबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के साथी को कहा जाता है।

सहीफ़ा – लिखा हुआ पन्ना। इसकी जमा (बहुवचन) सुहुफ़ है, जो किताब के माने में इस्तेमाल होता है; क्योंकि किताब पन्नों का ही मजमूआ होती है।

साबिई – इस नाम के दो गरोह क़दीम ज़माने में थे। उनमें एक एक हज़रत यह्या (अलै.) का माननेवाला था। इसके लोग 'अल-जज़ीरा' के इलाक़े में ज़्यादा पाए जाते थे। दूसरा गरोह उन सैयारों को पूजनेवाला था, जो अपने मज़हब का ताल्लुक़ हज़रत शीस (अलै.) और हज़रत इदरीस (अलै.) से जोड़ते थे। इन लोगों का मरकज़ 'हर्रान' था। इराक़ के मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में ये लोग फैले हुए थे। अन्दाज़ा है कि क़ुरआन में साबिई से मुराद पहला ही गरोह है; क्योंकि क़ुरआन के नाज़िल होने के ज़माने में दूसरा गरोह इस नाम से नहीं जाना जाता था।

सिद्दीक़ – बहुत ही सच्चा, हक़पसन्द; जिसमें हक़पसन्दी के अलावा और कोई दूसरा जज़्बा न पाया जाता हो; जो हक़ और इनसाफ़ का साथ हर हाल में दे; जो किरदार से अफ़ज़ल हो और ख़ुदग़र्ज़ी से बहुत दूर हो। यह लक़ब हज़रत अबू-बक्र (रज़ि) को अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने दिया था।

सूर – सूर बिगुल या नरसिंघा को कहते हैं। क़ुरआन में जिस सूर का ज़िक्र किया गया है। उसकी हक़ीक़त का सही इल्म अल्लाह ही को है।

सूरा – क़ुरआन छोटे-बड़े 114 अध्यायों में बँटा हुआ है, जिनमें से हरेक को सूरा कहते हैं। सूरा को सूरह् और सूरत भी कहा जाता है। हरेक सूरा अपनी जगह मुकम्मल होती है। लेकिन इसी के साथ उसका अपनी अगली-पिछली सूरतों से गहरा ताल्लुक़ भी होता है।

सूरा लफ़्ज़ 'सूर' से बना है जिसका मतलब होता है शहरपनाह, चहारदिवारी या नगरकोट। इसकी जमा (बहुवचन) 'सुवर' होता है, लेकिन 'सूरतों' या 'सूरतें' भी इस्तेमाल किया जाता है।

हक़ – 'हक़' मौजूद और क़ायम को कहते हैं। फिर इसमें कई माने शामिल हैं –

(1) जिसका होना सच हो। (क़ुरआन, 38 : 64)
(2) अख़लाक़ी एतिबार से जो मतलूब हो। (क़ुरआन, 51 : 19)
(3) जो वाज़ेह और अक़्ल के मुताबिक़ हो। (क़ुरआन, 2 : 71, 6 : 62)

अल्लाह और क़ियामत पहले और तीसरे माने के मुताबिक़ हक़ हैं। इनसाफ़ को दूसरे माने में हक़ कहा गया जाएगा। तीसरे माने के मुताबिक़ हिकमत।

हम्द – तारीफ़, ख़ुदा की तारीफ़ और तौसीफ़। किसी की ख़ूबियों का मुहब्बत के साथ ज़िक्र। हम्द अल्लाह के आगे जज़्बए-शुक्र को ज़ाहिर करने का एक बेहतरीन ढंग है। इसी लिए हम्द को शुक्र का नाम भी दिया गया है।

हज (हज्ज) – इसका लुग़वी माना होता है इरादा करना या ज़ियारत। इस्लामी इस्तिलाह में हज एक इबादत है, जिसमें आदमी काबा की ज़ियारत करता है और मक्का पहुँचकर उन बातों और रस्मों को अदा करता है, जिनका हुक्म दिया गया है। हज असल में इस बात का एलान है कि हमारी मुहब्बत, अक़ीदत, पूजा और बन्दगी सब अल्लाह ही के लिए है। हज करने से इनसानी दिल पर अल्लाह की बड़ाई और उसकी मुहब्बत की छाप मुस्तक़िल तौर पर पड़ जाती है।

हरम – इसका लुग़वी माना इज़्ज़तदार, मुहतरम और मुअज़्ज़ज़ (प्रतिष्ठित) है। इस्लामी इस्तिलाह में मक्का, मदीना और उनके आस-पास के कुछ किलोमीटर तक के इलाक़े को हरम कहते हैं। इन दोनों शहरों और इनके आस-पास के इलाक़े को एक साथ बोलने पर हरम की जमा 'हरमैन' इस्तेमाल किया

जाता है। इन्हें हरम कहने की वजह यह है कि अल्लाह ने इनको मुहतरम ठहराया है और इन जगहों पर कुछ काम और आमाल सख़्त मना हैं। जैसे— उनके अन्दर जंग नहीं हो सकती। उनके पेड़ों वग़ैरह को नहीं काटा जा सकता और उनके अन्दर दाख़िल होनेवाला शख़्स महफ़ूज़ हो जाता है; लेकिन यह भी है कि अगर कोई मुजरिम और क़ातिल आकर यहाँ पनाह ले ले, तो उसे सज़ा के लिए क़ाज़ी या अधिकारी के हवाले किया जाएगा।

हराम – इस्लाम ने जिन कामों को मना किया हो उन्हें हराम कहा जाता है। जैसे शराब पीना, ब्याज खाना वग़ैरह।

हलाल – जो इस्लामी शरीअत के मुताबिक़ हो।

हवारी – सच्चा साथी, मददगार। हज़रत ईसा (अलै॰) के साथियों का लक़ब। उर्दू बाइबल में इसके लिए 'शागिर्द' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। बाद में उनके लिए 'रसूल' का लक़ब मशहूर हो गया; क्योंकि हज़रत ईसा (अलै॰) दीन की तबलीग़ के लिए उन्हें मुख़्तलिफ़ जगहों पर भेजते थे। क़ुरआन ने उन्हें हवारी कहा। हवारी 'हौर' से बना है। 'हौर' का मतलब होता है सफ़ेदी। धोबी को हवारी इसी लिए कहते हैं कि वे कपड़े को धोकर सफ़ेद कर देता है। ख़ालिस और शुद्ध चीज़ को भी हवारी कहते हैं। इसी पहलू से ख़ालिस दोस्त और बेग़र्ज़ साथी को भी हवारी कहते हैं।

हिकमत – हिकमत का बुनियादी मतलब है फ़ैसला करना; फिर सूझ-बूझ की उस ताक़त को भी हिकमत कहते हैं जिसके ज़रीए आदमी फ़ैसले करता है। उस ताक़त को भी हिकमत का नाम देते हैं जो हक़ के मुताबिक़ फ़ैसलों का माख़ज़ (स्रोत) है। इसके अलावा किरदार की पाकी को भी हिकमत की अलामतों में से माना जाता है।

हिजरत – अल्लाह की राह में घरबार छोड़ना, नबी (सल्ल) का मक्का छोड़कर मदीना को हिजरत करना।

हिदायत – रास्ता दिखाना, सीधे रास्ते पर लाना, सीधे रास्ते पर चलाना। ज़िन्दगी गुज़ारने का वह तरीक़ा जिस पर चल कर आदमी अपनी दुनिया और आख़िरत का भला कर सके। क़ुरआन में इसके लिए 'हुदा' लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है, जिसके कई माने होते हैं, लेकिन उनमें आपस में गहरा ताल्लुक़ पाया जाता है—

(1) दिल की रौशनी, अन्दरून की नज़र। (क़ुरआन, 32 : 13, 47 : 17)

(2) निशानी, खुली दलील, वह चीज़ जिसके ज़रीए राह मिल सके। (क़ुरआन, 2 : 185, 20 : 10, 22 : 8)

(3) वाज़ेह रास्ता, मतलूब मक़ाम या मंज़िल तक पहुँचने का रास्ता। (क़ुरआन, 22 : 67)

यहीं से यह लफ़्ज़ शरीअत के लिए भी मान्य हुआ। (क़ुरआन, 3 : 73, 6 : 90)

(4) फ़ेअल की इस्म शक्ल (संज्ञा का क्रिया-रूप)। अरब किसी चीज़ की वाज़ेह सिफ़त से ही उसका नाम रख दिया करते हैं। इसी उसूल के मुताबिक़ क़ुरआन को 'अल-हुदा' कहा गया है। (क़ुरआन, 72 : 13)

हुक्म— क़ुव्वते-फ़ैसला, दीन में सूझ-बूझ, मामलों में सही राय क़ायम करने की ताक़त। मामलों में फ़ैसला करने का अल्लाह की तरफ़ से इख़्तियार। हुक्म में ख़ुदाई का माना भी पाया जाता है। क़ुरआन में यह लफ़्ज़ आ इल्म आम तौर नुबूवत के लिए इस्तेमाल हुआ है। हुक्म असल में समझदारी और सूझ-बूझ का नाम है। यही हिकमत का माख़ज़ (स्रोत) भी है।

हुरूफ़े-मुक़त्तआत – 'हुरूफ़' लफ़्ज़ 'हर्फ़' की जमा है, जिससे मुराद अक्षर है। मुक़त्तआत का मतलब कटा हुआ या अलग किया हुआ है। क़ुरआन मजीद की बहुत-सी सूरतों की शुरुआत अरबी के ऐसे ही कुछ हुरूफ़ से हुई है; इसी लिए ये हुरूफ़ अलग-अलग पढ़े जाते हैं। इन्हें मिलाकर लफ़्ज़ की शक्ल में नहीं पढ़ा जाता। इन्हीं हुरूफ़ को 'हुरूफ़े-मुक़त्तआत' कहा जाता है।

☆☆☆